जाहि-

सरल भाषाटीका सुन्दरता के साथ छपकर तैयार है. मूल्य १। रु० । **श्रीगोपालसहस्रनाम**–अति सरल, प्रामाणिक और गूढार्थ प्रकाशिका भाषाटीका सहित छपकर तैयार । इस की टीका को देख विद्वज्जन अवश्य संतुष्ट होंगे, मूल्य ८ आना मात्र । **गीताश्लोकार्थदीपिका**–गीताजी की सम्पूर्ण प्रकाशित टीकाओं में सब से उत्तम यही टीका इसलिये कि किसी मतविशेष का पक्ष न कर यथार्थ अर्थ का प्रतिपादन करती है कि जिस को अनेक विद्वज्जनों ने मान्य किया है. मूल्य १। रु० । **नारायणकवच**–भाषाटीका मूल्य २ आ० । **सप्तगीत**–(श्रीमद्भागवतान्तर्गत वेणुगीत, गोपीगीत, भ्रमरगीत, युगलगीत, श्रुतिगीत, महिषीगीत और अवधूतगीत) परम पावन रसमय श्लोकों की चित्तकमल को प्रफुल्लित करनेवाली भाषाटीका सहित छपकर तैयार. मूल्य ८ आ० । **गीता**–चिद्घनानन्द स्वामीकृत टीका सहित ८ रु० । **गीता**–आनंदगिरिकृत भाषाटीका ३ रु० । **शिवसंहिता**–१ रु० । **शाक्तप्रमोद**–५ रु० । **गरुडपुराण**–भाषाटीका १ रु० । **मनुस्मृति**–भाषाटीका २॥ रु० । **मनुस्मृति**–कुल्लूकभट्टीय संस्कृतटीका २ रु० । **ज्योतिषसार**–भाषाटीका १ रु० । ॥ ॥

रात.

भागवतसार ।

भगवान के चरण कमलों के प्रेमियों और कथा श्रवण करने के नेमियों के निमित्त भक्ति मुक्ति के क्षीरसागर श्रीमद्भागवत का भले भांति मथन कर अमृतरूप यह 'भागवतसार' तैयार किया गया है कि जिस का वारंवार पठन पाठन कर भक्त जन अनुपम आनन्द को प्राप्त करें । और भगवान के मंदिर में जाने को महान् परिश्रम समझते हैं ऐसे नरभी इस 'सार' का घरदार पर बैठे पाठ कर भवसागर से पार उतरें । इस की रसीली भाषा और लेख की गम्भीरता का अनुभव पुस्तक देखने ही से होगा । इस अधमउद्धारिणी भक्तिप्रचारिणी परमहितकारिणी पुस्तक का मू० १ रु०

पुस्तक मिलने का ठिकाना– गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना. कल्याण–मुंबई.

विष्णुसहस्रनाम ।

(निरुक्ति–निर्वचन–भगवद्गुणदर्पणभाष्यसहित.)

अनुष्टुप्श्लोकात्मक निरुक्ति व्याख्यासमेत और प्रकृतिप्रत्यय को दिखानेवाले पाणिनिसूत्रों से गर्भित ऐसी निर्वचन नामक द्वितीय व्याख्यासे युक्त भगवद्गुणदर्पण नामक विष्णुसहस्रनाम भाष्य संपूर्ण छपके तय्यार है. की० ५ रु. और उक्त भाष्यके अनुसार विष्णुसहस्रनाम का व्युत्पत्तिसहित हिंदीभाषा में दीपिका नामक ग्रंथ (कीमत रु० १) तथा शाङ्करभाष्य के अनुकूल विष्णुसहस्रनाम का व्युत्पत्तिसहित हिंदीभाषा में चन्द्रिका नामक ग्रन्थ (कीमत १२ आ०) सो ये तीनों पुस्तकें अत्यंत सुंदर छोटे बडे अक्षरों में छपकर विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं जिन महाशयों को लेने की इच्छा हो, वे शीघ्र सूचना करें । ॥ ॥ ॥

सामान्य निरुक्ति—न्यायशास्त्र तत्वप्रदर्शिनी श्रीरंगनाथीय नवीन **विवेचना**सहित अपूर्व ग्रन्थ मूल्य ४ रु० मात्र । **गोरक्षपद्धति**—परम प्रसिद्ध, अलौकिक योगशक्तिशाली, परम योगीश्वर श्रीगोरक्षनाथजी ने स्वयं यह परम उपकारक ग्रन्थ निर्माण किया है इसलिये इस की प्रशंसा जितनी की जाय उतनी थोडी है । विशेषता यह कि भाषाटीका साथ है । सर्व साधारण के सुभीते के लिये मूल्य केवल १२ आने ही रक्खे गये हैं । **हितोपदेश**—नीतिविषयक परम प्रसिद्ध और सर्वोत्तम ग्रन्थ भाषाटीका सहित छापा गया है. मूल्य १ रु०४आ० मात्र । **जंजीरा**—कवि कालिदास विरचित चुहचुहाते और टपकते हुए ललित कवित्तों का संग्रह । इस में श्रीकृष्णभगवान की केलिकथा का वर्णन है. मूल्य ३ आ० । **सदुपदेशमाला**—महाभारत और भागवतादिक ग्रंथों की अनेक कथाओं के धर्म अर्थ और राजनीति के बोधक सार वचनों का यह छोटासा संग्रह है. मूल्य २ आ० । **न्यायमुक्तावली**—न्यायशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ मूल्य ८ आ० मात्र । **संस्कृतनामावली**—बोलचाल में काम आनेवाले सब प्रकार के संस्कृत शब्दों का भाषा में अर्थ, मूल्य २ आ० । **मदनपालनिघंटु**—वैद्यजनों का परम सहायक और संपूर्ण द्रव्यों के नाम गुण बतानेवाला चमत्कारक प्राचीन ग्रन्थ भाषाटीकासहित छपकर तैयार है कीमत २ रु० मात्र । **न्यायतत्त्वबोधिनी**—न्यायदर्शन की अति उत्तम

जाहि- रात.

सरल भाषाटीका सुन्दरता के साथ छपकर तैयार है. मूल्य १। रु० । **श्रीगोपालसहस्रनाम**—अति सरल, प्रामाणिक और गूढार्थ प्रकाशिका भाषाटीका सहित छपकर तैयार । इस की टीका को देख विद्वज्जन अवश्य संतुष्ट होंगे, मूल्य ८ आना मात्र । **गीताश्लोकार्थदीपिका**—गीताजी की सम्पूर्ण प्रकाशित टीकाओं में सब से उत्तम यही टीका इसलिये कि किसी मतविशेष का पक्ष न कर यथार्थ अर्थ का प्रतिपादन करती है कि जिस को अनेक विद्वज्जनों ने मान्य किया है. मूल्य १। रु० । **नारायणकवच**—भाषाटीका मूल्य २ आ० । **सप्तगीत**—(श्रीमद्भागवतान्तर्गत वेणुगीत, गोपीगीत, भ्रमरगीत, युगलगीत, श्रुतिगीत, महिषीगीत और अवधूतगीत) परम पावन रसमय श्लोकों की चित्तकमल को प्रफुल्लित करनेवाली भाषाटीका सहित छपकर तैयार. मूल्य ८ आ० । **गीता**—चिद्घनानन्द स्वामीकृत टीका सहित ८ रु० । **गीता**—आनंदगिरिकृत भाषाटीका ३ रु० । **शिवसंहिता**—१ रु० । **शाक्तप्रमोद**—६ रु० । **गरुडपुराण**—भाषाटीका १ रु० । **मनुस्मृति**—भाषाटीका २॥ रु० । **मनुस्मृति**—कुल्लूकभट्टीय संस्कृतटीका २ रु० । **ज्योतिषसार**—भाषाटीका १ रु० । ॥ ॥

भागवतसार ।

भगवान के चरण कमलों के प्रेमियों और कथा श्रवण करने के नेमियों के निमित्त भक्ति मुक्ति के क्षीरसागर श्रीमद्भागवत का भले भांति मथन कर अमृतरूप यह ‘भागवतसार’ तैयार किया गया है कि जिस का वारंवार पठन पाठन कर भक्त जन अनुपम आनन्द को प्राप्त करें । और भगवान के मंदिर में जाने को महान् परिश्रम समझते हैं ऐसे नरभी इस ‘सार’ का घरदार पर बैठे पाठ कर भवसागर से पार उतरें । इस की रसीली भाषा और लेख की गम्भीरता का अनुभव पुस्तक देखने ही से होगा । इस अधमउद्धारिणी भक्तिप्रचारिणी परमहितकारिणी पुस्तक का मू० १ रु०

पुस्तक मिलने का ठिकाना— गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना. कल्याण—मुंबई.

विष्णुसहस्रनाम ।

(निरुक्ति-निर्वचन-भगवद्गुणदर्पणभाष्यसहित.)

अनुष्टुप्श्लोकात्मक निरुक्ति व्याख्यासमेत और प्रकृतिप्रत्यय को दिखानेवाले पाणिनिसूत्रों से गर्भित ऐसी निर्वचन नामक द्वितीय व्याख्यासे युक्त भगवद्गुणदर्पण नामक विष्णुसहस्रनाम भाष्य संपूर्ण छपके तय्यार है. की० ५ रु. और उक्त भाष्यके अनुसार विष्णुसहस्रनाम का व्युत्पत्तिसहित हिंदीभाषा में दीपिका नामक ग्रंथ (कीमत रु० १) तथा शाङ्करभाष्य के अनुकूल विष्णुसहस्रनाम का व्युत्पत्तिसहित हिंदीभाषा में चन्द्रिका नामक ग्रन्थ (कीमत १२ आ०) सो ये तीनों पुस्तकें अत्यंत सुंदर छोटे बडे अक्षरों में छपकर विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं जिन महाशयों को लेने की इच्छा हो, वे शीघ्र सूचना करें ।

॥ ॥ ॥

सामान्य निरुक्ति—न्यायशास्त्र तत्वप्रदर्शिनी श्रीरंगनाथीय नवीन विवेचनासहित अपूर्व ग्रन्थ मूल्य ४ रु० मात्र । **गोरक्षपद्धति**—परम प्रसिद्ध, अलौकिक योगशक्तिशाली, परम योगीश्वर श्रीगोरक्षनाथजी ने स्वयं यह परम उपकारक ग्रन्थ निर्माण किया है इसलिये इस की प्रशंसा जितनी की जाय उतनी थोडी है । विशेषता यह कि भाषाटीका साथ है । सर्व साधारण के सुभीते के लिये मूल्य केवल १२ आने ही रक्खे गये हैं । **हितोपदेश**—नीतिविषयक परम प्रसिद्ध और सर्वोत्तम ग्रन्थ भाषाटीका सहित छापा गया है. मूल्य १ रु०४आ० मात्र । **जंजीरा**—कवि कालिदास विरचित चुहचुहाते और टपकते हुए ललित कवित्तों का संग्रह । इस में श्रीकृष्णभगवान की केलिकथा का वर्णन है. मूल्य ३ आ० । **सदुपदेशमाला**—महाभारत और भागवतादिक ग्रंथों की अनेक कथाओं के धर्म अर्थ और राजनीति के बोधक सार वचनों का यह छोटासा संग्रह है. मूल्य २ आ० । **न्यायमुक्तावली**—न्यायशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ मूल्य ८ आ० मात्र । **संस्कृतनामावली**—बोलचाल में काम आनेवाले सब प्रकार के संस्कृत शब्दों का भाषा में अर्थ, मूल्य २ आ० । **मदनपालनिघंटु**—वैद्यजनों का परम सहायक और संपूर्ण द्रव्यों के नाम गुण बतानेवाला चमत्कारक प्राचीन ग्रन्थ भाषाटीकासहित छपकर तैयार है कीमत २ रु० मात्र । **न्यायतत्त्वबोधिनी**—न्यायदर्शन की अति उत्तम

अस्मिन् व्याख्यानत्रितये

इति सटीकात्रयश्रीवाल्मीकीयरामायणम्

गोविन्दराजीयभूषणं प्रधानम्

३८८७

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक़ ग्रन्थाधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

॥ इति सटीकान्वयश्रीवाल्मीकीयरामायणे उत्तरकाण्डम् ॥

॥ अथ सटीकात्रयश्रीवाल्मीकीयरामायणे उत्तरकाण्डम् ॥

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

उत्तरकांडम्

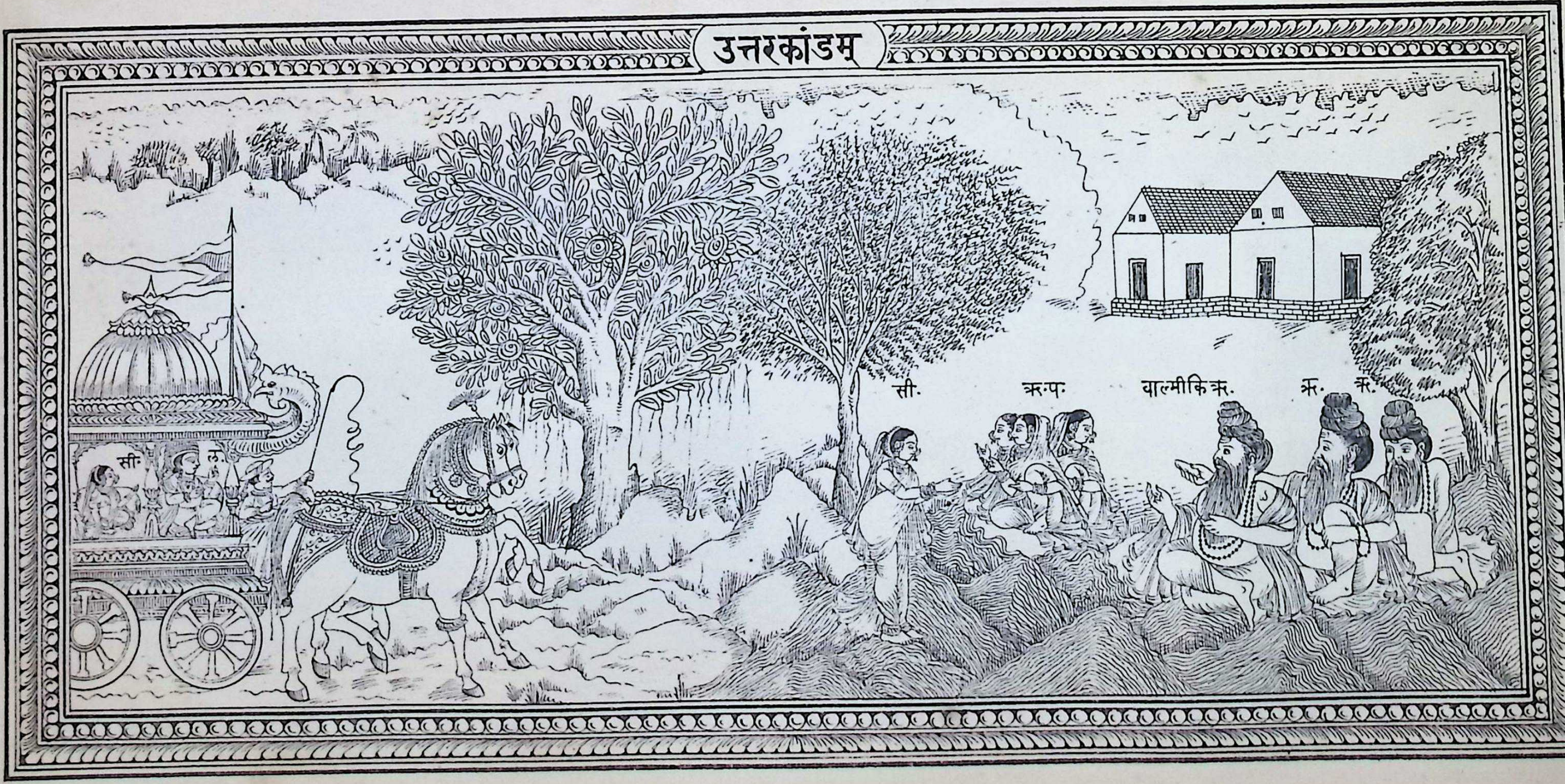
सी·
ल·
सी·
ऋ·प·
वाल्मीकिऋ·
ऋ·
ऋ·

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ श्रीमद्वत्सकुलप्रदीपशठजित्पादारविन्दद्वयीसेवालब्धसमस्तशास्त्रविततिर्गोविन्दराजाह्वयः । श्रीरामायणभूषणेऽत्र मुकुटीभूतां परामुत्तरे ग्रन्थे व्याकृतिमातनोति विदुषां प्रीतिः पुनर्वर्धताम् ॥ १ ॥ प्राप्तेत्यादि ॥ राक्षसानां वधे कृते सति प्राप्तराज्यस्य रामस्य । अनादरे षष्ठी । प्राप्तराज्यं राममनादृत्य राघवं लक्ष्मणं प्रतिनन्दितुं सर्वे ऋषय आजग्मुः । प्राधान्येनेन्द्रजिद्वधं प्रशंसिष्यन्ति रामस्य समीप इति शेष इत्येके । अत्र प्रेति गायत्र्या एकविंशाक्षरम् ॥ १ ॥ २ ॥ स्वस्तीति ॥ स्वस्तिकरः आत्रेयः ॥ ३ ॥ ४ ॥ वसिष्ठ इति ॥ उक्ता वसिष्ठादयः सप्तेत्यर्थः । ननु

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते ॥ आजग्मुर्ऋषयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम् ॥ १ ॥ कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्ग्यो गालव एव च ॥ कण्वो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः ॥ २ ॥ स्वस्त्यात्रेयोथ भगवान्नमुचिः प्रमुचिस्तथा ॥ (अगस्त्योत्रिश्च भगवान्सुमुखो विमुखस्तथा ॥) आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये स्थिता दक्षिणां दिशम् ॥ ३ ॥ नृषद्गुः कवषो धौम्यो रौद्रेयश्च[1] महानृषिः ॥ तेप्याजग्मुः सशिष्या वै ये श्रिताः पश्चिमां दिशम् ॥ ४ ॥ वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः सगौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाजस्तेपि सप्तर्षयस्तथा ॥ ५ ॥ उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः ॥ ६ ॥ संप्राप्य ते महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ॥ विष्ठिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः ॥ वेदवेदाङ्गविदुषो नानाशास्त्रविशारदाः ॥ ७ ॥ द्वाःस्थं प्रोवाच धर्मात्मा ह्यगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥ निवेद्यतां दाशरथेर्ऋषीनस्मान् समागतान् ॥ ८ ॥ ॥

वसिष्ठः अयोध्यायां पुरोहिततया नित्यं वर्तमानः कथमिदानीमुदीच्या दिशः समागत इत्युच्यते । सत्यम् । यथाऽगस्त्यो ज्योतिर्मण्डलस्थोपि भुवि तपःसमार्जनाय शरीरान्तरे स्थित आगतस्तथा वसिष्ठोपि ज्योतिर्मण्डलस्थः सप्तर्षिभिः समागत इति बोध्यम्। तदा गमनदशायां नगरस्थो वसिष्ठो नायातः अत एव न परिगणितः । कौशिकः कुशिकवंश्यो विश्वामित्रादन्यः ॥ ५ ॥ ६ ॥ संप्राप्येति ॥ प्रतिहारो द्वाःस्थः । द्वारि द्वाःस्थे प्रतीहार इत्यमरः॥ ७॥ ८॥

---

[1] रैभ्यश्च्यवन एव चेति पाठः ।

॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ तानिति ॥ अभिवाद्येति । समुदायं प्रतीति शेषः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ कुशलमिति ॥ सर्वत्र पुरकोशादिषु ।

प्रतीहारस्ततस्तूर्णमगस्त्यवचनाद्द्रुतम् ॥ समीपं राघवस्याशु प्रविवेश महात्मनः ॥ ९ ॥ नयेङ्गितज्ञः सद्वृत्तो दक्षो
धैर्यसमन्वितः ॥ स रामं दृश्य सहसा पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ १० ॥ अगस्त्यं कथयामास संप्राप्तमृषिभिः सह ॥
॥ ११ ॥ श्रुत्वा प्राप्तान्मुनींस्तांस्तु बालसूर्यसमप्रभान् ॥ प्रत्युवाच ततो द्वाःस्थं प्रवेशय यथासुखम् ॥ १२ ॥
तान्संप्राप्तान्मुनीन्दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च्य गां निवेद्य च सादरम् ॥ रामोभिवाद्य प्रयत
आसनान्यादिदेश ह ॥ १३ ॥ तेषु काञ्चनचित्रेषु महत्सु च वरेषु च ॥ १४ ॥ कुशान्तर्धानदत्तेषु मृगचर्मयुतेषु च ॥
यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्वृषिपुङ्गवाः ॥ १५ ॥ रामेण कुशलं पृष्टाः सशिष्याः सपुरोगमाः ॥ महर्षयो वेदविदो
रामं वचनमब्रुवन् ॥ १६ ॥ कुशलं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥ त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम्
॥ १७ ॥ दिष्ट्या त्वया हतो राजन् रावणो लोकरावणः ॥ न हि भारः स ते राम रावणः पुत्रपौत्रवान् ॥ १८ ॥
सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजयेथा न संशयः ॥ दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १९ ॥ दिष्ट्या
विजयिनं त्वाद्य पश्यामः सह सीतया ॥ लक्ष्मणेन च धर्मात्मन् भ्रात्रा त्वद्धितकारिणा ॥ २० ॥ मातृभिर्भ्रातृसहितं
पश्यामोद्य वयं नृप ॥ दिष्ट्या प्रहस्तो विकटो विरूपाक्षो महोदरः ॥ अकम्पनश्च दुर्धर्षो निहतास्ते
निशाचराः ॥ २१ ॥ यस्य प्रमाणाद्विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥ दिष्ट्या ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातितः ॥
॥ २२ ॥ त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥ दिष्ट्या ते निहता राम महावीर्या निशाचराः ॥ २३ ॥

दिष्ट्या दैवात् । हतशात्रवं हतशत्रुम् ॥ १७ ॥ दिष्ट्येति ॥ रावणस्ते न हि भारः । तद्वधस्ते ईषत्कर्मेत्यर्थः ॥ १८ ॥ तदेव दर्शयति—सधनुरित्यादि ॥ विजयेथा इति "विपराभ्याम्०" इत्यात्मनेपदम् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ यस्येति ॥ प्रमाणात् शरीरपरिमाणात् ॥ २२ ॥ २३ ॥

॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ दिष्ट्या त्वमिति ॥ द्वन्द्वयुद्धमुपागतः सन् विजयं प्राप्तवानसीत्यन्वयः ॥ २७ ॥ २८ ॥ दिष्ट्या तस्येति ॥ मुक्तः ।

कुम्भश्चैव निकुम्भश्च राक्षसौ भीमदर्शनौ॥ दिष्ट्या तौ निहतौ राम कुम्भकर्णसुतौ मृधे ॥ २४ ॥ युद्धोन्मत्तश्च
मत्तश्च कालान्तकयमोपमौ ॥ यज्ञकोपश्च बलवान्धूम्राक्षो नाम राक्षसः ॥ २५ ॥ कुर्वन्तः कदनं घोरमेते शस्त्रास्त्रपारगाः
॥ अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्दिष्ट्या विनिहतास्त्वया ॥ २६ ॥ दिष्ट्या त्वं राक्षसेन्द्रेण द्वन्द्वयुद्धमुपागतः ॥ देवतानाम
वध्येन विजयं प्राप्तवानसि ॥ २७ ॥ संख्ये तस्य न किंचित्तु रावणस्य पराभवः ॥ द्वन्द्वयुद्धमनुप्राप्तो दिष्ट्या
ते रावणिर्हतः ॥ २८ ॥ दिष्ट्या तस्य महाबाहो कालस्येवाभिधावतः ॥ मुक्तः सुररिपोर्वीर प्राप्तश्च विजययस्त्वया
॥ २९ ॥ अभिनन्दाम ते सर्वे संश्रुत्येन्द्रजितो वधम् ॥ सोऽवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि
॥ ३० ॥ विस्मयस्त्वेष चास्माकं तच्छ्रुत्वेन्द्रजितं हतम् ॥ ३१ ॥ एते चान्ये च बहवो राक्षसाः कामरूपिणः ॥
दिष्ट्या त्वया हता वीरा रघूणां कुलवर्धन ॥ ३२ ॥ दत्त्वा पुण्यामिमां वीर सौम्यामभयदक्षिणाम् ॥ दिष्ट्या
वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्शन ॥ ३३ ॥ श्रुत्वा तु तेषां वचनमृषीणां भावितात्मनाम् ॥ विस्मयं परमं गत्वा
रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ३४ ॥ भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् ॥ अतिक्रम्य महावीर्यौ किं प्रशंसथ
रावणिम् ॥ ३५ ॥ महोदरं प्रहस्तं च विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ मत्तोन्मत्तौ च दुर्धर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥
अतिक्रम्य महावीर्यान् किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३६ ॥ अतिकायं त्रिशिरसं धूम्राक्षं च निशाचरम् ॥ अतिक्रम्य महावीर्यान्
किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३७ ॥ ॥ ॥ ॥

तस्य रावणेः । शरबन्धादिति शेषः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ दत्त्वेति ॥ अभयदक्षिणामभयदानम् । देवर्षिभ्य इत्यर्थः । वर्धसि वर्धसे ॥ ३३ ॥
श्रुत्वेति ॥ विस्मयं गत्वा ॥ रावणिवधविषयवाक्येनेति शेषः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ॥

॥ ३८ ॥ शक्यमित्यादि ॥ यदि गुह्यं न भवति । यदि युष्माभिः वक्तुं शक्यम् । यदि मया च श्रोतुम् । तदा कथ्यताम् । अहं तु श्रोतुमिच्छामि केवलं नतु वक्तुमित्याज्ञापयामि ॥ ३९ ॥ शक्र इति ॥ पिता रावणो न बलवान् पुत्रापेक्षयेति कथम् ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिसुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

कीदृशो वै प्रभावोस्य किं बलं कः पराक्रमः ॥ केन वा कारणेनैष रावणादतिरिच्यते ॥३८॥ शक्यं यदि मया श्रोतुं न खल्वाज्ञापयामि वः ॥ यदि गुह्यं नचेद्वक्तुं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥ ३९ ॥ शक्रोपि विजितस्तेन कथं लब्धवरश्च सः ॥ कथं च बलवान् पुत्रो न पिता तस्य रावणः ॥४०॥ कथं पितुश्चाभ्यधिको महाहवे शक्रस्य जेता हि कथं स राक्षसः ॥ वराश्च लब्धाः कथयस्व मेद्य तत्पृच्छतश्चास्य मुनीन्द्र सर्वम् ॥४१॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे प्रथमः सर्गः ॥१॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ॥ कुम्भयोनिर्महातेजा राममेतदुवाच ह ॥ १ ॥ शृणु राम[1] कथावृत्तं तस्य तेजोबलं महत् ॥ जघान शत्रून् येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः ॥ २॥ तावत्ते रावणस्येदं कुलं जन्म च राघव ॥ वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते ॥ ३ ॥ पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः ॥ पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः ॥ ४ ॥ नानुकीर्त्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा ॥ प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ॥ ५ ॥ प्रजापतिसुतत्वेन देवानां वल्लभो हि सः ॥ हृष्टः सर्वस्य लोकस्य गुणैः शुभ्रैर्महामतिः ॥ ६ ॥ ॥

॥१॥शृण्विति ॥ असौ रावणिः न च शत्रुभिर्वध्यः । तत्कारणं शृण्विति संबन्धः ॥२॥ तावदिति ॥ तावत् प्रथमम् । रावणस्यैव कुलादिकं यमहं ते ब्रवीमि । पश्चाद्रावणेश्चेति शेषः ॥ ३ ॥ तत्र प्रथमं कुलमाह–पुरेत्यादि ॥ पुलस्त्यः दशप्रजापतिष्वेकः । पितामह इव पितृतुल्य इत्यर्थः ॥ ४ ॥ तदेवाह–नानुकीर्त्या इति ॥ धर्मतः शीलतश्चोत्पन्न इति शेषः । ते गुणा नानुकीर्त्या विविच्याशक्यवर्ण्याः । किन्तु प्रजापतिपुत्रनामत एव तत्संकीर्तनमात्रं

---

[1] राजन्यथावृत्तमित्यपि पाठः ।

तत एतस्यैव वैभवं वक्तुं शक्यम्। प्रजापतिपुत्रत्वोक्त्यैव तस्य वैभवं वर्णितं भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ स त्वित्यादि ॥ धर्मप्रसङ्गेन तपःसम्पादनेच्छयेत्यर्थः । तृणबिन्दुर्नाम ऋषिः ॥७॥८॥९॥ सर्वर्त्विति ॥ तं देशमाश्रमपदम् ॥ १० ॥ देशस्येति ॥ लासयन्त्यः नृत्यन्त्यः ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः ॥ तृणबिन्द्वाश्रमं गत्वा न्यवसन्मुनिपुङ्गवः ॥ ७ ॥ तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रियः ॥ गत्वाश्रमपदं तस्य विघ्नं कुर्वन्ति कन्यकाः ॥ ८ ॥ देवपन्नगकन्याश्च राजर्षितनयाश्च याः ॥ क्रीडन्त्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे ॥ ९ ॥ सर्वर्तुषूपभोग्यत्वाद्रम्यत्वात्काननस्य च ॥ नित्यशस्तास्तु तं देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः ॥ १० ॥ देशस्य रमणीयत्वात्पुलस्त्यो यत्र स द्विजः ॥ गायन्त्यो वादयन्त्यश्च लासयन्त्यस्तथैव च ॥ मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्रुरनिन्दिताः ॥ ११ ॥ अथ क्रुद्धो महातेजा व्याजहार महामुनिः ॥ या मे दर्शनमागच्छेत् सा गर्भं धारयिष्यति ॥ १२ ॥ तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः ॥ ब्रह्मशापभयाद्भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः ॥ १३ ॥ तृणबिन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ॥ १४ ॥ गत्वाश्रमपदं तत्र विचचार सुनिर्भया ॥ न साऽपश्यत्स्थिता तत्र काञ्चिदभ्यागतां सखीम् ॥ १५ ॥ तस्मिन्काले महातेजाः प्राजापत्यो महानृषिः ॥ स्वाध्यायमकरोत्तत्र तपसा भावितः स्वयम् ॥ १६ ॥ सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम् ॥ अभवत्पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा ॥ १७ ॥ बभूव च समुद्विग्ना दृष्ट्वा तद्दोषमात्मनः ॥ इदं मे किन्त्विति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाश्रमे स्थिता ॥ १८ ॥ तां तु दृष्ट्वा तथाभूतां तृणबिन्दुरथाब्रवीत् ॥ किं त्वमेतत्त्वसदृशं धारयस्यात्मनो वपुः ॥ १९ ॥ सा तु कृत्वाञ्जलिं दीना कन्योवाच तपोधनम् ॥ न जाने कारणं तात येन मे रूपमीदृशम् ॥ २० ॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ तस्मिन्निति ॥ स्वाध्यायमकरोत् वेदमपठदित्यर्थः ॥ १६ ॥ सा त्विति॥ वेदश्रुतिं वेदध्वनिं श्रुत्वा कोऽधीत इति गत्वा दृष्ट्वा चेत्यर्थः । पाण्डुदेहा गर्भिणीत्वात् । सुव्यञ्जितः शरीरजो यस्याः सा तथा ॥ १७ ॥ बभूवेति ॥ इदं मे किम् एतत्किमिति ज्ञात्वा गर्भकारणमिदं किन्त्विति

ज्ञात्वेत्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ स त्विति ॥ तनयां गृहीत्वा पुलस्त्यं गत्वेत्यन्वयः ॥ २४ ॥ भगवन्निति ॥ इमां भिक्षां गृहाणेति भिक्षात्वेन स्वीकुरुष्वेति अब्रवीदिति पूर्वेणान्वयः । ननूर्ध्वरेतसा मया कथं ग्राह्या किं वा मेऽनया प्रयोजनमित्यत्राह—उद्यतामिति । “उद्यता-

किं तु पूर्वं गतास्म्येका महर्षेर्भावितात्मनः ॥ पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम् ॥ २१ ॥ नच पश्याम्यहं तत्र काञ्चिदभ्यागतां सखीम् ॥ रूपस्य तु विपर्यासं दृष्ट्वा त्रासादिहागता ॥ २२ ॥ तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः ॥ ध्यानं विवेश तच्चापि ह्यपश्यदृषिकर्मजम् ॥ २३ ॥ स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः ॥ गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् ॥ भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ॥ २५ ॥ तपश्चरणयुक्तस्य श्रम्यमाणेन्द्रियस्य ते ॥ शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥ तं ब्रुवाणं तु तद्वाक्यं राजर्षिं धार्मिकं तदा ॥ जिघृक्षुरब्रवीत्कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥ २७ ॥ दत्त्वा स तु यथान्यायं स्वमाश्रमपदं गतः ॥ सापि तत्रावसत्कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः ॥ २८ ॥ तस्यास्तु शीलवृत्ताभ्यां तुतोष मुनिपुङ्गवः ॥ प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २९ ॥ परितुष्टोस्मि सुश्रोणि गुणानां संपदा भृशम् ॥ तस्माद्देवि ददाम्यद्य पुत्रमात्मसमं तव ॥ ३० ॥ उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् ॥ यस्मात्तु विश्रुतो वेदस्त्वयैषोध्ययतो मम ॥ ३१ ॥ तस्मात्स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः ॥ एवमुक्ता तु सा देवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३२ ॥ ॥

माहृतां भिक्षां पुरस्तादप्रवेदिताम् । भोज्यां मेने प्रजानाथो ह्यपि दुष्कृतकर्मणः” इत्युक्तेः स्वयमुद्यतेयं ग्राह्यैवेत्यर्थः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ दत्त्वेति ॥ यथान्यायं पाणिग्रहणपूर्वकमित्यर्थः ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ उभयोरिति ॥ उभयोरपि मातुः पितुश्चेत्यर्थः । अध्ययतः अधीयानस्येत्यर्थः । वेदो विश्रुतः गर्भहेतुरिति शेषः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥
॥ १ ॥ २ ॥ ज्ञात्वेति ॥ तस्य तद्वृत्तं विश्रवसस्तादृशं चरितमित्यर्थः । देववर्णिनीं देवसमानरूपाम् ॥ ३ ॥ प्रतिगृह्येत्यादिश्लोकपञ्चकमेकं वाक्यम् ॥ सर्वैर्ब्रह्मगुणैः । शमदमादिभिरित्यर्थः । पितामहः वैश्रवणपितामहः । पुलस्त्य इत्यर्थः । प्रजामन्विच्छतीति प्रजान्वेषिका "प्रत्ययस्थात्०"

अचिरेणैव कालेनासूत विश्रवसं सुतम् ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातं यशोधर्मसमन्वितम् ॥ ३३ ॥ श्रुतिमान्समदर्शी
च व्रताचाररतस्तथा ॥ पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद्विश्रवा मुनिः ॥ ३४ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥
अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥ अचिरेणैव कालेन पितेव तपसि स्थितः ॥ १ ॥ सत्यवाञ्छीलवा-
ञ्छान्तः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ॥ सर्वभोगेष्वसंसक्तो नित्यं धर्मपरायणः ॥ २ ॥ ज्ञात्वा तस्य तु तद्वृत्तं भरद्वाजो म-
हामुनिः ॥ ददौ विश्रवसे भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम् ॥ ३ ॥ प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा ॥ प्रजान्वे-
षिकया बुद्ध्या श्रेयो ह्यस्य विचिन्तयन् ॥ ४ ॥ मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥ स तस्यां वीर्यसंपन्न-
मपत्यं परमाद्भुतम् ॥ ५ ॥ जनयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युतम् ॥ तस्मिन् जाते तु संहृष्टः संबभूव पिता-
महः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा श्रेयस्करीं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति ॥ नाम तस्याकरोत्प्रीतः सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥ ७ ॥
यस्माद्विश्रवसोपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव ॥ तस्माद्वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ॥ ८ ॥ स तु वैश्रवण-
स्तत्र तपोवनगतस्तदा ॥ अवर्धताहुतिहुतो महातेजा यथानलः ॥ ९ ॥ ॥ ॥

इतीत्वम् । अस्य विश्रवसस्तस्मिन्पुत्रे जाते तुष्टो बभूव । श्रेयस्करीं धनेशत्वरूपश्रेयःप्राप्तिहेतुभूतां जन्मलग्नपर्यालोचनया कालान्तरे धनाध्यक्षनामको भविष्यतीति निश्चित्य तत्काले विश्रवसोपत्यत्वाद्वैश्रवण इति विश्रुतो भविष्यतीति नाम च चकार । "विश्रवसो विश्रवणं वा" इति विश्रवणादेशः ॥
॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १० ॥ स त्विति ॥ नियमेन यन्त्रितः संजातबन्धनः ॥ ११ ॥ पूर्ण इति ॥ तं तं विधिम्। विधिमेवाह–जलाशीत्यादि ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अ-

तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ॥ चरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परमा गतिः ॥ १० ॥ स तु वर्षसहस्राणि
तपस्तप्त्वा महावने ॥ यन्त्रितो नियमैरुग्रैश्चकार सुमहत्तपः ॥ ११ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रान्ते तं तं विधिमकल्पयत् ॥
जलाशी मारुताहारो निराहारस्तथैव च ॥ १२ ॥ एवं वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येकवर्षवत् ॥ अथ प्रीतो महातेजाः
सेन्द्रैः सुरगणैः सह ॥ १३ ॥ गत्वा तस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ॥ परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणानेन सुव्रत ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते ॥ १४ ॥ अथाब्रवीद्वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम् ॥ भगवन् लोकपालत्वमिच्छेयं वित्तरक्षणम् ॥ १५ ॥ अथाब्रवीद्वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा ॥ ब्रह्मा सुरगणैः सार्धं बाढमित्येव हृष्टवत् ॥
॥ १६ ॥ अहं वै लोकपालानां चतुर्थं स्रष्टुमुद्यतः ॥ १७ ॥ यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत्तव चेप्सितम् ॥ तद्गच्छ त्वं हि
धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि ॥ शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ॥ १८ ॥ एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसन्निभम् ॥ प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ॥ १९ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्व एव यथागतम् ॥
कृतकृत्या वयं तात दत्त्वा तव वरद्वयम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्थानं त्रिदशैः सह ॥ २१ ॥ गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेष्वथ नभःस्थलम् ॥ वने स पितरं प्राह प्राञ्जलिः प्रयतात्मवान् ॥ निवासनं न मे देवो विदधे स प्रजापतिः ॥
॥ २२ ॥ भगवन् लब्धवानस्मि वरमिष्टं पितामहात् ॥ तं पश्य भगवन् कंचिन्निवासं साधु मे प्रभो ॥ २३ ॥
न च पीडा भवेद्यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ॥ एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥ २४ ॥ ॥

थेति ॥ वित्तरक्षणम् अशेषनिधिपतित्वम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ यमेति ॥ यदीप्सितं तद्गच्छ निधीशत्वमवाप्नुहि ॥ १८ ॥ एतच्चेति ॥ त्रिदशैः समतामिति । नतु ऋषिपुत्रवद्वर्तस्वेत्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ हेमेति ॥ यन्त्ररूपैः शस्त्रैः समावृता ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ एतदिति ॥ प्रमुदितैः सह निवासयामासेति योजना ॥
॥ ३२ ॥ अचिरेणेति ॥ संपूर्णधनधान्यादिसर्वैश्वर्यपूर्णेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटा-

वचनं प्राह धर्मज्ञः श्रूयताामिति सत्तमः ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ २५ ॥ तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ॥ लङ्का नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ २६ ॥ राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती ॥ तत्र त्वं वस भद्रं ते लङ्कायां नात्र संशयः ॥ २७ ॥ हेमप्राकारपरिघा यन्त्रशस्त्रसमावृता ॥ रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैडूर्यतोरणा ॥ २८ ॥ राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्दितैः ॥ शून्या रक्षोगणैः सर्वै रसातलतलं गतैः ॥ २९ ॥ शून्या संप्रति लङ्का सा प्रभुस्तस्या न विद्यते ॥ स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथासुखम् ॥ ॥ ३० ॥ निर्दोषस्तत्र ते वासो न बाधा तत्र कस्यचित् ॥ ३१ ॥ एतच्छ्रुत्वा स धर्मात्मा धर्मिष्ठं वचनं पितुः ॥ निवासयामास तदा लङ्कां पर्वतमूर्धनि ॥ नैर्ऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सह ॥ ३२ ॥ अचिरेणैव कालेन संपूर्णा तस्य शासनात् ॥ ३३ ॥ सतु तत्रावसत्प्रीतो धर्मात्मा नैर्ऋतर्षभः ॥ समुद्रपरिघायां तु लङ्कायां विश्रवात्मजः ॥ ॥ ३४ ॥ काले काले तु धर्मात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः ॥ अभ्यागच्छद्विनीतात्मा पितरं मातरं च हि ॥ ३५ ॥ स देवगन्धर्वगणैरभिष्टुतस्तथाप्सरोनृत्यविभूषितालयः ॥ गभस्तिभिः सूर्य इवावभासयन् पितुः समीपं प्रययौ स वित्तपः ॥ ३६ ॥ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

श्रुत्वागस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः ॥ कथमासीत्तु लङ्कायां संभवो रक्षसां पुरा ॥ १ ॥ ॥

ख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
श्रुत्वेत्यादि ॥ लङ्कायां धनदाधिष्ठानात् पूर्वमपि रक्षसां संभवः अपःस्थानादिसंभवः इति यदुक्तं तत् श्रुत्वा विस्मयमागत इत्यन्वयः ॥ १ ॥

तत इत्यादि ॥ ततो मुहुः शिरः कम्पयित्वा विस्मयमागतः सन् अगस्त्यं दृष्ट्वाऽभ्यभाषत ॥ २ ॥ भगवन्निति ॥ पूर्वं रावणकुबेरयोः पूर्वमपि लङ्का पिशिताशिनामासीदावास आसीदितीदानीमुक्तं श्रुत्वा मम विस्मयो जनितः ॥ ३ ॥ कुतो विस्मय इत्याशङ्क्य विरुद्धश्रवणादित्याह—पुलस्त्येति ॥ नः अस्माभिः । पूजायां बहुवचनम् । श्रुतं कर्णाकर्णिकयेति शेषः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ राघवस्येति ॥ संस्कारेति पदवाक्यार्थजसंस्कारेति यावत् ।

ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम् ॥ तमगस्त्यं मुहुर्दृष्ट्वा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥ भगवन् पूर्वमप्येषा लङ्कासीत्पिशिताशिनाम् ॥ श्रुत्वेदं भगवद्वाक्यं जातो मे विस्मयः परः ॥ ३ ॥ पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम् ॥ इदानीमन्यतश्चापि संभवः कीर्तितस्त्वया ॥ ४ ॥ रावणात्कुम्भकर्णाच्च प्रहस्ताद्विकटादपि ॥ रावणस्य च पुत्रेभ्यः किन्नु ते बलवत्तराः ॥ ५ ॥ क एषां पूर्वको ब्रह्मन् किन्नामा च बलोत्कटः ॥ अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः कथम् ॥ ६ ॥ एतद्विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ ॥ कौतूहलमिदं मह्यं नुद भानुर्यथा तमः ॥ ७ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा संस्कारालंकृतं शुभम् ॥ ईषद्विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ॥ ८ ॥ प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा ह्यपः सलिलसंभवः ॥ तासां गोपायने सत्त्वानसृजत्पद्मसंभवः ॥ ९ ॥ ते सत्त्वाः सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः ॥ किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः ॥ १० ॥ प्रजापतिस्तु तान्याह सत्त्वानि प्रहसन्निव ॥ आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानदः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

ईषद्विस्मयमान इति । सर्वज्ञोऽप्यजानान्निव पृच्छतीति विस्मितम् ॥ ८ ॥ प्रजापतिरिति ॥ सलिलसंभवः पद्मसंभवः । सलिले पद्मसंभव इत्यर्थः । प्रजापतिः ब्रह्मा । अहरन्ते अपः सृष्ट्वा भूमेरधः स्थिताः समुद्ररूपिणीः सृष्ट्वा रात्र्यवसाने तत्रैव सलिले विष्णुनाभिकमले वर्तमानः प्रजापतिः तासामपां गोपायने रक्षणनिमित्तम् । सत्त्वान् जन्तूनसृजत् । पुँल्लिङ्गत्वमार्षम् ॥ ९ ॥ त इति ॥ तानि सत्त्वानि किं कुर्मः किं करवामेति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः सन्तः सत्त्वकर्तारं स्वस्रष्टारं विनीतवदुपस्थिताः ॥ १० ॥ प्रजापतिस्त्विति ॥ प्रहसन्निव भयार्दितास्वप्रजाविषयदयावशात् प्रहसन्नि-

त्यर्थः । मानदः बहुमानदः । भयनिवृत्तिमनुगृह्णन्नित्यर्थः । हे सत्त्वानीति वाचा आभाष्य संबोध्य । रक्षध्वं यत्नेन रक्षध्वमिमा अप इति ॥ ११ ॥ तानि सत्त्वान्याह—रक्षामेति ॥ तत्र तेषु सत्त्वेषु मध्ये । अन्यैः कैश्चित्सत्त्वैः । रक्षामेत्युक्तः । तथापरैर्जक्षामेत्युक्तः प्रजापतिः । उभयमपि लोडुत्तमबहुवचनम् । "जक्ष,भक्ष-हसनयोः" । कैश्चिन्न वयं रक्षाम किन्तु जक्षामेत्युक्तः । कैः रक्षामेत्युक्तम् कैर्वा जक्षामेत्युक्तं तत्राह—भुङ्क्षिताभुङ्क्षितैरिति

रक्षामेति च तत्रान्ये जक्षाम इति चापरे ॥ भुङ्क्षिताभुङ्क्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥ १२ ॥ रक्षामेति च यैरुक्तं
राक्षसास्ते भवन्तु वः ॥ जक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः ॥ १३ ॥ तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ
॥ मधुकैटभसंकाशौ बभूवतुररिन्दमौ ॥ १४ ॥ प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोवनगतस्तदा ॥ हेतिर्दारक्रियार्थं
तु परं यत्नमथाकरोत् ॥ १५ ॥ स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम भयावहाम् ॥ उदावहदमेयात्मा स्वयमेव
महामतिः ॥ १६ ॥ स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुङ्गवः ॥ पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केश इति श्रुतम् ॥ १७ ॥
विद्युत्केशो हेतिपुत्रः स दीप्तार्कसमप्रभः ॥ व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य इवाम्बुजम् ॥ १८ ॥ स यदा यौवनं
भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः ॥ ततो दारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ॥ १९ ॥ सन्ध्यायास्तनयां सोऽथ
सन्ध्यातुल्यां प्रभावतः ॥ वरयामास पुत्रार्थं हेती राक्षसपुङ्गवः ॥ २० ॥ अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति
सन्ध्यया ॥ चिन्तयित्वा सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ॥ २१ ॥ ॥ ॥

अभ्यासलोपश्छान्दसः । अबुभुक्षितैः रक्षामेत्युक्तं बुभुक्षितैस्तु जक्षामेत्युक्तमिति क्रमः ॥ १२ ॥ रक्षामेति ॥ वः युष्माकं मध्ये । यैः रक्षामेत्युक्तं ते राक्षसा भवन्तु । यैर्जक्षामेत्युक्तं ते यक्षा भवन्तु। वर्णव्यत्यय आर्षः ॥ १३ ॥ १४ ॥ प्रहेतिरिति॥ तत्र राक्षसेषु । तपोवनगत इति। विरक्तो भूत्वेति शेषः ॥ १५ ॥ स इति ॥ कालो यमः । स्वयमेवेति । प्रार्थनां गत्वेत्यर्थः । अस्यैव विवरणं दारक्रियार्थ इत्यादि ॥ १६ ॥ १७ ॥ विद्युत्केश इति॥ तोयं मध्ये यस्य स तोयमध्यः ॥ १८ ॥ स इति ॥ पिता हेतिः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥

॥२२॥२३॥ तत इति ॥ प्रसूता प्रसूतवती । अग्निजं गर्भमिति । अग्निना विसृष्टं माहेश्वरं गर्भमित्यर्थः । घनगर्भोऽशनिः ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७॥ अपश्यदिति ॥ कारुण्येन सहितः भावश्चित्तं कारुण्यभावः । तस्मात्॥२८॥तमिति ॥ अक्षरोव्यय इति षड्भावराहित्योपलक्षणम्। पार्वत्या प्रेरित इति

संध्यायास्तनयां लब्ध्वा विद्युत्केशो निशाचरः ॥ रमते स्म तया सार्धं पौलोम्या मघवानिव ॥ २२ ॥ केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्कटा ॥ विद्युत्केशाद्गर्भमाप घनराजिरिवार्णवात् ॥ २३ ॥ ततः सा राक्षसी गर्भं घनगर्भसमप्रभम् ॥ प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाग्निजम् ॥ २४ ॥ तमुत्सृज्य तु सा गर्भं विद्युत्केशरतार्थिनी ॥ रेमे तु सार्धं पतिना विस्मृत्य सुतमात्मजम् ॥ २५ ॥ उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो घनशब्दसमस्वनः ॥ तयोत्सृष्टः स तु शिशुः शरदर्कसमद्युतिः ॥ निधायास्ये स्वयं मुष्टिं रुरोद शनकैस्तदा ॥ २६ ॥ ततो वृषभमास्थाय पार्वत्या सहितः शिवः ॥ वायुमार्गेण गच्छन्वै शुश्राव रुदितस्वनम् ॥ २७॥ अपश्यदुमया सार्धं रुदन्तं राक्षसात्मजम् ॥ कारुण्यभावात्पार्वत्या भवस्त्रिपुरसूदनः ॥ २८ ॥ तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयःसमम् ॥ अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोक्षरोव्ययः ॥ ॥२९॥ पुरमाकाशगं प्रादात्पार्वत्या प्रियकाम्यया ॥ उमयापि वरो दत्तो राक्षसानां नृपात्मज ॥३०॥ सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च ॥ सद्य एव वयःप्राप्तिर्मातुरेव वयःसमम् ॥ ३१ ॥ ततः सुकेशो वरदानगर्वितः श्रियं प्रभोः प्राप्य हरस्य पार्श्वतः ॥ चचार सर्वत्र महान्महामतिः खगं पुरं प्राप्य पुरंदरो यथा ॥३२॥ इत्युत्तरश्रीरामा०च०सर्गः ॥४॥

सुकेशं धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम् ॥ ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसुसमप्रभः ॥ १ ॥ ॥

शेषः। इदमेव दर्शयति–वक्ष्यमाणप्रियकाम्ययेति॥२९॥३०॥ सद्य इति॥ सद्योपलब्धिरित्यार्षः संधिः। मातुरेव वयःसमं वयःप्राप्तिरिति योजना ॥३१॥ तत इति॥सुकेश इत्यनुवादादेव तन्नामकरणं सिद्धम्। खगम् आकाशगम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीगो०वि०मणिमु०उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुर्थः सर्गः॥४॥ सुकेशमित्यादि सार्धद्वयम् ॥ वरलब्धं लब्धवरम्। गन्धर्व आसीत् स तं सुकेशं दृष्ट्वा तस्मै सुकेशाय ददादित्यन्वयः। रक्षःश्रियं राक्षसश्रियम् ॥ १ ॥

॥ २ ॥ ३ ॥ स इति ॥ अञ्जनादञ्जनाख्यगजात् अभिनिष्क्रान्त उत्पन्नः महागजः करेण्वेव रराज ॥४॥५॥६॥ त्रयो लोका इत्यादि श्लोकद्वयम् ॥ त्रयो मन्त्राः उत्साहप्रभुमन्त्रशक्तयः। त्रयो वेदा वा । त्रय आमयाः वातपित्तश्लेष्मरूपाः। त्रेताग्निसमवर्चस इति तेजोतिशय उक्तः। पूर्वसाहत्य प्रधानात्?

तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा ॥ त्रिषु लोकेषु विख्याता रूपयौवनशालिनी ॥ तां सुकेशाय धर्मेण ददौ रक्षः श्रियं यथा ॥ २ ॥ वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ॥ आसीद्देववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः ॥ ३ ॥ स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ॥ अञ्जनादभिनिष्क्रान्तः करेण्वेव महागजः ॥ ४ ॥ देववत्यां सुकेशस्तु जनयामास राघव ॥ ५ ॥ त्रीन्पुत्राञ्जनयामास त्रेताग्निसमविग्रहान् ॥ माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् ॥ त्रींस्त्रिनेत्रसमान्पुत्रान् राक्षसान्राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्नयः ॥ त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः ॥ ७ ॥ त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्निसमतेजसः ॥ विवृद्धिमगमंस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव ॥ ८ ॥ वरप्राप्तिं पितुस्ते तु ज्ञात्वेश्वरतपोबलात् ॥ तपस्तप्तुं गता मेरुं भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥ ॥ ९ ॥ प्रगृह्य नियमान् घोरान् राक्षसा नृपसत्तम ॥ विचेरुस्ते तपो घोरं सर्वभूतभयावहम् ॥ १० ॥ सत्यार्जवशमोपेतैस्तपोभिरतिदुष्करैः ॥ सन्तापयन्तस्त्रीन् लोकान्त्सदेवासुरमानुषान् ॥ ११ ॥ ततो विभुश्चतुर्वक्त्रो विमानवरमास्थितः ॥ सुकेशपुत्रानामन्त्र्य वरदोस्मीत्यभाषत ॥ १२ ॥ ब्रह्माणं वरदं ज्ञात्वा सेन्द्रैर्देवगणैर्वृतम् ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे वेपमाना इव द्रुमाः ॥ १३ ॥ तपसाराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ॥ अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ॥ १४ ॥ प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥ १५ ॥ ॥ ॥

व्याधयोपेक्षिता इति संधिरार्षः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तपसेति ॥ प्रभविष्णवः यणार्षः । अनुव्रताः । अनुरक्ताश्च भवामेत्यनुकर्षः ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमिति ॥ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मलोकं गन्तुम् । "तुमर्थ०" इत्यादिना चतुर्थी ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८॥१९॥२०॥२१॥२२॥ दक्षिणस्येत्यादि सार्धत्रयम् ॥

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा सुकेशतनयान्विभुः ॥ स ययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ॥ १६ ॥ वरं लब्ध्वा तु ते सर्वे राम रात्रिंचरास्तदा ॥ सुरासुरान् प्रबाधन्ते वरदानसुनिर्भयाः ॥ १७ ॥ तैर्वध्यमानास्त्रिदशाः सर्षिसंघाः सचारणाः ॥ त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ॥ १८ ॥ अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ॥ ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ॥ १९ ॥ ओजस्तेजोबलवतां महतामात्मतेजसा ॥ गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ॥ २० ॥ अस्माकमपि तावत्त्वं गृहं कुरु महामते ॥ हिमवन्तमपाश्रित्य मेरुं मन्दरमेव वा ॥ महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ॥ २१ ॥ विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ॥ निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् ॥ २२ ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयस्तत्र सत्तमाः ॥ २३ ॥ शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेम्बुदसन्निभे ॥ शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशि ॥ २४ ॥ त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥ स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ॥ २५ ॥ मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥ तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुङ्गवाः ॥ २६ ॥ अमरावतीं समासाद्य सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ लङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः ॥ २७ ॥ भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥ २८ ॥ विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्ते राक्षसोत्तमाः ॥ सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन्पुरीम् ॥ २९ ॥ दृढप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्वृताम् ॥ लङ्कामवाप्य ते हृष्टा न्यवसन् रजनीचराः ॥ ३० ॥ ॥

अम्बुदसन्निभे मेघसमानरूपे मध्यमे शिखरे । शकुनैरपि दुष्प्राप इत्यत्र हेतुः टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशीति ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ अमरावतीमिति ॥ अमरावतीं समासाद्येति पदवशादक्षराधिक्यम् ॥ २७ ॥ २८ ॥ विश्वकर्मेति ॥ सहस्रमनेके अनुचरा येषां ते सहस्रानुचराः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ॥

॥ ३१ ॥ तस्या इति ॥ अराक्षसी राक्षसजातिर्व्यतिरिक्ता ॥ ३२ ॥ कन्या इति ॥ भगदैवतनक्षत्रमुत्तरफल्गुनी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु यथाकामं च राघव ॥ नर्मदा नाम गन्धर्वी बभूव रघुनन्दन ॥ ३१ ॥ तस्याः कन्यात्रयं ह्यासीत् धीश्रीकीर्तिसमद्युति ॥ ज्येष्ठक्रमेण सा तेषां राक्षसानामराक्षसी ॥ ३२ ॥ कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टा पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ॥ ३३ ॥ दत्ता मात्रा महाभागा नक्षत्रे भगदैवते ॥ कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयास्तदा ॥ ३४ ॥ चिक्रीडुः सह भार्याभिरप्सरोभिरिवामराः ॥ ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥ ३५ ॥ स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत् ॥ वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥३६॥ सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च ॥ अनला चाभवत्कन्या सुन्दर्यां राम सुन्दरी ॥३७॥ सुमालिनोपि भार्यासीत् पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ नाम्ना केतुमती नाम प्राणेभ्योपि गरीयसी ॥ ३८ ॥ सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः ॥ केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ॥३९॥ प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कालकार्मुकः ॥ धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः ॥ ४० ॥ संह्रादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः ॥ राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसी च शुचिस्मिता ॥ कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ॥ ४१ ॥ मालेस्तु वसुधा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी ॥ भार्यासीत्पद्मपत्राक्षी स्वक्षी यक्षीवरोपमा ॥ ४२ ॥ सुमालेरनुजस्तस्यां जनयामास यत्प्रभो ॥ अपत्यं कथ्यमानं तु मया त्वं शृणु राघव ॥ ४३ ॥ अनिलश्चानलश्चैव हरः सम्पातिरेव च ॥ एते बिभीषणामात्या मालेयास्तु निशाचराः ॥ ४४ ॥ ततस्तु ते राक्षसपुङ्गवास्त्रयो निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृताः ॥ सुरान्सहेन्द्रानृषिनागयक्षान् बबाधिरे तान् बहुवीर्यदर्पिताः ॥ ४५ ॥ ॥

॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अनिल इति ॥ मालेया इति “ इतश्च० ” इति ढक् ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥

जगदिति ॥ प्रशमंकरा इत्यार्षः खच् ॥ ४६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥ तैरित्यादि ॥ शरण्यानि शरणार्हाणि देवपित्रतिथिपशुपक्ष्यादिरक्षणार्हाणि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ इतीति ॥ समरे उद्धर्षो येषां ते समरोद्धर्षाः

जगद्भ्रमन्तोनिलवद्दुरासदा रणेषु मृत्युप्रतिमानतेजसः ॥ वरप्रदानादतिगर्विता भृशं क्रतुक्रियाणां प्रशमंकराः सदा ॥ ४६ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

तैर्वध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः ॥ भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम् ॥ १ ॥ जगत्सृष्ट्यन्तकर्तारमजमव्यक्तरूपिणम् ॥ आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम् ॥ २ ॥ ते समेत्य तु कामारिं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम् ॥ ऊचुः प्राञ्जलयो देवा भयगद्गदभाषिणः ॥ ३ ॥ सुकेशपुत्रैर्भगवन् पितामहवरोद्धतैः ॥ प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधनैः ॥ ४ ॥ शरण्यान्यशरण्यानि ह्याश्रमाणि कृतानि नः ॥ स्वर्गाच्च देवान्प्रच्याव्य स्वर्गे क्रीडन्ति देववत् ॥ ५ ॥ अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम् ॥ अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोहं रविरप्यहम् ॥६॥ इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसाः ॥ बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरस्सराः ॥ तन्नो देवभयार्तानामभयं दातुमर्हसि ॥७॥ अशिवं वपुरास्थाय जहि वै देवकण्टकान् ॥८॥ इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः कपर्दी नीललोहितः ॥ सुकेशं प्रति सापेक्षः प्राह देवगणान् प्रभुः ॥ ९ ॥ अहं तान्न हनिष्यामि मयाऽवध्या हि तेऽसुराः ॥ किंतु मन्त्रं प्रदास्यामि यो वै तान्निहनिष्यति ॥ १० ॥ एतमेव समुद्योगं पुरस्कृत्य महर्षयः ॥ गच्छध्वं शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान्प्रभुः ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

॥७॥ अशिवमिति ॥ आशिवमसौम्यं क्रूरमित्यर्थः ॥८॥ इत्युक्त इति ॥ सुकेशं प्रति सापेक्ष इति। सुकेशस्य स्वाश्रितत्वात्तत्पुत्रवधानौचित्य इत्याशङ्क्येत्यर्थः ॥९॥ प्रथमं रुद्रसमीपगमनं कृतोयमनर्थ इति द्योतयितुमाह—अहमिति ॥ मन्त्रमुपायम् ॥ १० ॥ एतामिति ॥ एतमेव समुद्योगमि-

ति । नतु कालान्तरीयमित्यर्थः । प्रभुर्ममापि प्रभुः ॥ ११ ॥ १२ ॥ शङ्खेति ॥ सम्भ्रान्तवत् संभ्रान्ताः सन्तः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ रा-

ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम् ॥ विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः ॥ १२ ॥ शङ्खचक्रधरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च ॥ ऊचुः संभ्रान्तवद्वाक्यं सुकेशतनयान् प्रति ॥ १३ ॥ सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्त्रेताग्निसन्निभैः ॥ आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः ॥ १४ ॥ लङ्का नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान्नः क्षणदाचराः ॥ १५ ॥ स त्वमस्मद्धितार्थाय जहि तान्मधुसूदन ॥ शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर ॥ १६ ॥ चक्रकृत्तास्यकमलान् निवेदय यमाय वै ॥ भयेष्वभयदोस्माकं नान्योस्ति भवता विना ॥ १७ ॥ राक्षसान् समरे दुष्टान् सानुबन्धान्मदोद्धतान् ॥ नुद त्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ॥ १८ ॥ इत्येवं दैवतैरुक्तं देवदेवो जनार्दनः ॥ अभयं भयदोरीणां दत्त्वा देवानुवाच ह ॥ १९ ॥ सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम् ॥ तांश्चास्य तनयान् जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ॥ २० ॥ तानहं समतिक्रान्तमर्यादान्राक्षसाधमान् ॥ निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः ॥ २१ ॥ इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ यथावासं ययुर्हृष्टाः प्रशंसन्तो जनार्दनम् ॥ २२ ॥ विबुधानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः ॥ श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥ अमरा ऋषयश्चैव संगम्य किल शंकरम् ॥ अस्मद्वधं परीप्सन्त इदं वचनमब्रुवन् ॥ २४ ॥ सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः ॥ बाधन्तेऽस्मान् समुद्वृत्ता घोररूपाः पदे पदे ॥ २५ ॥ राक्षसैरभिभूताः स्म न शक्ताः स्म प्रजापते ॥ स्वेषु सद्मसु संस्थातुं भयात्तेषां दुरात्मनाम् ॥ २६ ॥ ॥ ॥

क्षसानिति ॥ सानुबन्धाः सानुचराः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ सुकेशेति ॥ पदे पदे प्रतिक्षणमित्यर्थः ॥ २५ ॥ २६ ॥

॥ २७ ॥ इतीति ॥ शिरः करं च धुन्वान इति सुरोक्तस्यासह्यताद्योतनम् ॥ २८ ॥ अवध्या इति ॥ अवध्यत्वे हेतुः सुकेशतनया इति ॥

तदस्माकं हितार्थाय जहि तांश्च त्रिलोचन ॥ राक्षसान् हुंकृतेनैव दह प्रदहतां वर ॥ २७ ॥ इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः ॥ शिरः करं च धुन्वान इदं वचनमब्रवीत् ॥२८॥ अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे ॥ मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यस्तान्वै निहनिष्यति ॥ २९ ॥ योसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ॥ हरिर्नारायणः श्रीमान् शरणं तं प्रपद्यथ ॥ ३० ॥ हरादवाप्य ते मन्त्रं कामारिमभिवाद्य च ॥ नारायणालयं प्राप्य तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥ ३१ ॥ ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ सुरारींस्तान् हनिष्यामि सुरा भवत विज्वराः ॥ ३२ ॥ देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ ॥ प्रतिज्ञातो वधोस्माकं चिन्त्यतां यदिह क्षमम् ॥ ३३ ॥ हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषां च सुरद्विषाम् ॥ (नमुचिः कालनेमिश्च संह्रादो वीरसत्तमः ॥ ॥ ३४ ॥ राधेयो बहुमायी च लोकपालोथ धार्मिकः ॥ यमलार्जुनौ च हार्दिक्यः शुम्भश्चैव निशुम्भकः ॥ ॥ ३५ ॥ असुरा दानवाश्चैव सत्त्ववन्तो महाबलाः ॥ सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्तेऽपराजिताः ॥ ३६ ॥ सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वे मायाविदस्तथा ॥ सर्वे सर्वास्त्रकुशलाः सर्वे शत्रुभयंकराः ॥ ३७ ॥ नारायणेन निहताः शतशोथ सहस्रशः ॥ एतद् ज्ञात्वा तु सर्वेषां क्षमं कर्तुमिहार्हथ) ॥ ३८ ॥ ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः ॥ ऊचतुर्भ्रातरं ज्येष्ठं भगांशाविव वासवम् ॥ ३९ ॥ स्वधीतं दत्तमिष्टं चाप्यैश्वर्यं परिपालितम् ॥ आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः प्रापितः पथि ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तत इति ॥ भगांशाविव । भगः पूर्वफल्गुनीनक्षत्रदेवता । तदंशः अर्यमा उत्तरफल्गुनीनक्षत्रदेवता ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ४१ ॥ ४२ ॥ विष्णोरिति ॥ विष्णोर्द्वेषस्य कारणं नास्तीति । अस्माभिस्तदपकाराकरणादिति भावः ॥ ४३ ॥ तस्मादिति ॥ जिघांसाम इति स्वार्थे सन्नार्षः ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वाहनान्याह—स्यन्दनैरित्यादिना ॥ सृमरैः गवयैः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ लङ्केति ॥ लङ्काविपर्ययं लङ्काविनाशम् दृष्ट्वा यानि लङ्कानिलयानि भूतानि तत्रत्यानि दैवतानि विमनस्कान्यासन्निति शेषः ॥ ५० ॥ ५१ ॥ प्रयाता इति ॥ रक्षसां मार्गेण तद्यात्रया सहैवापचक्रमुः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

देवसागरमक्षोभ्यं शस्त्रैः समवगाह्य च ॥ जिता द्विषो ह्यप्रतिमास्तन्नो मृत्युकृतं भयम् ॥ ४१ ॥ नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा ॥ अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्वे बिभ्यति सर्वदा ॥ ४२ ॥ विष्णोर्देषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर ॥ देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः ॥ ४३ ॥ तस्माद्द्य समुद्युक्ताः सर्वसैन्यसमावृताः ॥ देवानेव जिघांसाम एभ्यो दोषः समुत्थितः ॥ ४४ ॥ एवं संमन्त्र्य बलिनः सर्वे सैन्यसमावृताः ॥ उद्योगं घोषयित्वा तु सर्वे नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ युद्धाय निर्ययुः क्रुद्धा जम्भवृत्रबला इव ॥ ४५ ॥ इति ते राम संमन्त्र्य सर्वोद्योगेन राक्षसाः ॥ युद्धाय निर्ययुः सर्वे महाकाया महाबलाः ॥ ४६ ॥ स्यन्दनैर्वारणैश्चैव हयैश्च गिरिसन्निभैः ॥ खरैर्गोभी रथोष्ट्रैश्च शिंशुमारैर्भुजंगमैः ॥ ४७ ॥ मकरैः कच्छपैर्मीनैर्विहङ्गैर्गरुडोपमैः ॥ सिंहैर्व्याघ्रैर्वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि ॥ ४८ ॥ त्यक्त्वा लङ्कां गताः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ॥ प्रयाता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः ॥ ४९ ॥ लङ्काविपर्ययं दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ॥ भूतानि भयदर्शीनि विमनस्कानि सर्वशः ॥ ५० ॥ रथोत्तमैरूह्यमानाः शतशोथ सहस्रशः ॥ ५१ ॥ प्रयाता राक्षसास्तूर्णं देवलोकं प्रयत्नतः ॥ रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्रमुः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

भौमाश्चेति ॥ कालाज्ञप्ताः कालप्रेरिताः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उत्पातानिति ॥ मृत्युपाशावपाशिताः संजातबन्धनाः ॥ ५८ ॥

(भूतानि भयदर्शीनि विषमस्थानि सर्वशः ॥) भौमाश्चैवान्तरिक्षाश्च कालाज्ञप्ता भयावहाः ॥ उत्पाता
राक्षसेन्द्राणामभावाय समुत्थिताः ॥ ५३ ॥ अस्थीनि मेघा ववृषुरुष्णं शोणितमेव च ॥ वेलां समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाप्यथ
भूधराः ॥ ५४ ॥ अट्टहासान्विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनाः ॥ वाश्यन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुणं
घोरदर्शनाः ॥ ५५ ॥ संपतन्त्यथ भूतानि दृश्यन्ते च यथाक्रमम् ॥ गृध्रचक्रं महच्चात्र ज्वलनोद्गारिभिर्मुखैः
॥ ५६ ॥ राक्षसानामुपरि खे भ्रमतेऽलातचक्रवत् ॥ कपोता रक्तपादाश्च शारिका विद्रुता ययुः ॥ काका वाश्यन्ति
तत्रैव बिडाला वै द्विपादयः ॥ ५७ ॥ [1]उत्पातांस्ताननादृत्य राक्षसा बलगर्विताः ॥ यान्त्येव न निवर्त्तन्ते मृत्युपाशावपाशिताः
॥ ५८ ॥ माल्यवांश्च सुमाली च माली च सुमहाबलाः ॥ आसन्पुरस्सरास्तेषां क्रतूनामिव पावकाः
॥ ५९ ॥ माल्यवन्तं च ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ॥ निशाचरा ह्याश्रयन्ति धातारमिव देवताः ॥ ६० ॥
तद्बलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ॥ जयेप्सया देवलोकं ययौ मालिवशे स्थितम् ॥ ६१ ॥ राक्षसानां
समुद्योगं तंतु नारायणः प्रभुः ॥ देवदूतादुपश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः ॥ ६२ ॥ स सज्जायुधतूणीरो वैनतेयोपरि
स्थितः ॥ आसज्य कवचं दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति ॥ ६३ ॥ आबध्य शरसंपूर्णे इषुधी विमले तदा ॥
श्रोणिसूत्रं च खड्गं च विमलं कमलेक्षणः ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गाख्यप्रवरायुधान् ॥ ६४ ॥ सुपर्णं गिरिसंकाशं
वैनतेयमथास्थितः ॥ राक्षसानामभावाय ययौ तूर्णतरं प्रभुः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥

माल्यवानिति ॥ माल्यवन्तं पर्वतम् ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ॥

---

[1] तानचिन्त्य महोत्पातान् राक्षसा बलदर्पिता इति पाठः ।

॥ ६६ ॥ ॥६७ ॥ सुपर्णेति ॥ नुन्नपक्षं क्षोभितबलम् । चलोपलमिति बहूव्रीहिः ॥ ६८ ॥ तत इति ॥ विग्रहः आकारः ॥ ६९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

सुपर्णपृष्ठे स बभौ श्यामः पीताम्बरो हरिः ॥ काञ्चनस्य गिरेः शृङ्गे सतडित्तोयदो यथा ॥ ६६ ॥ स सिद्धदेवर्षिमहोरगैश्च गन्धर्वयक्षैरुपगीयमानः ॥ समाससादासुरसैन्यशत्रूंश्चक्रासिशार्ङ्गायुधशङ्खपाणिः ॥ ६७ ॥ सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षं भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ॥ चचाल तद्राक्षसराजसैन्यं चलोपलं नील इवाचलेन्द्रः ॥ ६८ ॥ ततः शरैः शोणितमांसरूषितैर्युगान्तवैश्वानरतुल्यविग्रहैः ॥ निशाचराः संपरिवार्य माधवं वरायुधैर्निर्बिभिदुः सहस्रशः ॥ ६९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

नारायणगिरिं ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः ॥ ववर्षुः शरवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ॥ १ ॥ श्यामावदातस्तैर्विष्णुर्नीलैर्नक्तंचरोत्तमैः ॥ वृतोञ्जनगिरीवासीद्वर्षमाणैः पयोधरैः ॥ २ ॥ शलभा इव केदारं मशका इव पर्वतम् ॥ यथामृतघटं दंशा मकरा इव चार्णवम् ॥३॥ तथा रक्षोधनुर्मुक्ता वज्रानिलमनोजवाः ॥ हरिं विशन्ति स्म शरा लोका इव विपर्यये ॥ ४ ॥ स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजपृष्ठगाः ॥ अश्वारोहास्तथाश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे स्थिताः ॥ ॥ ५ ॥ राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरैः शक्त्यृष्टितोमरैः ॥ निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणायामा इव द्विजम् ॥ ६ ॥ निशाचरैस्ताड्यमाने मीनैरिव महोदधिः ॥ शार्ङ्गमायम्य दुर्धर्षो राक्षसेभ्योसृजच्छरान् ॥ ७ ॥ ॥

॥ १ ॥ श्यामेति ॥ श्यामः सन्नवदातः शुभ्रः श्यामावदातः निर्मल इत्यर्थः । अञ्जनगिरीवेति विभक्तिलोपः छान्दसः ॥ २ ॥ शलभा इति ॥ अमृतघटं मधुघटम् । दंशाः वनमक्षिकाः । तथेति ॥ वज्राः वज्रधारा इव स्थिताः अनिलमनोजवाश्च । विपर्यये संहारकाले हरिं लोकाः प्रजा इव ॥ ३ ॥ ४ ॥ स्यन्दनैरिति ॥ ५ ॥ राक्षसेन्द्रा इति ॥ हरिं निरुच्छ्वासं चक्रुः उच्छ्वासानवसरवन्तं कृतवन्तः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ॥

शरैरिति ॥ पूर्णायततया उत्सृष्टैः वज्रवक्त्रैः वज्रमिवाकुण्ठं वक्त्रं येषां तैः ॥ ८ ॥ ९ ॥ स इति ॥ अम्बुजः शङ्खः । सर्वप्राणेन सर्वबलेन । ध्मातः

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रवक्त्रैर्मनोजवैः ॥ चिच्छेद विष्णुर्निशितैः शतशोथ सहस्रशः ॥ ८ ॥ विद्राव्य शरवर्षेण वर्षवायुरिवोत्थितम् ॥ पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥ सोम्बुजो हरिणा ध्मातः सर्वप्राणेन शङ्खराट् ॥ ररास भीमनिह्रादस्त्रैलोक्यं व्यथयन्निव ॥ १० ॥ शङ्खराजरवः सोथ त्रासयामास राक्षसान् ॥ मृगराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ॥ ११ ॥ न शेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराभवन् ॥ स्यन्दनेभ्यश्च्युता वीराः शङ्खरावितदुर्बलाः॥ १२ ॥ शार्ङ्गचापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः॥ विदार्य तानि रक्षांसि सुपुङ्खा विविशुः क्षितिम् ॥ १३ ॥ भिद्यमानाः शरैः संख्ये नारायणकरच्युतैः ॥ निपेतू राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव ॥ १४ ॥ [1]व्रणानि परगात्रेभ्यो विष्णुचक्रकृतानि वै ॥ असृक् क्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारा इवाचलाः ॥ १५ ॥ शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा ॥ राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः॥ १६ ॥ तेषां शिरोधरान् धूताञ्छरध्वजधनूंषि च ॥ रथान् पताकास्तूणीरान् चिच्छेद स हरिः शरैः ॥ १७ ॥ सूर्यादिव करा घोरा ऊर्मयः सागरादिव ॥ पर्वतादिव नागेन्द्रा धारौघा इव चाम्बुदात् ॥ १८ ॥ तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः शरा नारायणेरिताः ॥ निर्धावन्तीषवस्तूर्णं शतशोथ सहस्रशः ॥ १९ ॥ शरभेण यथा सिंहाः सिंहेन द्विरदा यथा ॥ द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ॥ २० ॥ ॥ ॥

आध्मानितः ॥ १० ॥ ११ ॥ न शेकुरिति ॥ कुञ्जराभवन्नित्यार्षः सधिः । भवन्निति वा च्छेदः । शङ्खरावितेन शङ्खध्वनिना ॥ स्वार्थे णिः ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ तथेति ॥ शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः इत्येतद्विवृणोति—निर्धावन्तीति ॥ द्वीपिनः क्षुद्रव्याघ्राः ॥ १९ ॥ २० ॥

---

[1] व्रणैर्वज्रव्रणाकारैरधोक्षजशरोद्भवैरिति पाठः साधुः ।

द्वीपिनेति ॥ आखवो मूषिकाः ॥ २१ ॥ २२ ॥ राक्षसानामिति ॥ सुरराडिवेति इन्द्रस्य मेघनियन्तृत्वात्तथोक्तम् ॥ २३ ॥ नारायणेति ॥ राक्षसं रक्षःसंबन्धि

द्वीपिनेव यथा श्वानः शुना मार्जारका यथा ॥ मार्जारेण यथा सर्पाः सर्पेण च यथाखवः ॥ २१ ॥ तथा ते राक्षसाः
सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ द्रवन्ति द्राविताश्चान्ये शायिताश्च महीतले ॥ २२ ॥ राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः
॥ वारिजं पूरयामास तोयदं सुरराडिव ॥ २३ ॥ नारायणशरत्रस्तं शङ्खनादसुविह्वलम् ॥ ययौ लङ्काभिमुखं
प्रभग्नं राक्षसं बलम् ॥ २४ ॥ प्रभग्ने राक्षसबले नारायणशराहते ॥ सुमाली शरवर्षेण निववार रणे हरिम् ॥
॥ ३५ ॥ स तु तं छादयामास नीहार इव भास्करम् ॥ राक्षसाः सत्त्वसंपन्नाः पुनर्धैर्यं समादधुः ॥ २६ ॥ अथ
सोभ्यपतद्रोषाद्राक्षसो बलदर्पितः ॥ महानादं प्रकुर्वाणो राक्षसाञ्जीवयन्निव ॥ २७ ॥ उत्क्षिप्य लम्बाभरणं
धुन्वन् करमिव द्विपः ॥ ररास राक्षसो हर्षात्सतडित्तोयदो यथा ॥ २८ ॥ सुमालेर्नर्दतस्तस्य शिरो ज्वलितकुण्डलम्
॥ चिच्छेद यन्तुरश्वाश्च भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः ॥ २९ ॥ तैरश्वैर्भ्राम्यते भ्रान्तैः सुमाली राक्षसेश्वरः ॥
इन्द्रियाश्वैः परिभ्रान्तैर्धृतिहीनो यथा नरः ॥ ३० ॥ ततो विष्णुं महाबाहुं प्रापतन्तं रणाजिरे ॥ हते सुमालेरश्वैश्च
रथे विष्णुरथं प्रति ॥ ३१ ॥ माली चाभ्यद्रवद्युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ मालेर्धनुश्च्युता बाणाः कार्तस्वरविभूषिताः
॥ विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्चं पत्त्ररथा इव ॥ ३२ ॥ अर्द्यमानः शरैः सोथ मालिमुक्तैः सहस्रशः
॥ चुक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः ॥ ३३ ॥ ॥ अथ मौर्वीस्वनं श्रुत्वा भगवान्भूतभावनः ॥ मालिनं
प्रति बाणौघान् ससर्जारिनिषूदनः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ सुमालेरिति ॥ यन्तुः सारथेः। भ्रान्ताः नष्टसारथिकत्वादनवस्थितगतिका इत्यर्थः ॥ २९ ॥ तैरिति ॥ इन्द्रियार्थैरश्वैः धृतिहीनो नरः यथा तथा सुमाली बभ्रामेत्यर्थः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अथेति ॥ मौर्वीस्वनं श्रुत्वेत्यनेन मालिशिरस्याच्छिन्नगतिर्गम्यते ॥ ३४ ॥

त इति ॥ नागाः सर्पाः । सुधारसम् अमृतम् गरुडानीतम् ॥ ३५ ॥ मालिनमिति ॥ मालिमौलिं मालिमुकुटम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ गदयेति ॥ गरुडाः

ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शराः ॥ पिबन्ति रुधिरं तस्य नागा इव सुधारसम् ॥ ३५ ॥ मालिनं विमुखं कृत्वा शङ्खचक्रगदाधरः ॥ मालिमौलिं ध्वजं चापं वाजिनश्चाप्यपातयत् ॥ ३६ ॥ विरथस्तु गदां गृह्य माली नक्तंचरोत्तमः ॥ आपुप्लुवे गदापाणिर्गिर्यग्रादिव केसरी ॥ ३७ ॥ गदया गरुडेशानमीशानमिव चान्तकः ॥ ललाटदेशेऽभ्यहनद्वज्रेणेन्द्रो यथाचलम् ॥ ३८ ॥ गदयाभिहतस्तेन मालिना गरुडो भृशम् ॥ रणात्पराङ्मुखं देवं कृतवान्वेदनातुरः ॥ ३९ ॥ पराङ्मुखे कृते देवे मालिना गरुडेन वै ॥ उदतिष्ठन्महाञ्छब्दो रक्षसामभिनर्दताम् ॥ ॥ ४० ॥ रक्षसां रवतां रावं श्रुत्वा हरिहयानुजः ॥ ४१ ॥ तिर्यगास्थाय संक्रुद्धः पक्षीशे भगवान् हरिः ॥ पराङ्मुखोप्युत्ससर्ज मालेश्चक्रं जिघांसया ॥ ४२ ॥ तत्सूर्यमण्डलाभासं स्वभासा भासयन्नभः ॥ कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत् ॥ ४३ ॥ तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रकृत्तं विभीषणम् ॥ पपात रुधिरोद्गारि पुरा राहुशिरो यथा ॥ ४४ ॥ ततः सुरैः सुसंहृष्टैः सर्वप्राणसमीरितः ॥ सिंहनादरवोन्मुक्तः साधु देवेति वादिभिः ॥ ४५ ॥ मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि ॥ सबलौ शोकसंतप्तौ लङ्कामेव प्रधावितौ ॥ ४६ ॥ गरुडस्तु समाश्वस्तः सन्निवृत्य यथा पुरा ॥ राक्षसान्द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः ॥ ४७ ॥ चक्रकृत्तास्यकमला गदासंचूर्णितोरसः ॥ लाङ्गलग्लपितग्रीवा मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ॥ ४८ ॥ केचिच्चैवासिना च्छिन्नास्तथान्ये शरपीडिताः ॥ निपेतुरम्बरात्तूर्णं राक्षसाः सागराम्भसि ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥

पक्षिणः तदीशानं वैनतेयम् ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ रक्षसामिति ॥ हरिहयानुजः इन्द्रानुजः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तत इति ॥ सर्वप्राणसमीरितः सर्वबलेन प्रवर्तितः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

नारायणो बाणवराशनीभिर्विदारयामास धनुर्विमुक्तैः ॥ नक्तंचरान् मुक्तविधूतकेशान्यथाशनीभिः सतडिन्महाभ्राः॥५०॥ भिन्नातपत्रं पतमानमस्त्रं शरैरपध्वस्तविनीतवेषम् ॥ विनिस्सुतान्त्रं भयलोलनेत्रं बलं तदुन्मत्ततरं बभूव ॥५१॥ सिंहार्दितानामिव कुञ्जराणां निशाचराणां सहकुञ्जराणाम् ॥ रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः पुराणसिंहेन विमर्दितानाम् ॥५२॥ ते वार्यमाणा हरिबाणजालैः सबाणजालानि समुत्सृजन्तः ॥ धावन्ति नक्तंचरकालमेघा वायुप्रभिन्ना इव कालमेघाः ॥५३॥ चक्रप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षाः संचूर्णिताङ्गाश्च गदाप्रहारैः ॥ असिप्रहारैर्द्विविधा विभिन्नाः पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः ॥ ५४ ॥ विलम्बमानैर्मणिहारकुण्डलैर्निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ॥ निपात्यमानैर्ददृशे निरन्तरं निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ॥ ५५ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

हन्यमाने बले तस्मिन्पद्मनाभेन पृष्ठतः ॥ माल्यवान्सन्निवृत्तोथ वेलामेत्य इवार्णवः ॥ १ ॥ संरक्तनयनः कोपाच्चलन्मौलिर्निशाचरः ॥ पद्मनाभमिदं प्राह वचनं पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम् ॥ अयुद्धमनसो भीतानस्मान्हंसि यथेतरः ॥ ३ ॥ पराङ्मुखवधं पापं यः करोत्यसुरेतरः ॥ स हन्ता न गतःस्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

नारायण इति ॥ अशनीभिरित्यार्षो दीर्घः ॥ ५० ॥ भिन्नातपत्रमिति ॥ उन्मत्ततरम् अतिशयेन विस्मृतस्वपरविवेकम् ॥ ५१ ॥ सिंहार्दितानामिति ॥ पुराणसिंहेन नरसिंहेन ॥ ५२ ॥ त इति ॥ समुत्सृजन्तस्त्यक्तवन्तः ॥ ५३ ॥ चक्रप्रहारैरिति ॥ द्विविधया द्विप्रकारेण विभिन्नाः । खण्डिता इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

हन्यमान इत्यादि ॥ पृष्ठतः अनुद्रुत्येति शेषः ॥ १ ॥ २ ॥ नारायणेति ॥ यथोत्तरः क्षुद्रजन इव ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥

॥ ५ ॥ पराङ्मुखवधोक्तदोषः स्वप्रतिज्ञापालनपरस्य नास्तीत्याह–माल्यवन्तमिति ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९॥ १०॥ तत इति ॥ तामेव स्ववक्षोलग्नामेव ।

युद्धश्रद्धाथवा तेस्ति शङ्खचक्रगदाधर ॥ अहं स्थितोस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत्तव ॥ ५ ॥ माल्यवन्तं स्थितं दृष्ट्वा माल्यवन्तमिवाचलम् ॥ उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ॥ ६ ॥ युष्मत्तो भयभीतानां देवानां वै मयाऽभयम् ॥ राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ॥ ७ ॥ प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया ॥ सोहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ॥ ८ ॥ देवदेवं ब्रुवाणं तं रक्ताम्बुरुहलोचनम् ॥ शक्त्या बिभेद संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रो भुजान्तरे ॥ ९ ॥ माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ॥ हरेरुरसि बभ्राज मेघस्थेव शतह्रदा ॥ १० ॥ ततस्तामेव चोत्कृष्य शक्तिं शक्तिधरप्रियः ॥ माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ॥११॥ स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गोविन्दकरनिःसृता ॥ काङ्क्षन्ती राक्षसं प्रायान्माहेन्द्रीवाञ्जनाचलम् ॥ १२ ॥ सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभासावभासिते ॥ अपतद्राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः ॥ १३ ॥ तया भिन्नतनुत्राणः प्राविशद्विपुलं तमः ॥ माल्यवान्पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४ ॥ ततः कार्ष्णायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिर्वृतम् ॥ प्रगृह्याभ्यहनद्देवं स्तनयोरन्तरे दृढम् ॥१५॥ तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम् ॥ ताडयित्वा धनुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः ॥ १६ ॥ ततोम्बरे महान् च्छब्दः साधु साध्विति चोदितः ॥ आहत्य राक्षसो विष्णुं गरुडं चाप्यताडयत् ॥ १७ ॥ वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम् ॥ व्यपोहद्बलवान्वायुः शुष्कपर्णचयं यथा ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

शक्तिधरप्रियः सुब्रह्मण्यप्रियः । माहेश्वरार्चनं चिन्त्यम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ सेति ॥ हारभासा मुक्ताहारकान्त्या । कूटं शृङ्गम् ॥ १३ ॥ तयेति ॥ तमः मोहः ॥ १४ ॥ १५ ॥ तथेति ॥ रणे रक्तः रणप्रियः । मुष्टिना च ताडयित्वा अपक्रान्तः । पृष्ठत इति शेषः ॥ १६ ॥ १७ ॥ वैनतेय इति ॥ वा-

युः शुष्कपर्णं यथा व्यपोहति तथा पक्षपातेन राक्षसं व्यपौहत् ॥ १८ ॥ द्विजेन्द्रेति ॥ दृश्य दृष्ट्वा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ अशक्नुवन्त इति॥ सहपत्नयः सस्त्रीका इत्यर्थः ॥२२॥ सुमालिनमिति ॥ सालकटङ्कटे सालकटङ्कटा माल्यवदादीनां पितामही विद्युत्केशपत्नी तस्याः संबन्धी सालकटङ्कटः त-

द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम् ॥ सुमाली स्वबलैः सार्धं लङ्कामभिमुखो ययौ ॥ १९ ॥ पक्षवातबलोद्धूतो माल्यवानपि राक्षसः ॥ स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्कां ह्रिया वृतः ॥ २० ॥ एवं ते राक्षसास्तेन हरिणा कमलेक्षण ॥ बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवरनायकाः ॥ २१ ॥ अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं भयार्दिताः ॥ त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥ २२ ॥ सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम ॥ स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे ॥ २३ ॥ ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः ॥ सुमाली माल्यवान्माली ये च तेषां पुरस्सराः ॥ सर्वे तेभ्यो महाभाग रावणाद्बलवत्तराः ॥ २४ ॥ न चान्यो राक्षसान्हन्ता सुरारीन्देवकण्टकान् ॥ ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २५ ॥ भवान्नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः ॥ राक्षसान्हन्तुमुत्पन्नो ह्यजेयः प्रभुरव्ययः ॥ २६ ॥ नष्टधर्मव्यवस्थाता काले काले प्रजाकरः ॥ उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः ॥ २७ ॥ एषा मया तव नराधिप राक्षसानामुत्पत्तिरद्य कथिता सकला यथावत् ॥ भूयो निबोध रघुसत्तम रावणस्य जन्मप्रभावमतुलं ससुतस्य सर्वम् ॥२८॥ चिरात्सुमाली व्यचरद्रसातलं सराक्षसो विष्णुभयार्दितस्तदा ॥ पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली ततस्तु लङ्कामवसद्धनेश्वरः ॥ २९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टमः सर्गः ॥८॥

स्मिन्वंशे प्रख्यातवीर्याः । वृद्धाच्छाभाव आर्षः ॥ २३ ॥ य इति ॥ ये पौलस्त्या रावणादयो निहतास्तेभ्यः रावणाच्च माल्यवदादयो बलवत्तराः ॥ ॥ २४ ॥ तर्हि किं मे प्राशस्त्यं भवद्भिरुच्यत इति शङ्कायां तत्प्राशस्त्यमपि तवैवेत्याह—न चान्य इति ॥ राक्षसान्हन्तेति। स त्वम् ॥२५॥२६॥२७॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ ॥

कस्यचिदिति ॥ विना पद्मं पद्मं त्यक्त्वा स्थिताम् ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ किंकृतमिति ॥ राक्षसानां श्रेयः किंकृतं स्यात् केनोपायेन कृतं स्यात् । कथं वयं वर्धेमहीत्येवं चिन्तयामासेति योजना ॥ ६ ॥ पुत्रीति ॥ प्रत्याख्यानात् भीतैरस्माभिस्त्वं वरैर्न प्रतिगृह्यसे । प्रतिग्रहं न प्राप्नोषीत्यर्थः ॥ ७ ॥

[1]कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ॥ रसातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ॥ १ ॥ नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ॥ कन्यां दुहितरं गृह्य विना पद्ममिव श्रियम् ॥ २ ॥ राक्षसेन्द्रः स तु तदा विचरन्वै महीतलम् ॥ तदापश्यत्स गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम् ॥ ३ ॥ गच्छन्तं पितरं द्रष्टुं पुलस्त्यतनयं विभुम् ॥ तं दृष्ट्वाऽमरसंकाशं स्वच्छन्दं तपनोपमम् ॥ ४ ॥ रसातलं प्रविष्टः सन् मर्त्यलोकात्सविस्मयः ॥ इत्येवं[2] चिन्तयामास राक्षसानां महामतिः ॥ ५ ॥ किंकृतं श्रेय इत्येवं वर्धेमहि कथं वयम् ॥ अथाब्रवीत्सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥ ६ ॥ पुत्रि प्रदानकालोयं यौवनं तेतिवर्तते ॥ प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः प्रतिगृह्यसे ॥ ७ ॥ त्वत्कृते च वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः ॥ त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके ॥ कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ॥ ८ ॥ न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ॥ ९ ॥ मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ॥ कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १० ॥ सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्भवम् ॥ भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

त्वत्कृत इति ॥ यन्त्रिताः कृतप्रयासाः । धर्मबुद्धयः विवाहधर्मनिमित्तचिन्तावन्तः ॥ ८ ॥ कन्यापितृत्वस्य दुःखत्वमेव प्रदर्शयति—न ज्ञायत इति ॥ ९ ॥ अथ वरणानन्तरमपि विशिष्य दुःखहेतुत्वं कन्याया इत्याह—मातुरिति ॥ संशये स्थाप्य तिष्ठतीति । कथमस्याश्चारित्रभ्रंशो न भविष्यतीति कुलत्रयं चिन्ताकुलमेव सदा भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

---

[1] केनचित्त्वथ कालेनेति पाठः । [2] हितार्थं चिन्तयामासेति पाठः साधुः ।

॥ १२ ॥ १३ ॥ एतस्मिन्निति ॥ उपातिष्ठत् प्रदोषे अग्निहोत्रं कृतवानित्यर्थः ॥ १४ ॥ अविचिन्त्येति ॥ पितृगौरवात् पितरि बहुमानात् । चरणाधोमुखी चरणसमीपाधोमुखी । विलिखन्तीति चिन्तानुभावः ॥ १५ ॥ स त्विति ॥ कुतः कस्माद्देशात् । किं कार्यं मया कर्तव्यं कस्य हेतोः कस्मै प्रयो-

ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रि न संशयः ॥ तेजसा भास्करसमो यादृशोयं धनेश्वरः ॥ १२ ॥ सा तु तद्वचनं श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ॥ तत्रोपागम्य सा तस्थौ विश्रवा यत्र तप्यते ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः ॥ अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः ॥ १४ ॥ अविचिन्त्य तु तां वेलां दारुणां पितृगौरवात् ॥ उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ॥ विलिखन्ती मुहुर्भूमिमङ्गुष्ठाग्रेण भामिनी ॥ १५ ॥ स तु तां प्रेक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ अब्रवीत्परमोदारो दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ १६ ॥ भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता ॥ किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥ १७ ॥ एवमुक्ता तु सा कन्या कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ॥ आत्मप्रभावेन मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ॥ १८ ॥ किन्तु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात्पितुरागताम् ॥ कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥ १९ ॥ स तु गत्वा मुनिर्ध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम् ॥ ॥ २० ॥ सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि ॥ दारुणायां तु वेलायां यस्मात्त्वं मामुपस्थिता ॥ २१ ॥ शृणु तस्मात्सुतान् भद्रे यादृशान् जनयिष्यसि ॥ दारुणान्दारुणाकारान्दारुणाभिजनप्रियान् ॥ २२ ॥ प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान् क्रूरकर्मणः ॥ सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥ २३ ॥ ॥

जनाय ॥ १६ ॥ १७ ॥ एवमिति ॥ मे मतं त्वद्भर्तृकत्वाभिलाषित्वम् ॥ १८ ॥ तच्च वक्तुं लज्जावशादनुचितमिति सूचयित्वा वक्तुमुचितमाह—किन्त्विति ॥ १९ ॥ स त्विति ॥ कारणमागमनकारणम् ॥ २० ॥ तदेवाह—सुतेति ॥ २१ ॥ शृण्विति ॥ दारुणान् क्रूरस्वभावान् । दारुणाकारान् क्रूरवेषान् । दारुणाभिजनप्रियान् दारुणाभिजने क्रूरबन्धौ राक्षसरूपे प्रियं येषां तान् ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ तस्मिन्निति ॥ सज्वालकवलाः ज्वालारूपास्यान्तर्गतकवलाः । शिवाः वृद्धजम्बुकाः ॥ २९ ॥ ववर्षेति ॥

भगवन्नीदृशान्पुत्रांस्त्वत्तोहं ब्रह्मवादिनः ॥ नेच्छामि सुदुराचारान् प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ कन्यया त्वेवमुक्तस्तु विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥ उवाच कैकसीं भूयः पूर्णेन्दुरिव रोहिणीम् ॥ २५ ॥ पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने ॥ मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च भविष्यति ॥ २६ ॥ एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ॥ जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥ २७ ॥ दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ॥ २८ ॥ तस्मिञ्जाते तु तत्काले सज्वालकवलाः शिवाः ॥ क्रव्यादाश्चापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ॥ २९ ॥ ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खरनिस्वनाः ॥ प्रबभौ न च सूर्यो वै महोल्काश्चापतन्भुवि ॥ ३० ॥ चकम्पे जगती चैव ववुर्वाताः सुदारुणाः ॥ अक्षोभ्यः क्षुभितश्चैव समुद्रः सरितां पतिः ॥ ३१ ॥ अथ नामाकरोत्तस्य पितामहसमः पिता ॥ दशग्रीवः प्रसूतोयं दशग्रीवो भविष्यति ॥ ३२ ॥ तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ प्रमाणाद्यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥ ३३ ॥ ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृतानना ॥ बिभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥ ३४ ॥ तस्मिञ्जाते महासत्त्वे पुष्पवर्षं पपात ह ॥ ३५ ॥ नभःस्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणदंस्तदा ॥ वाक्यं चैवान्तरिक्षे च साधु साध्विति तत्तथा ॥ ३६ ॥ तौ तु तत्र महारण्ये ववृधाते महौजसौ ॥ कुम्भकर्णदशग्रीवौ लोकोद्वेगकरौ तदा ॥ ३७ ॥ कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन्धर्मवत्सलान् ॥ त्रैलोक्यं भक्षयन्नित्यासंतुष्टो विचचार ह ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

देवः पर्जन्यदेवः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तस्य त्विति ॥ यस्य प्रमाणाद्विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते नैवास्ति । प्रमाणभूतेष्विति शेषः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ताविति ॥ तत्र महारण्ये पितुराश्रमारण्ये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥

बिभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मे व्यवस्थितः॥ स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥ ३९ ॥ अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् ॥ आगतः पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण धनेश्वरः ॥ ४० ॥ तं दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ आगम्य राक्षसी तत्र दशग्रीवमुवाच ह ॥ ४१ ॥ पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसा वृतम् ॥ भ्रातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ॥ ४२ ॥ दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम ॥ यथा त्वमसि मे पुत्र भव वैश्रवणोपमः ॥ ४३ ॥ मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ अमर्षमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत्तदा ॥ ॥ ४४ ॥ सत्यं ते प्रतिजानामि भ्रातृतुल्योऽधिकोपि वा ॥ भविष्याम्योजसा चैव संतापं त्यज हृद्गतम् ॥ ४५ ॥ ततस्तेनैव कोपेन दशग्रीवः सहानुजः ॥ चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म तपसे धृतमानसः ॥ ४६ ॥ प्राप्स्यामि तपसा काममिति कृत्वाऽध्यवस्य च ॥ आगच्छदात्मसिद्ध्यर्थं गोकर्णस्याश्रमं शुभम् ॥ ४७ ॥ स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा तपश्चकारातुलमुग्रविक्रमः ॥ अतोषयच्चापि पितामहं विभुं ददौ स तुष्टश्च वराञ्जयावहान् ॥ ४८ ॥

इत्युत्तरश्रीरामायणे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथाब्रवीन्मुनिं रामः कथं ते भ्रातरौ वने ॥ कीदृशं तु तदा ब्रह्मंस्तपस्तेपुर्महाबलाः ॥ १ ॥ अगस्त्यस्त्वब्रवीत्तत्र रामं सुप्रीतमानसम् ॥ तांस्तान्धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ॥ २ ॥ कुम्भकर्णस्ततो यत्तो नित्यं धर्मपथे स्थितः ॥ तताप ग्रीष्मकाले तु पञ्चाग्नीन्परितः स्थितः ॥ ३ ॥ ॥ ॥

बिभीषण इति ॥ स्वाध्यायं नियतम् आहारः अहरहरिति स्वाध्यायनियताहारः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पुत्रेति ॥ आत्मानमीदृशं कुबेरवद्दिव्यवैभवरहितम्। दरिद्रमित्यर्थः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मेघेति ॥ वीरासनं नाम वामोरूपरि दक्षिणजङ्घां प्रतिष्ठाप्य स्थितिः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ पञ्चेति ॥ सूर्यं चैवेति चकारेण पूर्ववदेकपादस्थितिः

मेघाम्बुसिक्तो वर्षासु वीरासनमसेवत ॥ नित्यं च शिशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः ॥ ४ ॥ एवं वर्षसहस्राणि दश
तस्यातिचक्रमुः ॥ धर्मे प्रयतमानस्य सत्पथे निष्ठितस्य च ॥ ५ ॥ बिभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ॥
पञ्च वर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ६ ॥ समाप्ते नियमे तस्य ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पपात पुष्पवर्षं च क्षुभिताश्चापि
देवताः ॥ ७ ॥ पञ्च वर्षसहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तत ॥ तस्थौ चोर्ध्वशिरोबाहुः स्वाध्यायधृतमानसः ॥
॥ ८ ॥ एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ॥ दश वर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ॥ ९ ॥ दश वर्षसहस्राणि
निराहारो दशाननः ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः ॥ १० ॥ एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ॥
शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ॥ ११ ॥ अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ॥ छेत्तुकामे दशग्रीवे
प्राप्तस्तत्र पितामहः ॥ १२ ॥ पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः ॥ तव तावद्दशग्रीव प्रीतोस्मीत्यभ्यभाषत ॥
॥ १३ ॥ शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः ॥ तं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥१४॥ अथाब्रवीद्दशग्रीवः
प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ भगवन्प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद्भयम्
॥ नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह ॥ नास्ति
सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ॥ १७ ॥ एवमुक्ते तदा राम ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥ दशग्रीव उवाचेदं कृताञ्जलिरथाग्रतः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

समुच्चीयते ॥ ८ ॥ एवमिति ॥ स्वर्गस्थस्य देवस्य नन्दन इवेत्यनेन तपःप्रवृत्तिसंतोष उक्तः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥
॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ परमेति श्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मास्त्र-

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ अवध्योहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ॥ १९ ॥ नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित ॥ तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा ॥ उवाच वचनं देवः सह दैवैः पितामहः ॥ २१ ॥ भविष्यत्येवमेतत्ते वचो राक्षसपुङ्गव ॥ एवमुक्ता तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ २२ ॥ शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम ॥ हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयानघ ॥ २३ ॥ पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ॥ वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम् ॥ २४ ॥ छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद्यथेप्सितम् ॥ भविष्यति न संदेहो मद्वरात्तव राक्षस ॥ २५ ॥ एवं पितामहोक्तस्य दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ अग्नौ हुतानि शीर्षाणि पुनस्तान्युदितानि वै ॥ २६ ॥ एवमुक्ता तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः ॥ २७ ॥ बिभीषण त्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ॥ परितुष्टोस्मि धर्मात्मन् वरं वरय सुव्रत ॥ २८ ॥ विभीषणस्तु धर्मात्मा वचनं प्राह साञ्जलिः ॥ वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा रश्मिभिर्यथा ॥ २९ ॥ भगवन्कृतकृत्योहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ॥ प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत ॥ ३० ॥ परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ॥ अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन्प्रतिभातु मे ॥ ३१ ॥ या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च ॥ सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तु धर्मं च पालये ॥ ३२ ॥ एष मे परमोदार वरः परमको मतः ॥ न हि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम् ॥ ३३ ॥ पुनः प्रजापतिः प्रीतो बिभीषणमुवाच ह ॥ धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद्भविष्यति ॥ ३४ ॥ ॥ ॥

मन्त्रम् । पालये पालयेयम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अलब्धवरपूर्वेण पूर्वमलब्धवरेण कुम्भकर्णेन यत् भक्षणात्मकं कर्म कृतं तत् तस्मात् कारणात् वरलब्धः लब्धवरः स्यात् स्याद्यदि भुवनत्रयमपि भक्षयेदित्यर्थः ॥ ३९ ॥ वरव्याजेनेति ॥ मोहः अज्ञानम् । एवं मोहस्यैव प्रदाने अस्य च सन्नतिः शिक्षा भवेत् ॥ ४० ॥

यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ॥ नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा कुम्भकर्णाय वरं दातुमुपस्थितम् ॥ प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोब्रुवन् ॥ ३६ ॥ न तावत्कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ॥ जानीषे हि यथा लोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः ॥ ३७ ॥ नन्दनेप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ॥ अनेन भक्षिता ब्रह्मन् ऋषयो मानुषास्तथा ॥ ३८ ॥ अलब्धवरपूर्वेण यत्कृतं राक्षसेन तु ॥ तदेष वरलब्धः स्याद्भक्षयेद्भुवनत्रयम् ॥ ३९ ॥ वरव्याजेन मोहोस्मै दीयताममितप्रभ ॥ लोकानां स्वस्ति चैवं स्याद्भवेदस्य च सम्मतिः ॥ ४० ॥ एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्माऽचिन्तयत्पद्मसंभवः ॥ चिन्तिता चोपतस्थेस्य पार्श्वं देवी सरस्वती ॥ ४१ ॥ प्राञ्जलिः सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वती ॥ इयमस्म्यागता देव किं कार्यं करवाण्यहम् ॥ ४२ ॥ प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ॥ वाणि त्वं राक्षसेन्द्रास्ये भव यादेवतेप्सिता ॥ ४३ ॥ तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥ कुम्भकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मतः ॥ ४४ ॥ कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ॥ स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम् ॥ ४५ ॥ एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद्ब्रह्मा सुरैः समम् ॥ देवी सरस्वती चैव राक्षसं तं जहौ पुनः ॥ ४६ ॥ ब्रह्मणा सह देवेषु गतेषु च नभःस्थलम् ॥ विमुक्तोसौ सरस्वत्या स्वां संज्ञां च ततो गतः ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमिति ॥ अचिन्तयत् । देवीमिति शेषः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ प्रजापतिरिति ॥ भव या देवतेप्सिता । यादृग्रूपा दैवतैः काङ्क्षिता तादृशी भवेत्यर्थः ॥ ४३ ॥ तथेति ॥ प्रविष्टा सा देवतोक्तरूपा प्रविष्टेत्यर्थः ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ४८ ॥ अहमिति ॥ श्लेष्मातकवनं तत्प्रचुरं पितुस्तपोवनमित्यर्थः ॥ ४९ ॥ इति श्रीगो० मणिमुकुटा० उत्तरश्रीरामा०दशमः सर्गः ॥ १० ॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ ईदृशं किमिदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्च्युतम् ॥ ४८ ॥ अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतैः ॥ एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः ॥ श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन्सुखम् ॥ ४९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा चैतान्निशाचरान् ॥ उदतिष्ठद्भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥ १ ॥ मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः ॥ उदतिष्ठन् सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २ ॥ सुमाली सचिवैः सार्धं वृतो राक्षसपुङ्गवैः ॥ अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ दिष्ट्या ते वत्स संप्राप्तश्चिन्तितोयं मनोरथः ॥ यस्त्वं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान्वरमुत्तमम् ॥ ४ ॥ यत्कृते च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् ॥ तद्गतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥ ५ ॥ असकृत्तद्भयाद्भीताः परित्यज्य स्वमालयम् ॥ विद्रुताः सहिताः सर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम् ॥ ६ ॥ अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोचिता ॥ निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ॥ ७ ॥ यदि नामात्र शक्यं स्यात्साम्ना दानेन वानघ ॥ तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ॥ ८ ॥ त्वं तु लङ्केश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ॥ त्वया राक्षसवंशोयं निमग्नोपि समुद्भूतः ॥ सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महावल ॥ ९ ॥ अथाब्रवीद्दशग्रीवो मातामहमुपस्थितम् ॥ वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदृशम् ॥ १० ॥ साम्नापि राक्षसेन्द्रेण प्रत्याख्यातो गरीयसा ॥ किंचिन्नाह तदा रक्षो ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ ११ ॥ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ यत्कृत इति ॥ महद्विष्णुकृतं यद्भयं तन्निरस्तमित्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदीत्यादि॥ सामादिना लङ्का प्रचालयितुं यदि नाम शक्यं स्यात्तदा नः कार्यं भवेदित्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अदितिश्चेति ॥ सहिते हिते अन्योन्यानुरक्ते ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ नैतदिति ॥ विपर्ययं भ्रातृद्रोहरूपम् सुरासुरैराचरितं

कस्याचित्त्वथ कालस्य वसन्तं रावणं ततः ॥ उक्तवन्तं तथा वाक्यं दशग्रीवं निशाचरः ॥ १२ ॥ प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह सकारणम् ॥ १३ ॥ दशग्रीव महाबाहो नार्हस्त्वं वक्तुमीदृशम् ॥ सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं
वचो मम ॥ १४ ॥ अदितिश्च दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते हिते ॥ भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः ॥
॥ १५ ॥ अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥ दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्कश्यपस्यात्मसंभवान् ॥ १६ ॥ दैत्यानां
किल धर्मज्ञ पुरीयं सवनार्णवा ॥ सपर्वता मही वीर तेऽभवन्प्रभविष्णवः ॥ १७॥ निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना
प्रभविष्णुना ॥ देवानां वशमानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १८॥ नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम्
॥ सुरासुरैराचरितं तत्कुरुष्व वचो मम ॥ १९ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै
बाढमित्येव सोब्रवीत् ॥ २० ॥ स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यवान् ॥ वनं गतो दशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः ॥
॥ २१ ॥ त्रिकूटस्थः स तु तदा दशग्रीवो निशाचरः ॥ प्रेषयामास दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदम् ॥ २२ ॥
प्रहस्त शीघ्रं गच्छ त्वं ब्रूहि नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ वचसा मम वित्तेशं सामपूर्वमिदं वचः ॥ २३ ॥ इयं लङ्कापुरी राजन्
राक्षसानां महात्मनाम् ॥ त्वया निवेशिता सौम्य नैतद्युक्तं तवानघ ॥ २४ ॥ तद्भवान्यदि नो ह्यद्य दद्यादतुलविक्रम
॥ कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मश्चैवानुपालितः ॥ २५ ॥ स तु गत्वा पुरीं लङ्कां धनदेन सुरक्षिताम् ॥
अब्रवीत्परमोदारं वित्तपालमिदं वचः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मार्गम् ॥ १९ ॥ २० ॥ स त्विति ॥ तस्मिन्नहनि प्रहस्तोपदेशाहनि वनं श्लेष्मातकवनम् ॥२१॥ त्रिकुटस्थ इति ॥ त्रिकुटस्थो भूत्वा प्रहस्तं दूत्येन प्रेषयामास ॥ २२ ॥ प्रहस्तेति ॥ नैर्ऋतपुङ्गवं कुबेरम्। लङ्कायां पूर्वस्थितनैर्ऋताधिपत्यात् ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ ॥

॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ दशग्रीव इति ॥ बहुशोक्त इति संधिः छान्दसः ॥ ३८ ॥ स इति ॥

प्रेषितोहं तव भ्रात्रा दशग्रीवेण सुव्रत ॥ त्वत्समीपं महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वर ॥ २७ ॥ तच्छ्रूयतां महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ वचनं मम वित्तेश यद्ब्रवीति दशाननः ॥ २८ ॥ इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखैः पुरा ॥ भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ २९ ॥ तेन विज्ञाप्यते सोयं सांप्रतं विश्रवात्मज ॥ तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः ॥ ३० ॥ प्रहस्तादभिसंश्रुत्य देवो वैश्रवणो वचः ॥ प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥३१॥ दत्ता ममेयं पित्रा तु लङ्का शून्या निशाचरैः ॥ निवासिते च मे यक्षैर्दानमानादिभिर्गुणैः ॥३२॥ ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरं राज्यं च यन्मम ॥ तवाप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥ (अविभक्तं त्वया सार्धं राज्यं यच्चापि मे वसु) ॥ ३३ ॥ एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ३४ ॥ अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम् ॥ एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान्मम ॥ ३५ ॥ दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता ॥ मयात्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोसौ विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥ प्राञ्जलिं धनदं प्राह शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३७ ॥ दशग्रीवो महाबाहुरुक्तवान्मम सन्निधौ ॥ मया निर्भर्त्सितश्चासीद्बहुशोक्तः सुदुर्मतिः ॥ ३८ ॥ स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंसते च पुनः पुनः ॥ श्रेयोभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३९ ॥ वरप्रदानात्संमूढो मान्यामान्यान्स दुर्मतिः ॥ न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥ ४० ॥ तस्माद्गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम् ॥ निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्कां सहानुगः ॥ ४१ ॥ ॥ ॥

ध्वंसते ध्वस्तधर्मन्यायमर्यादो जायते ॥ ३९ ॥ वरप्रदानादिति ॥ मम शापात् । तन्मातृदर्शनकालकृतादिति शेषः ॥ ४० ॥ तस्मादिति ॥ निवासार्थं निवेशय निवेशनं पुरं कुरु ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ धनेश्वर इति ॥ शशिविमले गिरौ कैलासे । पुरीमलकाम् । अत्र छन्दोभङ्ग आर्षो ज्ञेयः ॥ ५२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी ॥ काञ्चनैः सूर्यसंकाशैः पङ्कजैः संवृतोदका ॥ ४२ ॥ कुमुदैरुत्पलैश्चैव तथान्यैश्च सुगन्धिभिः ॥ ४३ ॥ तत्र देवाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिन्नराः ॥ विहारशीलाः सततं रमन्ते सर्वदाश्रिताः ॥ ४४ ॥ न हि क्षमं तवानेन वैरं धनद रक्षसा ॥ जानीषे हि यथानेन लब्धः परमको वरः ॥ ४५ ॥ एवमुक्तो गृहीत्वाशु तद्वचः पितृगौरवात् ॥ सदारपुत्रः सामात्यः सवाहनधनो गतः ॥ ४६ ॥ प्रहस्तोथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत् ॥ प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम् ॥ ४७ ॥ शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः ॥ प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं प्रतिपालय ॥ ४८ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन महाबलः ॥ विवेश नगरीं लङ्कां भ्रातृभिः सबलानुगैः ॥ ४९ ॥ धनदेन परित्यक्तां सुविभक्तमहापथाम् ॥ आरुरोह स देवारिः स्वर्गं देवाधिपो यथा ॥ ५० ॥ स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा निवेशयामास पुरीं दशाननः ॥ निकामपूर्णा च बभूव सा पुरी निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ॥ ५१ ॥ धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्यगौरवान्न्यवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम् ॥ स्वलंकृतैर्भवनवरैर्विभूषितां पुरन्दरस्येव तदामरावतीम् ॥ ५२ ॥ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

राक्षसेन्द्रोभिषिक्तस्तु भ्रातृभ्यां सहितस्तदा ॥ ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत् ॥ १ ॥ स्वसारं कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम् ॥ ददौ शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय नामतः ॥ २ ॥ अथ दत्त्वा स्वयं रक्षो मृगयामटते स्म तत् ॥ तत्रापश्यत्ततो राम मयं नाम दितेः सुतम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥

॥ १ ॥ स्वसारमिति ॥ कालकेयाय कालकपुत्राय ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तस्यामिति ॥ वर्षं चतुर्दशसंख्याविशिष्टं वर्षं च गतमित्यर्थः ॥ ७ ॥ तस्या इति ॥ हेममयं पुरं हेमपुरम्। मायया विचित्र-

कन्यासहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः ॥ अपृच्छत्को भवानेको निर्मानुष्यमृगे वने ॥ अनया मृगशावाक्ष्या किमर्थं सह तिष्ठसि ॥ ४ ॥ मयस्त्वथाब्रवीद्राम पृच्छन्तं तं निशाचरम्॥ श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं मम ॥५॥ हेमा नामाप्सरा तात श्रुतपूर्वा यदि त्वया ॥ दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः ॥ ६ ॥ तस्यां सक्तमनास्तात पञ्च वर्षशतान्यहम् ॥ सा च दैवतकार्येण गता वर्षांश्चतुर्दश ॥ ७ ॥ तस्याः कृते च हेमायाः सर्वं हेममयं पुरम् ॥ वज्रवैडूर्यचित्रं च मायया निर्मितं मया ॥ ८ ॥ तत्राहमवसं दीनस्तया हीनः सुदुःखितः ॥ ९ ॥ तस्मात्पुराद्दुहितरं गृहीत्वा वनमागतः ॥ इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षौ विवर्धिता ॥ १० ॥ भर्त्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोस्मि मार्गितुम् ॥ कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ॥ ११ ॥ कन्या हि द्वे कुले नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ पुत्रद्वयं ममाप्यस्यां भार्यायां संबभूव ह ॥ १२ ॥ मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं यथा तत्त्वेन पृच्छतः ॥ १३ ॥ त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति ॥ एवमुक्तस्तु तद्रक्षो विनीतमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः ॥ मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत् ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः ॥ महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो हर्षमुपागतः ॥ दातुं दुहितरं तस्मै रोचयामास यत्र वै ॥ १६ ॥ करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा ॥ प्रहसन्प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः ॥ १७ ॥ ॥ ॥

निर्माणशक्त्या ॥ ८ ॥ ९ ॥ तस्मादिति ॥ तस्याः कुक्षौ । हेमाया गर्भ इत्यर्थः ॥ १० ॥ भर्तारमिति ॥ अस्या भर्त्तारं मार्गितुम् अनया प्राप्तोस्मि ॥ ११ ॥ १२ ॥ मायावीति ॥ मायावी च वालिना पलायितोत्रैव प्रविष्टो नाशित इति ज्ञेयम् ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥

इयं ममात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता ॥ कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥ बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोभ्यभाषत ॥ प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत्पाणिसंग्रहम् ॥ १९ ॥ स हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ॥ विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ॥ २० ॥ अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्भुताम् ॥ परेण तपसा लब्धां जघ्निवान् लक्ष्मणं यया ॥ २१ ॥ एवं स्वीकृतदारो वै लङ्कायाा ईश्वरः प्रभुः ॥ गत्वा तु नगरीं भार्ये भ्रातृभ्यां समुपाहरत् ॥ २२ ॥ वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ॥ तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत् ॥ २३ ॥ गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ॥ सरमां नाम धर्मज्ञां लेभे भार्यां बिभीषणः ॥ २४ ॥ तीरे तु सरसो वै तु संजज्ञे मानसस्य हि ॥ सरस्तदा मानसं तु ववृधे जलदागमे ॥ २५ ॥ मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाक्रन्दितं वचः ॥ सरो मा वर्धयस्वेति ततः सा सरमाभवत् ॥ २६ ॥ एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ॥ स्वां स्वां भार्यामुपागम्य गन्धर्वा इव नन्दने ॥ २७ ॥ ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥ स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते ॥ २८ ॥ जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ॥ रुदता सुमहान्मुक्तो नादो जलधरोपमः ॥ २९ ॥ जडीकृता च सा लङ्का तस्य नादेन राघव ॥ पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् ॥ ३० ॥ सोवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ॥ रक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः ॥ ३१ ॥ मातापित्रोर्महाहर्षं जनयन्रावणात्मजः ॥ ३२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इयमिति ॥ धृता धृतगर्भा । प्रसूतेत्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥ स हीति ॥ शापाभिज्ञ इति । दारुणप्रकृतिर्भविष्यतीति श्रुताशपवृत्तान्त इति भावः । पुलस्त्यशापश्चेत्केवलं कुलमेव बह्वमन्यतेत्यर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ सरमाशब्दं निर्वक्ति—तीरेत्यादि ॥ सरो मा वर्धयस्वेत्युक्त्या सरमेति नामासीत् । पृषोदरादित्वात्साधुः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इति श्रीगो॰मणि॰उत्तरश्रीरा॰द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

अथेत्यादि ॥ लोकेश्वरेण ब्रह्मणोत्सृष्टा प्रेषिता । रूपिणी मूर्ता ॥ १ ॥ २ ॥ विनियुक्ता इति ॥ विस्तीर्णं योजनमिति । तिर्यङ्मानेनेति शेषः । ततो द्विगुणमायतम् । युद्धकाण्डे योजनायतमित्युक्तं द्विगुणयोजनायतपरम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ वैडूर्येति ॥ किङ्किणीजालकं प्रान्तेषु किङ्किणीजालयुक्तम् ।

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् ॥ निद्रा समभवत्तीव्रा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥ १ ॥ ततो भ्रातरमासीनं
कुम्भकर्णोब्रवीद्वचः ॥ निद्रा मां बाधते राजन्कारयस्व ममालयम् ॥ २ ॥ विनियुक्तास्ततो राज्ञा शिल्पिनो
विश्वकर्मवत् ॥ विस्तीर्णं योजनं शुभ्रं ततो द्विगुणमायतम् ॥३॥ दर्शनीयं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे ॥
स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्र शोभितम् ॥ ४ ॥ वैडूर्यकृतसोपानं किङ्किणीजालकं तथा ॥ दान्ततोरणविन्यस्तं
वज्रस्फटिकवेदिकम् ॥ ५ ॥ मनोहरं सर्वसुखं कारयामास राक्षसः ॥ सर्वत्र सुखदं नित्यं मेरोः
पुण्यां गुहामिव ॥ ६ ॥ तत्र निद्रासमाविष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ बहून्यब्दसहस्राणि शयानो न प्रबुध्यते ॥
॥ ७ ॥ निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णे दशाननः ॥ देवर्षियक्षगन्धर्वान् संजघ्ने हि निरङ्कुशः ॥ ८ ॥ उद्यानानि
च चित्राणि नन्दनादीनि यानि च ॥ तानि गत्वा सुसंक्रुद्धो भिनत्ति स्म दशाननः ॥ ९ ॥ नदीं गज इव
क्रीडन्वृक्षान्वायुरिव क्षिपन् ॥ नगान्वज्र इवोत्सृष्टो विध्वंसयति राक्षसः ॥ १० ॥ तथावृत्तं तु विज्ञाय दशग्रीवं
धनेश्वरः ॥ कुलानुरूपं धर्मज्ञो वृत्तं संस्मृत्य चात्मनः ॥ ११ ॥ सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्रवणस्तदा ॥ लङ्कां
संप्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥

दान्तो दन्तविकारः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तथेति ॥ कुलानुरूपं वृत्तमिति । असक्तमिति शेषः ॥ ११ ॥ सौभ्रात्रेति ॥ हितं हितपरम् ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

स इति ॥ आगमनं प्रतीतिकार्यमिति शेषः ॥ १३ ॥ पृष्ट्वेति ॥ राज्ञः कुबेरस्य । तं दूतम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ राजन्निति ॥ उभयोरिति । उभयोर्मातापित्रोः । कुलस्याभिजनस्य तयोर्वृत्तस्य च सदृशं यथा तथा ॥ १७ ॥ साध्विति ॥ साधु सम्यक् । चारित्रसंग्रहः कृतश्चेदेतावदेव पर्याप्तम् । उक्तमर्थं विवृणोति–साध्वित्यादि । व्यवस्थानं व्यवस्थितिः । यदि शक्यत इत्युक्त्या ज्येष्ठतया नियोगबुद्धिर्व्यावर्तते ॥ १८ ॥ तस्य क्रूरत्वान्मायाचारित्रव्यवस्थानेन विना किं कृतमित्यत्राह–दृष्टमित्यादिना ॥ त्वत्तः त्वया । मम मया । समुद्योग इति । प्रतिक्रियाकरणायेति शेषः ॥ १९ ॥ निराकृत इति॥ रमणीयाः तोषणीयाः स्वबान्धवाः बाल्यादज्ञानादपराद्धाः त्वया कृतापराधा आसन्नित्यर्थः (?) ॥२०॥ अहमिति ॥ रौद्रं रुद्रप्रसादकव्रतम् । इदन्तु केदारव्रतमित्याहुः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

स गत्वा नगरीं लङ्कामाससाद बिभीषणम् ॥ मानितस्तेन धर्मेण पृष्टश्चागमनं प्रति ॥ १३ ॥ पृष्ट्वा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनां च बिभीषणः ॥ सभायां दर्शयामास तमासीनं दशाननम् ॥ १४ ॥ स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ जयेति वाचा संपूज्य तूष्णीं समभिवर्तत ॥ १५ ॥ तं तत्रोत्तमपर्यङ्के वरास्तरणशोभिते ॥ उपविष्टं दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥ राजन्वदामि ते सर्वं भ्राता तव यदब्रवीत् ॥ उभयोः सदृशं वीर वृत्तस्य च कुलस्य च ॥ १७ ॥ साधु पर्याप्तमेतावत्कृतश्चारित्रसंग्रहः ॥ साधुधर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ॥ १८ ॥ दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः ॥ देवतानां समुद्योगस्त्वत्तो राजन्मम श्रुतः ॥ ॥ १९ ॥ निराकृतश्च बहुशस्त्वयाहं राक्षसाधिप ॥ सापराधोपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ॥ २० ॥ अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम् ॥ रौद्रं वृत्तं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ॥ २१ ॥ तत्र देवो मया दृष्टः सह देव्या मया प्रभुः ॥ सव्यं चक्षुर्मया दैवात्तत्र देव्यां निपातितम् ॥ २२ ॥ का न्वियं स्यादिति शुभा न खल्वन्येन हेतुना ॥ रूपं ह्यनुपमं कृत्वा रुद्राणी तत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ व्रतमिति ॥ रोचयस्व स्वरुचितं कुरु ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ आगत्येति ॥ आगत्य स्वगृहमागत्य । मे स्थितेन मया । अधर्मः तव पापविनिश्चयः श्रुतः ॥ ३२ ॥ तदिति ॥ तदधर्मत्वाद्धेतोः । कुलदूषणादधर्मिष्ठसंसर्गान्निवर्तं निवर्तस्व

देव्या दिव्यप्रभावेन दग्धं सव्यं ममेक्षणम् ॥ रेणुध्वस्तामिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ॥ २४ ॥ ततोहमन्यद्विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम् ॥ तूष्णीं वर्षशतान्यष्टौ समाधारं महाव्रतम् ॥ २५ ॥ समाप्ते नियमे तस्मिंस्तत्र देवो महेश्वरः ॥ प्रीतः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ॥ २६ ॥ पैङ्गल्यं यदवाप्तं हि देव्या रूपनिरीक्षणात् ॥ प्रीतोस्मि तव धर्मज्ञ तपसा तेन सुव्रत ॥ २७ ॥ मया चैतद्व्रतं चीर्णं त्वया चैव धनाधिप ॥ तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद्व्रतमीदृशम् ॥ २८ ॥ व्रतं सुनिश्चयं ह्येतन्मया ह्युत्पादितं पुरा ॥ तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर ॥ २९ ॥ तपसा निर्जितश्चैव सखा मम भवानघ ॥ देव्या दग्धं प्रभावेन यच्च सव्यं तवेक्षणम् ॥ ३० ॥ एकाक्षिपिङ्गलेत्येवं नाम स्थास्यति शाश्वतम् ॥ एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञां च शंकरात् ॥ ३१ ॥ आगत्य च श्रुतोऽयं मे तव पापविनिश्चयः ॥ ३२ ॥ तदधर्मिष्ठसंयोगान्निवर्त कुलदूषणात् ॥ चिन्त्यते हि वधोपायः सर्षिसङ्घैः सुरैस्तव ॥ ३३ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ॥ हस्तौ दन्तांश्च संपीड्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३४ ॥ विज्ञातं ते मया दूत वाक्यं यस्य प्रभाषसे ॥ नैतत्त्वमसि नैवासौ भ्रात्रा येनासि चोदितः ॥ ३५ ॥ हितं नैष ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ॥ महेश्वरसखित्वं तु मूढ श्रावयसे किल ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ विज्ञातमिति ॥ वाक्यं विज्ञातमिति वाक्यतात्पर्यार्थो विज्ञात इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ हितमिति ॥ धनरक्षको मे हितमिति ब्रवीति । एतद्धि मे न हितं न सममनुचितं चेत्यर्थः । हे मूढ महेश्वरसखित्वं तद्रूपबलसंपत्तिं श्रावयसे किल ॥ ३६ ॥ ॥ ॥

न चेदमिति ॥ इदं न मर्षणीयं यत्त्वयाभिहितं भाषितं तदपि न मर्षणीयमित्यर्थः ॥ ३७ ॥ न हन्तव्य इति ॥ मम हृदयं गुरुः न हन्तव्य इति पूर्वमेव मन्यते स्म । तथापि तस्यैकस्य ते एषा मतिर्जायते । कृतशब्दार्थमाह—त्रीनिति ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ एतदिति ॥ तस्यैकस्य कृते

नचेदं क्षमणीयं मे यदेतद्भाषितं त्वया ॥ यदेतावन्मया कालं दूत तस्य तु मर्षितम् ॥ ३७ ॥ न हन्तव्यो गुरुर्ज्येष्ठो मयायमिति मन्यते ॥ तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः ॥ ३८ ॥ त्रीँल्लोकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितः ॥ ३९ ॥ एतन्मुहूर्तमेवाहं तस्यैकस्य तु वै कृते ॥ चतुरो लोकपालांस्तान् नयिष्यामि यमक्षयम् ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान् ॥ ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ ४१ ॥ एवं कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः ॥ त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ॥ ४२ ॥

इत्युत्तरश्रीरामायणे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

ततस्तु सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्यं बलोद्धतैः ॥ महोदरप्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ॥ १ ॥ धूम्राक्षेण च वीरेण नित्यं समरगृध्नुना ॥ संवृतः प्रययौ श्रीमान् क्रोधाल्लोकान्दहन्निव ॥ २ ॥ पुराणि स नदीः शैलान् वनान्युपवनानि च ॥ अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमागमत् ॥ ३ ॥ सन्निविष्टं गिरौ तस्मिन्राक्षसेन्द्रं निशम्य तु ॥ युद्धेत्यर्थकृतोत्साहं दुरात्मानं समन्त्रिणम् ॥४॥ यक्षा न शेकुः संस्थातुं प्रमुखे तस्य रक्षसः ॥ राज्ञो भ्रातेति विज्ञाय गता यत्र धनेश्वरः ॥ ५ ॥ ते गत्वा सर्वमाचख्युर्भ्रातुस्तस्य चिकीर्षितम् ॥ अनुज्ञाता ययुर्हृष्टा युद्धाय धनदेन ते ॥ ६ ॥ ततो बलानां संक्षोभो व्यवर्धत महोदधेः ॥ तस्य नैर्ऋतराजस्य शैलं संचालयन्निव ॥ ७ ॥ ॥

वधप्रसङ्ग इति शेषः ॥ ४० ॥ एवमिति ॥ एनं खड्गच्छिन्नमित्यर्थः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इति श्रीगो०मणि०उत्त०त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥
॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ यक्षा इति ॥ न शेकुरित्यत्र हेतुमाह—राज्ञो भ्रातेति ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ॥

॥ ८ ॥ स दृष्ट्वेति ॥ हर्षनादं सिंहनादम् ॥ ९ ॥ ये त्विति ॥ सहस्राणां यक्षाणामेकैकं सहस्रं प्रत्येकमयोधयन् ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

ततो युद्धं समभवद्यक्षराक्षससंकुलम् ॥ व्यथिताश्चाभवंस्तत्र सचिवा राक्षसस्य ते ॥ ८ ॥ स दृष्ट्वा तादृशं
सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः ॥ हर्षनादान्बहून् कृत्वा सक्रोधादभ्यधावत ॥ ९ ॥ ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा
घोरविक्रमाः ॥ तेषां सहस्रमेकैको यक्षाणां समयोधयत् ॥ १० ॥ ततो गदाभिर्मुसलैरसिभिः शक्तितोमरैः ॥
हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत ॥ ११ ॥ स निरुच्छ्वासवत्तत्र वध्यमानो दशाननः ॥ वर्षद्भिरिव जीमूतैर्धाराभिरवरुध्यत ॥ १२ ॥ न चकार व्यथां चैव यक्षशस्त्रैः समाहतः ॥ महीधर इवाम्भोदैर्धाराशतसमुक्षितः
॥ १३ ॥ स दुरात्मा समुद्यम्य कालदण्डोपमां गदाम् ॥ प्रविवेश ततः सैन्यं नयन्यक्षान्यमक्षयम् ॥ १४ ॥ स कक्षमिव
विस्तीर्णं शुष्केन्धनमिवाकुलम् ॥ वातेनाग्निरिवायत्तो यक्षसैन्यं ददाह तत् ॥ १५ ॥ तैस्तु तत्र महामात्यैर्महोदरशुकादिभिः
॥ अल्पावशेषास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदाः ॥ १६ ॥ केचित्समाहता भग्नाः पतिताः
समरक्षितौ ॥ ओष्ठांश्च दशनैस्तीक्ष्णैरदशन्कुपिता रणे ॥ १७ ॥ श्रान्ताश्चान्योन्यमालिङ्ग्य भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे ॥
सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह ॥ १८ ॥ हतानां गच्छतां स्वर्गं युद्ध्यतां पृथिवीतले ॥ प्रेक्षतामृषिसङ्घानां
न बभूवान्तरं दिवि ॥ १९ ॥ (भग्नांस्तु तान् समालक्ष्य यक्षेन्द्रांस्तु महाबलान् ॥ धनाध्यक्षो महाबाहुः प्रेषयामास
यक्षकान् ॥) ॥ २० ॥ एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्णबलवाहनः ॥ प्रेषितो न्यपतद्यक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः ॥ २१ ॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हतानामिति ॥ पृथिवीतले युध्यतां हतानामत एव स्वर्गस्थानां तथा व्योम्नि स्थित्वा युद्धं प्रेक्षतां प्रेक्षमाणानामृषिसंघानां च । दिवि आकाशे । अन्तरमवस्थातुमवकाशः न बभूव । व्योम्नि निबिडमभूदित्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥

---

१ संकोचकण्टक इति पाठः ।

॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ तेनैवेति ॥ भस्मीकृततनुरिति । रावणकृततोरणदण्डसमाहननेन चूर्णित इत्यर्थः ॥ २९ ॥ ३० ॥
इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ ॥ ॥

तेन[1] चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हतः ॥ पतितो भूतले शैलात्क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ २२ ॥ ससंज्ञस्तु मुहूर्तेन
स विश्रम्य निशाचरः ॥ तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुद्रुवे ॥ २३ ॥ ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैडूर्यरजसोक्षितम्
॥ मर्यादां प्रतिहाराणां तोरणान्तरमाविशत् ॥२४॥ तं तु राजन् दशग्रीवं प्रविशन्तं निशाचरम् ॥ सूर्यभानुरिति
ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत् ॥ २५ ॥ स वार्यमाणो यक्षेण प्रविवेश निशाचरः ॥ यदा तु वारितो राम न व्यतिष्ठत्
स राक्षसः ॥ २६ ॥ ततस्तोरणमुत्पाट्य तेन यक्षेण ताडितः ॥ रुधिरं प्रस्रवन् भाति शैलो धातुस्रवैरिव ॥ २७ ॥ स
शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः ॥ जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात्स्वयंभुवः ॥ २८ ॥ तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्तेनाभिताडितः
॥नादृश्यत तदा यक्षो भस्मीकृततनुस्तदा ॥२९॥ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षःपराक्रमम् ॥ ततो नदीर्गुहाश्चैव
विविशुर्भयपीडिताः ॥ त्यक्तप्रहरणाः शान्ता विवर्णवदनास्तदा ॥३०॥इत्युत्तरश्रीरा० चतुर्दशः सर्गः॥ १४॥
ततस्तान् लक्ष्यवित्रस्तान् यक्षेन्द्रांश्च सहस्रशः ॥ धनाध्यक्षो महायक्षं माणिचारमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ रावणं जहि
यक्षेन्द्र दुर्वृत्तं पापचेतसम् ॥ शरणं भव वीराणां यक्षाणां युद्धशालिनाम् ॥ २ ॥ एवमुक्तो महाबाहुर्माणिभद्रः सुदुर्जयः
॥ वृतो यक्षसहस्रैस्तु चतुर्भिः समयोधयत् ॥ ३ ॥ ते गदामुसलप्रासैः शक्तितोमरमुद्गरैः ॥ अभिघ्नन्तस्तदा
यक्षा राक्षसान् समुपाद्रवन् ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

ततस्तानित्यादि ॥ माणिचारः माणिभद्रः ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

---

१ तेन यक्षेण मारीचो विष्णुनेव समाहतः । पतितः पृथिवीं भेजे क्षीणपुण्य इवाम्बरात् ॥ इति च पाठः ।

॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ताडित इति ॥ ताडितः शक्तिताडितः । रावणः माणिभद्रं गदया मुकुटे प्राहरत् । तच्च मुकुटम् प्रहारात्पार्श्वमागतम् ॥ १४ ॥ तत इति ॥ संयुद्ध्यमानेन माणिभद्रेण विष्टब्धो निरुद्धः न व्यकम्पत ॥ १५ ॥ शङ्खपद्मसमावृतः शङ्खपद्मनिध्यभिमा-

कुर्वन्तस्तुमुलं युद्धं चरन्तः श्येनवल्लघु ॥ बाढं प्रयच्छन्नेच्छामि दीयतामिति भाषिणः ॥ ५ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ दृष्ट्वा तत्तुमुलं युद्धं परं विस्मयमागमन् ॥ ६ ॥ यक्षाणां तु प्रहस्तेन सहस्रं निहतं रणे ॥ महोदरेण चानिन्द्यं सहस्रमपरं हतम् ॥ ७ ॥ क्रुद्धेन च तदा राजन् मारीचेन युयुत्सुना ॥ निमेषान्तरमात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥ ८ ॥ क्व च यक्षार्जवं युद्धं क्व च मायाबलाश्रयम् ॥ रक्षसां पुरुषव्याघ्र तेन तेभ्यधिका युधि ॥ ९ ॥ धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ॥ मुसलेनोरसि क्रोधात्ताडितो न च कम्पितः ॥ १० ॥ ततो गदां समाविध्य माणिभद्रेण राक्षसः ॥ धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विह्वलः स पपात ह ॥ ११ ॥ धूम्राक्षं ताडितं दृष्ट्वा पतितं शोणितोक्षितम् ॥ अभ्यधावत संग्रामे माणिभद्रं दशाननः ॥ १२ ॥ तं क्रुद्धमभिधावन्तं माणिभद्रो दशाननम् ॥ शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुङ्गवः ॥ १३ ॥ ताडितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरद्रणे ॥ तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पार्श्वमागतम् ॥ १४ ॥ ततः संयुद्ध्यमानेन विष्टब्धो न व्यकम्पत ॥ तदाप्रभृति यक्षोसौ पार्श्वमौलिरिति स्मृतः ॥ (तस्मिंस्तु विमुखे यक्षे माणिभद्रे महात्मनि ॥) सन्नादः सुमहान् राजंस्तस्मिञ्शैलेभ्यवर्तत ॥ १५ ॥ ततो दूरात्प्रददृशे धनाध्यक्षो गदाधरः ॥ शुक्रप्रोष्ठपदाभ्यां च पद्मशङ्खसमावृतः ॥ १६ ॥ स दृष्ट्वा भ्रातरं संख्ये शापाद्विभ्रष्टगौरवम् ॥ उवाच वचनं धीमान् युक्तं पैतामहे कुले ॥ १७ ॥ यन्मया वार्यमाणस्त्वं नावगच्छसि दुर्मते ॥ पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यसे निरयं गतः ॥ १८ ॥

निदेवैः संवृतः । शुक्रप्रोष्ठपदाभ्यां च सह प्रददृशे । शुक्रप्रोष्ठपदौ मन्त्रिणौ ॥ १६ ॥ स इति ॥ शापात् पितृकृतदारुणत्वशापात् । विभ्रष्टगौरवः वन्दनादिप्रयोजकज्येष्ठगौरवरहितः । युक्तमिति । पैतामहे कुले उत्पत्तेरिति शेषः ॥ १७ ॥ यदिति ॥ अस्य फलं कुलाचारस्य फलं परिपाकं प्राप्य ॥ १८ ॥

॥१९॥ देवता इति ॥ धर्मयुक्तेन तव केन चिद्व्यापारेण त्वामिदानीं नाभिनन्दन्ति। धर्माभावात्त्वयि विमुखा भवन्तीत्यर्थः। येन देवतावैमुख्येन। त्वमीदृशं क्रूरं भावं नीतः सन्नाऽवबुध्यसे ॥२०॥ २१ ॥ अध्रुव इति ॥ तपसः आर्जनं संपादनम् ॥ २२॥ २३ ॥ २४ ॥ कस्यचिदिति ॥ दुर्बुद्धेर्बुद्धिरहितस्य कस्यापि पुरुषस्य। छन्दतः पितृमात्रादिसेवां विना स्वेच्छामात्रेण धीर्मतिः शुभमतिर्न हि जायते ॥ २५ ॥ २६ ॥ एवमिति ॥ एवं क्रूरकर्मा त्वं

यो हि मोहाद्विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः॥ स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ॥ १९ ॥ देवता नाभिनन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित् ॥ येन त्वमीदृशं भावं नीतः सन्नावबुध्यसे ॥ २० ॥ [1]मातरं पितरं यो हि आचार्यं चावमन्यते ॥स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः॥ २१ ॥ अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोर्जनम्॥ स पश्चात्तप्यते मूढो मृतो दृष्ट्वात्मनो गतिम् ॥ २२ ॥ धर्माद्राज्यं धनं सौख्यमधर्माद्दुःखमेव च ॥ तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात्पापं विसर्जयेत्॥२३॥पापस्यहि फलं दुःखं तद्भोक्तव्यमिहात्मना॥ तस्मादात्मापघातार्थं मूढः पापं करिष्यति ॥ २४ ॥ कस्यचिन्न हि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः ॥ यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥ २५॥ [2]बुद्धिरूपं फलं पुत्राञ्छौर्यं धीरत्वमेव च॥ प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥ २६ ॥एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी ॥ न त्वां समभिभाषिष्ये सद्वृत्तेष्वेष निर्णयः॥ २७॥ एवमुक्तास्ततस्तेन तस्यामात्याः [3]समाहताः ॥ मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥

निरयगामी भविष्यसि। यस्य ते ईदृशी मतिः तादृशं त्वां न समभिभाषिष्ये। दुर्वृत्तस्य विषये एष एव हि निर्णय इत्यर्थः ॥ २७ ॥ एवमुक्ता इति ॥ रावणवत् यूयमपसंभाष्या इत्युक्ता इत्यर्थः। समाहताः धनदेन ताडिताः ॥ २८॥ ॥ ॥

---

१ यो हि मातृपितृभ्रातॄनाचार्यानवमन्यते। इति पाठः। २ बुद्धि रूपं बलं वित्तं पुत्रान्माहात्म्यमेव च। प्राप्नुवन्ति नराः सर्वं स्वकृतैः पूर्वकर्मभिः ॥ इति पाठः। ३ समाहिताः। संक्रुद्धा राक्षसान् घोरान्निहन्युः संयुगे तदा॥ इति पाठः।

॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तत इति ॥ मायां प्रविष्टः अदृश्यत्वं प्राप्त इत्यर्थः । निधिभिर्दैवताभिः । धनदोच्छ्वासित इति संधिरार्षः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना ॥ गदयाभिहतो मूर्ध्नि न च स्थानात्प्रकम्पितः ॥ २९ ॥ ततस्तौ राम निघ्नन्तौ तदान्योन्यं महामृधे ॥ न विह्वलौ न च श्रान्तौ बभूवतुरमर्षणौ ॥ ३० ॥ आग्नेयमस्त्रं तस्मै स मुमोच धनदस्तदा ॥ राक्षसेन्द्रो वारुणेन तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ३१ ॥ ततो मायां प्रविष्टोसौ राक्षसीं राक्षसेश्वरः ॥ रूपाणां शतसाहस्रं विनाशाय चकार च ॥ ३२ ॥ व्याघ्रो वराहो जीमूतः पर्वतः सागरो द्रुमः ॥ यक्षो दैत्यस्वरूपी च सोदृश्यत दशाननः ॥ ३३ ॥ बहूनि च करोति स्म दृश्यन्ते न त्वसौ ततः ॥ प्रतिगृह्य ततो राम महदस्त्रं दशाननः ॥ ३४ ॥ जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविध्य महतीं गदाम् ॥ एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः ॥ ३५ ॥ कृत्तमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः ॥ ३६ ॥ ततः पद्मादिभिस्तत्र निधिभिः स तदावृतः ॥ धनदोच्छ्वासितस्तैस्तु वनमानीय नन्दनम् ॥ ३७ ॥ निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः ॥ पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम् ॥ ॥ ३८ ॥ काञ्चनस्तम्भसंवीतं वैडूर्यमणितोरणम् ॥ मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३९ ॥ मनोजवं कामगमं कामरूपं विहङ्गमम् ॥ मणिकाञ्चनसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ॥ ४० ॥ देवोपवाह्यमक्षय्यं सदा दृष्टिमनःसुखम् ॥ बह्वाश्चर्यं भक्तिचित्रं ब्रह्मणा परिनिर्मितम् ॥ ४१ ॥ निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम् ॥ न तु शीतं न चोष्णं च सर्वर्तुसुखदं शुभम् ॥ ४२ ॥ स तं राजा समारुह्य कामगं वीर्यनिर्जितम् ॥ जितं त्रिभुवनं मेने दर्पोत्सेकात्सुदुर्मतिः ॥ ४३ ॥ जित्वा वैश्रवणं देवं कैलासात्समवातरत् ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ निर्जित्येति ॥ जयलक्षणं जयचिह्नम् । ख्यापयन्तीति शेषः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ॥

॥ ४५ ॥ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥ ॥
स जित्वेत्यादि ॥ महासेनप्रसूतिं स्कन्दप्रसूतिस्थानम् । अपश्यदित्यादि पूर्वसर्गान्तोक्तसंक्षेपप्रपञ्चनम् ॥ १ ॥ २ ॥ स इति ॥ विष्टम्भितं रुद्राज्ञया

स्वतेजसा विपुलमवाप्य तं जयं प्रतापवान्विमलकिरीटहारवान् ॥ रराज वै परमविमानमास्थितो निशाचरः सदसि गतो यथानलः ॥ ४५ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ॥

स जित्वा धनदं राम भ्रातरं राक्षसाधिपः ॥ महासेनप्रसूतिं तद्ययौ शरवणं महत् ॥ १ ॥ अथापश्यद्दशग्रीवो रौक्मं शरवणं महत् ॥ गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ २ ॥ स पर्वतं समारुह्य कंचिद्रम्यवनान्तरम् ॥ अपश्यत्पुष्पकं तत्र राम विष्टम्भितं तदा ॥ ३ ॥ विष्टब्धं पुष्पकं दृष्ट्वा ह्यगमं कामगं कृतम् ॥ अचिन्तयद्राक्षसेन्द्रः सचिवैस्तैः समावृतः ॥ ४ ॥ किन्निमित्तं चेच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम् ॥ पर्वतस्योपरिष्ठस्य कर्मेदं कस्यचिद्भवेत् ॥ ५ ॥ ततोऽब्रवीत्तदा राम मारीचो बुद्धिकोविदः ॥ नेदं निष्कारणं राजन्पुष्पकं यन्न गच्छति ॥ ६ ॥ अथ वा पुष्पकमिदं धनदान्नान्यवाहनम् ॥ अतो निःष्पन्दमभवद्धनाध्यक्षविनाकृतम् ॥ ७ ॥ इति वाक्यान्तरे तस्य करालः कृष्णपिङ्गलः ॥ वामनो विकटो मुण्डी नन्दी ह्रस्वभुजो बली ॥ ८ ॥ ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्याऽनुचरोऽब्रवीत् ॥ नन्दीश्वरो वचश्चेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ॥ ९ ॥ निवर्तस्व दशग्रीव शैले क्रीडति शंकरः ॥ सुपर्णनागयक्षाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ १० ॥ सर्वेषामेव भूतानामगम्यः पर्वतः कृतः ॥ (तन्निवर्तस्व दुर्बुद्धे मा विनाशमवाप्स्यसि ॥) इति नन्दिवचः श्रुत्वा क्रोधात्कम्पितकुण्डलः ॥ ११ ॥ ॥

रुद्धसंचारम् । कामगं पुष्पकम् अगममिति राक्षसश्चिन्तयामासेत्यन्वयः ॥ ३ ॥ ४ ॥ किन्निमित्तमिति ॥ कस्य कस्य पुरुषस्य इदं कर्म भवेत् ॥
॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ पुष्पकस्येति ॥ गोपते हे वृषभपते रुद्र ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

रोषात्तु ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य सः ॥ कोयं शंकर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः ॥ १२ ॥ सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम् ॥ दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शंकरम् ॥ १३ ॥ तं दृष्ट्वा वानरमुखमवज्ञाय स राक्षसः ॥ प्रहासं मुमुचे तत्र सतोय इव तोयदः ॥ १४ ॥ तं क्रुद्धो भगवान्नन्दी शंकरस्यापरा तनुः ॥ अब्रवीत्तत्र तद्रक्षो दशाननमुपस्थितम् ॥ १५ ॥ यस्माद्वानररूपं मामवज्ञाय दशानन ॥ अशनीपातसंकाशमुपहासं प्रमुक्तवान् ॥ ॥ १६ ॥ तस्मान्मद्रूपसंपन्ना मद्वीर्यसमतेजसः ॥ उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥ १७ ॥ नखदंष्ट्रायुधाः क्रूरा मनःसंपातरंहसः ॥ युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः ॥ १८ ॥ ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं च पृथग्विधम् ॥ व्यपनेष्यन्ति संभूय सहामात्यसुतस्य च ॥ १९ ॥ किन्त्विदानीं मया शक्यं हन्तुं त्वां हे निशाचर ॥ न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः ॥ २० ॥ इत्युदीरितवाक्ये तु देवे तस्मिन्महात्मनि ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ २१ ॥ अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं महाबलः ॥ पर्वतं तु समासाद्य वाक्यमाह दशाननः ॥ २२ ॥ पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः ॥ तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ॥ २३ ॥ केन प्रभावेन भवो नित्यं क्रीडति राजवत् ॥ विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम् ॥ ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा ततो राम भुजान्विक्षिप्य पर्वते ॥ तोलयामास तं शैलं स शैलः समकम्पत ॥ २५ ॥ चालनात्पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः ॥ चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २६ ॥ ॥

---

१ किन्त्विदानीं मया कार्यं क्षन्तव्यं यन्निशाचर। इति पाठः।

॥ २७ ॥ पीडिता इति ॥ अधोगताः पर्वतस्याधोभागगताः भुजाः पीडिता आसन् ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ततो राम महादेवो[1] देवानां प्रवरो हरः ॥ पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया ॥ २७ ॥ पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्याधोगता भुजाः ॥ विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २८ ॥ रक्षसा तेन रोषाच्च भुजानां पीडनात्तदा ॥ मुक्तो विरावः सहसा त्रैलोक्यं येन कम्पितम् ॥ २९ ॥ मेनिरे वज्रनिष्पेषं तस्यामात्या युगक्षये ॥ तदा वर्त्मस्थचलिता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥ समुद्राश्चापि संक्षुब्धाश्चलिताश्चापि पर्वताः ॥ यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ ३१ ॥ अथ ते मन्त्रिणस्तस्य विक्रोशन्तमथाब्रुवन् ॥ तोषयस्व महादेवं नीलकण्ठमुमापतिम् ॥ ३२ ॥ तमृते शरणं नान्यं पश्यामोऽत्र दशानन ॥ स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरणं व्रज ॥ ३३ ॥ कृपालुः शंकरस्तुष्टः प्रसादं ते विधास्यति ॥ एवमुक्तस्तदामात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ ३४ ॥ सामभिर्विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य स दशाननः ॥ संवत्सरसहस्रं तु रुदतो रक्षसो गतम् ॥ ३५ ॥ ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्ठितः प्रभुः ॥ मुक्त्वा चास्य भुजान् राम प्राह वाक्यं दशाननम् ॥ ३६ ॥ प्रीतोऽस्मि तव वीर्यस्य शौण्डीर्याच्च दशानन ॥ शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः ॥ ३७ ॥ यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम् ॥ तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन्भविष्यसि ॥ ३८ ॥ देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले ॥ एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ॥ ३९ ॥ गच्छ पौलस्त्य विस्रब्धं पथा येन त्वमिच्छसि ॥ मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ४० ॥ एवमुक्तस्तु लङ्केशः शंभुना स्वयमब्रवीत् ॥ प्रीतो यदि महादेव वरं मे देहि याचतः ॥ ४१ ॥ ॥

॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ मया त्वमभ्यनुज्ञातः । पुष्पकेण गमनायेति शेषः ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ॥ ॥

---

१ महादेवः प्रहसन्वीक्ष्य तद्गतिम् । इति पाठः ।

॥४२॥मानुषानिति ॥ न गणे न गणयामि॥४३॥ वाञ्छितमिति॥ ब्रह्मदत्तदीर्घायुष्याद्यो भागः ततस्तस्माच्छेषमवशिष्टं वाञ्छितमिदानीमेव दुष्कर्मणा केनाप्यविनष्टं सेप्रयच्छ ॥ ४४ ॥ ददाविति ॥ आयुषश्चेति । ब्रह्मा दीर्घायुष्यस्त्वेतावान्तत्रास्यापमृत्यवो देवतादिभ्यः प्राप्ताः परिहृता भवन्तु । रामेण वध इति स्थित्वा मत्वेत्यर्थः ॥ ४५ ॥ दत्त्वेति ॥ इदं खड्गरूपास्त्रं नावज्ञेयम् । एकस्मिन्नपि दिने पूजौदासीन्यं न कर्तव्यमित्यर्थः । अवज्ञातं

अवध्यत्वं मया प्राप्तं देवगन्धर्वदानवैः ॥ राक्षसैर्गुह्यकैर्नागैर्ये चान्ये बलवत्तराः ॥ ४२ ॥ मानुषान्न गणे देव स्वल्पास्ते मम संमताः ॥ दीर्घमायुश्च मे प्राप्तं ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ॥ ४३ ॥ [1]वाञ्छितं चायुषः शेषं शस्त्रं त्वं च प्रयच्छ मे ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शंकरः ॥ ४४ ॥ ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम् ॥ आयुषश्चावशेषं च स्थित्वा भूतपतिस्तदा ॥ ४५ ॥ दत्त्वोवाच ततः शंभुर्नावज्ञेयमिदं त्वया ॥ अवज्ञातं यदि हि ते मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ४६ ॥ एवं महेश्वरेणैव कृतनामा स रावणः ॥ अभिवाद्य महादेवमारुरोहाथ पुष्पकम् ॥ ४७ ॥ ततो महीतले राम परिचक्राम रावणः ॥ क्षत्रियान् सुमहावीर्यान् बाधमान इतस्ततः ॥ ४८ ॥ केचित्तेजस्विनः शूराः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ तच्छासनमकुर्वन्तो विनेशुः सपरिच्छदाः ॥ ४९ ॥ अपरे दुर्जयं रक्षो जानन्तः प्राज्ञसंमताः ॥ जिताः स्म इत्यभाषन्त राक्षसं बलदर्पितम् ॥ ५० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥

अथ राजन्महाबाहुर्विचरन्स महीतले ॥ हिमवत्सानुमासाद्य परिचक्राम रावणः ॥ १ ॥ तत्रापश्यत्स वै कन्यां कृष्णाजिनजटाधराम् ॥ आर्षेण विधिना चैनां दीप्यन्तीं देवतामिव ॥ २ ॥ ॥ ॥

यदि ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥

अथ राजन्नित्यादि ॥ आर्षेण विधिना तपोनुष्ठानेन ॥ १ ॥ २ ॥ ॥ ॥

---

[1] वाञ्छिस्यायुषः शिष्टं शस्त्रं च त्वं प्रयच्छ मे । इति पाठः साधुः ।

स इति ॥ प्रहसन्निति । दुर्लभकन्यालाभात्प्रहासः ॥ ३ ॥ किमिति ॥ इदं प्रतिक्रिया ॥ इदं यौवनप्रतिकूलक्रिया ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

स दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् ॥ काममोहपरीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ॥ ३ ॥ किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते ॥ न हि युक्ता तवैतस्य रूपस्य तपसः क्रिया ॥ ४ ॥ रूपं तेऽनुपमं भीरु कामोन्मादकरं नृणाम् ॥ न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णयः ॥ ५ ॥ कस्यासि किमिदं भद्रे कश्च भर्ता वरानने ॥ येन संभुज्यसे भीरु स नरः पुण्यभाग्भुवि ॥ ६ ॥ पृच्छतः शंस मे सर्वं कस्य हेतोः परिश्रमः ॥ एवमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यशस्विनी ॥ ७ ॥ अब्रवीद्विधिवत्कृत्वा तस्यातिथ्यं तपोधना ॥ कुशध्वजो मम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ॥ बृहस्पतिसुतः श्रीमान्बुद्ध्या तुल्यो बृहस्पतेः ॥ ८ ॥ तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः ॥ संभूय वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ॥ ९ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ तेऽपि गत्वा हि पितरं वरणं रोचयन्ति मे ॥ १० ॥ न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान्राक्षसर्षभ ॥ कारणं तद्वदिष्यामि निशाचर निशामय ॥ ११ ॥ पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः ॥ अभिप्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ॥ १२ ॥ दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः ॥ दम्भुर्नाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ॥ १३ ॥ तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ॥ १४ ॥ ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ॥ परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥ ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति ॥ करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुद्वहे ॥ १६ ॥ इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तपः ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुङ्गव ॥ १७ ॥ नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात् ॥ आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ॥ विज्ञातस्त्वं हि मे राजन् गच्छ पौलस्त्यनन्दन ॥ १८ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १९ ॥ २० ॥ अवलिप्तेति ॥ वृद्धानामिति । पुण्यसंचयः पुण्यसंग्रहणं वृद्धानामेव भ्राजते नतु बालयूनोः॥२१॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

जानामि तपसा सर्वं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १९ ॥ सोऽब्रवीद्रावणो भूयस्तां कन्यां सुमहाव्रताम् ॥ अवरुह्य विमानाग्रात्कन्दर्पशरपीडितः ॥ २० ॥ अवलिप्तासि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी ॥ वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते पुण्यसंचयः ॥ २१ ॥ त्वं सर्वगुणसंपन्ना नार्हसे वक्तुमीदृशम् ॥ त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवनं ते निवर्तते ॥ २२ ॥ अहं लङ्कापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः ॥ तस्य मे भव भार्या त्वं भुङ्क्ष्व भोगान्यथासुखम् ॥ २३ ॥ कश्च तावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे ॥ वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ॥ न मया स समो भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने ॥ २४ ॥ इत्युक्तवति तस्मिंस्तु वेदवत्यथ साब्रवीत् ॥ २५॥ मा मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ॥ त्रैलोक्याधिपतिं विष्णुं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ त्वदृते राक्षसेन्द्रान्यः कोऽवमन्येत बुद्धिमान् ॥ २६ ॥ एवमुक्तस्तया तत्र वेदवत्या निशाचरः ॥ मूर्धजेषु तदा कन्यां कराग्रेण परामृशत् ॥ २७ ॥ ततो वेदवती क्रुद्धा केशान्हस्तेन साच्छिनत् ॥ असिर्भूत्वा करस्तस्याः केशांश्छिन्नांस्तदाकरोत् ॥ २८ ॥ सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम् ॥ उवाचाग्निं समाधाय मरणाय कृतत्वरा ॥ २९ ॥ धर्षितायास्त्वयाऽनार्य न मे जीवितमिष्यते ॥ रक्षस्तस्मात्प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ॥ ३० ॥ यस्मात्तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ॥ तस्मात्तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः ॥ ३१ ॥ न हि शक्यं स्त्रिया हन्तुं पुरुषः पापनिश्चयः ॥ शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ॥ ३२ ॥ यदि त्वस्ति मया किंचित्कृतं दत्तं हुतं तथा ॥ तस्मात्त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३४ ॥ ३५ ॥ पूर्वमित्यादि ॥ वेदवत्या यः शत्रुः क्रोधाहितः सोसौ शैलाभः शत्रू रावणः पुनस्तथैव यथाप्रतिज्ञं पतिं च प्राप्तया पतिभूतस्य तव मानुषं वीर्यमुपाश्रयित्वा अद्य निहतः ॥ ३६ ॥ एवमित्यादि ॥ उत्पत्स्येयम् । व्यत्यय आर्षः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलितं जातवेदसम् ॥ पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः ॥ ३४ ॥ (पुनरेव[1] समुद्भूता पद्मे पद्मसमप्रभा ॥ तस्मादपि पुनः प्राप्ता पूर्ववत्तेन रक्षसा ॥ १ ॥ कन्यां कमलगर्भाभां प्रगृह्य स्वगृहं ययौ ॥ प्रगृह्य रावणस्त्वेतां दर्शयामास मन्त्रिणे ॥ २ ॥ लक्षणज्ञो निरीक्ष्यैव रावणं चैवमब्रवीत् ॥ गृहस्थैषा हि सुश्रोणी त्वद्वधायैव दृश्यते ॥ ३ ॥ एतच्छ्रुत्वार्णवे राम तां प्रचिक्षेप रावणः ॥ सा चैव क्षितिमासाद्य यज्ञायतनमध्यगा ॥ ४ ॥ राज्ञो हलमुखोत्कृष्टा पुनरप्युत्थिता सती ॥) सैषा जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो ॥ तव भार्या महाबाहो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ॥ ३५ ॥ पूर्वं[2] क्रोधाहितः शत्रुर्ययाऽसौ निहतस्तथा ॥ उपाश्रयित्वा शैलाभस्तव वीर्यममानुषम् ॥ ३६ ॥ एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पतस्यते पुनः ॥ क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ॥ ३७ ॥ एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत्कृते युगे ॥ त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः ॥ ३८ ॥ उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः ॥ (सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते ॥) ॥ ३९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः ॥ पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥ ॥

प्रविष्टायामित्यादि ॥ उशीरबीजमिति देशनाम ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

---

[1] अत्र व्याख्यानाभावादर्धाधिकाश्चत्वारः श्लोकाः प्रक्षिप्ता इति केचिद्वदन्ति । [2] पूर्वं क्रोधहतः शत्रुर्ययाऽसौ निहतस्त्वया ॥ इति पाठः प्रथितः ।

॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ अकुतूहलेति ॥ अकुतूहलभावेन मां दृष्ट्वाऽप्यविस्मयनिर्भयानादरभवेनेत्यर्थः । यो नावगच्छसि तस्य

ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः ॥ उशीरबीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः ॥ २ ॥ संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिः
साक्षाद् भ्राता बृहस्पतेः ॥ याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा देवास्तु तद्रक्षो वरदानेन दुर्जयम् ॥
तिर्यग्योनिं समाविष्टास्तस्य दर्शनभीरवः ॥ ४ ॥ इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः ॥ कृकलासो धनाध्यक्षो
हंसश्च वरुणोऽभवत् ॥ ५ ॥ अन्येष्वपि गतेष्वेवं देवेष्वरिनिषूदन ॥ रावणः प्राविशद्यज्ञं सारमेय इवाशुचिः
॥ ६ ॥ तं च राजा समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ॥ प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोस्मीति वा वद ॥ ७ ॥
ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम् ॥ अपहासं ततो मुक्त्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥ अकुतूहलभावेन
प्रीतोस्मि तव पार्थिव ॥ धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥ त्रिषु लोकेषु कोऽन्योस्ति यो न
जानाति मे बलम् ॥ भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ॥ ततो मरुत्तः स नृपस्तं रावणमथाब्रवीत् ॥
॥ १० ॥ धन्यः खलु भवान्येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ॥ न त्वया सदृशः श्लाघ्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ११ ॥
नाधर्मसहितं श्लाघ्यं तल्लोकं प्रतिसंहितम् ॥ कर्म दौरात्म्यकं कृत्वा श्लाघ्यसे भ्रातृनिर्जयात् ॥ १२ ॥ कं त्वं प्राक्केवलं
धर्मं चरित्वा लब्धवान्वरम् ॥ श्रुतपूर्वं हि न मया भाषसे यादृशं स्वयम् ॥ १३ ॥ तिष्ठेदानीं न मे जीवन्प्रतियास्यसि
दुर्मते ॥ अद्य त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ १४ ॥ ततः शरासनं गृह्य सायकांश्च नराधिपः ॥
रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥

तवेत्यन्वयः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ कं त्वमिति ॥ प्राक् पूर्वम् । त्वं केवलं धर्मं दोषहीनं धर्मं चरित्वा किमपि वरं लब्धवानिति श्रुतपूर्वम् । इदानीं यादृशं भ्रातृविजयरूपमधर्मं भाषसे तन्न श्रुतपूर्वमित्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ तत इति ॥ मार्गमावृणोत् । निर्यातस्येति शेषः ॥ १५ ॥

स इति ॥ महानृषिः । तत्पुरोहित इत्यर्थः॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ रावण इति ॥ स्वां योनिं स्वस्वप्रकृतिमासाद्य । तानि सत्त्वानि । प्राक्कार्यवशगृहीतमूर्तिसजातीयप्राणिन इत्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥ इदमिति ॥ प्रीतिलक्षणां मत्प्रीतिचिह्नभूताम् ॥ २४ ॥ नीला इति ॥ नीलाः किलेति ।

सोब्रवीत्स्नेहसंयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः ॥ श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं संप्रहारो न ते क्षमः ॥ १६ ॥ माहेश्वरमिदं सत्रमसमाप्तं
कुलं दहेत् ॥ १७॥ दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ॥ संशयश्च जये नित्यं राक्षसश्च सुदुर्जयः
॥ १८ ॥ स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुत्तः पृथिवीपतिः ॥ विसृज्य सशरं चापं स्वस्थो मखमुखोऽभवत् ॥१९॥
ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः ॥ रावणो जयतीत्युच्चैर्हर्षान्नादं विमुक्तवान् ॥ २० ॥ तान् भक्षयित्वा
तत्रस्थान्महर्षीन्यज्ञमागतान् ॥ वितृप्तो रुधिरैस्तेषां पुनः संप्रययौ महीम् ॥२१॥ रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव
दिवौकसः ॥ ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वानि चाब्रुवन् ॥ २२ ॥ हर्षात्तदाऽब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलबर्हिणम्
॥ प्रीतोस्मि तव धर्मज्ञ [२]भुजङ्गाद्धि न ते भयम् ॥ २३ ॥ इदं नेत्रसहस्रं तु यत्त्वद्बर्हे भविष्यति ॥ वर्षमाणे मयि मुदं
प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणाम् ॥ एवमिन्द्रो वरं प्रादान्मयूरस्य सुरेश्वरः॥२४॥ नीलाः किल पुरा बर्हा मयूराणां नराधिप
॥ सुराधिपाद्वरं प्राप्य गताः सर्वेपि बर्हिणः ॥ २५ ॥ धर्मराजोब्रवीद्राम प्राग्वंशे वायसं स्थितम् ॥ पक्षिंस्तवास्मि
सुप्रीतः प्रीतस्य वचनं शृणु ॥ २६ ॥ यथान्यैर्विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ॥ ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते
न संशयः ॥ २७ ॥ मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान्मम विहंगम ॥ यावत्त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद्भविष्यसि ॥ २८ ॥

नेत्ररहिता इत्यर्थः ॥ २५ ॥ धर्मराज इति ॥ प्राग्वंशे यज्ञशालादारुणि ॥ २६ ॥ यथेति ॥ ते तव । ते रोगाः । न प्रभविष्यन्ति । प्रीते इति च्छेदः ॥ २७ ॥ मृत्युत इति ॥ "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः" इत्यशक्यपरिहारत्वादाह—यावत्त्वामित्यादि ॥ २८ ॥ ॥ ॥

---

१ उपकाराद्विहंगमेति पाठः ।

एत इति॥ मद्विषयस्थाः यमलोकस्थाः॥२९॥३०॥३१॥ मच्छरीरमिति ॥ मच्छरीरं जलमूर्तिम् ॥ ३२ ॥ हंसानामिति ॥ क्रोडः भुजान्तरम् । शष्पाग्रनिर्मलाः बालतृणाग्रवन्निर्मलाः । कोमलश्यामवर्णा इत्यर्थः ॥३३॥ ३४ ॥ सद्रव्यमिति ॥ एतदेवाह—एष काञ्चनक इति ॥ ३५ ॥ स्वभवनमिति । मरुत्तेन

एते मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुद्भयार्दिताः ॥ त्वयि भुक्ते तु तृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥ २९ ॥ वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविहारिणम् ॥ श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं वचः पत्त्ररथेश्वर ॥ ३० ॥ वर्णो मनोहरः सौम्य चन्द्रमण्डलसन्निभः ॥ भविष्यति तवोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥ ३१ ॥ मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ॥ प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥ ३२ ॥ हंसानां हि पुरा राम नीलवर्णः[1] सपाण्डुरः ॥ पक्षा नीलाग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ॥ ३३ ॥ अथाब्रवीद्वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम् ॥ हैरण्यं संप्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥ ३४ ॥ सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ॥ एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥ ३५ ॥ एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन्यज्ञोत्सवे सुराः ॥ निवृत्ताः सह राज्ञा ते पुनः स्वभवनं गताः ॥
॥ ३६ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ जित्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः ॥ नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकाङ्क्षी दशाननः ॥ १॥ समासाद्य तु राजेन्द्रान्महेन्द्रवरुणोपमान् ॥ अब्रवीद्राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ॥ २॥ निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एष मे हि सुनिश्चयः ॥ अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो नैवोपपद्यते ॥ ३ ॥ ततस्त्वभीरवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मनिश्चयाः ॥ मन्त्रयित्वा ततोऽन्योन्यं राजानः सुमहाबलाः ॥ निर्जिताः स्मेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रिपोः ॥ ४ ॥ ॥

सह स्वर्गमित्यर्थः ॥३६॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥४॥

---

[1] न वर्णः सर्वपाण्डुरः । इति पाठः ।

॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ दीयत इति ॥ संतिष्ठ । एवमहं भवामीति । आयत्तो भवामीत्यर्थः ॥ १० ॥ अथेति ॥ पूर्वं रावणगमनात्पूर्वम् । श्रुतार्थेन श्रुतरावणवृत्तान्तेन । तन्नरेन्द्रस्य बलम् । निष्क्रामत् निरक्रामत् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ प्रज्वलन्तमिति ॥ समासाद्येति ।

दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरूरवाः ॥ एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिता स्मेति पार्थिवाः ॥ ५ ॥ अथायोध्यां समासाद्य
रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणेवाऽमरावतीम् ॥ स तं पुरुषशार्दूलं पुरन्दरसमं बले ॥
॥ ७ ॥ प्राह राजानमासाद्य युद्धं देहीति रावणः ॥ निर्जितोस्मीति वा ब्रूहि त्वमेवं मम शासनम् ॥ ८ ॥ अयोध्याधिपतिस्तस्य
श्रुत्वा पापात्मनो वचः ॥ अनरण्यस्तु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥ दीयते द्वन्द्वयुद्धं ते राक्षसाधिपते
मया ॥ संतिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव चैवं भवाम्यहम् ॥ १० ॥ अथ पूर्वं श्रुतार्थेन निर्जितं सुमहद्बलम् ॥ निष्क्रामत्तन्नरेन्द्रस्य
बलं रक्षोवधोद्यतम् ॥ ११ ॥ नागानां दशसाहस्रं वाजिनां नियुतं तथा ॥ रथानां बहुसाहस्रं
पत्तीनां च नरोत्तम ॥ १२ ॥ महीं संछाद्य निष्क्रान्तं सपदातिरथं रणे ॥ ततः प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं युद्धविशारद
॥ १३ ॥ अनरण्यस्य नृपते राक्षसेन्द्रस्य चाद्भुतम् ॥ तद्रावणबलं प्राप्य बलं तस्य महीपतेः ॥ १४ ॥ प्राणश्यत
तदा सर्वं हव्यं हुतमिवाऽनले ॥ युद्ध्वा च सुचिरं कालं कृत्वा विक्रममुत्तमम् ॥ १५ ॥ प्रज्वलन्तं समासाद्य
क्षिप्रमेवावशेषितम् ॥ प्राविशत्संकुलं तत्र शलभा इव पावकम् ॥ नश्यति स्म बलं तत्र हव्यं हुतमिवानले ॥ १६ ॥
सोपश्यत्तन्नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महाबलम् ॥ महार्णवं समासाद्य वनापगशतं यथा ॥ १७ ॥ ततः शक्रधनुःप्रख्यं
धनुर्विस्फारयन्स्वयम् ॥ आससाद नरेन्द्रस्तं रावणं क्रोधमूर्छितः ॥ १८ ॥ ॥ ॥

तं रावणमासाद्य क्षिप्रमेवावशेषितम् अल्पावशिष्टमभवदित्यर्थः । तत्र रणे शलभाः पावकमिव संकुलं समूहनाशनम् प्राविशत् प्रापत् ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तमिति ॥ इक्ष्वाकुमिक्ष्वाकुवंश्यम् । किं फलं प्राप्तम् । निर्जितोस्मीति वचनमनुक्त्वेति शेषः ॥ २४ ॥ २५ ॥

अनरण्येन तेमात्या मारीचशुकसारणाः ॥ प्रहस्तसहिता भग्ना व्यद्रवन्त मृगा इव ॥ १९ ॥ ततो बाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि ॥ तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ २० ॥ तस्य बाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न क्षतिं क्वचित् ॥ वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धनि ॥ २१ ॥ ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा ॥ तलेनाभिहतो मूर्ध्नि स रथान्निपपात ह ॥ २२ ॥ स राजा पतितो भूमौ विह्वलाङ्गः प्रवेपितः ॥ वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो यथा ॥ २३ ॥ तं प्रहस्याब्रवीद्रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम् ॥ किमिदानीं फलं प्राप्तं त्वया मां प्रतियुध्यता ॥ ॥ २४ ॥ त्रैलोक्ये नास्ति यो द्वन्द्वं मम दद्यान्नराधिप ॥ शङ्के प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ॥ २५ ॥ तस्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत् ॥ किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २६ ॥ न ह्यहं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना ॥ कालेनैव विपन्नोहं हेतुभूतस्तु मे भवान् ॥ २७ ॥ किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं प्राणपरिक्षये ॥ न ह्यहं विमुखो रक्षो युध्यमानस्त्वया हतः ॥२८॥ इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद्वचो वक्ष्यामि राक्षस ॥ यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः ॥ यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक् तदा सत्यं वचोस्तु मे ॥ २९ ॥ उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ रामो दाशरथिर्नाम यस्ते प्राणान्हरिष्यति ॥ ३० ॥ ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः ॥ तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ ३१ ॥ ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम् ॥ स्वर्गते च नृपे तस्मिन् राक्षसः सोपसर्पत ॥ ३२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥

॥ २६ ॥ न ह्यहमिति ॥ त्वया न जित इति । अपि तु प्राप्तेनैव कालेन विपन्न इत्यर्थः ॥२७॥२८॥ इक्ष्वाकिति ॥ इक्ष्वाकुपरिभावित्वात् तत्कुलपरिभावित्वादित्यर्थः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तत इति ॥ अपसर्पत अपासर्पत् । अपगतवानित्यर्थः ॥ ३२ ॥ इति श्री०मणि०उत्तरश्री०एकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

ततो वित्रासयन्नित्यादि ॥ आससाद । घने तस्मिन्निति । तस्मिन्काले घने घनपृष्ठे स्थितं नारदमित्यर्थः ॥१॥ तस्येति ॥ हेतुमागमनस्य चेत्यत्रापि पृष्ट्वेत्यन्वयः ॥ २ ॥ ३ ॥ राक्षसाधिपत इति ॥ तिष्ठेति । मद्वचनं श्रोतुमिति शेषः । विष्णुर्दैत्यघातादिर्दृष्टान्तार्थः ॥ ४ ॥ ५ ॥ किंचिदिति ॥ समाधिमैकाग्र्यम् ॥ ६ ॥ अयं लोकः । त्वया अवध्येनेति च्छेदः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ तैस्तैरिति ॥ युद्धेनेति । मतिमान् कदा तस्मिन्मर्त्यलोके युद्धेन वधप्रणयी भवेत् न कोपीत्यर्थः ॥ १० ॥ किं च मृतमारणवद्युद्धेन तेषां वधो व्यर्थ इत्याह–क्षीयमाणमिति ॥ ११ ॥ १२ ॥ क्वचिदिति ॥ धाराश्रुनयनाननैः धाराभूताश्रुनयनयुक्तमुखैः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ततो वित्रासयन्मर्त्यान्पृथिव्यां राक्षसाधिपः ॥ आससाद घने तस्मिन्नारदं मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥ तस्याभिवादनं कृत्वा दशग्रीवो निशाचरः ॥ अब्रवीत्कुशलं पृष्ट्वा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥ नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः ॥ अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम् ॥ ३ ॥ राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विश्रवसः सुत ॥ प्रीतोस्म्यभिजनोपेतविक्रमैरूर्जितैस्तव ॥ ४ ॥ विष्णुना दैत्यघातैश्च गन्धर्वोरगधर्षणैः ॥ त्वया समं विमर्दैश्च भृशं हि परितोषितः ॥ ५ ॥ किंचिद्वक्ष्यामि तावत्ते श्रोतव्यं श्रोष्यसे यदि ॥ श्रुत्वा चानन्तरं कार्यं त्वया राक्षससत्तम ॥ तन्मे निगदतस्तात समाधिं श्रवणे कुरु ॥ ६ ॥ किमयं वध्यते तात त्वयाऽवध्येन दैवतैः ॥ हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः ॥ ७ ॥ देवदानवदैत्यानां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥ अवध्येन त्वया लोकः क्लेष्टुं युक्तो न मानुषः ॥ ८ ॥ नित्यं श्रेयसि संमूढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम् ॥ हन्यात्कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ॥ ९ ॥ तैस्तैरनिष्टोपगमैरजस्रं यत्र कुत्र कः ॥ मतिमान्मानुषे लोके युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥ १० ॥ क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः ॥ विषादशोकसंमूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ॥ ११ ॥ पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ॥ मूढमेवं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥ १२ ॥ क्वचिद्वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः ॥ रुद्यते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ॥ १३ ॥

मातेति ॥ भार्याबन्धुमनोरमैः भार्याबन्धुषु मनोरमो मनोरमणं प्रीतिर्येषां तैः । क्लेशं पारलौकिकदुःखम् ॥ १४ ॥ अलमेनं परिक्लिश्येति ॥ मोहनिराकृतः अज्ञानेन प्रच्यावितार्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ महर्ष इति ॥ देवगन्धर्वविहार देवगन्धर्वैर्गानपरैर्विहारपर । समरप्रिय, समरदर्शनप्रिय ॥ १८ ॥ तत इति ॥ रसालयम् अमृतरसालयम् । खल्विति ॥ १९ ॥ अथेति ॥ इदानीं रसातलजिगमिषुणा त्वया अन्येन मार्गेण रसातलमार्गव्यतिरिक्तमार्गे-

मातापितृसुतस्नेहैर्भार्याबन्धुमनोरमैः ॥ मोहितोयं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥ १४ ॥ अलमेनं परिक्लिश्य
लोकं मोहनिराकृतम् ॥ जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥ १५ ॥ अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं
यमसादनम् ॥ तन्निगृह्णीष्व पौलस्त्य यमं परपुरंजय ॥ १६ ॥ तस्मिन् जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः ॥ एवमुक्तस्तु
लङ्केशो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ अब्रवीन्नारदं तत्र संप्रहस्याभिवाद्य च ॥ १७ ॥ महर्षे देवगन्धर्वविहार समरप्रिय
॥ अहं समुद्यतो गन्तुं विजयार्थं रसातलम् ॥ १८ ॥ ततो लोकत्रयं जित्वा स्थाप्य नागान्सुरान्वशे ॥ समुद्रममृतार्थं
च मथिष्यामि रसालयम् ॥ १९ ॥ अथाब्रवीद्दशग्रीवं नारदो भगवानृषिः ॥ क्व खल्विदानीं मार्गेण त्वया
ह्यन्येन गम्यते ॥ २० ॥ अयं खलु सुदुर्गम्यः प्रेतराजपुरं प्रति ॥ मार्गो गच्छति दुर्धर्षो यमस्यामित्रकर्शन ॥ २१ ॥
स तु शारदमेघाभं हासं मुक्त्वा दशाननः ॥ उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २२ ॥ तस्मादेवमहं ब्रह्मन्
वैवस्वतवधोद्यतः ॥ गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः ॥ २३ ॥ ॥ ॥

ण क्व गम्यते ॥ २० ॥ कस्य तर्ह्ययम्मार्ग इत्यपेक्षायामाह—अयं खल्वित्यादि ॥ सुदुर्गम्यः सुदुर्गमः । यदार्षः ॥ २१ ॥ स त्विति ॥ हासम्मुक्त्वेति । कृत्वेति यावत् । शारदमेघाभं नारदंप्रति कृतमित्येवावोचत् । तन्मार्गेणैव गमनं तज्जयश्च मम सिद्ध एवेत्युवाचेत्यर्थः ॥ २२ ॥ तस्मादिति ॥ यस्मान्मार्ग उपदिष्टः यतश्च मया चतुर्दिक्पालजयः प्रतिज्ञातस्तस्मादित्यर्थः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ स्वदत्तं स्वकृतं च । स्वदत्तस्वकृतशब्देन कायक्लेशरूपं तपः महात्मनः अनुग्रहादिति शेषः ॥ २९ ॥ ॥३०॥ धाता विधाता सामान्यतो विशेषतश्च कर्ता ॥३१॥ अपरमिति ॥ काल एव सर्वसाधनम् । अयं तु कालातिरिक्तमपरं किं विधानं साधनसंपा-

मया हि भगवन् क्रोधात्प्रतिज्ञातं रणार्थिना ॥ अवजेष्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो ॥ २४ ॥ तदिह प्रस्थितोहं वै प्रेतराजपुरं प्रति ॥ प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च ॥ प्रययौ दक्षिणामाशां प्रहृष्टः सह मन्त्रिभिः ॥ २६ ॥ नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ॥ चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः ॥ २७ ॥ येन लोकास्त्रयः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः ॥ क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो जेष्यते कथम् ॥ २८ ॥ स्वदत्तकृतसाक्षी यो द्वितीय इव पावकः ॥ लब्धसंज्ञा विजेष्यन्ते लोका यस्य महात्मनः ॥ २९ ॥ यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्रवन्ति भयार्दिताः ॥ तं कथं राक्षसेन्द्रोसौ स्वयमेव गमिष्यति ॥ ३० ॥ यो विधाता च धाता च सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥ त्रैलोक्यं विजितं येन तङ्कथं विजयिष्यते ॥ ३१ ॥ अपरं किन्तु कृत्वाऽयं विधानं संविधास्यति ॥ कौतूहलसमुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम् ॥ ३२ ॥ विमर्दं द्रष्टुमनयोर्यमराक्षसयोः स्वयम् ॥ ३३ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे विंशः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ ॥

एवं संचिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः ॥ आख्यातुं तद्यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति ॥ १ ॥ अपश्यत्स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम् ॥ विधानमुपतिष्ठन्तं प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥ २ ॥ स तु दृष्ट्वा यमः प्राप्तं महर्षिं तत्र नारदम् ॥ अब्रवीत्सुखमासीनमर्घ्यमावेद्य धर्मतः ॥ ३ ॥ ॥ ॥

दनं कृत्वा कालजयं संविधास्यतीत्येवं कौतूहलसमुत्पन्नोहं यमस्य सदनं द्रष्टुं यास्यामि ॥३२॥३३॥ इति श्रीगो०मणिमु०उत्तरश्री०विंशः सर्गः ॥ २० ॥ ॥१॥ अपश्यदिति ॥ अग्निः पुरस्कृतः साक्षितया येनासौ अग्निपुरस्कृतः तम् । प्राणिनो विधानं निग्रहानुग्रहकृत्यमुपतिष्ठन्तमनुतिष्ठन्तम् ॥ २ ॥३॥

॥४॥ अब्रवीदिति ॥ विधानं मत्तः श्रुतापदः प्रतिक्रियामित्यर्थः॥५॥६॥एतेनेति ॥ दण्डः कालदण्डः प्रहरणमायुधं यस्य तस्य तव किन्नु भविष्यतीति।

कच्चित्क्षेमं तु देवर्षे कच्चिद्धर्मो न नश्यति ॥ किमागमनकृत्यं ते देवगन्धर्वसेवित ॥ ४ ॥ अब्रवीत्तु तदा वाक्यं
नारदो भगवानृषिः ॥ श्रूयताममभिधास्यामि विधानं च विधीयताम् ॥ ५ ॥ एष नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः ॥
उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम् ॥ ६ ॥ एतेन कारणेनाहं त्वरितो ह्यागतः प्रभो ॥ दण्डप्रहरणस्याद्य
तव किन्नु भविष्यति ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् ॥ ददर्श दीप्तमायान्तं विमानं तस्य
रक्षसः ॥ ८ ॥ तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः ॥ कृत्वा वितिमिरं सर्वं समीपं सोभ्यवर्तत ॥ ९ ॥ सोपश्यत्
सुमहाबाहुर्दशग्रीवस्ततस्ततः ॥ प्राणिनः सुकृतं कर्म भुञ्जानांश्चैव दुष्कृतम् ॥ १० ॥ अपश्यत्सैनिकांश्चास्य
यमस्यानुचरैः सह ॥ यमस्य पुरुषैरुग्रैर्घोररूपैर्भयानकैः ॥ ११ ॥ ददर्श वध्यमानांश्च क्लिश्यमानांश्च देहिनः ॥
क्रोशतश्च महानादं तीव्रनिष्टनतत्परान् ॥ १२ ॥ कृमिभिर्भक्ष्यमाणांश्च सारमेयैश्च दारुणैः ॥ १३ ॥ श्रोत्रायासकरा
वाचो वदतश्च भयावहाः ॥ संतार्यमाणान्वैतरणीं बहुशः शोणितोदकाम् ॥ १४ ॥ वालुकासु च तप्तासु तप्यमानान्मुहुर्मुहुः
॥ असिपत्त्रवने चैव भिद्यमानानधार्मिकान् ॥ १५ ॥ रौरवे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि ॥
पानीयं याचमानांश्च तृषितान् क्षुधितानपि ॥ १६ ॥ शवभूतान्कृशान् दीनान्विवर्णान्मुक्तमूर्धजान् ॥ मलपङ्कधरान्दीनान्
रूक्षांश्च परिधावतः ॥ १७ ॥ ददर्श रावणो मार्गे शतशोथ सहस्रशः ॥ कांश्चिच्च गृहमुख्येषु गीतवादित्रनिस्वनैः
॥ प्रमोदमानानद्राक्षीद्रावणः सुकृतैः स्वकैः ॥ १८ ॥ ॥ ॥

जयोऽपजयो वेत्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ददर्शेति ॥ तीव्रो निष्टनः क्रूरशब्दः ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रोत्रेति ॥ संतार्यमाणान् वैतरणीमिति संज्ञापदवशात् पादाक्षराधिक्यम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

गोरसं गोप्रदातारो ह्यन्नं चैवान्नदायिनः ॥ गृहांश्च गृहदातारः स्वकर्मफलमश्नतः ॥१९॥ सुवर्णमणिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलंकृतान्
॥२०॥ धार्मिकानपरांस्तत्र दीप्यमानान्स्वतेजसा ॥ ददर्श सुमहाबाहू रावणो राक्षसाधिपः॥२१॥
ततस्तान्भिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः ॥ रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद्बली ॥ २२ ॥ प्राणिनो मोचितास्तेन
दशग्रीवेण रक्षसा ॥ सुखमापुर्मुहूर्तं ते ह्यतर्कितमचिन्तितम् ॥ २३ ॥ प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीयसा
॥ प्रेतगोपाः सुसंक्रुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन् ॥ २४ ॥ ततो हलहलाशब्दः सर्वदिग्भ्यः समुत्थितः ॥ धर्मराजस्य
योधानां शूराणां संप्रधावताम् ॥ २५ ॥ ते प्रासैः परिघैः शूलैर्मुसलैः शक्तितोमरैः ॥ पुष्पकं समवर्षन्त शूराः शतसहस्रशः
॥ २६ ॥ तस्यासनानि प्रासादान्वेदिकास्तोरणानि च ॥ पुष्पकस्य बभञ्जुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव ॥ २७ ॥
देवनिष्ठानभूतं तद्विमानं पुष्पकं मृधे ॥ भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा ॥२८॥ असंख्या सुमहत्यासीत्तस्य
सेना महात्मनः॥ शूराणामुग्रयातॄणां सहस्राणि शतानि च ॥ २९ ॥ ततो वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्तथा॥
ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम् ॥ अयुद्ध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः ॥३०॥ ते तु शोणितदिग्धाङ्गाः
सर्वशस्त्रसमाहताः ॥ अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधनं महत् ॥३१॥ अन्योन्यं ते महाभागा जघ्नुः
प्रहरणैर्भृशम् ॥ यमस्य च महाबाहो रावणस्य च मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥ अमात्यांस्तांस्तु संत्यज्य यमयोधा महाबलाः
॥ तमेव चाभ्यधावन्त शूलवर्षैर्दशाननम् ॥ ३३ ॥ ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ फुल्लाशोक
इवाभाति पुष्पके राक्षसाधिपः ॥ ३४ ॥ स तु शूलगदाप्रासाञ्छक्तितोमरसायकान् ॥ मुसलानि शिलावृक्षान्
मुमोचास्त्रबलाद्बली ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ॥

॥ ३६ ॥ तानिति ॥ तदस्त्रं रावणप्रयुक्तं प्रागुक्तशस्त्रवर्षसाधकमपहृत्य निरस्य ॥ ३७॥३८॥३९॥४०॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ज्वालामालीति ॥ क्रव्यादैः

तरूणां च शिलानां च शस्त्राणां चातिदारुणम् ॥ यमसैन्येषु तद्वर्षं पपात धरणीतले ॥ ३६ ॥ तांस्तु सर्वान्विनिर्भिद्य तदस्त्रमपहृत्य च ॥ जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रशः ॥ ३७ ॥ परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव ॥ भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुच्छ्वासमपोथयत् ॥ ३८ ॥ विमुक्तकवचः क्रुद्धः सिक्तः शोणितविस्रवैः ॥ ततः स पुष्पकं त्यक्त्वा पृथिव्यामवतिष्ठत ॥ ३९ ॥ ततः स कार्मुकी बाणी समरे चाभिवर्तत ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथान्तकः ॥ ४० ॥ ततः पाशुपतं दिव्यमस्त्रं संधाय कार्मुके ॥ तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तच्चापं विचकर्ष सः ॥ ४१ ॥ आकर्णात्स विकृष्याथ चापमिन्द्रारिराहवे ॥ मुमोच तं शरं क्रुद्धस्त्रिपुरे शंकरो यथा ॥ ॥ ४२ ॥ तस्य रूपं शरस्यासीद्विधूमज्वालमण्डलम् ॥ वनं दहिष्यतो घर्मे दावाग्नेरिव मूर्छतः ॥ ४३ ॥ ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतो रणे ॥ मुक्तो गुल्मान्द्रुमांश्चापि भस्म कृत्वा प्रधावति ॥ ४४ ॥ ते तस्य तेजसा दग्धा सैन्या वैवस्वतस्य तु ॥ रणे तस्मिन्निपतिता दावदग्धा नगा इव ॥ ४५ ॥ ततस्तु सचिवैः सार्धं राक्षसो भीमविक्रमः ॥ ननाद सुमहानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ४६ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

स तस्य तु महानादं श्रुत्वा वैवस्वतः प्रभुः ॥ शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च संक्षयम् ॥ १ ॥ स हि योधान्हतान्मत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ अब्रवीत्त्वरितं सूतं रथोयमुपनीयताम् ॥ २ ॥ तस्य सूतस्तदा दिव्यमुपस्थाप्य महारथम् ॥ स्थितः स च महातेजा ह्यध्यारोहत तं रथम् ॥ पाशमुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः ॥ ३ ॥

स्वसृष्टैरनुगतस्तथा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥
स तस्य त्वित्यादि ॥ १ ॥ स हीति ॥ उपनीयतामित्यब्रवीदित्यन्वयः ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥

येनेति ॥ येन मृत्युना। युगान्ते सर्वं सकृदेव संह्रियत इत्यर्थः । अव्ययं प्रवाहनित्यम् ॥ ४ ॥ तस्येति ॥ निश्छिद्राः निरन्तराः॥५॥६ ॥ ७॥ तत

येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ कालदण्डस्तु पार्श्वस्थो मूर्तिमानस्य चाभवत् ॥ यमप्रहरणं
दिव्यं तेजसा ज्वलदग्निमत् ॥ ४ ॥ तस्य पार्श्वेषु निश्छिद्राः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५ ॥ पावकस्पर्शसंकाशः
स्थितो मूर्तश्च मुद्गरः ॥ ६ ॥ ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पन्त दिवौकसः ॥ कालं दृष्ट्वा तथा क्रुद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ ७ ॥
ततः प्रचोदयन् सूतस्तानश्वान् रुधिरप्रभान् ॥ प्रययौ भीमसन्नादो यत्र रक्षःपतिः स्थितः ॥ ८ ॥
मुहूर्तेन यमं ते तु हया हरिहयोपमाः ॥ प्रापयन्मनसस्तुल्या यत्र तत्प्रस्तुतं रणम् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा
तथैव विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम् ॥ सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ १० ॥ लघुसत्त्वतया ते हि नष्टसंज्ञा भयार्दिताः ॥
नेह योद्धुं समर्थाः स्म इत्युक्त्वा प्रययुर्दिशः ॥ ११ ॥ स तु तं तादृशं दृष्ट्वा रथं लोकभयावहम् ॥
नाक्षुभ्यत दशग्रीवो न चापि भयमाविशत् ॥ १२ ॥ स तु रावणमासाद्य व्यसृजच्छक्तितोमरान् ॥ यमो मर्माणि
संक्रुद्धो रावणस्योपकृन्तत ॥ १३ ॥ रावणस्तु ततः स्वस्थः शरवर्षं मुमोच ह ॥ तस्मिन्वैवस्वतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ॥ १४ ॥
ततो महाशक्तिशरैः पात्यमानो महोरसि ॥ नाशक्नोत्प्रतिकर्तुं स राक्षसः शल्यपीडितः ॥ १५ ॥ एवं
नानाप्रहरणैर्यमेनामित्रकर्शिना॥सप्तरात्रं कृतः संख्ये विसंज्ञो विमुखो रिपुः॥१६॥तदासीत्तुमुलं युद्धं यमराक्षसयोर्द्वयोः॥
जयमाकाङ्क्षतोर्वीर समरेष्वनिवर्तिनोः॥१७॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः॥प्रजापतिं पुरस्कृत्य
समेतास्तद्रणाजिरम्॥१८॥संवर्त इव लोकानां क्रुद्ध्यतोरभवत्तदा॥ राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतानामीश्वरस्य च॥१९॥

इति ॥ ततः प्रचोदयन् सूतस्तान् हयान्रुधिरप्रभानित्यत्र चो इति गायत्री ॥८॥ मुहूर्तेनेति ॥ मनस्तुल्याः मनस्तुल्यवेगा इत्यर्थः ॥ ९ ॥ दृष्ट्वेति ॥
विकृतं घोरसन्नाहरूपविकारवन्तम् ॥ १० ॥ लघ्विति ॥ लघुसत्त्वतया अल्पवीर्यतया ॥ ११ ॥ १२ ॥१३ ॥ १४॥ १५ ॥ १६ ॥ १७॥ १८॥१९॥

॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ हिरण्यकशिपुरित्यादि ॥ दम्भुर्नाम कश्चिदसुरः । विनिपन्नाः विनाशं प्राप्ताः । दृष्टाः दृष्टमात्राः ॥ २५ ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ मुञ्चेति ॥ यावन्निहन्मि निहनिष्यामीत्यर्थः । यावद्योगे भविष्यदर्थे लट्॥३०॥बलमिति ॥ मया दृष्टो मुहूर्तमपि न जीवतीत्येत-

राक्षसेन्द्रोपि विस्फार्य चापमिन्द्राशनिप्रभम् ॥ निरन्तरमिवाकाशं कुर्वन् बाणांस्ततोसृजत् ॥ २० ॥ मृत्युं चतुर्भिर्विशिखैः सूतं सप्तभिरर्दयत् ॥ यमं शतसहस्रेण शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ॥ २१ ॥ ततः क्रुद्धस्य वदनाद्यमस्य समजायत ॥ ज्वालामाली सनिश्वासः सधूमः कोपपावकः ॥ २२ ॥ तदाश्चर्यमथो दृष्ट्वा देवदानवसन्निधौ ॥ प्रहर्षितौ सुसंरब्धौ मृत्युकालौ बभूवतुः ॥ २३ ॥ ततो मृत्युः क्रुद्धतरो वैवस्वतमभाषत ॥ मुञ्च मां समरे यावद्धन्मीमं पापराक्षसम् ॥ नैषा रक्षोभवेदद्य मर्यादा हि निसर्गतः ॥ २४ ॥ हिरण्यकशिपुः श्रीमान् नमुचिः शम्बरस्तथा ॥ विसंधिर्धूमकेतुश्च बलिर्वैरोचनोपि च ॥ २५ ॥ दम्भुर्दैत्यमहाराजो वृत्रो बाणस्तथैव च ॥ राजर्षयः शास्त्रविदो गन्धर्वाः समहोरगाः ॥ २६ ॥ ऋषयः पन्नगा दैत्या यक्षाश्चाप्यप्सरोगणाः ॥ युगान्तपरिवर्ते च पृथिवी समहार्णवा ॥ २७ ॥ क्षयं नीता महाराज सपर्वतसरिद्द्रुमा ॥ एते चान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः॥२८॥विनिपन्ना मया दृष्टाः किमुतायं निशाचरः ॥ २९ ॥ मुञ्च मां साधुधर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम् ॥ न हि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति ॥ ॥ ३० ॥ बलं मम न खल्वेतन्मर्यादैषा निसर्गतः ॥ स दृष्टो न मया कालं मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥ तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान् ॥ अब्रवीत्तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठैनं निहन्म्यहम् ॥ ३२ ॥ ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः ॥ कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥

त् मद्वचनं बलं न खलु बलप्रकाशनं न भवति। किन्तु निसर्गतः स्वभावतः सिद्धा मर्यादा एषा। अनादिसृष्टिरेवंविधेत्यर्थः । उक्तमर्थमुपसंहरति—स दृष्ट इति ॥ ३१ ॥ तस्येति ॥ अयमेनं निहन्म्यहम् अहमेनमयं निहन्मि । अविलम्बेन हन्मीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥ ॥

॥३४॥३५॥३६॥३७॥३८॥३९॥४०॥ यो हीति ॥ अनृतमसत्यवादिनं कुर्यात् । मृत्युपुरस्कृतः मृत्युना पुरस्कृतः । बहुव्रीहिश्च ॥४१॥४२॥४३॥४४॥

यस्य पार्श्वेषु निखिलाः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ॥ पावकाशनिसंकाशो मुद्गरो मूर्तिमान् स्थितः ॥३४ ॥ दर्शनादेव यः प्राणान् प्राणिनामपकर्षति ॥ किं पुनः स्पृश्यमानस्य पात्यमानस्य वा पुनः ॥ ३५ ॥ स ज्वालापरिवारस्तु निर्दहन्निव राक्षसम्॥ तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ॥३६॥ ततो विदुद्रुवुः सर्वे तस्मात्त्रस्ता रणाजिरे॥ सुराश्च क्षुभिताः सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यतं यमम् ॥ ३७ ॥ तस्मिन् प्रहर्तुकामे तु यमे दण्डेन रावणम् ॥ यमं पितामहः साक्षाद्दर्शयित्वेदमब्रवीत् ॥ ३८॥ वैवस्वत महाबाहो न खल्वमितविक्रम ॥ न हन्तव्यस्त्वया तेन दण्डेनैव निशाचरः ॥३९॥ वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव ॥ स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ॥ ४० ॥ यो हि मामनृतं कुर्यात् देवो वा मानुषोपि वा ॥ त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ क्रुद्धेन विप्रमुक्तोयं निर्विशेषं प्रियाप्रिये ॥ प्रजाः संहरते रौद्रो लोकत्रयभयावहः ॥ ४२ ॥ अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममितप्रभः ॥ कालदण्डो मया सृष्टः पूर्वं मृत्युपुरस्कृतः ॥ ४३ ॥ तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो रावणमूर्धनि ॥ न ह्यस्मिन्पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥ ४४ ॥ यदि ह्यस्मिन्निपतिते न म्रियेतैष राक्षसः ॥ म्रियते वा दशग्रीवस्तदा ह्युभयतोनृतम् ॥ ॥४५॥ तन्निवर्तय लङ्केशं दण्डमेतं समुद्यतम् ॥ सत्यं च मां कुरुष्वाद्य लोकांस्त्वं यद्यवेक्षसे ॥ ४६ ॥ एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा ॥ एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ॥ ४७ ॥ किं न्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि ॥ न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥

यदीति ॥ उभयतोनृतं मया कालदण्डस्य मोघत्वसंपादने दण्डस्यानृतत्वं रक्षोमरणोपेक्षणे वरवचनस्यानृतत्वमिति ॥४५॥४६॥ एवमिति ॥ प्रभविष्णुः स्वामी ॥ ४७ ॥ किंन्विति ॥ यद्यस्मान्मया न हन्तव्यस्तस्मादिदानीं मया किन्तु शक्यं कर्तुमिति । संचिन्त्येति शेषः ॥४८॥

अस्य रक्षसो दर्शनाद्दर्शनपथात्। एष इति॥ प्रणश्यामि "णश, अदर्शने" अन्तर्हितो भविष्यामीत्यर्थः। इत्युक्त्वेति। ब्रह्माणमिति शेषः॥४९॥५०॥ स त्विति॥ वैवस्वतः ब्रह्मपुरोगमैर्देवैः हृष्टः अभूदिति शेषः॥५१॥ इति श्रीगो॰चिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्वाविंशः सर्गः॥२२॥

एष तस्मात्प्रणश्यामि दर्शनादद्य रक्षसः ॥ इत्युक्का सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४९ ॥ दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥ ५० ॥ स तु वैवस्वतो देवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः ॥ जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ॥ ५१ ॥ इत्युत्तरश्रीरा॰ द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

ततो जित्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुङ्गवम् ॥ रावणस्तु रणश्लाघी स्वसहायान् ददर्श ह ॥ १ ॥ ततो रुधिरसिक्ताङ्गं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ॥ रावणं राक्षसा दृष्ट्वा हृष्टवत् समुपागमन् ॥ २ ॥ जयेन वर्धयित्वा च मारीचप्रमुखास्ततः ॥ पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्त्विता रावणेन तु ॥ ३ ॥ ततो रसातलं गच्छन् प्रविष्टः पयसां निधिम् ॥ दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ॥ ४ ॥ स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् ॥ कृत्वा नागान्वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥ ५ ॥ निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरा वसन् ॥ राक्षसान् तान् समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥ ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः ॥ नानाप्रहरणास्तत्र प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ॥ ७ ॥ शूलैस्त्रिशूलैः कुलिशैः पट्टिशासिपरश्वधैः ॥ अन्योन्यं बिभिदुः क्रुद्धा राक्षसा दानवास्तथा ॥ ८ ॥ तेषां तु युद्ध्यमानानां साग्रः संवत्सरो गतः ॥ न चान्यतरयोस्तत्र विजयो वा क्षयोपि वा ॥ ९ ॥ ॥

॥ १ ॥ तत इति ॥ हृष्टवत् यमादपि कथंचिन्मुक्ता इति हृष्टाः सन्तः ॥ २ ॥ ३ ॥ तत इति ॥ रसातलं गच्छन् पयसां निधिं प्रविष्टः । मार्गवशादिति शेषः ॥ ४ ॥ स त्विति ॥ भोगवती नाम समुद्राधःपाताललोकवर्तिनी नागपुरी। तत्र नागान् स्ववशे कृत्वा स्वीयत्वेन स्थापयित्वा ॥ ॥ ५ ॥ निवातेति ॥ वसन् अवसन् । लब्धवराः। ब्रह्मण इति शेषः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥

॥ १० ॥ निवातेति ॥ वृद्धः सर्वदेवासुरकूटस्थः । विदितार्थवत् वाक्यमित्यन्वयः ॥ ११ ॥ १२ ॥ राक्षसस्येति ॥ रोचते । कर्तव्यत्वेन ममेति शेषः ।
सख्यप्रयोजनं दर्शयति—अविभक्ता इति ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ तत इति ॥ उपधार्य अनुसृत्य मायानामसुरमायायोगविद्यानाम् ॥ १६ ॥

ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिरव्ययः ॥ आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः ॥ १० ॥ निवातकवचानां
तु निवार्य रणकर्म तत् ॥ क्रुद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत् ॥ ११ ॥ न ह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं
सुरासुरैः ॥ न भवन्तः क्षयं नेतुमपि सामरदानवैः ॥ १२ ॥ राक्षसस्य सखित्वं च भवद्भिः सह रोचते ॥ अविभक्ताश्च
सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ॥ १३ ॥ ततोग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः ॥ निवातकवचैः सार्धं
प्रीतिमानभवत्तदा ॥ १४ ॥ अर्थतस्तैर्यथान्याय्यं संवत्सरमथोषितः ॥ स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः
॥ १५ ॥ ततोपधार्य मायानां शतमेकं समाप्तवान् ॥ सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स्म रसातलम् ॥ १६ ॥ ततोश्मनगरं
नाम कालकेयैरधिष्ठितम् ॥ गत्वा तु कालकेयांश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान् ॥ १७ ॥ शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना
प्राच्छिनत्तदा ॥ श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम् ॥ जिह्वया संलिहन्तं च राक्षसं समरे तथा ॥
॥ १८ ॥ तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम् ॥ १९ ॥ ततः पाण्डुरमेघाभं कैलासमिव भास्वरम् ॥ वरुणस्यालयं
दिव्यमपश्यद्राक्षसाधिपः ॥२०॥ क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम् ॥ यस्याः पयोभिनिष्यन्दात् क्षीरोदो
नाम सागरः॥२१॥ ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम् ॥ यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकरः ॥२२॥

तत इत्यादि श्लोकचतुष्कमेकं वाक्यम् ॥ श्यालस्य च्छेदे निमित्तमाह । राक्षसान् स्वकीयान् जिह्वया संलिहन्तमास्वादयन्तं भक्षयन्तमिति यावत् ॥
॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ क्षरन्तीमिति ॥ सुरभिमित्यत्रापि अपश्यदित्यनुकर्षः । सागर इति । समभवदिति शेषः ददर्शेति ॥ गोवृषेन्द्रस्य
रुद्रवृषभस्य वरारणिं साक्षान्मातरम् । यस्माच्चन्द्र इति । इन्दूत्पादकः क्षीरसमुद्र इत्यर्थः । एवमुत्तरत्रापि यच्छब्दा व्याख्येयाः ॥ २२ ॥

यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः ॥ अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधाच स्वधभोजिनाम् ॥ २३ ॥ यां ब्रुवन्ति नरा लोके सुरभिं नाम नामतः ॥ प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम् ॥ २४ ॥ प्रविवेश महाघोरं गुप्तं बहुविधैर्बलैः ॥ तोयधाराशताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तदा ॥ नित्यप्रहृष्टं ददृशे वरुणस्य गृहोत्तमम् ॥ २५ ॥ ततो हत्वा बलाध्यक्षान् समरे तैश्च ताडितः ॥ अब्रवीच्च ततो योधान् राजा शीघ्रं निवेद्यताम् ॥ २६ ॥ युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम् ॥ वद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोस्मीति साञ्जलिः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः ॥ पुत्राः पौत्राश्च निष्क्रामन् गौश्च पुष्कर एव च ॥ २८ ॥ ते तु वीर्यगुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः ॥ युङ्क्त्वा रथान्कामगमानुद्यद्भास्करवर्चसः ॥ २९ ॥ ततो युद्धं समभवद्दारुणं रोमहर्षणम् ॥ सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च धीमतः ॥ ३० ॥ अमात्यैश्च महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ वारुणं तद्बलं कृत्स्नं क्षणेन विनिपातितम् ॥ ३१ ॥ समीक्ष्य स्वबलं संख्ये वरुणस्य सुतास्तदा ॥ अर्दिताः शरजालेन निवृत्ता रणकर्मणः ॥ ३२ ॥ महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके ॥ आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ॥ ३३ ॥ महदासीत्ततस्तेषां तुल्यस्थानमवाप्य तत् ॥ आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ॥ ३४ ॥ ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसन्निभैः ॥ विमुखीकृत्य संतुष्टा विनेदुर्विविधान्रवान् ॥ ३५ ॥ ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं दृश्य धर्षितम् ॥ त्यक्त्वा मृत्युभयं वीरो युद्धकाङ्क्षी व्यलोकयत् ॥ ३६ ॥ ॥ ॥

यमित्यादि ॥ स्वधभोजिनामिति । ह्रस्व आर्षः । स्वधभोजिनां पितॄणाम् । स्वधा पितृभक्षं कव्यम् । धाराशताकीर्णं जलधाराशतैराकीर्णम् । निर्जितोस्मीतिवद । एवं चेत्ते भयं नास्तीत्यब्रवीदिति निवेद्यतामित्यन्वयः ॥ २३ ॥२४॥२५॥२६॥२७॥ एतस्मिन्निति ॥ गौश्च पुष्करश्चेति पुत्राणां पौत्राणां च वलाध्यक्षौ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ महदिति ॥ स्थानमाकाशरूपम् । आकाशे युद्धम् आकाशयुद्धम् ॥३४॥३५॥३६॥

॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ते त्विति ॥ स्वप्रभावात् देवतात्वप्रभावात् ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अपविद्धा इति ॥ षष्टिहायनं

तेन ते दारुणा युद्धे कामगाः पवनोपमाः ॥ महोदरेण गदया हता वै प्रययुः क्षितिम् ॥ ३७ ॥ तेषां वरुणपुत्राणां हत्वा योधान्हयाञ्छतान् ॥ मुमोचाशु महानादं विरथान्प्रेक्ष्य तान्स्थितान् ॥ ३८ ॥ ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्हतैः ॥ महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले ॥ ३९ ॥ ते तु त्यक्त्वा रथान्पुत्रा वरुणस्य महात्मनः ॥ आकाशे विष्ठिताः शूराः स्वप्रभावान्न विव्यथुः ॥ ४० ॥ धनूंषि कृत्वा सज्जानि विनिर्भिद्य महोदरम् ॥ रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः समभिद्रवन् ॥ ४१ ॥ सायकैश्चापविभ्रष्टैर्वज्रकल्पैः सुदारुणैः ॥ दारयन्ति स्म संक्रुद्धा मेघा इव महागिरिम् ॥ ४२ ॥ ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव निर्गतः ॥ शरवर्षैर्महाघोरैस्तेषां मर्मस्वताडयत् ॥४३॥ ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स्म पदातयः ॥ मुसलानि विचित्राणि ततो भल्लशतानि च ॥४४॥ पट्टिशांश्चैव शक्तीश्च शतघ्नीस्तोमरांस्तथा ॥ पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्ठितः ॥ ४५ ॥ अपविद्धास्तु ते वीरा विनिष्पेतुः पदातयः ॥ महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराष्षष्टिहायनाः ॥४६ ॥ सीदमानान् सुतान् दृष्ट्वा विह्वलान् सुमहौजसः ॥ ननाद रावणो हर्षान्महानम्बुधरो यथा ॥ ४७ ॥ ततो रक्षो महानादान्मुक्त्वा हन्ति स्म वारुणान् ॥ नानाप्रहरणोपेतैर्धारापातैरिवाम्बुदः ॥ ४८ ॥ ततस्ते विमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले ॥ रणात्स्वपुरुषैः शीघ्रं गृहाण्येव प्रवेशिताः ॥ ४९ ॥ तानब्रवीत्ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् ॥ ५० ॥ रावणं त्वब्रवीन्मन्त्री प्रहसो नाम वारुणः ॥ गतः खलु महाराजो ब्रह्मलोकं जलेश्वरः ॥ ५१ ॥ गान्धर्वं वरुणः श्रोतुं यं त्वमाह्वयसे युधि ॥ तत्किं तव वृथा वीर परिश्रम्य गते नृपे ॥ ये तु सन्निहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः ॥ ५२ ॥ ॥

परिमाणं येषां ते षष्टिहायनाः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तानिति ॥ वरुणस्यायं वारुणः ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ॥

॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ हर्षान्नादं विमुञ्चन्वै निष्क्रान्तो वरुणालयात् ॥ ५३ ॥ आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः ॥ लङ्कामभिमुखो रक्षो नभस्स्थलगतो ययौ ॥ ५४ ॥ इत्युत्तर श्रीरा० त्रयो० सर्गः ॥ २३ ॥

॥ अथात्राधिकपाठश्लोकप्रारम्भः ॥

हर्षान्नादांस्तु विसृजन् निष्क्रान्तो वरुणालयात् ॥ महोदरेण संयुक्तो हर्षगद्गदभाषिणा ॥ ततोऽश्मनगरं भूयो विचेरुर्युद्धदुर्मदाः ॥ १ ॥ यत्रापश्यद्दशग्रीवो गृहं परमभास्वरम् ॥ वैडूर्यतोरणाकीर्णं मुक्ताजालविभूषितम् ॥ २ ॥ सुवर्णस्तम्भगहनं वेदिकाभिः समन्ततः ॥ वज्रस्फटिकसोपानं किङ्किणीजालसंयुतम् ॥ ३ ॥ बह्वासनयुतं रम्यं महेन्द्रभवनोपमम् ॥ दृष्ट्वा गृहवरं रम्यं दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ ४ ॥ कस्येदं भवनं सौम्यं मेरुमन्दरसन्निभम् ॥ गच्छ प्रहस्त शीघ्रं त्वं जानीष्व भवनोत्तमम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तः प्रहस्तस्तु प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ स शून्यं प्रेक्ष्य तद्द्वारं पुनः कक्ष्यान्तरं ययौ ॥ ६ ॥ सप्तकक्ष्यान्तरं गत्वा ततो ज्वालामपश्यत ॥ ततो दृष्टः पुमांस्तत्र हृष्टो हासं मुमोच सः ॥ ७ ॥ स तु श्रुत्वा महाहासमूर्ध्वरोमाऽभवत्तदा ॥ ८ ॥ ज्वालामध्ये स्थितस्तत्र हेममाली विमोहितः ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः साक्षाद्यम इव स्थितः ॥ ९ ॥ तथा दृष्ट्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणो विनिर्गतः ॥ विनिर्गम्याब्रवीत्सर्वं रावणाय निशाचरः ॥ १० ॥ अथ राम दशग्रीवः पुष्पकादवरुह्य सः ॥ प्रवेष्टुमिच्छन्वेश्माथ भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ११ ॥ चन्द्रमौलिर्वपुष्मांश्च पुरुषोऽस्याग्रतः स्थितः ॥ द्वारमावृत्य सहसा ज्वालासक्तो भयानकः ॥ १२ ॥ रक्ताक्षः श्वेतवदनो बिम्बोष्ठश्चोर्ध्वरोमवान् ॥ महाभीषणनासश्च कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

गूढश्मश्रुर्निगूढास्थि दंष्ट्राभारो महर्षणः ॥ एतादृशं वै पुरुषं ददर्श स तु रावणः ॥ गृहीत्वा लोहमुसलं द्वारं विष्टभ्य सुस्थितम् ॥ १४ ॥ अथ संदर्शनात्तस्य ऊर्ध्वरोमा बभूव सः ॥ १५ ॥ अस्पन्दतास्य हृदयं वेपथुश्चाप्यजायत ॥ निमित्तान्यमनोज्ञानि दृष्ट्वा राम व्यचिन्तयत् ॥ १६ ॥ अथ चिन्तयतस्तस्य स एव पुरुषोब्रवीत् ॥ किं त्वं चिन्तयसे रक्षो ब्रूहि विस्रब्धमानसः ॥ १७ ॥ युद्धातिथ्यमहं वीर करिष्ये रजनीचर ॥ एवमुक्त्वा स तद्रक्षः पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ योस्त्यसे बलिना सार्धं मया वा तद्विधीयताम् ॥ १८ ॥ रावणोभिहितो भूय ऊर्ध्वरोमा व्यजायत ॥ अथ धैर्यं समालम्ब्य रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ १९ ॥ गृहेत्र तिष्ठते को वा तं ब्रूहि वदतां वर ॥ तेनैव सार्धं योत्स्यामि यथा वा मन्यते भवान् ॥ २० ॥ स एनं पुनरप्याह दानवेन्द्रोत्र तिष्ठति ॥ २१ ॥ एष वै परमोदारः शूरः सत्यपराक्रमः ॥ वीरो बहुगुणोपेतः पाशहस्त इवान्तकः ॥ २२ ॥ बालार्क इव तेजस्वी समरेष्वनिवर्तकः ॥ अमर्षी दुर्जयो जेता बलिर्हि गुणसागरः ॥ २३ ॥ प्रियंवदः संविभागी गुरुविप्रप्रियः सदा ॥ कालकाङ्क्षी महासत्त्वः सत्यवाक् सौम्यदर्शनः ॥ २४ ॥ स च सर्वगुणोपेतः शूरः स्वाध्यायतत्परः ॥ एष गर्जति वात्येष ज्वलते तपते सदा ॥ २५ ॥ देवैश्च भूतसंघैश्च पन्नगैश्च महर्षिभिः ॥ भयं यो नाभिजानाति तेन किं योद्धुमिच्छसि ॥ २६ ॥ बलिना यदि ते योद्धुं रोचते राक्षसेश्वर ॥ प्रविश त्वं महासत्त्वं संग्रामं कुरु मा चिरम् ॥ २७ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः प्रविवेश यतो बलिः ॥ स विलोक्याथ लङ्केशमट्टहासं जहास च ॥ २८ ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः स्थितो दानवसत्तमः ॥ अथ संदर्शनादेव बलिर्वै विश्वरूपवान् ॥ २९ ॥ स गृहीत्वा च तद्रक्षो ह्युत्सङ्गे स्थाप्य चाब्रवीत् ॥ दशग्रीव महाबाहो कं ते कामं करोम्यहम् ॥ ३० ॥ किमागमनकृत्यं ते ब्रूहि त्वं राक्षसेश्वर ॥ एवमुक्तस्तु बलिना रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ श्रुतं मया महाभाग बद्धस्त्वं विष्णुना पुरा ॥ सोहं मोचयितुं शक्तो बन्धनात्त्वां न संशयः ॥ ३२ ॥ ॥

एवमुक्ते ततो हासं बलिः कृत्वेदमब्रवीत् ॥ श्रूयतामभिधास्यामि यं त्वं पृच्छसि रावण ॥ ३३ ॥ य एष पुरुषः श्यामो द्वारि तिष्ठति नित्यदा ॥ एतेन दानवेन्द्राश्च तथान्ये बलवत्तराः ॥ ३४ ॥ वशं नीता बलवता पूर्वे पूर्वतराश्च ये ॥ बद्धश्चाहमनेनैवं कृतान्तो दुरतिक्रमः ॥ ३५ ॥ क एनं पुरुषो लोके वञ्चयिष्यति रावण ॥ सर्वभूतापहर्ता वै य एष द्वारि तिष्ठति ॥ कर्ता कारयिता चैव धाता च भुवनेश्वरः ॥ ३६ ॥ न त्वं वेद न चाहं वै भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ कलिश्चैव हि कालश्च सर्वभूतापहारकः ॥ ३७ ॥ लोकत्रयस्य सर्वस्य हर्ता स्रष्टा तथैव च ॥ संहरत्येष भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ३८ ॥ पुनश्च सृजते सर्वमनाद्यन्तो महेश्वरः ॥ करणं कारणं कर्ता सोयं पुरुषसत्तमः ॥ ३९ ॥ इष्टं चैव हि दत्तं च हुतं चैव निशाचर ॥ सर्वमेव हि लोकेशो धाता गोप्ता न संशयः ॥ ४० ॥ नैवंविधं महद्भूतं विद्यते भुवनत्रये ॥ ४१ ॥ अहं त्वं चैव पौलस्त्य ये चान्ये पूर्ववत्तराः ॥ नेता तेषां महात्मैष पशुं रशनया यथा ॥ ४२ ॥ वृत्रो दनुः शुकः शुम्भो निशुम्भो दम्भुरेव च ॥ कालनेमिश्च प्रह्लादस्तथा वैरोचनो बलिः ॥ ४३ ॥ कालकेयास्तारकाख्यो मुचुकुन्दो विवर्धनः ॥ हिरण्याक्षो मधुश्चैव कैटभो धूमशम्बरौ ॥ ४४ ॥ यमलार्जुनौ च कंसश्च कैटभो मधुना सह ॥ एते तपन्ति द्योतन्ति वान्ति वर्षन्ति चैव हि ॥ ४५ ॥ सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वैस्तप्तं महत्तपः ॥ सर्वे ते सुमहात्मानः सर्वे वै योगधर्मिणः ॥४६॥ सर्वैरैश्वर्यमासाद्य भुक्तभोगैर्महत्तरैः॥दत्तमिष्टमधीतं च प्रजाश्च परिपालिताः॥४७॥स्वपक्षेष्वनुगोप्तारः प्रहर्तारः परेष्वपि ॥ समरेष्वपि लोकेषु नैतेषां विद्यते समः॥४८॥शूरास्त्वभिजनोपेताः सर्वशस्त्रास्त्रपारगाः ॥ सर्वविद्याप्रवेत्तारः संग्रामेष्वनिवर्तकाः ॥ ४९ ॥ सर्वैस्त्रिदशराज्यानि काङ्क्षितानि महात्मभिः ॥ युद्धे सुरगणाः सर्वे निर्जिताश्च सहस्रशः ॥ ५० ॥ देवानामपि ये शक्ताः स्वपक्षपरिपालकाः ॥ प्रमत्ता भोगरक्ताश्च बालार्कसमतेजसः ॥ ५१ ॥ यत्स देवान्प्रधर्षेत तदेषो विष्णुरीश्वरः ॥ उपायपूर्वकं नाशं संवेत्ता भगवान्हरिः ॥ ५२ ॥

प्रादुर्भावं विकुरुते येनैतन्निधनं नयेत् ॥ पुनरेवात्मनात्मानमधिष्ठाय स तिष्ठति॥ ५३ ॥ एवमेतेन देवेन दानवेन्द्रा महात्मना ॥ ते हि सर्वे क्षयं नीता बलिना कामरूपिणा ॥५४॥ समरे च दुराधर्षा नृपास्ते च पराजिताः ॥ तेन नीताः क्षयं सर्वे कृतान्तबलचोदिताः ॥५५॥ एवमुक्त्वाथ प्रोवाच राक्षसं दानवेश्वरः ॥ यदेतद्दृश्यते वीर चक्रं दीप्तानलोपमम्॥५६॥ एतद्गृहीत्वाऽऽगच्छ त्वं मम पार्श्वं महाबल॥ ततोऽहं तव चाख्यास्ये मुक्तिकारणमव्ययम्॥ ॥ ५७ ॥ तत्कुरुष्व महाबाहो मा विलम्बस्व रावण ॥ एतच्छ्रुत्वा गतो रक्षः प्रहसंश्च महाबलः ॥ ५८ ॥ यत्र स्थितं महद्दिव्यं कुण्डलं रघुनन्दन ॥ लीलयोत्पाटनं चक्रे रावणो बलदर्पितः ॥ ५९ ॥ नच चालयितुं शक्तो रावणोऽभूत्कथंचन ॥ लज्जया स पुनर्भूयो यत्नं चक्रे महाबलः ॥ ६० ॥ उत्क्षिप्तमात्रे दिव्ये च पपात भुवि राक्षसः ॥ छिन्नमूलो यथा शाखी रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ६१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे जज्ञे शब्दः पुष्करसंभवः॥ राक्षसेन्द्रस्य सचिवैर्मुक्तो हाहाकृतो महान् ॥६२॥ ततो रक्षो मुहूर्तेन चेतनां लभ्य चोत्थितम् ॥ लज्जयावनतीभूतं बलिर्वाक्यमुवाच ह ॥ ॥६३॥ आगच्छ राक्षसश्रेष्ठ वाक्यं शृणु मयोदितम्॥ यत्त्वया चोद्धृतं वीर कुण्डलं मणिभूषितम् ॥ ६४॥ एतद्धि पूर्वजस्यासीत्कर्णाभरणमीक्ष्यताम् ॥ एतत्पतितमत्रैवमन्यद्भूयो महाबल ॥ ६५॥ अन्यत्पर्वतसानौ हि पतितं कुण्डलादनु ॥ मुकुटं वेदिसामीप्ये पतितं युध्यतो भुवि ॥ ६६ ॥ हिरण्यकशिपोः पूर्वं मम पूर्वपितामहात् ॥ न तस्य कालो मृत्युर्वा न व्याधिर्न विहिंसकाः ॥ ६७ ॥ न दिवा मरणं तस्य न रात्रौ सन्ध्ययोरपि ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण न च शस्त्रेण केनचित् ॥ ६८ ॥ विद्यते राक्षसश्रेष्ठ तस्य नास्त्रेण केनचित् ॥ प्रह्लादेन समं चक्रे वादं परमदारुणम् ॥ ६९ ॥ तस्य वादे समुत्पन्ने धीरो लोकभयंकरः ॥ सर्वदृश्यस्य वीरस्य प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ ॥ ७० ॥ उत्पन्नो राक्षसश्रेष्ठ नृसिंहाकृतिरूपधृत् ॥ दृष्टं च तेन रौद्रेण क्षुब्धं सर्वमशेषतः ॥ ७१ ॥ ॥

तत उद्धृत्य बाहुभ्यां नखैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ एष तिष्ठति द्वाःस्थो वै वासुदेवो निरञ्जनः ॥ ७२ ॥ तस्य देवादिदेवस्य तत्त्वतो मे शृणुष्व ह ॥ वाक्यं परमभावेन यदि ते वर्तते हृदि ॥ ७३ ॥ इन्द्राणां च सहस्राणि सुराणामयुतानिच ॥ ऋषीणां सप्तसंख्यानां शतान्यब्दसहस्रशः ॥ ७४ ॥ वशं नीतानि सर्वाणि य एष द्वारि तिष्ठति ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ मया प्रेतेश्वरो दृष्टः कृतान्तः सह मृत्युना ॥ पाशहस्तो महाज्वाल ऊर्ध्वरोमा भयानकः ॥ विद्युज्जिह्वश्च दंष्ट्रालः सर्पवृश्चिकरोमवान् ॥ ७६ ॥ रक्ताक्षो भीमवेगश्च सर्वसत्त्वभयंकरः ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरेष्वनिवर्तकः ॥ ७७ ॥ पापानां शमिता चैव स मया युधि निर्जितः ॥ न च मे तत्र भीः काचिद्व्यथा वा दानवेश्वर ॥ ७८ ॥ एनं तु नाभिजानामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा बलिर्वैरोचनोब्रवीत् ॥ ७९ ॥ एष त्रैलोक्यधाता च हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ अनन्तः कपिलो विष्णुर्नारसिंहो महाद्युतिः ॥ ८० ॥ ऋतधामा सुधामा च पाशहस्तो भयानकः ॥ द्वादशादित्यसदृशः पुराणपुरषोत्तमः ॥ ८१ ॥ नीलजीमूतसंकाशः सुरनाथः सुरोत्तमः ॥ ज्वालामाली महाबाहुर्योगी भक्तजनप्रियः ॥ ८२ ॥ एष धारयते लोकानेष वै सृजते प्रभुः ॥ एष संहरते चैव कालो भूत्वा महाबलः ॥ ८३ ॥ एष यज्ञश्च याज्यश्च चक्रायुधधरो हरिः ॥ सर्वदेवमयश्चैव सर्वभूतमयस्तथा ॥ ८४ ॥ सर्वलोकमयश्चैव सर्वज्ञानमयस्तथा ॥ सर्वरूपी महारूपी बलदेवो महाभुजः ॥ ८५ ॥ वीरहा वीरचक्षुष्मांस्त्रैलोक्यगुरुरव्ययः ॥ एवं मुनिगणाः सर्वे कथयन्तीह मोक्षिणः ॥ ८६ ॥ य एनं वेत्ति पुरुषं न च पापैर्विलिप्यते ॥ स्मृत्वा स्तुत्वा तथेष्ट्वा च सर्वमस्माद्वाप्यते ॥ ८७ ॥ एतच्छुत्वा च वचनं रावणो निर्ययौ तदा ॥ क्रोधसंरक्तनयन उद्यतास्त्रो महाबलः ॥ ८८ ॥ तथाभूतं च तं दृष्ट्वा हरिर्मुसलधृत्प्रभुः ॥ नैनं हन्म्यधुना पापं चिन्तयित्वेति विश्वधृत् ॥ ८९ ॥ अन्तर्धानं गतो राम ब्रह्मणः प्रियकाम्यया ॥ न च तं पुरुषं तत्र ददर्श रजनीचरः ॥ ९० ॥ इत्यु० अधि० प्र० सर्गः ॥ १ ॥

अथ संचिन्त्य पौलस्त्यः सूर्यंलोकं जगाम ह ॥ मेरुशृङ्गे वरे रम्ये उषित्वा तत्र शर्वरीम् ॥ १ ॥ पुष्पकं तत्समारुह्य
रवेस्तुरगसान्निभम् ॥ मनोवातगतिं दिव्यं विहारवियति स्थितम् ॥ २ ॥ तत्रापश्यद्रविं देवं सर्वतेजोमयं
शुभम् ॥ वरकाञ्चनकेयूररक्ताम्बरविभूषितम् ॥ ३ ॥ कुण्डलाभ्यां शुभाभ्यां तु भ्राजन्मुखविकासितम् ॥ केयूरनिष्काभरणं
रक्तमालावलम्बिनम् ॥ ४ ॥ रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् ॥ तमादिदेवमादित्यं विभुं सप्ताश्ववाहनम्
॥ ५ ॥ अनाद्यन्तममध्यं च लोकसाक्षिणमीश्वरम् ॥ तं दृष्ट्वा प्रवरं देवं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
स प्रहस्तमुवाचाथ रवितेजोबलार्दितम् ॥ गच्छामात्य वद ह्येनं संदेशान्मम शासनम् ॥ ७ ॥ मार्तण्डं भास्करं
श्रेष्ठं तत्त्वतो ब्रूहि मा चिरम् ॥ युद्धार्थी रावणः प्राप्तो युद्धं तस्य प्रदीयताम् ॥ ८ ॥ निर्जितोस्मीति वा ब्रूहि पक्षमेकतरं
कुरु ॥ तस्य तद्वचनाद्रक्षः सूर्यस्यान्तिकमागमत् ॥ ९ ॥ पिङ्गलं दण्डिनं चैव सोपश्यद्द्वारपालकौ ॥
आभ्यामाख्याय तत्सर्वं रावणस्य विनिश्चयम् ॥ १० ॥ तूष्णीमास्ते प्रहस्तः स सूर्यतेजःप्रतापितः ॥ दण्डी गत्वा
रवेः पार्श्वं प्रणम्याख्यातवान्विभुम् ॥ ११ ॥ श्रुत्वा तु सूर्यस्तद्वृत्तं दण्डिनो रावणस्य ह ॥ उवाच वचनं श्रीमान् बुद्धिपूर्वं
दिवाकरः ॥ १२ ॥ गच्छ दण्डिन् जयस्वैनं निर्जितोस्मीति वा वद ॥ कुरु यत्ते काङ्क्षितं तन्नाहं कालक्षिपां
सहे ॥ १३ ॥ स गत्वा वचनात्तस्य राक्षसाय महात्मनः ॥ कथयामास तत्सर्वं सूर्योक्तं वचनं यथा ॥ १४ ॥ स श्रुत्वा
वचनं तस्य दण्डिनो वै महात्मनः ॥ घोषयित्वा जगामाथ विजयं राक्षसेश्वरः ॥ १५ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे
अधिकपाठे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ संचिन्त्य पौलस्त्यः सोमलोकं जगाम ह ॥ मेरुशृङ्गे वरे रम्ये रजनीमुष्य वीर्यवान् ॥ १ ॥ तदा कश्चिद्रथारूढो
दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ अप्सरोगणमुख्येन सेव्यमानस्तु गच्छति ॥ २ ॥ रतिश्रान्तोप्सरोङ्गेषु चुम्बितः सन्विबुध्यते॥

रावणस्त्वथ तं दृष्ट्वा कौतूहलसमन्वितः ॥ ३ ॥ अथापश्यदृषिं तत्र पर्वतं मुनिसत्तमम् ॥ दशग्रीवो महात्मानं दृष्ट्वा चेदमुवाच ह ॥ ४ ॥ स्वागतं तव देवर्षे दिष्ट्या चैवागतो ह्यसि ॥ कोयं स्यन्दनमारूढो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ ॥ ५ ॥ निर्लज्ज इव संयाति भयस्थानं न विन्दति ॥ रावणेनैवमुक्तस्तु पर्वतो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ शृणु वत्स यथातत्त्वं वक्ष्ये तव महामते ॥ एतेन निर्जिता लोका ब्रह्मा चैवाभितोषितः ॥ ७ ॥ एष गच्छति मोक्षाय सुसुखं स्थानमुत्तमम् ॥ तपसा निर्जिता लोका विक्रमेण यथा त्वया ॥ ८ ॥ प्रयाति पुण्यवान्वत्स सोमं पीत्वा न संशयः ॥ त्वं च राक्षसशार्दूल शूरः सत्यव्रतस्तथा ॥ ९ ॥ नेदृशेषु च क्रुध्यन्ति बलिनो ब्रह्मचारिषु ॥ अथापश्यद्रथवरं महाकायं महौजसम् ॥ १० ॥ जाज्वल्यमानं वपुषा गीतवादित्रसंकुलम् ॥ कैष गच्छति देवर्षे शोभमानो महाद्युतिः ॥ ११ ॥ किन्नरैश्च प्रगायद्भिर्नृत्यद्भिश्च मनोहरम् ॥ श्रुत्वा चैनमुवाचाथ पर्वतो मुनिसत्तमः ॥ १२ ॥ एष शूरो रणे योद्धा संग्रामेष्वनिवर्तकः ॥ युद्ध्यमानस्तथैवैष प्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ १३ ॥ कृती शूरो रणे जेता स्वाम्यर्थे त्यक्तजीवितः ॥ संग्रामे निहतो वीरान् हत्वा च सबलान्बहून् ॥ १४ ॥ इन्द्रस्यातिथिरेवैष ह्यथ वा यत्र चेच्छति ॥ नृत्तगीतविलासैस्तु सेव्यते नरसत्तमः ॥ १५ ॥ पप्रच्छ रावणो भूयः कोयं यात्यर्कसन्निभः ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा पर्वतो वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ य एष दृश्यते राजन् विमाने सर्वकाञ्चने ॥ अप्सरोगणसंयुक्ते पूर्णेन्दुसदृशाननः ॥ ॥ १७ ॥ सुवर्णदो महाराज विचित्राभरणाम्बरः ॥ एष गच्छति शीघ्रेण यानेन सुमहाद्युतिः ॥ १८ ॥ पर्वतस्य वचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवित् ॥ य एते यान्ति राजानो ब्रूहि तानृषिसत्तम ॥ १८ ॥ कोत्र मे याचतो दद्याद्युद्धातिथ्यं महाद्युतिः ॥ क्षिप्रमाख्याहि धर्मज्ञ पिता मे त्वं हि पर्वत ॥ २० ॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच रावणं पर्वतस्तदा ॥ स्वर्गार्थिनो महाराज नैते युद्धार्थिनो नृपाः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥

वक्ष्यामि च महाराज विचित्राभरणाम्बरः ॥ यस्तु राजा महातेजाः सप्तद्वीपेश्वरो महान् ॥ २२ ॥ मान्धाते-
त्यभिविख्यातः स ते युद्धं प्रदास्यति ॥ पर्वतस्य वचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥ कुत्रासौ वर्तते राजा तं
ममाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ अहं यास्यामि तत्राद्य यत्रासौ नगपुङ्गवः ॥ २४ ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा मुनिर्वचनमब्रवी-
त् ॥ युवनाश्वसुतो ह्येष मान्धाता राजसत्तमः ॥२५॥ सप्तद्वीपान् समुद्रान्तान् जित्वाद्य स्वर्गमेष्यति ॥ अथापश्यन्म-
हाबाहुर्विरिञ्चिवरदर्पितः ॥ २६ ॥ अयोध्याधिपतिं वीरं मान्धातारं नृपोत्तमम् ॥ सप्तद्वीपाधिपं यान्तं स्यन्दनेन
विराजितम् ॥ २७ ॥ काञ्चनेन विचित्रेण महाहारेण भास्वता ॥ जाज्वल्यमानं रूपेण दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ २८॥
तमुवाच दशग्रीवो युद्धं मे दीयतामिति ॥ एवमुक्तो दशग्रीवं प्रहस्येदमुवाच ह ॥ २९ ॥ यदि ते जीवितं नेष्टं ततो
युध्यस्व मामिति ॥ मान्धातुर्वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥ वरुणस्य कुबेरस्य यमस्यापि न विव्य-
थे ॥ किमरे मानुषात्त्वत्तो रावणो भयमाविशेत् ॥ ३१ ॥ एवमुक्त्वा दशग्रीवः क्रोधात्तं प्रदहन्निव ॥ आज्ञापयामा-
स तदा राक्षसान्युद्धदुर्मदान् ॥ ३२ ॥ अथ क्रुद्धास्तु सचिवा रावणस्य दुरात्मनः ॥ ववृषुः शरवर्षाणि शूरा युद्ध-
विशारदाः ॥ ३३ ॥ अथ राज्ञा बलवता कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ इषुभिस्ताडिताः सर्वे प्रहस्तशुकसारणाः ॥ ३४ ॥
महोदरविरूपाक्षमारीचाकम्पनादयः ॥ अथ प्रहस्तो नृपतिं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३५ ॥ अप्राप्तानेव तान् सर्वान् प्रचि-
च्छेद नृपोत्तमः ॥ भृशुण्डीभिश्च भल्लैश्च भिण्डिपालैश्च तोमरैः ॥ ३६ ॥ नरराजेन दह्यन्ते शलभा इव तेऽग्निना ॥ पु-
नर्नृपवरः क्रुद्धः पञ्चभिः प्रबिभेद तम् ॥ ३७ ॥ तोमरैः स महाघोरैः पुरा क्रौञ्चमिवाग्निजः ॥ ततो मुहुर्भ्रामयित्वा
मुद्गरं वज्रसन्निभम् ॥ ३८ ॥ मुमोच सोतिवेगेन राक्षसस्य रथं प्रति ॥ स पपात महावेगो मुद्गरो वज्रसन्निभः ॥
॥ ३९ ॥ घूर्णितो रावणस्तेन पतितः शक्रकेतुवत् ॥ तदा स नृपतिः प्रीतो हर्षोद्भूतबलो बभौ ॥ ४० ॥ ॥

सकलेन्दुकरैः स्पृष्टं यथाम्बु लवणाम्भसः ॥ ततो रक्षोबलं सर्वं महाभूतमचेतनम् ॥ ४१ ॥ परिवार्याथ तं तस्थौ
राक्षसेन्द्रं समन्ततः ॥ ततश्चिरात्समाश्वस्तो रावणो लोकरावणः ॥ ४२ ॥ मान्धातुः पीडयामास देहं लङ्केश्वरो
भृशम् ॥ रथं चाश्वयुजं क्षिप्रं बभञ्ज च महाबलः ॥ ४३ ॥ विरथः स रथं प्राप्य शक्तिं घण्टाट्टहासिनीम् ॥ मान्धाता
विप्रचिक्षेप तां बलाद्रावणं प्रति ॥ ४४ ॥ मरीचिमिव चार्कस्य चित्रभानोः शिखामिव ॥ दीप्यन्तीं रुचिराभासं
मान्धातृकरनिःसृताम् ॥ ४५ ॥ तामापतन्तीं शूलेन पौलस्त्यो रजनीचरः ॥ ददाह शक्तिं लङ्केशः पतङ्गमिव
पावकः ॥ ४६ ॥ यमदत्तं तु नाराचं निकृष्याथ दशाननः ॥ पातयामास वेगेन स तेनाभिहतो भृशम् ॥
॥ ४७ ॥ मूर्च्छितं नृपतिं दृष्ट्वा प्रहृष्टास्ते निशाचराः ॥ चुक्रुशुः सिंहनादांश्च क्ष्वेलन्तश्च निशाचराः ॥ ४८ ॥ लब्धसंज्ञो
मुहूर्तेन ह्ययोध्याधिपतिस्तदा ॥ तं दृष्ट्वा शत्रुभिः शत्रुं पूज्यमानं मुदान्वितैः ॥ ४९ ॥ जातकोपो दुराधर्षश्चन्द्रार्कसदृशद्युतिः
॥ महता शरवर्षेण पीडयन्राक्षसं बलम् ॥ ५० ॥ चापस्य च निनादेन तस्य बाणरवेण च ॥
संचचाल ततः सैन्यमुद्धूत इव सागरः ॥ ५१ ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं नरराक्षससंकुलम् ॥ क्रुधाविष्टौ महात्मानौ नरराक्षससत्तमौ
॥ ५२ ॥ कार्मुकासिधरौ वीरौ शरासनगतौ तथा ॥ मान्धाता रावणं चैव राक्षसश्चैव तं नृपम् ॥
॥ ५३ ॥ क्रोधेन महताविष्टौ शरवर्षं ववर्षतुः ॥ तौ परस्परसंक्षोभात्प्रहारैर्जर्जरीकृतौ ॥ ५४ ॥ रावणो रौद्रमस्त्रं तु प्रायुङ्क्त
स महाबलः ॥ आग्नेयेन स मान्धाता तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ५५ ॥ गान्धर्वेण दशग्रीवो वारुणेन स राजराट् ॥ गृहीत्वा
स तु ब्रह्मास्त्रं सर्वभूतभयावहम् ॥५६॥ तोलयामास मान्धाता दिव्यं पाशुपतं महत् ॥ तदस्त्रं घोररूपं तु त्रैलोक्यभयवर्धनम्
॥५७॥ दृष्ट्वा त्रस्तानि भूतानि स्थावराणि चराणि च॥वरदानात्तु रुद्रस्य तपसाधिगतं महत् ॥ ५८ ॥
ततः प्रकम्पितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ देवाः प्रकम्पिताः सर्वे लयं नागाश्च मेनिरे ॥ ५९ ॥ अथ तौ मुनिशार्दूलौ

ध्यानयोगादपश्यताम् ॥ पुलस्त्यो गालवश्चैव वरयामासतुर्नृपम् ॥ ६० ॥ उपलब्धैश्च विविधैर्वाक्यै राक्षससत्तमम् ॥ तौ तु कृत्वा परां प्रीतिं नरराक्षसयोस्तदा ॥ संप्रस्थितौ तु तौ हृष्टौ यथा येनैव चागतौ ॥ ६१ ॥ इत्यु०अधि०तृ०सर्गः॥३॥ गताभ्यामथ विप्राभ्यां रावणो राक्षसाधिपः ॥ दशयोजनसाहस्रं प्रथमं स मरुत्पथम् ॥ १ ॥ अत्यक्रामन्महातेजाः पुष्पकेण महाबलः॥ यत्र तिष्ठन्ति सन्न्यस्ता हंसाः सर्वगुणान्विताः ॥ २ ॥ अत ऊर्ध्वं द्वितीयं तु गत्वा चैष मरुत्पथम् ॥ दशयोजनसाहस्रं तद्धि वै परिगण्यते ॥ ३ ॥ तत्र मेघाः स्थिताः सर्वे त्रिविधा नित्यसंश्रिताः ॥ आग्नेयाः पक्षजा ब्राह्मास्त्रिविधा इति संस्थिताः ॥ ४ ॥ अथ गत्वा तृतीयं तु वायोः पन्थानमुत्तमम् ॥ नित्यं यत्र स्थिताः सिद्धाश्चारणाश्च मनस्विनः ॥ ५ ॥ दशैव तु सहस्राणि योजनानां तथैव च ॥ चतुर्थं वायुमार्गं तु गतवान्रावणस्तथा ॥ ६ ॥ वसन्ति यत्र नित्यं वै भूताश्च सविनायकाः ॥ अथ गत्वा तु वै शीघ्रं पञ्चमं वायुगोचरम् ॥ ७ ॥ दशैव तु सहस्राणि योजनानां तथैव च ॥ गङ्गा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा नागाश्च कुमुदादयः ॥ ८ ॥ कुञ्जरा यत्र तिष्ठन्ति ये च मुञ्चति शीकरान् ॥ गङ्गातोयेषु तिष्ठन्तः पुण्यं कुर्वन्ति सर्वशः ॥ ९ ॥ ततः करिकराद्भ्रष्टं वायुना लोलितं भृशम् ॥ जलं कुञ्जेषु पतितं हिमं भवति राघव ॥ १० ॥ ततो जगाम षष्ठं स वायुमार्गं महाद्युते ॥ योजनानां सहस्राणि तथैव तु स राक्षसः ॥ ११ ॥ यत्रास्ते गरुडो नित्यं ज्ञातिबान्धवसत्कृतः ॥ तथैव तु सहस्राणि योजनानां तथोपरि ॥ १२ ॥ सप्तमं वायुमार्गं तु यत्र वै ऋषयः स्थिताः ॥ अत ऊर्ध्वं स गत्वाथ सहस्राणि दशैव तु ॥ १३ ॥ अष्टमं वायुमार्गं तु यत्र गङ्गा प्रतिष्ठिता ॥ आकाशगङ्गा विख्याता ह्यादित्यपथमास्थिता॥१४॥ वायुना धार्यमाणा सा महावेगा महास्वना॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि चन्द्रमा यत्र तिष्ठति ॥ १५ ॥ अशीतिस्तु सहस्राणि योजनानां तथोपरि ॥ चन्द्रमा तिष्ठते यत्र ग्रहनक्षत्रसंयुतः ॥ १६ ॥ शतं शतसहस्राणि रश्मयश्चन्द्रमण्डलात् ॥ प्रकाशयन्ति लोकांस्तु सर्वसत्त्वसुखावहाः ॥ १७ ॥ ॥

ततो दृष्ट्वा दशग्रीवं चन्द्रमा निर्दहन्निव ॥ स तु शीताग्निना शीघ्रंप्रादहद्रावणं तदा ॥ १८ ॥ नासहंस्तस्य सचिवाः शीताग्निं भयपीडिताः ॥ रावणं जयशब्देन प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ १९ ॥ राजन् शीतेन बाध्यामो निवर्ताम इतो वयम् ॥ चन्द्ररश्मिप्रतापेन रक्षसां भयमाविशत् ॥ २० ॥ स्वभासा ह्येष राजेन्द्र शीतांशुर्दहनात्मकः ॥ एतच्छ्रुत्वा प्रहस्तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ २१ ॥ विस्फार्य धनुरुद्यम्य नाराचैस्तं ह्यपीडयत् ॥ अथ ब्रह्मा समागम्य चन्द्रलोकं त्वरान्वितः ॥ २२ ॥ दशग्रीव महाबाहो साक्षाद्विश्रवसः सुत ॥ गच्छ शीघ्रमितः सौम्य मा चन्द्रं पीडयाशुगैः ॥ २३ ॥ लोकस्य हितकामोयं द्विजराजो महाद्युतिः ॥ मन्त्रं च ते प्रदास्यामि प्राणात्ययभयेऽभयम् ॥ २४ ॥ य स्त्विमं संस्मरेन्मन्त्रं न स मृत्युमवाप्नुयात् ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥ यदि तुष्टोसि मे देव अनुग्राह्यो यदि ह्यहम् ॥ यदि मन्त्रेश्वरो देयो दीयतां मम धार्मिक ॥२६॥ यं जप्त्वाहं महाभाग सर्वदेवेषु निर्भयः ॥ अमरेषु च सर्वेषु दानवेषु पतत्त्रिषु ॥ २७ ॥ त्वत्प्रसादात्तु देवेश न भयं विद्यते मम ॥ एवमुक्तो दशग्रीवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ॥ २८ ॥ प्राणात्ययये तु वै दद्मि न नित्यं राक्षसाधिप ॥ अक्षसूत्रं गृहीत्वा तु जपेन्मन्त्रमिमं शुभम् ॥ २९ ॥ अजप्त्वा राक्षसश्रेष्ठ न ते सिद्धिर्भविष्यति ॥ शृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि येन राक्षसपुङ्गव ॥ ३० ॥ मन्त्रस्य कीर्तनादेव प्राप्स्यसे समरे जयम् ॥ नमस्ते देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत ॥ ३१ ॥ भूतभव्यमहादेव हर पिङ्गललोचन ॥ बालस्त्वं वृद्धरूपी च वैयाघ्रवसनच्छद ॥ ३२ ॥ आरुणेयोसि देव त्वं त्रैलोक्यप्रभुरीश्वरः ॥ हरो हरितनेमिस्त्वं युगान्तदहनोनलः ॥ ३३ ॥ गणेशो लोकशम्भुश्च लोकपालो महाभुजः ॥ महादेवो महाशूली महादंष्ट्रो महाभुजः ॥ ॥ ३४ ॥ कालश्च कालरूपी च नीलग्रीवो महोदरः ॥ वेदान्तगो वेदमयः पशूनां पतिरव्ययः ॥ ३५ ॥ शूलधृच्छूलकेतुश्च नेता गोप्ता हरिः शिवः ॥ जटी मुण्डी शिखण्डी च लगुडी च महायशाः ॥ ३६ ॥ ॥

भूतेश्वरो गणाध्यक्षः सर्वात्मा सर्वभावनः ॥ सर्वदः सर्वहारी च स्रष्टा च गुरुरव्ययः ॥ ३७ ॥ कमण्डलुधरो देवः पिनाकी
धूर्जटिस्तथा ॥ माननीयोर्हणीयश्च ओंकारः सामवेदगः ॥ ३८ ॥ मृत्युश्च मृत्युदूतश्च पारियात्रश्च सुव्रतः ॥ ब्रह्मचारी
गृही योगी वीणापणवतूणवान् ॥ ३९ ॥ अमरो दर्शनीयश्च बालसूर्यनिभस्तथा ॥ श्मशानचारी भगवानुमापतिररिन्दमः
॥ ४० ॥ भगनेत्रः प्रहर्ता च पूषदन्तनिपातनः ॥ ज्वरहर्ता पाशहस्तः प्रलयः काल एव च ॥ ४१ ॥
उल्कामुखोग्निकेतुश्च मुनिर्दीप्तो विशांपतिः ॥ उन्मादमोहनकरः समर्थस्त्रिदशोत्तमः ॥ ४२ ॥ वामनो वामदेवश्च
प्राग्दक्षिणयश्च नामतः ॥ भिक्षुश्च भिक्षुरूपी च त्रिजटी जटिलः स्वयम् ॥ ४३ ॥ चक्रहस्तः प्रतिष्टम्भी चमूनां स्तम्भनस्तथा
॥ ऋतुर्ऋतुकरः कालो मधुर्मधुरलोचनः ॥४४॥ वानस्पत्यः शीकरश्च नित्यमाश्रितपूजितः ॥ जगद्धाता च
कर्ता च पुरुषः शाश्वतो ह्यजः ॥ ४५ ॥ धर्माध्यक्षो विरूपाक्षस्त्रिवर्त्मा भूतभावनः ॥ त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च सूर्यायुतसमप्रभः
॥ ४६ ॥ देवदेवोभिदेवश्च चन्द्राङ्कितजटस्तथा ॥ नर्तको लासकश्चैव पूर्णेन्दुसदृशाननः ॥ ४७ ॥ सुब्रह्मण्यः
शरण्यश्च सर्वदेवमयस्तथा ॥ सर्वभूतनिवासश्च सर्वबन्धविमोचकः ॥ ४८ ॥ मोहनो वञ्चकश्चैव सर्पधारी वरोत्तमः ॥
पुष्पदन्तो विभागश्च मुख्यः सर्वहरस्तथा ॥ ४९ ॥ हरिश्मश्रुर्धनुर्धारी भीमो भीमपराक्रमः ॥ भक्ताभीष्टप्रदः स्थाणुः
परमात्मा सनातनः ॥ ५० ॥ मया प्रोक्तमिदं पुण्यं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥ जप्यमेतद्दशग्रीव कुर्याच्छत्रुविनाशनम् ॥
॥ ५१ ॥ दत्त्वा तु रावणस्येदं वरं स कमलोद्भवः ॥ पुनरेव जगामाशु ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ५२ ॥ रावणोपि वरं लब्ध्वा
पुनरेवागमत्तदा ॥ निवर्तमानः संहृष्टो रावणः स दुरात्मवान् ॥ ५३ ॥ जह्ने पथि नरेन्द्रर्षिदेवगन्धर्वकन्यकाः ॥ ५४ ॥
॥ ॥ ॥
इत्युत्तरश्रीरामायणे अधिकपाठे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥
केन चित्त्वथ कालेन रावणः प्रययौ गृहात् ॥ पश्चिमार्णवमागच्छत् सचिवैः सह राक्षसैः ॥ १ ॥

द्वीपस्थो ददृशे तेन पुरुषः पावकप्रभः ॥ महाजाम्बूनदप्रख्य एक एव व्यवस्थितः ॥ २ ॥ यथा दृश्येत भयदो
युगान्तानल उत्थितः ॥ देवानामिव देवेशो ग्रहाणामिव भास्करः ॥ ३ ॥ शरभाणां यथा सिंहो हस्तिष्वैरावतो
यथा ॥ पर्वतानां यथा मेरुः पारिजातश्च शाखिनाम् ॥ ४ ॥ तथा तं पुरुषं दृष्ट्वा कुण्डमध्येऽनलं तथा ॥ गर्जन्तं
विविधैर्नादैर्लम्बहस्तं भयानकम् ॥ ५ ॥ दंष्ट्रालं विकटं चैव कम्बुग्रीवं महौजसम् ॥ मण्डूककुक्षिं पिङ्गाक्षं कैला-
सशिखरोपमम् ॥ ६ ॥ पद्मपादतलं भीमं रक्ताम्बुजनिभाननम् ॥ महाकायं महानादं मनोनिलसमं जवे ॥ ७ ॥
भीममाबद्धतूणीरं संघट्टं बद्धचामरम् ॥ ज्वालामालापरिक्षिप्तं किङ्किणीकृतनिस्वनम् ॥ ८ ॥ मालया स्वर्णपद्मा-
नां वक्षोदेशावलम्बया ॥ ऋग्वेदमिव शोभन्तं पद्ममालाविभूषितम् ॥ ९ ॥ सोऽञ्जनाचलसंकाशः काञ्चनाचलस-
न्निभम् ॥ अब्रवीत्तं दशग्रीवो युद्धं मे दीयतामिति ॥ १० ॥ जगर्ज चोच्चैर्बलवान् सहामात्यो दशाननः ॥ धृत्वा स
राक्षसपतिः शूलशक्त्यृष्टिपट्टिशान् ॥ ११ ॥ स द्वीपिना सिंह इव शलभेनेव कुञ्जरः ॥ सुमेरुरिव छागेन नदीवेगै-
रिवार्णवः ॥ १२ ॥ अकम्प्यमानः पुरुषो रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ युद्धश्रद्धां हि ते रक्षो नाशयिष्यामि दुर्मते ॥१३॥
रावणस्य च यो वेगः सर्वलोकभयावहः ॥ तथा वेगसहस्राणि संश्रितानि तमेव हि ॥ १४ ॥ अभवत्तस्य सा दृष्टि-
र्गृहमालेव चाद्भुता ॥ दन्तानां दशतः शब्दो यन्त्रस्येवातिभीकरः ॥ १५ ॥ धर्मस्तस्य तपश्चैव जगतः सिद्धिहेतु-
के ॥ ऊरू संश्रित्य तस्थाते मन्मथः शिश्नमास्थितः ॥ १६ ॥ विश्वेदेवाः कटीभागे मरुतो यस्य शीर्षगाः ॥ मध्ये-
ष्टौ वसवस्तस्य समुद्राः कुक्षिसंस्थिताः ॥ १७ ॥ पार्श्वस्थाश्च दिशः सर्वाः सर्वसन्धिषु मारुताः ॥ पितरश्चाश्रि-
ताः पृष्ठं हृदयं च पितामहः ॥ १८ ॥ गोदानानि पवित्राणि भूमिदानानि यानि च ॥ सुवर्णस्य च दानानि शश्वल्लो-
माश्रितानि वै ॥ १९ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च मन्दरो मेरुरेव च ॥ नरं तु तं समाश्रित्य ह्यसिभूता व्यवस्थिताः ॥ २० ॥

महीवक्षोभवत्तस्य शरीरे द्यौरवस्थिता ॥ उभे सन्ध्ये कायसन्धौ जलवाहाश्च मेहने ॥ २१ ॥ बाहू धाता विधाता
च भगः पूषा उभौ करौ ॥ ऐरावतो विशालाक्षः शेषो वासुकिरेव च ॥ २२ ॥ कम्बलाश्वतरौ नागौ कर्कोटकधनंजयौ
॥ स च घोरविषो नागस्तक्षकश्चोपतक्षकः ॥ २३ ॥ करजानाश्रितास्तस्य विषवीर्यं मुमुक्षवः ॥ अग्निरास्यमभूत्तस्य
स्कन्धौ रुद्रैरधिष्ठितौ ॥ २४ ॥ दन्तान्मासा दंष्ट्रयोश्च उभयोर्ऋतवः स्थिताः ॥ नासे कुहूरमावास्या तच्छिद्रेषु
च वायवः ॥ २५ ॥ ग्रीवा तस्याभवद्देवी वाणी चापि सरस्वती ॥ नासत्यौ श्रवणे चोभौ नेत्रे च शशिभास्करौ
॥ २६ ॥ वेदाङ्गानि च यज्ञाश्च नानारूपाणि यानि च ॥ सुवृत्तानि च वाक्यानि तेजस्सिद्धिस्तपांसि च ॥ २७ ॥ एतानि
नररूपस्य तस्य देहं श्रितानि वै ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण स्वल्पमात्रेण लीलया ॥ २८ ॥ पाणिना ताडितं रक्षो निपपात
महीतले ॥ पतितं राक्षसं ज्ञात्वा विद्राव्य च निशाचरान् ॥ २९ ॥ ऋग्वेदप्रतिमः सोथ पद्ममालाविभूषितः ॥
प्रविवेश च पातालं गच्छत्पर्वतसन्निभः ॥ ३० ॥ उत्थाय च दशग्रीव आहूय सचिवान् स्वयम् ॥ क्व गतः सहसा ब्रूत
प्रहस्तशुकसारणाः ॥ ३१ ॥ एवमुक्ता रावणेन राक्षसास्तमथाब्रुवन् ॥ प्रविष्टः स नरोत्रैव देवदानवदर्पहा ॥ ३२ ॥
अथासिं गृह्य वेगेन गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ शीघ्रं स तु बिलद्वारं प्रविवेश च दुर्मतिः ॥ ३३ ॥ प्रविश्य च स तद्द्वारं
रावणो वरनिर्भयः ॥ अपश्यच्च नरांस्तत्र नीलाञ्जनचयोपमान् ॥ ३४ ॥ केयूरधारिणः शूरान् रक्तमाल्यानुलेपनान्
॥ अङ्गुलीयकहाराद्यैर्भूषणैश्च विभूषितान् ॥ ३५ ॥ दृश्यन्ते तत्र नृत्यन्त्यस्तिस्रः कोट्यो महात्मनाम् ॥ नित्योत्सवाः
शान्तभया विमलाः पावकप्रभाः ॥ ३६ ॥ क्रीडतः प्रेक्षते तान्वै राक्षसो भीमविक्रमः ॥ द्वारस्थो रावणस्तेषां
तासु कोटीषु निर्भयः ॥ ३७ ॥ यथा दृष्टः स तु नरस्तुल्यांस्तांस्तस्य सर्वशः ॥ एकवर्णांस्त्वेकबलानेकरूपान्महौजसः
॥ ३८ ॥ चतुर्भुजान्महोत्साहान् तत्रापश्यत्स रावणः ॥ तान् दृष्ट्वाथ दशग्रीव ऊर्ध्वरोमा बभूव ह ॥ ३९ ॥

स्वयंभुवा दत्तवरस्ततः शीघ्रं विनिर्ययौ ॥ अथापश्यत्परं तत्र भुजङ्गशयने स्थितम् ॥ ४० ॥ पाण्डुरेण महार्हेण
कौस्तुभेन विराजितम् ॥ शेते स पुरुषस्तत्र पावकेनावकुण्ठितः ॥ ४१ ॥ दिव्यस्रगनुलेपी च दिव्याभरणभूषि-
तः ॥ दिव्याम्बरधरा साध्वी त्रैलोक्यस्य विभूषणम् ॥ ४२ ॥ वालव्यजनहस्ता च देवी तत्र व्यवस्थिता ॥ ल-
क्ष्मीर्बहिः सपद्मा वै भ्राजन्ती लोकसुन्दरी ॥ ४३ ॥ प्रहृष्टः स तु लङ्केशो दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम् ॥ जिघृक्षुः स त-
दा साध्वीं सिंहासनमुपाश्रिताम् ॥ ४४ ॥ विना तु सचिवैस्तत्र रावणो दुर्मतिस्तदा ॥ हस्तैर्ग्रहीतुं तामैच्छन्मन्म-
थेन वशीकृतः ॥ ४५ ॥ सुप्तमाशीविषं यद्वद्रावणः कालचोदितः ॥ अथ सुप्तो महाबाहुः पावकेनावकुण्ठितः ॥ ४६ ॥
ग्रहीतुकामं तं ज्ञात्वा व्यपविध्य पटं तदा ॥ जहासोच्चैर्भृशं देवस्तं दृष्ट्वा राक्षसाधिपम् ॥ ४७ ॥ तेजसा तस्य संदी-
प्तो रावणो लोकरावणः ॥ घ्राणवातेन दीर्घेण तस्मिन्राम रसातले ॥ ४८ ॥ कृत्तमूलो यथा शाखी निपपात मही-
तले ॥ पतितं राक्षसं ज्ञात्वा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ उत्तिष्ठ राक्षसश्रेष्ठ मृत्युस्तेनाद्य विद्यते ॥ प्रजापतिवरो
रक्ष्यो येन जीवसि रावण ॥ ५० ॥ गच्छ रावण विस्रब्धं नात्र वै मरणं तव ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन राक्षसो भीम-
विक्रमः ॥ ५१ ॥ तं तु दृष्ट्वा महात्मानं रावणो भयमाप सः ॥ एवमुक्तस्तदोत्थाय रावणो देवकण्टकः ॥ ५२ ॥ रो-
महर्षणमापन्नो ह्यब्रवीत्तं महामुनिम् ॥ को भवाञ्छौर्यसंपन्नो युगान्तानलसन्निभः ॥ ५३ ॥ ब्रूहि त्वं देवदेवो वा स-
र्वदेहेषु सुस्थितः ॥ एवमुक्तः स तेनाथ रावणेन दुरात्मना ॥ ५४ ॥ प्रत्युवाच हसन् देवो मेघगम्भीरया गिरा ॥ किं
त्वं मया दशग्रीव वध्योसि न चिरादिह ॥ ५५ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ प्रजापतेस्तु वचना-
न्नाहं मृत्युवशं गतः ॥ ५६ ॥ स न जातो जनिष्यो वा मत्तुल्यो वा सुरेष्वपि ॥ प्रजापतिवरं यो हि लङ्घयेद्वीर्यमा-
श्रितः ॥ ५७ ॥ न तत्र परिहारोस्ति प्रयत्नश्चापि दुर्लभः ॥ त्रैलोक्ये तन्न पश्यामि यस्तत्कुर्याद्वरं वृथा ॥ ५८ ॥

अमरो वा सुरश्रेष्ठ तेन मां नाविशद्भयम् ॥ अथापि च भवेन्मृत्युस्त्वत्तो मे नान्यतः प्रभो ॥५९॥ यशस्यं श्लाघनीयं
च त्वत्तो मे मरणं त्विदम् ॥ अथापश्यत्तस्य गात्रे रावणो भीमविक्रमः ॥ ६० ॥ देवदेवस्य सकलं त्रैलोक्यं सचराच-
रम् ॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोथाश्विनावपि ॥ ६१ ॥ सिद्धाश्च पितरश्चैव यमो वैश्रवणस्तथा ॥ समुद्रा गिरयो
नद्यो विद्या वेदास्त्रयोग्नयः ॥ ६२ ॥ ग्रहास्तारागणा व्योम साध्या गन्धर्वचारणाः ॥ महर्षयो वेदविदो गरुडोथ भुजङ्ग-
माः ॥ ६३ ॥ ये चान्ये संस्थिता देवा दैत्यदानवराक्षसाः ॥ गात्रेषु शयनस्थस्य दृश्यन्ते सूक्ष्ममूर्तयः ॥ ६४ ॥ आह
रामोथ धर्मात्मा ह्यगस्त्यं मुनिसत्तमम् ॥ द्वीपस्थः पुरुषः कोसौ तिस्रः कोट्यश्च ताश्च काः ॥ ६५ ॥ शयानः पुरुषः
कश्चिद्दैत्यदानवदर्पहा ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा ह्यगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६६ ॥ श्रूयतामभिधास्यामि देवदेवः सना-
तनः ॥ भगवान् कपिलो राम द्वीपस्थो नर उच्यते ॥ ६७॥ स वै नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ विधाता चैव
भूतानां संहर्ता च तथैव च ॥६८॥ अनादिरच्युतो विष्णुः प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः ॥ ये तु नृत्यन्ति वै तत्र सुरास्ते तस्य
धीमतः ॥ ६९ ॥ तुल्यतेजःप्रतापास्ते कपिलस्य नरस्य वै ॥ नातिक्रुद्धेन दृष्टस्तु राक्षसः पापनिश्चयः ॥ ७० ॥ न बभूव
ततो राम भस्मसाद्रावणः प्रभो ॥ भिन्नगात्रो नगप्रख्यो रावणः पतितो भुवि॥७१॥ वाक्छरैस्तं बिभेदाशु रहस्यपिशुनो
यथा ॥ अथ दीर्घेण कालेन लब्धसंज्ञः स राक्षसः ॥ ७२ ॥ आजगाम हतौजास्तु यत्र ते सचिवाः स्थिताः ॥ तैरेव स-
हितो लङ्कां जगामाशु दशाननः ॥ ७३ ॥ श्रुत्वैतद्वचनं सर्वमाश्चर्यमिति राघवः ॥ पूज्यमानाः स्थितास्तत्र ये रामस्य
समीपतः ॥ ७४ ॥ आश्चर्यमिति तत्प्राहुर्वानरा राक्षसैः सह ॥ बिभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७५ ॥
आश्चर्यं स्मारितोस्म्यद्य यत्तद्वृत्तं पुरातनम् ॥ अथागस्त्योब्रवीत्सर्वमेतद्राम श्रुतं त्वया ॥७६॥ दृष्टाः सभाजिताश्चापि
राम यास्यामहे वयम्॥तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो रमयतां वरः॥७७॥इत्युत्तरश्रीरामायणे अधिकपाठे पञ्चमः सर्गः॥५॥

॥ १ ॥ दर्शनीयामिति ॥ रक्षः स इति संवन्धः । कन्या अनूढा । स्त्री सभर्तृका ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ताभिरिति ॥ भयशोकाभ्याम् अशिवमश्रु यासां

निवर्तमानः संहृष्टो रावणः सुदुरात्मवान् ॥ जह्रे पथि नरेन्द्रर्षिदेवगन्धर्वकन्यकाः ॥ १ ॥ दर्शनीयां हि रक्षः स कन्यां स्त्रीं वाथ पश्यति ॥ हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध ह ॥ २ ॥ एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः ॥ यक्षदानवकन्याश्च विमाने सोध्यरोपयत् ॥ ३ ॥ ताश्च सर्वाः समं दुःखान्मुमुचुर्बाष्पजं जलम् ॥ तुल्यमग्न्यर्चिषां तत्र शोकाग्निभयसंभवम् ॥ ४ ॥ ताभिः सर्वानवद्याभिर्नदीभिरिव सागरः ॥ आपूरितं विमानं तद्भयशोकाशिवाश्रुभिः ॥ ५ ॥ नागगन्धर्वकन्याश्च महर्षितनयाश्च याः ॥ दैत्यदानवकन्याश्च विमाने शतशोरुदन् ॥ ६ ॥ दीर्घकेश्यः सुचार्वङ्ग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ पीनस्तन्यस्तथा वज्रवेदिमध्यसमप्रभाः ॥ ७ ॥ रथकूबरसंकाशैः श्रोणिदेशैर्मनोहराः ॥ स्त्रियः सुराङ्गनाप्रख्या निष्टप्तकनकप्रभाः ॥ ८ ॥ शोकदुःखभयत्रस्ता विह्वलाश्च सुमध्यमाः ॥ तासां निश्वासवातेन सर्वतः संप्रदीपितम् ॥ ९ ॥ अग्निहोत्रमिवाभाति सन्निरुद्धाग्निपुष्पकम् ॥ दशग्रीववशं प्राप्तास्तास्तु शोकाकुलाः स्त्रियः ॥ १० ॥ दीनवक्त्रेक्षणाः श्यामा मृग्यः सिंहवशा इव ॥ काचिच्चिन्तयती तत्र किं नु मां भक्षयिष्यति ॥ ११ ॥ काचिद्दध्यौ सुदुःखार्ता अपि मां मारयेदयम् ॥ इति मातृपितॄन् स्मृत्वा भर्तॄन् भ्रातॄंस्तथैव च ॥ दुःखशोकसमाविष्टा विलेपुः सहिताः स्त्रियः ॥ १२ ॥ कथं नु खलु मे पुत्रो भविष्यति मया विना ॥ कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे ॥ १३ ॥ हा कथं नु करिष्यामि भर्तुस्तस्मादहं विना ॥ मृत्यो प्रसादयामि त्वां नय मां दुःखभागिनीम् ॥ १४ ॥ किन्नु तद्दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ॥ १५ ॥

ताभिः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ अग्निहोत्रमिति ॥ सन्निरुद्धा अग्नयो यस्मिंस्तादृशम् अग्निहोत्रमग्निकुण्डमिव पुष्पकं भाति ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ इदमिति ॥ परक्यासु परकीयासु ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ सोपीति ॥

एवं स्म दुःखिताः सर्वाः पतिताः शोकसागरे ॥ न खल्विदानीं पश्यामो दुःखस्यास्यान्तमात्मनः ॥ १६ ॥ अहो धिङ्
मानुषं लोकं नास्ति खल्वधमः परः ॥ यद्दुर्बला बलवता भर्तारो रावणेन नः ॥१७॥ सूर्येणोदयता काले नक्षत्राणीव
नाशिताः ॥ अहो सुबलवद्रक्षो वधोपायेषु युज्यते ॥ १८ ॥ अहो दुर्वृत्तमास्थाय नात्मानं वै जुगुप्सते ॥ सर्वथा
सदृशस्तावद्विक्रमोस्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥ इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् ॥ यस्मादेष परक्यासु
रमते राक्षसाधमः ॥ २० ॥ तस्माद्वै स्त्रीकृतेनैव प्राप्स्यते दुर्मतिर्वधम् ॥ सतीभिर्वरनारीभिरेवं वाक्येभ्युदीरिते ॥
॥ २१ ॥ नेदुर्दुन्दुभयः खस्थाः पुष्पवृष्टिः पपात च ॥ शप्तः स्त्रीभिः स तु समं हतौजा इव निष्प्रभः ॥ २२ ॥ पतिव्रताभिः
साध्वीभिर्बभूव विमना इव ॥ एवं विलपितं तासां शृण्वन् राक्षसपुङ्गवः ॥ प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः
॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे घोरा राक्षसी कामरूपिणी ॥ सहसा पतिता भूमौ भगिनी रावणस्वसा ॥ २४ ॥ तां स्वसारं
समुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ॥ अब्रवीत्किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मे द्रुतम् ॥ २५ ॥ सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी
रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत् ॥ कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात् ॥ २६ ॥ एते राजंस्त्वया वीरा दैत्या विनिहता
रणे ॥ कालकेया इति ख्याताः सहस्राणि चतुर्दश ॥ २७ ॥ प्राणेभ्योपि गरीयान्मे तत्र भर्ता महाबलः ॥२८॥
सोपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगृध्नुना॥त्वयास्मि निहता राजन्स्वयमेव हि बन्धुना॥२९॥राजन्वैधव्यशब्दं च
भोक्ष्यामि त्वत्कृते ह्यहम् ॥ ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ॥ स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे ॥३०॥

यतो मे भर्ता हतः अत एव साहं स्वयं स्वबन्धुनैव त्वया निहतास्मि ॥२९॥ राजन्नित्यादि सार्धम् ॥ नन्विति पृथक् पदम् । जामाता नाम समरेष्वपि रक्ष्यो ननु नेति काकुः । रक्ष्य एव किलेत्यर्थः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अस्मिनितिअस्मिन् काले तु यत्प्राप्तं मत्कर्तव्यत्वेनेति शेषः। मातृष्वसेयस्य खरस्य भ्रातृत्वात् भ्रातुरित्युच्यते। पार्श्वतो वनसमीपे वसेत्यर्थः। मम तु राज्यपरवशस्य न त्वत्संमानने अवकाश इति भावः ॥ ३५ ॥ चतुर्दशानामिति ॥ चतुर्दशानां सहस्राणां प्रयाणे प्रेषणे

एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्याक्रोशमानया ॥ अब्रवीत्सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः ॥ ३१ ॥ अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः ॥ दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नतः ॥ ३२ ॥ युद्धप्रमत्तो व्याक्षिप्तो जयकाङ्क्षी क्षिपञ्छरान् ॥ नावगच्छामि युद्धेषु स्वान् परान्वाप्यहं शुभे ॥३३॥ जामातरं न जाने स्म प्रहरन्युद्धदुर्मदः ॥ तेनासौ निहतः संख्ये मया भर्ता तव स्वसः ॥ ३४ ॥ अस्मिन् काले तु यत्प्राप्तं तत्करिष्यामि ते हितम् ॥ भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः ॥ ३५ ॥ चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ॥ प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः ॥ ३६ ॥ तत्र मातृष्वसेयस्ते भ्रातायं वै खरः प्रभुः ॥ भविष्यति तवादेशं सदा कुर्वन्निशाचरः ॥ ३७ ॥ शीघ्रं गच्छत्वयं वीरो दण्डकान् परिरक्षितुम् ॥ दूषणोस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः ॥ ३८ ॥ तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति सदा खरः ॥ रक्षसां कामरूपाणां प्रभुरेष भविष्यति ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेश ह ॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां वीर्यशालिनाम् ॥४०॥ स तैः परिवृतः सर्वै राक्षसैर्घोरदर्शनैः ॥ अगच्छत खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः ॥ ४१ ॥ स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम् ॥ सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसद्दण्डकावने ॥ ४२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥ ॥

स तु दत्त्वा दशग्रीवो वनं घोरं खरस्य तत् ॥ भगिनीं च समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोभवत् ॥ १ ॥ ॥

दाने अन्नपानवस्त्रादिदाने प्रभुस्ते भ्रातेत्यन्वयः।भविष्यतीति। तवादेशं त्वद्वचः सदा कुर्वन्भविष्यति ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥ स तु दत्त्वेत्यादि ॥ १ ॥ ॥

तत इति ॥ निकुम्भिला नाम लङ्कायाः पश्चिमद्वारवर्ति काननम् ॥२॥ तत इति ॥ चैत्यं देवायतनम्। विष्ठितं प्रवृत्तम्। कमण्डलुः शिखा दण्डो ध्वजश्च यस्य

ततो निकुम्भिला नाम लङ्कोपवनमुत्तमम् ॥ तद्राक्षसेन्द्रो बलवान् प्रविवेश सहानुगः ॥ २ ॥ ततो यूपशताकीर्णं
सौम्यचैत्योपशोभितम् ॥ ददर्श विष्ठितं यज्ञं श्रिया संप्रज्वलन्निव ॥ ३ ॥ ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम्
॥ ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादं भयावहम् ॥ ४ ॥ तं समासाद्य लङ्केशः परिष्वज्याथ बाहुभिः ॥ अब्रवीत्किमिदं
वत्स वर्तसे ब्रूहि तत्त्वतः ॥५॥ उशना त्वब्रवीत्तत्र यज्ञसंपत्समृद्धये ॥ रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विजश्रेष्ठो महातपाः
॥ ६ ॥ अहमाख्यामि ते राजञ्छ्रूयतां सर्वमेव तत् ॥ यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्ताः सुबहुविस्तराः ॥७ ॥
अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः ॥ राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥ ८॥ माहेश्वरे प्रवृत्ते
तु यज्ञे पुंभिः सुदुर्लभे ॥ वरांस्ते लब्धवान्पुत्रः साक्षात्पशुपतेरिह ॥ ९ ॥ कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं
ध्रुवम् ॥ मायां च तामसीं नाम यया संपद्यते तमः ॥ १० ॥ एतया किल संग्रामे मायया राक्षसेश्वर ॥
प्रयुक्तया गतिः शक्या न हि ज्ञातुं सुरासुरैः ॥ ११ ॥ अक्षयाविषुधी बाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम् ॥ अस्त्रं च बलवद्राजन्
शत्रुविध्वंसनं रणे ॥ १२ ॥ एतान्त्सर्वान्वरान् लब्ध्वा पुत्रस्तेयं दशानन ॥ अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिदृक्षुः
स्थितो ह्यहम् ॥ १३ ॥ ततोब्रवीद्दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम् ॥ पूजिताः शत्रवो यस्माद्द्रव्यैरिन्द्रपुरोगमाः ॥
॥ १४ ॥ एहीदानीं कृतं विद्धि सुकृतं तन्न संशयः ॥ आगच्छ सौम्य गच्छाम त्वमेव भवनं प्रति ॥ १५ ॥ ततो गत्वा
दशग्रीवः सपुत्रः सविभीषणः ॥ स्त्रियोवतारयामास सर्वास्ता बाष्पगद्गदाः ॥ १६ ॥ ॥ ॥

स तथा। अनेन ब्रह्मचर्यं सूचितम्। न तु ब्रह्मचर्याश्रमः। अग्निष्टोमादियाजित्वं ध्यात्वोपदेशात् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उशना इति ॥ उशना गुरुः शुक्राचार्यः। प्रवर्तकत्वात् स्वयमब्रवीदिति भावः ॥ ६ ॥ अहमिति ॥ यज्ञाः प्रसिद्धाः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ ईदृशैरिति ॥ स्वमतेन स्वेच्छया । उल्लङ्घितशास्त्रमर्यादयेत्यर्थः ॥ १८ ॥ ज्ञातीनिति ॥ ज्ञातीन् आनीतस्त्रीबन्धून् । अस्य कर्मणः परदारापहरणरूपपापस्य । फलमागतं स्वीयस्वसुर्बलान्मधुना हरणम् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२॥ पितेति ॥ अस्माकं जनन्याः सुमालिसुतायाः कैकस्याः ज्येष्ठा भगिनी काचिदस्ति । सा तु नाम्ना पुष्पोत्कचा । अपरा कुम्भीनसीति पूर्वमुक्ता । अस्माकं त्वार्यको माल्यवान् अस्माकं ज्येष्ठमाता-

लक्षिण्यो रत्नभूताश्च देवदानवरक्षसाम् ॥ तस्य तासु मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ ईदृशैस्त्वं
समाचारैर्यशोर्थकुलनाशनैः ॥ धर्षणं ज्ञातिनां ज्ञात्वा स्वमतेन विचेष्टसे ॥ १८ ॥ ज्ञातींस्तान्धर्षयित्वेमास्त्वया-
नीता वराङ्गनाः ॥ त्वामतिक्रम्य मधुना राजन्कुम्भीनसी हृता ॥ १९ ॥ रावणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नावगच्छामि
किञ्चिदम् ॥ कोयं यस्तु त्वयाख्यातो मधुरित्येव नामतः ॥ २० ॥ बिभीषणस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवी-
त् ॥ श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतम् ॥ २१ ॥ मातामहस्य यो भ्राता ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः ॥
माल्यवानिति विख्यातो वृद्धः प्राज्ञो निशाचरः ॥ २२ ॥ पिता ज्येष्ठो जनन्या नो ह्यस्माकं चार्यकोऽभवत् ॥
तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिताभवत् ॥ २३ ॥ मातृष्वसुरथास्माकं सा च कन्यानलोद्भवा ॥ भवत्यस्मा-
कर्मैवैषा भ्रातॄणां धर्मतः स्वसा ॥ २४ ॥ सा हृता मधुना राजन् राक्षसेन बलीयसा ॥ यज्ञप्रवृत्ते पुत्रे तु मयि चान्त-
र्जलोषिते ॥ २५ ॥ कुम्भकर्णे महाराज निद्रामनुभवत्यथ ॥ निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यानिह संमतान् ॥ २६ ॥

महः । अस्माकं जनन्याश्च ज्येष्ठः पिता । तस्य माल्यवतः कुम्भीनसी नाम दुहितास्ति । अनलोद्भवा अनला माल्यवतः सुता तस्याः कन्या कुम्भीनसीत्यर्थः । अस्मन्मातामहस्य सुमालिनः द्वे पुत्र्यौ प्रसिद्धे । पुष्पोत्कचा कैकसी चेति । तयोर्ज्येष्ठः पिता माल्यवान् । तस्य पुत्री अनला । तस्याः कन्या कुम्भीनसी । सा अस्माकं स्वसा । ज्येष्ठमातामहपुत्र्याः पुत्रीत्वादत एव धर्मतः स्वसेत्युक्ता ॥ २३ ॥ २४ ॥ सेति ॥ यज्ञप्रमत्तः यज्ञेन प्रमत्तः । विस्मृतस्वगृहकृत्य इत्यर्थः । अन्तर्जलोषित इति तपोर्थमिति शेषः ॥ २५॥ कुम्भकर्ण इति ॥ इह गृहे । वर्तमानानिति शेषः । सम्मतान् सिद्धान् ॥ २६ ॥

धर्षयित्वेति ॥ श्रुत्वा चैवं मधुना स्वसृहरणं मत्वा अस्माकं क्षान्तमेव न तु मधुर्हतः ॥ २७ ॥ यस्मादिति ॥ भ्रातृभिरस्माभिरित्यर्थः । तदिति ।

धर्षयित्वा हृता सा तु सुप्ताप्यन्तःपुरे तव ॥ श्रुत्वापि तन्महाराज क्षान्तमेव हतो न सः ॥ २७ ॥ यस्मादवश्यं दातव्या कन्या भर्त्रे हि भ्रातृभिः ॥ तदेतत्कर्मणो ह्यस्य फलं पापस्य दुर्मते ॥ २८ ॥ अस्मिन्नेवाभिसंप्राप्तं लोके विदितमस्तु ते ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रः स रावणः ॥ दौरात्म्येनात्मनोद्धूतस्तप्ताम्भ इव सागरः ॥ २९ ॥ ततोब्रवीद्दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ॥ कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं शूराः सज्जीभवन्तु नः ॥ ३० ॥ भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ॥ वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणायुधाः ॥ ३१ ॥ अद्य तं समरे हत्वा मधुं रावणनिर्भयम् ॥ सुरलोकं गमिष्यामि युद्धाकाङ्क्षी सुहृद्वृतः ॥ ३२ ॥ अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वार्यग्र्याणि रक्षसाम् ॥ नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणाम् ॥ ३३ ॥ इन्द्रजित्त्वग्रजित्सैन्यात्सैनिकान् परिगृह्य च ॥ जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ॥ ३४ ॥ बिभीषणश्च धर्मात्मा लङ्कायां धर्ममाचरत् ॥ शेषाः सर्वे महाभागा ययुर्मधुपुरं प्रति ॥ ३५ ॥ खरैरुष्ट्रैर्हयैर्दीप्तैः शिंशुमारैर्महोरगैः ॥ राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाकाशं निरन्तरम् ॥ ३६ ॥ दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराश्च दैवतैः ॥ रावणं प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन्हि पृष्ठतः ॥ ३७ ॥ स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ॥ न ददर्श मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान् ॥ ३८ ॥ सा च प्रह्वाञ्जलिर्भूत्वा शिरसा चरणौ गता ॥ ३९ ॥ तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी तदा ॥ तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥

आहूय कल्याणपूर्वकं कन्यादानं विना बलात् कन्याग्रहणम् अस्य पापस्य कर्मणः फलम् ॥ २८ ॥ अस्मिन्निति ॥ अस्मिन्नेव दृष्टान्ते अभिसंप्राप्तम् अतःपरमन्यत्रापि लोके विदितमस्तु ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अद्येति ॥ रावणान्निर्भयो रावणनिर्भयः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

रावण इति ॥ अन्यदपि तव प्रियमित्यर्थः ॥४१॥ न हीति ॥ ईदृशं भयं भर्तृवधसंभवं भयमित्यर्थः ॥४२॥ सत्यवाग् भवेति ॥ न भेतव्यमिति वचनं स-

रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते ॥ साब्रवीद्यदि मे राजन् प्रसन्नस्त्वं महाभुज ॥ भर्त्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद ॥ ४१ ॥ न हीदृशं भयं किंचित्कुलस्त्रीणामिहोच्यते ॥ भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत् ॥ ॥ ४२ ॥ सत्यवाग्भव राजेन्द्र मामवेक्षस्व याचतीम् ॥ त्वयाप्युक्तं महाराज न भेतव्यमिति स्वयम् ॥ ४३ ॥ रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ॥ क्व चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्रं निवेद्यताम् ॥ ४४ ॥ सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयावहे ॥ तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोस्मि मधोर्वधात् ॥ ४५ ॥ इत्युक्ता सा समुत्थाप्य प्रसुप्तं तं निशाचरम् ॥ अब्रवीत्संप्रहृष्टेव राक्षसी सा पतिं वचः ॥ ४६ ॥ एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता महाबलः ॥ सुरलोकजयाकाङ्क्षी साहाय्ये त्वां वृणोति च ॥ ४७ ॥ तदस्य त्वं सहायार्थं सबन्धुर्गच्छ राक्षस ॥ स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम् ॥ ४८ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ॥ ४९ ॥ ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्याय्यमुपेत्य सः ॥ पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ५० ॥ प्राप्य पूजां दशग्रीवो मधुवेश्मनि वीर्यवान् ॥ तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ॥ ५१ ॥ ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम् ॥ राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ॥ ५२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥ ॥

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान् ॥ अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ॥ १ ॥ उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसिं ॥ प्रसुप्तं सुमहत्सैन्यं नानाप्रहरणायुधम् ॥ २ ॥ ॥

त्यं कुर्वित्यर्थः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ददर्शेति ॥ यथान्याय्यमिति अर्घ्याद्युपचारमित्यर्थः ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥ ॥ १ ॥ उदित इति ॥ तुल्यपर्वतवर्चसि

स्वनिविष्टकैलासवत्तुल्याभे ॥ २ ॥ रावण इति ॥ गुणान् भोगार्हधर्मान् ॥ ३ ॥ कर्णिकारेति ॥ कदम्बगहनैः कदम्बवनैः ॥ ४ ॥ ५ ॥ एतैरिति ॥ रक्ता रागयुक्ताः। मधुरकण्ठिनः मधुरकण्ठध्वनयः। समं स्वस्त्रीभिरिति शेषः ॥६॥७॥ ८ ॥ ९ ॥ पुष्पवर्षाणीति ॥ वासयन्ति अधिवासयुक्तं कुर्वन्ति।

रावणस्तु महावीर्यो निषण्णः शैलमूर्धनि ॥ स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादसुशोभितान् ॥ ३ ॥ कर्णिकारवनैर्दीप्तैः कदम्बगहनैस्तथा ॥ पद्मिनीभिश्च फुल्लाभिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ॥ ४ ॥ चम्पकाशोकपुन्नागमन्दारतरुभिस्तथा ॥ चूतपाटललोध्रैश्च प्रियङ्ग्वर्जुनकेतकैः ॥ तगरैर्नारिकेलैश्च प्रियालपनसैस्तथा ॥५॥ (आरग्वधैस्तमालैश्च प्रियालबकुलैरपि ॥) एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे ॥ किन्नरा मदनेनार्ता रक्ता मधुरकण्ठिनः ॥ ६ ॥ समं संप्रजगुर्यत्र मनस्तुष्टिविवर्धनम् ॥ ७ ॥ विद्याधरा मदक्षीबा मदरक्तान्तलोचनाः ॥ योषिद्भिः सह संक्रान्ताश्चिक्रीडुर्जहृषुश्च वै ॥ ८ ॥ घण्टानामिव सन्नादः शुश्रुवे मधुरस्वरः ॥ अप्सरोगणसंघानां गायतां धनदालये ॥ ९ ॥ पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः ॥ शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधवगन्धिनः ॥ १० ॥ मधुपुष्परजःपृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् ॥ प्रववौ वर्धयन्कामं रावणस्य सुखोनिलः ॥ ११ ॥ गेयात्पुष्पसमृद्ध्या च शैत्याद्वायोर्गिरेर्गुणात् ॥ प्रवृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ॥ १२ ॥ रावणः सुमहावीर्यः कामस्य वशमागतः ॥ विनिश्वस्य विनिश्वस्य शशिनं समवैक्षत ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्याभरणभूषिता ॥ सर्वाप्सरोवरा रम्भा दिव्यपुष्पविभूषिता ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥

मधुमाधवगन्धिनः नित्यमेव मधुमाधवाभ्यां चैत्रवैशाखाभ्यां वसन्तमासाभ्यां गन्धिनः तत्कृतपुष्पगन्धा इत्यर्थः ॥ १० ॥ मध्विति ॥ मधुपुष्परजःपृक्तं मधुना मकरन्देन पुष्परजसा च संपृक्तम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ ॥

दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी मन्दारकृतमूर्धजा ॥ दिव्योत्सवकृतारम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १५ ॥ चक्षुर्मनोहरं पीनं मेखलादामभूषितम् ॥ समुद्वहन्ती जघनं रतिप्राभृतमुत्तमम् ॥ १६ ॥ कृतैर्विशेषकैरार्द्रैः षडर्तुकुसुमोद्भवैः ॥ १७ ॥ बभावन्यतमेव श्रीकान्तिद्युतिमती ह्रीयाः ॥ नीलं सतोयमेघाभं वस्त्रं समवगुण्ठिता ॥ १८ ॥ यस्या वक्त्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ॥ ऊरू करिकराकारौ करौ पल्लवकोमलौ ॥ सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपवीक्षिता ॥ ॥ १९ ॥ तां समुत्थाय गच्छन्तीं कामबाणवशं गतः ॥ करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्मयमानोभ्यभाषत ॥ २० ॥ क्व गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् ॥ कस्याभ्युदयकालोयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥ २१ ॥ त्वदाननरसस्याद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः ॥ सुधामृतरसस्येव कोद्य तृप्तिं गमिष्यति ॥ २२ ॥ स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ ॥ कस्योरस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ॥ २३ ॥ सुवर्णचक्रप्रतिमं स्वर्णदामचितं पृथु ॥ अध्यारोहति कस्तेद्य जघनं स्वर्गरूपिणम् ॥ २४ ॥ मद्विशिष्टः पुमान्कोद्य शक्रो विष्णुरथाश्विनौ ॥ मामतीत्य हि यं च त्वं यासि भीरु न शोभनम् ॥ २५ ॥ विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् ॥ २६ ॥ त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव मदन्यो नैव विद्यते ॥ २७ ॥ तदेवं प्राञ्जलिः प्रह्वो याचते त्वां दशाननः ॥ भर्तुर्भर्ता विधाता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥

दिव्येति ॥ मन्दारकृतमूर्धजा मन्दारपुष्पकृतालंकारकेशीत्यर्थः । रतिप्राभृतं रत्युपदाभूतं रतिवर्धकमित्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ कृतैरिति ॥ षडर्तुकुसुमोद्भवैः षडृतुकुसुमोद्भवैरित्यर्थः । ऋकारस्य गुणश्छान्दसः । विशेषकैरलंकारैरित्यर्थः ॥ १७ ॥ बभाविति ॥ श्रीकान्तिद्युतिमती ह्रिया देवस्त्रीविशेषणामन्यतमेव स्थिता । अभिसान्त्वेन नीलवस्त्रमादाय समवकुण्ठिता प्रावृतवती ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ क्वेति ॥ कां सिद्धिं कस्य भोगसिद्धिमित्यर्थः । सुधामृतरसस्येव अमृतादमृतरसस्येवेत्यर्थः । तृतियोगे षष्ठी ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥

॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ धर्मत इति ॥ धर्मतः धर्मानुष्ठानविषये ॥ ३४ ॥ तस्येति ॥ कृतसंकेता। कृतरतिसंकेता यथा तस्य भावो

एवमुक्ताब्रवीद्रम्भा वेपमाना कृताञ्जलिः ॥ प्रसीद नार्हसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ॥ २९ ॥ अन्येभ्यो हि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां धर्षणं यदि ॥ तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेव ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥ अथाब्रवीद्दशग्रीवश्चरणाधोमुखीस्थिताम् ॥ रोमहर्षमनुप्राप्तां दृष्टमात्रेण तां तदा ॥ ३१ ॥ सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं हि स्नुषा भवेः ॥ बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ॥ ३२ ॥ धर्मतस्ते सुतस्याहं भार्या राक्षसपुङ्गव ॥ पुत्रः प्रियतरः प्राणैर्भ्रातुर्वैश्रवणस्य ते ॥ विख्यातस्त्रिषु लोकेषु नलकूबर इत्ययम् ॥ ३३ ॥ धर्मतो यो भवेद्विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ॥ क्रोधाद्यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः ॥ ३४ ॥ तस्यास्मि कृतसंकेता लोकपालसुतस्य वै ॥ तमुद्दिश्य तु मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम् ॥ ३५ ॥ तथा तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रति तिष्ठति ॥ ३६ ॥ तेन सत्येन मां राजन् मोक्तुमर्हस्यरिन्दम ॥ ३७ ॥ स हि तिष्ठति धर्मात्मा मां प्रतीक्षन्त्समुत्सुकः ॥ तत्र विघ्नं सुतस्येह कर्तुं नार्हसि मुञ्च माम् ॥ ३८ ॥ सद्भिराचरितं मार्गं गच्छ राक्षसपुङ्गव ॥ माननीयो मम त्वं हि पालनीया तथास्मि ते ॥ ३९ ॥ एवमुक्तो दशग्रीवः प्रत्युवाच विनीतवत् ॥ स्नुषास्मि यदवोचस्त्वमेकपत्नीष्वयं क्रमः ॥ देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता ॥ ४० ॥ पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ॥ कामभोगाभिसंसक्तो मैथुनायोपचक्रमे ॥ ४२ ॥ सा विमुक्ता ततो रम्भा भ्रष्टमाल्यविभूषणा ॥ गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता ॥ ४३ ॥ ॥ ॥

मां प्रति नान्यस्य तथा ममापि भावस्तं प्रति तिष्ठतीत्यर्थः। स्नुषास्मि यदवोचः स्नुषास्मीति यदवोच इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ सा विमुक्तेति ॥ संभोगानन्तरमिति शेषः। गजेन्द्राक्रीडमथिता गजेन्द्राक्रीडेन मथिता। करवेपितपल्लवा वेपितकरप-

ल्लवा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ एष इति ॥ परिणामिता यापितेत्यर्थः । इहेति शेषः ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ एतदिति ॥ ध्यानं संप्रविवेशेति । एतदुक्तः सत्यो वाऽसत्यो वेति ज्ञातुमिति शेषः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ गृहीत्वेति ॥ उपस्पृश्य चक्षुरादीन्द्रियमिति शेषः ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ यदेति ॥ सप्तधा सप्तप्रकारेण शकलीभविता ॥ ५७ ॥ ॥ ॥ ॥

लुलिताकुलकेशान्ता करवेपितपल्लवा ॥ पवनेनावधूतेव लता कुसुमशालिनी ॥ ४४ ॥ सा वेपमाना लज्जन्ती भीता करकृताञ्जलिः ॥ नलकूबरमासाद्य पादयोर्निपपात ह ॥ ४५ ॥ तदवस्थां च तां दृष्ट्वा महात्मा नलकूबरः ॥ अब्रवीत्किमिदं भद्रे पादयोः पतितासि मे ॥ ४६ ॥ सा वै निश्वसमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ॥ तस्मै सर्वं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ४७ ॥ एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टपम् ॥ तेन सैन्यसहायेन निशेयं परिणामिता ॥ ४८ ॥ आयान्ती तेन दृष्टास्मि त्वत्सकाशमरिन्दम ॥ गृहीता तेन पृष्टास्मि कस्य त्वमिति रक्षसा ॥ ४९ ॥ मया तु सर्वं यत्सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ॥ काममोहाभिभूतात्मा नाश्रौषीत्तद्वचो मम ॥ ५० ॥ याच्यमानो मया देव स्नुषा तेहमिति प्रभो ॥ तत्सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात्तेनास्मि धर्षिता ॥ ५१ ॥ एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि सुव्रत ॥ न हि तुल्यबलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य च ॥ ५२ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु संक्रुद्धस्तदा वैश्रवणात्मजः ॥ धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं संप्रविवेश ह ॥ ५३ ॥ तस्य तत्कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ॥ मुहूर्तात्क्रोधताम्राक्षस्तोयं जग्राह पाणिना ॥ ५४ ॥ गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृश्य यथाविधि ॥ उत्ससर्ज यथाशापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् ॥ ५५ ॥ अकामा तेन यस्मात्त्वं बलाद्भद्रे प्रधर्षिता ॥ तस्मात्स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ॥ ५६ ॥ यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ॥ मूर्द्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ॥ ५७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ५८ ॥ ज्ञात्वेति ॥ लोकगतिं लोकस्य तत्पीडामूलदुर्दशाम् । इदं च वचनं सीतादेव्या अक्षतत्वस्य सम्यग्रामबोधनार्थम् ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥
इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ ॥

तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ पितामहमुखाश्चैव सर्वे देवाः
प्रहर्षिताः ॥ ५८ ॥ ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वां तस्य मृत्युं च रक्षसः ॥ ऋषयः पितरश्चैव प्रीतिमापुरनुत्तमाम् ॥ ५९ ॥ श्रुत्वा
तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ॥ नारीषु मैथुने भावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ॥ ६० ॥ तेन नीताः स्त्रियः प्रीतिमापुः
सर्वाः पतिव्रताः ॥ नलकूबरनिर्मुक्तं शापं श्रुत्वा मनःप्रियम् ॥ ६१ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥
कैलासं लङ्घयित्वाथ दशग्रीवः स रावणः ॥ आससाद महातेजा इन्द्रलोकं निशाचरः ॥ १ ॥ तस्य राक्षससैन्यस्य
समन्तादुपयास्यतः ॥ देवलोकं ययौ शब्दो मथ्यमानार्णवोपमः ॥ २ ॥ श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रश्चलित आसनात्
॥ अब्रवीत्तत्र तान्देवान्सर्वानेव समागतान् ॥ ३ ॥ आदित्यान्सवसून् रुद्रान् विश्वान्साध्यान्मरुद्गणान्
॥ सज्जीभवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥ एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसमा युधि ॥ सन्नह्य सुमहासत्त्वा
युद्धश्रद्धासमन्विताः ॥ ५ ॥ स तु दीनः परित्रस्तो महेन्द्रो रावणं प्रति ॥ विष्णोः समीपमागम्य वाक्यमेतदुवाच
ह ॥ ६ ॥ विष्णो कथं करिष्यामि महावीर्यपराक्रमः ॥ असौ हि बलवान्रक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ॥ ७ ॥
वरप्रदानाद्बलवान्न खल्वन्येन हेतुना ॥ तत्तु सत्यवचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ ८ ॥ तद्यथा नमुचिर्वृत्रो बलिर्नरकशम्बरौ
॥ त्वद्बलं समवष्टभ्य मया दग्धास्तथा कुरु ॥ ९ ॥ न ह्यन्यो देव देवेश त्वामृते मधुसूदन ॥ गतिः
परायणं नास्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

कैलासमित्यादि॥ १॥ २॥ ३॥ ४॥ ५॥ ६॥ ७॥ ८॥ तद्यथेति। त्वद्बलमाहृत्य यथा नमुच्यादयो हतास्तथा अस्यापि हननोपायं कुर्वित्यर्थः॥ ९॥ नेति॥ देवेति सं-

बुद्धिः॥१०॥११॥१२॥तदेति ॥ तत्तस्मात्कारणात् । यथा मे जयः स्यात् तथा तत्त्वमुपायतत्त्वम् आचक्ष्व । स्वयमेव युद्ध्यस्वेति वा । ब्रूहीति शेषः ॥

त्वं हि नारायणः श्रीमान्पद्मनाभः सनातनः ॥ त्वयेमे स्थापिता लोकाः शक्रश्चाहं सुरेश्वरः ॥ ११ ॥ त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ त्वामेव भगवन्तसर्वे प्रविशन्ति युगक्षये ॥ १२ ॥ तदाचक्ष्व यथा तत्त्वं देवदेव मम स्वयम् ॥ अपि चक्रसहायस्त्वं योत्स्यसे रावणं प्रभो ॥ १३ ॥ एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः ॥ अब्रवीन्न परित्रासः कार्यस्ते श्रूयतां च मे ॥ १४ ॥ न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो जेतुं सुरासुरैः ॥ हन्तुं चापि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥ १५ ॥ सर्वथातु महत्कर्म करिष्यति बलोत्कटः ॥ राक्षसः पुत्रसहितो दृष्टमेतन्निसर्गतः ॥ ॥ १६ ॥ यत्तु मां त्वमभाषिष्ठ युद्ध्यस्वेति सुरेश्वर ॥ नाहं तं प्रतियोत्स्यामि रावणं राक्षसं युधि ॥ १७ ॥ नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते॥ दुर्लभश्चैव कामोद्य वरगुप्ताद्धि रावणात् ॥१८॥ प्रतिजाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो ॥ भवितास्मि यथास्याहं रक्षसो मृत्युकारणम् ॥ १९ ॥ अहमेव निहन्तास्मि रावणं सपुरःसरम् ॥ देवता नन्दयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपागतम् ॥ एतत्ते कथितं तत्त्वं देवराज शचीपते ॥ २० ॥ युद्ध्यस्व विगतत्रासः सर्वैः सार्धं महाबल ॥ २१ ॥ ततो रुद्राः सहादित्या वसवो मरुतोऽश्विनौ ॥ सन्नद्धा निर्ययुस्तूर्णं राक्षसानभितः पुरात् ॥२२॥ एतस्मिन्नन्तरे नादः शुश्रुवे रजनीक्षये ॥ तस्य रावणसैन्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः॥२३॥ते प्रयुद्धा महावीर्या ह्यन्योन्यमभिवीक्ष्य वै ॥ संग्राममेवाभिमुखा ह्यभ्यवर्तन्त हृष्टवत् ॥ २४ ॥ ततो दैवतसैन्यानां संक्षोभः समजायत ॥ तदक्षयं महासैन्यं दृष्ट्वा समरमूर्धनि ॥ २५ ॥ ॥ ॥

॥१३॥१४॥१५॥ सर्वेति ॥ मे महत्कर्म युद्धकर्म करिष्यन्तीत्येतत्सहजज्ञानशक्त्या दृष्टमवगतम् ॥ १६ ॥ यत्त्विति ॥ नाहं प्रतियोत्स्यामि इदानीमिति शेषः ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ एतस्मिन्निति ॥ प्रकृष्टं युद्धं यस्य तत्प्रयुद्धम् ॥२३॥ त इति ॥ हृष्टवत् हृष्टाः सन्तः ॥२४॥२५॥

॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ सुप्तघ्न इति ॥ करवीरपुष्पवत् अक्षिणी यस्य सः करवीराक्षः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तत

ततो युद्धं समभवद्देवदानवरक्षसाम् ॥ घोरं तुमुलनिर्ह्रादं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ॥ युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते ॥ २७ ॥ मारीचश्च प्रहस्तश्च महापार्श्वमहोदरौ ॥ अकम्पनो निकुम्भश्च शुकः सारण एव च ॥ २८ ॥ संह्रादो धूमकेतुश्च महादंष्ट्रो घटोदरः ॥ जम्बुमाली महाह्लादो विरूपाक्षश्च राक्षसः ॥ २९ ॥ सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च दुर्मुखो दूषणः खरः ॥ त्रिशिराः करवीराक्षः सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ ३० ॥ महाकायोतिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥ एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्यो महाबलः ॥ ॥ ३१ ॥ रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह ॥ सदैवतगणान्त्सर्वान्नानाप्रहरणैः शितैः ॥ व्यध्वंसयत्सुसंक्रुद्धो वायुर्जलचरानिव ॥ ३२ ॥ तद्दैवतबलं राम हन्यमानं निशाचरैः ॥ प्रणुन्नं सर्वतो दिग्भ्यः सिंहनुन्ना मृगा इव ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसूनामष्टमो वसुः ॥ सावित्र इति विख्यातः प्रविवेश रणाजिरम् ॥ ३४ ॥ (सैन्यैः परिवृतो हृष्टो नानाप्रहरणोद्यतैः ॥ त्रासयन्शत्रुसैन्यानि सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥) तथादित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूषा च दंशितौ ॥ निर्भयौ सह सैन्येन तदा प्राविशतां रणे ॥ ३५ ॥ ततो युद्धं समभवत्सुराणां सह राक्षसैः ॥ क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ३६ ॥ ततस्ते राक्षसाः सर्वे विबुधान्समरे स्थितान् ॥ नानाप्रहरणैर्घोरैर्जघ्नुः शतसहस्रशः ॥ ३७ ॥ देवाश्च राक्षसान् घोरान्महाबलपराक्रमान् ॥ समरे विमलैः शस्त्रैरुपनिन्युर्यमक्षयम् ॥ ३८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ॥ नानाप्रहरणैः क्रुद्धस्तत्सैन्यं सोभ्यवर्तत ॥ ३९ ॥ स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ॥ व्यध्वंसयत संक्रुद्धो वायुर्जलधरं यथा ॥ ४० ॥ ॥ ॥

इति ॥ समरेष्वनिवर्तिनां रक्षसां कीर्तिं क्रुद्धानां सुराणां राक्षसैः सह युद्धमभवदिति योजना ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ॥

॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ सुमालिन इति ॥ तस्य सुमालिनः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥

ते महाबाणवर्षैश्च शूलप्रासैः सुदारुणैः ॥ हन्यमानाः सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्त संहताः ॥ ४१ ॥ ततो विद्राव्यमाणेषु दैवतेषु सुमालिना ॥ वसूनामष्टमः क्रुद्धः सावित्रो वै व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥ संवृतः स्वैरथानीकैः प्रहरन्तं निशाचरम् ॥ विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ॥ ४३ ॥ ततस्तयोर्महायुद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ ४४ ॥ सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ॥ ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना ॥ निहतः पन्नगरथः क्षणेन विनिपातितः ॥ ४५ ॥ हत्वा तु संयुगे तस्य रथं बाणशतैश्चितम् ॥ गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिना ॥ ४६ ॥ ततः प्रगृह्य दीप्ताग्रां कालदण्डोपमां गदाम् ॥ तां मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ॥ ४७ ॥ सा तस्योपरि चोल्काभा पतन्तीव बभौ गदा ॥ इन्द्रप्रमुक्ता गर्जन्ती गिराविव महाशनिः ॥ ४८ ॥ तस्य नैवास्थि न शिरो न मांसं ददृशे तदा ॥ गदया भस्मतां नीतं निहतस्य रणाजिरे ॥ ४९ ॥ तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये राक्षसास्ते समन्ततः ॥ व्यद्रवन्त्सहिताः सर्वे क्रोशमानाः परस्परम् ॥ विद्राव्यमाणा वसुना राक्षसा नावतस्थिरे ॥ ५० ॥ इत्युत्तरश्रीरा० सप्तविंशः सर्गः २७

सुमालिनं हतं दृष्ट्वा वसुना भस्मसात्कृतम् ॥ स्वसैन्यं विद्रुतं चापि लक्षयित्वार्दितं सुरैः ॥ १ ॥ ततः स बलवान्क्रुद्धो रावणस्य सुतस्तदा ॥ निवर्त्य राक्षसान्सर्वान्मेघनादो व्यवस्थितः ॥ २ ॥ सुरथेनाग्निवर्णेन कामगेन महारथः ॥ अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥ ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः ॥ विदुद्रुवुर्दिशः सर्वा दर्शनादेव देवताः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

सुमालिनमित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ सुरथेनेति ॥ तां सेनां देवसेनाम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

न बभूवेति ॥ आविध्य आवेधं प्राप्य वित्रस्तान् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ तेषामिति ॥ तेषां सदृशम् बलवीर्यानुरूपमित्यर्थः ॥ ९ ॥ तत

न बभूव तदा कश्चिद्युयुत्सोरस्य संमुखे ॥ सर्वानाविध्य वित्रस्तांस्ततः शक्रोब्रवीत्सुरान् ॥ ५ ॥ न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्तध्वं रणे सुराः ॥ एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः ॥ ६ ॥ ततः शक्रसुतो देवो जयन्त इति विश्रुतः ॥ रथेनाद्भुतकल्पेन संग्रामे सोभ्यवर्तत ॥ ७ ॥ ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिवार्य शचीसुतम् ॥ रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य प्रजघ्निरे ॥ ८ ॥ तेषां युद्धं समभवत्सदृशं देवरक्षसाम् ॥ महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥ ९ ॥ ततो मातलिपुत्रे तु गोमुखे राक्षसात्मजः ॥ सारथौ पातयामास शरान्कनकभूषणान् ॥ १० ॥ शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ॥ तं चापि रावणिः क्रुद्धः समन्तात्प्रत्यविध्यत ॥ ११ ॥ स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः ॥ रावणिः शक्रतनयं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १२ ॥ ततो नानाप्रहरणांश्छितधारान्त्सहस्रशः ॥ पातयामास संक्रुद्धः सुरसैन्येषु रावणिः ॥ १३ ॥ शतघ्नीमुसलप्रासगदाखड्गपरश्वधान् ॥ महान्ति गिरिशृङ्गाणि पातयामास रावणिः ॥ १४ ॥ ततः प्रव्यथिता लोकाः संजज्ञे च तमो महत् ॥ तस्य रावणपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निघ्नतः॥१५॥ ततस्तद्दैवतबलं समन्तात्तं शचीसुतम् ॥ बहुप्रकारमस्वस्थमभवच्छरजीवितम् ॥१६॥ नाभ्यजानन्त चान्योन्यं रक्षो वा देवताथ वा ॥ तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात्परिधावति ॥१७॥ देवा देवान्निजघ्नुस्ते राक्षसा राक्षसांस्तथा ॥ संमूढास्तमसाच्छन्ना व्यद्रवन्नपरे तदा ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान् ॥ दैत्येन्द्रस्तेन संगृह्य शचीपुत्रोपवाहितः ॥ १९ ॥ ॥ ॥

इति ॥ गोमुख इति मातलिसुतनाम ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ तत इति ॥ तमः संजज्ञे रावणपुत्रस्य माययेति शेषः ॥ १५ ॥ १६॥ नाभ्यजानन्तेति ॥ विपर्यस्तं विशीर्णम्॥ १७ ॥ १८ ॥ एतस्मिन्निति॥पुलोमा नामास्तीति शेषः । तेन पुलोम्ना । येन सा शची उत्पादितेति शेषः ।

तस्मात् शची पौलोमीति नामवती जातेत्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ ज्ञात्वेति ॥ प्रणाशमदर्शनम् । व्यथिताः अत एवाप्रहृष्टाः ॥ २१ ॥ २२ ॥

संगृह्य तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा ॥ आर्यकः स हि तस्यासीत्पुलोमा येन सा शची ॥ २० ॥ ज्ञात्वा प्रणाशं तु तदा जयन्तस्याथ देवताः ॥ अप्रहृष्टास्ततः सर्वा व्यथिताः संप्रदुद्रुवुः ॥ २१ ॥ रावणिस्त्वथ संक्रुद्धो बलैः परिवृतः स्वकैः ॥ अभ्यधावत देवांस्तान् मुमोच च महास्वनम् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा प्रणाशं पुत्रस्य दैवतेषु च विद्रुतम् ॥ मातलिं चाह देवेशो रथः समुपनीयताम् ॥ २३ ॥ स तु दिव्यो महाभीमः सज्ज एव महारथः ॥ उपस्थितो मातलिना वाह्यमानो महाजवः ॥ २४ ॥ ततो मेघा रथे तस्मिंस्तडिद्वन्तो महाबलाः ॥ अग्रतो वायुचपला नेदुः परमनिस्वनाः ॥ २५ ॥ नानावाद्यानि वाद्यन्त गन्धर्वाश्च समाहिताः ॥ ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा निर्याते त्रिदशेश्वरे ॥ २६ ॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यैः साध्यैश्च समरुद्गणैः ॥ वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ॥ २७ ॥ निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषं पवनो ववौ ॥ भास्करो निष्प्रभश्चासीन्महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥ पन्नगैस्तु महाभोगैर्वेष्टितं रोमहर्षणैः ॥ तेषां निश्वासवातेन प्रदीप्तमिव संयुगे ॥ ३० ॥ दैत्यैर्निशाचरैश्चैव सरथः परिवारितः ॥ समराभिमुखो दैत्यो महेन्द्रं सोभ्यवर्तत ॥ ३१ ॥ पुत्रं तं वारयित्वा तु स्वयमेव व्यवस्थितः ॥ सोपि युद्धाद्विनिष्क्रम्य रावणिः समुपाविशत् ॥ ३२ ॥ ततो युद्धं प्रवृत्तं तु सुराणां राक्षसैः सह ॥ शस्त्राणि वर्षतां घोरं मेघानामिव संयुगे ॥ ३३ ॥ ॥

॥ २३ ॥ २४ ॥ तत इति ॥ वायुचपलाः वायुचलिताः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥

---

१ रावणेश्चापि विक्रमम् इति पाठः ।

कुम्भकर्णस्त्विति ॥ नानाप्रहरणोद्यतः उद्यतनानाप्रहरणः । नाज्ञायत अयं मया योद्धव्य इत्येको लक्ष्यत्वेन न ज्ञायते । अपि तु नहि केनापि अयुध्यत । येन केनापि प्राप्तेन सर्वेणाप्ययुद्ध्यतेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ दन्तैरिति ॥ प्रयुद्धः प्रकृष्टयुद्धः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रथानित्यादि-

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः ॥ नाज्ञायत तदा युद्धे सह केनाप्ययुध्यत ॥ ३४ ॥ दन्तैर्भुजाभ्यां पद्भ्यां च शक्तितोमरसायकैः ॥ येन केनैव संरब्धस्ताडयामास वै सुरान् ॥ ३५ ॥ ततो रुद्रैर्महाघोरैः संगम्याथ निशाचरः ॥ प्रयुद्धस्तैश्च संग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥ ३६ ॥ बभौ शस्त्राचिततनुः कुम्भकर्णः क्षरन्नसृक् ॥ विद्युत्स्तनितनिर्घोषो धारावानिव तोयदः ॥ ३७ ॥ ततस्तद्राक्षसं सैन्यं प्रयुद्धं समरुद्गणैः ॥ रणे विद्रावितं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ॥ ३८ ॥ केचिद्विनिहताः कृत्ताश्चेष्टन्ति स्म महीतले ॥ वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ॥ ३९ ॥ रथान्नागान् खरानुष्ट्रान्पन्नगांस्तुरगान्रणे ॥ शिंशुमारान्वराहांश्च पिशाचवदनांस्तथा ॥ ४० ॥ तान्समालिङ्ग्य बाहुभ्यां विष्टब्धाः केचिदुच्छ्रिताः ॥ देवैस्तु शस्त्रसंभिन्ना मम्रिरे च निशाचराः ॥ ४१ ॥ चित्रकर्म इवाभाति स तेषां रणसंप्लवः ॥ निहतानां प्रमत्तानां राक्षसानां महीतले ॥ ४२ ॥ शोणितोदकनिष्पन्दकङ्कगृध्रसमाकुला ॥ प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ॥ ४३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृत्स्नं दैवतैर्विनिपातितम् ॥ ४४ ॥ स तं प्रति विगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम् ॥ त्रिदशान्समरे निघ्नन् शक्रमेवाभ्यवर्तत ॥ ४५ ॥ आगाच्छक्रो महच्चापं विस्फार्य सुमहास्वनम् ॥ यस्य विस्फारघोषेण स्वनन्ति स्म दिशो दश ॥ ४६ ॥ तद्विकृष्य महच्चापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ॥ निपातयामास शरान् पावकादित्यवर्चसः ॥ ४७ ॥ ॥

श्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ विष्टब्धाः अवलम्ब्य स्थिताः । केचिदुच्छ्रिताश्च केवलं स्थिताश्च ॥ ४० ॥ ४१ ॥ चित्रेति ॥ चित्रकर्म इवेति वाक्ये सन्धिरनित्यः । रणसंघर्षः रणसंमर्दः । चित्रकर्मेवाश्चर्यकर आभातीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ॥ ॥

॥४८॥ प्रयुध्यतोरिति ॥ तमसावृतम् उभयशरवर्षसर्वदिक्छादनकृतेनेति शेषः ॥४९॥ इति श्रीगोवि॰मणिमु॰उत्तरश्रीरा॰अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८॥
॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ क्रोधादिति ॥ यावदन्त इति। परसैन्यस्यान्तो यावत् तावन्मध्येन मां नयस्व ॥ ६ ॥ ७ ॥ अहमिति ॥ अथोपरि

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो व्यवस्थितः ॥ शक्रं कार्मुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४८ ॥ प्रयुध्यतोरथ तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः ॥ न ज्ञायते तदा किंचित् सर्वं हि तमसावृतम् ॥ ४९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८॥
ततस्तमसि संजाते सर्वे ते देवराक्षसाः ॥ अयुध्यन्त बलोन्मत्ताः सूदयन्तः परस्परम् ॥ १ ॥ ततस्तु देवसैन्येन राक्षसानां बृहद्बलम् ॥ दशांशं स्थापितं युद्धे शेषं नीतं यमक्षयम् ॥ २ ॥ तस्मिंस्तु तामसे युद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः ॥ अन्योन्यं नाभ्यजानन्त युध्यमानाः परस्परम् ॥ ३ ॥ इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः ॥ तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः ॥ ४ ॥ स तु दृष्ट्वा बलं सर्वं निहतं रावणः क्षणात् ॥ क्रोधमभ्यागमत्तीव्रं महानादं च मुक्तवान् ॥ ५ ॥ क्रोधात्सूतं च दुर्धर्षः स्यन्दनस्थमुवाच ह ॥ परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्व माम् ॥ ६ ॥ अद्यैतांस्त्रिदशान्सर्वान् विक्रमैः समरे स्वयम् ॥ नानाशस्त्रैर्महाघोरैर्नयामि यमसादनम् ॥ ७ ॥ अहमिन्द्रं वधिष्यामि धनदं वरुणं यमम् ॥ त्रिदशान्विनिहत्याथ स्वयं स्थास्याम्यथोपरि ॥ विषादो न च कर्तव्यः शीघ्रं वाहय मे रथम् ॥८॥ द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तो नयस्व माम् ॥ ९ ॥ अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तामहे वयम् ॥ नय मामद्य तत्र त्वमुदयो यत्र पर्वतः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

सर्वेषामुपरिष्टादित्यर्थः ॥ ८ ॥ देवसेनामध्ये प्रवेशे किं भविष्यतीति विषण्णं सारथिं पुनश्चाह—द्विः खल्वित्यादि ॥ यावदन्तो नयस्व मामिति द्विः द्विवारम् त्वां ब्रवीमि खलु । तत्कथं न नयसीत्यर्थः ॥ ९ ॥ अपरिमितदेवसेनायाः क आदिः कोन्त इत्यत्राह—अयमिति ॥ वयं यत्र वर्तामहे स नन्दनोद्देशः । एष आदिः । एनमारभ्य उदयपर्वतो यत्र तत्र मामद्य नय। सोन्तो देवसेनायाः ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ यथेति ॥ बलौ महाबलौ । निरुद्धे अहत्वैव कृतविरोधे सति । एवमेतस्य निरोधोपीत्यब्रवीदिति पूर्वेणान्वयः ॥ १६ ॥ ततोन्यमिति ॥ रावणावस्थितदेशादित्यर्थः । रावणं संत्यज्येति । वज्रादिना प्रहर्तुमशक्यत्वात् पुरस्थितिर्निष्प्रयोजनेति मत्वेति शे-

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तुरंगान्त्स मनोजवान् ॥ आदिदेशाथ शत्रूणां मध्येनैव च सारथिः ॥ ११ ॥ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा ॥ रथस्थः समरस्थांस्तान् देवान्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ सुराः शृणुत मद्वाक्यं यत्तावन्मम रोचते ॥ जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम् ॥ १३ ॥ एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनौजसा ॥ गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि ॥ १४ ॥ न ह्येष हन्तुं शक्योद्य वरदानात्सुनिर्भयः ॥ तद्ग्रहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे ॥ १५ ॥ यथा बलौ निरुद्धे च त्रैलोक्यं भुज्यते मया ॥ एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ॥ १६ ॥ ततोन्यं देशमास्थाय शक्रः संत्यज्य रावणम् ॥ अयुध्यत महाराज राक्षसांस्त्रासयन् रणे ॥ १७ ॥ उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिवर्तकः ॥ दक्षिणेन तु पार्श्वेन प्रविवेश शतक्रतुः ॥ १८ ॥ ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः ॥ देवतानां बलं सर्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥ ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रणष्टं तु स्वकं बलम् ॥ न्यवर्तयदसंभ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ॥ २० ॥ एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवराक्षसैः ॥ हा हताः स्म इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम् ॥ २१ ॥ ततो रथं समास्थाय रावणिः क्रोधमूर्छितः ॥ तत्सैन्यमतिसंक्रुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ॥ २२ ॥ तां प्रविश्य महामायां प्राप्तां गोपतिना पुरा ॥ प्रविवेश सुसंरब्धस्तत्सैन्यं समभिद्रवत् ॥ २३ ॥ ॥

षः ॥ १७ ॥ उत्तरेणेति ॥ देवसेनामिति शेषः ॥ १८ ॥ १९ ॥ तत इति ॥ न्यवर्तयत् स्वसेनया दशाननं समावृत्य न्यवर्तयत् ॥ २० ॥ २१ ॥ तत इति ॥ तत्सैन्यं देवसैन्यम् ॥ २२ ॥ तामिति ॥ गोपतिना रुद्रेण ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥ स इति ॥ स्वसैन्यमभितः स्वसेनायाः पार्श्वम् ॥२९॥३०॥ दृश्यत इति ॥ विद्यावानपि असुरमायासंहार्येपि येनानेन रावणिना मायया नीयते। एतत्किन्त्विति चुकुशुः॥३१॥३२॥३३॥ स तमिति ॥ युद्धे अदर्शनस्थोब्रवीदिति। साति दर्शने महेन्द्र एव नाशयेदिति भावः३४॥

स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेवाभ्यधावत ॥ महेन्द्रश्च महातेजा नापश्यच्च सुतं रिपोः ॥ २४ ॥ विमुक्तकवचस्तत्र
वध्यमानोपि रावणिः ॥ त्रिदशैः सुमहावीरैर्न चकार च किंचन ॥ २५ ॥ समातलिं समायान्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः ॥ महेन्द्रं बाणवर्षेण भूय एवाभ्यवाकिरत् ॥ २६ ॥ ततस्त्यक्त्वा रथं शक्रो विससर्ज च सारथिम् ॥ ऐरावतं
समारुह्य मृगयामास रावणिम् ॥ २७ ॥ स तत्र मायाबलवानदृश्योथान्तरिक्षगः ॥ इन्द्रं मायापरिक्षिप्तं कृत्वा स
प्राद्रवच्छरैः ॥ २८ ॥ स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं जज्ञेथ रावणिः ॥ तदैनं मायया बध्वा स्वसैन्यमभितोनयत् ॥२९॥
तं तु दृष्ट्वा बलात्तेन नीयमानं महारणात् ॥ महेन्द्रममराः सर्वे किन्नु स्यादित्यचिन्तयन् ॥ ३०॥ दृश्यते न स मायावी शक्रजित्समितिंजयः ॥ विद्यावानपि येनेन्द्रो मायया नीयते बलात् ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धाः सर्वे सुरगणास्तदा ॥ रावणं विमुखीकृत्य शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३२ ॥ रावणस्तु समासाद्य आदित्यांश्च वसूंस्तथा ॥ न शशाक
स संग्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दितः ॥ ३३ ॥ स तं दृष्ट्वा परिम्लानं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ॥ रावणिः पितरं युद्धे ऽदर्शनस्थोब्रवीदिदम् ॥ ३४ ॥ आगच्छ तात गच्छामो रणकर्म निवर्तताम् ॥ जितं नो विदितं तेस्तु स्वस्थो भव गतज्वरः ॥ ३५ ॥
अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः ॥ स गृहीतो देवबलाद्भग्नदर्पाः सुराः कृताः ॥ ३६ ॥ यथेष्टं भुङ्क्ष्व लोकांस्त्रीन्निगृह्यारातिमोजसा ॥ वृथा किन्ते श्रमेणेह युद्धमद्य तु निष्फलम् ॥ ३७ ॥ ततस्ते दैवतगणा निवृत्ता
रणकर्मणः ॥ तच्छुत्वा रावणेर्वाक्यं स्वस्थचेता बभूव ह ॥ ३८ ॥ ॥ ॥

आगच्छेति॥निवर्ततां निवृत्तमस्तु समाप्तमस्तु। कथं निवृत्तिरित्यत्राह–जितमिति।भावे निष्ठा॥३५॥अयं हीति॥दैवबलात् देवसेनायाः॥३६॥३७॥३८॥

अथेति ॥ रणविगतज्वरः विगतरणज्वर इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नयेति ॥ त्वरितमुपनयस्वेति पाठे निर्जिता इति पूर्वेणान्वयः ॥ ४१ ॥ अथेति ॥ राक्षसान्विससर्जेति स्वं स्वं निवेशं प्रतीति शेषः ॥ ४२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोनविंश सर्गः ॥२९॥

अथ रणविगतज्वरः प्रभुर्विजयमवाप्य निशाचराधिपः ॥ स्वभवनमभितो जगाम हृष्टः स्वसुतमवाप्य च वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्तैर्मम कुलमानविवर्धनं कृतम् ॥ यदयमतुल्यबलस्त्वयाद्य वै त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः ॥४० ॥ नय रथमधिरोप्य वासवं नगरमितो व्रज सेनया वृतस्त्वम् ॥ अहमपि तव गच्छतो द्रुतं सह सचिवैरनुयामि पृष्ठतः ॥ ४१ ॥ अथ स बलवृतः सवाहनस्त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणिः ॥ स्वभवनमभिगम्य वीर्यवान्कृतसमरान्विससर्ज राक्षसान् ॥ ४२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनविंशः सर्गः ॥ २९ ॥ ॥

जिते महेन्द्रेतिबले रावणस्य सुतेन वै ॥ प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा ॥ १ ॥ तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातृभिरावृतम् ॥ अब्रवीद्गगने तिष्ठन्त्सामपूर्वं प्रजापतिः ॥ २ ॥ वत्स रावण तुष्टोस्मि पुत्रस्य तव संयुगे ॥ अहोस्य विक्रमौदार्यं तव तुल्योधिकोपि वा ॥ ३ ॥ जितं हि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ॥ कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोस्मि स्वसुतेन वै ॥ ४ ॥ अयं च पुत्रोतिबलस्तव रावण वीर्यवान् ॥ जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥ ५ ॥ बलवान्दुर्जयश्चैव भविष्यत्येव राक्षसः ॥ यं समाश्रित्य ते राजन् स्थापितास्त्रिदशा वशे ॥ ६ ॥ तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः ॥ किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ॥ ॥ ७ ॥ अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः ॥ अमरत्वमहं देव वृणे यद्येष मुच्यते ॥ ८ ॥ ॥

जित इत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ वत्सेति ॥ अहोस्येति संधिरार्षः ॥ ३ ॥ जितमिति ॥ स्वसुतेन स्वसुतबलेन । त्वया कृता प्रतिज्ञा चतुरो दिक्पालान् जेष्यामीति कृता प्रतिज्ञा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ९ ॥ १० ॥ तत इत्यादिसार्धमेकं वाक्यम् ॥ सर्वामरत्वं सर्वस्मादपि निमित्तात्सर्वस्मिन्नपि काले मरणराहित्यं भुवि मत्सृष्टप्राणिनां नास्ति पक्ष्यादिभ्यो यन्मरणम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ अथेति ॥ पूर्वोक्तविवरणमेतत् श्रूयतामिति । वा अथ वेत्यर्थः । सर्वामरत्वाभावेपि शतक्रतुविमोक्षणे तन्निमित्तं मया सिद्धिः काङ्क्षिता सा श्रूयताम् ॥ १३ ॥ ममेति ॥ नित्यशो नियमेन । हव्यैः पावकं संपूज्य शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः संग्राममवतर्तुं प्रवेष्टुं वाञ्छतो ममा-

चतुष्पदां खेचराणामन्येषां च महौजसाम् ॥ वृक्षगुल्मक्षुपलतातृणोपलमहीभृताम् ॥ ९ ॥ सर्वेपि जन्तवोन्योन्यं भेतव्ये सति बिभ्यति ॥ अतोत्र लोके सर्वेषां सर्वस्माच्च भवेद्भयम् ॥ १० ॥ ततोब्रवीन्महातेजा मेघनादं प्रजापतिः ॥ नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित्प्राणिनो भुवि ॥ चतुष्पदः पक्षिणश्च भूतानां वा महौजसाम् ॥ ११ ॥ श्रुत्वा पितामहेनोक्तमिन्द्रजित्प्रभुणाव्ययम् ॥ १२ ॥ अथाब्रवीत्स तत्रस्थं मेघनादो महाबलः ॥ श्रूयतां वा भवेत्सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥ १३ ॥ ममेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः संपूज्य पावकम् ॥ संग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥ १४ ॥ अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत्तु विभावसोः ॥ तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चयो वरः ॥ १५ ॥ तस्मिन्यद्यसमाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ ॥ युध्येयं देवसंग्रामे तदा मे स्याद्विनाशनम् ॥ १६ ॥ सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान् ॥ विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम् ॥ १७ ॥ एवमस्त्विति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः ॥ मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः॥ १८॥ एतस्मिन्नन्तरे राम दीनो भ्रष्टाम्बरद्युतिः॥ इन्द्रश्चिन्तापरीतात्मा ध्यानतत्परतां गतः॥ १९॥

श्वयुक्तो रथो विभावसोरग्नेः तत्कालमुत्तिष्ठेत तस्य मे संग्रामे अमरता स्यादेव एष मे निश्चयो वरः ॥ १४ ॥ १५ ॥ तस्मिन्निति ॥ तस्मिन् सांग्रामिकयागे अपेक्षिते विभावसौ जप्यहोमे चासमाप्ते तु विघ्नवशादसमाप्ते तु यदि युध्येयं तदैव संग्राम एव विनाशनं भवत्विति ममेष्टमिति संबन्धः । प्रकारान्तरेण विनाशो मा भूदित्यर्थः ॥ १६ ॥ मयात्रैतद्वरं लोकविलक्षणं प्राप्यत इति विस्मयते—सर्व इत्यादि ॥ प्रवर्तितं प्रकीर्तितम् । दातव्यत्वेनेति शेषः ॥ १७ ॥ १८ ॥ एतस्मिन्निति ॥ भ्रष्टाम्बरद्युतिः भ्रष्टाम्बराणां देवानां द्युतिर्यस्य स तथा ॥ १९ ॥ ॥ ॥

तमिति ॥ हे शतक्रतो एवमिदानीं शोचन् भवान् पुरा सुदुष्करं किमु करोति स्म । कस्मात्कृतवानसीत्यर्थः ॥२०॥ एतादृशदुःखबीजं मया कृतमित्यत्राह–अमरेन्द्रेत्यादि ॥ एकवर्णाः समाभाषाः एकरूपकान्तिस्वराः । एकरूपाः समानवयोवस्थाकालाः ॥ २१ ॥ तासामिति ॥ दर्शने सौन्दर्ये लक्षणे नयनाद्यवयवसौष्ठवे च तासां विशेषो नासीत् । ततोहमिति । एकाग्रमनाः सावधानः सन् ताः प्रजा उद्दिश्य पर्यचिन्तयम् । तासां विशेषकरणप्रकारम-

तं तु दृष्ट्वा तथाभूतं प्राह देवः प्रजापतिः ॥ शतक्रतो किमु पुरा करोति स्म सुदुष्करम् ॥ २० ॥ अम-
रेन्द्र मया बह्व्यः प्रजाः सृष्टास्तदा प्रभो ॥ एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ २१ ॥ तासां
नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेपि वा ॥ ततोहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः पर्यचिन्तयम् ॥ २२ ॥ सोहं
तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे ॥ यद्यत्प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत्तदुद्धृतम् ॥ २३ ॥ ततो म-
या रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता ॥ हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ॥ २४ ॥ यस्मान्न विद्य-
ते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता ॥ अहल्येति मया शक्र तस्या नाम प्रवर्तितम् ॥ २५ ॥ निर्मितायां
च देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ ॥ भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोभवत् ॥ २६ ॥ त्वन्तु शक्र
तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो ॥ स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरन्दर ॥ २७ ॥ सा मया न्यासभूता
तु गौतमस्य महात्मनः ॥ न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ॥ २८ ॥ ॥

चिन्तयं वा ॥२२॥ सोहमिति ॥ तासां विशेषार्थं किंचित्किंचिदङ्गवैकल्यप्रयुक्तपरस्परवैलक्षण्यसिद्ध्यर्थमेकां स्त्रियं विनिर्ममे निर्मितवानस्मि । यद्यदिति । प्रत्यङ्गं अङ्गमङ्गम् यद्यद्विशिष्टं सारभूतं सौन्दर्यं तत्तदुद्धृतम् ॥२३॥ तत इति ॥ रूपगुणैः प्रत्यङ्गमुद्धृतैः सौन्दर्यगुणैः ।अहल्या नामाङ्गना काचिद्विनिर्मिता ॥ २४ ॥ २५ ॥ निर्मितायामिति ॥ भविष्यतीति । कस्यैषा पत्नी भविष्यतीति चिन्ताभवत् । तत्तुल्यवराभावादिति भावः ॥ २६ ॥ त्वमिति ॥ स्थानाधिकतया त्रैलोक्याधिपतित्वेन हेतुनेत्यर्थः । ममैषा पत्नीति मनसा जानीषे । अस्मदनुमतिं विना तां प्रार्थितवानसीत्यर्थः ॥ २७ ॥ सेति ॥ निर्यातिता

पुनः प्रत्यर्पिता ॥ २८ ॥ तत इति ॥ स्थैर्यं जितेन्द्रियत्वम् । तपसि तपो विषये । स्पर्शिता दत्ता ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तत इति ॥ दशाभागविपर्ययं दशाभागोवस्थाविशेषः तस्य विपर्ययं सहजसात्त्विकावस्थाविपर्ययमित्यर्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अयं त्विति ॥ अयं भावः मानुषेष्वपि शास्त्राधिकारिष्वपि भविष्यति । राज्ञस्तव दोषादिति भावः ॥ ३४ ॥ तत्रेति ॥ तत्र जारभावे यो धर्मः समुत्थास्यति तस्य यः कर्ता तत्र पुरुषे

ततस्तस्य परिज्ञाय मया स्थैर्यं महामुनेः॥ ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा॥२९॥ (स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः॥ आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया॥) संक्रुद्धस्त्वं हि धर्मात्मन् गत्वा तस्याश्रमं मुनेः॥ दृष्टवांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ३० ॥ सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना ॥ दृष्टस्त्वं च तदा तेन ह्याश्रमे परमर्षिणा ॥ ३१ ॥ ततः क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा ॥ गतोसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ॥ ३२ ॥ यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयम् ॥ तस्मात्त्वं समरे राजञ्छत्रुहस्तं गमिष्यसि ॥ ३३ ॥ अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः ॥ मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ॥ ३४ ॥ तत्रार्धं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्धन्निपतिष्यति ॥ न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति न संशयः ॥ ३५ ॥ यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद्ध्रुवः स न भविष्यति ॥ एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तां तु भार्यां सुनिर्भर्त्स्य सोब्रवीत्सुमहातपाः ॥ दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥ ३७ ॥ रूपयौवनसंपन्ना यस्मात्त्वमनवस्थिता ॥ तस्माद्रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥

तस्याधर्मस्यार्धं निपतिष्यति त्वय्यर्धम् निपतिष्यतीत्यर्थः । "राजा राष्ट्रकृतं पापम्" इति न्यायात् । स्थावरम् स्थिरम् । स्थानं पदम् ॥ ३५ ॥ न केवलं तवैवास्थिरत्वं अपि तु अन्यस्यापि जारस्येत्याह—यश्चेति ॥ हे सुरेन्द्र य एवं जारः स्यात्सोपि ध्रुवो मा भविष्यतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रूपेति ॥ ममाश्रमसमीपतो यस्मात्त्वमनवस्थिता तस्मादेवैतत्पर्यन्तं त्वमेकैव रूपवतीति यत् स्थितं तन्न भविष्यति ॥ ३८ ॥ ॥ ॥

रूपं चेति ॥ तद्रूपं प्रसिद्धं तव सौन्दर्यं सर्वाः प्रजाः स्त्रियः गमिष्यन्तीति। विभ्रमः काममोहः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५॥४६॥

रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः ॥ यत्तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोयमुपस्थितः ॥ ३९ ॥ तदाप्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विताः ॥ सा तं प्रसादयामास महर्षिं गौतमं तदा ॥४०॥ अज्ञानाद्धर्षिता नाथ त्वद्रूपेण दिवौकसा ॥ न कामकाराद्विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ४१ ॥ अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः ॥ उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ४२ ॥ रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति ॥ ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ॥ तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि ॥४३॥ स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद्दुष्कृतं कृतम् ॥ तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि ॥ ४४ ॥ वत्स्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि वरवर्णिनि ॥ एवमुक्त्वा स विप्रर्षिराजगाम स्वमाश्रमम् ॥ ४५ ॥ ततश्चचार सुमहत्सा पत्नी ब्रह्मवादिनः ॥ शापोत्सर्गाद्धितस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् ॥ ४६ ॥ तत्स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत्त्वया कृतम् ॥ तेन त्वं ग्रहणं शत्रोर्यातो नान्येन वासव ॥ ४७ ॥ शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ॥ पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसे त्रिदिवं ततः ॥४८॥ पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ॥ नीतः सन्निहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ ॥ ४९ ॥ एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ॥ पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासच्च देवराट् ॥ ५० ॥ एतदिन्द्रजितो नाम बलं यत्कीर्तितं मया ॥ निर्जितस्तेन देवेन्द्रः प्राणिनोन्ये तु किं पुनः ॥ ५१ ॥ आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत्तदा ॥ अगस्त्यवचनं श्रुत्वा वानरा राक्षसास्तदा ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ ॥

तदिति ॥ नान्येनेति । नतु हेत्वन्तरेणेत्यर्थः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ पुत्रश्चेति ॥ नीत इति । आर्यकेण मातामहेन । नीतः महोदधौ सन्निहितः सम्यङ्ग् निहितः निक्षिप्तः ॥४९॥५०॥५१॥ आश्चर्यमिति ॥ रामः अगस्त्यवचः श्रुत्वा आश्चर्यमित्यब्रवीत् । तथा लक्ष्मणः तथा वानरराक्षसाश्चाब्रुवन्नित्यनुषङ्गः ॥ ५२॥

विभीषणस्त्वित्यादि ॥ हे राम अगस्त्यस्तु आश्चर्यं यद्दृष्टं पुरातनमब्रवीत्तत्सर्वं मया दृष्टमिदानीम् । अहं स्मारितोस्मि । विभीषणसंवादेन सर्वस्यागस्त्योक्तस्य सत्यत्वं दर्शितम् ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरा० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥ ॥

ततो राम इत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ राजेति ॥ येन कारणेन रावणो धर्षणं न प्राप्तः । तस्मात्तदा तत्काले राजा वा राजमात्रो वा अक्षत्रियोपि प्रभुर्वा

विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ॥ आश्चर्यं स्मारितोस्म्यद्य यत्तद्दृष्टं पुरातनम् ॥ ५३ ॥ अगस्त्यं त्वब्रवीद्रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ॥ ५४ ॥ एवं राम समुद्भूतो रावणो लोककण्टकः ॥ सपुत्रो येन संग्रामे जितः शक्रः सुरेश्वरः ॥ ५५ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥ ॥ ॥

ततो रामो महातेजा विस्मयात्पुनरेव हि ॥ उवाच प्रणतो वाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥ भगवन् राक्षसः क्रूरो यदाप्रभृति मेदिनीम् ॥ पर्यटत्किं तदा लोकाः शून्या आसन् द्विजोत्तम ॥ २ ॥ राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन ॥ धर्षणं येन न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ उताहो हतवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीक्षितः ॥ बहिष्कृता वरास्त्रैश्च बहवो निर्जिता नृपाः ॥ ४ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा ह्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥ उवाच रामं प्रहसन्पितामह इवेश्वरम् ॥ ५ ॥ इत्येवं बाधमानस्तु पार्थिवान्पार्थिवर्षभ ॥ चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥ ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् ॥ संप्राप्तो यत्र सान्निध्यं सदासीद्वसुरेतसः ॥ ७ ॥

कश्चन नासीत् ॥ ३ ॥ उताहो इति ॥ पक्षान्तरे वर्तते । अथवा विद्यमाना एव पृथिवीक्षितः हतवीर्याः वीर्यरहिता आसन् । अथवा वीर्यवत्त्वेपि वरास्त्रैर्दिव्यास्त्रैर्बहिष्कृताः सन्तः निर्जिता इत्युवाचेति पूर्वेणान्वयः ॥ ४ ॥ रावणापजयस्मरणप्रीत्या प्रहसन्नित्युक्तम् । रामस्यामर्षो वर्तत इति मुनेर्भन्दहासो वा । ईश्वरम् अग्निप्रधानशौर्यादिक्षत्रगुणं रुद्रम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ तत इति ॥ वसुरेतसः अग्नेः सान्निध्यं प्राकाररूपेण नित्यसान्निध्यं स्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

तुल्य इति ॥ शरकुण्डेशयः शरास्तरणवत् कुण्डमग्निकुण्डं तत्र शेत इति तथा । पचाद्यच् । “शयवासवासिषु०” इत्यलुक् ॥ ८ ॥
तमेव दिवसमिति ॥ यस्मिन्दिवसे रावणो गतस्तस्मिन्नेव दिवस इत्यर्थः । स्त्रीभी रन्तुं नर्मदां गत इत्यन्वयः । ईश्वरः राजा ॥ ९ ॥
॥ १० ॥ ११ ॥ इतीति ॥ अब्रुवन् ब्रुवते स्म ॥ १२ ॥ श्रुत्वेति ॥ विश्रवसः पुत्रो रावणः । पौराणां मुखादिति शेषः । अपसृत्य पुरान्निवृत्त्य

तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद्वसुरेतसः ॥ अर्जुनो नाम यत्राग्निः शरकुण्डेशयः सदा ॥ ८ ॥ तमेव दिवसं
सोथ हैहयाधिपतिर्बली ॥ अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ॥ ९ ॥ तमेव दिवसं सोथ रावणस्तत्र आगतः ॥
रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ॥ १० ॥ क्वार्जुनो नृपतिः शीघ्रं सम्यगाख्यातुमर्हथ ॥ रावणोहमनुप्राप्तो
युद्धेप्सुर्नृवरेण ह ॥ ममागमनमप्यग्रे युष्माभिः सन्निवेद्यताम् ॥ ११ ॥ इत्येवं रावणोक्तास्ते अमात्याः
सुविपश्चितः ॥ अब्रुवन्राक्षसपतिमसान्निध्यं महीपतेः ॥ १२ ॥ श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ॥
अपसृत्यागतो विन्ध्यं हिमवत्सन्निभं गिरिम् ॥ १३ ॥ स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ॥ अपश्यद्रावणो
विन्ध्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ॥ १४ ॥ सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकन्दरम् ॥ प्रपातपतितैस्तोयैः
साट्टहासमिवाम्बुधिम् ॥ १५ ॥ देवदानवगन्धर्वैः साप्सरोगणकिन्नरैः ॥ स्वस्त्रीभिः क्रीडमानैश्च स्वर्गभूतं महोच्छ्रयम् ॥
१६ ॥ नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फाटिकप्रतिमं जलम् ॥ फणाभिश्चलजिह्वाभिरनन्तमिव विष्ठितम् ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ स इत्यादिसार्धपञ्चकम् ॥ अभ्रमिव महामेघमिवाविष्टम् । मेदिनीमुद्भ्रान्तमिव उद्भिद्योद्गतमिव । सहस्रशिखरोपेतम् । प्रपातपतितैः
तटात्पतितैः । “प्रपातस्तु तट” इत्यमरः । स्फटिकप्रतिमं जलं स्यन्दमानाभिर्नदीभिर्हेतुभिर्जिह्वाभिरुपलक्षितमनन्तमिव विष्ठितम् ।
उत्क्रामन्तमूर्ध्वं व्याप्नुवानम् । उल्कावन्तमिति पाठान्तरम् । चलोपलजलाम् उपलेषु चलानि जलानि यस्यास्ताम् । चलोपलामलामिति पाठे

जलवेगेन चलोपलतया निर्मलाम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ अथ नर्मदायाः स्त्रीसाम्यमाह—फुल्लद्रुमेत्यादिना ॥

उत्क्रामन्तं दरीवन्तं हिमवत्सन्निभं गिरिम् ॥ पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ ॥ १८ ॥ चलोपलजलां
पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम् ॥ १९ ॥ महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलर्क्षगजोत्तमैः ॥ उष्णाभितप्तैस्तृषितैः संक्षोभितजलाशयाम् ॥ २० ॥ चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः ॥ सारसैश्च सदा मत्तैः सुकूजद्भिः समावृताम् ॥ २१ ॥
फुल्लद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम् ॥ विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसावलिसुमेखलाम् ॥ २२ ॥ पुष्परेण्वनुलिप्ताङ्गीं
जलफेनामलांशुकाम् ॥ जलावगाहसंस्पर्शां फुल्लोत्पलशुभेक्षणाम् ॥ पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम् ॥
॥ २३ ॥ इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ॥ स तस्याः पुलिने रम्ये नानामुनिनिषेविते ॥ २४ ॥ उपोपविष्टैः सचिवैः
सार्धं राक्षसपुङ्गवः ॥ प्रख्याय नर्मदां चाथ गङ्गेयमिति रावणः ॥ २५ ॥ नर्मदादर्शजं हर्षमाप्तवान् राक्षसाधिपः
॥ उवाच सचिवांस्तत्र सलीलं शुकसारणौ ॥ २६ ॥ एष रश्मिसहस्रेण जगत्कृत्वैव काञ्चनम् ॥ तीक्ष्णतापकरः
सूर्यो नभसोर्धं समाश्रितः ॥ २७ ॥ मामासीनं विदित्वेह चन्द्रायति दिवाकरः ॥ २८ ॥ नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः
श्रमनाशनः ॥ मद्भयादनिलोप्यत्र वात्येष सुसमाहितः ॥ २९ ॥ इयं चापि सरिच्छ्रेष्ठा नर्मदा नर्मवर्धिनी
॥ नक्रमीनविहङ्गोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ॥ ३० ॥ तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि ॥ चन्दनस्य
रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ ॥

नर्मदां गङ्गेयमिति प्रख्याय प्रशस्य । सलीलं सविलासम् ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ एष इत्यादिसार्धम् ॥ काञ्चनं कृत्वा सुवर्णं कृत्वेत्यर्थः ।
चन्द्रायति चन्द्रवदाचरति । नर्मवर्धिनी प्रीतिवर्धिनीत्यर्थः ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ॥ ॥

त इति ॥ अवगाहध्वं स्नानं कुरुत । शर्मदाम् सुखदाम् । महापद्मः पुण्डरीकाख्यः दिग्गजस्तन्मुखाः महागजाः इव ॥ ३२ ॥ अहमिति ॥ पुष्पोपहारं पुष्पबलिम् ॥ ३३ ॥३४॥३५॥३६॥३७॥३८॥३९॥ तत्रेति ॥ तत्र नर्मदापुलिने । प्राञ्जलिं रुद्रं प्रति कृताञ्जलिम् ॥ ४० ॥ तदिति सार्धम् ॥ तद्गतीवश-

ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां शुभाम् ॥ महापद्ममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥ अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मानं
विप्रमोक्ष्यथ ॥३२॥ अहमप्यद्य पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ॥ पुष्पोपहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः॥३३॥
रावणेनैवमुक्तास्तु प्रहस्तशुकसारणाः ॥ समहोदरधूम्राक्षा नर्मदां विजगाहिरे ॥ ३४ ॥ राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता
नर्मदा नदी ॥ वामनाञ्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ॥३५॥ ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां महाबलाः॥उत्तीर्य
पुष्पाण्याजह्रुर्बल्यर्थं रावणस्य तु ॥३६॥ नर्मदापुलिने हृद्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ॥ राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो
गिरिः ॥३७॥ पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः॥ अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ॥३८॥ तत्र स्नात्वा
च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ॥ नर्मदासलिलात्तस्मादुत्ततार स रावणः ॥ ३९ ॥ तत्र क्लिन्नाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतम् ॥
रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः ॥ ४० ॥ तद्गतीवशमापन्ना मूर्तिमन्त इवाचलाः ॥ यत्र
यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ॥ जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४१ ॥ वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं
स्थाप्य रावणः॥ अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः॥४२॥ ततः सतामार्तिहरं परं वरं वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ॥
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ प्रसार्य हस्तान्प्रणनर्त चाग्रतः ॥४३॥ इत्यु०श्रीरा०एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१॥

मिति च्छान्दसो दीर्घः । मूर्तिमन्तः प्राण्याकाराः अचला इव स्थिताः राक्षसाः तत्र तत्र नीयत इति प्रतिदिवसं देवपूजार्थं तैः राक्षसैरिति शेषः । यदा कैलासे रावणः पीडितो विमुक्तः तदाप्रभृति तत्प्रीत्यर्थं रावणो लिङ्गपूजां करोति स्मेति ज्ञेयम् ॥४१॥४२॥ तत इति ॥जगाविति । सामगानं कृतवानित्यर्थः । साम्नां सहस्रशाखापारगो रावण इति प्रसिद्धिः॥४३॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकत्रिंशः सर्गः॥३१॥

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ कार्तवीर्येंति ॥ प्रतिस्रोतः प्रतिप्रवाहम् ॥ ५ ॥ समीनेति ॥ कुशसंस्तरः कुशास्तरणम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ रावण इत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ सागरोद्गारसन्निभं समुद्रपरीवाहसन्निभम् । पूर्वामाशां प्रविश्य त्विति । पूर्वामाशां प्रविश्य पश्यत इत्यन्वयः । रावण इति शेषः ॥ ८ ॥ ९ ॥ तत इति ॥

नर्मदापुलिने यत्र राक्षसेन्द्रः सुदारुणः ॥ पुष्पोपहारं कुरुते तस्माद्देशाददूरतः ॥ १ ॥ अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ॥ क्रीडते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥ २ ॥ तासां मध्यगतो राजा रराज च तदार्जुनः ॥ करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ॥ ३ ॥ जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् ॥ रुरोध नर्मदावेगं बाहुभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ४ ॥ कार्तवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् ॥ कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्रोतः प्रधावति ॥ ५ ॥ समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः ॥ स नर्मदाम्भसो वेगः प्रावृट्काल इवाबभौ ॥ ६ ॥ स वेगः कार्तवीर्येण संप्रेषित इवाम्भसः ॥ पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह ॥ ७ ॥ रावणोर्धसमाप्तं तमुत्सृज्य नियमं तदा ॥ नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ॥ ८ ॥ पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोद्गारसन्निभम् ॥ वर्धन्तमम्भसो वेगं पूर्वामाशां प्रविश्य तु ॥ ९ ॥ ततोनुभ्रान्तशकुनां स्वभावोपरमे स्थिताम् ॥ निर्विकाराङ्गनाभासामपश्यद्रावणो नदीम् ॥ ॥ १० ॥ सव्येतरकराङ्गुल्या सशब्दं च दशाननः ॥ वेगप्रभवमन्वेष्टुं सोदिशच्छुकसारणौ ॥ ११ ॥ तौ तु रावणसंदिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ ॥ व्योमान्तरगतौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ ॥ १२ ॥ अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ रजनीचरौ ॥ पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम् ॥ १३ ॥ बृहत्सालप्रतीकाशं तोयव्याकुलमूर्धजम् ॥ मदरक्तान्तनयनं मदव्याकुलतेजसम् ॥ १४ ॥ नदीं बाहुसहस्रेण रुन्धन्तमरिमर्दनम् ॥ गिरिं पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

स्वभावस्य नदीस्वभावस्योपरमेऽलंभावे स्थितां नदीमपश्यत् । नद्या एव स्वभावो निमित्तान्तरेण वेति जिज्ञासयेति शेषः ॥ १० ॥ सव्येतरेति ॥ सव्येतरकराङ्गुल्या सशब्दं शीघ्रान्वेषणद्योतिहुंकारसंहितं यथा तथा ॥ ११ ॥ १२ ॥ अर्धयोजनेति ॥ पश्येतामपश्यतामित्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

॥ १६ ॥१७॥ बृहत्सालेति ॥ रोधवत्तटवत् । अकारान्तत्वमार्षम् । क्रीडापयतीति पुगार्षः । क्रीडयतीत्यर्थः ॥१८॥१९॥ इत्येवमिति ॥ निशाम्य दृष्ट्वा । अर्जुन इत्युक्तत्वे अन्यस्यैवं सामर्थ्यं न संभवतीति युक्त्येति शेषः ॥ २० ॥ २१ ॥ रावणस्योत्पातमाह—सकृदिति ॥ सरक्तः रक्तवर्षसहितः । रावः श-

बालानां वरनारीणां सहस्रेण समावृतम् ॥ समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्जरम् ॥ १६ ॥ तमद्भुततमं दृष्ट्वा
राक्षसौ शुकसारणौ ॥ सन्निवृत्तावुपागम्य रावणं तमथोचतुः ॥ १७ ॥ बृहत्सालप्रतीकाशः कोप्यसौ राक्षसेश्वर ॥
नर्मदां रोधवद्बद्ध्वा क्रीडापयति योषितः ॥ १८ ॥ तेन बाहुसहस्रेण सन्निरुद्धजला नदी ॥ सागरोद्गारसंकाशानुद्गारान्त्सृजते मुहुः ॥ १९ ॥ इत्येवं भाषमाणौ तौ निशाम्य शुकसारणौ ॥ रावणोर्जुन इत्युक्त्वा प्रययौ युद्धलालसः ॥ २० ॥ अर्जुनाभिमुखे तस्मिन्रावणे राक्षसाधिपे ॥ चण्डः प्रवाति पवनः सनादः सरजास्तदा ॥ २१ ॥ सकृदेव कृतो रावः सरक्तः प्रेषितो घनैः ॥ महोदरमहापार्श्वधूम्राक्षशुकसारणैः ॥ २२ ॥ संवृतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागाद्यत्र चार्जुनः ॥ अदीर्घेणैव कालेन स तदा राक्षसो बली ॥ तं नर्मदाह्रदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः ॥ २३ ॥ स तत्र स्त्रीपरिवृतं वाशिताभिरिव द्विपम् ॥ नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदार्जुनम् ॥२४॥
स रोषाद्रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः॥२५॥इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा ॥ अमात्याः क्षिप्रमाख्यात हैहयस्य नृपस्य वै ॥२६॥ युद्धार्थी समनुप्राप्तो रावणो नाम राक्षसः ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोथार्जुनस्य ते ॥
उत्तस्थुः सायुधास्त्राश्च रावणं वाक्यमब्रुवन्॥२७॥युद्धस्य कालो विज्ञेयः साधु भोः साधु रावण॥२८॥यः क्षीबं स्त्रीवृतं
चैव योद्धुमुत्सहते नृपम्॥ स्त्रीसमक्षं कथं यत्तद्योद्धुमुत्सहसेर्जुनम्॥वाशितामध्यगं मत्तं शार्दूल इव कुञ्जरम्॥२९॥

ब्दः । सकृदेकवारमेव । घनैः प्रेषितः कृतः । वर्षुकमेघानां सकृद्राव उत्पात इति भावः॥२२॥२३॥स तत्रेति ॥ वाशिताभिः करेणुभिः । वाशिता स्त्री करेण्वां चेत्यमरः । पश्यते पश्यति ॥२४॥२५॥ इतीति ॥ इत्येवं वक्ष्यमाणप्रकारेण॥२६॥२७॥युद्धस्येत्यादि॥व्यङ्ग्योक्तिः॥२८॥ य इत्यादिसार्धद्वयम् ॥

क्षीवं मत्तम् । उष्यताम् इहेति शेषः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इषुभिरिति ॥ कर्षणमायुधविशेषः ॥ ३४ ॥ हैहयेति ॥ वेगो युद्धवेगः ॥ ३५ ॥

क्षमस्वाद्य दशग्रीव चोष्यतां शर्वरी त्वया ॥ युद्धे श्रद्धा च यद्यस्ति श्वस्तात समरेर्जुनम् ॥ ३० ॥ यद्यद्यास्ति मति-
र्योद्धुं युद्धतृष्णासमावृता ॥ निहत्यास्मांस्ततो युद्धमर्जुनेनोपयास्यासि ॥ ३१ ॥ ततस्ते रावणामात्यैरमात्याः
पार्थिवस्य तु ॥ सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ॥ ३२ ॥ ततो हलहलाशब्दो नर्मदातीर आबभौ ॥
अर्जुनस्यानुयातॄणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥ ३३ ॥ इषुभिस्तोमरैः शूलैस्त्रिशूलैर्वज्रकर्षणैः ॥ सरावणानर्दयन्तः
समन्तात्समभिद्रुताः ॥ ३४ ॥ हैहयाधिपयोधानां वेग आसीत्सुदारुणः ॥ सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निस्वनः
॥ ३५ ॥ रावणस्य तु तेमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः ॥ कार्तवीर्यबलं क्रुद्धा निर्दहन्ति स्म तेजसा ॥ ३६ ॥
अर्जुनाय तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः । क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्द्वाररक्षिभिः ॥ ३७ ॥ श्रुत्वा न भेतव्यमिति
स्त्रीजनं तं ततोर्जुनः ॥ उत्ततार जलात्तस्माद्गङ्गातोयादिवाञ्जनः ॥ ३८ ॥ क्रोधदूषितनेत्रस्तु स ततोर्जुनपावकः
॥ प्रजज्वाल महाघोरो युगान्त इव पावकः ॥ ३९ ॥ स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम् ॥ अभिदुद्राव
रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ॥ ४० ॥ बाहुविक्षेपकरणां समुद्यम्य महागदाम् ॥ गारुडं वेगमास्थाय
चापपातैव सोर्जुनः ॥ ४१ ॥ तस्य मार्गं समारुध्य विन्ध्योर्कस्येव पर्वतः ॥ स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो
मुसलायुधः ॥ ४२ ॥ ततोस्य मुसलं घोरं लोहबद्धं महोद्धतः ॥ प्रहस्तः प्रेषयन् क्रुद्धो ररास च यथाम्बुदः ॥
॥ ४३ ॥ तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीडसन्निभः ॥ प्रहस्तकरमुक्तस्य बभूव प्रदहन्निव ॥ ४४ ॥ ॥

॥३६॥३७॥३८॥क्रोधेति॥युगान्ते युगान्तकाले उत्थितो घोरः पावक इव ॥३९॥४०॥ बाहुभिर्विक्षेपकरणं भ्रमणं यस्यास्ताम् । वेगः शैघ्र्यम् ।आपपातैव न तु विलम्बितवान् ॥४१॥४२॥ तत इति ॥ अस्य प्रेषयन् अर्जुनस्य संहारार्थं क्षिपन् ॥४३॥ तस्येति ॥ अशोकपुष्पकृतः आपीडः अशोकापीडः ॥४४

अथेति ॥ वञ्चयामास प्रतिहतवानित्यर्थः । सगदः गदासहितः । अगदः अरोगः अप्रतिबन्ध इति यावत् विक्रमो यस्येति विग्रहः ॥ ४५ ॥ तत इति ॥ पञ्चबाहुशतैः उच्छ्रय उत्क्षेपो यस्याः सा ॥ ४६ ॥ तथेति ॥ तथा शैल इव स्थितः निपपात ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सागरावित्या-

अथायान्तं तु मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः ॥ निपुणं वञ्चयामास सगदोऽगदविक्रमः ॥ ४५ ॥ ततस्तमभिदुद्राव प्रहस्तं हैहयाधिपः ॥ भ्रामयानो गदां गुर्वीं पञ्चबाहुशतोच्छ्रयाम् ॥ ४६ ॥ तथाहतोतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा ॥ निपपात हतः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ॥ ४७ ॥ प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः ॥ समहोदरधूम्राक्षा ह्यपसृष्टा रणाजिरात् ॥ ४८ ॥ अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते विनिपातिते ॥ रावणोभ्यद्रवत्तूर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ॥ ४९ ॥ सहस्रबाहोस्तद्युद्धं विंशद्बाहोश्च दारुणम् ॥ नृपराक्षसयोस्तत्र चारब्धं रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥ सागराविव संरब्धौ चलन्मूलाविवाचलौ ॥ तेजोयुक्ताविवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ॥ ५१ ॥ बलोद्धतौ यथा नागौ वाशितार्थे यथा वृषौ ॥ मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥ ५२ ॥ रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तदा तौ राक्षसार्जुनौ ॥ परस्परं गदाभ्यां तौ ताडयामासतुर्भृशम् ॥ ५३ ॥ वज्रप्रहारानचला यथा घोरान्विषेहिरे ॥ गदाप्रहारांस्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ॥ ५४ ॥ यथाशनिरवेभ्यस्तु जायतेथ प्रतिश्रुतिः ॥ तथा तयोर्गदापोथैर्दिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ॥ ५५ ॥ अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि ॥ काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ ॥ ५६ ॥ तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ॥ ५७ ॥ नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः ॥ इदमासीत्तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ॥ ५८ ॥ ॥

दिश्लोकत्रयम् ॥ वाशितार्थे करेण्वर्थे । युध्यन्ताविति शेषः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यथेति ॥ प्रतिश्रुताः प्रतिश्रुतवन्त इत्यर्थः । मत्वर्थीया जन्तः । गदापोथैः गदापातैः ॥ ५५ ॥ अर्जुनस्येति ॥ विद्युद्विशेषेण द्योतमाना सौदमिनी नभ इव राक्षसोरः काञ्चनाभं स्वर्णवर्णं चकार ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

॥ ५९ ॥ ६० ॥ वरदानेति ॥ दुर्बलेव बलरहितेव । यथावेगं स्ववेगोचितम् । प्रहर्त्तुं स्वयं द्विधा भूत्वा क्षितावपतत् । तत्र हेतुः—वरदानकृतत्राण इति ॥ ६१ ॥

शृङ्गैरिव वृषा युध्यन् दन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ ॥ परस्परं तौ निघ्नन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥ ५९ ॥ ततोर्ज़ुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा ॥ स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥ ६० ॥ वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि ॥ दुर्बलेव यथावेगं द्विधा भूत्वापतत् क्षितौ ॥ ६१ ॥ स त्वर्जुनप्रमुक्तेन गदापातेन रावणः ॥ अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ॥ ६२ ॥ स विह्वलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोर्जुनः ॥ सहसोत्पत्य जग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ॥ ६३ ॥ स तं बाहुसहस्रेण बलाद्गृह्य दशाननम् ॥ बबन्ध बलवान्राजा बलिं नारायणो यथा ॥ ६४ ॥ बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः ॥ साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ॥ ६५ ॥ व्याघ्रो मृगमिवादाय मृगराडिव दन्तिनम् ॥ ननाद हैहयो राजा हर्षादम्बुदवन्मुहुः ॥ ६६ ॥ प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्ट्वा बद्धं दशाननम् ॥ सह तै राक्षसैः क्रुद्धश्चाभिदुद्राव पार्थिवम् ॥ ६७ ॥ नक्तंचराणां वेगस्तु तेषामापततां बभौ ॥ उद्धूत आतपापाये पयोदानामिवाम्बुधौ ॥ ६८ ॥ मुञ्च मुञ्चेति भाषन्तस्तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ॥ मुसलानि सशूलानि सोत्ससर्ज तदार्जुने ॥ ६९ ॥ अप्राप्तान्येव तान्याशु असंभ्रान्तस्तदार्जुनः ॥ आयुधान्यमरारीणां जग्राहारिनिषूदनः ॥ ७० ॥ ततस्तैरेव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः ॥ भित्त्वा विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ॥ ७१ ॥ राक्षसांस्त्रासयित्वा तु कार्तवीर्योर्जुनस्तदा ॥ रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्वृतः ॥ ७२ ॥ स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्करैर्द्विजैः सपौरैः पुरुहूतसन्निभः ॥ तदार्जुनः संप्रविवेश तां पुरीं बलिं निगृह्येव सहस्रलोचनः ॥ ७३ ॥ इत्यु० द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

स त्विति ॥ निष्टनन् रटन् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ वध्यमान इति ॥ साध्वीति वादिनः इयं क्रिया साध्विति वदन्तः ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ ॥

॥१॥ तत इति ॥ कम्प्यमानः अनुकम्पायुक्ततया संपद्यमानः । यद्वा पौत्रस्नेहात्कम्पित इत्यर्थः । महाधृतेरपि कम्पितं हृदयमित्यर्थः ॥ २ ॥ स इति ॥ मनःसंपातविक्रमः मनोगतिः । वायुतुल्यगतिः वायुसमानवेगः ॥३॥ स इति ॥ अमरावतिसंकाशामित्यत्र "ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् " इति ह्रस्वः

रावणग्रहणं तत्तु वायुग्रहणसन्निभम् ॥ ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः ॥ १ ॥ ततः पुत्रकृतस्नेहात्कम्प्यमानो महाधृतिः ॥ माहिष्मतीपतिं द्रष्टुमाजगाम महामुनिः ॥२॥ स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः ॥ पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मनःसंपातविक्रमः ॥ ३ ॥ सोमरावतिसंकाशां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ प्रविवेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ ४ ॥ पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दशम् ॥ ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय चार्जुनाय निवेदयन् ॥ ॥५॥ पुलस्त्य इति विज्ञाय वचनाद्धैहयाधिपः ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रत्युद्गच्छत्तपस्विनम् ॥ ६ ॥ पुरोहितोस्य गृह्यार्घ्यं मधुपर्कं तथैव च ॥ पुरस्तात्प्रययौ राज्ञः शक्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ७ ॥ ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ अर्जुनो दृश्य संभ्रान्तो ववन्देन्द्र इवेश्वरम् ॥ ८ ॥ स तस्य मधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च ॥ पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदया गिरा ॥ ९ ॥ अद्यैवममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता ॥ अद्याहन्तु द्विजेन्द्र त्वां यस्मात्पश्यामि दुर्दशम् ॥ १० ॥ अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम् ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥ यस्माद्देवगणैर्वन्द्यौ वन्देहं चरणौ तव ॥ ११ ॥ इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ॥ ब्रह्मन् किं कुर्मि किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान् ॥१२॥ तं धर्मोग्निषु पुत्रेषु शिवं पृष्ट्वा च पार्थिवम् ॥ पुलस्त्योवाच राजानं हैहयानां तथार्जुनम् ॥ १३ ॥ नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन ॥ अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥ १४ ॥ ॥

॥ ४ ॥ पादचारमिति ॥ सुदुर्दशं दुर्दर्शमिति यावत् । प्रत्युद्गच्छत् प्रत्युद्गच्छत । ईश्वरं ब्रह्माणम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ इदमिति ॥ किं कुर्मि किं करवाणि किं वा कार्यं मया ॥ १२ ॥ तमिति ॥ शिवं कुशलम् । पुलस्त्योवाचेति सन्धिरार्षः ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥

॥१५॥ पुत्रकस्येति ॥ पुत्रकस्य मदीयबालकस्य । नाम विश्रावितं रावणजिदिति नाम त्वया त्रैलोक्ये विश्रावितम् । वत्सं बालम् ॥१६॥ पुलस्त्येति ॥ किंचिद्वचोपि नोवाच किंचन अविद्यमानं किंचिद्वचनं न किंचिदप्यवददित्यर्थः । अपि तु क्रियाकेवलमुत्तरमिति मुमोचेत्यर्थः । प्रहृष्टवत् ब्रह्मणा प्रार्थनी-

भयाद्यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ ॥ सोयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः ॥ १५ ॥ पुत्रकस्य यशः पीतन्नाम विश्रावितं त्वया ॥ मद्वाक्याद्याच्यमानोद्य मुञ्च वत्सं दशाननम् ॥ १६ ॥ पुलस्त्याज्ञां प्रगृह्योचे न किंचन वचोर्जुनः ॥ मुमोच वै पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्रं प्रहृष्टवत् ॥१७॥ स तं प्रमुच्य त्रिदशारिमर्जुनः प्रपूज्य दिव्याभरणस्रगम्बरैः ॥ अहिंसकं सख्यमुपेत्य साग्निकं प्रणम्य तं ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ॥ १८ ॥ पुलस्त्येनापि संत्यक्तो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ परिष्वक्तः कृतातिथ्यो लज्जमानो विनिर्जितः ॥ १९॥ पितामहसुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिपुङ्गवः ॥ मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोकं जगामह ॥२०॥ एवं स रावणः प्राप्तः कार्तवीर्यात्प्रधर्षणम् ॥ पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्मुक्तो महाबलः ॥२१॥ एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन ॥ नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेत्प्रियमात्मनः ॥२२॥ ततः स राजा पिशिताशनानां सहस्रबाहोरुपलभ्य मैत्रीम् ॥ पुनर्नृपाणां कदनं चकार चचार सर्वां पृथिवीं च दर्पात् ॥२३॥ इत्यु०श्रीरा०त्र०सर्गः॥३३॥ अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः ॥ चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विण्णस्तथाकृतः ॥ १ ॥ राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुते यं बलाधिकम् ॥ रावणस्तं समासाद्य युद्धे ह्वयति दर्पितः ॥ २ ॥ ततः कदाचित्किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम् ॥ गत्वा ह्वयति युद्धाय वालिनं हेममालिनम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

योस्मीति संतोषयुक्तः सन् ॥१७॥ स इति ॥ परस्परहिंसाप्रवृत्तिनिवारणसाधनभूतं साग्निकमग्निसाक्षिपूर्वकम् ॥ १८॥ पुलस्त्येनेति ॥ अपिना अर्जुनेनापीति समुच्चीयते । कृतातिथ्य इति । अर्जुनेनेति शेषः ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥ ॥ १ ॥ राक्षसमिति ॥ युद्धे युद्धनिमित्तम् । ह्वयति आह्वयति स्म ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ वानरामात्यः वालिनोमात्यः मन्त्री तार उवाच। तथा तारापिता सुषेणश्चोवाच। प्रभुः युवराजः सुग्रीवश्चोवाच ॥ ४ ॥ राक्षसेन्द्रेति ॥ ते तुभ्यम्। प्रतिबल इति। युद्धं दातुमिति शेषः॥५॥६॥ एतानिति ॥ युद्धार्थिनामिति। वानराधिपतेजसा मृतानां युद्धार्थिनामिमे। एवं त्वमपि भविष्यसीति भावः ॥ ७ ॥ यद्वेति ॥ तदा तथापि वालिनमासाद्य तव जीवितं तदन्तं तत्समीपप्राप्तिपर्यन्तमित्यर्थः ॥ ८ ॥ पश्येति ॥ जगच्चित्रं जगतः सर्वस्या-

ततस्तु वानरामात्यस्तारस्तारापिता प्रभुः ॥ उवाच वानरो वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ॥ ४ ॥ राक्षसेन्द्र गतो वाली यस्ते प्रतिबलो भवेत् ॥ कोन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवङ्गमः ॥ ५ ॥ चतुर्भ्योपि समुद्रेभ्यः संध्यामन्वास्य रावण ॥ इमं मुहूर्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥ एतानस्थिचयान्पश्य य एते शङ्खपाण्डुराः ॥ युद्धार्थिनामिमे राजन् वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥ यद्वामृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस ॥ तदा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ॥ ८ ॥ पश्येदानीं जगच्चित्रमिमं विश्रवसः सुत ॥ इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥ अथ वा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ॥ वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिस्थमिव पावकम् ॥ १० ॥ स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावणः ॥ पुष्पकं तत्समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम् ॥ ११ ॥ तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम् ॥ रावणो वालिनं दृष्ट्वा संध्योपासनतत्परम् ॥ १२ ॥ पुष्पकादवरुह्याथ रावणोञ्जनसन्निभः ॥ ग्रहीतुं वालिनं तूर्णं निःशब्दपदमाव्रजत् ॥ १३ ॥ यदृच्छया तदा दृष्टो वालिनापि स रावणः ॥ पापाभिप्रायवान् दृष्ट्वा चकार न तु संभ्रमम् ॥१४॥ शशमालक्ष्य सिंहो वा पन्नगं गरुडो यथा ॥ न चिन्तयति तं वाली रावणं पापनिश्चयम् ॥ १५ ॥

प्याश्चर्यभूतं व्यापारमिदानीं पश्य। दुर्लभं जीवितमिति शेषः ॥ ९ ॥ १० ॥ स त्विति ॥ तारं तारादीन्। यद्वा पूर्वं तार एवोक्तवान् तस्य तारापितृत्वं सम्वन्धविशेषात् ॥ ११ ॥ १२ ॥ पुष्पकादिति ॥ निःशब्दं निःशब्दचरणविन्यासम् ॥१३॥ यदृच्छयेति ॥ पापाभिप्रायवान् वन्धनाभिप्रायवान् ॥ ॥ १४ ॥ शशमिति ॥ सिंहो वा सिंह इव ॥ १५ ॥ ॥ ॥

जिघृक्षमाणमित्यारभ्य इत्येवमित्यन्तं वालिविचारः ॥ १६ ॥ द्रक्ष्यन्तीति ॥ द्रक्ष्यन्ति देवादय इति शेषः । ममाङ्कस्थं कक्षस्थमिति यावत् । गरुडस्येवेति । अङ्कस्थमित्यनुकर्षः ॥ १७ ॥ इतीति ॥ कर्णमुपाश्रितः पादशब्दश्रवणार्थं कर्णमुपाश्रितमनाः । नैगमान् वैदिकान् । देवकुमारत्वान्मन्त्रवत्त्वम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ हस्तेति ॥ हस्तग्राहं हस्तैर्ग्रहणाभिप्रायवन्तम् । पादशब्देन सूक्ष्मपादशब्देन ॥ २० ॥ २१ ॥ तं चेति ॥ आपीडयमानम् “ णिचश्च ”

जिघृक्षमाणमायान्तं रावणं पापचेतसम् ॥ कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये त्रीन् महार्णवान् ॥ १६ ॥ द्रक्ष्यन्त्यरिं ममाङ्कस्थं स्रंसदूरुकराम्बरम् ॥ लम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम् ॥ १७ ॥ इत्येवं मतिमास्थाय वाली कर्णमुपाश्रितः ॥ जपन्वै नैगमान्मन्त्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव ॥ १८ ॥ तावन्योन्यं जिघृक्षन्तौ हरिराक्षसपार्थिवौ ॥ प्रयत्नवन्तौ तत्कर्म ईहतुर्बलदर्पितौ ॥ १९ ॥ हस्तग्राहन्तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम् ॥ पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सर्पमिवाण्डजः ॥ २० ॥ ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः ॥ खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम् ॥ २१ ॥ तं चापीडयमानन्तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः ॥ जहार रावणं वाली पवनस्तोयदं यथा ॥ २२ ॥ अथ ते राक्षसामात्या ह्रियमाणं दशाननम् ॥ मुमोक्षयिषवो वालिं रवमाणा अभिद्रुताः ॥ २३ ॥ अन्वीयमानस्तैर्वाली भ्राजतेम्बरमध्यगः ॥ अन्वीयमानो मेघौघैरम्बरस्थ इवांशुमान् ॥ २४ ॥ तेऽशक्नुवन्तः संप्राप्तुं वालिनं राक्षसोत्तमाः ॥ तस्य बाहूरुवेगेन परिश्रान्ता व्यवस्थिताः ॥ २५ ॥ वालिमार्गादपाक्रामन्पर्वतेन्द्रा हि गच्छतः ॥ किं पुनर्जीवितप्रेप्सुर्बिभ्रद्वै मांसशोणितम् ॥ २६ ॥ अपक्षिगणसंपातान् वानरेन्द्रो महाजवः ॥ क्रमशः सागरान् सर्वान् संध्याकालमवन्दत ॥ २७ ॥ ॥

इत्यात्मनेपदम् ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तेऽशक्नुवन्त इति ॥ अशक्नुवन्त इति पदम् ॥ २५ ॥ वालीति ॥ हि यस्मात्पर्वतेन्द्रा अपि वालिमार्गादपाक्रामन् । मांसादिमान् जीवितप्रेप्सुः प्राणी गच्छतस्तस्य मार्गादपाक्रामतीति किं पुनः । पर्वतेन्द्रा हीति च पाठः ॥ २६ ॥ अपक्षिगणेति ॥ अपक्षिगणसंपातान् पक्षिगणैरप्यशक्यसंपातान् सागरान् । क्रमशोऽगच्छन्निति शेषः । संध्याकालं प्रातःसंध्याकालदेवतारूपमवन्दत ॥ २७ ॥ ॥

सभाज्यमान इति ॥ सभाज्यमानः पूज्यमानः । पश्चिममित्यादि ॥ दक्षिणे संध्याङ्गशौचम् । पश्चिमे मन्त्रपूर्वकसंध्याङ्गस्नानम् । उत्तरे प्रोक्षणादिकम् । पूर्वेर्घ्यप्रदानादिकमिति । अन्यथा संध्याचतुष्टयाभावात् तदङ्गस्यापि तत्त्वेन व्यपदेशात् ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तत्रेति ॥ वासवस्यापत्यं वास-

सभाज्यमानो भूतैस्तु खेचरैः खेचरोत्तमः ॥ पश्चिमं सागरं वाली ह्याजगाम सरावणः ॥ २८ ॥ तस्मिन्सं-
ध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ॥ उत्तरं सागरं प्रायाद्वहमानो दशाननम् ॥ २९ ॥ बहुयोजनसाहस्रं
वहमानो महाहरिः ॥ वायुवच्च मनोवच्च जगाम सह शत्रुणा ॥ ३० ॥ उत्तरे सागरे संध्यामुपासित्वा दशानन-
म् ॥ वहमानोगमद्वाली पूर्वं वै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥ तत्रापि संध्यामन्वास्य वासविः स हरीश्वरः ॥ किष्कि-
न्धामभितो गृह्य रावणं पुनरागमत् ॥ ३२ ॥ चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य वानरः ॥ रावणोद्वहनश्रान्तः
किष्किन्धोपवनेपतत् ॥ ३३ ॥ रावणन्तु मुमोचाथ स्वकक्षात्कपिसत्तमः ॥ कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन्रावणं
मुहुः ॥ ३४ ॥ विस्मयन्तु महद्गत्वा श्रमलोलनिरीक्षणः ॥ राक्षसेन्द्रो हरीन्द्रन्तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोस्मि रावणः ॥ युद्धेप्सुरिह संप्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया ॥३६॥ अहो बलमहो
वीर्यमहो गाम्भीर्यमेव च ॥ येनाहं पशुवद्गृह्य भ्रामितश्चतुरोर्णवान् ॥ ३७ ॥ एवमश्रान्तवद्वीर शीघ्रमेव महार्ण-
वान् ॥ मां चैवोद्वहमानस्तु कोन्यो वीरः क्रमिष्यति ॥ ३८ ॥ त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्लवङ्गम ॥ मनोनि-
लसुपर्णानां तव चात्र न संशयः ॥ ३९ ॥ सोहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ॥ त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं
पावकाग्रतः ॥ ४० ॥ दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ॥ सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ॥ ४१ ॥

विः ॥३२॥३३॥ रावणमिति ॥ प्रहसन्निति । मां जिघृक्षुः स्वयमेव दुरात्मा निगृहीत इति प्रहसन् ॥३४॥३५॥ वानरेन्द्रेति ॥ त्वयासादित इति कक्षनिक्षेपं प्रापित इत्यर्थः ॥३६॥३७॥ एवमिति ॥ अश्रान्तवत् अश्रान्तः सन् । मां चैव महाद्रिसमानभारमित्यर्थः ॥३८॥३९॥ सोहमिति ॥ तुभ्यं तवेत्यर्थः ॥४०॥४१॥

॥ ४२ ॥ ४३ ॥ स इति ॥ सुग्रीव इवेति भ्रातृभावेनेत्यर्थः । आगतैरिति । सहेति शेषः ॥ ४४ ॥ एवमिति ॥ भ्राता कृतः सोदरभावतया स्नेहीकृतः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥ ॥

ततः प्रज्वालयित्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ ॥ भ्रातृत्वमुपसंपन्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥४२॥ अन्योन्यं लम्भितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसौ ॥ किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ॥ ४३ ॥ स तत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः ॥ अमात्यैरागतैर्नीतस्त्रैलोक्योत्सादनार्थिभिः ॥४४॥ एवमेतत्पुरा वृत्तं वालिना रावणः प्रभो ॥ धर्षितश्च कृतश्चापि भ्राता पावकसन्निधौ ॥४५॥ बलमप्रतिमं राम वालिनोभवदुत्तमम् ॥ सोपि त्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ॥४६॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ ॥ ॥

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाशाश्रयं मुनिम् ॥ प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोर्थवत् ॥ १ ॥ अतुलं बलमेतद्वै वालिनो रावणस्य च ॥ न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥ २ ॥ शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ॥ विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् ॥ समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४ ॥ धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा ॥ दृष्ट्वा संभाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा ॥ ५ ॥ सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किंकरा रावणात्मजः ॥ एते हनुमता तत्र ह्येकेन विनिपातिताः ॥ ६ ॥ भूयो बन्धाद्विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ॥ लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनेव मेदिनी ॥ ७ ॥ न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ॥ कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥ ८ ॥ ॥

अपृच्छतेत्यादि ॥ अपृच्छतेत्यस्य विवरणम् इदं वचनमिति ॥ १ ॥ अतुलमिति ॥ एताभ्यामिति । एतयोरित्यर्थः । षष्ठ्यर्थे बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम् । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॥ २ ॥ शौर्यमिति ॥ नयसाधनं नीतिकृत्यसंपादनम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ नेति ॥ कालस्य यमस्य ॥ ८ ॥

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ॥ प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥ ९ ॥ हनूमान्यदि नो न स्याद्वानराधिपतेः सखा ॥ प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत् ॥ १० ॥ किमर्थं वाल्यनेनैव सुग्रीवप्रियकाम्यया ॥ तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा ॥ ११ ॥ न हि वेदितवान्मन्ये हनूमानात्मनो बलम् ॥ यद्दृष्टवान् जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम् ॥ १२ ॥ एतन्मे भगवन्सर्वं हनूमति महामतौ ॥ विस्तरेण यथातत्त्वं कथयामरपूजित ॥ १३ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा हेतुयुक्तमृषिस्तदा ॥ हनूमतः समक्षं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥ सत्यमेतद्रघुश्रेष्ठ यद्ब्रवीषि हनूमतः ॥ न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ॥ १५ ॥ अमोघशापैः शप्तस्तु दत्तोस्य ऋषिभिः पुरा ॥ न वेत्ता हि बलं येन बली सन्नरिमर्दनः ॥ १६ ॥ बाल्येप्येतेन यत्कर्म कृतं राम महाबल ॥ तन्न वर्णयितुं शक्यमिति बालतयास्यते ॥ १७ ॥ यदि वास्ति ह्यभिप्रायस्तच्छ्रोतुं तव राघव ॥ समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम् ॥ १८ ॥ सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः ॥ यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वै पिता ॥ १९ ॥ तस्य भार्या बभूवैषा ह्यञ्जनेति परिश्रुता ॥ जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम् ॥ २० ॥

एतस्येति ॥ लङ्का प्राप्ता विभीषणाय देयत्वेन प्राप्तेत्यर्थः । लक्ष्मणः प्राप्त इति । ओषध्यानयनेनेति शेषः ॥ ९ ॥ हनूमानिति ॥ हनूमान्यदि नो न स्यात्सहायत्वेनेति शेषः ॥ १० ॥ किमर्थमिति ॥ वीरुध इत्यकारान्तो वृक्षवाची ॥ ११ ॥ वाल्यवधहेतुं स्वयं रामः ऊहति—न हीत्यादि ॥ १२ ॥ एतदिति ॥ हनूमत्येतदिति हनूमद्विषये पृष्टमित्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ सत्यमिति ॥ यद्ब्रवीषि हे रघुश्रेष्ठ तदेतत्सत्यम् । स आत्मनो बलं न हि वेदेत्यर्थः ॥ १५ ॥ तदेव दर्शयति—अमोघेत्यादि ॥ १६ ॥ बाल्य इति ॥ बालतया आस्यत इति । बालतया बालभावेन । अजानतैवेत्यर्थः ॥ १७ ॥ यदीति ॥ निशामय शृणु ॥ १८ ॥ सूर्येति ॥ सूर्यदत्तवरस्वर्णः सूर्यदत्तवरेण स्वर्णरूपः । सुमेरुः । सुवर्णमेरुः ॥ १९ ॥ तस्येति ॥ परिश्रुता प्रसिद्धा ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

शालिशूकेति ॥ शालिशूकसमाभासं शाल्यग्रवत्पिङ्गलाभासम्। काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहमित्युक्तेः। प्रासूत प्रसूतवती॥२१॥ एष इति ॥ शरवणे शिशुः

शालिशूकनिभाभासं प्रासूतामुं तदाञ्जना ॥ फलान्याहर्तुकामा वै निष्क्रान्ता गहनेचरा ॥ २१ ॥ एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया च भृशार्दितः ॥ रुरोद शिशुरत्यर्थं शिशुः शरवणे यथा ॥ २२ ॥ तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम् ॥ ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति ॥ २३ ॥ बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान् ॥ ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेम्बरमध्यगः ॥ २४ ॥ एतस्मिन्प्लवमाने तु शिशुभावे हनूमति ॥ देवदानवयक्षाणां विस्मयः सुमहानभूत् ॥ २५ ॥ नाप्येवं वेगवान्वायुर्गरुडो वा मनस्तथा ॥ यथायं वायुपुत्रस्तु क्रमतेम्बरमुत्तमम् ॥ ॥ २६ ॥ यदि तावच्छिशोरस्य त्वीदृशो गतिविक्रमः ॥ यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति ॥ २७ ॥ तमनुप्लवते वायुः प्लवन्तं पुत्रमात्मनः ॥ सूर्यदाहभयाद्रक्षंस्तुषारचयशीतलः ॥ २८ ॥ बहुयोजनसाहस्रं क्रमत्येष गतोम्बरम् ॥ पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः ॥ २९ ॥ शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिनेश्वरः ॥ कार्यं चात्र समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥ ३० ॥ यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः ॥ तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥ ३१ ॥ अनेन स परामृष्टो राम सूर्यरथोपरि ॥ अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः ॥ ३२ ॥ स इन्द्रभवनं गत्वा सरोषः सिंहिकासुतः ॥ अब्रवीद्भ्रुकुटिं कृत्वा देवं देवगणैर्वृतम् ॥ ३३ ॥ बुभुक्षापनयं दत्त्वा चन्द्रार्कौ मम वासव ॥ किमिदं तत्त्वयादत्तमन्यस्य बलवृत्रहन् ॥ ३४ ॥ अद्याहं पर्वकाले तु जिघृक्षुः सूर्यमागतः ॥ अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम् ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

स्कन्दः ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९॥ शिशुरिति ॥ दोषज्ञः विद्वान् स न भवतोत्यदोषज्ञः। दोषज्ञौ वैद्यविद्वांसावित्यमरः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अनेनेति ॥ स राहुः परामृष्टः स्पृष्टः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तत इति ॥ महाशैलकूटवत् बृहत्तरफलमवेक्ष्येत्यर्थः ॥ ४० ॥ उत्सृज्येति ॥ मुखशेष इति राहुस्वरूपकथनम् ॥

स राहोर्वचनं श्रुत्वा वासवः संभ्रमान्वितः ॥ उत्पपातासनं हित्वा चोद्वहन् काञ्चनीं स्रजम् ॥ ३६ ॥ ततः कैलासकूटाभं चतुर्दन्तं मदस्रवम् ॥ शृङ्गारधारिणं प्रांशुं स्वर्णघण्टाट्टहासिनम् ॥ ३७ ॥ इन्द्रः करीन्द्रमारुह्य राहुं कृत्वा पुरःसरम् ॥ प्रायाद्यत्राभवत्सूर्यः सहानेन हनूमता ॥ ३८ ॥ अथातिरभसेनागाद्राहुरुत्सृज्य वासवम् ॥ अनेन च स वै दृष्टः प्रधावन् शैलकूटवत् ॥ ३९ ॥ ततः सूर्यं समुत्सृज्य राहुं फलमवेक्ष्य च ॥ उत्पपात पुनर्व्योम ग्रहीतुं सिंहिकासुतम् ॥ ४० ॥ उत्सृज्यार्कमिमं राम प्रधावन्तं प्लवङ्गमम् ॥ अवेक्ष्यैवं परावृत्य मुखशेषः पराङ्मुखः ॥ ४१ ॥ इन्द्रमाशंसमानस्तु त्रातारं सिंहिकासुतः ॥ इन्द्र इन्द्रेति संत्रासान्मुहुर्मुहुरभाषत ॥ ४२ ॥ राहोर्विक्रोशमानस्य प्रागेवालक्षितं स्वरम् ॥ श्रुत्वेन्द्रोवाच मा भैषीरहमेनं निषूदये ॥ ४३ ॥ ऐरावतं ततो दृष्ट्वा महत्तदिदमित्यपि ॥ फलं मत्वा हस्तिराजमभिदुद्राव मारुतिः ॥ ४४ ॥ तथास्य धावतो रूपमैरावतजिघृक्षया ॥ मुहूर्तमभवद्घोरमिन्द्राग्न्योरिव भास्वरम् ॥ ४५ ॥ एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः ॥ हस्तान्तादतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यताडयत् ॥ ४६ ॥ ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः ॥ पतमानस्य चैतस्य वामो हनुरभज्यत ॥ ४७ ॥ तस्मिंस्तु पतिते बाले वज्रताडनविह्वले ॥ चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः ॥ ४८ ॥ प्रचारं स तु संगृह्य प्रजास्वन्तर्गतः प्रभुः ॥ गुहां प्रविष्टः स्वसुतं शिशुमादाय मारुतः ॥ ४९ ॥ विण्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तिकृत् ॥ रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥ ५० ॥ ॥ ॥

॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ एवमिति ॥ हस्तान्तात् हस्ताग्रात् । हस्तान्त इति समीप इत्यर्थः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ प्रचारमिति ॥ प्रचारं स्वीयं देहियात्राहेतुभूतम् । गृह्य संक्षिप्य । अन्तर्गतः सर्वदेहान्तर्गतः ॥ ४९ ॥ विण्मूत्रेति ॥ रुरोधेति । निरुद्धस्वगतिप्रचारमकरोत् । एवंविधार्थस्य

देवानां शक्यत्वे दृष्टान्तः यथा वर्षाणीति ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ऊचुरिति ॥ महोदरनिभोदराः आयुःस्तम्भान्महोदरव्याधिग्रस्तोदरवदुद-

वायुप्रकोपाद्भूतानि निरुच्छ्वासानि सर्वतः ॥ सन्धिभिर्भिद्यमानैश्च काष्ठभूतानि जज्ञिरे ॥ ५१ ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारं निष्क्रियं धर्मवर्जितम् ॥ वायुप्रकोपात्त्रैलोक्यं निरयस्थमिवाभवत् ॥ ५२ ॥ ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सदेवासुरमानुषाः ॥ प्रजापतिं समाधावन् दुःखिताश्च सुखेच्छया ॥ ५३ ॥ ऊचुः प्राञ्जलयो देवा महोदरनिभोदराः ॥ त्वया नु भगवन्सृष्टाः प्रजानाथ चतुर्विधाः ॥ ५४ ॥ त्वया दत्तोयमस्माकमायुषः पवनः पतिः ॥ सोस्मान्प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोद्य सत्तम ॥ ५५ ॥ रुरोध दुःखं जनयन्नन्तःपुर इव स्त्रियः ॥ तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता वायुनोपहता वयम् ॥ ५६ ॥ एतत्प्रजानां श्रुत्वा तु प्रजानाथः प्रजापतिः ॥ कारणादिति चोक्त्वासौ प्रजाः पुनरभाषत ॥ ५७ ॥ यस्मिंश्च कारणे वायुश्चुक्रोध च रुरोध च ॥ प्रजाः शृणुध्वं तत्सर्वं श्रोतव्यं चात्मनः क्षमम् ॥ ५८ ॥ पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः ॥ राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोनिलः ॥ ५९ ॥ अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ॥ शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभिः ॥ ६० ॥ वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ॥ वायुना संपरित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् ॥ ६१ ॥ अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा ॥ अद्यैव ते निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः ॥ ६२ ॥ तद्यामस्तत्र यत्रास्ते मारुतो रुक्प्रदो हि नः ॥ मा विनाशं गमिष्याम अप्रसाद्यादितेः सुताः ॥ ६३ ॥ ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुह्यकैः ॥ जगाम तत्रास्यति यत्र मारुतः सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः ॥ ६४ ॥ ॥ ॥ ॥

रं येषान्ते तथा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ एतदिति ॥ कारणादिति चोक्त्वा किंचित्कारणमत्रास्तीत्युक्त्वा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ तदिति ॥ रुक्प्रदः शूलरोगप्रदः । गमिष्याम अप्रसाद्येति संधिरार्षः ॥ ६३ ॥ तत इति ॥ तत्रास्यतीति । यत्र अस्यति तिष्ठतीति यावत् ॥ ६४ ॥

तत इति ॥ सदागतेर्वायोः । गन्धर्वर्षियक्षेति गुरुलघुभेद आर्षः ॥ ६५ ॥ इति श्रीगोवि० मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायण०पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ ततः पितामहमित्यादि ॥१॥ चलदित्यादि ॥ तिस्रोपस्थाय त्र्युपस्थाय। अलुगप्यार्षः । त्रिरुपस्थाय चेति पाठः । न्यपतदिति । उपस्थानपूर्वकं त्रिः साष्टाङ्गमनमदित्यर्थः ॥ २ ॥ तमिति ॥ हनुमज्जीवनार्थम् अङ्गुल्यग्रविन्यस्तवेदपदेन वेदविदा विदितनिखिलवेदवेदान्तेन ब्रह्मणा लम्बाभरणशोभिना हस्ते-

ततोर्कवैश्वानरकाञ्चनप्रभं सुतं तदोत्सङ्गगतं सदागतेः ॥ चतुर्मुखो वीक्ष्य कृपामथाकरोत्सदेवगन्धर्वर्षियक्षराक्षसैः ॥ ६५ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधार्दितः ॥ शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः ॥ १ ॥ चलत्कुण्डलमौलिस्रक्तपनीयविभूषणः ॥ पादयोर्न्यपतद्वायुस्त्रिरुपस्थाय वेधसे ॥ २ ॥ तं तु वेदविदा तेन लम्बाभरणशोभिना ॥ वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान् ॥ ३ ॥ स्पृष्टमात्रस्ततः सोथ सलीलं पद्मयोनिना ॥ जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान् ॥ ४ ॥ प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा ॥ चचार सर्वभूतेषु सन्निरुद्धं यथा पुरा ॥ ५ ॥ मरुद्रोधाद्विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिता भवन् ॥ शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः ॥ ६ ॥ ततस्त्रियुग्मः स्त्रिककुत्त्रिधामा त्रिदशार्चितः ॥ उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥ भो महेन्द्रेशवरुणप्रजेश्वरधनेश्वराः ॥ जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम् ॥ ८ ॥ अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति ॥ तद्ददध्वं वरान्सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये ॥ ९ ॥

न तं शिशुं च परिमृष्टवान् ॥ ३ ॥ ४ ॥ प्राणवन्तमिति ॥ सर्वभूतेषु सन्निरुद्धम् अन्तःप्रतिष्ठितं यथा भवति तथा प्राणः प्राणभूतश्चचार ॥ ५ ॥ मरुदिति ॥ शीतदाहो हिमेन दाहः । शीतवातविनिर्मुक्ता इति च पाठः ॥ ६ ॥ तत इति ॥ त्रीणि युग्मानि यस्यासौ त्रियुग्मः । तानि तु ऐश्वर्यं वीर्यं यशः श्रीः ज्ञानं वैराग्यम् । त्रिककुत् त्रिमूर्तिप्रधानः । त्रिधामा त्रिलोकगृहः । त्रिदशार्चितः देवार्चितः ॥ ७ ॥ भो इति ॥ ईश इत्यनेन रुद्रः इत्युच्यते । प्रजेश्वरः यमः । वक्ष्यामि । श्रूयतामिति । गुरुवैषम्यमार्षम् ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ कुशेशयमयीं काञ्चनपद्ममयीमित्यर्थः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ मार्तण्ड इति ॥ शतिकां शतैकांशभूताम् ॥ १३ ॥ यदा त्विति ॥ शास्त्र शास्त्रार्थज्ञानम् । ऐन्द्रव्याकरणमित्यर्थः ॥ १४ ॥ न चेति ॥ शास्त्रदर्शने शास्त्रज्ञाने । वरुणोक्तवरस्तु स्वयुद्धनिमित्तमरणाभावमात्रम् ॥ १५॥१६॥१७॥

ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः ॥ कुशेशयमयीं मालामुत्क्षिप्येदं वचोब्रवीत् ॥ १० ॥ मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः ॥ नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥ ११ ॥ अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम् ॥ इतः प्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥ १२ ॥ मार्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः ॥ तेजसोस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥ १३ ॥ यदा तु शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ॥ तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ॥१४॥ न चास्य भविता कश्चित्सदृशः शास्त्रदर्शने ॥ वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति ॥ वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि ॥ १५ ॥ यमो दण्डादवध्यत्वमरोगित्वं च नित्यशः ॥ वरं ददामि संतुष्ट अविषादं च संयुगे ॥ १६ ॥ गदेयं मामिका चैनं संयुगे न वधिष्यति ॥ इत्येवं वरदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः ॥ १७ ॥ मत्तो मदायुधानां च न वध्योयं भविष्यति ॥ इत्येवं शंकरेणापि दत्तोस्य परमो वरः ॥ १८ ॥ सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योयं भविष्यति ॥ दीर्घायुश्च महात्मा च इति ब्रह्माब्रवीद्वचः ॥ १९ ॥ विश्वकर्मा च दृष्ट्वैनं बालसूर्योपमं शिशुम् ॥ शिल्पिनां प्रवरः प्रादाद्वरमस्य महामतिः ॥ २० ॥ मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि संयुगे ॥ तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरजीवी भविष्यति ॥२१॥ ततः सुराणां तु वरैर्दृष्ट्वा ह्येनमलंकृतम् ॥ चतुर्मुखस्तुष्टमना वायुमाह जगद्गुरुः ॥ २२ ॥ अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः ॥ अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥ २३ ॥ ॥ ॥

मत्त इति ॥ परमो वरः शूलपाशुपतास्त्राद्यवध्यत्वमित्यर्थः ॥ १८ ॥ सर्वेषामिति ॥ सर्वेषां ब्रह्मास्त्रान्तानामित्यर्थः । ब्रह्मदण्डानां ब्रह्मशापानां ब्रह्मायुधानां वा । दीर्घायुश्चेति ॥ १९ ॥ विश्वकर्मेति ॥ यज्ञाद्यायुधानामपि विश्वकर्मनिर्मितत्वेपि तदतिरिक्तायुधपरमिदम् ॥ २० ॥ २१ ॥२२ ॥ २३ ॥

॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ स इति ॥ वरदत्तं दत्तवरम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ स्रुग्भाण्डानीति ॥ स्रुग्भाण्डानि यज्ञोपकरणानि । संशान्तानां शान्तिप्रधानानाम् ॥ ३० ॥ एवमिति ॥ शंभुना ब्रह्मणा । शम्भू ब्रह्मत्रिलोचनावित्यमरः ॥ ३१ ॥ जानन्त इति ॥ तस्य शक्तितः ब्रह्मणो वरशक्तितः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तत

कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः ॥ भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति ॥ २४ ॥ रावणोत्सादनार्थानि रामप्रियकराणि च ॥ रोमहर्षकराण्येष कर्ता कर्माणि संयुगे ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य मारुतं त्वमरैः सह ॥ यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ २६ ॥ सोपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत् ॥ अञ्जनायास्तमाचख्यौ वरदत्तं विनिर्गतः ॥ २७ ॥ प्राप्य राम वरानेष वरदानसमन्वितः ॥ बलेनात्मनि संस्थेन सोपूर्यत यथार्णवः ॥ २८ ॥ तरसा पूर्यमाणोपि तदा वानरपुङ्गवः ॥ आश्रमेषु महर्षीणामपराध्यति निर्भयः ॥ २९ ॥ स्रुग्भाण्डान्यग्निहोत्रं च वल्कलाजिनसंचयान् ॥ भग्नविच्छिन्नविध्वस्तान्संशान्तानां करोत्ययम् ॥ ३० ॥ एवंविधानि कर्माणि प्रावर्तत महाबलः ॥ सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यः शंभुना कृतः ॥ ३१ ॥ जानन्त ऋषयस्तं वै क्षमन्ते तस्य शक्तितः॥३२॥यथा केसरिणा त्वेष वायुना सोञ्जनासुतः॥ प्रतिषिद्धोपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः॥३३॥ ततो महर्षयः क्रुद्धा भृग्वङ्गिरसवंशजाः ॥ शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः ॥ ३४ ॥ बाधसे यत्समाश्रित्य बलमस्मान्प्लवङ्गम ॥ तद्दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः ॥ यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम् ॥ ३५ ॥ ततः स हततेजौजा महर्षिवचनौजसा ॥ एषोश्रमाणि तान्येव मृदुभावं गतोचरत् ॥ ३६ ॥ अथर्क्षरजसो नाम वालिसुग्रीवयोः पिता ॥ सर्ववानरराजासीत्तेजसा भास्करप्रभः ॥ ३७ ॥ ॥ ॥

इति ॥ नातिक्रुद्धातिमन्यवः । क्रोधो जिघांसा मन्युरमर्षः । अतिक्रुद्धा अतिमन्यवश्च न भवन्तीति तथा॥३४॥बाधस इति ॥ तद्दीर्घेति । तद्बलम्॥३५॥ तत इति ॥ हततेजौजाः अपहृतस्वर्वीर्यबलज्ञान इत्यर्थः । एषोश्रमाणीति आर्षः संधिः ॥ ३६ ॥ अथेति ॥ ऋक्षरजस इत्यकारान्तोप्यस्ति ॥ ३७ ॥

॥ ३८ ॥ तस्मिन्निति । वालिनः पदे यौवराज्ये ॥ ३९ ॥ सुग्रीवेणेति ॥ अस्य हनूमतः सुग्रीवेण सह आबाल्यं बाल्यमारभ्य ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ सिंह इति ॥ रणे युद्धादौ स्वबलमास्थितोभूत् ॥४४॥ पराक्रमेति ॥ सौशील्यं सुस्वभावत्वम् । माधुर्यं वाचः । नयानयौ प्रवृत्तिनिवृत्ती । गाम्भीर्यं चित्तस्य । धैर्यम् आपद्यक्षोभः ॥४५॥ असाविति ॥ उद्यद्रिरेः उदयगिरेरित्यर्थः । महद्ग्रन्थं व्याकरणग्रन्थम् । धारयन् अर्थतः पाठतश्च गृह्णन्नित्यर्थः । धार-

स च राज्यं चिरं कृत्वा वानराणां हरीश्वरः ॥ स च ऋक्षरजा नाम कालधर्मेण संगतः ॥ ३८ ॥ तस्मिन्नस्तमिते चाथ मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ॥ पित्र्ये पदे कृतो वाली सुग्रीवो वालिनः पदे ॥ ३९ ॥ सुग्रीवेण समं त्वस्य अद्वैधं च्छिद्रवर्जितम् ॥ आबाल्यं सख्यमभवदनिलस्याग्निना यथा ॥४०॥ एष शापवशादेव न वेद बलमात्मनः ॥ वालिसुग्रीवयोर्वैरं यदा राम समुत्थितम् ॥ ४१ ॥ न ह्येष राम सुग्रीवो भ्राम्यमाणोपि वालिना ॥ ४२ ॥ देव जानाति न ह्येष बलमात्मनि मारुतिः ॥ ऋषिशापाहृतबलस्तदैष कपिसत्तमः॥४३॥सिंहः कुञ्जररुद्धो वा आस्थितः सहितो रणे॥४४॥पराक्रमोत्साहमतिप्रतापसौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ॥ गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोभ्यधिकोस्ति लोके॥४५॥असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः॥ उद्याद्रिरेरस्तागिरिं जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः॥४६॥ ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं साध्यति वै कपीन्द्रः॥न ह्यस्य कश्चित्सदृशोस्ति शास्त्रे वैशारदे च्छन्दगतौ तथैव॥४७॥सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धते यो हि गुरुं सुराणाम् ॥ सोयं नवव्याकरणार्थवेत्ता ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥४८॥ प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य॥युगक्षये ह्येव यथान्तकस्य हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात्४९

यदिति पाठे नुडभाव आर्षः । धारयते इति पाठान्तरम् ॥४६॥ ससूत्रेति ॥ सूत्रमष्टाध्यायी । लक्षणं वृत्तिः सूत्रार्थमात्रप्रतिपादकग्रन्थः । अर्थपदं वार्तिकम् उक्तानुक्तदुरुक्तिचिन्तानुरूपम् । महार्थं भाष्यं विस्तरविवरणरूपम् । संग्रहं प्रकरणादि । साध्यति साधयति धारयतीत्यर्थः । शास्त्रान्तरेष्वपि वैशारदे वैदुष्ये । छन्दगतौ छन्दःशास्त्रे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ प्रेति ॥ प्रवीविवक्षोर्युगान्ते भूमिमाप्लावयितुं प्रकर्षेण विशेषेण वेष्टुमिच्छोः । युगक्षये काले युगान्तकाल

इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ एषेवेति ॥ संधिरार्षः । तारेयोङ्गदः ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ विज्ञाप्यमिति ॥ मम एतद्वक्ष्यमाणं विज्ञाप्यमस्ति । आगतस्पृहोहं यद्वदामि तद्भवद्भिः मत्कृते मन्निमित्तम् अनुकम्पया कर्तव्यम् ॥ ५६ ॥ पौरेति ॥ आगतः वनादागतः अहम् ॥ ५७ ॥ सदस्या

एषेव चान्ये च महाकपीन्द्राः सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः ॥ सतारतारेयनलाः सरम्भास्त्वत्कारणाद्रामसुरैर्हि
सृष्टाः ॥ ५० ॥ तदेतत्कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ हनूमतो बालभावे कर्मैतत्कथितं मया ॥ ५१ ॥ श्रुत्वाऽगस्त्यस्य
कथितं रामः सौमित्रिरेव च ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्वानरा राक्षसैः सह ॥ ५२ ॥ अगस्त्यस्त्वब्रवीद्रामं
सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया ॥ दृष्टः संभाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम् ॥ ५३ ॥ श्रुत्वैतद्राघवो वाक्यमगस्त्यस्योग्रतेजसः ॥
प्राञ्जलिः प्रणतश्चापि महर्षिमिदमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ अद्य मे देवता हृष्टाः पितरः प्रपितामहाः ॥ युष्माकं दर्शनादेव
नित्यं तुष्टाः सबान्धवाः ॥ ५५ ॥ विज्ञाप्यं तु ममैतद्धि तद्वदाम्यागतस्पृहः ॥ तद्भवद्भिर्मम कृते कर्तव्यमनुकम्पया
॥ ५६ ॥ पौरजानपदान्स्थाप्य स्वकार्येष्वहमागतः ॥ क्रतूनेव करिष्यामि प्रभावाद्भवतां सताम् ॥ ५७ ॥ सदस्या
मम यज्ञेषु भवन्तो नित्यमेव तत् ॥ भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ५८ ॥ अहं युष्मान्तसमाश्रित्य
तपोनिर्धूतकल्मषान् ॥ अनुग्रहीतः पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्वृतः ॥ ५९ ॥ तदागन्तव्यमनिशं भवद्भिरिह सङ्गतैः ॥ अगस्त्याद्यास्तु
तच्छ्रुत्वा ऋषयः संशितव्रताः ॥ ६० ॥ एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रयातुमुपचक्रमुः ॥ ६१ ॥ एवमुक्त्वा गताः सर्वे
ऋषयस्ते यथागतम् ॥ राघवश्च तमेवार्थं चिन्तयामास विस्मितः ॥ ६२ ॥ ततोस्तं भास्करे याते विसृज्य नृपवानरान् ॥
संध्यामुपास्य विधिवत्तदा नरवरोत्तमः ॥ प्रवृत्तायां रजन्यां तु सोन्तःपुरचरोभवत् ॥ ६३ ॥ इत्यु० श्रीरा० षट्त्रिं० सर्गः ॥ ३६

विधिदर्शिनः । महावीर्याः महातपोवीर्याः ॥ ५८ ॥ अहमिति ॥ अनुग्रहीत इति । अनुगृहीत इत्यर्थः । अनिशं सुनिर्वृत इत्यन्वयः ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ एवमिति ॥ तमेवार्थं यागरूपप्रयोजनम् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति श्रीगोविन्दराज० मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्या० षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

अभिषिक्त इत्यादि ॥ ऋषिगणास्त्वभिषेककाले संप्राप्ताः कथितकथाः विसृष्टाश्च । अभिषेकदिनस्य या निशा पौराणां हर्षवर्धिनी पूर्वा प्रथमा निशाऽसीत् सा च व्यतीता ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ वीरेति ॥ त्वयि सुप्ते सर्वं स्वपितीति त्वयि ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय धर्मानुष्ठानरहिते सति सर्वं जगत्सुप्तधर्म-

अभिषिक्ते तु काकुत्स्थे धर्मेण विदितात्मनि ॥ व्यतीता या निशा पूर्वा पौराणां हर्षवर्धिनी ॥ १ ॥ तस्यां रजन्यां व्युष्टायां प्रातर्नृपतिबोधकाः ॥ बन्दिनः समुपातिष्ठन्सौम्या नृपतिवेश्मनि ॥ २ ॥ ते रक्तकण्ठिनः सर्वे किन्नरा इव शिक्षिताः ॥ तुष्टुवुर्नृपतिं वीरं यथावत्संप्रहर्षिणः ॥ ३ ॥ वीर सौम्य प्रबुध्यस्व कौसल्याप्रीतिवर्धन ॥ जगद्धि सर्वं स्वपिति त्वयि सुप्ते नराधिप ॥ ४ ॥ विक्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाश्विनोरिव ॥ बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यः प्रजापतिसमो ह्यसि ॥ ५ ॥ क्षमा ते पृथिवीतुल्या तेजसा भास्करोपमः ॥ वेगस्ते वायुना तुल्यो गाम्भीर्यमुदधेरिव ॥ ६ ॥ अप्रकम्प्यो यथा स्थाणुश्चन्द्रे सौम्यत्वमीदृशम् ॥ नेदृशाः पार्थिवाः पूर्वं भवितारो नराधिप ॥ ७ ॥ यथा त्वमतिदुर्धर्षो धर्मनित्यः प्रजाहितः ॥ न त्वां जहाति कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषर्षभ ॥८॥ श्रीश्च धर्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ॥ एताश्चान्याश्च मधुरा बन्दिभिः परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥ सूताश्च संस्तवैर्दिव्यैर्बोधयन्ति स्म राघवम् ॥ स्तुतिभिः स्तूयमानाभिः प्रत्यबुध्यत राघवः ॥ १० ॥ स तद्विहाय शयनं पाण्डुराच्छादनास्तृतम् ॥ उत्तस्थौ नागशयनाद्धरिर्नारायणो यथा ॥ ११ ॥ समुत्थितं महात्मानं प्रह्वाः प्राञ्जलयो नराः ॥ सलिलं भाजनैः शुभ्रैरुपतस्थुः सहस्रशः ॥ १२ ॥ ॥ ॥

कं भवति । यथा राजा तथा प्रजा इतिन्यायादिति भावः ॥ ४ ॥ विक्रम इति ॥ बृहस्पतेस्तुल्यो बुद्ध्येति । प्रजापतिसमोसि । प्रजापरिपालन इति शेषः ॥ ५ ॥ ६ ॥ अप्रकम्प्य इति ॥ ईदृशाः पार्थिवाः पूर्वं नाभूवन्निति शेषः । न भवितार इति । अग्र इति शेषः ॥ ७ ॥ यथेति ॥ न जहाति न त्यजाति ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ समुत्थितमिति ॥ सलिलं गृहीत्वेति शेषः ॥ १२ ॥ ॥ ॥

कृतोदकेति ॥ कृतोदकशुचिः उदकेन कृतशौच इत्यर्थः। देवागारं देवपूजागृहम् ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥

कृतोदकशुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः ॥ देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्ष्वाकुसेवितम् ॥१३॥ तत्र देवान्पितॄन्विप्रानर्चयित्वा यथाविधि ॥ बाह्यकक्ष्यान्तरं रामो निर्जगाम जनैर्वृतः ॥ १४ ॥ उपतस्थुर्महात्मानो मन्त्रिणः सपुरोहिताः ॥ वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे दीप्यमाना इवाग्नयः ॥१५॥ क्षत्रियाश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ॥ रामस्योपाविशन्पार्श्वे शक्रस्येव यथामराः ॥ १६ ॥ भरतो लक्ष्मणश्चात्र शत्रुघ्नश्च महायशाः ॥ उपासांचक्रिरे हृष्टा वेदास्त्रय इवाध्वरम् ॥ १७ ॥ याताः प्राञ्जलयो भूत्वा किंकरा मुदिताननाः ॥ मुदिता नाम पार्श्वस्था बहवः समुपाविशन् ॥ १८ ॥ वानराश्च महावीर्या विंशतिः कामरूपिणः ॥ सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजसः ॥१९॥ बिभीषणश्च रक्षोभिश्चतुर्भिः परिवारितः ॥ उपासते महात्मानं धनेशमिव गुह्यकाः ॥ २० ॥ तथा निगमवृद्धाश्च कुलीना ये च मानवाः ॥ शिरसावन्द्य राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ॥ २१ ॥ तथा परिवृतो राजा श्रीमद्भिर्ऋषिभिर्वृतः ॥ राजभिश्च महावीर्यैर्वानरैश्च सराक्षसैः ॥ २२ ॥ यथा देवेश्वरो नित्यमृषिभिः समुपासते ॥ अधिकस्तेन रूपेण सहस्राक्षाद्विरोचते ॥ २३ ॥ तेषां समुपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ॥ कथ्यन्ते धर्मसंयुक्ताः पुराणज्ञैर्महात्मभिः ॥ २४ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

॥ अथाधिकपाठश्लोकप्रारम्भः ॥

एतच्छ्रुत्वा तु निखिलं राघवोगस्त्यमब्रवीत् ॥ य एषर्क्षरजा नाम वालिसुग्रीवयोः पिता ॥ १ ॥ जननी का च भगवन्न त्वया परिकीर्तिता ॥ वालिसुग्रीवयोर्ब्रह्मन्माता मे नामतः कुतः ॥ एतद्ब्रह्मन्समाचक्ष्व कौतूहलमिदं हि नः ॥ २ ॥

स प्रोक्तो राघवेणैवमगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३॥ शृणु राम कथामेतां यथापूर्वं समासतः ॥ नारदः कथयामास ममाश्रममुपागतः ॥ ४ ॥ कदाचिदटमानोसावतिथित्वमुपागतः ॥ अर्चितस्तु यथान्यायं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥ सुखासीनः कथां त्वेनां मया पृष्टः स कौतुकात् ॥ कथयामास धर्मात्मा महर्षे श्रूयतामिति ॥ ६ ॥ मेरुर्नगवरः श्रीमान् जाम्बूनदमयः शुभः ॥ तस्य यन्मध्यमं शृङ्गं सर्वदैवतपूजितम् ॥ ७ ॥ तस्मिन्दिव्या सभा रम्या ब्राह्मी या शतयोजना ॥ तस्यामास्ते सदा देवः पद्मयोनिश्चतुर्मुखः ॥ ८ ॥ योगमभ्यसतस्तस्य नेत्राभ्यां यद्रसोस्रवत् ॥ तद्गृहीतं भगवता पाणिना चर्चितं तु तत् ॥ ९ ॥ निक्षिप्तमात्रं तद्भूमौ ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥ तस्मिन्नश्रुकणे राम वानरः संबभूव ह ॥ १० ॥ उत्पन्नमात्रस्तु तदा वानरश्च नरोत्तम ॥ समाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैरुक्तः किल महात्मना ॥ ११ ॥ पश्य शैलं सुविस्तीर्णं सुरैरध्युषितं तदा ॥ तस्मिन् रम्ये गिरिवरे बहुमूलफलाशनः ॥ १२ ॥ ममान्तिकचरो नित्यं भव वानरपुङ्गव ॥ कंचित्कालमिहास्व त्वं तव श्रेयो भविष्यति ॥ १३ ॥ एवमुक्तः स चैतेन ब्रह्मणा वानरोत्तमः ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ देवदेवस्य राघव ॥ १४ ॥ उक्तवाँल्लोककर्तारमादिदेवं जगद्गुरुम् ॥ यथाज्ञापयसे देव स्थितोहं तव शासने ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा हरिर्देवं ययौ हृष्टमनास्तदा ॥ स तदा द्रुमषण्डेषु फलपुष्पघनेषु च ॥ १६ ॥ ब्रह्मप्रतिबलः शैध्ये वने फलकृताशनः ॥ क्वचिन्मधूनि मुख्यानि चिन्वन्पुष्पाण्यनेकशः ॥ १७ ॥ दिने दिने च सायाह्ने ब्रह्मणोन्तिकमागमत् ॥ गृहीत्वा राममुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च ॥ १८ ॥ ब्रह्मणो देवदेवस्य पादमूले न्यवेदयत् ॥ एवं तस्य गतः कालो बहुपर्यटतो गिरिम् ॥ १९ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य समतीतस्य राघव ॥ ऋक्षराड्वानरश्रेष्ठस्तृष्णया परिपीडितः ॥ २० ॥ उत्तरं मेरुशिखरं गतस्तत्र च दृष्टवान् ॥ नानाविहङ्गसंघुष्टं प्रसन्नसलिलं सरः ॥ चलत्केसरमात्मानं कृत्वा तस्य तटे स्थितः ॥ २१ ॥ ॥ ॥

ददर्श तस्मिन्त्सरसि वक्त्रच्छायामथात्मनः ॥ कोयमस्मिन्मम रिपुर्वसत्यन्तर्जले महान् ॥ २२ ॥ रूपं चान्तर्गतं तत्र वीक्ष्य तत्पाथसो हरिः ॥ क्रोधाविष्टमना ह्येष नियतं मावमन्यते ॥ २३ ॥ तदस्य दुष्टभावस्य कर्तव्यो निग्रहो मया ॥ एवं संचिन्त्य मनसा स वै वानरचापलात् ॥ २४ ॥ आप्लुत्य चापतत्तस्मिन्ह्रदे वानरसत्तमः ॥ उत्प्लुत्य तस्मात्सरस उत्थितः प्लवगः पुनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नेव क्षणे राम स्त्रीत्वं प्राप स वानरः ॥ मनोज्ञरूपा सा नारी लावण्यललिता शुभा ॥ २६ ॥ विस्तीर्णजघना सुभ्रूर्नीलकुञ्चितमूर्धजा ॥ मुग्धा सस्मितवक्त्रा च पीनस्तनतटा शुभा ॥ २७ ॥ ह्रदतीरस्थिता भाति ऋजुयष्टिर्लता तथा ॥ त्रैलोक्यसुन्दरी कान्ता सर्वचित्तप्रमाथिनी ॥ २८ ॥ लक्ष्मीव पद्मरहिता चन्द्रज्योत्स्नेव निर्मला ॥ रूपेणाप्यभवत्सा तु श्रीर्गीर्देवी उमा यथा ॥ ॥ २९ ॥ द्योतयन्ती दिशः सर्वास्तत्राभूत्सा वराङ्गना ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवो निवृत्तः सुरनायकः ॥ ३० ॥ पादावुपास्य देवस्य ब्रह्मणस्तेन वै पथा ॥ तस्यामेव च वेलायामादित्योपि परिभ्रमन् ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नेव वने सोभूद्यास्मिन्त्सा तनुमध्यमा ॥ युगपत्सा तदा दृष्टा देवाभ्यां सुरसुन्दरी ॥ ३२ ॥ कन्दर्पवशगौ तौ तु दृष्ट्वा तां संबभूवतुः ॥ ततः क्षुभितसर्वाङ्गौ सुरेन्द्रतपनावुभौ ॥ ३३ ॥ तद्रूपमद्भुतं दृष्ट्वा त्याजितौ धैर्यमात्मनः ॥ ततस्तस्यां सुरेन्द्रेण स्कन्नं शिरसि पातितम् ॥ ३४ ॥ अनासाद्यैव तां नारीं सन्निवृत्तमथोभवत् ॥ ततः सा वानरपतिं प्रासूत बलशालिनम् ॥ ॥ ३५ ॥ अमोघरेतस्त्वात्तस्य वासवस्य महात्मनः ॥ वालेषु पतितं बीजं वाली नाम बभूव ह ॥ ३६ ॥ भास्करेणापि तस्यां वै कन्दर्पवशवर्तिना ॥ बीजन्तु सिक्तं ग्रीवायां विधानमनुवर्तिना ॥ ३७ ॥ तेनापि सा वरतनुर्नोक्ता किंचिद्वचः शुभम् ॥ निवृत्तमदनश्चाथ सूर्योपि समपद्यत ॥ ३८ ॥ ग्रीवायां पतिते बीजे सुग्रीवः समजायत ॥ एवमुत्पाद्य तौ वीरौ वानरेन्द्रौ महाबलौ ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥

दत्त्वा तु काञ्चनीं मालां वानरेन्द्रस्य वालिनः ॥ अक्षय्यां गुणसंपूर्णां शक्रस्तु त्रिदिवं ययौ ॥ ४० ॥ सूर्योंपि स्वसुतस्यैनं
निरूप्य पवनात्मजम् ॥ कृत्येषु व्यवसायेषु जगाम सविताम्बरम् ॥ ४१ ॥ तस्यां निशायां व्युष्टायामुदिते
च दिवाकरे ॥ स तु वानररूपं तु प्रतिपेदे पुनर्नृप ॥ ४२ ॥ स एव वानरो भूत्वा पुत्रौ स्वस्य प्लवङ्गमौ ॥ पिङ्गेक्षणौ
हरिवरावपश्यत्कामरूपिणौ ॥ ४३ ॥ मधून्यमृतकल्पानि पायितौ तेन तौ तदा ॥ गृह्य ऋक्षरजास्तौ तु ब्रह्मणोन्तिकमागतः
॥ ४४ ॥ दृष्ट्वार्क्षरजसं पुत्रं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ बहुशः सान्त्वयामास पुत्राभ्यां सहितं हरिम् ॥ ४५ ॥
सान्त्वयित्वा ततः पश्चाद्देवदूतमथादिशत् ॥ गच्छ मद्वचनाद्दूत किष्किन्धां नाम वै शुभाम् ॥ ४६ ॥ सा ह्यस्य गुणसंपन्ना
महती च पुरी शुभा ॥ तत्र वानरयूथानि बहूनि निवसन्ति च ॥ ४७ ॥ बहुरत्नसमाकीर्णा वानरैः कामरूपिभिः
॥ पुण्यापणवती दुर्गा चातुर्वर्ण्ययुता सदा ॥ ४८ ॥ विश्वकर्मकृता दिव्या मन्नियोगाच्च शोभना ॥ तत्रर्क्षरजसं
पुत्रं सपुत्रं वानरर्षभम् ॥ ४९ ॥ यूथपालान्समाहूय यांश्चान्यान्प्राकृतान्हरीन् ॥ तेषां संभाव्य सर्वेषां मदीयजनसंसदि
॥ ५० ॥ अभिषेचय राजानमारोप्य महदासनम् ॥ दृष्टमात्राश्च ते सर्वे वानरेण च धीमता ॥ ५१ ॥
अस्यर्क्षरजसो नित्यं भविष्यन्ति वशानुगाः ॥ इत्येवमुक्ते वचने ब्रह्मणा तु हरीश्वरम् ॥ ५२ ॥ पुरतःकृत्य दूतोसौ
प्रययौ तां पुरीं शुभाम् ॥ स प्रविश्यानिलगतिस्तां गुहां वानरोत्तमम् ॥ ५३ ॥ स्थापयामास राजानं पितामहनियोगतः
॥ राज्याभिषेकविधिना स्नातोथाभ्यर्चितस्तदा ॥ ५४ ॥ स बद्धमुकुटः श्रीमानभिषिक्तः स्वलंकृतः ॥ आज्ञापयामास
हरीन्सर्वान्मुदितमानसः ॥ ५५ ॥ सप्तद्वीपसमुद्रायां पृथिव्यां ये प्लवङ्गमाः ॥ वालिसुग्रीवयोरेव ह्येष
त्वृक्षरजाः पिता ॥ ५६ ॥ जननी चैव तु हरिरित्येतद्भद्रमस्तु ते ॥ यश्चैतच्छ्रावयेद्विद्वान्यश्चैतच्छृणुयान्नरः ॥ ५७ ॥
सिद्ध्यन्ति तस्य कार्यार्था मनसो हर्षवर्धनाः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥ ॥

एतच्च सर्वं कथितं मया विभो प्रविस्तरेणेह यथार्थतस्तव ॥ उत्पत्तिरेषा रजनीचराणामुक्ता तथैवेह हरीश्वराणाम् ॥ ५९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अधिकपाठे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

एतां श्रुत्वा कथां दिव्यां पौराणीं राघवस्ततः ॥ भ्रातृभिः सहितो वीरो विस्मयं परमं ययौ ॥ १ ॥ राघवोथ ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ॥ कथेयं महती पुण्या त्वत्प्रसादाच्छ्रुता मया ॥ २ ॥ बृहत्कौतूहलेनास्मि संवृतो मुनिपुङ्गव ॥ उत्पत्तिर्यादृशी दिव्या वालिसुग्रीवयोर्द्विज ॥ ३ ॥ ब्रह्मर्षे मम किं चित्रं सुरेन्द्रतपनावुभौ ॥ जातौ वानरशार्दूलौ बलेन बलिनां वरौ ॥ ४ ॥ एवमुक्ते तु रामेण कुम्भयोनिरभाषत ॥ एवमेतन्महाबाहो वृत्तमासीत्पुरा किल ॥ ॥ ५ ॥ अथापरां कथां दिव्यां शृणु राजन्सनातनीम् ॥ यदर्थं राम वैदेही रावणेन पुरा हृता ॥ ६ ॥ तत्तेहं कीर्तयिष्यामि समाधिं श्रवणे कुरु॥ पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतं प्रभुम् ॥ ७ ॥ सनत्कुमारमासीनं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ददर्श सूर्यसंकाशं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ८ ॥ विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ उक्तवान्रावणो राम तमृषिं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥ को ह्यस्मिन्प्रवरो लोके देवानां बलवत्तरः ॥ यं समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून् ॥ ॥ १० ॥ कं यजन्ति जना नित्यं कं ध्यायन्ति च योगिनः ॥ एतन्मे शंस भगवन्विस्तरेण तपोधन ॥ ११ ॥ विदित्वा हृद्गतं तस्य ध्यानदृष्टिर्महायशाः ॥ उवाच रावणं प्रेम्णा श्रूयतामिति पुत्रक ॥ १२ ॥ यो बिभर्ति जगत्कृत्स्नं यस्योत्पत्तिं न विद्महे ॥ सुरासुरैर्नतो नित्यं हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ १३ ॥ यस्य नाभ्युद्भवो ब्रह्मा विश्वस्य जगतः पतिः ॥ येन सर्वमिदं सृष्टं विश्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ १४ ॥ तं समाश्रित्य विबुधा विधिना हरिमध्वरे ॥ पिबन्ति ह्यमृतं चैव मानवाश्च यजन्ति तम् ॥ १५ ॥ पुराणैश्चैव वेदैश्च पाञ्चरात्रैस्तथैव च ॥ ध्यायन्ति योगिनो नित्यं क्रतुभिश्च यजन्ति तम् ॥ ॥ १६ ॥ दैत्यदानवरक्षांसि ये चान्ये चामरद्विषः ॥ सर्वान् जयति संग्रामे सदा सर्वैः स पूज्यते ॥ १७ ॥ ॥

श्रुत्वा महर्षेस्तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ॥ उवाच प्रणतो भूत्वा पुनरेव महामुनिम् ॥ १८॥ दैत्यदानवरक्षांसि
ये हताः समरेऽरयः ॥ कां गतिं प्रतिपद्यन्ते के च ते हरिणा हताः ॥ १९ ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महामुनिः ॥
दैवतैर्निहता नित्यं प्राप्नुवन्ति दिवः स्थलम् ॥ २० ॥ पुनस्तस्मात्परिभ्रष्टा जायन्ते वसुधातले ॥ पूर्वार्जितैः सुखैर्दुःखैर्जायन्ते
च म्रियन्ति च ॥ २१ ॥ ये ये हताश्चक्रधरेण राजन् त्रिलोकनाथेन जनार्दनेन ॥ ते ते गतास्तत्र लयं नरेन्द्राः
क्रोधोपि देवस्य वरेण तुल्यः ॥२२॥ श्रुत्वा ततस्तद्वचनं निशाचरः सनत्कुमारस्य मुखाद्विनिर्गतम् ॥ तथा प्रहृष्टः
स बभूव विस्मितः कथन्नु यास्यामि हरिं महाहवे ॥ २३ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अधिकपाठे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥
एवं चिन्तयतस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ पुनरेवापरं वाक्यं व्याजहार महामुनिः ॥ १ ॥ मनसश्चेप्सितं यत्ते
भविष्यति महाहवे ॥ सुखी भव महाबाहो कंचित्कालमुदीक्षय ॥ २ ॥ एवं श्रुत्वा महाबाहुस्तमृषिं प्रत्युवाच सः ॥
कीदृशं लक्षणं तस्य ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ ३ ॥ राक्षसस्य वचः श्रुत्वा स मुनिः प्रत्यभाषत ॥ श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये
तव राक्षसपुङ्गव ॥४॥ स हि सर्वगतो देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥ तेन सर्वमिदं प्रोतं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
॥ ५ ॥ स भूमौ दिवि पाताले पर्वतेषु वनेषु च ॥ स्थावरेषु च सर्वेषु वनेषु नगरीषु च ॥ ६ ॥ ओंकारश्चैव सत्यं च
सावित्री पृथिवी च सः ॥ धराधरधरो देवो ह्यनन्त इति विश्रुतः ॥ ७ ॥ अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये दिवाकरश्चैव
यमश्च सोमः ॥ स एव कालो ह्यनलश्च वायुः स ब्रह्मरुद्रौ च स एव बालः ॥ ८ ॥ विद्योतति ज्वलति भाति च पाति
लोकान्सृजत्ययं संहरति प्रशास्ति ॥ क्रीडां करोत्यव्ययलोकनाथो विष्णुः पुराणो भवनाशहेतुः ॥ ९ ॥ अथवा बहुना
तेन किमुक्तेन दशानन ॥ तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १० ॥ नीलोत्पलदलश्यामः किञ्जल्कारुणवस्त्रकः
॥ प्रावृट्काले यथा व्योम्नि सताडित्तोयदस्तथा ॥ ११ ॥ ॥ ॥

श्रीमान्मेघवपुःश्यामः पङ्कजारुणलोचनः ॥ श्रीवत्सेनोरसा युक्तः शशाङ्ककृतलक्षणः ॥ १२ ॥ तस्य नित्यं शरीरस्था
मेघस्येव शतह्रदा ॥ संग्रामरूपिणी लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥ न स शक्यः सुरैर्द्रष्टुं नासुरैर्न च पन्नगैः ॥ यस्य
प्रसादं कुरुते स वै तं द्रष्टुमर्हति ॥ १४ ॥ न हि यज्ञफलैस्तात न तपोभिस्तु संचितैः ॥ शक्यते भगवान् द्रष्टुं न दानेन
न चेज्यया ॥ १५ ॥ तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैस्तत्परायणैः ॥ शक्यते भगवान् द्रष्टुं ज्ञाननिर्दग्धकिल्बिषैः ॥ १६ ॥
अथवा राक्षसेन्द्र त्वं यदि तं द्रष्टुमिच्छसि ॥ कथयिष्यामि ते सर्वं श्रूयतां यदि रोचते ॥ १७॥ कृते युगे व्यतीते वै
मुखे त्रेतायुगस्य तु ॥ हितार्थं देवमर्त्यानां भविता नृपविग्रहः ॥१८॥ इक्ष्वाकूणां च यो राजा भाव्यो दशरथो भुवि ॥
तस्य सूनुर्महातेजा रामो नाम भविष्यति ॥ १९ ॥ महातेजा महाबुद्धिर्महाबलपराक्रमः ॥ महाबाहुर्महासत्त्वः क्षमया
पृथिवीसमः ॥ २० ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरे शत्रुभिः सदा ॥ भविता हि तदा रामो नरो नारायणः प्रभुः ॥ २१ ॥
पितुर्नियोगात्स विभुर्दण्डके विविधे वने ॥ विचरिष्यति धर्मात्मा सह भ्रात्रा महात्मना ॥ २२ ॥ तस्य पत्नी महाभागा
लक्ष्मीः सीतेति विश्रुता ॥ दुहिता जनकस्यैषा उत्थिता वसुधातलात् ॥ २३ ॥ रूपेणाप्रतिमा लोके सर्वलक्षणलक्षिता
॥ छायेवानुगता रामं निशाकरमिव प्रभा ॥२४ ॥ शीलाचारगुणोपेता साध्वी धैर्यसमन्विता ॥ सहस्रांशो रश्मिरिव
ह्येकमूर्तिरिव स्थिता॥२५॥ एवं ते सर्वमाख्यातं मया रावण विस्तरात् ॥ महतो देवदेवस्य शाश्वतस्याव्ययस्य
च ॥ २६ ॥ एवं श्रुत्वा महाबाहू राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ त्वया सह विरोधेच्छुश्चिन्तयामास राघव ॥२७॥ वाक्यं सनत्कुमारस्य
चिन्तयानो मुहुर्मुहुः॥रावणो मुमुदे श्रीमान्युद्धार्थी विचचार ह॥२८॥ श्रुत्वा च तां कथां रामो विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥शिरसश्चालनं
कृत्वा तमर्थं परिचिन्तयन्॥२९॥श्रुत्वा तु वाक्यं च नरेश्वरस्तदा मुदा युतो विस्मयमानचक्षुः
॥ पुनश्च तं ज्ञानवतां प्रधानमुवाच वाक्यं वद मे पुरातनम् ॥ ३० ॥ इत्युत्तरश्रीरा०अधिकपाठे अष्टमः सर्गः ॥८॥

ततः पुनर्महातेजाः कुम्भयोनिर्महायशाः॥ उवाच रामं प्रणतं पितामह इवेश्वरम्॥ १॥ श्रूयतामिति चामन्त्र्य रामं सत्यपराक्रमम्॥ कथाशेषं महातेजाः कथयामास स प्रभुः ॥ २॥ यथाख्यानं श्रुतं चैव यथावृत्तं च तत्तथा॥ प्रीतात्मा कथयामास राघवाय महामतिः ॥ ३॥ एतदर्थं महाबाहो रावणेन दुरात्मना॥ सुता जनकराजस्य हृता राम महामते॥ ४॥ एतां कथां महाबाहो नारदः सुमहायशाः॥ कथयामास मह्यं वै मेरौ गिरिवरोत्तमे ॥ ५ ॥ देवगन्धर्वसिद्धानामृषीणां च महात्मनाम् ॥ कथाशेषं पुनः सोथ कथयामास राघव॥ ६॥ नारदः सुमहातेजाः प्रहसन्निव मानद॥ तां कथां शृणु राजेन्द्र महापापप्रणाशिनीम्॥ ७॥ यां तु श्रुत्वा महाबाहो ऋषयो दैवतैः सह॥ ऊचुस्तं नारदं सर्वे हर्षपर्याकुलेक्षणाः॥ ८॥ यश्चेमां श्रावयेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भक्तितः ॥ स पुत्रपौत्रवान्राम स्वर्गलोके महीयते ॥ ९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अधिकपाठे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥

ततः स रावणो राम पर्यटन्पृथिवीतलम् ॥ विजयार्थी महाशूरै राक्षसैः परिवारितः ॥ १ ॥ दैत्यदानवरक्षःसु यं शृणोति बलाधिकम्॥ तमाह्वयति युद्धार्थी रावणो बलदर्पितः॥ २॥ एवं स पर्यटन्सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ब्रह्मलोकान्निवृत्तं तमाससादाथ नारदम् ॥ ३ ॥ व्रजन्तं मेघपृष्ठस्थमंशुमन्तमिवापरम् ॥ तं चाभिसृत्य प्रीतात्मा ह्यभिवाद्य कृताञ्जलिः॥४॥उवाच हृष्टमनसा रावणो नारदं तथा॥ आब्रह्मभवनाल्लोकास्त्वया दृष्टा ह्यनेकशः॥५॥ कस्मिन् लोके महाभाग मानवा बलवत्तराः ॥ योद्धुमिच्छामि तैः सार्धं यथाकामं यथासुखम् ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदो वाक्यं रावणस्य दुरात्मनः॥ चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु महात्मा प्रत्युवाच तम् ॥ ७ ॥ अस्ति राजन्महाद्वीपः क्षीरोदस्य समीपतः॥ यत्र ते चन्द्रसंकाशा मानवाः सुमहाबलाः॥ ८॥ महाकाया महावीर्या मेघस्तनितनिस्वनाः॥ महामात्रा धैर्यवन्तो महापरिघबाहवः॥९॥श्वेतद्वीपे मया दृष्टा मानवा राक्षसाधिप॥बलनीर्यसमायुक्तान्यादृशांस्त्वमिहेच्छसि॥१०॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥ कथन्नारद जायन्ते तस्मिन्द्वीपे महाबलाः ॥ ११ ॥ श्वेतद्वीपे कथं वासः
प्राप्तस्तैः सुमहात्मभिः ॥ एतन्मे सर्वमाख्याहि प्रभो नारद तत्त्वतः ॥ १२ ॥ त्वया दृष्टं जगत्सर्वं हस्तामलकवत्सदा
॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा नारदः प्रत्युवाच तम् ॥१३॥ अनन्यमानसा नित्यं नारायणपरायणाः ॥ तदाराधनसक्ताश्च
तच्चित्तास्तत्परायणाः ॥ १४ ॥ एकान्तभावानुगतास्ते नरा राक्षसाधिप ॥ तच्चित्तास्तद्गतप्राणा नरा नारायणं श्रिताः
॥ १५ ॥ श्वेतद्वीपे तु तैर्वास आर्जितः पुण्यकर्तृभिः ॥ ये हता लोकनाथेन शार्ङ्गमानम्य संयुगे ॥ १६ ॥ चक्रायुधेन
देवेन तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ न हि यज्ञफलैस्तात न तपोभिर्न संयमैः ॥ १७ ॥ न च दानफलैर्मुख्यैः स लोकः
प्राप्यते सुखम् ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा दशग्रीवः सुविस्मितः ॥ १८ ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालं तेन योत्स्यामि
संयुगे ॥ आपृच्छ्य नारदं प्रायाच्छ्वेतद्वीपाय रावणः १९ ॥ नारदोपि चिरं ध्यात्वा कौतूहलसमन्वितः ॥ दिदृक्षुः
परमाश्चर्यन्तत्रैव त्वरितं ययौ ॥ २० ॥ स हि केलिकरो विप्रो नित्यं च समरप्रियः ॥ रावणोपि ययौ तत्र राक्षसैः
सह राघव ॥ २१ ॥ महता सिंहनादेन नादयन्त्स दिशो दश ॥ गते तु नारदे तत्र रावणोपि महायशाः ॥ २२ ॥ प्राप
श्वेतं महाद्वीपं दुर्लभं यत्सुरैरपि ॥ तेजसा तस्य द्वीपस्य रावणस्य बलीयसः ॥ २३ ॥ तत्तस्य पुष्पकं यानं
वातवेगसमाहतम् ॥ अवस्थातुं न शक्नोति वाताहत इवाम्बुदः ॥ २४ ॥ सचिवा राक्षसेन्द्रस्य द्वीपमासाद्य दुर्दशम् ॥
अब्रुवन् रावणं भीता राक्षसा जातसाध्वसाः ॥ २५ ॥ राक्षसेन्द्र वयं मूढा भ्रष्टसंज्ञा विचेतसः ॥ अवस्थातुं न शक्ष्यामो
युद्धं कर्तुं कथंचन ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वा दुद्रुवुस्ते सर्व एव निशाचराः ॥ रावणोपि हि तद्यानं पुष्पकं हेमभूषितम्
॥ २७ ॥ विसर्जयामास तदा सह तैः क्षणदाचरैः ॥ गते तु पुष्पके राम रावणो राक्षसाधिपः ॥ २८ ॥ कृत्वा
रूपं महाभीमं सर्वराक्षसवर्जितम् ॥ प्रविवेश तदा तस्मिञ्छ्वेतद्वीपे स रावणः ॥ २९ ॥ ॥ ॥

प्रविशन्नेव तत्राशु नारीभिरुपलक्षितः ॥ एकया सुस्मितं कृत्वा हस्ते गृह्य स रावणः ॥ ३० ॥ पृष्टश्चागमनं ब्रूहि
किमर्थमिह चागतः ॥ को हि त्वं कस्य वा पुत्रः केन वा प्रहितो वद ॥ ३१ ॥ इत्युक्तो रावणो राजन् क्रुद्धो वचनमब्रवीत्
॥ अहं विश्रवसः पुत्रो रावणो नाम राक्षसः ॥ ३२ ॥ युद्धार्थमिह संप्राप्तो न च पश्यामि कंचन ॥ एवं
कथयतस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ ३३ ॥ प्राहसंस्ते ततः सर्वे सस्वनं युवतीजनाः ॥ एकया क्रुद्धया तासां
बालवद्गृह्य लीलया ॥ ३४ ॥ भ्रामितस्तु सखीमध्ये विक्षिप्तः स दशाननः ॥ सखीमन्यां समाहूय पश्य त्वं कीटकं धृतम्
॥ ३५ ॥ दशास्यं विंशतिभुजं कृष्णाञ्जनसमप्रभम् ॥ हस्ताद्धस्तं स च क्षिप्तो भ्राम्यते श्रमलालसः ॥ ३६ ॥
भ्राम्यमाणेन बलिना राक्षसेन विपश्चिता ॥ पाणावेकाथ संदष्टा रोषेण वनिता शुभा ॥ ३७ ॥ मुक्तस्तया शुभः
कीटो धुन्वन्त्या हस्तवेदनात् ॥ गृहीत्वान्या राक्षसेन्द्रमुत्पपात विहायसा ॥ ३८ ॥ ततस्तामपि संक्रुद्धो विददार
नखैर्भृशम् ॥ तया स हि विनिर्धूतः सहसैव निशाचरः ॥ ३९ ॥ पपात चाम्भसो मध्ये सागरस्य भयातुरः ॥
पर्वतस्येव शिखरं यथा वज्रविदारितम् ॥ ४० ॥ प्राप तत्सागरस्यैव जले तस्थौ निपातितः ॥ एवं स रावणो राम श्वेतद्वीपनिवासिभिः
॥ ४१ ॥ स्त्रीजनैर्विनिगृह्याशु भ्रामितश्च ततस्ततः ॥ नारदोपि महातेजा रावणं वीक्ष्य धर्षितम्
॥ ४२ ॥ विस्मयं सुचिरं गत्वा प्रजहास ननर्त च ॥ ततः स सागरजलाज्जलक्लिन्नशिरोरुहः ॥ ४३ ॥ दक्षिणं तीरमासाद्य
चिन्तयामास विस्मितः ॥ ये मया निर्जिता लोका न तेषु भयमीदृशम् ॥ ४४ ॥ स्वभावतोल्पवीर्याणां विरुद्धं
योषितामिदम् ॥ नूनमेतस्य लोकस्य मानवाः प्रभविष्णवः ॥ ४५ ॥ स्त्रीरूपविग्रहधरा यान्ममाचष्ट नारदः ॥
बलवद्भिस्तु संधेयमिति संचिन्त्य निश्चितम् ॥ ४६ ॥ भूयस्तासां प्रवृत्त्यर्थं तद्वनं समलोडयत् ॥ अथापश्यन्महात्मानं
पितामहसुतं प्रभुम् ॥ ४७ ॥ सनत्कुमारमासीनं सर्वयोगभृतां वरम् ॥ जाज्वल्यमानं तपसा समिद्भिरिव पावकम् ॥ ४८ ॥

अपश्यद्दक्षिणे पार्श्वे विचरन्तं गुहाश्रयम् ॥ स तं दृष्ट्वा तपोवृद्धमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ४९ ॥ ब्रीडितः परिपप्रच्छ
ब्रह्मर्षिं सत्यवादिनम् ॥ भगवन्केन लोकोयं कल्पितः सुमहात्मना ॥ ५० ॥ के वा लोके वसन्त्यस्मिन्सर्वज्ञानवतां
वर ॥ किं च त्वं ध्यायसे ब्रह्मन् शंस मे सुसमाधिना ॥ ५१ ॥ एतन्मे ब्रूहि तत्सर्वं सर्वज्ञो ह्यसि विश्रुतः ॥ एवमुक्तो महातेजा
विदित्वा तस्य हृद्गतम् ॥ ५२ ॥ उवाच वाक्यं प्रहसन् श्रूयतामिति पुत्रक ॥ यो हि वै सर्वमेवेदं बिभर्ति सचराचरम्
॥ ५३ ॥ त्रैलोक्यं सर्वभूतात्मा यस्योत्पत्तिं न विद्महे ॥ यमाहुर्वेदविदुषः पुरुषं तमसः परम् ॥ ५४ ॥
आदित्यरूपमजरं परमात्मानमीश्वरम् ॥ यस्य नाभिभवो ब्रह्मा पिता मम पितामहः ॥ ५५ ॥ कैलासनिलयः श्रीमान्
भवश्च क्रोधसंभवः ॥ यं समाश्रित्य विबुधा विधिना हरिरध्वरे ॥ ५६ ॥ पिबन्ति चामृतं हृष्टाः परिभूय दितेः सुतान्
॥ यस्य श्वासानिलोद्भूताः स्त्रियस्त्वामपराजितम् ॥५७॥ गृहीत्वा सुमहावेगाश्चिक्षिपुः सागराम्भसि॥येन दैत्या महावीर्या
दानवाश्च सनैर्ऋताः ॥ ५८ ॥ निहता बहुरूपेण बहवो बाहुशालिना ॥ तेनायं लोकनाथेन कल्पितः सुमहात्मना
॥ गोविन्देन निवासार्थं लोको वै सुमहात्मना ॥ ५९ ॥ अर्चयन्ति जगन्नाथं नारायणपरायणाः ॥ ६० ॥
अद्वेषाः सर्वभूतेषु महायोगबलाश्रयाः ॥ यजन्ति पञ्चभिर्यज्ञैः सततं मधुसूदनम् ॥ ६१ ॥ एकान्तिनो महासत्त्वा
वसन्ति सुसमाहिताः ॥ यः पुराणे च वेदे च पाञ्चरात्रे च पठ्यते ॥ ६२ ॥ सांख्ययोगे च मुनिभिर्ध्यायते चेज्यते
च यः ॥ मुनिभिर्देवसंघैश्च स्थाप्यते भगवान्हरिः ॥ ६३ ॥ मधुकैटभयोर्हन्ता यस्तमन्वेष्टुमर्हति ॥ पितामहोपि तं
देवं न च जानाति रावण ॥ ६४ ॥ यस्तु नित्यं विजानाति हरिं नारायणं विभुम् ॥ जगदाभरणं पुण्यं तस्य मोक्षो न
संशयः ॥ ६५ ॥ एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ पुनरेव ततो रक्षः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥ ६६ ॥
कथं च दृश्यते देव कथं च श्रूयते भुवि ॥ कथं च क्रीडते लोके द्रष्टुं वा शक्यते कथम् ॥ ६७ ॥ ॥

कियत्कालेन वा ब्रह्मँल्लोकोयं तपसा मया ॥ शक्यः प्रवेष्टुं तद्ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥ ६८ ॥ आकर्ण्य सस्पृहं तस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाच मुनिर्धीमान् तत्सर्वमनुपूर्वशः ॥ ६९ ॥ स हि सर्वगतो देवः सूक्ष्मोव्यक्तः सनातनः ॥ येन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ७० ॥ स भूमौ दिवि पाताले पर्वतेषु वनेषु च ॥ सागरेषु च सर्वेषु वसतीह सरित्सु च ॥ ७१ ॥ अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये दिवाकरश्चैव यमश्च सोमः ॥ स एव कालो वरुणः स एव स ब्रह्मरुद्रेन्द्रमुखः स चाग्निः ॥ ७२ ॥ ओंकारो भूर्भुवः स्वश्च गायत्री सन्ध्य एव च ॥ धराधरधरो देवः सोनन्त इति विश्रुतः ॥७३॥ विद्योतति ज्वलति वर्षति वाति पाति गर्जत्युपैति तपते दहते स चैव ॥ लोकान्सृजत्यवति संहरते सदैव दैत्यान्स एव दहते जगति प्रसह्य ॥७४॥ स न शक्यः सुरैर्द्रष्टुं नासुरैर्न च पन्नगैः ॥ प्रसादं कुरुते यस्य स वै तं द्रष्टुमर्हति ॥ ७५ ॥ तद्गतैस्तद्गतप्राणैः शुचिभिस्तत्परायणैः ॥ शक्यः प्रवेष्टुं लोकोयं ज्ञाननिर्धूतकिल्बिषैः ॥ ७६ ॥ एवंविधैरयं लोकः प्राप्यते पुरुषोत्तमैः ॥ अकामकारिभिर्दैवैरक्रोधैर्दग्धतामसैः ॥ ७७ ॥ यश्चैव सुमहाकायः प्रविष्टो लोकमव्ययम् ॥ आस्ते तथैव हरिणा कृता तेन महापुरी ॥७८॥ अष्टाविंशे युगे प्राप्ते मनोरस्य विवस्वतः ॥ वैष्णवीं मूर्तिमाविश्य लोकमेनं प्रवेक्ष्यसि ॥७९॥ नातः परतरं श्रोतुं मत्तो वै राक्षसेश्वर ॥ उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते प्राप्स्यसे गतिमीप्सिताम् ॥ ८० ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तं प्रणम्याभिपूज्यच ॥ समासाद्य महत्सैन्यं ययौ लङ्कामशङ्कितः ॥ ८१ ॥ नारदोपि प्रहृष्टात्मा दृष्ट्वा सर्वमशेषतः ॥ द्रुतं मेरुमुपागम्य विशते तां शुभां सभाम् ॥ ८२ ॥ तस्यां ब्रह्माणमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ देवान् संश्रावयामास समीपे पद्मजन्मनः ॥ ८३ ॥ निशम्य सुमहत्पुण्यमाख्यानं पद्मसंभवः ॥ नारदं संपरिष्वज्य प्राह भूतभविष्यवित् ॥ ८४ ॥ हिरण्यकशिपुः पूर्वं बभूवैष निशाचरः ॥ अवध्यो बहुभिर्योगैर्वरदानान्महाबलः ॥ ८५ ॥ स कदाचिन्महात्मानं पद्मनाभमधोक्षजम् ॥ सभायां गर्हयन्दर्पान्नृसिंहवपुषं हरिम् ॥ ८६ ॥

समुद्धृत्य नखैस्तेन दीर्यमाणस्य संयुगे ॥ रक्तसंस्पर्शजं दिव्यं चक्षुर्दैत्यपतेरभूत् ॥ ८७ ॥ स तु तद्राक्षसं जन्म तस्मान्मानुषजन्मनः ॥ भाविनीं निधनप्राप्तिं पश्यन्दिव्येन चक्षुषा ॥ ८८ ॥ श्रीवत्साङ्कं तदङ्कस्थः प्राह दैत्यः शनैरिदम् ॥ नखैर्विभिन्नहृदयः क्षणं दीनः कृताञ्जलिः ॥ ८९ ॥ तप्तहाटककेशान्त ज्वलत्पावकलोचन ॥ वज्रायुधनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोस्तु ते ॥ ९० ॥ कैटभारे हरे देव विष्णो विपुलविक्रम ॥ त्राहि मां भूतभव्येश शरणागतवत्सल ॥ ९१ ॥ त्वद्धते राक्षसे भावे मानुषे च पदे विभो ॥ प्राप्नुयां त्वन्मयो लोकं लोकनाथ प्रसीद मे ॥ ९२ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा ययौ दैत्यपतिं हरिः ॥ हंसयुक्तविमानेन किङ्किणीजालमालिना ॥ ९३ ॥ स एव च पुनस्तत्र राक्षसोभून्महासुरः ॥ राक्षसेन विधानेन सदा तद्भावभावितः ॥ ९४ ॥ मानुषत्वमुपागम्य लोकान् हन्तुं कृतोद्यमम् ॥ तृतीयं च हतं तेन श्वेतद्वीपं प्रवेक्ष्यति ॥ ९५ ॥ वैष्णवं तेज आविश्य यथोक्तं ब्रह्मवादिना ॥ मयापि चेहसंस्थेन दृष्टमेवाक्षदर्शनात् ॥ ९६ ॥ मयावलम्बितं सर्वं देवस्य परमात्मनः ॥ यस्त्विदं पठते नित्यं पुण्यमाख्यानमादितः ॥ ९७ ॥ नारदोक्तं मनुष्यो वै स याति परमां गतिम् ॥ वैष्णवं परमाख्यानं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९८॥ नित्यं च शृणुयाद्यश्च सोपि पापात्प्रमुच्यते ॥ जातिस्मरत्वं विप्रत्वं कुले महति संभवम् ॥ ९९ ॥ सर्वज्ञतां च लभते नात्र कार्या विचारणा ॥ स च संस्तूय च हरिं प्रविष्टः कमलोद्भवः ॥ १०० ॥ अनुभाव्य सुरान्सर्वान् ययौ स्वं लोकमीश्वरः ॥ नारदस्तु ततस्तस्मान्मेरुपृष्ठं परिभ्रमन् ॥ १०१ ॥ स तु मामाजगामाशु दिदृक्षुर्द्वादशात्मकम् ॥ स मया शाश्वतः सम्यगभिवाद्याभिपूजितः ॥ १०२ ॥ आख्यानमिदमाचष्ट ममानुग्रहकाम्यया ॥ मयाप्येतत्सदस्येत्य पावनार्थं मनोहरम् ॥ १०३ ॥ भक्त्या तव महाबाहो कथामृतमुदाहृतम् ॥ एतदर्थं महाबाहो रावणेन दुरात्मना ॥ १०४ ॥ विज्ञाय च हृता सीता त्वत्तो मरणकाङ्क्षया ॥ भवान्नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १०५ ॥ ॥

शार्ङ्गपद्मायुधधरः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदेवाभिपूजितः ॥ १०६ ॥ पद्मनाभो महायोगी भक्तानामभयप्रदः ॥ वधार्थं रावणस्य त्वं प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥ १०७ ॥ किन्न वेत्सि त्वमात्मानं राम नारायणो ह्यहम् ॥ मा मुह्यस्व महाभाग स्मर चात्मानमात्मना ॥ १०८ ॥ गुह्याद्गुह्यतरस्त्वं हि एवमाह पितामहः ॥ त्रिगुणश्च त्रिवेदी च त्रिधामा त्रिपदात्मकः ॥ १०९ ॥ त्रिकालकर्मा त्रैविद्यस्त्रिदशारिप्रमर्दनः ॥ त्वयाक्रान्तास्त्रयो लोकाः पुराणैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥ ११० ॥ त्वं महेन्द्रानुजः श्रीमान्बलिबन्धनकारणात् ॥ अदित्या गर्भसंभूतो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ॥ १११ ॥ लोकाननुग्रहीतुं वै प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥ तदिदं साधितं कार्यं सुराणां सुरसत्तम ॥ ॥ ११२ ॥ निहतो रावणः पापः सपुत्रगणबान्धवः ॥ प्रहृष्टाश्च सुराः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ११३ ॥ प्रशान्तं च जगत्सर्वं त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ सीता लक्ष्मीर्महाभागा संभूता वसुधातले ॥ ११४ ॥ त्वदर्थमियमुत्पन्ना जनकस्य गृहे शुभा ॥ लङ्कामानीय यत्नेन मातेव परिरक्षिता ॥११५॥ एवमेतत्समाख्यातं तव राम महायशः ॥ ममापि नारदेनोक्तमृषिणा दीर्घजीविना ॥११६॥ यथा सनत्कुमारेण व्याख्यातं तस्य रक्षसः ॥ तेनापि च तदेवाशु कृतं सर्वमशेषतः ॥११७॥ यश्चैतच्छ्रावयेच्छ्राद्धे विद्वान् ब्राह्मणसन्निधौ ॥ अनन्तमक्षयं दत्तं पितॄणामुपतिष्ठति ॥ ११८ ॥ एतां श्रुत्वा कथां दिव्यां रामो राजीवलोचनः ॥ परं विस्मयमापन्नो भ्रातृभिः सह राघवः ॥ ११९ ॥ वानराः सहसुग्रीवा राक्षसाः सबिभीषणाः ॥ राजानश्च महामात्या ये चान्येपि समागताः ॥ १२० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्मसमन्विताः ॥ सर्वे चोत्फुल्लनयनाः सर्वे हर्षसमन्विताः ॥ १२१ ॥ राममेवानुपश्यन्ति भृशमत्यन्तहर्षिताः ॥ अगस्त्यस्त्वब्रवीद्रामं सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया ॥ १२२ ॥ दृष्टः संभाषितश्चापि राम गच्छामहे वयम् ॥ १२३ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अधिकपाठे दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ सामन्तराजविसर्जनम्—एवमित्यादि ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण । सर्वोपास्यमान इत्यर्थः । प्रशासदिति शत्रन्तं पदम् ॥ १ ॥ २ ॥ भवानिति ॥ भवान्हि गतिः अव्यग्रेति । अचला प्रतिष्ठेत्यर्थः । भवता पालिता इति । कन्याप्रदानादिना परिपालितवंशा इत्यर्थः । तेजसा तपोवीर्येण । पाविता इति च पाठः ॥

एवमास्ते महाबाहुरहन्यहनि राघवः ॥ प्रशासत्सर्वकार्याणि पौरजानपदेषु च ॥ १ ॥ ततः कतिपयाहःसु
वैदेहं मिथिलाधिपम् ॥ राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥ भवान्हि गतिरव्यग्रा भवता पालिता वयम् ॥
भवतस्तेजसोग्रेण रावणो निहतो मया ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां मैथिलानां च सर्वशः ॥ अतुलाः प्रीतयो राजन्संबन्धकपुरोगमाः ॥४॥ तद्भवान्स्वपुरीं यातु रत्नान्यादाय पार्थिव ॥ भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतस्तेनुयास्यति ॥
॥ ५ ॥ स तथेति नृपः कृत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ प्रीतोस्मि भवतो राजन्दर्शनेन नयेन च ॥ ६ ॥ यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं संचितानि वै ॥ दुहित्रे तानि वै राजन्सर्वाण्येव ददामि च ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं जनको
हृष्टमानसः ॥ प्रययौ मिथिलां श्रीमांस्तमनुज्ञाय राघवम् ॥ ८ ॥ ततः प्रयाते जनके केकयं मातुलं प्रभुः ॥ राघवः
प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥ इदं राज्यमहं चैव भरतश्च सलक्ष्मणः ॥ आयत्तास्त्वं हि नो राजन्गतिश्च
पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ राजापि वृद्धः संतापं त्वदर्थमुपयास्यति ॥ तस्माद्गमनमद्यैव रोचते तव पार्थिव ॥ ११ ॥ लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्ठतोनुगमिष्यते ॥ धनमादाय विपुलं रत्नानि विविधानि च ॥ १२ ॥ ॥ ॥

॥ ३ ॥ ४ ॥ तदिति ॥ रत्नानि अस्माभिर्दीयमानानि उत्तमवस्तूनि ॥ ५ ॥ स इति ॥ तथेति कृत्वा तथास्त्वित्यङ्गीकृत्येत्यर्थः ॥ ६ ॥ यानीति ॥ मदर्थं मत्प्रीतिदानार्थम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ तत इति ॥ केकयं मातुलमिति युधाजितमित्यर्थः ॥ ९ ॥ इदमिति ॥ आयत्ताः । त्वयीति शेषः । गतिः आपद्बन्धुरित्यर्थः ॥ १० ॥ राजेति ॥ राजा केकयः ॥ ११ ॥ लक्ष्मणेनेति ॥ अनुयात्रेण अनुयात्रोपचाररूपेण अनुयात्रानुरूपोपचारार्थम् अनुगमिष्यते ।

भवानिति शेषः। लक्ष्मणस्त्वनुयात्रार्थं पृष्ठतोनुगमिष्यतीति पाठः ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रदक्षिणमिति ॥ रामेण पूर्वमभिवाद्य प्रदक्षिणं कृतः केकयवर्धनः राजानं रामम् प्रदक्षिणीकृत्य प्रयातः। रामस्य मूर्धाभिषिक्तत्वाज्ज्येष्ठेन मातुलेनापि रामं प्रति प्रदक्षिणादिकरणम् ॥ १४ ॥ लक्ष्मणेनेति ॥ वृत्रे हते सति विष्णुना उपेन्द्रेण सह स्थितो वासवः यथा विसृजति तथा लक्ष्मणमनुयात्रार्थं विसृज्येत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ दर्शितेति ॥ यस्मात्त्वया भरतेन सह

युधाजित्तु तथेत्याह गमनं प्रति राघवम् ॥ रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवाक्षय्यमस्त्विति ॥ १३ ॥ प्रदक्षिणं स राजानं कृत्वा केकयवर्धनः ॥ रामेण हि कृतः पूर्वमभिवाद्य प्रदाक्षिणम् ॥ १४ ॥ लक्ष्मणेन सहायेन प्रयातः केकयेश्वरः ॥ हतेऽसुरे यथा वृत्रे विष्णुना सह वासवः ॥ १५ ॥ तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम् ॥ प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम् ॥ उद्योगश्च कृतो राजन्भरतेन त्वया सह ॥ १७ ॥ तद्भवानद्य काशेय पुरीं वाराणसीं व्रज ॥ रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्रकाशां सुतोरणाम् ॥ १८ ॥ एतावदुक्त्वा चोत्थाय काकुत्स्थः परमासनात् ॥ पर्यष्वजत धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतम् ॥ १९ ॥ विसर्जयामास तदा कौसल्यानन्दवर्धनः ॥ राघवेणाभ्यनुज्ञातः काशीशोऽप्यकुतोभयः ॥ वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विसर्जितः ॥ २० ॥ विसृज्य तं काशिपतिं त्रिशतं पृथिवीपतीन् ॥ प्रहसन्राघवो वाक्यमुवाच मधुराक्षरम् ॥ २१ ॥ भवतां प्रीतिरव्यग्रा तेजसा परिरक्षिता ॥ धर्मश्च नियतो नित्यं सत्यं च भवतां सदा ॥ २२ ॥ युष्माकं चानुभावेन तेजसा च महात्मनाम् ॥ हतो दुरात्मा दुर्बुद्धी रावणो राक्षसाधमः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥

मम रणसहायार्थमुद्योगः कृतः। यस्माद्भवता परमा प्रीतिर्दर्शिता परं सौहार्दं च दर्शितम्। अनेनानुवादेन रावणसंहारार्थं काशीराजेन संगतमिति सिद्धम् ॥ १७ ॥ तदिति ॥ काशेय काशीदेशे भव। ढग्भाव आर्षः ॥ १८ ॥ एतावदिति ॥ उरोगतं यथा भवति तथा निरन्तरं गाढं पर्यष्वजत ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ विसृज्येति ॥ प्रहसन्निति। त्रिशतसंख्याकपृथिवीपतिदर्शनजसंतोषात्प्रहासः ॥२१॥ भवतामिति ॥ भवतां तेजसा अव्यग्रा प्रतिष्ठिता प्रीतिः

वनाय निर्गतस्य मे पुनश्चागत्यानुभवयोग्यतया परिरक्षिता । भवतां तेजसा धर्मश्च नियतः। सत्यं च नियतम् ॥ २२ ॥२३॥२४॥ भवन्त इति ॥ भवन्तश्च समानीताः संमिलिताः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ दिष्ट्येति ॥ हतशात्रवं हतशत्रुम् ॥ २८ ॥ २९ ॥३०॥ ३१ ॥ बाढमित्येवेति ॥ रामेणोक्ता इति

हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसा हतः॥ रावणः सगणो युद्धे सपुत्रामात्यबान्धवः ॥ २४ ॥ भवन्तश्च समानीता
भरतेन महात्मना ॥ श्रुत्वा जनकराजस्य काननात्तनयां हताम् ॥ २५ ॥ उद्युक्तानां च सर्वेषां पार्थिवानां म-
हात्मनाम् ॥ कालो व्यतीतः सुमहान् गमनं रोचयाम्यतः ॥ २६ ॥ प्रत्यूचुस्तं च राजानो हर्षेण महतावृताः ॥
दिष्ट्या त्वं विजयी राम स्वराज्येपि प्रतिष्ठितः ॥ २७ ॥ दिष्ट्या प्रत्याहृता सीता दिष्ट्या शत्रुः पराजितः ॥ एष नः
परमः काम एषा नः प्रीतिरुत्तमा ॥ २८ ॥ यत्त्वां विजयिनं राम पश्यामो हतशात्रवम् ॥ २९ ॥ एतत्त्वय्युपपन्नं च
यदस्मांस्त्वं प्रशंससे ॥ प्रशंसार्हं न जानीमः प्रशंसां वक्तुमीदृशीम् ॥ ३० ॥ आपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो नः
सदा भवान् ॥ वर्तामहे महाबाहो प्रीत्यात्र महतावृताः॥ भवेच्च ते महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा ॥ ३१ ॥ बाढ-
मित्येव राजानो हर्षेण परमन्विताः ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राघवं गमनोत्सुकाः ॥३२॥ पूजिताश्चैव रामेण जग्मुर्दे-
शान्स्वकान्स्वकान् ॥ ३३ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ ॥ ॥
ते प्रयाता महात्मानः पार्थिवास्ते प्रहृष्टवत् ॥ गजवाजिसहस्रौघैः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ १ ॥ अक्षौहिण्यो हि त-
त्रासन् राघवार्थे समुद्यताः ॥ भरतस्याज्ञयानेकाः प्रहृष्टा बलवाहनाः ॥ २ ॥ ऊचुस्ते च महीपाला बलदर्पसम-
न्विताः ॥ न रामरावणं युद्धे पश्यामः पुरतः स्थितम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥

शेषः । गमिष्याम इत्यूचुरिति पूर्वेणान्वयः ॥३२॥३३॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टात्रिंशः सर्गः॥३८॥
त इत्यादि ॥ प्रहृष्टवत् प्रहृष्टाः सन्तः ॥ १ ॥ अक्षौहिण्य इति ॥ राघवार्थ इति । रामसहायार्थमित्यर्थः ॥२॥ ऊचुरिति ॥ रामरावणं रामस्य रावणम् ।

भरतेन वयं पश्चात्समानीता निरर्थकम् ॥ हता हि राक्षसाः क्षिप्रं पार्थिवैः स्युर्न संशयः ॥ ४ ॥ रामस्य बाहुवीर्येण रक्षिता लक्ष्मणस्य च ॥ सुखं पारे समुद्रस्य युद्ध्येम विगतज्वराः ॥ ५ ॥ एताश्चान्याश्च राजानः कथास्तत्र सहस्रशः ॥ कथयन्तः स्वराज्यानि जग्मुर्हर्षसमन्विताः ॥ ६ ॥ स्वानि राज्यानि मुख्यानि ऋद्धानि मुदितानि च ॥ समृद्धधनधान्यानि पूर्णानि वसुमन्ति च ॥ ७ ॥ यथापुराणि ते गत्वा रत्नानि विविधान्यथ ॥ रामस्य प्रियकामार्थमुपहारान्नृपा ददुः ॥ ८ ॥ अश्वान्यानानि रत्नानि हस्तिनश्च मदोत्कटान् ॥ चन्दनानि च मुख्यानि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥ मणिमुक्ताप्रवालांस्तु दास्यो रूपसमन्विताः ॥ अजाविकाश्च विविधान् रथांस्तु विविधान्ददुः ॥ १० ॥ भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलाः ॥ आदाय तानि रत्नानि स्वां पुरीं पुनरागताः ॥ ११ ॥ आगम्य च पुरीं रम्यामयोध्यां पुरुषर्षभाः ॥ तानि रत्नानि चित्राणि रामाय समुपाहरन् ॥१२॥ प्रतिगृह्य च तत्सर्वं रामः प्रीतिसमन्वितः ॥ सुग्रीवाय ददौ राज्ञे महात्मा कृतकर्मणे ॥ १३ ॥ बिभीषणाय च ददौ तथान्येभ्योपि राघवः ॥ राक्षसेभ्यः कपिभ्यश्च यैर्वृतो जयमाप्तवान् ॥ १४ ॥ ते सर्वे रामदत्तानि रत्नानि कपिराक्षसाः ॥ शिरोभिर्धारयामासुर्बाहुभिश्च महाबलाः ॥ १५ ॥ हनूमन्तं च नृपतिरिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ अङ्गदं च महाबाहुमङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥ रामः कमलपत्राक्षः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ ॥

वध्यघातुकसंबन्धः षष्ठ्यर्थः । रामं रावणमिति पाठे युद्धे रामं रावणं च युद्ध्यमानौ रामरावणावित्यर्थः ॥ ३ ॥ भरतेनेति ॥ पश्चाद्रावणवधानन्तरम् ॥ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ स्वानीति ॥ मुख्यानीति । प्रसिद्धानीत्यर्थः । धनं जीविकाजीवरूपम् । वसुमन्ति महानिधिमन्ति ॥ ७ ॥ यथेति ॥ यथापुराणि यथाप्राप्तस्वस्वपुराणि । उपहारान् प्रत्युपहारान् ॥ ८ ॥ ९ ॥ मणीति ॥ अजाविकान् चर्ममयान् । तल्पविशेषानित्यर्थः । अजाविकं च विविधमिति वा पाठः ॥ ॥१०॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ त इति ॥ शिरोभिरिति । मुकुटकुण्डलादीनीति भावः । बाहुभिरिति । अङ्गदादीनीत्यर्थः । भुजेषु चेति पाठः ॥१५॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ एवं तेषां निवसतामिति ॥ आभरणादिभिः सत्कृतानां निवसतां तेषां साग्रःपञ्च षड्दिनाधिकः मासो गतः ॥ २७ ॥ २८ ॥ एवं तेषामिति ॥ वसन्तेभिषिक्तेन रामेण मासानन्तरमपि अविशेषसत्कारं प्राप्तानां तेषां द्वितीयः शैशिरो मासः

अङ्गदस्ते सुपुत्रोयं मन्त्री चाप्यनिलात्मजः ॥ १७ ॥ सुग्रीव मन्त्रिते युक्तौ ममापि च हिते रतौ ॥ अर्हतो विविधां पूजां त्वत्कृते वै हरीश्वर ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा व्यवमुच्याङ्गाद्भूषणानि महायशाः ॥ स बबन्ध महार्हाणि तदाङ्गदहनूमतोः ॥ १९ ॥ आभाष्य च महावीर्यान्राघवो यूथपर्षभान् ॥ नीलं नलं केसरिणं कुमुदं गन्धमादनम् ॥ २० ॥ सुषेणं पनसं वीरं मैन्दं द्विविदमेव च ॥ जाम्बवन्तं गवाक्षं च विनतं धूम्रमेव च ॥ २१ ॥ वलीमुखं प्रजङ्घं च सन्नादं च महाबलम् ॥ दरीमुखं दधिमुखमिन्द्रजानुं च यूथपम् ॥ २२ ॥ मधुरं श्लक्ष्णया वाचा नेत्राभ्यामापिबन्निव ॥ सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा ॥ २३ ॥ युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात्काननौकसः ॥ धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा ददौ तेभ्यो भूषणानि यथार्हतः ॥ वज्राणि च महार्हाणि सस्वजे च नरर्षभः ॥ २५ ॥ ते पिबन्तः सुगन्धीनि मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ मांसानि च सुमृष्टानि मूलानि च फलानि च ॥२६॥ एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा ॥ मुहूर्तमिव ते सर्वे राजभक्त्या च मेनिरे ॥ २७॥ रामोपि रेमे तैः सार्धं वानरैः कामरूपिभिः ॥ राक्षसैश्च महावीर्यैर्ऋक्षैश्चैव महाबलैः ॥ २८ ॥ एवं तेषां ययौ मासो द्वितीयः शैशिरः सुखम् ॥ वानराणां प्रहृष्टानां राक्षसानां च सर्वशः ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुनगरे रम्ये परां प्रीतिमुपासताम् ॥ रामस्य प्रीतिकरणैः कालस्तेषां सुखं ययौ ॥ ३० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥ ॥

फाल्गुनमासः सुखं गतः । अभिषेकानन्तरं संवत्सरं सुखमुषितास्त इत्यर्थः ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुनगर इति ॥ प्रीतिकरणैः संमानैः ॥ ३० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥ ॥ ॥

तथा स्मेत्यादि ॥ तषामिति भावलक्षणे षष्ठी। तेषु वसत्स्विति यावत् ॥१॥ गम्यतामिति ॥ किष्किन्धां प्रतीति शेषः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

तथा स्म तेषां वसतामृक्षवानररक्षसाम् ॥ राघवस्तु महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥१॥ गम्यतां सौम्य किष्किन्धां दुराधर्षां सुरासुरैः ॥ पालयस्व सहामात्यो राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥ अङ्गदं च महाबाहो प्रीत्या परमया युतः ॥ पश्य त्वं हनुमन्तं च नलं च सुमहाबलम् ॥ ३ ॥ सुषेणं श्वशुरं वीरं तारं च बलिनां वरम् ॥ कुमुदं चैव दुर्धर्षं नीलं चैव महाबलम् ॥ ४ ॥ वीरं शतवलिं चैव मैन्दं द्विविदमेव च ॥ गजं गवाक्षं गवयं शरभं च महाबलम् ॥ पश्य प्रीतिसमायुक्तो गन्धमादनमेव च ॥ ५ ॥ ऋषभं च सुविक्रान्तं जाम्बवन्तं महाबलम् ॥ ये चेमे सुमहात्मानो मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ ६ ॥ पश्य त्वं प्रीतिसंयुक्तो मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वा तु सुग्रीवमाश्लिष्य च पुनः पुनः ॥ बिभीषणमुवाचाथ रामो मधुरया गिरा ॥ ८ ॥ लङ्कां प्रशाधि धर्मेण धर्मज्ञस्त्वं मतो मम ॥ पुरस्य राक्षसानां च स्वभ्रातुः संमतो ह्यसि ॥ ९ ॥ मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन् कथंचन ॥ बुद्धिमन्तो हि राजानो ध्रुवमश्नन्ति मेदिनीम् ॥ १० ॥ अहं च नित्यशो राजन्सुग्रीवसहितस्त्वया ॥ स्मर्तव्यः परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥ ११ ॥ रामस्य भाषितं श्रुत्वा ऋक्षवानरराक्षसाः ॥ साधु साध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥ १२ ॥ तव बुद्धिर्महाबाहो वीर्यमद्भुतमेव च ॥ माधुर्यं परमं राम स्वयंभोरिव नित्यदा ॥ १३ ॥ तेषामेवं ब्रुवाणानां वानराणां च रक्षसाम् ॥ हनूमान्प्रवणो भूत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥

॥ ७ ॥ ८ ॥ लङ्कामिति ॥ पुरस्य पुरवर्तिप्राणिनां राक्षसादीनाम् स्वभ्रातुर्वैश्रवणस्य च संमतो ह्यसि परमाप्तोसि । भ्रातुर्वैश्रवणस्य चेति पाठे संमतोसीति शेषः ॥ ९ ॥ मा चेति ॥ ध्रुवं शाश्वतम् ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ तवेति ॥ अद्भुतं वीर्यं जगदद्भुतकरं शौर्यम् ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥

स्नेह इति ॥ स्नेहः सुहृदि प्रीतिः । भक्तिः उत्कृष्टे प्रीतिः ॥१५॥ यावदिति ॥ तावच्छरीरे वत्स्यन्ति त्वत्कथामृतरसास्वादबलादिति भावः ॥१६॥१७॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ एवंशब्दार्थं विवृणोति—लोका हीति ॥ २१ ॥ २२ ॥ तत इति ॥ तरलो हारमध्यगो मणिः ॥२३॥ तेनेति ॥ हेमशैलेन्द्रः मेरुः ।

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ॥ भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ १५ ॥ यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ॥ तावच्छरीरे वत्स्यन्ति प्राणा मम न संशयः ॥१६॥ यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथां ते रघुनन्दन ॥ तन्ममाप्सरसो नाम श्रावयेयुर्नरर्षभ ॥१७॥ तच्छ्रुत्वाहं ततो वीर तव चर्यामृतं प्रभो ॥ उत्कण्ठां तां हरिष्यामि मेघलेखामिवानिलः ॥१८॥ एवं ब्रुवाणं रामस्तु हनूमन्तं वरासनात् ॥ उत्थाय सस्वजे स्नेहाद्वाक्यमेतदुवाच ह ॥१९॥ एवमेतत्कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः ॥ चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥ तावत्ते भविता कीर्तिः क्षरीरेप्यसवस्तथा ॥२०॥ लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत्स्थास्यति मे कथा ॥२१॥ एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे ॥ नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥ २२ ॥ ततोस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात्स राघवः ॥ वैडूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनूमतः ॥ २३ ॥ तेनोरसि निबद्धेन हारेण महता कपिः ॥ रराज हेम[1]शैलेन्द्रश्चन्द्रेणाक्रान्तमस्तकः ॥ २४ ॥ श्रुत्वा तु राघवस्यैतदुत्थायोत्थाय वानराः ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ निर्जग्मुस्ते महाबलाः ॥२५॥ सुग्रीवः स च रामेण निरन्तरमुरोगतः ॥ बिभीषणश्च धर्मात्मा सर्वे ते बाष्पविक्लवाः ॥२६॥ सर्वे च ते बाष्पकलाः साश्रुनेत्रा विचेतसः ॥ संमूढा इव दुःखेन त्यजन्तो राघवं तदा ॥२७॥

चन्द्रेण चन्द्रकिरणैः । आक्रान्तमस्तकः आक्रान्तकर्णप्रदेश इत्यर्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ सुग्रीव इति ॥ निरन्तरम् उरोगत इति । गाढपरिष्वक्त इत्यर्थः ॥ २६ ॥ सर्वं इति ॥ विचेतसः वियोगखिन्नचेतसः ॥ २७ ॥ ॥ ॥

---

१ हेमशैलो वेति पाठः । वाशब्दोत्र इवार्थः ।

कृतेति ॥ देहं त्यजन् देहीव रामवियोगखिन्ना इत्यर्थः । युद्धकाण्डान्ते वानरादीनां विसर्जनोक्तिः काण्डसमापनायात्रैव विसर्जनं तत्रोक्तमिति मन्तव्यम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥

कृतप्रसादास्तेनैवं राघवेण महात्मना ॥ जग्मुः स्वं स्वं गृहं सर्वे देही देहमिव त्यजन् ॥ २८ ॥ ततस्तु ते राक्षसऋक्षवानराः प्रणम्य रामं रघुवंशवर्धनम् ॥ वियोगजाश्रुप्रतिपूर्णलोचनाः प्रतिप्रयातास्तु यथा निवासिनः ॥ २९ ॥

इत्युत्तरश्रीरामायणे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥

विसृज्य च महाबाहुर्ऋक्षवानरराक्षसान् ॥ भ्रातृभिः सहितो रामः प्रमुमोद सुखं सुखी ॥ १ ॥ अथापराह्णसमये भ्रातृभिः सह राघवः ॥ शुश्राव मधुरां वाणीमन्तरिक्षात्प्रभाषिताम् ॥ २ ॥ सौम्य राम निरीक्षस्व सौम्येन वदनेन माम् ॥ कुबेरभवनात्प्राप्तं विद्धि मां पुष्पकं प्रभो ॥ ३ ॥ तव शासनमाज्ञाय गतोस्मि भवनं प्रति ॥ उपस्थातुं नरश्रेष्ठ स च मां प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥ निर्जितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ॥ निहत्य युधि दुर्धर्षं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥ ममापि परमा प्रीतिर्हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ रावणे सगणे चैव सपुत्रे सहबान्धवे ॥ ६ ॥ स त्वं रामेण लङ्कायां निर्जितः परमात्मना ॥ वह सौम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते ॥ ७ ॥ परमो ह्येष मे कामो यत्त्वं राघवनन्दनम् ॥ वहेर्लोकस्य संयानं गच्छस्व विगतज्वरः ॥ ८ सोहं शासनमाज्ञाय धनदस्य महात्मनः ॥ त्वत्सकाशमनुप्राप्तो निर्विशङ्कः प्रतीक्ष माम् ॥ ९ ॥ ॥ ॥

विसृज्येत्यादि ॥ प्रमुमोद सुखं सुखी । स्वतः सुखी रामः आश्रितदुःखनिवृत्त्या सुखं प्रमुमोद । अविच्छिन्नप्रमोदमगमदित्यर्थः । अत्र प्रमुमोदेति दकारो गायत्र्यक्षरम् ॥ १ ॥ अथेति ॥ अन्तरिक्षात्प्रभाषिताम् अन्तरिक्षगतेनोक्ताम् । पुष्पकाभिमानिदेवतयोक्तामित्यर्थः । अन्तरिक्षाद्विनिस्सृतामिति चपाठः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ परम इति ॥ लोकस्य संयानमिति । लोकसंचरणमित्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ गम्यतामिति ॥ स्मरे स्मरामि । सिद्धानां च गतौ आकाशमार्गे । आत्मानं विषादेन अस्मद्वियोगदुःखेन मा योजय ।
विमुक्तगत्या गतदुःखः सुप्रतिष्ठितः सुखमास्स्वेत्यर्थः । सिद्धानां गतौ मा माम् अविषादेन अश्रमेण योजय प्रापयेति वार्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अदृश्यः सर्वभूतानां सर्वेषां धनदाज्ञया ॥ चराम्यहं प्रभावेण तवाज्ञां परिपालयन् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तदा रा-
मः पुष्पकेण महाबलः ॥ उवाच पुष्पकं दृष्ट्वा विमानं पुनरागतम् ॥ ११ ॥ यद्येवं स्वागतं तेस्तु विमानवर पुष्पक ॥
आनुकूल्याद्धनेशस्य वृत्तदोषो न नो भवेत् ॥ १२ ॥ लाजैश्चैव तथा पुष्पैर्धूपैश्चैव सुगन्धिभिः ॥ पूजयित्वा म-
हाबाहू राघवः पुष्पकं तदा ॥ १३ ॥ गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा ॥ सिद्धानां च गतौ सौम्य मा
विषादेन योजय ॥ प्रतिघातश्च ते मा भूद्यथेष्टं गच्छतो दिशः ॥ १४ ॥ एवमस्त्विति रामेण पूजयित्वा विसर्जि-
तम् ॥ अभिप्रेतां दिशं तस्मात्प्रायात्तत्पुष्पकं तदा ॥ १५ ॥ एवमन्तर्हिते तस्मिन्पुष्पके सुकृतात्मनि ॥ भरतः
प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥ १६ ॥ विविधात्मनि दृश्यन्ते त्वयि वीर प्रशासति ॥ अमानुषाणां सत्त्वानां
व्याहृतानि मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥ अनामयश्च सत्त्वानां साग्रो मासो गतो ह्ययम् ॥ जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नाया-
ति राघव ॥ १८ ॥ अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः ॥ हर्षश्चाभ्यधिको राजन् जनस्य पुरवासिनः ॥ १९ ॥
काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः ॥ वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ताः सुखाः शिवाः ॥ २० ॥ इदृशोऽ
नश्वरो राजा भवेदिति नरेश्वरः ॥ कथयन्ति पुरे राजन् पौरजानपदास्तथा ॥ २१ ॥ ॥

विविधेति ॥ विविधात्मनि नानारूपे । चित्र इत्यर्थः । अमानुषाणां सत्त्वानां पुष्पकादीनामित्यर्थः ॥ १७ ॥ अनामय इति ॥ साग्रो मासो गत इति ।
अभिषेकानन्तरं साग्रो मासो गतः । तावन्मात्रेणानामयादिगुणप्रादुर्भाव इत्याश्चर्यमित्यर्थः । अनेन पुष्पकागमनं मासाभ्यन्तर एव तत्कालवृत्तान्तः भ-
रतेन निर्दर्शित इत्यवगम्यते । पुनः फाल्गुनमासप्राप्तेः पूर्वमुक्तत्वात् ॥ १८ ॥ अरोगेति ॥ वपुष्मन्तः हृष्टपुष्टवपुर्युक्ताः । सुखी सुखमिति वक्ष्यमाणसर्गकथा-

नुवादसंग्रहः ॥१९॥२०॥२१॥२२॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटा० उत्तरश्रीरामायणव्या० एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥
स विसृज्येति ॥ अशोकवनिकामन्तःपुरगतं लीलोद्यानम् ॥ १ ॥ चन्दनेति ॥ तुङ्गः पुन्नागविशेषः। कालेयो रक्तचन्दनवृक्षः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥५॥६॥

एता वाचः सुमधुरा भरतेन समीरिताः ॥ श्रुत्वा रामो मुदा युक्तो बभूव नृपसत्तमः ॥ २२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ ॥

स विसृज्य ततो रामः पुष्पकं हेमभूषितम् ॥ प्रविवेश महाबाहुरशोकवनिकां तदा ॥ १ ॥ चन्दनागरुचूतैश्च तुङ्गकालेयकैरपि ॥ देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम् ॥ २ ॥ चम्पकाशोकपुन्नागमधूकपनसासनैः ॥ शोभितां पारिजातैश्च विधूमज्वलनप्रभैः ॥३॥ लोध्रनीपार्जुनैर्नागैः सप्तपर्णातिमुक्तकैः ॥ मन्दारकदलीगुल्मलताजालसमावृताम् ॥ ४ ॥ प्रियङ्गुभिः कदम्बैश्च तथा च बकुलैरपि ॥ जम्बूभिर्दाडिमैश्चैव कोविदारैश्च शोभिताम् ॥ ५ ॥ सर्वदा कुसुमै रम्यैः फलवद्भिर्मनोरमैः ॥ दिव्यगन्धरसोपेतैस्तरुणाङ्कुरपल्लवैः ॥ ६ ॥ तथैव तरुभिर्दिव्यैः शिल्पिभिः परिकल्पितैः ॥ चारुपल्लवपुष्पाढ्यैर्मत्तभ्रमरसंकुलैः ॥ ७ ॥ कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः ॥ शोभितां शतशश्चित्रां चूतवृक्षावतंसकैः ॥ ८ ॥ शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः ॥ नीलाञ्जननिभाश्चान्ये भान्ति तत्रत्यपादपाः ॥ ९ ॥ सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च ॥ दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ॥१०॥ माणिक्यवृतसोपानाः स्फटिकान्तरकुट्टिमाः ॥ फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ११ ॥ दात्यूहशुकसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥ तरुभिः पुष्पवद्भिश्च तीरजैरुपशोभिताः ॥ १२ ॥ ॥

तथैवेति ॥ दिव्यैः शिल्पिभिरिति । ऋतुभिरित्यर्थः । दोहलकादिभिर्वा ॥ ७ ॥ कोकिलैरिति ॥ चूतवृक्षावतंसकैः चूतवृक्षाग्रस्थैरित्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥
॥ १० ॥ माणिक्येति ॥ स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः स्फटिकमयसोपानप्रान्तस्नानार्हाः निबद्धभूमयः । अन्यथा सर्वत्रान्तरे स्फटिककुट्टिमत्वे पद्माद्युत्पत्ति-

विरोधात् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ शाद्वलैरिति ॥ परमोपेताम् अत्यन्तसंयुक्ताम् । संघर्षजातानां स्पर्धयैव जातानाम् । जातपुष्पाणामित्यर्थः ॥ १४ ॥
प्रस्तरा इति ॥ प्रस्तराः वृक्षमूलेषु शयनार्थं स्थापिताः श्लक्ष्णशिलाः । ब्राह्मं ब्रह्मनिर्मितम् । सन्निवेशनं समीचीनसंस्थानोपेतम् ॥ १५ ॥ वह्विति ॥

प्राकारैर्विविधाकारैः शोभिताश्च शिलातलैः ॥ तत्रैव च वनोद्देशे वैडूर्यमणिसन्निभैः ॥ १३ ॥ शाद्वलैः परमोपेतां
पुष्पितद्रुमकाननाम् ॥ तत्र संघर्षजातानां वृक्षाणां पुष्पशालिनाम् ॥ १४ ॥ प्रस्तराः पुष्पशबला नभस्तारागणैरिव
॥ नन्दनं हि यथेन्द्रस्य ब्राह्मं चैत्ररथं यथा ॥ तथा भूतं हि रामस्य काननं सन्निवेशनम् ॥ १५ ॥ बह्वासनगृहोपेतां
लतागृहसमावृताम् ॥ अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः ॥ १६ ॥ आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकरभूषिते
॥ कुथास्तरणसंवीते रामः सन्निषसाद ह ॥ १७ ॥ सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि ॥ पाययामास
काकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः ॥ १८ ॥ मांसानि च समृष्टानि फलानि विविधानि च ॥ रामस्याभ्यवहारार्थं
किंकरास्तूर्णमाहरन् ॥ १९ ॥ उपानृत्यंश्च राजानं नृत्तगीतविशारदाः ॥ बालाश्च रूपवत्यश्च स्त्रियः
पानवशानुगाः ॥ २० ॥ मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः ॥ रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषितः
॥ २१ ॥ स तया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह ॥ अरुन्धत्या सहासीनो वसिष्ठ इव तेजसा ॥२२॥ एवं रामो
मुदा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम् ॥ रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् ॥ २३ ॥ ॥ ॥

वह्वासनगृहोपेताम् । अनेकावस्थानयोग्यगृहोपेतामित्यर्थः । लतागृहसमावृतां लतामयगृहसमावृताम् ॥१६॥ आसन इति ॥ कुथास्तरणसंवीते उपर्यास्तरणावृते
॥ १७ ॥ सीतामिति ॥ मैरेयकं धातकीगुडमिश्रवारिभिः कृतं मद्यम्। मैरेयमासवे धात्रीधातकीगुडवारिभिरिति वैजयन्ती ॥ १८ ॥ १९ ॥
उपानृत्यन्निति ॥ उपनृत्यन्तीति वा पाठः । राजानमिति । राजानमुप राज्ञः समीपे । पानवशं पानजमदवशम् ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥

तथेति ॥ शिशिरः शुभोत्यक्रामदिति । पुनश्च संवत्सरोतीत इत्यर्थः । वानरादिसुहृत्सल्लापादिना क्रीडावसराभावात्तैः सह एकसंवत्सरो गतः । तद्विसर्जनानन्तरं क्रीडया पुनरेकः संवत्सरो गतः । तथा चाभिषेकानन्तरं वर्षद्वयं जातम् ॥ २४ ॥ २५ ॥ पूर्वाह्ण इति ॥ शेषं दिवसभागार्धम् अपराह्ण इत्यर्थः ॥

तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम् ॥ अत्यक्रामच्छुभः कालः शिशिरो भोगदः सदा ॥ २४ ॥ दश वर्षसहस्राणि गतानि सुमहात्मनोः ॥ प्राप्तयोर्विविधान्भोगानतीतः शिशिरागमः ॥ २५ ॥ पूर्वाह्णे धर्मकार्याणि कृत्वा धर्मेण धर्मवित् ॥ शेषं दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोभवत् ॥ २६ ॥ सीतापि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै ॥ श्वश्रूणामकरोत्पूजां सर्वासामविशेषतः ॥ २७ ॥ अभ्यगच्छत्ततो रामं विचित्राभरणाम्बरा ॥ त्रिविष्टपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ ॥ २९ ॥ अब्रवीच्च वरारोहां सीतां सुरसुतोपमाम् ॥ अपत्यलाभो वैदेहि त्वयि मे समुपस्थितः ॥ ३० ॥ किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव ॥ ३१ ॥ स्मितं कृत्वा तु वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ॥ ३२ ॥ गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥ फलमूलाशिनां देव पादमूलेषु वर्तितुम् ॥ ३३ ॥ एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिनाम् ॥ अप्येकरात्रं काकुत्स्थ निवसेयं तपोवने ॥ ३४ ॥ तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ विस्रब्धा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम् ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ मध्यकक्ष्यान्तरं रामो निर्जगाम सुहृद्वृतः ॥ ३६ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

॥२६॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ अब्रवीदिति ॥ अपत्येति । ममायमपत्यलाभस्त्वयि समुपस्थितः । तव गर्भलक्षणं दृश्यत इत्यर्थः ॥ ३० ॥ ३१॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तथेति ॥ विस्रब्धा भव। महाराजो महिर्षीं मां कथमाश्रमं प्रति नेष्यतीति शङ्कां मा कुर्वित्यर्थः ॥३५॥ ३६॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ॥

तत्रेत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ तत इति ॥ विषयेषु देशेषु ॥ ४ ॥ ५ ॥ किं न्विति ॥ वक्तव्यतां च राजानो नवे राज्ये व्रजन्ति हीति च पाठः । नवे राज्ये

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ॥ कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः ॥ १ ॥ विजयो मधुमत्त-
श्च काश्यपः पिङ्गलः कुटः ॥ सुराजः कालियो भद्रो दन्तवक्रः सुमागधः ॥ २ ॥ एते कथा बहुविधाः परिहा-
ससमन्विताः ॥ कथयन्ति स्म संहृष्टा राघवस्य महात्मनः ॥ ३ ॥ ततः कथायां कस्यांचिद्राघवः समभाषत ॥
काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषु च ॥ ४ ॥ मामाश्रितानि कान्याहुः पौरजानपदा जनाः ॥ किंच सीतां समा-
श्रित्य भरतं किंच लक्ष्मणम् ॥ ५ ॥ किन्नु शत्रुघ्नमुद्दिश्य कैकेयीं किन्नु मातरम् ॥ वक्तव्यतां च राजानो वने
राज्ये व्रजन्ति च ॥ ६ ॥ एवमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ स्थिताः कथाः शुभा राजन् वर्तन्ते पुरवासि-
नाम् ॥ ७ ॥ अमुं तु विजयं सौम्य दशग्रीववधार्जितम् ॥ भूयिष्ठं स्वपुरे पौरैः कथ्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥ एवमुक्त-
स्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ कथयस्व यथातत्त्वं सर्वं निरवशेषतः ॥ ९ ॥ शुभाशुभानि वाक्यानि यान्या-
हुः पुरवासिनः ॥ श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्यां न कुर्यामशुभानि च ॥ १० ॥ कथयस्व च विस्रब्धो निर्भयं विगतज्वरः ॥
कथयन्ति यथा पौराः पापा जनपदेषु च ॥ ११ ॥ राघवेणैवमुक्तस्तु भद्रः सुरुचिरं वचः ॥ प्रत्युवाच महाबाहुं
प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ १२ ॥ शृणु राजन्यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम् ॥ चत्वरापणरथ्यासु वनेषूपवनेषु
च ॥ १३ ॥ दुष्करं कृतवान्रामः समुद्रे सेतुबन्धनम् ॥ अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद्देवैरपि सदानवैः ॥ १४ ॥ राव-
णश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः ॥ वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ॥ १५ ॥ ॥

सति राजानो वक्तव्यतां सम्यगसम्यग्वा कीर्तनीयतां वव्रन्ति हि ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥

हत्वेत्यादि ॥ सीतामाहृत्य तदनन्तरजातममर्षं रावणस्पर्शजं पृष्ठतः कृत्वा विसृज्येत्यर्थः ॥ १६ ॥ कीदृशमिति ॥ कीदृशं कुत्सितमेवेत्यर्थः । तत्र हेतुः अङ्कमित्यादि ॥ १७ ॥ १८ ॥ अस्माकमिति ॥ सहनीयमिति । एवं कश्मलमित्यर्थः ॥१९॥२०॥ तस्येति ॥ परमार्तवत् परमदुःखी भूत्वा । सर्वान् सुहृद इति । भद्रव्यतिरिक्तानित्यर्थः । कथमेतदिति । भद्रोक्तमेतत् अपयशोवचनं कथं तत्त्वमतत्त्वं वेति भवद्भिश्च निवेद्यतामित्यर्थः ॥ २१ ॥

हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः ॥ अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥ १६ ॥ कीदृशं हृदये तस्य सीतासंभोगजं सुखम् ॥ अङ्कमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ॥ १७ ॥ लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम् ॥ रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्सते ॥ १८ ॥ अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ॥ यथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुवर्तते ॥ १९ ॥ एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः ॥ नगरेषु च सर्वेषु राजन् जनपदेषु च ॥ २० ॥ तस्यैवं भाषितं श्रुत्वा राघवः परमार्तवत् ॥ उवाच सुहृदः सर्वान्कथमेतद्ब्रवीथ माम् ॥ २१ ॥ सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ॥ प्रत्यूचू राघवं दीनमेवमेतन्न संशयः ॥२२॥ श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरितम् ॥ विसर्जयामास तदा वयस्याञ्छत्रुसूदनः ॥ २३ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

विसृज्य तु सुहृद्वर्गं बुद्ध्या निश्चित्य राघवः ॥ समीपे द्वास्थमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ भरतं च महाभागं शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ २ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा द्वास्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ लक्ष्मणस्य गृहं गत्वा प्रविवेशानिवारितः ॥ ३ ॥ ॥ ॥

सर्व इति ॥ एवमेतत् यथा भद्रेणोक्तम् एतत्तत्त्वमेव ॥ २२ ॥ २३ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

विसृज्येत्यादि ॥ निश्चित्येति । कर्तव्यमिति शेषः ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

उवाचेति ॥ वर्धयित्वेति । जयाशिषेति शेषः । मा चिरं विलम्बो मा भूत् ॥ ४ ॥ ५ ॥ प्रयान्तमिति ॥ भरतमन्तिकात् भरतस्यान्तिकमित्यर्थः । गत्वे-

उवाच सुमहात्मानं वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ॥ द्रष्टुमिच्छति राजा त्वां गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ४ ॥ बाढमित्येव सौमित्रिः श्रुत्वा राघवशासनम् ॥ प्राद्रवद्रथमारुह्य राघवस्य निवेशनम् ॥ ५ ॥ प्रयान्तं लक्ष्मणं दृष्ट्वा द्वास्थो भरतमन्तिकात् ॥ उवाच भरतं तत्र वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥ विनयावनतो भूत्वा राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ भरतस्तु वचः श्रुत्वा द्वास्थाद्रामसमीरितम् ॥ ७ ॥ उत्पपातासनात्तूर्णं पद्भ्यामेव ययौ बली ॥ दृष्ट्वा प्रयान्तं भरतं त्वरमाणः कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥ शत्रुघ्नभवनं गत्वा ततो वाक्यमुवाच ह ॥ एह्यागच्छ रघुश्रेष्ठ राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ॥ गतो हि लक्ष्मणः पूर्वं भरतश्च महायशाः ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य शत्रुघ्नः परमासनात् ॥ १० ॥ शिरसा धरणीं प्राप्य प्रययौ यत्र राघवः ॥ द्वास्थस्त्वागम्य रामाय सर्वानेव कृताञ्जलिः ॥ निवेदयामास तदा भ्रातॄन् स्वान्समुपस्थितान् ॥ ११ ॥ कुमारानागतान् श्रुत्वा चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ अवाङ्मुखो दीनमना द्वास्थं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ प्रवेशय कुमारांस्त्वं मत्समीपं त्वरान्वितः ॥ एतेषु जीवितं मह्यमेते प्राणाः प्रिया मम ॥ १३ ॥ आज्ञप्तास्तु नरेन्द्रेण कुमाराः शक्रतेजसः ॥ प्रह्वाः प्राञ्जलयो भूत्वा विविशुस्ते समाहिताः ॥ १४ ॥ ते तु दृष्ट्वा मुखं तस्य सग्रहं शशिनं यथा ॥ सन्ध्यागतमिवादित्यं प्रभया परिवर्जितम् ॥ १५ ॥ बाष्पपूर्णे च नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ॥ हतशोभं यथा पद्मं मुखं वीक्ष्य च तस्य ते ॥ १६ ॥ ततोभिवाद्य त्वरिताः पादौ रामस्य मूर्धभिः ॥ तस्थुः समाहिताः सर्वे रामस्त्वश्रूण्यवर्तयत् ॥ १७ ॥ तान्परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाप्य च महाबलः ॥ आसनेष्वासतेत्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद ह ॥ १८ ॥ ॥

ति शेषः । कृताञ्जलिः । भरतायेति शेषः ॥ ६ ॥ ७ ॥ उत्पपातेति ॥ उत्पपात उत्थाय जगाम ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ शिरसेति ॥ शिरसा धरणीं प्राप्य रामाय वन्दित्वेत्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥ प्रवेशयेति ॥ मह्यं ममेत्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ ते त्विति ॥ सग्रहं सोपरागम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥

॥ १९ ॥ भवन्त इति ॥ कृतशास्त्रार्थाः अनुष्ठितशास्त्रार्थाः ॥ २० ॥ २१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम ॥ भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः ॥ १९ ॥ भवन्तः कृतशास्त्रार्था बुद्ध्या च परिनिष्ठिताः ॥ संभूय च मदर्थोयमन्वेष्टव्यो नरेश्वराः ॥ २० ॥ तथा वदति काकुत्स्थे ह्यवधानपरायणाः ॥ उद्विग्नमनसः सर्वे किन्नु राजाभिधास्यति ॥२१॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीनचेतसाम् ॥ उवाच वाक्यं काकुत्स्थो मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥ सर्वे शृणुत भद्रं वो मा कुरुध्वं मनोन्यथा ॥ पौराणां मम सीतायां यादृशी वर्तते कथा ॥ २ ॥ पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ॥ वर्तते मयि बीभत्सा सा मे मर्माणि कृन्तति ॥ ३ ॥ अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ सीतापि सत्कुले जाता जनकानां महात्मनाम् ॥४॥ जानासि त्वं यथा सौम्य दण्डके विजने वने ॥ रावणेन हृता सीता स च विध्वंसितो मया ॥ ५ ॥तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुतां प्रति ॥ अत्रोषितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम् ॥ ६ ॥ प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा ॥ प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ॥ अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः ॥७॥ चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां सन्निधौ पुरा ॥ ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम् ॥ ८ ॥ एवं शुद्धसमाचारा देवगन्धर्वसन्निधौ ॥ लङ्काद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेशिता ॥ ९ ॥

तेषामित्यादि॥१॥सर्वे इति॥ मा कुरुध्वं मनोन्यथा। मदभिप्रायाननुकूलम् मा कुरुध्वमित्यर्थः । तमेवाभिप्रायमाविष्करोति–पौराणामित्यादि । सीतायां विषये यादृशी कथा वर्तते तां कथां मत्सकाशात् शृणुतेत्यन्वयः ॥२॥ का कथा वर्तत इत्यत्राह–पौरापवाद इत्यादि ॥ मयि मद्विषये बीभत्सा कुत्सा वर्तते सा मम सर्वमर्माणि कृतन्ति ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥१०॥ अयन्त्विति ॥ महान्वाद इति । वर्तत इति शेषः । शोकश्चेति ॥ तच्छ्रवणादिति शेषः । कोयं वाद इत्यत्राह–पौरेत्यादि ॥११॥ अकीर्तिरिति ॥ भूतस्य प्राणिनः । शब्दः अकीर्तिबोधकः ॥१२॥१३॥१४॥ तस्मादिति ॥ भूतमुत्पन्नम् ॥१५॥ श्व इति ॥ विषयान्ते स्वदेशाद्बहिः॥१६॥ तं विशेषयति–

अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ॥ ततो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागतः ॥ १० ॥ अयं तु मे महान्वादः शोकश्च हृदि वर्तते ॥ पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ॥ ११ ॥ अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ॥ पतत्येवाधमाँल्लोकान्यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ॥ १२ ॥ अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ॥ कीर्त्यर्थन्तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ॥ १३ ॥ अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान्वा पुरुषर्षभाः ॥ अपवादभयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ॥ १४ ॥ तस्माद्भवन्तः पश्यन्तु पतितं शोकसागरे ॥ न हि पश्याम्यहं भूतं किंचिद्दुःखमतोधिकम् ॥ १५॥ श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम् ॥ आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज ॥ १६ ॥ गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ॥ आश्रमो दिव्यसंकाशस्तमसातीरमाश्रितः॥१७॥ तत्रैनां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ॥ शीघ्रमागच्छ भद्रन्ते कुरुष्व वचनं मम ॥ १८॥ न चास्मिन्प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथंचन ॥ तस्मात्त्वं गच्छ सौमित्रे नात्र कार्या विचारणा ॥१९॥ अप्रीतिर्हि परा मह्यं त्वय्येतत्प्रतिवारिते ॥ शापिता हि मया यूयं भुजाभ्यां जीवितेन च ॥ २० ॥ ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन ॥ अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात् ॥ २१ ॥ मानयन्तु भवन्तो मां यदि मच्छासने स्थिताः ॥ इतोद्य नीयतां सीता कुरुष्व वचनं मम ॥२२॥ पूर्वमुक्तोहमनया गङ्गातीरेहमाश्रमान् ॥ पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम्॥२३॥

गङ्गाया इत्यादि ॥१७॥१८॥१९॥ अप्रीतिरिति ॥ मह्यं मम । भुजाभ्यामिति वीरवचनम् ॥२०॥ य इति ॥ वाक्यान्तरे अस्मद्वाक्यमध्ये। अनुनेतुं ये ब्रूयुस्ते शापिता इति पूर्वेणान्वयः॥२१॥फलितमाह–मानयन्त्विति॥२२॥कथममं नृशंसत्वं सोढुं शक्यमित्यत्राह–पूर्वमित्यादि ॥ संवर्त्यताम् अनुष्ठीयताम् २३॥

एवमिति ॥ भ्रातृभिः परिवारितः प्रविवेशेति। भ्रातॄन् विसृज्य स्ववेश्म प्रविवेशेत्यर्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो बाष्पेण पिहिताननः ॥ प्रविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ॥ २४ ॥ शोकसंलग्नहृदयो निशश्वास यथा द्विपः ॥ २५ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ ॥

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ सुमन्त्रमब्रवीद्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥ सारथे तुरगान् शीघ्रं योजयस्व रथोत्तमे ॥ स्वास्तीर्णं राजभवनात्सीतायाश्चासनं कुरु ॥ २ ॥ सीता हि राजवचनादाश्रमं पुण्यकर्मणाम् ॥ मया नेया महर्षीणां शीघ्रमानीयतां रथः ॥ ३ ॥ सुमन्त्रस्तु तथेत्युक्त्वा युक्तं परमवाजिभिः॥ रथं सुरुचिरप्रख्यं स्वास्तीर्णं सुखशय्यया ॥ ४ ॥ आनीयोवाच सौमित्रिं मित्राणां मानवर्धनम्॥ रथोयं समनुप्राप्तो यत्कार्यं क्रियतां प्रभो ॥ ५ ॥ एवमुक्तः सुमन्त्रेण राजवेश्मनि लक्ष्मणः ॥ प्रविश्य सीतामासाद्य व्याजहार नरर्षभः ॥ ६ ॥ त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः ॥ नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञप्तश्चाश्रमं प्रति ॥ ७ ॥ गङ्गातीरे मया देवि ऋषीणामाश्रमान् शुभान् ॥ शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात्पार्थिवस्य नः ॥ अरण्ये मुनिभिर्जुष्टे अपनेया भविष्यसि ॥८॥ एवमुक्ता तु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत् ॥९॥ वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥ गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे ॥ १० ॥ इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणान्यहम् ॥ वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च ॥ ११ ॥ ॥

तत इत्यादि ॥ १ ॥ सारथ इति ॥ स्वास्तीर्णमिति । सीतायाश्च शुभमासनं राजभवनादानीय स्वास्तीर्णं रथं कुरु ॥ २ ॥ कुत इत्यत्राह–सीता हीत्यादि ॥ ३ ॥ सुमन्त्र इति ॥ सुरुचिरप्रख्यं सुन्दरशोभम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम् ॥ प्रययौ शीघ्रतुरगै रामस्याज्ञामनुस्मरन् ॥ १२ ॥ अब्रवीच्च तदा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥ अशुभानि बहून्येव पश्यामि रघुनन्दन ॥ १३ ॥ नयनं मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते ॥ हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये ॥ १४ ॥ औत्सुक्यं परमं चापि अधृतिश्च परा मम ॥ शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन ॥ १५ ॥ अपि स्वस्ति भवेत्तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृवत्सल ॥ श्वश्रूणां चैव मे वीर सर्वासामविशेषतः ॥ १६ ॥ पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ॥ इत्यञ्जलिकृता सीता देवता अभ्ययाचत ॥ १७ ॥ लक्ष्मणोर्थं तु तं श्रुत्वा शिरसावन्द्य मैथिलीम् ॥ शिवमित्यब्रवीद्धृष्टो हृदयेन विशुष्यता ॥ १८ ॥ ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ॥ प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत् ॥ १९ ॥ योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम् ॥ शिरसा धारयिष्यामि त्र्यम्बकः पर्वते यथा ॥ २० ॥ सोश्वान्रज्ज्वाऽथ चतुरो रथे युङ्क्त्वा मनोजवान् ॥ आरोहस्वेति वैदेहीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ २१ ॥ सा तु सूतस्य वचनादारुरोह रथोत्तमम् ॥ सीता सौमित्रिणा सार्धं सुमन्त्रेण च धीमता ॥ २२ ॥ आससाद विशालाक्षी गङ्गां पापविनाशिनीम् ॥ अथार्धदिवसं गत्वा भागीरथ्या जलाशयम् ॥ २३ ॥ निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्ररुरोद महास्वनः ॥ २४ ॥ सीता तु परमायत्ता दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम् ॥ उवाच वाक्यं धर्मज्ञा किमिदं रुद्यते त्वया ॥ २५ ॥ जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ॥ हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥ २६ ॥ ॥ ॥

॥१२॥१३॥ नयनमिति ॥ हृदयं मनः ॥१४॥ औत्सुक्यमिति ॥ औत्सुक्यं पुण्याश्रमदर्शनविषयजम् । शून्यां सुखशून्याम् ॥१५॥१६॥ पुर इति ॥ अञ्जलिकृता कृताञ्जलिः ॥१७॥ लक्ष्मण इति ॥ तमर्थमिति । दुर्निमित्तरूपं वस्त्वित्यर्थः । हृष्टः हृष्ट इव ॥१८॥१९॥ योजयस्वेति ॥ शिरसा धारयिष्यामि त्र्यम्बकः पर्वते यथेति । दृष्टान्ते रुद्रोपि स्नानार्थमेव गङ्गां दधारेति गम्यते ॥२०॥२१॥२२॥ आससादेति ॥ जलाशयं जलप्रवाहम् ॥२३॥२४॥२५॥२६ ॥

नित्यमिति ॥ पार्श्वेष्विति पूजायां बहुवचनम् । शोकमागतः कच्चिदित्यन्वयः ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥

नित्यं त्वं रामपार्श्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ॥ कच्चिद्विनाकृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥ २७ ॥ ममापि दयितो रामो जीवितादपि लक्ष्मण ॥ न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥ २८ ॥ तारयस्व च मां गङ्गां दर्शयस्व च तापसान् ॥ ततो मुनिभ्यो दास्यामि वासांस्याभरणानि च ॥ २९ ॥ ततः कृत्वा महर्षीणां यथावदभिवादनम् ॥ तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥ ३० ॥ ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम् ॥ त्वरते हि मनो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम् ॥ ३१ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रमृज्य नयने शुभे ॥ नाविकानाह्वयामास लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ३२ ॥ इयं च सीता नौश्चेति दाशाः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ तितीर्षुर्लक्ष्मणो गङ्गां शुभां नावमुपारुहत् ॥ गङ्गां संतारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः ॥ ३४ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

अथ नावं सुविस्तीर्णां नैषादीं राघवानुजः ॥ आरुरोह समायुक्तां पूर्वमारोप्य मैथिलीम् ॥ १ ॥ सुमन्त्रं चैव सरथं स्थीयतामिति लक्ष्मणः ॥ उवाच शोकसंतप्तः प्रयाहीति च नाविकम् ॥ २ ॥ ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः ॥ उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंप्लुतः ॥ ३ ॥ हृद्गतं मे महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता ॥ अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

अथेत्यादि ॥ निषादस्य गुहस्येयं नैषादी ताम् । समायुक्तां सज्जीकृताम् ॥ १ ॥ सुमन्त्रमिति ॥ स्थीयतामिति । गङ्गातीर एवेति शेषः ॥ २ ॥ तत इति ॥ तीरं दक्षिणतीरमित्यर्थः ॥ ३ ॥ हृद्गतमित्यादि ॥ हे वैदेहि, यस्मिन्निमित्ते यत्कृत्यानुष्ठानतः अहं लोकस्य वचनीकृतः वचनीयः कृतः । यलोप आर्षः । निन्द्यः संपादितो भवेयम् । अस्मिन्निमित्ते धीमता सर्वज्ञेन आर्येण यद्यस्मादहं नियुक्तः तेन हेतुना मे महच्छल्यं हृद्गतम् ॥ ४ ॥ ॥

श्रेय इति ॥ एवं हृच्छल्यं प्राप्तवतो मे मृत्युः मरणं हि वा यत् यदि स्यात्। अद्य तदेव मे परं श्रेयो भवेत् । न चेत्यादि । ईदृशे लक्ष्मणो निर्घृण इति लोकनिन्द्ये अस्मिन् वक्ष्यमाणरूपे कार्ये न चाहं नियोज्योस्मि नियोक्तुमर्होस्मि। तथा विनियुक्तस्य कार्यस्य सर्वथैव कर्तव्यत्वादिति शेषः। अतः प्रसीदेत्यादि योज्यम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ रुदन्तमिति ॥ मृत्युं काङ्क्षन्तम्। परमहृच्छल्यवशादिति शेषः ॥ ७ ॥ किमिदमिति ॥ नावगच्छामि एवं रोदनादेर्हेतुमिति शेषः । महीपतेः रामस्य क्षेममपि सुखमपि न पश्यामि ॥ ८ ॥ शापित इति ॥ यस्मात्त्वमेवं संतापमागतः तस्मात्त्वं नरेन्द्रेणैव

श्रेयो हि मरणं मेद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत् ॥ न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥५॥ प्रसीद च न
मे पापं कर्तुमर्हसि शोभने ॥ इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥ ६ ॥ रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः ॥
मैथिली भृशसंविग्ना लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥७॥ किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण ॥
पश्यामि त्वां नच स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः ॥ ८ ॥ शापितोसि नरेन्द्रेण यत्त्वं संतापमागतः ॥ तद्ब्रूयाः सन्निधौ
मह्यमहमाज्ञापयामि ते ॥ ९ ॥ वैदेह्या चोद्यमानस्तु लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ अवाङ्मुखो बाष्पकलं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १० ॥
श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम् ॥ पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे ॥ रामः संतप्तहृदयो
मां निवेद्य गृहं गतः ॥११॥ न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः ॥ यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षात्पृष्ठतः
कृतः ॥ १२ ॥ सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम सन्निधौ ॥ पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ॥ १३ ॥

शापितोसि। मह्यं मम। आज्ञापयामि । त इति । त्वामित्यर्थः ॥९॥१०॥ श्रुत्वेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ त्वत्कृते अपवादं श्रुत्वा सा त्वं त्यक्तेत्यन्वयः॥ ११ ॥ कोयमपवाद इत्यत्राह–न तानीति ॥ यानि वचनानि राज्ञा अमर्षात् हृदि न्यस्तानि तानि तवाग्रतो मया न वचनीयानि वक्तुमशक्यानि । अत एवामर्षः मया पृष्ठतः कृतः। नोपन्यस्त इत्यर्थः ॥ १२ ॥ सा त्वमिति ॥ तथापि ते तव विषये। पौरापवादभीतेन राज्ञा यदादिष्टं तन्मया च ग्राह्यम्। नान्यथा न तु त्वयि दोषबुद्ध्येत्यर्थः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

ततः किमित्यत्राह—आश्रमान्तेष्विति ॥ तदेवं किल दौर्हृदं गर्भः । गर्भिण्या अभिलषितमवश्यं कार्यम् । तस्मादप्याश्रमान्तेषु त्यक्तव्येत्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ राज्ञ इति ॥ परमकः परमानुकम्पावान् ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने

आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ॥ राज्ञः शासनमाज्ञाय तवेदं किल दौर्हृदम् ॥ १४ ॥ तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ॥ पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ॥ १५ ॥ राज्ञो दशरथस्येष्टः पितुर्मे मुनिपुङ्गवः ॥ सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ॥ १६ ॥ पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ॥ उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥ १७ ॥ पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि ॥ श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥ १८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ ॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा ॥ परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥ १ ॥ सा मुहूर्तमिवासंज्ञा वाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥ २ ॥ मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ॥ धात्रा यस्यास्तथा मेद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥ ३ ॥ किन्नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः ॥ याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥ ४ ॥ पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी ॥ अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी ॥ ५ ॥ सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता ॥ आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥ ६ ॥ किन्नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म वा सत्कृतं च किम् ॥ कस्मिंश्चित्कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥ ७ ॥ ॥

उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

लक्ष्मणस्येति ॥ १ ॥ सेति ॥ वाष्पव्याकुलितेक्षणेत्यनेन पुनः संज्ञाप्राप्तिः सूचिता ॥ २ ॥ मामिकेति ॥ मामिकेयं तनुः धात्रा दुःखायैव सृष्टा । यस्मात्कारणात् यस्या मे दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥ ३ ॥ ४ ॥ पुरेति ॥ अनुरुध्यापि सोढ्वापि ॥ ५ ॥ सेति ॥ विजनीकृता इष्टजनविरहिता कृता ॥ ६ ॥ ७ ॥

न खल्विति ॥ त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते इत्युत्तरार्धपाठः । अत्यागकारणमुच्यते । राजवंशः राजसन्तानः । परिहास्यते विच्छिद्यते । मयि गर्भस्य विद्यमानत्वादिति शेषः । मया देहो धर्तव्य इति भावः । यद्वा । त्यजेयं राघवं वंशे भर्तुर्मा परिहास्यतीति पाठः । रामकृतक्रौर्यादद्यैव जाह्नवीजले जीवस्त्यक्तव्यः । तथापि तं न त्यजेयम् । कुतो भर्तुर्वंशे निष्कलङ्के राघवमेकं मा परिहास्यति मा परिहसतु । व्यत्ययस्त्वार्षः । जीवितत्यागे स्त्रीहत्यामूलोपवादः रामस्य स्यादिति भावः । अद्यैवेत्यनेन प्रसवानन्तरन्तु त्याज्यमेवेत्यर्थः ॥ ८ ॥ त्वन्तु राजशासनं कुर्वित्याह—यथाज्ञमिति ॥ ९ ॥ श्वश्रूणामिति । चरणौ आवन्द्येति ॥ मदर्थमिति शेषः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ अहमिति ॥ अयशोभीरुणैव त्वया त्यक्ता अनाथेवेत्यर्थः । वचनीयं जुगुप्सनम् । तन्मया परिहर्तव्यम् । त्वदाज्ञया वनस्थल इति शेषः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ॥ त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥ ८ ॥ यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् ॥ निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥ श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च ॥ शिरसावन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम् ॥ १० ॥ शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण ॥ वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः ॥ ११ ॥ जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव ॥ भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः ॥ १२ ॥ अहं त्यक्ता त्वया वीर अयशोभीरुणा जने ॥ यच्च ते वचनीयं स्यादपवादसमुत्थितम् ॥ मया हि परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ॥ १३ ॥ वक्तव्यश्चेति नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥ यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ॥ १४ ॥ परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥ १५ ॥ यत्तु पौरजनो राजन् धर्मेण समवाप्नुयात् ॥ अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥ १६ ॥ यथापवादं पौराणां तथैव रघुनन्दन ॥ पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥ १७ ॥ ॥ ॥

प्राणैरिति ॥ ऋतुकालातिवर्तिनीं गर्भलक्षणवतीम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥

प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः ॥ इति मद्वचनाद्रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ॥ निरीक्ष्य माऽद्य गच्छ
त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् ॥१८॥ एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ शिरसावन्द्य धरणीं व्याहर्तुं न शशाक
ह ॥ १९ ॥ प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्नेव महास्वनः ॥ ध्यात्वा मुहूर्तं तामाह किं मां वक्ष्यसि शोभने ॥
॥ २० ॥ दृष्टपूर्वन्न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ॥ कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ॥ २१ ॥ इत्युक्का तां
नमस्कृत्य पुनर्नावमुपारुहत् ॥ आरुह्य च पुनर्नावं नाविकं चाभ्यचोदयत् ॥ २२ ॥ स गत्वा चोत्तरं तीरं शोकभारसमन्वितः
॥ सम्मूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहद् द्रुतम् ॥ २३ ॥ मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत् ॥ चेष्टन्तीं
परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ॥ २४ ॥ दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ॥ निरीक्षमाणां तूद्विग्नां
सीतां शोकः समाविशत् ॥ २५ ॥ सा दुःखभारावनता यशस्विनी यशोधना नाथमपश्यती सती ॥ रुरोद
सा बर्हिणनादिते वने महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥ २६ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥
सीतां रुदन्तीं दृष्ट्वा तां तत्र वै मुनिदारकाः ॥ प्राद्रवन्यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधीः ॥ १ ॥ अभिवाद्य मुनेः
पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ॥ सर्वं निवेदयामासुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥ अदृष्टपूर्वा भगवन् कस्याप्येषा
महात्मनः ॥ पत्नी श्रीरिव संमोहाद्विरौति विकृतानना ॥ ३ ॥ भगवन्साधु पश्य त्वं देवतामिव खाच्च्युताम् ॥
नद्यास्तु तीरे भगवन् वरस्त्री कापि दुःखिता ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

सीतां त्वित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ सर्वं निवेदयामासुरित्येतद्विवृणोति–अदृष्टेत्यादि ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ॥

दृष्टेति ॥ अनर्हेति । दुःखस्येति शेषः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ आयान्तीति ॥ कारणमिति । आगमनकारणमित्यर्थः ॥ १२ ॥

दृष्टास्माभिः प्ररुदितां दृढं शोकपरायणा ॥ अनर्हां दुःखशोकाभ्यामेकां दीनां ह्यनाथवत् ॥ ५ ॥ न ह्येनां मा-
नुषीं विद्मः सत्क्रियास्याः प्रयुज्यताम् ॥ आश्रमस्याविदूरे च त्वामियं शरणं गता ॥ त्रातारमिच्छते साध्वी
भगवंस्त्रातुमर्हसि ॥ ६ ॥ तेषां तु वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित् ॥ तपसा लब्धचक्षुष्मान् प्राद्रवद्यत्र
मैथिली ॥ ७ ॥ तं प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या ह्येनं महामतिम् ॥ तं तु देशमभिप्रेत्य किंचित्पद्भ्यां महामतिः ॥ ८ ॥
अर्घ्यमादाय रुचिरं जाह्नवीतीरमागमत् ॥ ददर्श राघवस्येष्टां सीतां पत्नीमनाथवत् ॥ ९ ॥ तां सीतां शोकभारा-
र्तां वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥ उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥ १० ॥ स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महि-
षी प्रिया ॥ जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥ ११ ॥ आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना ॥
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥ १२ ॥ तव चैव महाभागे विदितं मम तत्त्वतः ॥ सर्वं च विदितं मह्यं
त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १३ ॥ अपापां वेद्मि सीते त्वां तपोलब्धेन चक्षुषा ॥ विस्रब्धा भव वैदेहि साम्प्रतं मयि
वर्तसे ॥ १४ ॥ आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः ॥ तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः
॥ १५ ॥ इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वरा ॥ यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा
तु भाषितं सीता मुनेः परममद्भुतम् ॥ शिरसावन्द्य चरणौ तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥ १७ ॥ तं प्रयान्तं मुनिं सीता
प्राञ्जलिः पृष्ठतोन्वगात् ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

तव चैवेति ॥ शुद्धभावत्वमिति शेषः । मम मया । मह्यं मम ॥ १३ ॥ अपापामिति ॥ मयि वर्तस इति । मत्समीपे निवसिष्यसीत्यर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥
इदमिति ॥ यथा स्वगृहमभ्येत्येति । तथैवावतिष्ठस्वेति शेषः ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ ॥

तमिति ॥ मुदा युक्ता इति । मुनिपत्नयः तापस्यः । अन्वब्रुवन्निति । वाल्मीकिमिति शेषः ॥ १९ ॥ स्वागतमिति ॥ चिरस्यागमनमिति । प्रतीक्ष्य स्थिता वयम् अभिवादयामहे । एतेन सीतायाः समाश्वासादिना विलम्बो जात इत्यवगम्यते ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ मुहुरिति ॥ प्रणिधाय तापसीनां हस्ते दत्त्वा ॥ २४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

तं दृष्ट्वा मुनिमायान्तं वैदेह्या मुनिपत्नयः ॥ उपाजग्मुर्मुदा युक्ता वचनं चेदमब्रुवन् ॥ १९ ॥ स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमनं च ते ॥ अभिवादयामस्त्वां सर्वा उच्यतां किं च कुर्महे ॥ २० ॥ तासां तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिरिदमब्रवीत् ॥ सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥ २१ ॥ स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती ॥ अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥ २२ ॥ इमां भवन्त्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि ॥ गौरवान्मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः ॥ २३ ॥ मुहुर्मुहुश्च वैदेहीं प्रणिधाय महायशाः ॥ स्वमाश्रमं शिष्यवृतः पुनरायान्महातपाः ॥ २४ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ ॥

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे संप्रवेशिताम् ॥ संतापमगमद्घोरं लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १ ॥ अब्रवीच्च महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रसारथिम् ॥ सीतासंतापजं दुःखं पश्य रामस्य सारथे ॥२॥ ततो दुःखतरं किंनु राघवस्य भविष्यति॥ पत्नीं शुद्धसमाचारां विसृज्य जनकात्मजाम् ॥ ३ ॥ व्यक्तं दैवादहं मन्ये राघवस्य विनाभवम् ॥ वैदेह्या सारथे नित्यं दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥४॥ यो हि देवान्त्सगन्धर्वानसुरान्सह राक्षसैः ॥ निहन्याद्राघवः क्रुद्धः स दैवमनुवर्तते॥५॥ पुरा रामः पितुर्वाक्याद्दण्डके विजने वने ॥ उषित्वा नव वर्षाणि पञ्च चैव महावने ॥ ६ ॥ ॥

दृष्ट्वा त्वित्यादि ॥ १ ॥ अब्रवीदिति ॥ मन्त्रसहायभूतः सारथिर्मन्त्रसारथिः । सीतासंतापजं सीताविरहसंतापजमित्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ व्यक्तमिति ॥ विनाभवं सीतावियोगेनावस्थानं वैदेह्या सार्धं विनाभवमित्यर्थः । दैवात्प्राग्भवाददृष्टादित्यर्थः ॥ ४ ॥ य इति ॥ दैवमनुवर्तते न तु तन्निरसितुं शक्नोतीत्यर्थः ॥ ५॥६॥

तत इति ॥ ततः सीतायाः विप्रवासनं नृशंसं क्रूरकृत्यमिति प्रतिभाति ॥ ७ ॥ को न्विति ॥ हीनार्थवादिभिः पौरैर्हेतुभिः । मैथिलीं प्रति यशोहरे साध्वीं वने विसृष्टवानिति अपयशस्करेस्मिन् कर्मणि सीतापरित्यागरूपकर्मण्यनुष्ठिते सति कोनु धर्माश्रयः धर्मपरिग्रहः रामेण संप्राप्तः । प्रत्युत साध्वीत्यागादधर्म एव स्यादिति भावः ॥ ८ ॥ ९ ॥ नेति ॥ दृष्टमिति । हे लक्ष्मण, पुरा तव पितुरग्रतः अल्पभाग्यवान् रामः दुःखप्रायो भविष्यतीत्येतद्दृष्टं दृष्ट्वा मह्यमुक्तमित्यर्थः । फलितमाह—प्राप्स्यत इति ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ इदमिति ॥ इदं रहस्यं त्वयि भरते वा न वक्तव्यम् । इदंशब्दार्थमाह—राज्ञेति । राज्ञा दशरथेन । वः तदिदं त्वयि भरतेपि न वक्तव्यमित्यर्थः ॥ १३ ॥ दुर्वाससो वचनं कथं त्वयावगतमित्यत्राह—महाजनेति ॥ महाजनसमीपे दशरथसमीप इत्यर्थः । मम वसिष्ठस्य च सन्निधौ । ऋषिणा दुर्वाससा वाक्यं व्याहृतम् । त्रिभिरेवेदं वृत्तं ज्ञातमिति भावः ॥ १४ ॥ ऋषेरिति ॥ एवं ते त्वया श्रुतं रहस्यमित्यर्थः ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥

ततो दुःखतरं भूयः सीताया विप्रवासनम् ॥ पौराणं वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ॥ ७ ॥ को नु धर्माश्रयः सूत कर्मण्यस्मिन्यशोहरे ॥ मैथिलीं प्रति संप्राप्तः पौरैर्हीनार्थवादिभिः ॥ ८ ॥ एता वाचो बहुविधाः श्रुत्वा लक्ष्मणभाषिताः ॥ सुमन्त्रः श्रद्धया प्राज्ञो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥ न संतापस्त्वया कार्यः सौमित्रे मैथिलीं प्रति ॥ दृष्टमेतत्पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणाग्रतः ॥ १० ॥ भविष्यति दृढं रामो दुःखप्रायोपि सौख्यभाक् ॥ प्राप्स्यते च महाबाहुर्विप्रयोगं प्रियैर्ध्रुवम् ॥ ११ ॥ त्वां चैव मैथिलीं चैव शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥ संत्यजिष्यति धर्मात्मा कालेन महता महान् ॥ १२ ॥ इदं त्वयि न वक्तव्यं सौमित्रे भरतेपि वा ॥ राज्ञा वो व्याहृतं वाक्यं दुर्वासा यदुवाच ह ॥ १३ ॥ महाजनसमीपे च मम चैव नरर्षभ ॥ ऋषिणा व्याहृतं वाक्यं वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ १४ ॥ ऋषेस्तु वचनं श्रुत्वा मामाह पुरुषर्षभः ॥ सूत न क्वचिदेवं ते वक्तव्यं जनसन्निधौ ॥ १५ ॥ ॥ ॥

तस्येति ॥ समाहितं सम्यग्गुप्तम् तस्य वाक्यं मया जातु अनृतं न कार्यमिति मम दर्शनं मतम् । तस्मात् त्वयि भरते च न वक्तव्यमिति भावः॥१६॥ सर्वथैवेति ॥ न वक्तव्यमिति। राजरहस्यमिति शेषः । तवातिश्रद्धारहितस्य ॥ १७ ॥ यद्यपीति ॥ तथाप्यप्रकाश्यस्यापि प्रकाशने हेतुमाह—दैवं हि दुरतिक्रममिति । हि यस्माद्दैवं प्राचीनं कर्म दुरतिक्रमं तस्मादित्यर्थः ॥ १८ ॥ दुरतिक्रमे हेतुः—येनेदमिति ॥ एवं भवद्दुःखातिशयदर्शनात् श्रद्धालवे

तस्याहं लोकपालस्य वाक्यं तत्सुसमाहितः ॥ नैव जात्वनृतं कार्यमिति मे सौम्य दर्शनम् ॥ १६ ॥ सर्वथैव न वक्तव्यं
मया सौम्य तवाग्रतः ॥ यदि ते श्रवणे श्रद्धा श्रूयतां रघुनन्दन ॥ १७ ॥ यद्यप्यहं नरेन्द्रेण रहस्यं श्रावितः
पुरा ॥ तथाप्युदाहरिष्यामि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ १८ ॥ येनेदमीदृशं प्राप्तं दुःखं शोकसमन्वितम् ॥ न त्वया
भरते वाच्यं शत्रुघ्नस्यापि सन्निधौ ॥ १९ ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गम्भीरार्थपदं महत् ॥ तथ्यं ब्रूहीति सौमित्रिः
सूतं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ॥
तथा संचोदितः सूतो लक्ष्मणेन महात्मना ॥ तद्वाक्यमृषिणा प्रोक्तं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ पुरा नाम्ना हि दुर्वासा
अत्रेः पुत्रो महामुनिः ॥ वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये वार्षिक्यं समुवास ह ॥ २ ॥ तमाश्रमं महातेजाः पिता ते
सुमहायशाः ॥ पुरोहितं महात्मानं दिदृक्षुरगमत्स्वयम् ॥ ३ ॥ स दृष्ट्वा सूर्यसंकाशं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ उपविष्टं
वसिष्ठस्य सव्यपार्श्वे महामुनिम् ॥ ४ ॥ तौ मुनी तापसश्रेष्ठौ विनीतो ह्यभिवादयत् ॥ स ताभ्यां पूजितो
राजा स्वागतेनासनेन च ॥ पाद्येन फलमूलैश्च उवास मुनिभिः सह ॥ ५ ॥ ॥

तुभ्यं मया वक्तव्यमिति भावः ॥ १९ ॥ तदिति ॥ गम्भीरार्थपदमिति । पूर्वोक्तं भाषितम् ॥ २० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ॥ ॥

तथेत्यादि ॥ १ ॥ पुरेति ॥ पुरा वार्षिक्यं वर्षासु भवं चातुर्मास्यनियममुद्दिश्योवास दुर्वासा हीति नाम्ना ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥

तेषामिति ॥ मध्यादित्यगते मध्यगतादित्ययुक्त इत्यर्थः । मध्याह्न इति फलितार्थः ॥६॥ तत इति ॥ प्रग्रहः सविनय इत्यर्थः ॥७॥ भगवन्निति ॥ किंप्रमाणेन
उत ततोप्यधिकप्रमाणेनेत्यर्थः । किमायुश्च मे राम इति ॥८॥९॥१०॥ एवं पृष्टश्चिरायुष्ट्वं दुःखोपेतं शापवशादिति वक्तुं पीठिकामाह—शृणु राजन्नित्यादि

तेषां तत्रोपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ॥ बभूवुः परमर्षीणां मध्यादित्यगतेहनि ॥ ६ ॥ ततः कथायां
कस्यां चित् प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ॥ उवाच तं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् ॥ ७ ॥ भगवन्किं प्रमाणेन म-
म वंशो भविष्यति ॥ किमायुश्च हि मे रामः पुत्राश्चान्ये किमायुषः ॥ ८ ॥ रामस्य च सुता ये स्युस्तेषामायुः
कियद्भवेत् ॥ काम्यया भगवन् ब्रूहि वंशस्यास्य गतिं मम ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं राज्ञो दशरथस्य
च ॥ दुर्वासाः सुमहातेजा व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ शृणु राजन्पुरावृत्तं तदा दैवासुरे युधि ॥ दैत्याः सुरैर्भ-
र्त्स्यमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः ॥ ११ ॥ तया दत्ताभयास्तत्र न्यवसन्नभयास्तदा ॥ १२ ॥ तया परिगृहीतां-
स्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धः सुरेश्वरः ॥ चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ॥ १३ ॥ ततस्तां निहतां दृष्ट्वा प-
त्नीं भृगुकुलोद्वहः ॥ शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं रिपुकुलार्दनम् ॥ १४ ॥ यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोध-
मूर्छितः ॥ तस्मात्त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ॥ १५ ॥ तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्
॥ १६ ॥ शापाभिहतचेताः स स्वात्मना भावितोभवत् ॥ १७ ॥ अर्चयामास तं देवं भृगुः शापेन पीडितः ॥
॥ १८ ॥ तपसाराधितो देवो ह्यब्रवीद्भक्तवत्सलः ॥ लोकानां संप्रियार्थं तु तं शापं ग्राह्यमुक्तवान् ॥ १९ ॥ ॥

॥११॥१२॥१३॥१४॥यस्मादिति॥अवध्यां स्त्रीत्वादृषिपत्नीत्वाच्चेति भावः॥१५॥तत्रेति॥बहुवार्षिकं कालमित्यर्थः॥१६॥ शापेति॥शापाभिहतचेताः प-
श्चात्तापपरीतचित्त इत्यर्थः।स्वात्मना भावितो भगवच्छापनिवृत्त्यर्थं स्वस्वरूपमचिन्तयदित्यर्थः।पुनः शापेन शापमोघभयेन पीडितः सन् भृगुस्तं देवमर्च-
यामास ॥१७॥१८॥ तपसेति॥तं शापं मनुष्यजन्मादिप्रापकं लोकानां संहितार्थं सम्यग्रावणवधरूपहितसंपादनार्थम् । ग्राह्यं परिग्राह्यमेवेत्युक्तवान् ॥१९॥

इतीति ॥ पूर्वजन्मनि काश्यपात् विष्णुसंज्ञकोपेन्द्रावतारे ॥ २० ॥ राम इति ॥ तत्फलं पत्नीवियोगन . . .कालवासरूपम् ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति शप्तो महातेजा भृगुणा पूर्वजन्मनि ॥ इहागतो हि पुत्रत्वं तव पार्थिवसत्तम ॥ २० ॥ राम इत्यभिविख्यातस्त्रिषु लोकेषु मानद ॥ तत्फलं प्राप्स्यते चापि भृगुशापकृतं महत् ॥ २१ ॥ अयोध्यायाः पती रामो दीर्घकालं भविष्यति ॥ सुखिनश्च समृद्धाश्च भविष्यन्त्यस्य येऽनुगाः ॥ २२ ॥ दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥ रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥ २३ ॥ समृद्धैश्चाश्वमेधैश्च इष्ट्वा परमदुर्जयः ॥ राजवंशांश्च बहुशो बहून् संस्थापयिष्यति ॥ २४ ॥ द्वौ पुत्रौ तु भविष्येते सीतायां राघवस्य तु ॥ अन्यत्र न त्वयोध्यायां सत्यमेतन्न संशयः ॥ २५ ॥ सीतायाश्च ततः पुत्रावभिषेक्ष्यति राघवः ॥ २६ ॥ स सर्वमखिलं राज्ञो वंशस्याह गतागतम् ॥ आख्याय सुमहातेजास्तूष्णीमासीन्महामुनिः ॥ २७ ॥ तूष्णींभूते तदा तस्मिन् राजा दशरथो मुनौ ॥ अभिवाद्य महात्मानौ पुनरायात्पुरोत्तमम् ॥ २८ ॥ एतद्वचो मया तत्र मुनिना व्याहृतं पुरा ॥ श्रुतं हृदि च निक्षिप्तं नान्यथा तद्भविष्यति ॥ २९ ॥ एवंगते न संतापं कर्तुमर्हसि राघव ॥ सीतार्थे राघवार्थे वा दृढो भव नरोत्तम ॥३०॥ श्रुत्वा तु व्याहृतं वाक्यं सूतस्य परमाद्भुतम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ ततः संवदतोरेवं सूतलक्ष्मणयोः पथि ॥ अस्तमर्के गते वासं केशिन्यां तावथोषतुः ॥ ३२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ २५ ॥ सीताया इति ॥ स सर्वमिति । स दुर्वासा इत्यर्थः ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥

तत्रेत्यादि ॥ तत्र पथीत्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४॥५॥ स इति ॥ नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामुपलक्षितमग्रजम् ॥६॥७॥८॥ तत्रेति ॥ पादमूलं तवेतिशेषः ॥

तत्र तां रजनीमुष्य केशिन्यां रघुनन्दनः ॥ प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मणः प्रययौ तदा ॥ १ ॥ ततोर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथः ॥ अयोध्यां रत्नसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनावृताम् ॥ २ ॥ सौमित्रिस्तु परं दैन्यं जगाम सुमहामतिः ॥ रामपादौ समासाद्य वक्ष्यामि किमहं गतः ॥ ३ ॥ तस्यैवं चिन्तयानस्य भवनं शशिसन्निभम् ॥ रामस्य परमोदारं पुरस्तात्समदृश्यत ॥ ४ ॥ राज्ञस्तु भवनद्वारि सोवतीर्य रथोत्तमात् ॥ अवाङ्मुखो दीनमनाः प्रविवेशानिवारितः ॥ ५ ॥ स दृष्ट्वा राघवं दीनमासीनं परमासने ॥ नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः ॥ ६ ॥ जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ उवाच दीनया वाचा प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ ७ ॥ आर्यस्याज्ञां पुरस्कृत्य विसृज्य जनकात्मजाम् ॥ गङ्गातीरे यथोद्दिष्टे वाल्मीकेराश्रमे शुचौ ॥ ८ ॥ तत्र तां च शुभाचारामाश्रमान्ते यशस्विनीम् ॥ पुनरप्यागतो वीर पादमूलमुपासितुम् ॥ ९ ॥ मा शुचः पुरुषव्याघ्र कालस्य गतिरीदृशी ॥ त्वद्विधा न हि शोचन्ति बुद्धिमन्तो मनस्विनः ॥ १० ॥ सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ॥ संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ ११ ॥ तस्मात्पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च ॥ नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम् ॥ १२ ॥ शक्तस्त्वमात्मनात्मानं विनेतुं मनसैव हि ॥ लोकान्सर्वांश्च काकुत्स्थ किं पुनः शोकमात्मनः ॥ १३ ॥ नेदृशेषु विमुह्यन्ति त्वद्विधाः पुरुषर्षभाः ॥ अपवादः स किल ते पुनरेष्यति राघव ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥९॥१०॥११॥ तस्मादिति ॥ अतिप्रसङ्गः अत्यासक्तिः ॥ १२ ॥ शक्तस्त्वमात्मनात्मानं विनेतुं मनसैव हीति ॥ आत्मना स्वयमेव मनसैव करणेनात्मानं स्वात्मानं लोकांश्च विनेतुं शिक्षितुं शक्तः। सांसारिकदुःखाद्वारयितुमित्यर्थः॥१३॥नेदृशेष्विति ॥ अपवादः पुनरेष्यति प्रकारान्तरेणेति शेषः॥१४॥

तदेवोपपादयति–यदर्थमिति ॥ हे नृप, परीवादभयाद्भीतेन त्वया यदर्थं यदपवादपरिहारार्थम् मैथिली त्यक्ता सोपवादः पुनः प्रकारान्तरेण भविष्यति। सीतामपवादात्त्यक्त्वा पुनः शोचति। तस्मात्तस्यामतिमात्रोयं कामुकस्य रामस्यानुराग इति पुनरप्यपवादो भविष्यतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

यदर्थं मैथिली त्यक्ता अपवादभयान्नृप ॥ सोपवादः पुरे राजन् भविष्यति न संशयः ॥ १५ ॥ स त्वं पुरुषशार्दूल धैर्येण सुसमाहितः ॥ त्यजैनां दुर्बलां बुद्धिं संतापं मा कुरुष्व ह ॥ १६ ॥ एवमुक्तः स काकुत्स्थो लक्ष्मणेन महात्मना ॥ उवाच परया प्रीत्या सौमित्रिं मित्रवत्सलः ॥ १७ ॥ एवमेतन्नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण ॥ परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने ॥ १८ ॥ निर्वृतिश्चागता सौम्य संतापश्च निराकृतः ॥ भवद्वाक्यैः सुरुचिरैरनुनीतोस्मि लक्ष्मण ॥ १९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं निशम्य परमाद्भुतम् ॥ सुप्रीतश्चाभवद्रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ दुर्लभस्त्वीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः ॥ यादृशस्त्वं महाबुद्धे मम सौम्य मनोनुगः ॥ २ ॥ यच्च मे हृदयं किंचिद्वर्तते शुभलक्षण ॥ तन्निशामय च श्रुत्वा कुरुष्व वचनं मम ॥ ३ ॥ चत्वारो दिवसाः सौम्य कार्यं पौरजनस्य वै ॥ अकुर्वाणस्य सौमित्रे तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ ४ ॥ आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ॥ कार्यार्थिनश्च पुरुषाः स्त्रियो वा पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥ पौरकार्याणि यो राजा न करोति दिने दिने ॥ संवृते नरके घोरे पतितो नात्र संशयः ॥ ६ ॥ श्रूयते हि पुरा राजा नृगो नाम महायशाः ॥ बभूव पृथिवीपालो ब्रह्मण्यः सत्यवाक् शुचिः ॥ ७ ॥

एवमिति ॥ कार्यानुशासने गङ्गातीरत्यागरूपे त्वत्कृते ॥ १८ ॥ निर्वृतिरिति ॥ निर्वृतिः सुखम् ॥ १९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ ॥

लक्ष्मणस्येत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ आहूयन्तामिति ॥ स्त्रियश्चेति। कार्यार्थिन्य इत्यनुषज्यते ॥ ५ ॥ पौरेति ॥ पतितः स्वकर्मणेति शेषः। स मृतो

स कदाचिद्गवां कोटीः सवत्साः स्वर्णभूषिताः ॥ नृदेवो भूमिदेवेभ्यः पुष्करेषु ददौ नृपः ॥ ८ ॥ ततः सङ्गाद्गता धेनुः सवत्सा स्पर्शितानघ ॥ ब्राह्मणस्याहिताग्नेश्च दरिद्रस्योञ्छवर्तिनः ॥ ९ ॥ स नष्टां गां क्षुधार्तो वै अन्विष्यंस्तत्र तत्र च ॥ नापश्यत्सर्वराज्येषु संवत्सरगणान्बहून् ॥ १० ॥ ततः कनखलं गत्वा जीर्णवत्सां निरामयाम् ॥ ददर्श गां स्वकां धेनुं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ ११ ॥ अथ तां नामधेयेन स्वकेनोवाच स द्विजः ॥ आगच्छ शबलेत्येवं सा तु शुश्राव गौः स्वरम् ॥ १२ ॥ तस्य तु स्वरमाज्ञाय क्षुधार्तस्य द्विजस्य वै ॥ अन्वगात्पृष्ठतः सा गौर्गच्छन्तं पावकोपमम् ॥ १३ ॥ योपि पालयते विप्रः सोपि गामन्वगाद्द्रुतम् ॥ गत्वा तमृषिमाचष्ट मम गौरिति सत्वरम् ॥ १४ ॥ स्पर्शिता राजसिंहेन मम दत्ता नृगेण ह ॥ तयोर्ब्राह्मणयोर्वादो महानासीद्विपश्चितोः ॥ १५ ॥ विवदन्तौ ततोन्योन्यं दातारमभिजग्मतुः ॥ तौ राजभवनद्वारि न प्राप्तौ नृगशासनम् ॥ १६ ॥ अहोरात्राण्यनेकानि वसन्तौ क्रोधमीयतुः ॥ ऊचतुश्च महात्मानौ तावुभौ द्विजसत्तमौ ॥ क्रुद्धौ परमसंतप्तौ वाक्यं घोराभिसंहितम् ॥ १७ ॥ अर्थिनां कार्यसिद्ध्यर्थं यस्मात्त्वं नैषि दर्शनम् ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां कृकलासो भविष्यसि ॥ १८ ॥ बहुवर्षसहस्राणि बहुवर्षशतानि च ॥ श्वभ्रेस्मिन्कृकलासो वै दीर्घकालं वसिष्यसि ॥ १९ ॥ उत्पत्स्यते हि लोकेस्मिन्यदूनां कीर्तिवर्धनः ॥ वासुदेव इति ख्यातो लोके पुरुषविग्रहः ॥ २० ॥ स ते मोक्षयिता राजंस्तस्माच्छापाद्भविष्यति ॥ कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ॥ २१ ॥ भारावतरणार्थं हि नरनारायणावुभौ ॥ उत्पत्स्येते महावीर्यौ कलौ युग उपस्थिते ॥ २२ ॥ ॥

नरके घोरे पात्यते नात्र संशय इति च पाठः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ तत इति ॥ सङ्गात् राज्ञा दत्तबहुगोसङ्गात् ॥ ९ ॥ १० ॥ तत इति ॥ कनखलं कनखलाख्यग्रामम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ स्पर्शितेति ॥ स्पर्शिता दत्ता ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ अर्थिनामिति ॥ कृकलासः सरठः ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ स इति ॥ निष्कृतिः शापमोक्षः ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमिति ॥ ब्राह्मणाय कस्मैचित् अन्यस्मा इत्यर्थः ॥२३॥२४॥ कार्यार्थिनामिति ॥ विमर्दः कलहः । अभिवर्तन्तामागच्छन्तु । कार्यिणः कार्यार्थिनः। अभिवर्तन्तु काङ्क्षिण इति पाठः ॥ २५ ॥ २६ ॥ इति श्रीगो॰ विरचिते श्रीरा॰ मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने त्रिपञ्चाशः सर्गः॥५३॥

एवं तौ शापमुत्सृज्य ब्राह्मणौ विगतज्वरौ ॥ तां गां हि दुर्बलां वृद्धां ददतुर्ब्राह्मणाय वै ॥ २३ ॥ एवं स राजा तं शापमुपभुङ्क्ते सुदारुणम् ॥ २४ ॥ कार्यार्थिनां विमर्दो हि राज्ञां दोषाय कल्पते ॥ तच्छीघ्रं दर्शनं मह्यमभिवर्तन्तु कार्यिणः ॥ २५ ॥ सुकृतस्य हि कार्यस्य फलं नावैति पार्थिवः ॥ तस्माद्गच्छ प्रतीक्षस्व सौमित्रे कार्यवान् जनः ॥ २६ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परमार्थवित् ॥ उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥ अल्पापराधे काकुत्स्थ द्विजाभ्यां शाप ईदृशः ॥ महान्नृगस्य राजर्षेर्यमदण्ड इवापरः ॥ २ ॥ श्रुत्वा तु पापसंयुक्तमात्मानं पुरुषर्षभ ॥ किमुवाच नृगो राजा द्विजौ क्रोधसमन्वितौ ॥ ३ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राघवः पुनरब्रवीत् ॥ शृणु सौम्य यथापूर्वं स राजा शापविक्षतः ॥ ४ ॥ अथाध्वनि गतौ विप्रौ विज्ञाय स नृगस्तदा ॥ आहूय मन्त्रिणः सर्वान्नैगमान्त्सपुरोधसः ॥ ५ ॥ तानुवाच नृगो राजा सर्वाश्च प्रकृतीस्तथा ॥ दुःखेन सुसमाविष्टः श्रूयतां मे समाहितैः ॥ ६ ॥ नारदः पर्वतश्चैव मम दत्त्वा महद्भयम् ॥ गतौ त्रिभुवनं भद्रौ वायुभूतावनिन्दितौ ॥७॥

रामस्येत्यादि ॥१॥ अल्पेति ॥ अल्पेप्यपराधे परीक्षार्थमागतत्वात् गोदानद्वारा द्विजाभ्यां नारदपर्वताभ्यां यमदण्ड इव महान् शापो दत्तः ॥२॥३॥ लक्ष्मणेनेति ॥ हे सौम्य, शापविक्षतः सन् स राजा यथापूर्वमुवाच तच्छृण्विति योजना ॥ ४ ॥ अथेति ॥ अध्वनि व्योमाध्वनि गतौ ध्यानेन अमुकाविति विज्ञायेत्यर्थः । नगमान् पौरान् ॥ ५ ॥ तानिति ॥ श्रूयतामिति । वचनमिति शेषः ॥ ६ ॥ नारद इति ॥ त्रिभुवनं ब्रह्मलोकमित्यर्थः ॥ ७ ॥

कुमार इति ॥ श्वभ्रं गर्तः ॥८॥९॥ फलवन्त इति ॥ गुल्मिनः कक्षवृक्षाः ॥१०॥११॥ पुष्पाणीति ॥ पुष्पाणि यथा अध्यर्धं योजनं परिवार्य स्युः तथा क्रियन्तामित्यर्थः ॥१२॥१३॥ प्रत्यक्षमिति ॥ तादृशे अल्पेपीत्यर्थः ॥१४॥ मा कृथा इति ॥ कृतान्तः ईश्वरः॥१५॥प्राप्तव्यानीति ॥ पूर्वे जात्यन्तरे। प्राप्त-

कुमारोयं वसुर्नाम स देवोद्याभिषिच्यताम् ॥ श्वभ्रं च यत्सुखस्पर्शं क्रियतां शिल्पिभिर्मम ॥ यत्राहं संक्षयिष्यामि शापं ब्राह्मणनिःसृतम् ॥ ८ ॥ वर्षघ्नमेकं श्वभ्रं तु हिमघ्नमपरं तथा ॥ ग्रीष्मघ्नन्तु सुखस्पर्शमेकं कुर्वन्तु शिल्पिनः ॥ ९ ॥ फलवन्तश्च ये वृक्षाः पुष्पवन्तयश्च या लताः ॥ विरोप्यन्तां बहुविधाश्छायावन्तश्च गुल्मिनः ॥ ॥ १० ॥ क्रियतां रमणीयं च श्वभ्राणां सर्वतो दिशम् ॥ सुखमत्र वसिष्यामि यावत्कालस्य पर्ययः ॥ ११ ॥ पुष्पाणि च सुगन्धीनि क्रियन्तां तेषु नित्यशः ॥ परिवार्य यथा मे स्युरध्यर्धं योजनं तथा ॥ १२ ॥ एवं कृत्वा विधानं स संदिदेश वसुं तदा ॥ धर्मनित्यः प्रजाः पुत्र क्षत्रधर्मेण पालय ॥ १३ ॥ प्रत्यक्षं ते यथा शापो द्विजाभ्यां मयि पातितः ॥ नरश्रेष्ठ सरोषाभ्यामपराधेपि तादृशे ॥ १४ ॥ मा कृथास्तनुसंतापं मत्कृतेपि नरर्षभ ॥ कृतान्तः कुशलः पुत्र येनास्मि व्यसनीकृतः ॥ १५ ॥ प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति गन्तव्यान्येव गच्छति ॥ लब्धव्यान्येव लभते दुःखानि च सुखानि च ॥१६॥ पूर्वे जात्यन्तरे वत्स मा विषादं कुरुष्व ह॥१७॥ एवमुक्त्वा नृपस्तत्र सुतं राजा महायशाः ॥ श्वभ्रं जगाम सुकृतं वासाय पुरुषर्षभ ॥१८॥ एवं प्रविश्यैव नृपस्तदानीं श्वभ्रं महारत्नविभूषितं तत् ॥ संपादयामास तदा महात्मा शापं द्विजाभ्यां हि रुषा विमुक्तम् ॥१९॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥५४॥

॥

एष ते नृगशापस्य विस्तरोभिहितो मया ॥ यद्यस्ति श्रवणे श्रद्धा शृणुष्वेहापरां कथाम् ॥ १ ॥

व्यान्येव प्राप्नोति गन्तव्यान्येव गच्छति। लब्धव्यान्येव लभते दुःखानि च सुखानि च॥१६॥१७॥१८॥१९॥इति श्रीगो०श्रीरा०म०उत्त०च०सर्गः॥५४॥

॥ ॥ ॥

एष त इत्यादि ॥ इह राजापराधविषये ॥ १ ॥

एवमिति ॥ तृप्तिः कथानां संवन्धिनीत्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ स इति ॥ गौतमस्येति । गौतमाश्रमस्येत्यर्थः ॥ ५ ॥ पुरस्येति ॥ वैजयन्तमिन्द्रप्रासा-

एवमुक्तस्तु रामेण सौमित्रिः पुनरब्रवीत् ॥ तृप्तिराश्चर्यभूतानां कथानां नास्ति मे नृप ॥ २ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु
राम इक्ष्वाकुनन्दनः ॥ कथां परमधर्मिष्ठां व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥ आसीद्राजा निमिर्नाम इक्ष्वाकूणां महात्म-
नाम् ॥ पुत्रो द्वादशमो वीर्ये धर्मे च परिनिष्ठितः ॥ ४ ॥ स राजा वीर्यसंपन्नः पुरं देवपुरोपमम् ॥ निवेशयामास
तदा अभ्याशे गौतमस्य तु ॥ ५ ॥ पुरस्य सुकृतं नाम वैजयन्तमिति श्रुतम् ॥ निवेशं यत्र राजर्षिर्निमिश्चक्रे
महायशाः ॥ ६ ॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य सुमहापुरम् ॥ यजेयं दीर्घसत्रेण पितुः प्रह्लादयन्मनः ॥ ७ ॥
ततः पितरमामन्त्र्य इक्ष्वाकुं हि मनोः सुतम् ॥ वसिष्ठं वरयामास पूर्वं ब्रह्मर्षिसत्तमम् ॥ ८ ॥ अनन्तरं स राज-
र्षिर्निमिरिक्ष्वाकुनन्दनः ॥ अत्रिमाङ्गिरसं चैव भृगुं चैव तपोधनम् ॥ ९ ॥ तमुवाच वसिष्ठस्तु निमिं राजर्षिस-
त्तमम् ॥ वृतोहं पूर्वमिन्द्रेण अन्तरं प्रतिपालय ॥ १० ॥ अनन्तरं महाविप्रो गौतमः प्रत्यपूरयत् ॥ वसिष्ठोपि
महातेजा इन्द्रयज्ञमथाकरोत् ॥ ११ ॥ निमिस्तु राजा विप्रांस्तान्समानीय नराधिपः ॥ अयजद्धिमवत्पार्श्वे
स्वपुरस्य समीपतः ॥ पञ्च वर्षसहस्राणि राजा दीक्षामुपागमत् ॥ १२ ॥ इन्द्रयज्ञावसाने तु वसिष्ठो भगवानृ-
षिः ॥ सकाशमागतो राज्ञो हौत्रं कर्तुमनिन्दितः ॥ १३ ॥ तदन्तरमथापश्यद्गौतमेनाभिपूरितम् ॥ कोपेन मह-
ताविष्टो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ १४ ॥ स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी मुहूर्तं समुपाविशत् ॥ तस्मिन्नहनि राजर्षिर्निद्र-
यापहृतो भृशम् ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दम् । सादृश्यात्तद्व्यपदेशः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ तमिति ॥ प्रतीक्ष प्रतीक्षस्व । प्रतीक्ष त्वं तदन्तरमिति च पाठः । तदनन्तरं त्वां याजयिष्य इति शेषः
॥ १० ॥ अनन्तरमिति ॥ गौतमः प्रत्यपूरयत् । वसिष्ठकर्तव्यं हौत्रमिति शेषः ॥ ११ ॥ निमिरिति ॥ तानत्र्यादीन् ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ स इति ॥

असमाप्तसत्र इति शेषः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ तस्मादिति ॥ चेतनेन विना कृत इति । मृत इत्यर्थः । सुरुचिरप्रख्यः सुरुचिरकान्तिः

ततो मन्युर्वसिष्ठस्य प्रादुरासीन्महात्मनः ॥ अदर्शनेन राजर्षेर्व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥ यस्मात्त्वमन्यं वृतवान्मामवज्ञाय पार्थिव ॥ चेतनेन विना भूतो देहस्तव भविष्यति ॥ १७ ॥ ततः प्रबुद्धो राजर्षिः श्रुत्वा शापमुदाहृतम् ॥ ब्रह्मयोनिमथोवाच संरम्भात्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥ अजानतः शयानस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ॥ मुक्तवान्मयि शापाग्निं यमदण्डमिवापरम् ॥ १९ ॥ तस्मात्तवापि ब्रह्मर्षे चेतनेन विना कृतः ॥ देहः सुरुचिरप्रख्यो भविष्यति न संशयः ॥ २० ॥ इति रोषवशादुभौ तदानीमन्योन्यं शपितौ नृपद्विजेन्द्रौ ॥ सहसैव बभूवतुर्विदेहौ तत्तुल्याधिगतप्रभाववन्तौ ॥ २१ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ॥ उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥ निक्षिप्तदेहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ ॥ पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसम्मतौ ॥ २ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामश्चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ प्रत्युवाच महातेजा लक्ष्मणं पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥ तौ परस्परशापेन देहावुत्सृज्य धार्मिकौ ॥ अभूतां नृपविप्रर्षी वायुभूतौ तपोधनौ ॥ ४ ॥ अशरीरः शरीरस्य कृतेन्यस्य महामुनिः ॥ वसिष्ठः सुमहातेजा जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ५ ॥ सोभिवाद्य ततः पादौ देवदेवस्य धर्मवित् ॥ पितामहमथोवाच वायुभूत इदं वचः ॥ ॥ ६ ॥ भगवन्निमिशापेन विदेहत्वमुपागमम् ॥ लोकनाथ महादेव अण्डजोपि त्वमब्जजः ॥ ७ ॥ ॥

॥ २० ॥ २१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ ॥

रामस्येत्यादि ॥ १ ॥ निक्षिप्तेति ॥ देवसम्मतौ देवतुल्यौ ॥२॥३॥ ४ ॥ अशरीर इति ॥ अन्यस्य शरीरस्य कृते अन्यशरीरप्राप्त्यर्थमित्यर्थः ॥५॥६॥७॥

सर्वेषामिति ॥ सर्वकार्याणि ऐहिकामुष्मिकसकलप्रयोजनानि ॥ ८ ॥ तमिति ॥ तेजो रेतः ॥ ९ ॥ अयोनिज इति ॥ तत्रापि मित्रावरुणतेजःप्रवेशेपि। अयोनिजत्वं रेतोजन्यत्वेपि योनावप्रवेशादिति भावः। मे वशं मदधीनताम् ॥ १० ॥ ११ ॥ तमेवेति ॥ तमेव कालं तस्मिन्नेव काले। मित्रः

सर्वेषां देहहीनानां महद्दुःखं भविष्यति ॥ लुप्यन्ते सर्वकार्याणि हीनदेहस्य वै प्रभो ॥ देहस्यान्यस्य सद्भावे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ तमुवाच ततो ब्रह्मा स्वयंभूरमितप्रभः ॥ मित्रावरुणजं तेजः प्रविश त्वं महायशः ॥ ९ ॥ अयोनिजस्त्वं भविता तत्रापि द्विजसत्तम ॥ धर्मेण महता युक्तः पुनरेष्यासि मे वशम् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तु देवेन चाभिवाद्य प्रदक्षिणम् ॥ कृत्वा पितामहं तूर्णं प्रययौ वरुणालयम् ॥ ११ ॥ तमेव कालं मित्रोपि वरुणत्वमकारयत् ॥ क्षीरोदेन सहोपेतः पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु उर्वशी परमाप्सराः ॥ यदृच्छया समुद्देशमाययौ सखिभिर्वृता ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नां क्रीडन्तीं वरुणालये ॥ आविशत्परमो हर्षो वरुणं चोर्वशीकृते ॥ १४ ॥ स तां पद्मपलाशाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ वरुणो वरयामास मैथुनायाप्सरोवराम् ॥ १५ ॥ प्रत्युवाच ततः सा तु वरुणं प्राञ्जलिः स्थिता ॥ मित्रेणाहं वृता साक्षात्पूर्वमेव सुरेश्वर ॥ १६ ॥ वरुणस्त्वब्रवीद्वाक्यं कन्दर्पशरपीडितः ॥ इदं तेजः समुत्स्रक्ष्ये कुम्भेस्मिन्देवनिर्मिते ॥ ॥ १७ ॥ एवमुत्सृज्य सुश्रोणि त्वय्यहं वरवर्णिनि ॥ कृतकामो भविष्यामि यदि नेच्छसि संगमम् ॥ १८ ॥ तस्य तल्लोकपालस्य वरुणस्य सुभाषितम् ॥ उर्वशी परमप्रीता श्रुत्वा वाक्यमुवाच ह ॥ १९ ॥ ॥

सूर्यमूर्तिभेदः वरुणत्वमकारयत्। केनापि हेतुना उभावपि युगपद्वरुणराज्यमकुर्वतामित्यर्थः। तथैवोत्तरत्र वक्ष्यति—मित्रः वरुणत्वं प्रापेति ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ ॥ ॥

काममिति ॥ मित्रत्वात्पूर्वस्थितवरुणाविरोधेन राज्यमकरोत्। एतदेव मे भवतु। मे हृदयं चित्तं त्वयि स्थितमेव भवतु। अभ्यधिको भावश्च तुभ्यं
तव च मयीति शेषः॥२०॥२१॥उर्वशी त्विति॥ कस्मात्त्वमवसार्जिता विसृष्टवती। मामिति शेषः। कस्मात्त्वमसि वर्जितेति च पाठः। सुसंक्रम्य स-

काममेतद्भवत्वेवं हृदयं मे त्वयि स्थितम् ॥ भावश्चाभ्यधिकस्तुभ्यं देहो मित्रस्य तु प्रभो ॥ २० ॥ उर्वश्या एवमुक्तस्तु
रेतस्तन्महदद्भुतम् ॥ ज्वलदग्निशिखाप्रख्यं तस्मिन्कुम्भे ह्यपासृजत् ॥ २१ ॥ उर्वशी त्वगमत्तत्र मित्रो वै
यत्र देवता ॥ तां तु मित्रः सुसंक्रुद्ध उर्वशीमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥ मया निमन्त्रिता पूर्वं कस्मात्त्वमवसार्जिता ॥
पतिमन्यं वृतवती तस्मात्त्वं दुष्टचारिणी ॥ २३ ॥ अनेन दुष्कृतेन त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ॥ मनुष्यलोकमास्थाय
कंचित्कालं निवत्स्यसि ॥ २४ ॥ बुधस्य पुत्रो राजर्षिः काशीराजः पुरूरवाः ॥ तमद्य गच्छ दुर्बुद्धे स ते भर्ता भविष्यति
॥ २५ ॥ ततः सा शापदोषेण पुरूरवसमभ्यगात् ॥ प्रतियाता पुरूरवं बुधस्यात्मजमौरसम् ॥ २६ ॥
तस्य जज्ञे ततः श्रीमान्नायुःपुत्रो महाबलः ॥ नहुषो यत्र पुत्रस्तु बभूवेन्द्रसमद्युतिः ॥ २७ ॥ वज्रमुत्सृज्य वृत्राय
श्रान्तेथ त्रिदशेश्वरे ॥ शतं वर्षसहस्राणि येनेन्द्रत्वं प्रशासितम् ॥ २८ ॥ सा तेन शापेन जगाम भूमिं तदोर्वशी
चारुदती सुनेत्रा ॥ बहूनि वर्षाण्यवसच्च सुभ्रूः शापक्षयादिन्द्रसदो ययौ च ॥ २९ ॥ इत्युत्त०षट्पञ्चाशः सर्गः ॥५६॥
तां श्रुत्वा दिव्यसंकाशां कथामद्भुतदर्शनाम् ॥ लक्ष्मणः परमप्रीतो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ ॥

म्यक् परिष्वज्य। तस्याः स्वस्मिन्ननुरागाभावमालोक्येत्यर्थः। तां तु मित्रः सुसंक्रम्येति च पाठः ॥२२॥२३॥ अनेनेति ॥ मानुषं लोकमास्थायेत्यनेन
देवरूपेणैवेति शेषः ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे म०उत्तरश्री० षट्पञ्चाशःसर्गः ॥५६॥
तामित्यादि ॥ दिव्यसंकाशां दिव्यरूपाम् ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

निक्षिप्तेति ॥ निक्षिप्तदेहौ। पुनर्देहेनेति। कुम्भे वरुणतेजोविसर्जनमुक्तं तावता प्रकृष्टदेहसिद्धिप्रश्नो न दत्तोत्तर इति पुनः प्रश्नः कृत इति मन्तव्यम् ॥ २ ॥ तस्येति ॥ तां कथां वसिष्ठस्य देहोत्पत्तिविषयिणीं कथाम् ॥३॥ यस्त्विति ॥ तेजोमयौ निरवधिकतेजस्कौ ॥४॥ पूर्वमिति ॥ तत्र कुम्भे। पूर्वं वरुणतेजोनिधानात्पूर्वम् मित्रं प्रति नाहं तव सुत इत्युक्त्वा तस्मात्कुम्भादपाक्रमत् उदतिष्ठत ॥ ५ ॥ निषेधस्य का वा प्रसक्तिरित्यत्राह–तद्धि तेज इति ॥ उर्वश्या निमित्तभूतायाः। मित्रतेजस्तस्मिन् कुम्भे पूर्वम् उपरि आहितम् अर्पितं तस्मात्प्रतिषेधः कृत इति भावः। यद्वा पूर्ववरणकाले उर्वश्या आहितं तेजः सखीसन्निधानात् असंभोगात्कुम्भे तत्र निक्षिप्तमिति भावः। अस्मिंस्तु पक्षे मित्रपदं मित्रावरुणपरम्। सर्वथा न मित्रावरुणतेजोजोगस्त्यः

निक्षिप्तदेहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ ॥ पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसम्मतौ ॥ २ ॥ तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः ॥ तां कथां कथयामास वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥ यस्तु कुम्भो रघुश्रेष्ठ तेजःपूर्णो महात्मनोः ॥ तस्मिंस्तेजोमयौ विप्रौ संभूतावृषिसत्तमौ ॥ ४ ॥ पूर्वं समभवत्तत्र ह्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥ नाहं सुतस्तवेत्युक्त्वा मित्रं तस्मादपाक्रमत् ॥ ५ ॥ तद्धि तेजस्तु मित्रस्य उर्वश्याः पूर्वमाहितम् ॥ तस्मिन्त्समभवत्कुम्भे तत्तेजो यत्र वारुणम् ॥ ६ ॥ कस्य चित्त्वथ कालस्य मित्रावरुणसंभवः ॥ वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे चेक्ष्वाकुदैवतम् ॥७॥ ॥ ॥ ॥

किन्तु कुम्भमात्रसंभवः। अत एव कुम्भसंभवः कलशीभव इत्यादिव्यवहारः। अयोनिजश्चायं कुम्भस्य मैत्रावरुणत्वात् मैत्रावरुणिरित्यपि व्यवहारः। क्वचित् वसिष्ठस्तु मैत्रावरुणतेजोज एवेत्याह–यस्मात्तेजस्तु मित्रस्योर्वश्यां पूर्वमाहितम् तत्तेजो यत्र वारुणमिति। अन्ये त्वाहुः। नाहं सुतस्तवेत्यादि। पुत्र न भवामीत्यर्थः। उत्तरस्य प्रसक्तिं दर्शयति–तद्धीति ॥ अगस्त्यस्य उत्पत्तिबीजभूतं मित्रस्य तत्तेजः उर्वश्याः पूर्वमुर्वश्या निमित्ततः मित्रेण तस्मिन् कुम्भे वरुणवीर्यविसर्जनात्पूर्वमेवाहितम्। तस्मिन्नेककुम्भे वारुणमपि तेज उर्वशीनिमित्तकं समभवत्। तस्मान्नैकस्य तव सुत इत्युक्तम् अगस्त्येन। अत एव मैत्रावरुणिरित्यगस्त्यनाम कुम्भाज्जन्यत्वात्कुम्भसंभव इत्याहुः ॥ ६ ॥ कस्य चिदिति ॥ अगस्त्योत्पत्तेः बहुकालानन्तरमित्यर्थः। मित्रा-

वरुणयोस्तेज आविशेति पूर्वं ब्रह्मनियोगः ॥ ७ ॥ ८ ॥ एवमिति ॥ अपूर्वदेहस्य नूतनदेहस्य । निर्गमः उत्पत्तिः ॥९॥१०॥ तमिति ॥ रक्षन्ति स्मेति तैलकटाहादाविति शेषः॥११॥तत इति ॥ भृगुः तत्र तस्मिन् । यज्ञसमाप्तिकाल इत्यर्थः । इदं वक्ष्यमाणम् । हे पार्थिव देहाभिमानिप्रत्यगात्मन्। तव तुष्टोस्मि अतस्ते चेतः जीवमानयिष्यामि देह इत्यब्रवीत् ॥१२॥ सुप्रीता इति ॥ तदा सुप्रीताः सर्वे सुराश्च निमेश्चेत आनयिष्याम इत्यब्रुवन् । अथ हे

तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम् ॥ वव्रे पुरोहितं सौम्य वंशस्यास्य भवाय नः ॥ ८ ॥ एवं त्वपूर्वदेहस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ कथितो निर्गमः सौम्य निमेः शृणु यथा भवेत् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा विदेहं राजानमृषयः सर्व एव ते ॥ तं ततो योजयामासुर्यागदीक्षां मनीषिणः ॥ १० ॥ तं च देहं नरेन्द्रस्य रक्षन्ति स्म द्विजोत्तमाः ॥ गन्धैर्माल्यैश्च वस्त्रैश्च पौरभृत्यसमन्विताः ॥ ११ ॥ ततो यज्ञे समाप्ते तु भृगुस्तत्रेदमब्रवीत् ॥ आनयिष्यामि ते चेतस्तुष्टोस्मि तव पार्थिव ॥ १२ ॥ सुप्रीताश्च सुराः सर्वे निमेश्चेतस्तथाब्रुवन् ॥ वरं वरय राजर्षे क्व ते चेतो निरूप्यताम् ॥ १३ ॥ एवमुक्तः सुरैः सर्वैर्निमेश्चेतस्तदाब्रवीत् ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां वसेयं सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥ बाढमित्येव विबुधा निमेश्चेतस्तदाब्रुवन् ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चरिष्यसि ॥ १५ ॥ त्वत्कृते च निमिष्यन्ति चक्षूंषि पृथिवीपते ॥ वायुभूतेन चरता विश्रमार्थं मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वा तु विबुधाः सर्वे जग्मुर्यथागतम् ॥ ऋषयोऽपि महात्मानो निमेर्देहं समाहरन् ॥ १७ ॥ ॥ ॥

राजर्षे, वरं वरय ते चेतस्त्वाकृष्ट्वा क्व निरूप्यतां क्व स्थाप्यतामिति चाब्रुवन्निति संबन्धः । क्व ते चेतो निरूप्यतामिति च पाठः॥१३॥ एवमिति ॥ निमेश्चेतः चेतोभिमानी प्रत्यगात्मा तदाब्रवीत् । किमिति, सर्वभूतानां नेत्रेषु सर्वभूतवर्तिनेत्रेषु वैभवात् वसेयं नत्वेकस्मिन्नित्यर्थः ॥१४॥ बाढमिति ॥ वायुभूतः नागाद्युपवायुभूत इत्यर्थः ॥ १५ ॥ त्वत्कृत इति ॥ त्वत्कृते त्वदवस्थाननिमित्तं निमिष्यन्ति निमेषधर्मं प्राप्स्यन्ति । विश्रमार्थमिति । उन्मीलनखेदापनोदनार्थमित्यर्थः ॥ १६ ॥ एवमिति ॥ देहं केवलमित्यर्थः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

अरणिमिति ॥ मन्त्रहोमैः पोत्रीयमन्त्रहोमैः । तादृशमन्त्रपूर्वकहोमैरित्यर्थः ॥ १८ ॥ अरण्यामिति ॥ विदेहाद्विगतो देहो विदेहः तस्मात्संभूतो वैदेहः जनकः ॥ १९ ॥ २० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥ ॥ ॥१॥महदिति ॥ पुण्यश्रवणत्वेन महदद्भुतम् । आश्चर्यादप्याश्चर्यमित्यर्थः । निमेः सहेति । प्रसङ्ग इति शेषः॥२॥निमिरिति ॥ महात्मनि वसिष्ठे विषये कथं

अरणिं तत्र निक्षिप्य मथनं चक्रुरोजसा ॥ मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेस्तदा ॥ १८ ॥ अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महातपाः ॥ मथनान्मिथिरित्याहुर्जननाज्जनकोभवत् ॥ यस्माद्विदेहात्संभूतो वैदेहस्तु ततः स्मृतः ॥ १९ ॥ एवं विदेहराजश्च जनकः पूर्वकोभवत् ॥ मिथिर्नाम महातेजास्तेनायं मैथिलोभवत् ॥२०॥ इ॰श्रीरा॰स॰सर्गः ॥५७॥ एवं ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणः परवीरहा ॥ प्रत्युवाच महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ १ ॥ महदद्भुतमाश्चर्यं विदेहस्य पुरातनम् ॥ निवृत्तं राजशार्दूल वसिष्ठस्य निमेः सह ॥ २ ॥ निमिस्तु क्षत्रियः शूरो विशेषेण च दीक्षितः ॥ न क्षमां कृतवान् राजा वसिष्ठस्य महात्मनः ॥३॥ एवमुक्तस्तु तेनायं श्रीमान् क्षत्त्रियपुङ्गवः ॥ उवाच लक्ष्मणं वाक्यं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ४ ॥ रामो रमयतां श्रेष्ठो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ न सर्वत्र क्षमा वीर पुरुषेषु प्रदृश्यते ॥ ५ ॥ सौमित्रे दुस्सहो रोषो यथा क्षान्तो ययातिना ॥ सत्त्वानुगं पुरस्कृत्य तं निबोध समाहितः॥६॥नहुषस्य सुतो राजा ययातिः पौरवर्धनः॥ तस्य भार्याद्वयं सौम्य रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ ७ ॥ एका तु तस्य राजर्षेर्नाहुषस्य पुरस्कृता ॥ शर्मिष्ठा नाम दैतेयी दुहिता वृषपर्वणः ॥ ८ ॥ अन्या तूशनसः पत्नी ययातेः पुरुषर्षभ ॥ नतु सा दयिता राज्ञो देवयानी सुमध्यमा ॥ ९ ॥

धार्मिकः निमिः अमर्षं चकारेति पृष्टवन्तं लक्ष्मणं प्रति ययातिक्षमाकथनम् "आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे" इति न्यायं कथं नानुसरेत् । मैवं महान् दोषः । चिन्तायाः अकर्तव्याभिप्रायात् । गुणवतो गुणकीर्तनस्य ॥३॥४॥५॥ सौमित्र इति ॥ यथा येन प्रकारेण । सत्त्वानुगं सत्त्वगुणानुमतम् । मार्गमिति शेषः । तं प्रकारं निबोध ॥ ६ ॥ ७॥ एकेति ॥ पुरस्कृता पूजिता । दैतेयी दितेः पुत्री ॥८॥ अन्येति ॥ उशनसः शुक्रस्य ॥ ९ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ इङ्गितमिति ॥ इङ्गितं सखेदरोषभावम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वेति ॥ अपकृतिस्थामस्वस्थामप्रहृष्टां हर्षरहिताम् । अचेतनां क्षुभितचित्ताम् ॥ १७ ॥ १८ ॥ अहमिति ॥ अग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं भक्षयिष्य इति संबन्धः ॥ १९ ॥ नेति ॥ दुःखितामवमानि-

तयोः पुत्रौ तु संभूतौ रूपवन्तौ समाहितौ ॥ शर्मिष्ठाजनयत्पूरुं देवयानी यदुं तदा ॥ १० ॥ पूरुस्तु दयितो राज्ञो गुणैर्मातृकृतेन च ॥ ततो दुःखसमाविष्टो यदुर्मातरमब्रवीत् ॥ ११ ॥ भार्गवस्य कुले जाता देवस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ सहसे हृद्गतं दुःखमवमानं च दुस्सहम् ॥ १२ ॥ आवां च सहितौ देवि प्रविशाव हुताशनम् ॥ राजा तु रमतां सार्धं दैत्यपुत्र्या बहुक्षपाः ॥ १३ ॥ यदि वा सहनीयं ते मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ क्षम त्वं न क्षमिष्येहं मरिष्यामि न संशयः ॥ १४ ॥ पुत्रस्य भाषितं श्रुत्वा परमार्तस्य रोदतः ॥ देवयानी तु संक्रुद्धा सस्मार पितरं तदा ॥ १५ ॥ इङ्गितं तदभिज्ञाय दुहितुर्भार्गवस्तदा ॥ आगतस्त्वरितं तत्र देवयानी तु यत्र सा ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा चाप्रकृतिस्थां तामप्रहृष्टामचेतनाम् ॥ पिता दुहितरं वाक्यं किमेतदिति चाब्रवीत् ॥ १७ ॥ पृच्छन्तमसकृत्तं वै भार्गवं दीप्ततेजसम् ॥ देवयानी तु संक्रुद्धा पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥ अहमग्निं विषं तीक्ष्णमपो वा मुनिसत्तम ॥ भक्षयिष्ये प्रवेक्ष्यामि न तु शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ १९ ॥ न मां त्वमवजानीषे दुःखितामवमानिताम् ॥ वृक्षस्यावज्ञया ब्रह्मन् खिद्यन्ते वृक्षजीविनः ॥ २० ॥ अवज्ञया च राजर्षिः परिभूय च भार्गव ॥ मय्यवज्ञां प्रयुङ्क्ते हि न च मां बहु मन्यते ॥ २१ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कोपेनाभिपरिप्लुतः ॥ व्याहर्तुमुपचक्राम भार्गवो नहुषात्मजम् ॥ २२ ॥ यस्मान्मामवजानीषे नाहुष त्वं दुरात्मवान् ॥ जरया परया जीर्णः शैथिल्यमुपयास्यसि ॥ २३ ॥

तां नावजानीषे न जानीषे न जानासि । अवोपसर्गौ धात्वर्थमात्रे वर्तते । अन्यापदेशेनाह–वृक्षस्येति । वृक्षस्यावज्ञया छेदनादिना वृक्षजीविनः पत्रपुष्पादयश्छिद्यन्ते ॥ २० ॥ तदेवोपपादयति–अवज्ञयेत्यादि ॥ हे भार्गव । राजर्षिस्त्वय्यवज्ञया हेतुभूतया मां परिभूय मय्यवज्ञां प्रयुङ्क्ते । अवज्ञाय स राज-

र्षिः परिभूय च भार्गवमिति पाठे भार्गवविषयावमानबहुमानाभ्यां मय्यवज्ञानबहुमानभावं करोतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥

एवमुक्त्वा दुहितरं समाश्वास्य च भार्गवः ॥ पुनर्जगाम ब्रह्मर्षिर्भवनं स्वं महायशाः ॥२४॥ स एवमुक्त्वा द्विजपुङ्गवाग्र्यः
सुतां समाश्वास्य च देवयानीम् ॥ पुनर्ययौ सूर्यसमानतेजा दत्त्वा च शापं नहुषात्मजाय ॥२५॥ इ० श्रीरा० उ० ॥५८॥
श्रुत्वा तूशनसं क्रुद्धं तदार्तो नहुषात्मजः ॥ जरां परिमितां प्राप्य यदुं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ यदो त्वमसि धर्मज्ञो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ जरां परिमितां पुत्र भोगै रंस्ये महायशः ॥ २ ॥ न तावत् कृतकृत्योऽस्मि विषयेषु नरर्षभ ॥
अनुभूय तथा कामं ततः प्राप्स्याम्यहं जराम् ॥ ३ ॥ यदुस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच नरर्षभम् ॥ पुत्रस्ते दयितः पूरुः प्रतिगृह्णातु वै जराम् ॥ ४ ॥ बहिष्कृतोहमर्थेषु सन्निकर्षाच्च पार्थिव ॥ प्रतिगृह्णातु वै राजन् कः सहाश्नाति भोजनम् ॥ ५ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा पूरुमथाब्रवीत् ॥ इयं जरा महाबाहो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६ ॥ नाहुषेणैव
मुक्तस्तु पूरुः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि शासनेस्मि तव स्थितः ॥ ७ ॥ पूरोर्वचनमाज्ञाय नाहुषः परया मुदा ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे जरां संक्रामयच्च ताम् ॥८॥ ततः स राजा तरुणः प्राप्य यज्ञान्सहस्रशः ॥ बहुवर्षसहस्राणि पालयामास मेदिनीम् ॥९॥ अथ दीर्घस्य कालस्य राजा पूरुमथाब्रवीत् ॥ आनयस्व जरां पुत्र न्यासं निर्यातयस्व मे ॥१०॥ न्यासभूता मया पुत्र त्वयि संक्रामिता जरा ॥ [1]तस्मात्प्रतिग्रहीष्यामि तां जरां मा व्यथां कृथाः ॥११॥

श्रुत्वेत्यादि ॥१॥२॥३॥४॥ बहिष्कृत इति ॥ सन्निकर्षात् समीपावस्थापनादिकृत्याच्च बहिष्कृतः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ पूरोरिति ॥ जरां संक्रामयदिति । योगबलादिति शेषः ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ न्यासभूतेति ॥ हे पुत्र । त्वयि मया संक्रामिता जरा तस्मान्मया जातः ॥ ११ ॥ ॥

---

[1] तस्मात्पूरो मया जातः प्रतिदेहि जरां मम ॥ इति पाठः टीकाकृत्संमतः ।

॥ १२ ॥ १३ ॥ राक्षस इति ॥ प्रजार्थे विफलो भवेति । प्रजया पुत्रेण पितुः सकाशात्प्राप्यार्थः राज्यादिलक्षणरूपः तस्मिन्विफलः उक्तप्रयोजनरहित
इत्यर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥ न त्विति त्वयेति शेषः ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ ययातिवृत्तान्तप्रतिपादनस्य प्रकृतोपयोगमाह—एष तूशन-

प्रीतश्चास्मि महाबाहो शासनस्य प्रतिग्रहात् ॥ त्वां चाहमभिषेक्ष्यामि प्रीतियुक्तो नराधिपम् ॥ १२ ॥
एवमुक्त्वा सुतं पूरुं ययातिर्नहुषात्मजः ॥ देवयानीसुतं क्रुद्धो राजा वाक्यमुवाच ह ॥ १३ ॥ राक्षसस्त्वं मया
जातः पुत्ररूपो दुरासदः ॥ प्रतिहंसि ममाज्ञां यत् प्रजार्थे विफलो भव ॥ १४ ॥ पितरं गुरुभूतं मां यस्मात्त्वम-
वमन्यसे ॥ राक्षसान्यातुधानांस्त्वं जनयिष्यसि दारुणान् ॥ १५ ॥ न तु सोमकुलोत्पन्ने वंशे स्थास्यति दुर्मतेः ॥
वंशोपि भवतस्तुल्यो दुर्विनीतो भविष्यति ॥ १६ ॥ तमेवमुक्त्वा राजर्षिः पूरुं राज्यविवर्धनम् ॥ अभिषेकेण
संपूज्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥ १७ ॥ ततः कालेन महता दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ॥ त्रिदिवं संगतो राजा य-
यातिर्नहुषात्मजः ॥ १८ ॥ पूरुश्चकार तद्राज्यं धर्मेण महता वृतः ॥ प्रतिष्ठाने पुरवरे काशीराज्ये महायशाः
॥ १९ ॥ यदुस्तु जनयामास यातुधानान्सहस्रशः ॥ पुरे क्रौञ्चवने दुर्गे राजवंशबहिष्कृतः ॥ २० ॥ एष तूश-
नसा मुक्तः शापोत्सर्गो ययातिना ॥ धारितः क्षत्रधर्मेण यन्निमिश्च न चक्षमे ॥ २१ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं
दर्शनं सर्वकारिणाम् ॥ अनुवर्तामहे सौम्य दोषो न स्याद्यथा नृगे ॥ २२ ॥ इति कथयति रामे चन्द्रतुल्या-
नने च प्रविरलतरतारं व्योम जज्ञे तदानीम् ॥ अरुणकिरणरक्ता दिग्बभौ चैव पूर्वा कुसुमरसविमुक्तं वस्त्रमा-
कुण्ठितेव ॥ २३ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ ॥

सेति ॥ यन्नृपिशापं निमिर्न चक्षमे तादृशः शापो ययातिना धारित इत्यर्थः ॥ २१ ॥ एतदिति ॥ कारः कृत्यमेषामस्तीति कारिणः । कार्यापेक्षिण इत्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

॥ अथाधिकपाठश्लोकप्रारम्भः ॥

ततः प्रभाते विमले कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥ धर्मासनगतो राजा रामो राजीवलोचनः ॥ १ ॥ राजधर्मानवेक्षन्वै
ब्राह्मणैर्नैगमैः सह ॥ पुरोधसा वसिष्ठेन ऋषिणा कश्यपेन च ॥ २ ॥ मन्त्रिभिर्व्यवहारज्ञैस्तथाऽन्यैर्धर्मपारगैः
॥ नीतिज्ञैरथ सभ्यैश्च राजभिः सा सभावृता ॥ ३ ॥ सभा यथा महेन्द्रस्य यमस्य वरुणस्य च ॥
शुशुभे राजसिंहस्य रामस्याऽक्लिष्टकर्मणः ॥ ४ ॥ अथ रामोऽब्रवीत्तत्र लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ निर्गच्छ त्वं महाबाहो
सुमित्रानन्दवर्धन ॥ कार्यार्थिनश्च सौमित्रे व्याहर्तुं त्वमुपाक्रम ॥ ५ ॥ रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः
॥ द्वारदेशमुपागम्य कार्यिणश्चाह्वयत्स्वयम् ॥ ६ ॥ न कश्चिदब्रवीत्तत्र मम कार्यमिहाद्य वै ॥ नाधयो
व्याधयश्चैव रामे राज्यं प्रशासति ॥ ७ ॥ पक्वसस्या वसुमती सर्वौषधिसमन्विता ॥ न बालो म्रियते तत्र न युवा
नच मध्यमः ॥ ८ ॥ धर्मेण शासितं सर्वं नच बाधा विधीयते ॥ दृश्यते नच कार्यार्थी रामे राज्यं प्रशासति ॥
॥ ९ ॥ लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वा रामायैवं न्यवेदयत् ॥ १० ॥ अथ रामः प्रसन्नात्मा सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ भूय
एव तु गच्छ त्वं कारिणः प्रविचारय ॥ ११ ॥ सम्यक् प्रणीतया नीत्या नाधर्मो विद्यते क्वचित् ॥ तस्माद्राजभयात्सर्वे
रक्षन्तीव परस्परम् ॥ १२ ॥ बाणा इव मया मुक्ता इह रक्षन्ति मे प्रजाः ॥ तथापि त्वं महाबाहो प्रजा
रक्षस्व तत्परः ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्निर्जगाम नृपालयात् ॥ अपश्यद्द्वारदेशे वै श्वानं तावदवस्थितम् ॥
॥ १४ ॥ तमेव वीक्षमाणं वै विक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः ॥ दृष्ट्वाथ लक्ष्मणस्तं वै पप्रच्छाथ स वीर्यवान् ॥ १५ ॥ किन्ते
कार्यं महाभाग ब्रूहि विस्रब्धमानसः ॥ लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा सारमेयोऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥ ॥

सर्वभूतशरण्याय रामायाक्लिष्टकर्मणे ॥ भयेष्वभयदात्रे च तस्मै वक्तुं समुत्सहे ॥ १७ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं
सारमेयस्य लक्ष्मणः ॥ राघवाय तदाऽऽख्यातुं प्रविवेशालयं शुभम् ॥ १८ ॥ निवेद्य रामस्य पुनर्निर्जगाम नृपालयात् ॥
वक्तव्यं यदि ते किंचित् तत्त्वं ब्रूहि नृपाय वै ॥ लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा सारमेयोऽभ्यभाषत ॥ १९ ॥ देवागारे
नृपागारे द्विजवेश्मसु वै तथा ॥ वह्निः शतक्रतुश्चैव सूर्यो वायुश्च तिष्ठति ॥ २० ॥ नात्र योग्यास्तु सौमित्रे
योनीनामधमा वयम् ॥ प्रवेष्टुं नात्र शक्ष्यामो धर्मो विग्रहवान्नृपः ॥ २१ ॥ सत्यवादी रणपटुः सर्वभूतहिते रतः ॥
षाड्गुण्यस्य पदं वेत्ति नीतिकर्ता स राघवः ॥ २२ ॥ सर्वज्ञः सर्वदर्शी च रामो रमयतां वरः ॥ २३ ॥ स सोमः स
च मृत्युश्च स यमो धनदस्तथा ॥ वह्निः शतक्रतुश्चैव सूर्यो वै वरुणस्तथा ॥ २४ ॥ तस्य त्वं ब्रूहि सौमित्रे प्रजापालः
स राघवः ॥ अनाज्ञप्तस्तु सौमित्रे प्रवेष्टुं नेच्छयाम्यहम् ॥ २५ ॥ आनृशंस्यान्महाभागः प्रविवेश महाद्युतिः ॥ नृपालयं
प्रविश्याथ लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥ श्रूयतां मम विज्ञाप्यं कौसल्यानन्दवर्धन ॥ यन्मयोक्तं महाबाहो
तव शासनजं विभो ॥ श्वा वै ते तिष्ठते द्वारि कार्यार्थी समुपागतः ॥ २७ ॥ लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥
संप्रवेशय वै क्षिप्रं कार्यार्थी योत्र तिष्ठति ॥ २८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अधिकपाठे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं लक्ष्मणस्त्वरितस्तदा ॥ श्वानमाहूय मतिमान् राघवाय न्यवेदयत् ॥ १ ॥ दृष्ट्वा समागतं श्वानं
रामो वचनमब्रवीत् ॥ विवक्षितार्थं मे ब्रूहि सारमेय न ते भयम् ॥ २ ॥ अथापश्यत तत्रस्थं रामं श्वा भिन्नमस्तकः ॥
राजा सुप्तेषु जागर्ति राजा पालयति प्रजाः ॥ ३ ॥ राजा कर्ता च गोप्ता च सर्वस्य जगतः पिता ॥ राजा कालो युगं चैव
राजा सर्वमिदं जगत् ॥ ४ ॥ नीत्या सुनीतया राजा धर्मं रक्षति रक्षिता ॥ यदा न पालयेद्राजा क्षिप्रं नश्यति वै प्रजाः ॥
॥ ५ ॥ धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ॥ यस्माद्धारयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ६ ॥

धारणाद्धि द्विषां चैव धर्मेणारञ्जयन् प्रजाः ॥ तस्माद्धारणमित्युक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ ७ ॥ एष राजन् परो धर्मः फलवान् प्रेत्य राघव ॥ नहि धर्माद्भवेत्किंचिद्दुष्प्रापमिति मे मतिः ॥ ८ ॥ दानं दया सतां पूजा व्यवहारेषु चार्जवम् ॥ एष राम परो धर्मो रक्षणात्प्रेत्य चेह च ॥ ९ ॥ त्वं प्रमाणं प्रमाणानामसि राघव सुव्रत ॥ विदितश्चैव ते धर्मः सद्भिराचरितस्तु वै ॥ १० ॥ धर्माणां त्वं परं धाम गुणानां सागरोपमः ॥ अज्ञानाच्च मया राजन्नुक्तस्त्वं राजसत्तम ॥ ११ ॥ प्रसादयामि शिरसा न त्वं क्रोद्धुमिहार्हसि ॥ शुनकस्य वचः श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ किन्ते कार्यं करोम्यद्य ब्रूहि विस्रब्ध मा चिरम् ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा सारमेयोब्रवीदिदम् ॥ १३ ॥ धर्मेण राष्ट्रं विन्देत धर्मेणैवानुपालयेत् ॥ धर्माच्छरण्यतां याति राजा सर्वभयापहः ॥ १४ ॥ इदं विज्ञाय यत्कृत्यं श्रूयतां मम राघव ॥ भिक्षुः सर्वार्थसिद्धश्च ब्राह्मणावसथेवसत् ॥ १५ ॥ तेन दत्तः प्रहारो मे निष्कारणमनागसः ॥ एतच्छ्रुत्वा तु रामेण द्वास्थः संप्रेषितस्तदा ॥ १६ ॥ आनीतश्च द्विजस्तेन सर्वसिद्धार्थकोविदः ॥ अथ द्विजवरस्तत्र रामं दृष्ट्वा महाद्युतिः ॥ १७ ॥ किन्ते कार्यं मया राम तद् ब्रूहि त्वं ममानघ ॥ एवमुक्तस्तु विप्रेण रामो वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥ त्वया दत्तः प्रहारोयं सारमेयस्य वै द्विज ॥ किं तवापकृतं विप्र दण्डेनाभिहतो यतः ॥ १९ ॥ क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधो मित्रमुखो रिपुः ॥ क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोपकर्षति ॥ २० ॥ तपते यजते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ॥ क्रोधेन वै संहरति तस्मात्क्रोधं विसर्जयेत् ॥ २१ ॥ इन्द्रियाणां प्रदुष्टानां हयानामिव धावताम् ॥ कुर्वीत धृत्या सारथ्यं संहृत्येन्द्रियगोचरम् ॥ २२ ॥ मनसा कर्मणा वाचा चक्षुषा च समाचरेत् ॥ श्रेयो लोकस्य चरतो न द्वेष्टि न च लिप्यते ॥ २३ ॥ न तत्कुर्यादसिस्तीक्ष्णः सर्वो वा व्याहतस्तथा ॥ अरिर्वा नित्यसंक्रुद्धो यथात्मा दुरनुष्ठितः ॥ २४ ॥ विनीतविनयस्यापि प्रकृतिर्न विधीयते ॥ प्रकृतिं गूहमानस्य निश्चये प्रकृतिर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥

एवमुक्तः स विप्रो वै रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ द्विजः सर्वार्थसिद्धस्तु अब्रवीद्रामसन्निधौ ॥ २६ ॥ मया दत्तः प्रहारोयं क्रोधेनाविष्टचेतसा ॥ भिक्षार्थमटमानेन काले विगतभैक्षके ॥ २७ ॥ रथ्यास्थितः स्वयं श्वा वै गच्छ गच्छेति भाषितः ॥ अथ स्वैरेण गच्छंस्तु रथ्यान्ते विषमं स्थितः ॥ २८ ॥ क्रोधे तु क्षुधयाविष्टस्तदा दत्तोस्य राघव ॥ प्रहारो राजराजेन्द्र शाधि मामपराधिनम् ॥ त्वया शस्तस्य राजेन्द्र नास्ति मे नरकाद्भयम् ॥ २९ ॥ अथ रामेण संपृष्टाः सर्व एव सभासदः ॥ किं कार्यमस्य वै ब्रूत दण्डो वै कोस्य पात्यताम् ॥ ३० ॥ सम्यक् प्रणिहिते दण्डे प्रजा भवति रक्षिता ॥ भृग्वङ्गिरसकुत्साद्या वसिष्ठश्च सकाश्यपः ॥ ३१ ॥ धर्मपालकमुख्याश्च सचिवा नैगमास्तथा ॥ एते चान्ये च बहवः पण्डितास्तत्र संगताः ॥ ३२ ॥ अवध्यो ब्राह्मणो दण्डैरिति शास्त्रविदो विदुः ॥ ब्रुवते राघवं सर्वे राजधर्मेषु निष्ठिताः ॥ ३३ ॥ अथ ते मुनयः सर्वे राममेवाब्रुवंस्तदा ॥ राजा शास्ता हि सर्वस्य त्वं विशेषेण राघव ॥ ३४ ॥ त्रैलोक्यस्य भवाञ्छास्ता देवो विष्णुः सनातनः ॥ एवमुक्ते तु तैः सर्वैः श्वा वै वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ यदि तुष्टोस्मि मे राम यदि देयो वरो मम ॥ प्रतिज्ञातं त्वया वीर किं करोमीति विश्रुतम् ॥ ३६ ॥ प्रयच्छ ब्राह्मणस्यास्य कौलपत्यं धराधर ॥ कौलंचरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम् ॥ ३७ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु रामेण कौलपत्येभिषेचितः ॥ प्रययौ ब्राह्मणो हृष्टो गजस्कन्धेन सोर्चितः ॥ ३८ ॥ अथ ते रामसचिवा स्मयमाना वचोब्रुवन् ॥ वरोयं दत्त एतस्य नायं शापो महाद्युते ॥ ३९ ॥ एवमुक्तस्तु सचिवै रामो वचनमब्रवीत् ॥ न यूयं नीतितत्त्वज्ञाः श्वा वै जानाति कारणम् ॥ ४० ॥ अथ पृष्टस्तु रामेण सारमेयोब्रवीदिदम् ॥ अहं कुलपतिस्तत्र आसं शिष्टान्नभोजनः ॥ ४१ ॥ देवद्विजातिपूजायां दासीदासेषु राघव ॥ संविभागी शुभरतिर्देवद्रव्यस्य रक्षिता ॥ ४२ ॥ विनीतः शीलसंपन्नः सर्वसत्त्वहिते रतः ॥ सोहं प्राप्त इमां घोरामवस्थामधमां गतिम् ॥ ४३ ॥ ॥

एवं क्रोधान्वितो विप्रस्त्यक्तधर्मा हिते रतः॥क्रुद्धो नृशंसः परुष अविद्वांश्चाप्यधार्मिकः ॥४४॥कुलानि पातयत्येव सप्त
सप्त च राघव ॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासु कौलपत्यं न कारयेत् ॥४५॥ यमिच्छेन्नरकं नेतुं सपुत्रपशुबान्धवम्॥ देवेष्वधिष्ठितं
कुर्याद्गोषु च ब्राह्मणेषु च॥४६॥ ब्रह्मस्वं देवताद्रव्यं स्त्रीणां बालधनं च यत्॥दत्तं हरति यो भूय इष्टैः सह विनश्यति
॥४७॥ ब्राह्मणद्रव्यमादत्ते देवानां चैव राघव ॥ सद्यः पतति घोरे वै नरके वीचिसंज्ञिते॥४८॥ मनसापि हि देवस्वं ब्रह्मस्वं
च हरेत्तु यः ॥ निरयान्निरयं चैव पतत्येव नराधमः ॥४९॥ तच्छ्रुत्वा वचनं रामो विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥श्वाप्यगच्छन्महातेजा
यत एवागतस्ततः ॥५०॥ मनस्वी पूर्वजात्या स जातिमात्रोपदूषितः॥ वाराणस्यां महाभागः प्रायं चोपविवेश ह
॥५१॥ इत्युत्तरश्रीरामा० अ०द्वादशः सर्गः ॥ १२॥ अथ तस्मिन्वनोद्देशे रम्ये पादपशोभिते॥ नदीकीर्णे गिरिचरे कोकिलानेककूजिते
॥१॥ सिंहव्याघ्रसमाकीर्णे नानाद्विजगणावृते ॥ गृध्रोलूकौ प्रहरतो बहुवर्षगणानपि ॥२॥ अथोलूकस्य
भवनं गृध्रः पापविनिश्चयः॥ ममेदमिति कृत्वासौ कलहं तेन चाकरोत् ॥३॥ राजा सर्वस्य लोकस्य रामो राजीवलोचनः
॥ तं प्रपद्यावहे शीघ्रं यस्यैतद्भवनं भवेत् ॥४॥ इति कृत्वा मतिं तौ तु निश्चयार्थं सुनिश्चिताम् ॥ गृध्रोलूकौ प्रपद्येतां
कोपाविष्टौ ह्यमर्षितौ ॥५॥ रामं प्रपद्य तौ शीघ्रं कलिव्याकुलचेतसौ ॥ तौ परस्परविद्वेषात्स्पृष्टशतश्चरणौ तदा ॥६॥ अथ
दृष्ट्वा नरेन्द्रं तं गृध्रो वचनमब्रवीत् ॥ सुराणामसुराणां च प्रधानस्त्वं मतो मम ॥ ७ ॥ बृहस्पतेश्च शुक्राच्च विशिष्टोसि महाद्युते
॥ परावरज्ञो भूतानां कान्त्या चन्द्र इवापरः ॥८॥ दुर्निरीक्ष्यो यथा सूर्यो हिमवांश्चैव गौरवे ॥ सागरश्चासि
गाम्भीर्ये लोकपालो यमो ह्यसि ॥९॥ क्षान्त्या धरण्या तुल्योसि शीघ्रत्वे ह्यनिलोपमः ॥ गुरुस्त्वं सर्वसंपन्नः कीर्तियुक्तश्च
राघव ॥ १० ॥ अमर्षी दुर्जयो जेता सर्वास्त्रविधिपारगः ॥ शृणुष्व मम वै राम विज्ञाप्यं नरपुङ्गव ॥
॥ ११ ॥ ममालयं पूर्वकृतं बाहुवीर्येण राघव ॥ उलूको हरते राजंस्तत्र त्वं त्रातुमर्हसि ॥ १२ ॥ ॥

एवमुक्ते तु गृध्रेण उलूको वाक्यमब्रवीत् ॥ सोमाच्छतक्रतोः सूर्याद्धनदाद्वा यमात्तथा ॥ १३ ॥ जायते वै नृपो राम
किंचिद्भवति मानुषः ॥ त्वं तु धर्ममयो देवो नारायण इवापरः ॥ १४ ॥ या च ते सौम्यता राजन्सम्यक् प्रणिहिता
विभो ॥ समं चरसि चान्विष्य तेन सोमांशको भवान् ॥ १५ ॥ क्रोधे दण्डे प्रजानाथ दाने पापभयापहः ॥ दाता
हर्तासि गोप्तासि तेनेन्द्र इव नो भवान् ॥ १६ ॥ अधृष्यः सर्वभूतेषु तेजसा चाऽनलोपमः ॥ अभीक्ष्णं तपसे लोकांस्तेन
भास्करसन्निभः ॥ १७ ॥ साक्षाद्वित्तेशतुल्योसि अथवा धनदाधिकः ॥ वित्तेशस्यैव पद्मा श्रीर्नित्यं ते राजसत्तम
॥ १८ ॥ धनदस्य तु कोपेन धनदस्तेन नो भवान् ॥ समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ १९ ॥ शत्रौ मित्रे
च ते दृष्टिः समतां याति राघव ॥ धर्मेण शासनं नित्यं व्यवहारे विधिक्रमात् ॥ २० ॥ यस्य रुष्यासि वै राम तस्य
मृत्युर्विधावति ॥ गीयसे तेन वै राम यम इत्यतिविक्रमः ॥ २१ ॥ यश्चैष मानुषो भावो भवतो नृपसत्तम ॥ आनृशंस्यपरो
राम जातिषु क्षमयान्वितः ॥ २२ ॥ दुर्बलस्य त्वनाथस्य राजा भवति वै बलम् ॥ अचक्षुषोत्तमं चक्षुरगतेः स गतिर्भवान्
॥ २३ ॥ अस्माकमपि नाथस्त्वं श्रूयतां मम धार्मिक ॥ ममालयप्रविष्टस्तु गृध्रो मां बाधते नृप ॥ २४ ॥
त्वं हि देव मनुष्येषु शास्ता वै नरपुङ्गवः ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वै रामः सचिवानाह्वयत्स्वयम् ॥ २५ ॥ धृष्टिर्जयन्तो
विजयः सिद्धार्थो राष्ट्रवर्धनः ॥ अशोको धर्मपालश्च सचिवः सुमहाबलः ॥ २६ ॥ एते रामस्य सचिवा राज्ञो
दशरथस्य च ॥ नीतियुक्ता महात्मानः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ २७ ॥ प्रीतिमन्तः कुलीनाश्च नये मन्त्रे च कोविदाः ॥
तानाहूय स धर्मात्मा पुष्पकादवतीर्य च ॥ २८ ॥ गृध्रोलूकविवादं तं पृच्छति स्म रघूत्तमः ॥ कति वर्षाणि वै गृध्र
तवेदं निलयं कृतम् ॥ २९ ॥ एतन्मे कारणं ब्रूहि यदि जानासि तत्त्वतः ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वै गृध्रो भाषते राघवं सतम्
॥ ३० ॥ इयं वसुमती राम मनुष्यैः परितो यदा ॥ उत्थितैरावृता सर्वा तदा प्रभृति मे गृहम् ॥ ३१ ॥

उलूकश्चाब्रवीद्रामं पादपैरुपशोभिता ॥ यदेयं पृथिवी राजंस्तदा प्रभृति मे गृहम् ॥ ३२ ॥ एतच्छुत्वा तु रामो वै
सभासद उवाच ह ॥३३॥ न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ॥ नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥ ३४ ॥ ये तु सभ्याः सदा ज्ञात्वा तूष्णीं ध्यायन्त आसते ॥ यथाप्राप्तं न ब्रुवते
ते सर्वेऽनृतवादिनः ॥ ३५ ॥ जानन्न वाऽब्रवीत्प्रश्नान् कामात्क्रोधाद्भयात्तथा ॥ सहस्रं वारुणान्पाशानात्मनि
प्रतिमुञ्चति ॥ तेषां संवत्सरे पूर्णे पाश एकः प्रमुच्यते ॥ ३६ ॥ तस्मात्सत्येन वक्तव्यं जानता सत्यमञ्जसा ॥ एतच्छुत्वा
तु सचिवा राममेवाब्रुवंस्तदा ॥३७॥ उलूकः शोभते राजन् न तु गृध्रो महामते ॥ त्वं प्रमाणं महाराज राजा
हि परमा गतिः ॥ ३८ ॥ राजमूलाः प्रजाः सर्वा राजा धर्मः सनातनः ॥ शास्ता नृणां नृपो येषां ते न गच्छन्ति
दुर्गतिम् ॥ ३९ ॥ वैवस्वतेन मुक्तास्तु भवन्ति पुरुषोत्तमाः ॥ सचिवानां वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ४० ॥
श्रूयतामभिधास्यामि पुराणे यदुदाहृतम् ॥ द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा सपर्वतमहावना ॥ ४१ ॥ सलिलार्णवसंपूर्णं त्रैलोक्यं
सचराचरम् ॥ एक एव तदा ह्यासीद्युक्तो मेरुरिवापरः ॥ ४२ ॥ पुरा भूः सह लक्ष्म्या च विष्णोर्जठरमाविशत् ॥
तन्निगृह्य महातेजाः प्रविश्य सलिलार्णवम् ॥४३॥ सुष्वाप देवो भूतात्मा बहून् वर्षगणानपि ॥ विष्णौ सुप्ते तदा
ब्रह्मा विवेश जठरं ततः ॥ ४४ ॥ रुद्धप्रोतं तु तं ज्ञात्वा महायोगी समाविशत् ॥ नाभ्यां विष्णोः समुत्पन्ने पद्मे हेमविभूषिते
॥४५॥ स तु निर्गम्य वै ब्रह्मा योगी भूत्वा महाप्रभुः ॥ सिसृक्षुः पृथिवीं वायुं पर्वतान्समहीरुहान् ॥४६॥
तदन्तरं प्रजाः सर्वाः समनुष्यसरीसृपाः ॥ जरायुजोण्डजाः सर्वाः ससर्ज स महातपाः ॥ ४७ ॥ ततः श्रोत्रमलोत्पन्नः
कैटभो मधुना सह ॥ दानवौ तौ महावीर्यौ घोररूपौ दुरासदौ ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा प्रजापतिं तत्र क्रोधाविष्टौ बभूवतुः
॥ वेगेन महता तत्र स्वयंभुवमधावताम् ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥

तयोरित्यादि ॥ वासन्तिकी वसन्ते भवा । एवं प्रतिदिवसं संवदतोर्धर्मसंवादं कुर्वतोः । तत्पूर्वं प्रजारक्षणं कुर्वतोरिति शेषः । वासन्तिकी निशा

दृष्ट्वा स्वयंभुवा मुक्तो रावो वै विकृतस्तदा ॥ तेन शब्देन संप्राप्तौ दानवौ हरिणा सह ॥ ५० ॥ अथ चक्रप्रहारेण
सूदितौ मधुकैटभौ ॥ मेदसा प्लाविता सर्वा पृथिवी च समन्ततः ॥ ५१ ॥ भूयो विशोधिता तेन हरिणा लोकधारिणा
॥ शुद्धां वै मेदिनीं तां तु वृक्षैः सर्वामपूरयत् ॥ ५२ ॥ ओषध्यः सर्वसस्यानि निष्पद्यन्त पृथग्विधाः ॥ मेदोगन्धा
तु धरणी मेदिनीत्यभिसंज्ञिता ॥ ५३ ॥ तस्मान्न गृध्रस्य गृहमुलूकस्येति मे मतिः ॥ तस्माद्गृध्रस्तु दण्ड्यो वै
पापो हर्ता परालयम् ॥ ५४ ॥ पीडां करोति पापात्मा दुर्विनीतो महानयम् ॥ अथाशरीरिणी वाणी अन्तरिक्षात्प्रबोधिनी
॥५५॥ मा वधी राम गृध्रं तं पूर्वदग्धं तपोबलात् ॥ काले गौतमदग्धोयं प्रजानाथो धनेश्वरः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मदत्तस्तु
नाम्नैषः शूरः सत्यव्रतः शुचिः ॥ गृहमस्यागतो विप्रो भोजनं प्रति गौतमः ॥ ५७ ॥ साग्रं वर्षशतं चैव भोक्तव्यं
नृपसत्तम ॥ ब्रह्मदत्तः स वै तस्य पाद्यमर्घ्यं स्वयं नृपः ॥ ५८ ॥ हार्दं चैवाकरोत्तस्य भोजनार्थं महाद्युतेः ॥ मांसमस्याभवत्तत्र
आहारे तु महात्मनः ॥ अथ क्रुद्धेन मुनिना शापो दत्तोस्य दारुणः ॥ ५९ ॥ गृध्रस्त्वं भव वै राजन्निति
शप्त्वाथ सोब्रवीत् ॥ ६० ॥ उत्पत्स्यति कुले राज्ञां रामो नाम महायशाः ॥ इक्ष्वाकूणां महाभागो राजा राजीवलोचनः
॥६१॥ तेन स्पृष्टो विपापस्त्वं भविता नरपुङ्गवः ॥ स्पृष्टो रामेण तच्छ्रुत्वा नरेन्द्रः पृथिवीपतिः ॥६२॥ गृध्रत्वं
त्यक्तवान्राजा दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ पुरुषो दिव्यरूपोऽभूदुवाचेदं च राघवम् ॥६३॥ साधु राघव धर्मज्ञ त्वत्प्रसादादहं
विभो ॥ विमुक्तो नरकाद् घोराच्छापस्यान्तः कृतस्त्वया॥६४॥ इत्युत्तरश्रीरा०अ०त्रयोदशः सर्गः॥१३॥
तयोः संवदतोरेवं रामलक्ष्मणयोस्तदा ॥ वासन्तिकी निशा प्राप्ता न शीता न च घर्मदा ॥ १ ॥ ॥

प्राप्तेति । कालान्तर इति शेषः । एतेन वसन्ते समानीता देवी पुनर्वसन्ते त्यक्तेति सूचयति । इदं च कालवचनम् ऋषिकार्योचितप्रदर्शनार्थम् ॥ १ ॥

॥ २ ॥ तत इति ॥ द्वारि प्रतिहता निरुद्धा इत्यर्थः ॥ ३ ॥ भार्गवेति ॥ भृगोर्गोत्रापत्यं भार्गवः स चासौ च्यवनश्च तम् । महाराज्ञः महाराजस्य । दर्शनं प्रति अस्मदादीन् चोदयन्ति प्रेरयन्ति । महाराज्ञश्चोदयन्तीति च पाठः ॥ ४ ॥ तस्येति ॥ भार्गवप्रमुखाः च्यवनप्रमुखाः ॥ ५ ॥ ६ ॥ शतमिति ॥ स-

ततः प्रभाते विमले कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ॥ अभिचक्राम काकुत्स्थो दर्शनं पौरकार्यवित् ॥ २ ॥ ततः सुमन्त्रस्त्वागम्य राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ एते प्रतिहता राजन् द्वारि तिष्ठन्ति तापसाः ॥ ३ ॥ भार्गवच्यवनं चैव पुरस्कृत्य महर्षयः ॥ दर्शनं ते महाराज्ञश्चोदयन्ति कृतत्वराः ॥ प्रीयमाणा नरव्याघ्र यमुनातीरवासिनः ॥ ४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामः प्रोवाच धर्मवित् ॥ प्रवेश्यन्तां महाभागा भार्गवप्रमुखा द्विजाः ॥ ५ ॥ राज्ञस्त्वाज्ञां पुरस्कृत्य द्वाःस्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ प्रवेशयामास तदा तापसान्सुदुरासदान् ॥ ६ ॥ शतं समधिकं तत्र दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ प्रविष्टं राजभवनं तापसानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥ ते द्विजाः पूर्णकलशैः सर्वतीर्थाम्बुसत्कृतैः ॥ गृहीत्वा फलमूलं च रामस्याभ्याहरन् बहु ॥ ८ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं रामः प्रीतिपुरस्कृतः ॥ तीर्थोदकानि सर्वाणि फलानि विविधानि च ॥ ९ ॥ उवाच च महाबाहुः सर्वानेव महामुनीन् ॥ इमान्यासनमुख्यानि यथार्हमुपविश्यताम् ॥ १० ॥ रामस्य भाषितं श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ॥ बृसीषु रुचिराख्यासु निषेदुः काञ्चनीषु ते ॥ ११ ॥ उपविष्टानृषींस्तत्र दृष्ट्वा परपुरञ्जयः ॥ प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ किमागमनकार्यं वः किं करोमि समाहितः ॥ आज्ञाप्योहं महर्षीणां सर्वकामकरः सुखम् ॥ १३ ॥ इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदि स्थितम् ॥ सर्वमेतद्द्विजार्थं मे सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ १४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साधुकारो महानभूत् ॥ ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम् ॥ १५ ॥

मधिकम् अधिकसहितम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ किमिति ॥ किं करोमि किं कुर्याम् । सर्वकामकरः सर्वाभीष्टसाधकः ॥ १३ ॥ १४ ॥ तस्येति ॥ साधुकारः साधु साध्विति संभाषणम् ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥

ऊचुरिति ॥ नान्यतः नान्यस्य ॥१६॥ बहव इति ॥ कार्यस्य गौरवं मत्वा ततः पूर्वं करिष्यामीति प्रतिज्ञां नाभ्यरोचयन् न कुर्वन्ति । अशक्यनियोगापत्तिभयादिति शेषः ॥ १७ ॥ १८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामा० षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

ऊचुश्च ते महात्मानो हर्षेण महतावृताः ॥ उपपन्नं नरश्रेष्ठ तवैव भुवि नान्यतः ॥ १६ ॥ बहवः पार्थिवा राजन्नतिक्रान्ता महाबलाः ॥ कार्यस्य गौरवं मत्वा प्रतिज्ञां नाभ्यरोचयन् ॥ १७ ॥ त्वया पुनर्ब्राह्मणगौरवादियं कृता प्रतिज्ञा ह्यनवेक्ष्य कारणम् ॥ ततश्च कर्ता ह्यसि नात्र संशयो महाभयात्त्रातुमृषींस्त्वमर्हसि ॥ १८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥ ॥ ॥

एवं ब्रुवद्भिर्ऋषिभिः काकुत्स्थो वाक्यमब्रवीत् ॥ किं कार्यं ब्रूत मुनयो भयं तावदपैतु वः ॥ १ ॥ तथा ब्रुवति काकुत्स्थे भार्गवो वाक्यमब्रवीत् ॥ भयानां शृणु यन्मूलं देशस्य च नरेश्वर ॥ २ ॥ पूर्वं कृतयुगे राजन् दैतेयः सुमहाबलः ॥ लोलापुत्रोऽभवज्ज्येष्ठो मधुर्नाम महासुरः ॥ ३ ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ॥ सुरैश्च परमोदारैः प्रीतिस्तस्यातुलाभवत् ॥ ४ ॥ स मधुर्वीर्यसंपन्नो धर्मे च सुसमाहितः ॥ बहुवर्षसहस्राणि रुद्रप्रीत्याकरोत्तपः ॥ ५ ॥ रुद्रः प्रीतोभवत्तस्मै वरं दातुं ययौ च सः ॥ बहुमानाच्च रुद्रेण दत्तस्तस्याद्भुतो वरः ॥ ॥ ६ ॥ शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य महावीर्यं महाप्रभम् ॥ ददौ महात्मा सुप्रीतो वाक्यं चैतदुवाच ह ॥ ७ ॥ त्वयायमतुलो धर्मो मत्प्रसादकरः कृतः ॥ प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यायुधमुत्तमम् ॥ ८ ॥ यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरुध्येर्महासुर ॥ तावच्छूलं तवेदं स्यादन्यथा नाशमेष्यति ॥ ९ ॥ ॥

एवमित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ पूर्वमिति ॥ लोलायाः पुत्रो लोलापुत्रः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ शूलमिति ॥ शूलाच्छूलं विनिष्कृष्येति । स्वशूलाच्छक्तिमाकृष्य सृष्ट्वेत्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ यावदिति ॥ अनाशमदर्शनम् ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ मेति ॥ मत्प्रसादकृता मत्प्रसादजसंतोषजनितेत्यर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ तस्येति ॥ कुम्भीनसी मालयवत्पुत्र्याः

यश्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः ॥ तं शूलो भस्मसात्कृत्वा पुनरेष्यति ते करम् ॥ १० ॥ एवं रुद्राद्वरं
लब्ध्वा भूय एव महासुरः ॥ प्रणिपत्य महादेवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ११ ॥ भगवन्मम वंशस्य शूलमेतदनुत्तमम्
॥ भवेत्तु सततं देव सुराणामीश्वरो ह्यसि ॥ १२ ॥ तं ब्रुवाणं मधुं देवः सर्वभूतपतिः शिवः ॥ प्रत्युवाच महातेजा
नैतदेवं भविष्यति ॥ १३ ॥ मा भूत्ते विफला वाणी मत्प्रसादकृता शुभा ॥ भवतः पुत्रमेकं तु शूलमेतद्व्रजिष्यते
॥१४॥ यावत्करस्थः शूलोयं भविष्यति सुतस्य ते ॥ अवध्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति ॥
॥ १५ ॥ एवं मधुर्वरं लब्ध्वा देवात्सुमहदद्भुतम् ॥ भवनं सोसुरश्रेष्ठः कारयामास सुप्रभम् ॥ १६ ॥ तस्य पत्नी
महाभागा प्रिया कुम्भीनसीति या ॥ विश्वावसोरपत्यं सा ह्यनलायां महाप्रभा ॥१७॥ तस्याः पुत्रो महावीर्यो
लवणो नाम दारुणः ॥ बाल्यात्प्रभृति दुष्टात्मा पापान्येव समाचरत् ॥१८॥ तं पुत्रं दुर्विनीतं तु दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः
॥ मधुः स शोकमापेदे न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥१९॥ स विहाय त्विमं लोकं प्रविष्टो वरुणालयम् ॥ शूलं निवेश्य
लवणो वरं तस्मै न्यवेदयत् ॥२०॥ स प्रभावेन शूलस्य दौरात्म्येनात्मनस्तथा ॥ संतापयति लोकांस्त्रीन्विशेषेण च
तापसान् ॥२१॥ एवंप्रभावो लवणः शूलं चैव तथाविधम् ॥ श्रुत्वा प्रमाणं काकुत्स्थ त्वं हि नः परमा गतिः ॥२२॥
बहवः पार्थिवा राम भयार्तैर्ऋषिभिः पुरा ॥ अभयं याचिता वीर त्रातारं न च विद्महे॥२३॥ ते वयं रावणं श्रुत्वा हतं
सबलवाहनम् ॥ त्रातारं विद्महे तात नान्यं भुवि नराधिपम् ॥ तत्परित्रातुमिच्छामो लवणाद्भयपीडितान् ॥ २४ ॥

अनलायाः सुता रावणस्वसा पूर्वं मधुना हृतेति विभीषणेन रावणं प्रत्युक्ता । हिः प्रसिद्धौ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ स इति ॥ वरं न्यवेदयत् यावच्छूलं
तव हस्ते तावदवध्यत्वं तवेत्येवंरूपं वरवृत्तान्तम् ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ ॥

॥ २५ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ॥
अथ शत्रुघ्नस्य लवणासुरवधार्थं प्रेषणम्–तथेत्यादि ॥ १ ॥ राघवस्येति ॥ यथा ववृधे यादृगाहारादिना वर्धते स्म तथा निवेदयामासुः ॥ २ ॥ ३ ॥४॥

इति रामनिवेदितं तु ते भयजं कारणमुत्थितं च यत् ॥ विनिवारयितुं भवान् क्षमः कुरु तं काममहीनविक्रम ॥२५॥
इत्युत्तरश्रीरामायणे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥
तथोक्ते तानृषीन्रामः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥ किमाहारः किमाचारो लवणः क्व च वर्तते ॥ १ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा
ऋषयः सर्व एव ते ॥ ततो निवेदयामासुर्लवणो ववृधे यथा ॥ २ ॥ आहारः सर्वसत्त्वानि विशेषेण च तापसाः ॥
आचारो रौद्रता नित्यं वासो मधुवने तथा ॥ ३ ॥ हत्वा बहुसहस्राणि सिंहव्याघ्रमृगद्विपान् ॥ मानुषांश्चैव कुरुते
नित्यमाहारमाह्निकम् ॥४॥ ततोन्तराणि सत्त्वानि खादते स महाबलः ॥ संहारे समनुप्राप्ते व्यादितास्य इवान्तकः
॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यमुवाच स महामुनीन् ॥ घातयिष्यामि तद्रक्षो ह्यपगच्छतु वो भयम् ॥ ६ ॥ प्रतिज्ञाय
तथा तेषां मुनीनामुग्रतेजसाम् ॥ स भ्रातॄन्त्सहितान्सर्वानुवाच रघुनन्दनः ॥ ७ ॥ को हन्ता लवणं वीरः
कस्यांशः स विधीयताम् ॥ भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्य च धीमतः ॥ ८ ॥ राघवेणैवमुक्तस्तु भरतो वाक्यमब्रवीत्
॥ अहमेनं वधिष्यामि ममांशः स विधीयताम् ॥ ९ ॥ भरतस्य वचः श्रुत्वा धैर्यशौर्यसमन्वितम् ॥ लक्ष्मणावरजस्तस्थौ
हित्वा सौवर्णमासनम् ॥१०॥ शत्रुघ्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं प्रणिपत्य नराधिपम् ॥ कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो
रघुनन्दनः ॥११॥ आर्येण हि पुरा शून्या त्वयोध्या परिपालिता ॥ संतापं हृदये कृत्वा आर्यस्यागमनं प्रति ॥१२॥

॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ क्व इति ॥ कस्यांश इति पृष्ट्वा स्वयमेव निश्चिनोति–भरतस्येति ॥ ८ ॥ ९ ॥ भरतस्येति ॥ आसनं हित्वा आसनादुत्थायेत्यर्थः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ राज्य इति ॥ निवेशय अत्रैव नगर इति शेषः । अथवा तत्रैव तिष्ठेति भावः । अवेक्षसे अक्लेशनीयत्वेनेति शेषः ॥ १६ ॥ शूर इति ॥ निवेशने नूतनगृहनिर्माण इत्यर्थः॥१७॥ मधोस्तु नगरे त्वामभिषेक्ष्यामीत्यत्र हेतुमाह—यो हीति ॥ नृपं तत्रेति । उत्पाटितवंशनृपराज्य इत्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥ उत्तरं च न वक्तव्यमिति ॥ त्वत्समीप एव मया वस्तव्यमित्यादिकमित्यर्थः ॥ २० ॥ अभिषेकमिति ॥ विधिना मन्त्रेण च पुरस्कृतम् ॥

दुःखानि च बहूनीह ह्यनुभूतानि पार्थिव ॥ शयानो दुःखशय्यासु नन्दिग्रामेऽवसत्पुरा ॥ १३ ॥ फलमूलाशनो
भूत्वा जटी चीरधरस्तथा ॥ अनुभूयेदृशं दुःखमेष राघवनन्दनः ॥ प्रेष्ये मयि स्थिते राजन् न भूयः क्लेशमाप्नुयात्
॥१४॥ तथा ब्रुवति शत्रुघ्ने राघवः पुनरब्रवीत् ॥ एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम् ॥१५॥ राज्ये
त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे ॥ निवेशय महाबाहो भरतं यद्यवेक्षसे ॥ १६ ॥ शूरस्त्वं कृतविद्यश्च समर्थश्च
निवेशने ॥ १७ ॥ यो हि शत्रुं समुत्पाट्य पार्थिवस्य पुनः क्षये ॥ न विधत्ते नृपं तत्र नरकं स हि गच्छति
॥ १८ ॥ स त्वं हत्वा मधुसुतं लवणं पापनिश्चयम् ॥ राज्यं प्रशाधि धर्मेण वाक्यं मे यद्यवेक्षसे ॥ १९ ॥ उत्तरं
च न वक्तव्यं शूर वाक्यान्तरे मम ॥ बालेन पूर्वजस्याज्ञा कर्तव्या नात्र संशयः ॥२०॥ अभिषेकं च काकुत्स्थ प्रतीच्छस्व
मयोद्यतम् ॥ वसिष्ठप्रमुखैर्विप्रैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥२१॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण परां व्रीडामुपागमत् ॥ शत्रुघ्नो वीर्यसंपन्नो मन्दं मन्दमुवाच ह ॥ १ ॥ अधर्मं विद्म काकुत्स्थ ह्यस्मिन्नर्थे
नरेश्वर ॥ कथं तिष्ठत्सु ज्येष्ठेषु कनीयानभिषिच्यते ॥ २ ॥ ॥ ॥

॥ २१ ॥ इतिश्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ ॥
अथ रामेण स्वसन्निधावेव मधुराज्ये शत्रुघ्नमभिषिच्य लवणवधोपायोपदेशपूर्वकं तद्वधार्थं दिव्यास्त्रप्रदानम्—एवमित्यादि ॥ १ ॥ अधर्ममिति ॥ विद्म वेद्मीत्यर्थः । अस्मिन्नित्युक्तं विवृणोति—कथमित्यादि । तिष्ठत्सु ज्येष्ठेष्विति गुरुवैषम्यमार्षम् । कथमभिषिच्यते न कथमपि । अधर्म एवेत्यर्थः ॥ २ ॥

अवश्यमिति ॥ तव शासनं चावश्यं करणीयमित्यर्थः ॥३॥ त्वत्त इति ॥ मध्यमे भ्रातरि भरत इत्यर्थः । घोरं लवणं हन्तास्मीति प्रतिजानति सति । हि यस्मात् । मया उत्तरं ज्येष्ठवच उल्लङ्घ्य न वाच्यं वक्तुं न योग्यम् ॥४॥ व्याहृतमिति ॥ तथाप्यहं मृधे युद्धे लवणं हन्तास्मीति दुर्वचो व्याहृतं तस्यास्य मे दुरुक्तस्येयं दुर्गतिः दुष्टकार्यस्य प्राप्तिः । तच्च ज्येष्ठातिक्रमेण आत्माभिषेचनम् ॥५॥ उक्तमर्थं व्यावर्तयति—उत्तरं हीत्यादि ॥ ज्येष्ठेन भरतेनाभिहिते सति ततः परमुत्तरं न वक्तुमुचितमेव । किंचाधर्मसहितमपि । अत एव परलोकविवर्जितमपि । तव शासनं च दुरतिक्रममिति शेषः ॥६॥ फलितमाह—सोहमित्यादि ॥ भरतोक्तेः प्रथमं कृतोत्तरवचनः सोहं हे काकुत्स्थ, तव ज्येष्ठस्योत्तरं द्वितीयं न वक्ष्यामि । तत्र हेतुमाह—मेति । द्वितीयेन

अवश्यं करणीयं च शासनं पुरुषर्षभ ॥ तव चैव महाभाग शासनं दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥ त्वत्तो मया श्रुतं वीर
श्रुतिभ्यश्च मया श्रुतम् ॥ नोत्तरं हि मया वाच्यं मध्यमे प्रतिजानति ॥ ४ ॥ व्याहृतं दुर्वचो घोरं हन्तास्मि
लवणं मृधे ॥ तस्येयं मे दुरुक्तस्य दुर्गतिः पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥ उत्तरं हि न वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ॥
अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥ ६ ॥ सोहं द्वितीयं काकुत्स्थ न वक्ष्यामि तवोत्तरम् ॥ मा द्वितीयेन
दण्डो वै निपतेन्मयि मानद ॥ ७ ॥ कामकारो ह्यहं राजंस्तवास्मि पुरुषर्षभ ॥ अधर्मं जहि काकुत्स्थ मत्कृते
रघुनन्दन ॥ ८ ॥ एवमुक्ते तु शूरेण शत्रुघ्नेन महात्मना ॥ उवाच रामः संहृष्टो भरतं लक्ष्मणं तथा ॥ ९ ॥

ज्येष्ठप्रत्युत्तरेण दण्डो मयि मा निपतेत् । भरते जिगमिषत्यहं गमिष्यामीत्युत्तरेण प्रथमेन राज्याभिषेकापत्तिरूपो दण्डः पतितः । त्वया अभिषेकं प्रतीच्छेत्युक्ते तदनङ्गीकारोत्तरेण द्वितीयेन मयि दण्डो मा निपतेदिति भावः ॥७॥ फलितमाह—कामकार इति ॥ अहं तव कामकारोस्मि अभीष्टनियोगकर्तास्मि । मत्कृते मदनुष्ठितराज्याभिषेकस्वीकारे । अधर्मं ज्येष्ठातिक्रमेण राज्यप्राप्तिनिमित्तम् । काकुत्स्थेत्यत्रापि प्राधान्याल्लोकस्य अधर्मम् अधर्मबुद्धिम् जहि परिहर ॥८॥ एवमिति ॥ संहृष्ट इति । कृताभिषेकनियोगत्वादिति भावः । अभिषेकस्य संभारान् अभिषेकोपकरणानि । लक्ष्मणं भरतं तथेति । प्राधान्यात् सुमन्त्रादीनपीत्यर्थः । अन्यथाऽऽनयध्वमिति बहुवचनं विरुध्येत ॥ ९ ॥ ॥ ॥

॥१०॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ तत इति ॥ तेजः शत्रुसंहारोचितबलवीर्यम् ॥ १८ ॥ अयमिति ॥ अयं मया दीयमानः

संभारानभिषेकस्य आनयध्वं समाहिताः ॥ अद्यैव पुरुषव्याघ्रमभिषेक्ष्यामि राघवम् ॥ १० ॥ पुरोहितं च काकुत्स्थं नैगमानृत्विजस्तथा ॥ मन्त्रिणश्चैव तान्सर्वानानयध्वं ममाज्ञया ॥ ११ ॥ राज्ञः शासनमाज्ञाय तथाऽकुर्वन्महारथाः ॥ अभिषेकसमारम्भं पुरस्कृत्य पुरोधसम् ॥ प्रविष्टा राजभवनं राजानो ब्राह्मणास्तथा ॥ १२ ॥ तथाभिषेको ववृधे शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ संप्रहर्षकरः श्रीमान् राघवस्य पुरस्य च ॥ १३ ॥ अभिषिक्तस्तु शत्रुघ्नो बभौ चादित्यसंनिभः ॥ अभिषिक्तः पुरा स्कन्दः सेन्द्रैरिव मरुद्गणैः ॥१४॥ अभिषिक्ते तु शत्रुघ्ने रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ पौराः प्रमुदिताश्चासन् ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ॥१५॥ कौसल्या च सुमित्रा च मङ्गलं केकयी तथा ॥ चक्रुस्ता राजभवने याश्चान्या राजयोषितः ॥ १६ ॥ ऋषयश्च महात्मानो यमुनातीरवासिनः ॥ हतं लवणमाशंसुः शत्रुघ्नस्याभिषेचनात् ॥१७॥ ततोभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्कमारोप्य राघवः ॥ उवाच मधुरां वाणीं तेजस्तस्याभिपूरयन् ॥ १८ ॥ अयं शरस्त्वमोघस्ते दिव्यः परपुरंजयः ॥ अनेन लवणं सौम्य हन्तासि रघुनन्दन ॥ १९ ॥ सृष्टः शरोयं काकुत्स्थ यदा शेते महार्णवे ॥२०॥ स्वयम्भूरजितो देवो यन्नापश्यन्सुरासुराः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां तेनायंतु शरोत्तमः ॥ २१ ॥ सृष्टः क्रोधाभिभूतेन विनाशार्थं दुरात्मनोः ॥ मधुकैटभयोर्वीर विघाते वर्तमानयोः ॥ स्रष्टुकामेन लोकांस्त्रीन् तौ चानेन हतौ युधि ॥ २२ ॥ तौ हत्वा जनभोगार्थं कैटभं तु मधुं तथा ॥ अनेन शरमुख्येन ततो लोकांश्चकार सः ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ १९ ॥ अमोघत्वे हेतुमाह–सृष्ट इत्यादि ॥ २० ॥ २१ ॥ सृष्ट इति ॥ विघाते सृष्टिविघ्ने वर्तमानयोः तत्परयोरित्यर्थः । सृष्टः क्रोधाभिभूतेन विनाशे सर्वरक्षसाम् । मधुकैटभयोर्वीर विघाते सर्वरक्षसामिति च पाठः ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ ॥

नायमिति ॥ अनेन शरेण महान् त्रासो भवेदित्यलक्ष्यविषये महास्त्रप्रयोगे तदीयांश्च सर्वान् लक्षीकृत्य नाशयेदिति भावः । अनेन रावणादपि बलीयान् लवण इति सूचितम् । महान् ह्रासो भवेदिति च पाठः ॥ २४ ॥ गृहीतशूलस्य तस्य दुर्जयत्वात्तदग्रहणाय पुरप्रवेशनिरोधमुपदिशति—यच्च तस्येत्यादि ॥ मधोर्दत्तमित्यन्वयः ॥ २५ ॥ २६ ॥ यदेति ॥ युद्धमाकाङ्क्षन्निति । अनेन सहेति शेषः ॥ २७ ॥ स इति ॥ तमायुधविनाकृतम् आयुध

नायं मया शरः पूर्वं रावणस्य वधार्थिना ॥ मुक्तः शत्रुघ्न भूतानां महांस्त्रासो भवेदिति ॥ २४ ॥ यच्च तस्य महच्छूलं त्र्यम्बकेण महात्मना ॥ दत्तं शत्रुविनाशाय मधोरायुधमुत्तमम् ॥२५॥ स तं निक्षिप्य भवने पूज्यमानं पुनः पुनः ॥ दिशः सर्वाः समासाद्य प्राप्नोत्याहारमुत्तमम् ॥ २६ ॥ यदा तु युद्धमाकाङ्क्षन् कश्चिदेनं समाह्वयेत् ॥ तदा शूलं गृहीत्वा तं भस्म रक्षः करोति हि ॥ २७ ॥ स त्वं पुरुषशार्दूल तमायुधविनाकृतम् ॥ अप्रविष्टं पुरं पूर्वं द्वारि तिष्ठ धृतायुधः ॥ २८ ॥ अप्रविष्टं च भवनं युद्धाय पुरुषर्षभ ॥ आह्वयेथा महाबाहो ततो हन्तासि राक्षसम् ॥ २९ ॥ अन्यथा क्रियमाणे तु अवध्यः स भविष्यति ॥ यदि त्वेवंकृते वीर विनाशमुपयास्यति ॥३०॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं शूलस्य च विपर्ययः ॥ श्रीमतः शितिकण्ठस्य कृत्यं हि दुरतिक्रमम् ॥ ३१ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ॥

विवर्जितमुपलक्ष्येति शेषः ॥ २८ ॥ २९ ॥ अन्यथेति ॥ यदि त्वेवं कृत इति । यदा त्वेवमुक्तरीत्या कृतमनुष्ठितं भवति तदा त्वेवं कृते सति सः अवश्यं विनाशमुपयास्यति ॥ ३०॥ एतदिति ॥ विपर्ययः परिहार इत्यर्थः । श्रीमत इति । कृत्यमाज्ञापनम् । अत्र कश्चिज्जल्पति—अत्र रामेण दुरतिक्रमत्वं शूलिन उक्तमिति विष्णोरप्यधिको रुद्र इति तन्न । अवतारमर्यादया तादृशोक्तिसंभवाद्यथा ब्रह्मास्त्रबन्धने दुरतिक्रमो ब्रह्मणो महिमेत्यादि । यद्वा दुरतिक्रमं कृत्यं भगवतैव तस्य बहुमन्तव्यत्वादिति भावः ॥ ३१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥

अथ शत्रुघ्नप्रस्थापनम्–एवमित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ अन्तरेति ॥ अन्तरा मध्ये निवासस्थले नानापण्यैरुपशोभिताः । नानावर्णोपशोभिता इति पाठे वर्णाः ब्राह्मणादयः । आपणवीथ्यस्तत्प्रवर्तकाः ॥ ३ ॥ हिरण्यस्येति ॥ पर्याप्तधनवाहन इत्यत्र धनं पश्वादयः ॥ ४ ॥ बलं चेति ॥ सुभृतं सुसंपूर्णम् । संभाषायाः सम्यग्वचनस्य संप्रदानेन उक्त्या ॥ ५ ॥ न हीति ॥ यत्र प्रदेशे तिष्ठसि स्थास्यसि तत्र वनप्रदेशे अर्था न सन्ति अतः सर्वं गृहीत्वा गन्तव्यमित्यर्थः ॥ ६ ॥ तत इति ॥ प्रस्थाप्य संस्थाप्य । मासमात्रोषितः अयोध्यायां पथि एक एव गच्छ ॥ ७ ॥ यथेति ॥ एवं हि पूर्वजेन संमन्त्रितो लवणवधार्थं सेनया सह शत्रुघ्नो यातीति वार्तापरिहारार्थं केवलं बलमेवाग्रे मुनिभिः सह गच्छतु । तच्च ग्रीष्मावशेषेण शनैः शनैर्गङ्गायाः परतीरे विशतु । ब्राह्मणैः समुद्योजितं बलं श्रुत्वा स विश्वस्य वर्तते । तत्रान्तरे त्वमस्मान्नगरात् केवलं ब्राह्मणान् गृहीत्वा अज्ञातं गत्वा तं जहीति । अशङ्कितं त्वदागतिशङ्कारहितम् यथा भवति तथा ॥ ८ ॥ नेति ॥ मृत्युर्मारकः । अन्यः अशङ्कितया तदुपरोधकव्यतिरिक्तः नास्ति । एतदेवोपपादयति–दर्शनमित्यादि ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमुक्त्वा च काकुत्स्थं प्रशस्य च पुनः पुनः ॥ पुनरेवापरं वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ १ ॥ इमान्यश्वसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभ ॥ रथानां द्वे सहस्रे च गजानां शतमुत्तमम् ॥ २ ॥ अन्तरा पण्यवीथ्यश्च नानापण्योपशोभिताः ॥ अनुगच्छन्तु काकुत्स्थं तथैव नटनर्तकाः ॥ ३ ॥ हिरण्यस्य सुवर्णस्य नियुतं पुरुषर्षभ ॥ आदाय गच्छ शत्रुघ्न पर्याप्तधनवाहनः ॥४॥ बलं च सुभृतं वीर हृष्टपुष्टमनुद्धतम् ॥ संभाषासंप्रदानेन रञ्जयस्व नरोत्तम ॥ ५ ॥ न ह्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च बान्धवाः ॥ सुप्रीतो भृत्यवर्गश्च यत्र तिष्ठति राघव ॥ ६ ॥ ततो हृष्टजनाकीर्णां प्रस्थाप्य महतीं चमूम् ॥ एक एव धनुष्पाणिर्गच्छ त्वं मधुनो वनम् ॥७॥ यथा त्वां न प्रजानाति गच्छन्तं युद्धकाङ्क्षिणम् ॥ लवणस्तु मधोः पुत्रस्तथा गच्छेरशङ्कितम् ॥ ८ ॥ न तस्य मृत्युरन्योस्ति कश्चिद्धि पुरुषर्षभ ॥ दर्शनं योभिगच्छेत स वध्यो लवणेन हि ॥ ९ ॥

वसन्ते प्रस्थितस्यापि न स युद्धकाल इत्याह–स हीत्यादि ॥ वर्षारात्रे वर्षाकाले। समासान्त आर्षः । स हि काल इति । वर्षासु राजानः केपि युद्धाय न निर्गच्छन्तीति निर्भयो निःशूल एव चरति । अतः स एवास्य वधावसर इति भावः ॥ १० ॥ तर्हीदानीं निर्गमने किं प्रयोजनमित्यत्राह–महर्षीनिति ॥

स हि ग्रीष्मेपयाते तु वर्षारात्र उपागते ॥ हन्यास्त्वं लवणं सौम्य स हि कालोऽस्य दुर्मतेः ॥ १० ॥ महर्षींस्तु पुरस्कृत्य प्रयान्तु तव सैनिकाः ॥ यथा ग्रीष्मावशेषेण तरेयुर्जाह्नवीजलम् ॥ ११ ॥ तत्र स्थाप्य बलं सर्वं नदीतीरे समाहितः ॥ अग्रतो धनुषा सार्धं गच्छ त्वं लघुविक्रमः ॥ १२ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण शत्रुघ्नस्तान्महाबलान् ॥ सेनामुख्यान्समानीय ततो वाक्यमुवाच ह ॥ १३ ॥ एते वो गणिता वासा यत्र तत्र निवत्स्यथ ॥ स्थातव्यं चाविरोधेन यथा बाधा न कस्यचित् ॥ १४ ॥ तथा तांस्तु समाज्ञाप्य प्रस्थाप्य च महद्बलम् ॥ कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं चाभ्यवादयत् ॥ १५ ॥ रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिरसाभिप्रणम्य च ॥ रामेण चाभ्यनुज्ञातः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणं भरतं चैव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ पुरोहितं वसिष्ठं च शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ॥ प्रदक्षिणमथो कृत्वा निर्जगाम महाबलः ॥ १७ ॥ प्रस्थाप्य सेनामथ सोग्रतस्तदा गजेन्द्रवाजिप्रवरौघसंकुलाम् ॥ उवास मासन्तु नरेन्द्रपार्श्वतस्त्वथ प्रयातो रघुवंशवर्धनः ॥ १८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे चतुष्षष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ ॥

प्रस्थाप्य तु बलं सर्वं मासमात्रोषितः पथि ॥ एक एवाशु शत्रुघ्नो जगाम त्वरितं तदा ॥ १ ॥ द्विरात्रमन्तरे शूर उष्य राघवनन्दनः ॥ वाल्मीकेराश्रमं पुण्यमगच्छद्वासमुत्तमम् ॥ २ ॥ ॥ ॥

॥ ११ ॥ तत्रेति ॥ तत्र जाह्नवीपरतीरे । अग्रतः परमार्ग इत्यर्थः । धनुषा सार्धं नान्येन बलेनेत्यर्थः ॥ १२ ॥ १३ ॥ एत इति ॥ एते प्रसिद्धा इत्यर्थः । वः युष्माकम् । वासा गणिताः । यत्र यत्र गणिते वासे निवत्स्यथ तत्र तत्राविरोधेनैव स्थातव्यम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुष्षष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

प्रस्थाप्येत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ रामेण यथाज्ञप्तगमनं संग्रहेणोक्त्वा अयोध्यातो द्विरात्रगमनानन्तरवृत्तमाह–भगवन्निति ॥ वारुणीं वरुणपालिताम् । दारुणां दिशमिति पाठे दारुणां लवणाधिष्ठितत्वादिति भावः ॥ ४ ॥ शत्रुघ्नस्येति ॥ प्रहस्येति । अनिवेदितमपि शत्रुघ्नागमननिमित्तं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः ॥ ५ ॥

सोभिवाद्य महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥ कृताञ्जलिरथो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥ भगवन्वस्तुमिच्छामि
गुरोः कृत्यादिहागतः ॥ श्वः प्रभाते गमिष्यामि प्रतीचीं वारुणीं दिशम् ॥ ४ ॥ शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य
मुनिपुङ्गवः ॥ प्रत्युवाच महात्मानं स्वागतं ते महायशः ॥ ५ ॥ स्वमाश्रममिदं सौम्य राघवाणां कुलस्य हि ॥
आसनं पाद्यमर्घ्यं च निर्विशङ्कः प्रतीच्छ मे ॥ ६ ॥ प्रतिगृह्य तदा पूजां फलमूलं च भोजनम् ॥ भक्षयामास काकुत्स्थस्तृप्तिं
च परमां गतः ॥ ७ ॥ स भुक्त्वा फलमूलं च महर्षिं तमुवाच ह ॥ इयं यज्ञविभूतिस्ते कस्याश्रमसमीपतः
॥ ८ ॥ तत्तस्य भाषितं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ शत्रुघ्न शृणु यस्येदं बभूवायतनं पुरा ॥ ९ ॥ युष्माकं
पूर्वको राजा सुदासस्तस्य भूपतेः ॥ पुत्रो वीरसहो नाम वीर्यवानतिधार्मिकः ॥ १० ॥ स बाल एव सौदासो मृगयामुपचक्रमे
॥ चञ्चूर्यमाणं ददृशे स शूरो राक्षसद्वयम् ॥ ११ ॥ शार्दूलरूपिणौ घोरौ मृगान् बहुसहस्रशः ॥ भक्षमाणावसन्तुष्टौ
पर्याप्तिं नैव जग्मतुः ॥ १२ ॥ स तु तौ राक्षसौ दृष्ट्वा निर्मृगं च वनं कृतम् ॥ क्रोधेन महताऽविष्टो जघानैकं
महेषुणा ॥ १३ ॥ विनिपात्य तमेकं तु सौदासः पुरुषर्षभः ॥ विज्वरो विगतामर्षो हतं रक्षो ह्युदैक्षत ॥ १४ ॥ ॥

स्वमिति ॥ राघवाणां कुलस्य स्वं स्वभूतम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ स इति ॥ इयं यज्ञविभूतिस्ते कस्याश्रमसमीपत इति । तवाश्रमसमीपतः इयं वर्तमाना यज्ञविभूतिः यज्ञस्य समृद्धिः कस्य यजमानस्य ॥ ८ ॥ तदिति ॥ आयतनं यज्ञायतनम् ॥ ९ ॥ १० ॥ स इति ॥ ञ्चूर्यमाणं मुहुर्मुहुः चरन्तम् । चरतेर्यङन्ताच्छानच् । "उत्परस्यातः" इत्युत्त्वम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ स इति ॥ निर्मृगं कृतं वनं च दृष्ट्वेत्यनुकर्षः ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ ॥

निरीक्षमाणं तं दृष्ट्वा सहायं तस्य रक्षसः ॥ सन्तापमकरोद्घोरं सौदासं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥ यस्मादनपराधं त्वं सहायं मम जघ्निवान् ॥ तस्मात्तवापि पापिष्ठ प्रदास्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वा तु तद्रक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ कालपर्याययोगेन राजा मित्रसहोभवत् ॥ १७ ॥ राजा तु यजते यज्ञमस्याश्रम समीपतः ॥ अश्वमेधं महायज्ञं तं वसिष्ठोभ्यपालयत् ॥ १८ ॥ तत्र यज्ञो महानासीत् बहुवर्षगणायुतः ॥ समृद्धः परया लक्ष्म्या देवयज्ञसमोभवत् ॥ १९ ॥ अथावसाने यज्ञस्य पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ वसिष्ठरूपी राजानमिति होवाच राक्षसः ॥ २० ॥ अस्य यज्ञस्य जातोन्तो सामिषं भोजनं मम ॥ दीयतामिह शीघ्रं वै नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं रक्षसा ब्रह्मरूपिणा ॥ भक्ष्यसंस्कारकुशलमुवाच पृथिवीपतिः ॥ २२ ॥ हविष्यं सामिषं स्वादु यथा भवति भोजनम् ॥ तथा कुरुष्व शीघ्रं वै परितुष्येद्यथा गुरुः ॥ २३ ॥ शासनात्पार्थिवेन्द्रस्य सूदः संभ्रान्तमानसः ॥ स राक्षसः पुनस्तत्र सूदवेषमथाकरोत् ॥ २४ ॥ स मानुषमथो मांसं पार्थिवाय न्यवेदयत् ॥ इदं स्वादु हविष्यं च सामिषं चान्नमाहृतम् ॥ २५ ॥ स भोजनं वसिष्ठाय पत्न्या सार्धमुपाहरत् ॥ मदयन्त्या नरव्याघ्र सामिषं रक्षसाहृतम् ॥ २६ ॥ ज्ञात्वा तदामिषं विप्रो मानुषं भाजनं गतम् ॥ क्रोधेन महताविष्टो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ २७ ॥ यस्मात्त्वं भोजनं राजन् ममैतद्दातुमिच्छसि ॥ तस्माद्भोजनमेतत्ते भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥ ततः क्रुद्धस्तु सौदासस्तोयं जग्राह पाणिना ॥ वसिष्ठं शप्तुमारेभे भार्या चैनमवारयत् ॥ २९ ॥ ॥

निरीक्षमाणमिति ॥ निरीक्षमाणं स्वसहायभूतं द्वितीयरक्षो निरीक्षमाणं प्रथमरक्षो दृष्ट्वा ॥ १५ ॥ १६ ॥ एवमिति ॥ कालपर्याययोगेन बहुकालातिवाहजकर्मयोगेन युक्तोभवत् ॥१७॥ राजेति ॥ अस्याश्रमसमीपत इति । अस्याश्रमस्येत्यविभक्तिकनिर्देशः ॥१८॥१९॥ २० ॥२१॥ तदिति ॥ भक्ष्यसंस्कारकुशलमुवाचेति । भोजनार्थमिति शेषः ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ स इति ॥ मदयन्त्या राजपत्न्या ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥

॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ स इति ॥ ब्रह्मरूपिणा वसिष्ठरूपधरेण यदुक्तं तद्वचो वसिष्ठं प्रति प्रोवाच ॥ ३३ ॥ तदिति ॥ तत्पार्थिवेन्द्रस्य प्रणिपातवाक्यं रक्षोविकृतं च श्रुत्वा। रक्षसाधिकृतमिति पाठे अधिकृतं राजद्वेषमाश्रित्य कृतम् ॥३४॥ ३५ ॥ काल इति ॥ व्यतीतं न स्मरिष्यसि। मया हठाच्छप्तं न मनसि कुर्वित्यर्थः॥३६॥३७॥तस्येति ॥ कल्माषपाद इति तस्य नामान्तरम्। शापानन्तरम् मित्रसहः कुपितः सन् वसिष्ठं शप्तुं जलमाददे।

राजन्प्रभुर्यतोस्माकं वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ प्रतिशप्तुंन शक्तस्त्वं देवतुल्यं पुरोधसम् ॥ ३० ॥ ततः क्रोधमयं तोयं तेजोबलसमन्वितम् ॥ व्यसर्जयत धर्मात्मा ततः पादौ सिषेच च ॥ ३१ ॥ तेनास्य राज्ञस्तौ पादौ तदा कल्माषतां गतौ ॥ तदाप्रभृति राजासौ सौदासः सुमहायशाः ॥ कल्माषपादः संवृत्तः ख्यातश्चैव तथा नृपः ॥ ३२ ॥ स राजा सह पत्न्या वै प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥ पुनर्वसिष्ठं प्रोवाच यदुक्तं ब्रह्मरूपिणा ॥ ३३ ॥ तच्छ्रुत्वा पार्थिवेन्द्रस्य रक्षसाधिकृतं च तत् ॥ पुनः प्रोवाच राजानं वसिष्ठः पुरुषर्षभम् ॥ ३४ ॥ मया रोषपरीतेन यदिदं व्याहृतं वचः ॥ नैतच्छक्यं वृथा कर्तुं प्रदास्यामि च ते वरम् ॥ ३५ ॥ कालो द्वादशवर्षाणि शापस्यान्तो भविष्यति ॥ मत्प्रसादाच्च राजेन्द्र व्यतीतं न स्मरिष्यसि ॥ ३६ ॥ एवं स राजा तं शापमुपभुज्यारिसूदनः ॥ प्रतिलेभे पुना राज्यं प्रजाश्चैवान्वपालयत् ॥ ३७ ॥ तस्य कल्माषपादस्य यज्ञस्यायतनं शुभम् ॥ आश्रमस्य समीपेस्य यन्मां पृच्छसि राघव ॥ ३८ ॥ तस्य तां पार्थिवेन्द्रस्य कथां श्रुत्वा सुदारुणाम् ॥ विवेश पर्णशालायां महर्षिमभिवाद्य च ॥ ३९ ॥

इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

स्वयमेव मां नियुज्य कथं पुनः स्वयमेव कुप्यतीति। तदा तद्भार्या समागत्य सर्वथा गुरुर्न प्रतिशापार्ह इति प्रतिषिद्धवती। ततो राजा तद्वचः साध्विति मत्वा शापाय गृहीतं जलं स्वपादे प्रक्षिप्तवान्। तदाप्रभृति कल्माषपादनामाभवत्। कल्माषं कोपगृहीतशापजलकृतनीलरूपता ॥ ३८॥ ३९॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

यामेवेत्यादि ॥ यस्यां रात्र्यामित्यर्थः । दारकद्वयं पुत्रद्वयम् । प्रसूता प्रसूतवती ॥ १ ॥ २ ॥ भगवन्निति ॥ भूतविनाशिनीं बालग्रहविनाशिनीम् ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ५ ॥ कुशमुष्टिमिति ॥ लवं चैवेति । अधःप्रदेशलूनकुशमुष्ट्येकदेशमित्यर्थः । कुशमुष्ट्यग्राधोभागाभ्यां क्रमाज्ज्येष्ठकनिष्ठयोः प्रमार्जनमिति द्रष्टव्यम् ॥ ६ ॥ य इति ॥ निर्मार्जनीयः निर्मार्जनार्हो यतो जातः ततः कुश इति नामाकरोदिति शेषः ॥ ७ ॥ यश्चापर इति ॥ ताभ्यां तयोः कुमारयोर्मध्य इत्यर्थः ।

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालामुपाविशत् ॥ तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥ १ ॥ ततोर्धरात्रसमये बालका मुनिदारकाः ॥ वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायाः प्रसवं शुभम् ॥ २ ॥ भगवन् रामपत्नी सा प्रसूता दारकद्वयम् ॥ ततो रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम् ॥ ३ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा महर्षिः समुपागमत् ॥ बालचन्द्रप्रतीकाशौ देवपुत्रौ महौजसौ ॥ ४ ॥ जगाम तत्र हृष्टात्मा ददर्श च कुमारकौ ॥ भूतघ्नीं चाकरोत्ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम् ॥ ५ ॥ कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः ॥ वाल्मीकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम् ॥ ६ ॥ यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः ॥ निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत् ॥ ७ ॥ यश्चापरो भवेत्ताभ्यां लवेन स समाहितः ॥ निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लव इत्येव नामतः ॥ ८ ॥ एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ ॥ मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः ॥ ९ ॥ तां रक्षां जगृहुस्ताश्च मुनिहस्तात्समाहिताः ॥ अकुर्वंश्च ततो रक्षां तयोर्विगतकल्मषाः ॥ १० ॥ तथा तां क्रियमाणां च वृद्धाभिर्जन्म नाम च ॥ संकीर्तनं च रामस्य सीतायाः प्रसवौ शुभौ ॥ ११ ॥

लवेन लूनकुशमुष्ट्यधोभागेन । वृद्धाभिर्मार्जनीय इति । सूतिकागृहमध्ये ऋषिप्रवेशाभावात् ॥ ८ ॥ एवमिति ॥ ख्यातियुक्तौ भविष्यत इति । यमजातकौ यमलौ ॥ ९ ॥ तामिति ॥ ततः अनन्तरम् । समाहितास्ता वृद्धाः मुनिहस्तात्तां मुनिना दीयमानां रक्षां च जगृहुः । पुत्रयोः प्रदानार्थमिति शेषः । रक्षामकुर्वन्निति । वृद्धा इति शेषः ॥ १० ॥ तथेति ॥ जन्म च नाम चेति । यद्यपि जातकर्म पुत्रजन्मदिवसे कर्तव्यं न तु नामकरणं त-

थाप्येवंनामकौ भविष्यत इति ऋषिवचनात्तच्छ्रवणमात्रमिति मन्तव्यम्। संकीर्तनं च रामस्येति। रामपत्नीप्रसूतेति मुनिदारकवचः श्रवणात्। वाल्मीकेः पर्णशालां गत्वा सामान्यतो दिष्ट्या दृष्टेति सूचयन् मुनिं प्रति हर्षेणाह—अर्धरात्र इत्यादिना ॥ अनेन सीता विसृष्टेति रामादित्रयव्यतिरिक्तैर्न ज्ञातमिति सूचितम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ तथेति ॥ वर्षासु भवा वार्षिकी तत्रापि श्रावणी श्रावणमासवर्तिनी काचिद्रात्रिरिति। लघुविक्रम इत्यग्रेण संबन्धः। लघुविक्रमेति पाठे शीघ्रगमनेति रात्रिविशेषणम् ॥ १३ ॥ प्रभात इति ॥ मुनिं वाल्मीकिम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ स इति ॥ मुनिभिः सार्धमित्यनेन सेना गङ्गातीर एव स्थापितेति सूचितम् ॥ १६ ॥ १७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरा॰मणि॰ उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ अथेत्यादि ॥ प्रवृत्तायामागतायामित्यर्थः। पप्रच्छ शूलवृत्तान्तमिति शेषः ॥ १ ॥ शूलस्येति ॥ अनेन द्वन्द्वयुद्धमुपागताः के पूर्वं शूलेन निपातिता इति पप्रच्छेति योजना। ब्रह्मन्नित्यारभ्य प्रश्नवचनम्। अनेनेति लवणः परामृश्यते। अनेन लवणबलं शूलबलं च पृष्टं भवति ॥ २ ॥ ३ ॥

अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत्प्रियम् ॥ पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ १२ ॥ तथा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघुविक्रमा ॥ १३ ॥ प्रभाते सुमहावीर्यः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥ मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः ॥ १४ ॥ स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोषितः पथि ॥ ऋषीणां पुण्यकीर्तीनामाश्रमे वासमभ्ययात् ॥ १५ ॥ स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुखैर्नृपः ॥ कथाभिरभिरूपाभिर्वासं चक्रे महायशाः ॥ १६ ॥ सकाञ्चनाद्यैर्मुनिभिः समेतो रघुप्रवीरो रजनीं तदानीम् ॥ कथाप्रकारैर्बहुभिर्महात्मा विरामयामास नरेन्द्रसूनुः ॥ १७ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

अथ रात्र्यां प्रवृत्तायां शत्रुघ्नो भृगुनन्दनम् ॥ पप्रच्छ च्यवनं विप्रं लवणस्य यथाबलम् ॥ १ ॥ शूलस्य च बलं ब्रह्मन् के च पूर्वं विनाशिताः ॥ अनेन शूलमुख्येन द्वन्द्वयुद्धमुपागताः ॥ २ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ प्रत्युवाच महातेजाश्च्यवनो रघुनन्दनम् ॥ ३ ॥

असंख्येयानीति ॥ अस्य शूलस्य यानि शत्रुसंहारकर्माणि तान्यसंख्येयानि । तत्र प्रसिद्धमेकं दर्शयति—इक्ष्वाकुवंशप्रभव इति । यद्वृत्तं यद्व्यापारम् तच्छृणुष्व ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ अर्धेति ॥ शक्रस्यार्धासनेन अर्धराज्येन च युक्तः पार्थिवो राजा भूत्वा सुरगणैर्वन्द्यमानः स्थास्य इति प्रतिज्ञां

असंख्येयानि कर्माणि यान्यस्य रघुनन्दन ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवे यद्वृत्तं तच्छृणुष्व मे ॥ ४ ॥ अयोध्यायां पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली ॥ मान्धातेति स विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥५॥ स कृत्वा पृथिवीं कृत्स्नां शासने पृथिवीपतिः ॥ सुरलोकमितो जेतुमुद्योगमकरोन्नृपः ॥ ६ ॥ इन्द्रस्य च भयं तीव्रं सुराणां च महात्मनाम् ॥ मान्धातरि कृतोद्योगे देवलोकजिगीषया ॥ ७॥ अर्धासनेन शक्रस्य राज्यार्धेन च पार्थिवः ॥ वन्द्यमानः सुरगणैः प्रतिज्ञामध्यरोहत ॥८॥ तस्य पापमभिप्रायं विदित्वा पाकशासनः ॥ सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच युवनाश्वजम् ॥ ॥९॥ राजा त्वं मानुषे लोके न तावत्पुरुषर्षभ ॥ अकृत्वा पृथिवीं वश्यां देवराज्यमिहेच्छसि ॥ १० ॥ यदि वीर समग्रा ते मेदिनी निखिला वशे ॥ देवराज्यं कुरुष्वेह सभृत्यबलवाहनः ॥११॥ इन्द्रमेवं ब्रुवाणं तं मान्धाता वाक्यमब्रवीत् ॥ क्व मे शक्र प्रतिहतं शासनं पृथिवीतले ॥ १२ ॥ तमुवाच सहस्राक्षो लवणो नाम राक्षसः ॥ मधुपुत्रो मधुवने न तेज्ञां कुरुतेनघ ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रियं घोरं सहस्राक्षेण भाषितम् ॥ व्रीडितोवाङ्मुखो राजा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १४ ॥ आमन्त्र्य तु सहस्राक्षं ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥ पुनरेवागमच्छ्रीमानिमं लोकं नरेश्वरः ॥ ॥ १५ ॥ स कृत्वा हृदयेऽमर्षं सभृत्यबलवाहनः ॥ आजगाम मधोः पुत्रं वशे कर्तुमरिन्दमः ॥ १६ ॥ स काङ्क्षमाणो लवणं युद्धाय पुरुषर्षभः ॥ दूतं संप्रेषयामास सकाशं लवणस्य हि ॥ १७ ॥ ॥

कृत्वा दिवमध्यारोहत ॥ ८ ॥ ९ ॥राजा त्वमिति ॥ तावत्प्रथमतः । मानुष एव लोके सर्वात्मना न राजासि स त्वं पृथिवीमेव वश्यामकृत्वा कथमिह देवराज्यमिच्छसि ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ तमिति ॥ तेज्ञामिति संधिरार्षः । ते आज्ञाम् ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

॥१८॥ चिरायमाण इति ॥ चिरायमाणे विलम्बं कुर्वाणे ॥१९॥२०॥२१॥२२॥ अथ श्रुतशूलबलं प्रति स्वविजयसन्देहनिवृत्तय आह—श्वः प्रभात इत्यादि

स गत्वा विप्रियाण्याह बहूनि मधुनः सुतम् ॥ वदन्तमेवं तं दूतं भक्षयामास राक्षसः ॥ १८ ॥ चिरायमाणे दूते तु
राजा क्रोधसमन्वितः ॥ अर्दयामास तद्रक्षः शरवृष्ट्या समन्ततः ॥ १९ ॥ ततः प्रहस्य तद्रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ॥
वधाय सानुबन्धस्य मुमोचायुधमुत्तमम् ॥ २० ॥ तच्छूलं दीप्यमानन्तु सभृत्यबलवाहनम् ॥ भस्मीकृत्वा
नृपं भूयो लवणस्यागमत्करम् ॥ २१ ॥ एवं स राजा सुमहान् हतः सबलवाहनः ॥ शूलस्य तु बलं सौम्य अप्रमेयमनुत्तमम् ॥ २२ ॥ श्वः प्रभाते तु लवणं वधिष्यसि न संशयः ॥ अंगृहीतायुधं क्षिप्रं ध्रुवो हि विजयस्तव ॥
॥ २३ ॥ लोकानां स्वस्ति चैव स्यात्कृते कर्मणि च त्वया ॥ २४ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं लवणस्य दुरात्मनः ॥ शूलस्य च बलं घोरमप्रमेयं नरर्षभ ॥ विनाशश्चैव मान्धातुर्यत्तेनाभूच्च पार्थिव ॥ २५ ॥ त्वं श्वः प्रभाते लवणं महात्मन्वधिष्यसे नात्र तु संशयो मे ॥ शूलं विना निर्गतमामिषार्थे ध्रुवो जयस्ते भविता नरेन्द्र ॥ २६ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ ॥ ॥ ॥

कथां कथयतां तेषां जयं चाकाङ्क्षतां शुभम् ॥ व्यतीता रजनी शीघ्रं शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ १ ॥ ततः प्रभाते विमले तस्मिन्काले स राक्षसः ॥ निर्गतस्तु पुराद्वीरो भक्ष्याहारप्रचोदितः ॥ २ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरः शत्रुघ्नो यमुनां
नदीम् ॥ तीर्त्वा मधुपुरद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठत ॥३॥ ततोर्धदिवसे प्राप्ते क्रूरकर्मा स राक्षसः ॥ आगच्छद्बहुसाहस्रं
प्राणिनां भारमुद्वहन् ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥
कथामित्यादि ॥ १ ॥ तत इति ॥ भक्ष्याहारप्रचोदितः भक्ष्यस्याहारः आहरणं तेन प्रचोदितः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

तत इति ॥ अनेनायुधेन ॥५॥६॥७॥ तस्येति ॥ रोषादिति । दुःखानन्दाभ्यामिव रोषादप्यश्रु जायते ॥८॥ तस्येति ॥ गात्रैः विनिष्पतन्निति । गात्रेभ्यो विनिष्पतन्नित्यर्थः ॥९॥१०॥ ११ ॥ तस्येति ॥ मे मत्तो जीवन्न गमिष्यसि ॥ १२ ॥ १३ ॥ मम मातृष्वसुरिति ॥ अयमर्थः पूर्वमुक्तः ॥ १४ ॥ तच्चे-

ततो ददर्श शत्रुघ्नं स्थितं द्वारि धृतायुधम् ॥ तमुवाच ततो रक्षः किमनेन करिष्यसि ॥ ५ ॥ ईदृशानां सहस्राणि सायुधानां नराधम ॥ भक्षितानि मया रोषात्कालमाकाङ्क्षसे नु किम् ॥ ६ ॥ आहारश्चास्य संपूर्णो ममायं पुरुषाधम ॥ स्वयं प्रविष्टोद्य मुखं कथमासाद्य दुर्मते ॥ ७ ॥ तस्यैवं भाषमाणस्य हसतश्च मुहुर्मुहुः ॥ शत्रुघ्नो वीर्यसंपन्नो रोषादश्रूण्यवासृजत् ॥८॥ तस्य रोषाभिभूतस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ तेजोमया मरीच्यस्तु सर्वगात्रैर्विनिष्पतन् ॥ ९ ॥ उवाच च सुसंक्रुद्धः शत्रुघ्नस्तं निशाचरम् ॥ योद्धुमिच्छामि दुर्बुद्धे द्वन्द्वयुद्धं त्वया सह ॥ १० ॥ पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता रामस्य धीमतः ॥ शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो वधाकाङ्क्षी तवागतः ॥ ११ ॥ तस्य मे युद्धकामस्य द्वन्द्वयुद्धं प्रदीयताम् ॥ शत्रुस्त्वं सर्वजीवानां न मे जीवन् गमिष्यसि ॥ १२ ॥ तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु राक्षसः प्रहसन्निव ॥ प्रत्युवाच नरश्रेष्ठं दिष्ट्या प्राप्तोसि दुर्मते ॥ १३ ॥ मम मातृष्वसुर्भ्राता रावणो राक्षसाधिपः ॥ हतो रामेण दुर्बुद्धे स्त्रीहेतोः पुरुषाधम ॥ १४ ॥ तच्च सर्वं मया क्षान्तं रावणस्य कुलक्षयम् ॥ अवज्ञां पुरतः कृत्वा मया यूयं विशेषतः ॥१५॥ निहताश्च हि मे सर्वे परिभूतास्तृणं यथा ॥ भूताश्चैव भविष्याश्च यूयं च पुरुषाधमाः ॥१६॥ तस्य ते युद्धकामस्य युद्धं दास्यामि दुर्मते॥तिष्ठ त्वं च मुहूर्तं तु यावदायुधमानये॥ईप्सितं यादृशं तुभ्यं सज्जये यावदायुधम् ॥१७॥

ति ॥ मयावज्ञां पुरतः कृत्वा यूयं विशेषतः क्षान्ता इति संबन्धः । मया पूर्वं विशेषत इति पाठान्तरम् ॥ १५ ॥ निहताश्चेति ॥ भूताश्च भविष्याश्च वर्तमानाश्च पुरुषाः सर्वेपि मे मया निहताः । केचित्परे तृणं यथा भवति तथा परिभूताश्च । अलक्षीकृताश्च ॥ १६ ॥ तस्येति ॥ यादृशं तुभ्यमीप्सितं तादृशं युद्धं दास्यामि । सज्जये यावदायुधमिति । आयुधं गृहीत्वा सज्जयिष्ये तावत्तिष्ठेत्यर्थः ॥ १७ ॥

तमिति ॥ तमायुधं जिघृक्षुमित्यर्थः ॥ १८ ॥ यो हीति ॥ प्रसरमवकाशम् । शूलग्रहणार्थमित्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरा-

तमुवाचाथ शत्रुघ्नः क्व मे जीवन् गमिष्यसि ॥ शत्रुर्यदृच्छया दृष्टो न मोक्तव्यः कृतात्मना ॥ १८ ॥ यो हि विक्लवया बुद्ध्या प्रसरं शत्रवे ददौ ॥ स हतो मन्दबुद्धित्वाद्यथा कापुरुषस्तथा ॥ १९ ॥ तस्मात्सुदृष्टं कुरु जीवलोकं शरैः शितैस्त्वां विविधैर्नयामि ॥ यमस्य गेहाभिमुखं हि पापं रिपुं त्रिलोकस्य च राघवस्य ॥ २० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥ पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य दन्तान् कटकटाय्य च ॥ लवणो रघुशार्दूलमाह्वयामास चासकृत् ॥ २ ॥ तमाह्वयन्तं सौमित्रिर्लवणं घोरदर्शनम् ॥ शत्रुघ्नो देवशत्रुघ्न इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ न शत्रुघ्नस्तथा जातो यथान्ये निर्जितास्त्वया ॥ तदद्य बाणाभिहतो व्रज त्वं यमसादनम् ॥ ४ ॥ ऋषयोप्यद्य पापात्मन् मया त्वां निहतं रणे ॥ पश्यन्तु विप्रा विद्वांसस्त्रिदशा इव रावणम् ॥ ५ ॥ त्वयि मद्बाणनिर्दग्धे पतितेऽद्य निशाचर ॥ पुरे जनपदे चापि क्षेममेव भविष्यति ॥ ६ ॥ अद्य मद्बाहुनिष्क्रान्तः शरो वज्रनिभाननः ॥ प्रवेक्ष्यते ते हृदयं पद्ममंशुरिवार्कजः ॥ ७ ॥ एवमुक्तो महावृक्षं लवणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ शत्रुघ्नोरसि चिक्षेप सच तं शतधाऽच्छिनत् ॥ ८ ॥ तद्दृष्ट्वा विफलं कर्म राक्षसः पुनरेव तु ॥ पादपान्सुबहून् गृह्य शत्रुघ्नायासृजद्बली ॥ ९ ॥ शत्रुघ्नश्चापि तेजस्वी वृक्षानापततो बहून् ॥ त्रिभिश्चतुर्भिरेकैकं चिच्छेद नतपर्वभिः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

मायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ ॥

अथ लवणवधः—तच्छ्रुत्वेत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ शत्रुघ्नश्चेति ॥ एकैकमिति । वृक्षमिति शेषः ॥ १० ॥ ॥

॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तमिति ॥ लब्धान्तरमपि शूलग्रहणं प्राति लब्धावकाशमपत्यिर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ असृगिति ॥ असृक्-

ततो बाणमयं वर्षं व्यसृजद्राक्षसोरसि ॥ शत्रुघ्नो वीर्यसंपन्नो विव्यथे न स राक्षसः ॥ ११ ॥ ततः प्रहस्य लवणो वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ शिरस्यभ्यहनच्छूरं स्रस्ताङ्गः स मुमोह वै ॥ १२ ॥ तस्मिन्निपतिते वीरे हाहाकारो महानभूत् ॥ ऋषीणां देवसंघानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ १३ ॥ तमवज्ञाय तु हतं शत्रुघ्नं भुवि पातितम् ॥ रक्षो लब्धान्तरमपि न विवेश स्वमालयम् ॥ १४ ॥ नापि शूलं प्रजग्राह तं दृष्ट्वा भुवि पातितम् ॥ ततो हत इति ज्ञात्वा तान् भक्षान्समुदावहत् ॥ १५ ॥ मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु पुनस्तस्थौ धृतायुधः ॥ शत्रुघ्नो वै पुरद्वारि ऋषिभिः संप्रपूजितः ॥ १६ ॥ ततो दिव्यममोघं तं जग्राह शरमुत्तमम् ॥ ज्वलन्तं तेजसा घोरं पूरयन्तं दिशो दश ॥१७॥ वज्राननं वज्रवेगं मेरुमन्दरसन्निभम् ॥ नतं पर्वसु सर्वेषु संयुगेष्वपराजितम् ॥ १८ ॥ असृक्चन्दनदिग्धाङ्गं चारुपत्रं पतत्रिणम् ॥ दानवेन्द्राचलेन्द्राणामसुराणां च दारणम् ॥ १९ ॥ तं दीप्तमिव कालाग्निं युगान्ते समुपस्थिते ॥ दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि परित्रासमुपागमन् ॥२०॥ सदेवासुरगन्धर्वं मुनिभिः साप्सरोगणम् ॥ जगद्धि सर्वमस्वस्थं पितामहमुपस्थितम् ॥ २१ ॥ उवाच देवदेवेशं वरदं प्रपितामहम् ॥ कच्चिल्लोकक्षयो देव संप्राप्तो वा युगक्षयः ॥ २२ ॥ नेदृशं दृष्टपूर्वं च न श्रुतं प्रपितामह ॥ देवानां भयसम्मोहो लोकानां संक्षयं प्रति ॥ २३ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ भयकारणमाचष्ट लोकानामभयङ्करः ॥ उवाच मधुरां वाणीं शृणुध्वं सर्वदेवताः ॥ २४ ॥ वधाय लवणस्याजौ शरः शत्रुघ्नधारितः ॥ तेजसा तस्य संमूढाः सर्वे स्म सुरसत्तमाः ॥ २५ ॥

चन्दनदिग्धाङ्गम् असृग्रूपैश्चन्दनैः लिप्तदेहम् । पतत्रिणं बाणम् । दानवेन्द्ररूपाः अचलेन्द्राः तेषां दारणम् ॥ १९ ॥ २०॥ २१ ॥ २२ ॥२३॥२४॥२५॥

॥ २६ ॥ एष इति ॥ तेन भगवतेत्यर्थः ॥ २७ ॥ एक एवेति ॥ महात्मनस्तस्य विष्णोरेषा शरमयी तनुरेव पूर्वा प्राचीनमूर्तिः । एषा एवेत्यसंधिरार्षः॥

एष पूर्वस्य देवस्य लोककर्तुः सनातनः ॥ शरस्तेजोमयो वत्स येन वै भयमागतम्॥२६॥एष वै कैटभस्यार्थे मधुनश्च महाशरः ॥ सृष्टो महात्मना तेन वधार्थे दैत्ययोस्तयोः ॥ २७ ॥ एक एव प्रजानाति विष्णुस्तेजोमयं शरम् ॥ एषा एव तनुः पूर्वा विष्णोस्तस्य महात्मनः ॥ २८॥ इतो गच्छत पश्यध्वं वध्यमानं महात्मना ॥ रामानुजेन वीरेण लवणं राक्षसोत्तमम् ॥ २९ ॥ तस्य ते देवदेवस्य निशम्य वचनं सुराः ॥ आजग्मुर्यत्र युध्येते शत्रुघ्नलवणावुभौ ॥ ३० ॥ तं शरं दिव्यसंकाशं शत्रुघ्नकरधारितम् ॥ ददृशुः सर्वभूतानि युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ ३१ ॥ आकाशमावृतं दृष्ट्वा देवैर्हि रघुनन्दनः ॥ सिंहनादं भृशं कृत्वा ददर्श लवणं पुनः ॥ ३२॥ आहूतश्च पुनस्तेन शत्रुघ्नेन महात्मना ॥ लवणः क्रोधसंयुक्तो युद्धाय समुपस्थितः ॥ ३३ ॥ आ कर्णात्स विकृष्याथ तद्धनुर्धन्विनां वरः ॥ तं मुमोच महाबाणं लवणस्य महोरसि ॥ ३४ ॥ उरस्तस्य विदार्याशु प्रविवेश रसातलम् ॥ ३५ ॥ गत्वा रसातलं दिव्यः शरो विबुधपूजितः ॥ पुनरेवागमत्तूणमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ॥ ३६ ॥ शत्रुघ्नशरनिर्भिन्नो लवणः स निशाचरः ॥ पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥ ३७ ॥ तच्च शूलं महत्तेन हते लवणराक्षसे ॥ पश्यतां सर्वदेवानां रुद्रस्य वशमन्वगात् ॥ ३८॥ एकेषुपातेन भृशं निपात्य लोकत्रयस्यापि रघुप्रवीरः ॥ विनिर्बभावुत्तमचापबाणस्तमः प्रणुद्येव सहस्ररश्मिः ॥ ३९ ॥ ततो हि देवा ऋषिपन्नगाश्च प्रपूजिरे ह्यप्सरसश्च सर्वाः ॥ दिष्ट्या जयो दाशरथेरवाप्तस्त्यक्त्वा भयं सर्प इव प्रशान्तः ॥ ॥ ४० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ॥

॥ २८ ॥ इत इति ॥ वध्यमानं लवणमिति संबन्धः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तश्रीरामायणव्याख्याने एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥

हते त्वित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ इयमिति ॥ मधुरा मनोहरा । निवेशं राजधानीत्वम् ॥ ५ ॥ तमिति ॥ शूरा सेना यस्यां सा शूरसेना ॥ ६ ॥७॥ सेति ॥ श्रावणेन श्रावणमासालम्बनेन । निवेशनम् स्थापनम् समारभत् समारभते स्म ॥ ८ ॥ सेति ॥ द्वादशमे द्वादश इत्यर्थः । पुरा पूर्वम् । प्रथमे

हते तु लवणे देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ ऊचुः सुमधुरां वाणीं शत्रुघ्नं शत्रुतापनम् ॥ १ ॥ दिष्ट्या ते विजयो वत्स दिष्ट्या लवणराक्षसः ॥ हतः पुरुषशार्दूल वरं वरय सुव्रत ॥ २ ॥ वरदास्तु महाबाहो सर्व एव समागताः ॥ विजयाकाङ्क्षिणस्तुभ्यममोघं दर्शनं हि नः ॥ ३ ॥ देवानां भाषितं श्रुत्वा शूरो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ प्रत्युवाच महाबाहुः शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ॥ ४ ॥ इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता ॥ निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेस्तु वरः परः ॥५॥ तं देवाः प्रीतमनसो बाढमित्येव राघवम् ॥ भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः ॥ ६ ॥ ते तथोक्त्वा महात्मानो दिवमारुरुहुस्तदा ॥ शत्रुघ्नोपि महातेजास्तां सेनां समुपानयत् ॥ ७ ॥ सा सेना शीघ्रमागच्छच्छ्रुत्वा शत्रुघ्नशासनम् ॥ निवेशनं च शत्रुघ्नः श्रावणेन समारभत् ॥ ८ ॥ सा पुरा दिव्यसंकाशा वर्षे द्वादशमे शुभे ॥ निविष्टा शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः ॥ ९ ॥ क्षेत्राणि सस्ययुक्तानि काले वर्षति वासवः ॥ अरोगवीरपुरुषा शत्रुघ्नभुजपालिता ॥ १० ॥ अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता ॥ शोभिता गृहमुख्यैश्च चत्वरापणवीथिकैः ॥ चातुर्वर्ण्यसमायुक्ता नानावाणिज्यशोभिता ॥११॥ यच्च तेन पुरा शुभ्रं लवणेन कृतं महत् ॥ तच्छोभयति शत्रुघ्नो नानावर्णोपशोभितम् ॥ १२ ॥ आरामैश्च विहारैश्च शोभमानां समन्ततः ॥ शोभितां शोभनीयैश्च तथान्यैर्देवमानुषैः ॥ १३ ॥ तां पुरीं दिव्यसङ्काशां नानापण्योपशोभिताम् ॥ नानादेशागतैश्चापि वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥ १४ ॥

द्वादशे वर्षे सा पुरी निविष्टा । शूरसेनानां राज्ञां विषयो देशश्चाकुतोभयो जातः ॥ ९ ॥१०॥ अर्धचन्द्रेति ॥ अर्धचन्द्रप्रतीकाशा अर्धचन्द्राकारसंस्थाना ॥११॥ यच्च तेनेति ॥ यत्पुरा तेन लवणेन कृतं तदेव शुभ्रं सुधाधवलं कृत्वा शोभयति स्म ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

॥ १५ ॥ तस्येति ॥ रामपादाविति । द्वादशवर्षातिक्रमे भ्रातृदर्शनस्य दुष्टत्वादिति भावः ॥ १६ ॥ १७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

तां समृद्धां समृद्धार्थः शत्रुघ्नो भरतानुजः ॥ निरीक्ष्य परमप्रीतः परं हर्षमुपागमत्॥१५॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य मधुरां पुरीम्॥रामपादौ निरीक्षेहं वर्षे द्वादश आगते॥१६॥ ततः सताममरपुरोपमां पुरीं निवेश्य वै विविधजनाभिसंवृताम्॥ नराधिपो रघुपतिपाददर्शने दधे मतिं रघुकुलवंशवर्धनः॥१७॥ इत्युत्तर०सप्ततितमः सर्गः॥७०॥

ततो द्वादशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपालिताम् ॥ अयोध्यां चक्रमे गन्तुमल्पभृत्यबलानुगः ॥१॥ ततो मन्त्रिपुरोगांश्च बलमुख्यान्निवर्त्य च ॥ जगाम हयमुख्यैश्च रथानां च शतेन सः॥२॥ स गत्वा गणितान्वासान्सप्ताष्टौ रघुनन्दनः ॥ वाल्मीक्याश्रममागत्य वासं चक्रे महायशाः ॥३॥ सोभिवाद्य ततः पादौ वाल्मीकेः पुरुषर्षभः॥ पाद्यमर्घ्यं तथातिथ्यं जग्राह मुनिहस्ततः ॥४॥ बहुरूपाः सुमधुराः कथास्तत्र सहस्रशः ॥ कथयामास स मुनिः शत्रुघ्नाय महात्मने ॥५॥ उवाच च मुनिर्वाक्यं लवणस्य वधाश्रितम् ॥ सुदुष्करं कृतं कर्म लवणं निघ्नता त्वया ॥ ६ ॥ बहवः पार्थिवाः सौम्य हताः सबलवाहनाः ॥ लवणेन महाबाहो युध्यमाना महाबलाः ॥७॥ स त्वया निहतः पापो लीलया पुरुषर्षभ ॥ जगतश्च भयं तत्र प्रशान्तं तव तेजसा ॥ ८ ॥ रावणस्य वधो घोरो यत्नेन महता कृतः ॥ इदं तु सुमहत्कर्म त्वया कृतमयत्नतः॥ ९ ॥ प्रीतिश्चास्मिन्परा जाता देवानां लवणे हते ॥ भूतानां चैव सर्वेषां जगतश्च प्रियं कृतम् ॥ १० ॥ तच्च युद्धं मया दृष्टं यथावत्पुरुषर्षभ ॥ सभायां वासवस्याथ उपविष्टेन राघव ॥ ११ ॥

तत इत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उवाचेति ॥ लवणस्य वधाश्रितं वृत्तान्तमिति शेषः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तच्चेति ॥ सभायामिति । युद्धं द्रष्टुमागतायामिति शेषः ॥ ११ ॥

ममेति ॥ परा गतिः परमप्रयोजनम् ॥ १२ ॥ १३ ॥ स इति ॥ गीतमाधुर्यमिति । आश्रमान्तरे गायतोः कुशलवयोरिति शेषः ॥ १४ ॥ तन्त्रीति ॥ तन्त्रीलयसमायुक्तं तन्त्री वीणा लयस्तालमानम् । त्रिस्थानकरणान्वितं हृदयकण्ठमुखलक्षणवर्णोत्पत्तिस्थानेन करणेन अन्वितं संयुक्तम् । संस्कृतं संस्कृतशब्दरूपम् । लक्षणं व्याकरणलक्षणम् । समतालेन गानोचिततालशब्देन च समन्वितम् रामचरितं रामचरितविषयम् ॥१५॥ तानीति ॥ पूर्वशः पूर्वस्मि-

ममापि परमा प्रीतिर्हृदि शत्रुघ्न वर्तते ॥ उपाघ्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैषा परा गतिः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा मूर्ध्नि शत्रुघ्नमुपाघ्राय महामुनिः ॥ आतिथ्यमकरोत्तस्य ये च तस्य पदानुगाः ॥ १३ ॥ स भुक्तवान्नरश्रेष्ठो गीतमाधुर्यमुत्तमम् ॥ शुश्राव रामचरितं तस्मिन्काले यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ तन्त्रीलयसमायुक्तं त्रिस्थानकरणान्वितम् ॥ संस्कृतं लक्षणोपेतं समतालसमन्वितम् ॥ शुश्राव रामचरितं तस्मिन्काले पुरा कृतम् ॥ १५ ॥ तान्यक्षराणि सत्यानि यथावृत्तानि पूर्वशः ॥ श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंज्ञो बाष्पलोचनः ॥ १६ ॥ स मुहूर्तमिवासंज्ञो विनिश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥ तस्मिन्गीते यथावृत्तं वर्तमानमिवाशृणोत् ॥ १७ ॥ पदानुगाश्च ये राज्ञस्तां श्रुत्वा गीतिसंपदम् ॥ अवाङ्मुखाश्च दीनाश्च आश्चर्यमिति चाब्रुवन् ॥ १८ ॥ परस्परं च ये तत्र सैनिकाः संबभाषिरे ॥ किमिदं क्व च वर्तामः किमेतत्स्वप्नदर्शनम् ॥ १९ ॥ अर्थो यो नः पुरा दृष्टस्तमाश्रमपदे पुनः ॥ शृणुमः किमिदं स्वप्नो गीतबन्धं श्रितो भवेत् ॥ २० ॥ सविस्मयं ते परं गत्वा शत्रुघ्नमिदमब्रुवन् ॥ साधु पृच्छ नरश्रेष्ठ वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥ २१ ॥ शत्रुघ्नस्त्वब्रवीत्सर्वान् कौतूहलसमन्वितान् ॥ सैनिकानक्षमोऽस्माकं परिप्रष्टुमिहेदृशः ॥ २२ ॥ ॥ ॥

न् काले । यथावृत्तानि यथाप्रवृत्तान्यनुभवसिद्धानि । अक्षराणि गीताक्षराणि ॥ १६ ॥ स इति ॥ तस्मिन् गीते वर्तमानमिव स्थितम् ॥ १७ ॥ पदानुगाश्चेति ॥ अवाङ्मुखाश्च दीनाश्चेति । एवं रामचरित्रगायकोऽस्माभिर्न दृष्ट इत्यवाङ्मुखत्वादि ॥ १८ ॥ १९ ॥ अर्थ इति ॥ पुरा दृष्टः अपरोक्षदृष्टः । तमर्थमाश्रमपदे आश्रमस्थाने शृणुमः । किन्विदमाश्रमासंभावितमित्यर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ ॥

आश्चर्याणीति ॥ अन्वेष्टुमवगन्तुं प्रष्टुं चेत्यर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

आश्चर्याणि बहूनीह भवन्त्यस्याश्रमे मुनेः ॥ न तु कौतूहलाद्युक्तमन्वेष्टुं तं महामुनिम् ॥ २३॥ एवं तद्वाक्यमुक्त्वा च सैनिकान् रघुनन्दनः ॥ अभिवाद्य महर्षिं तं स्वं निवेशं ययौ तदा ॥ २४ ॥ इत्युत्तरश्रीरा० एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥

तं शयानं नरव्याघ्रं निद्रा नाभ्यागमत्तदा ॥ चिन्तयन्तमनेकार्थं रामगीतमनुत्तमम्॥१॥ तस्य शब्दं सुमधुरं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ श्रुत्वा रात्रिर्जगामाशु शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ २ ॥ तस्यां निशायां व्युष्टायां कृत्वा पौर्वाह्णिकं क्रमम् ॥ उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं शत्रुघ्नो मुनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥ भगवन्द्रष्टुमिच्छामि राघवं रघुनन्दनम् ॥ त्वयानुज्ञातुमिच्छामि सहैभिः संशितव्रतैः ॥ ४ ॥ इत्येवंवादिनं तं तु शत्रुघ्नं शत्रुतापनम् ॥ वाल्मीकिः संपरिष्वज्य विससर्ज च राघवम् ॥ ५ ॥ सोभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं रथमारुह्य सुप्रभम् ॥ अयोध्यामगमत्तूर्णं राघवोत्सुकदर्शनः ॥ ६ ॥ स प्रविष्टः पुरीं रम्यां श्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः॥ प्रविवेश महाबाहुर्यत्र रामो महाद्युतिः ॥ ७॥ स रामं मन्त्रिमध्यस्थं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ॥ पश्यन्नमरमध्यस्थं सहस्रनयनं यथा ॥ ८॥ अभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं रामं सत्यपराक्रमम् ॥९॥ यथाज्ञप्तं महाराज सर्वं तत्कृतवानहम् ॥ हतः स लवणः पापः पुरी चास्य निवेशिता ॥ १० ॥ द्वादशैते गता वर्षास्त्वां विना रघुनन्दन ॥ नोत्सहेयमहं वस्तुं त्वया विरहितो नृप ॥ ११ ॥ स मे प्रसादं काकुत्स्थ कुरुष्वामिततविक्रम ॥ मातृहीनो यथा वत्सो न चिरं प्रवसाम्यहम् ॥ १२॥ ॥

तं शयानमित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवन्निति ॥ राघवं रघुगोत्रापत्यम् । रघुनन्दनं रघुकुलनन्दनम् । त्वयानुज्ञातुमिति तवानुज्ञामित्यर्थः । एभिरिति । मुनिभिरिति शेषः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ ॥

एवमिति ॥ क्षत्रियचेष्टितं क्षात्रियविचारः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ ॥

एवं ब्रुवाणं शत्रुघ्नं परिष्वज्येदमब्रवीत्॥मा विषादं कृथाः शूर नैतत् क्षत्रियचेष्टितम् ॥१३ ॥ नावसीदन्ति राजानो विप्रवासेषु राघव ॥ प्रजा नः परिपाल्या हि क्षत्त्रधर्मेण राघव॥ १४॥काले काले च मां वीर ह्ययोध्यामवलोकितुम्॥ आगच्छ त्वं नरश्रेष्ठ गन्तासि च पुरं तव ॥ १५ ॥ ममापि त्वं सुदयितः प्राणैरपि न संशयः ॥ अवश्यं करणीयं च राज्यस्य परिपालनम् ॥ १६ ॥ तस्मात्त्वं वत्स काकुत्स्थ सप्तरात्रमिहावस ॥ ऊर्ध्वं गन्तासि मधुरां सभृत्यबलवाहनः ॥ १७ ॥ रामस्यैतद्वचः श्रुत्वा धर्मयुक्तं मनोगतम् ॥ शत्रुघ्नो दीनया वाचा बाढमित्येव चाब्रवीत् ॥ १८॥ सप्तरात्रं च काकुत्स्थो राघवस्य यथाज्ञया॥ उष्य तत्र महेष्वासो गमनायोपचक्रमे ॥ १९ ॥ आमन्त्र्य तु महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्॥ भरतं लक्ष्मणं चैव महारथमुपारुहत् ॥ २० ॥ दूरमाभ्यामनुगतो लक्ष्मणेन महात्मना ॥ भरतेन च शत्रुघ्नो जगामाशु पुरं ततः ॥ २१ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ ॥

प्रस्थाप्य तु स शत्रुघ्नं भ्रातृभ्यां सह राघवः ॥ प्रमुमोद सुखी राज्यं धर्मेण परिपालयन् ॥ १ ॥ ततः कतिपयाहस्सु वृद्धो जानपदो द्विजः॥ मृतं बालमुपादाय राजद्वारमुपागमत् ॥ २ ॥ रुदन् बहुविधा वाचः स्नेहदुःखसमन्वितः॥ असकृत्पुत्र पुत्रेति वाक्यमेतदुवाच ह ॥३॥ किन्नु मे दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम्॥ यदहं पुत्रमेकं त्वां पश्यामि निधनं गतम् ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ मृतबालकब्राह्मणस्य राजद्वारि विलापः—प्रस्थाप्येत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ रुदन्निति ॥ असकृत् पुत्र पुत्रेति स्नेहसमन्विता बहुविधा वाचः रुदन् विलपन् । रुदन् बहुविधं विप्र इति च पाठः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

अप्राप्तेति ॥ कलमापन्नं कालवशं गतम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ नेति ॥ न स्मरामि । अकृतत्वादेवेति भावः ॥ ७ ॥ ८ ॥ नेति ॥ विषये देशे । यथा सर्वानुभवादितः
पूर्वं नेदृशं दृष्टपूर्वम् ॥ ९ ॥ अद्य तु—रामस्य दुष्कृतमित्यादि ॥ १० ॥ न हीति ॥ त्वं राजन्नित्यादिना आभिमुख्येन वादः ॥ ११ ॥ राजद्वारीति

अप्राप्तयौवनं वालं पञ्चवर्षसहस्रकम् ॥ अकाले कालमापन्नं मम दुःखाय पुत्रक ॥ ५ ॥ अल्पैरहोभिर्निधनं
गमिष्यामि न संशयः ॥ अहं च जननी चैव तव शोकेन पुत्रक ॥ ६ ॥ न स्मराम्यनृतं ह्युक्तं न च हिंसां
स्मराम्यहम् ॥ सर्वेषां प्राणिनां पापं कृतं नैव स्मराम्यहम् ॥ ७ ॥ केनाद्य दुष्कृतेनायं वाल एव ममात्मजः ॥
अकृत्वा पितृकार्याणि गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ८ ॥ नेदृशं दृष्टपूर्वं मे श्रुतं वा घोरदर्शनम् ॥ मृत्युरप्राप्तकालानां
रामस्य विषये यथा ॥ ९ ॥ रामस्य दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः ॥ यथा हि विषयस्थानां
वालानां मृत्युरागतः ॥ १० ॥ न ह्यन्यविषयस्थानां वालानां मृत्युतो भयम् ॥ त्वं राजन् जीवयस्वैनं वालं
मृत्युवशं गतम् ॥ ११ ॥ राजद्वारि मरिष्यामि पत्न्या सार्धमनाथवत् ॥ ब्रह्महत्यां ततो राम समुपेत्य
सुखी भव ॥ १२ ॥ भ्रातृभिः सहितो राजन् दीर्घमायुरवाप्स्यसि ॥ उषिताः स्म सुखं राज्ये तवास्मिन्सुमहावल
॥ १३ ॥ इदं तु पतितं ह्यस्मात्तव राम वशे स्थिताः ॥ कालस्य वशमापन्नाः स्वल्पं हि न हि नः
सुखम् ॥ १४ ॥ संप्रत्यनाथो विषय इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ रामं नाथमिहासाद्य वालान्तकरणं ध्रुवम्
॥ १५ ॥ राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः ॥ असद्वृत्ते तु नृपतावकाले म्रियते जनः ॥ १६ ॥

॥ सुखी भवेत्यादि व्यङ्ग्योक्तिः ॥ १२ ॥ भ्रातृभिरिति ॥ उषिताः स्म । एतावत्कालमिति शेषः ॥१३॥ इदमिति ॥ तव वशे राज्ये नोस्माकं
स्वल्पमपि सुखं न ॥१४॥ संप्रतीति ॥ अन्तं करोतीत्यन्तकरणम् । कर्तरि ल्युट् । वालान्तकरणं राममासाद्य महात्मनामिक्ष्वाकूणां विषयः संप्रत्यनाथो
जातः । रक्षकसुराजरहितो जात इत्यर्थः ॥ १५ ॥ कथमित्थं कथ्यत इत्यत्राह—राजदोषैरित्यादि ॥ १६ ॥ ॥ ॥

यद्वेति ॥ अयुक्तानि अनुचितकृत्यानि । न च रक्षास्ति अनुचितकृत्यनिवारणं यदा नास्ति तदैव कालकृतं भयं, नान्यथेत्यर्थः ॥ १७ ॥ सुव्यक्तमिति ॥ तस्मादेव ह्ययमकालवधः ॥ १८ ॥ एवमिति ॥ राजानमुपरुध्य ॥ १९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

यद्वा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेषु च ॥ कुर्वते न च रक्षास्ति तदा कालकृतं भयम् ॥ १७॥ सुव्यक्तं राजदोषो हि भविष्यति न संशयः ॥ पुरे जनपदे चापि ततो बालवधो ह्ययम् ॥ १८॥ एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपरुध्य मुहुर्मुहुः ॥ राजानं दुःखसंतप्तः सुतं तमुपगूहते ॥१९॥इत्युत्तरश्रीरामायणे त्रिसप्ततितमः सर्गः॥७३॥

तथा तु करुणं तस्य द्विजस्य परिदेवनम् ॥ शुश्राव राघवः सर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥ १ ॥ स दुःखेन च सन्तप्तो मन्त्रिणस्तानुपाह्वयत् ॥ वसिष्ठं वामदेवं च भ्रातरौ सहनैगमान् ॥ २ ॥ ततो द्विजा वसिष्ठेन सार्धमष्टौ प्रवेशिताः ॥ राजानं देवसंकाशं वर्धस्वेति ततोब्रुवन् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयोथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः ॥ कात्यायनोथ जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा ॥ एते द्विजर्षभाः सर्वे आसनेषूपवेशिताः ॥ ॥ ४ ॥ महर्षीन्समनुप्राप्तानभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ मन्त्रिणो नैगमांश्चैव यथार्हमनुकूलतः ॥ ५ ॥ तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ॥ राघवः सर्वमाचष्टे द्विजोयमुपरोधते ॥ ६ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञो दीनस्य नारदः ॥ प्रत्युवाच शुभं वाक्यमृषीणां सन्निधौ नृपम् ॥ ७ ॥ शृणु राजन्यथाकाले प्राप्तो बालस्य संक्षयः ॥ श्रुत्वा कर्तव्यतां राजन् कुरुष्व रघुनन्दन ॥ ८ ॥

॥ ॥ ॥ ॥

तथा त्वित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ तेषामिति ॥ राघवः द्विजोयम् उपरोधत इति सर्वमाचष्टे ॥ ६ ॥ ७ ॥ शृण्विति ॥ हे राजन्, अकाले अयं बालसंक्षयः यथा येन प्रकारेण प्राप्तः तच्छृणु । ततस्तस्य प्रतिक्रियायाः कर्तव्यतां श्रुत्वा तत्कुरुष्व ॥ ८ ॥ ॥ ॥

पुरा कृतयुगे राजन् ब्राह्मणा वै तपस्विनः ॥ अब्राह्मणस्तदा राजन्न तपस्वी कथंचन ॥ ९ ॥ तस्मिन्युगे
प्रज्वलिते ब्रह्मभूते त्वनावृते ॥ अमृत्यवस्तदा सर्वे जज्ञिरे दीर्घदर्शिनः ॥ १० ॥ ततस्त्रेतायुगं नाम
मानवानां वपुष्मताम् ॥ क्षत्रियास्तत्र जायन्ते पूर्वेण तपसान्विताः ॥ ११ ॥ वीर्येण तपसा चैव तेधिकाः
पूर्वजन्मनि ॥ मानवा ये महात्मानस्त्वत्र त्रेतायुगे युगे ॥ १२ ॥ ब्रह्मक्षत्त्रं च तत्सर्वं यत्पूर्वमपरं
च यत् ॥ युगयोरुभयोरासीत्समवीर्यसमन्वितम् ॥ १३ ॥ अपश्यंस्तु न ते सर्वे विशेषमधिकं ततः ॥
स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्वर्ण्यस्य सम्मतम् ॥ १४ ॥

प्रतिज्ञातमर्थमुपपादयितुं पीठिकामाह-पुरेत्यादि ॥ त्रेतायुगे अनर्हस्य शूद्रस्य तपश्चरणमधर्मः। तेनायं बालवध इति वक्तुं चतुर्युगधर्माः क्रमेण चोच्यन्ते। कृतयुगे ब्राह्मणा एव तपस्विनो भवन्ति। अनशनप्रभृतिकायक्लेशकारिणो भवन्ति। ततस्तस्मादब्राह्मणः ब्राह्मणव्यतिरिक्तवर्णः कथंचन तपस्वी न भवति। नित्यनैमित्तिककर्ममात्रपर एव भवति ॥९॥ तस्मिन्निति ॥ प्रज्वलिते तपसा दीप्ते। ब्रह्मभूते ब्राह्मणवर्णप्रधाने अनावृते अज्ञानावरणरहिते। तस्मिन्युगे कृतयुगे। सर्व एव तदा अमृत्यवः मरणहेत्वधर्मलेशस्याप्यभावात् मरणरहिताः। अज्ञानानावृतत्वाद्दीर्घदर्शिनः अतीतानागतज्ञाश्च भवन्ति ॥ १० ॥ तत इति ॥ ततः कृतयुगावसाने। वपुष्मतां दृढशरीराणाम्। मानवानां मनुवंशक्षत्रियाणां संबन्धि त्रेतायुगं नाम भवति। तत्प्रधानत्वात्तत्संबन्धित्वम्। तत्र त्रेतायाम्। क्षत्रियाः पूर्णेन तपसान्विता जायन्ते ॥११॥ त्रेतायुगे तपस्विनो जाताः क्षत्रियाः कृतयुगे तपस्विभिर्ब्राह्मणैः किं तुल्याः नेत्याह–वीर्येणेति ॥ अत्र त्रेतायुगे युगे त्रेतायुगाख्ये युगे महात्मानो ये मानवाः सन्ति तदपेक्षया पूर्वजन्मनि पूर्वस्मिन् कृतयुगे ये मानवास्ते तपसा वीर्येण चाधिकाः॥१२॥ त्रेतायुगब्राह्मणास्तुल्या एवेत्याह–ब्रह्मेति ॥ उभयोर्युगयोः कृतत्रेतयोः कृते यद्ब्रह्म पूर्वमुत्कृष्टम् यच्च त्रेतायामपकृष्टं क्षत्रम् तदुभयं त्रेतायां समप्रधानमासीत्॥१३॥एतदेवाह–अपश्यन्निति ॥ सर्वे जनाः। ततः क्षत्रियात्। ब्राह्मणस्याधिकं विशेषं तु नापश्यन्। अपश्यन्तस्तु ते सर्वे इति पाठः। तत्स्थापनमाचारभेदं वेदोदितं चक्रिरे। चातुर्वर्ण्यस्येत्यत्र स्वार्थे ष्यञ्। कृतयुगे तपस्तदभावाभ्यामुभयोर्वैलक्षण्यं स्पष्टम्। त्रेतायुगे उभयोरपि तपस्साम्यात् वैलक्षण्यकरमाचारभेदमकल्पयन्नित्यर्थः। एवं वैश्यशूद्रयोरपि वेदपुराणोक्ताचारव्यवस्थां महान्तोकल्पयन्नित्यर्थः ॥ १४ ॥

तस्मिन्निति ॥ धर्मभूते यज्ञादिधर्मप्रधाने । अनावृते अधर्मावरणरहिते । तस्मिन् त्रेतायुगे प्रवृत्ते अधर्मः पादं चतुर्थांशं पातयदपातयत् वर्तयामास । त्रेतायुगपुरुषाः कृतयुगपुरुषवद्विमलज्ञानरहिततया ब्रह्मज्ञानाधिकारशून्याः वर्णाश्रमधर्मानेवाचरन् । अतो विमलज्ञानाभावादधर्मः पादमवतीर्ण इत्यर्थः ॥ १५ ॥ एवमीषत्पापसंबन्धात्तदातनानां जनानां प्रभावः पूर्वयुगपुरुषेभ्यः क्षीणोभूदित्याह--अधर्मेण हीति ॥ भविष्यतीति भूते लट् । एवं त्रेतायुगजनानां प्रभावस्याल्पत्वेन सत्यसंकल्पत्वाकृष्टपच्यत्वादिसिद्ध्यभावात् कृष्यादिकमेव जीवनोपायोभूदित्याह—आमिषमिति ॥ सर्वेषां कृतयुगब्राह्मणानां राज्ञां च भृशं मलं मलवन्निन्द्यमानमामिषं जीवनोपायः अनृतं कृषिर्नाम प्रसिद्धं यदस्ति तत्पृथिवीतले पादेन भूतं स्थितम् । कृतयुगपुरुषतुल्यवैभवाभावेनाकृष्टपच्यत्वाद्यभावात् त्रेतायुगपुरुषाणाम् अनृतमेव जीवनोपायोभूदित्यर्थः । सेवाश्ववृत्तिरनृतं कृषिरुञ्छशिलं त्वृतमित्यमरः॥१६॥१७॥ एवमायुषः क्षयोप्यभूदित्याह—अनृतमिति ॥ अधर्मतः अधर्मस्तदेकं पादमनृतलक्षणं जीवनोपायं पातयित्वा निक्षिप्य । ततस्तेनैव पातेन पूर्वं प्रथममायुषः परिनिष्ठितं विनाशः प्रादुष्कृतं प्रादुर्भूतम् । कृतयुगपुरुषापेक्षया त्रेतायुगपुरुषा न्यूनायुषोऽभवन्नित्यर्थः ॥१८॥एवमनुभावस्यायुषः क्षये प्रवृत्ते सति भीताः सन्तः त्रेतायुगपुरुषाः शुभाचरणे निरता आसन्नित्याह—पतिते त्विति ॥ अधर्मे अधर्मजायुःक्षये । पातिते त्वनृते तस्मिन्नधर्मेणेति च पाठः ॥ १९॥ शुभाचारे भेदमेव दर्शयति—त्रेतेति ॥ शुश्रूषां पूर्ववर्णपरिचर्याम् । अपरे वैश्यशूद्राः । अकुर्वन्निति शेषः ॥२० ॥ शुश्रूषावत् पूर्वोक्तकृष्यादिकमपि वैश्यशूद्रयोः परमधर्मोभूदित्याह—स धर्म इति ॥ स्वधर्मः परम इति च पाठः । पूजां चेति । वैश्यानां हि शुश्रूषा । अतोपि कृष्यादिकमेव परमो धर्मोभूत् । शूद्राणां कृष्यादिभ्योपि शुश्रूषैव विशिष्टो धर्मोभूदित्यर्थः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥

तस्मिन्युगे प्रज्वलिते धर्मभूते ह्यनावृते ॥ अधर्मः पादमेकं तु पातयत्पृथिवीतले ॥ १५॥ अधर्मेण हि संयुक्तस्तेजो मन्दं
भविष्यति ॥ १६ ॥ आमिषं यच्च पूर्वेषां राजसं च मलं भृशम् ॥ अनृतं नाम तद्भूतं पादेन पृथिवीतले ॥ १७ ॥ अनृतं
पातयित्वा तु पादमेकमधर्मतः॥ततः प्रादुष्कृतं पूर्वमायुषः परिनिष्ठितम्॥१८॥पतिते त्वनृते तस्मिन्नधर्मे च महीतले॥
शुभान्येवाचरल्लोकः सत्यधर्मपरायणः ॥ १९ ॥ त्रेतायुगे च वर्तन्ते ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च ये ॥ तपोतप्यन्त ते सर्वे शुश्रूषामपरे
जनाः ॥ २० ॥ स धर्मः परमस्तेषां वैश्यशूद्रं समागमत् ॥ पूजां च सर्ववर्णानां शूद्राश्चक्रुर्विशेषतः ॥ २१ ॥

एवं त्रेतायुगे लोकस्थितिमुक्त्वा तदवस्थानकालस्थितिमाह–एतस्मिन्निति ॥ एतस्मिन्नन्तरे त्रेतायुगावसानकाले। अधर्मे अधर्मकार्ये आयुषः क्षये। अनृते कृष्याद्युपाये च प्रवृत्ते सति क्षीणायुषो वृत्तिकर्शिताश्च। पूर्वे त्रेतायुगस्थाः। ह्रासं विनाशमगमन्॥२२॥तत इति ॥ अधर्मः सः त्रेतायुगप्रसारितैकपादः॥२३॥तस्मिन्निति॥अधर्मस्याभिवृद्धिर्नाम त्रेतायुगपुरुषेभ्योल्पायुष्यम्। अनृतस्याभिवृद्धिस्तु प्रयासवाहुल्येन कृषेः सफलत्वम्॥२४॥तस्मिन्निति॥तपः वैश्यान् समाविशत्। वैश्यास्तपोधिकारिणोऽभवन्नित्यर्थः। एवं युगत्रयधर्मानभिधाय प्रकृतं वक्तुं तत्रोपयुक्तमर्थं संक्षिप्याह-त्रिभ्य इति। हेतौ पञ्चमी॥२५॥

एतस्मिन्नन्तरे तेषामधर्मे चानृते च ह ॥ ततः पूर्वे भृशं ह्रासमगमन्नृपसत्तम ॥ २२ ॥ ततः पादमधर्मः स द्वितीयमवतारयत् ॥ ततो द्वापरसंज्ञास्य युगस्य समजायत ॥२३ ॥ तस्मिन् द्वापरसंज्ञे तु वर्तमाने युगक्षये ॥ अधर्मश्चानृतं चैव ववृधे पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥ तस्मिन्द्वापरसंख्याते तपो वैश्यान्त्समाविशत् ॥ त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन्वर्णान् क्रमाद्वै तप आविशत् ॥२५॥ त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन्वर्णान् धर्मश्च परिनिष्ठितः ॥ न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ ॥ हीनवर्णो नृपश्रेष्ठ तप्यते सुमहत्तपः ॥ २६ ॥ भविष्यच्छूद्रयोन्यां वै तपश्चर्या कलौ युगे ॥ अधर्मः परमो राजन् द्वापरे शूद्रजन्मनः ॥२७॥ स वै विषयपर्यन्ते तव राजन्महातपाः ॥ अद्य तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधो ह्ययम् ॥२८॥ यो ह्यधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य तु ॥ करोति चाश्रीमूलं तत्पुरे वा दुर्मतिर्नरः ॥ क्षिप्रं च नरकं याति स च राजा न संशयः॥२९॥ अधीतस्य च तप्तस्य कर्मणः सुकृतस्य च ॥ षष्ठं भजति भागं तु प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ३० ॥ षड्भागस्य न भोक्तासौ रक्षते न प्रजाः कथम् ॥३१॥ स त्वं पुरुषशार्दूल मार्गस्व विषयं स्वकम् ॥ दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर ॥३२॥

त्रिभ्य इति॥प्रकृतं वालवधहेतुमाह-हीनेति॥२६॥भविष्यदिति ॥ इकारलोपश्छान्दसः। तपश्चर्या तपश्चरणाधिकारः। शूद्राणां तपश्चर्या कलियुग एव धर्मो भविष्यति । अस्मिन्युगे त्वधर्म इत्याह-अधर्म इति । रामराज्यस्य त्रेतायुगत्वेपि, अधर्मः परमो राजन् द्वापरे शूद्रजन्मन इत्युक्तेः, किमुत त्रेतायामित्यर्थः ॥ २७ ॥२८॥२९॥३० ॥ कथमन्येषु पापं कुर्वाणेषु राज्ञो नरकप्राप्तिस्तत्राह–षड्भागस्येति ॥ ३१ ॥ स इति ॥ तत्र यत्नं निराकरणयत्नम्॥३२॥

॥ ३३ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुःसततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ छ ॥
नारदस्येत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ उक्तार्थस्य विवरणं–यथेत्यादि ॥ बालस्य शरीर इति लिङ्गव्यत्ययः । विपत्तिः स्वरूपनाशः । भेदः सन्धिबन्धादि-

एवं चेद्धर्मवृद्धिश्च नृणां चायुर्विवर्धनम्॥भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवितम्॥३३॥इ०चतुःसप्ततितमः सर्गः७४
नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वामृतमयं तदा ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ गच्छ सौम्य द्विजश्रेष्ठं
समाश्वासय सुव्रतम् ॥ बालस्य तु शरीरं तत्तैलद्रोण्यां निधापय ॥ २ ॥ गन्धैश्च परमोदारैस्तैलैश्चापि सुगन्धि-
भिः ॥ यथा न क्षीयते बालस्तथा सौम्य विधीयताम् ॥ ३ ॥ यथा शरीरो बालस्य गुप्तः सन् शिष्टकर्मणः ॥ विप-
त्तिः परिभेदो वा न भवेच्च तथा कुरु ॥ ४ ॥ एवमादिश्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ मनसा पुष्पकं
दध्यावागच्छेति महायशाः ॥ ५ ॥ इङ्गितं स तु विज्ञाय पुष्पको हेमभूषितः ॥ आजगाम मुहूर्तेन समीपं राघवस्य
वै ॥ ६ ॥ सोऽब्रवीत्प्रणतो भूत्वा अयमस्मि नराधिप ॥ वश्यस्तव महाबाहो किंकरः समुपस्थितः ॥ ७ ॥ भाषितं
रुचिरं श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिपः ॥ अभिवाद्य महर्षींस्तान्विमानं सोऽध्यरोहत ॥ ८ ॥ धनुर्गृहीत्वा तूणी च खड्गं
च रुचिरप्रभम् ॥ निक्षिप्य नगरे वीरौ सौमित्रिभरतावुभौ ॥ ९ ॥ प्रायात्प्रतीचीं हरितं विचिन्वंश्च ततस्ततः ॥
उत्तरामगमच्छ्रीमान् दिशं हिमवता वृताम् ॥ १० ॥ अपश्यमानस्तत्रापि स्वल्पमप्यथ दुष्कृतम् ॥ पूर्वामपि दिशं
सर्वामथापश्यन्नराधिपः ॥ ११ ॥ प्रविशुद्धसमाचारामादर्शतलनिर्मलाम् ॥ पुष्पकस्थो महाबाहुस्तदा पश्यन्नरा-
धिपः ॥ १२ ॥ दक्षिणां दिशमाक्रामत्ततो राजर्षिनन्दनः ॥ शैवलस्योत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ॥ १३ ॥

विनिर्मुक्तिः ॥४॥ ५ ॥ इङ्गितामिति ॥ स त्विति । पुष्पकाधिष्ठातृचेतन इत्यर्थः ॥६॥ ७ ॥ ८ ॥९॥ प्रायादिति ॥ हरितं दिशं विचिन्वन्निति । शूद्रतप-
स्विनमिति शेषः ॥ १० ॥ अपश्यमान इति ॥ अपश्यमानः अपश्यन् ॥ ११ ॥ १२ ॥ दक्षिणामिति ॥ शैवलाख्यस्य विन्ध्यसमीपवर्तिगिरेः ॥ १३ ॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ कोर्थ इत्यादि ॥ तुभ्यं तव। वराश्रयः तपःप्रीतदेवतावरलभ्यो मनीषितोभीष्टोर्थः स्वर्भोगो वा अन्यो वा। यमाश्रित्य ॥ १७ ॥
ब्राह्मण इति ॥ सत्यवाग्भव सत्यं कथयेत्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥ इति श्रीगो० श्रीरामा० मणिमुकु० उत्तरश्रीरामायणव्या० पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः ॥ ददर्श राघवः श्रीमान् लम्बमानमधोमुखम् ॥१४॥ राघवस्तमुपागम्य
तप्यन्तं तप उत्तमम् ॥ उवाच स तदा वाक्यं धन्यस्त्वमसि सुव्रत ॥१५॥ कस्यां योन्यां तपोवृद्ध वर्तसे दृढविक्रम ॥
कौतूहलात्त्वां पृच्छामि रामो दाशरथिर्ह्यहम् ॥१६॥ कोर्थो मनीषितस्तुभ्यं स्वर्गलाभः परोथ वा ॥ वराश्रयो यदर्थं
त्वं तपस्यसि सुदुष्करम् ॥ यमाश्रित्य तपस्तप्तं श्रोतुमिच्छामि तापस ॥१७॥ ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वासि
दुर्जयः ॥ वैश्यस्तृतीयवर्णो वा शूद्रो वा सत्यवाग्भव ॥ १८ ॥ इत्येवमुक्तः स नराधिपेन ह्यवाक्शिरा दाशरथाय तस्मै
॥ उवाच जातिं नृपपुङ्गवाय यत्कारणे चैव तपःप्रयत्नः ॥१९॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥७५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ अवाक्छिरास्तथा भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ शूद्रयोन्यां प्रसूतोस्मि
शम्बुको नाम नामतः ॥ देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ॥ २ ॥ न मिथ्याहं वदे राम देवलोकजिगीषया
॥ शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ तप उग्रं समास्थितम् ॥३॥ भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम् ॥ निष्कृष्य
कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥४॥ तस्मिन् शूद्रे हते देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ साधु साध्विति काकुत्स्थं
प्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥ पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्दिव्यानां सुसुगन्धिनाम् ॥ पुष्पाणां वायुमुक्तानां सर्वतः प्रपपात ह॥६॥
सुप्रीताश्चाब्रुवन् रामं देवाः सत्यपराक्रमम् ॥ सुरकार्यमिदं सौम्य सुकृतं ते महामते ॥ ७ ॥

तस्येत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ आपत इति ॥ तस्य शिर इत्यन्वयः ॥ ४ ॥ ५ ॥ पुष्पवृष्टिरिति ॥ पुष्पवृष्टिः पपातेति शेषः। पुष्पवृष्टिश्च महतीति पाठे
तस्यैव प्रपञ्चनम् दिव्यानामित्यादि। प्रपपातेति वृष्टिरिति शेषः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ॥

गृहाणेति ॥ सुरकार्यमेवाह—स्वर्गभागिति । हि यस्माच्छूद्रः तपसा स्वर्गं नार्हः सोऽसौ त्वत्कृततपोनिवर्तनेन स्वर्गभाक् न कृतः। तस्मादेव देवकार्यं कृतमित्यर्थः । ममेति ॥ वैवस्वतक्षयं यमगृहम् ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ तमिति ॥ द्विजस्येति । ते तव सुतं जीवयिष्यामीत्ययमर्थो मे मया द्विजस्य

गृहाण च वरं सौम्य यत्त्वमिच्छस्यरिन्दम ॥ स्वर्गभाङ्ग हि शूद्रोयं त्वत्कृते रघुनन्दन ॥ ८ ॥ देवानां भाषितं श्रुत्वा
राघवः सुसमाहितः ॥ उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सहस्राक्षं पुरन्दरम् ॥ ९ ॥ यदि देवाः प्रसन्ना मे द्विजपुत्रः स जीवतु ॥
दिशन्तु परमेतन्मे ईप्सितं परमं मम ॥ १० ॥ ममापचाराद्बालोसौ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः ॥ अप्राप्तकालः कालेन नीतो
वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥ तं जीवयत भद्रं वो नानृतं कर्तुमर्हथ ॥ द्विजस्य संश्रुतोर्थो मे जीवयिष्यामि ते सुतम् ॥
॥ १२ ॥ राघवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा विबुधसत्तमाः ॥ प्रत्यूचू राघवं प्रीता देवाः प्रीतिसमन्वितम् ॥ १३ ॥ निर्वृतो भव
काकुत्स्थ सोस्मिन्नहनि बालकः ॥ जीवितं प्राप्तवान्भूयः समेतश्चापि बन्धुभिः ॥ १४ ॥ यस्मिन्मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोयं विनिपातितः ॥ तस्मिन्मुहूर्ते बालोसौ जीवेन समयुज्यत ॥ १५ ॥ स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते साधु याम
नरर्षभ ॥ अगस्त्यस्याश्रमपदं द्रष्टुमिच्छाम राघव ॥ १६ ॥ तस्य दीक्षा समाप्ता हि ब्रह्मर्षेः सुमहाद्युतेः॥ द्वादशं हि
गतं वर्षं जलशय्यां समासतः ॥ १७ ॥ काकुत्स्थ तद्गमिष्यामो मुनिं समभिनन्दितुम् ॥ त्वं चाप्यागच्छ
भद्रं ते द्रष्टुं तमृषिसत्तमम् ॥ १८ ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनन्दनः ॥ आरुरोह विमानं तं पुष्पकं हेमभूषितम्
॥ १९ ॥ ततो देवा प्रयातास्ते विमानैर्बहुविस्तरैः ॥ रामोप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा तु देवान्संप्राप्तानगस्त्यस्तपसान्निधिः ॥ अर्चयामास धर्मात्मा सर्वांस्तानविशेषतः ॥ २१ ॥

संश्रुतः प्रतिज्ञातः ॥ १२ ॥ १३ ॥ निर्वृत इति ॥ अस्मिन्नहनि त्वया शूद्रशिरश्छेददिवसे । वरं विनापि स्वयमेव जीवितं प्राप्तवानित्यर्थः॥ १४ ॥ १५॥ स्वस्तीति ॥ यामेति लोडुत्तमबहुवचनम् ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ दृष्ट्वेति ॥ अविशेषतः अपक्षपातत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

॥२२॥२३॥२४॥२५॥ त्वमिति ॥ हृदि स्थित इति । परब्रह्मभूतत्वान्मम हृदये सदा स्थित इत्यर्थः ॥२६॥ सुरा हीति ॥ जीवापितः जीवनं प्रापितः । पुगार्षः । अत्र त्वयेत्यत्र येति गायत्र्यक्षरं त्रयोविंशमित्याहुः ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ दत्तस्येति ॥ पारितोषिकतया येन केनापि दत्तस्योत्तमव-

प्रतिगृह्य ततः पूजां सम्पूज्य च महामुनिम् ॥जग्मुस्ते त्रिदशा हृष्टा नाकपृष्ठं सहानुगैः ॥२२॥गतेषु तेषु काकुत्स्थः पुष्पकादवरुह्य च ॥ ततोभिवादयामास ह्यगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ २३ ॥ सोभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ आतिथ्यं परमं प्राप्य निषसाद नराधिपः ॥ २४ ॥ तमुवाच महातेजाः कुम्भयोनिर्महातपाः ॥ स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोसि राघव ॥ २५ ॥ त्वं मे बहुमतो राम गुणैर्बहुभिरुत्तमैः ॥ अतिथिः पूजनीयश्च मम नित्यं हृदि स्थितः ॥२६॥ सुरा हि कथयन्ति त्वामागतं शूद्रघातिनम्॥ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीवापितः सुतः॥२७॥ उष्यतां चेह रजनी सकाशे मम राघव ॥ प्रभाते पुष्पकेण त्वं गन्तासि पुरमेव हि ॥ २८॥ त्वं हि नारायणः श्रीमांस्त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ त्वं प्रभुः सर्वभूतानां पुरुषस्त्वं सनातनः ॥ २९ ॥ इदं चाभरणं सौम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ प्रतिगृह्णीष्व काकुत्स्थ मत्प्रियं कुरु राघव ॥ ३० ॥ दत्तस्य हि पुनर्दाने सुमहत्फलमुच्यते ॥ भरणे हि भवान् शक्तः सेन्द्राणां मरुतामपि ॥ ३१ ॥ त्वं हि शक्तस्तारयितुं सेन्द्रानपि दिवौकसः ॥ तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्तत्प्रतीच्छ नराधिप ॥ ३२॥ दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥३३॥ अथोवाच महात्मानमिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ रामो मतिमतां श्रेष्ठः क्षत्त्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ३४ ॥ ॥

स्तुनः स्वयमनुपभुज्यान्यस्मै दानं सुमहत्फलमुच्यते । भरण इति । मरुतां देवानामपि । भरणे रक्षणे । अपिशब्दात् किमुतैतद्भरण इत्यर्थः । भरणेपि भवान् शक्तः फलानां महतामपीति च पाठः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ प्रतिगृह्णेति ॥ आगमं प्राप्तिमार्गम् ॥ ४८ ॥ अत्य-

प्रतिग्रहोयं भगवन् ब्राह्मणस्याविगर्हितः ॥ गृह्णीयां क्षत्रियोहं वै कथं ब्राह्मणपुङ्गव ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणेन विशेषेण दत्तं तद्वक्तुमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तु रामेण प्रत्युवाच महानृषिः ॥ ३६ ॥ आसन् कृतयुगे राम ब्रह्मभूते पुरायुगे ॥ अपार्थिवाः प्रजाः सर्वाः सुराणां तु शतक्रतुः ॥ ३७॥ ताः प्रजा देवदेवेशं राजार्थं समुपाद्रवन् ॥ सुराणां स्थापितो राजा त्वया देव शतक्रतुः ॥ ३८॥ प्रयच्छ नो हि लोकेश पार्थिवं नरपुङ्गवम् ॥ तस्मै पूजां प्रयुञ्जानां धूतपापाश्चरेमहि ॥ न वसामो विना राज्ञा एष नो निश्चयः परः॥ ३९ ॥ प्रजानां वचनं श्रुत्वा निश्चायित्वाऽर्थमुत्तमम् ॥४०॥ ततो ब्रह्मा सुरश्रेष्ठो लोकपालान्सवासवान् ॥ समाहूयाऽब्रवीत्सर्वांस्तेजोभागान् प्रयच्छत ॥ ४१ ॥ ततो ददुर्लोकपालाः सर्वे भागान्त्स्वतेजसः॥अक्षुपच्च ततो ब्रह्मा यतो जातः क्षुपो नृपः ॥ ४२ ॥ तं ब्रह्मा लोकपालानां सहांशैः समयोजयत् ॥ ततो ददौ नृपं तासां प्रजानामीश्वरं क्षुपम् ॥ ४३ ॥ तत्रैन्द्रेण च भागेन महीमाज्ञापयन्नृपः ॥ वारुणेन तु भागेन वपुः पुष्यति राघव ॥ ४४ ॥ कौबेरेण तु भागेन वित्तमासां ददौ तदा ॥ यस्तु याम्योऽभवद्भागस्तेन शास्ति स्म स प्रजाः ॥४५॥ तत्रैन्द्रेण नरश्रेष्ठ भागेन रघुनन्दन॥ प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते तारणार्थं मम प्रभो ॥ ४६ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषेः परमधार्मिकम् ॥ तद्रामः प्रतिजग्राह मुनेराभरणं वरम् ॥ ४७॥ प्रतिगृह्य ततो रामस्तदाभरणमुत्तमम् ॥ आगमं तस्य दीप्तस्य प्रष्टुमेवोपचक्रमे ॥ ४८॥ अत्यद्भुतमिदं दिव्यवपुषा युक्तमुत्तमम् ॥ कथं भगवता प्राप्तं कुतो वा केन वा हृतम् ॥ ४९ ॥ कुतूहलतया ब्रह्मन् पृच्छामि त्वां महायशः ॥ आश्चर्याणां बहूनां हि निधिः परमको भवान् ॥५०॥

द्भुतामिति ॥ कुतो वा केन वा निमित्तेन केन पुरुषेण वा हृतमुपहृतम् । दत्तमिति यावत् ॥ ४९ ॥ ५० ॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ शृणु राम यथा वृत्तं पुरा त्रेतायुगे युगे ॥५१॥ रमणीयप्रदेशेस्मिन् वने यद्दृष्टवानहम् ॥ आश्चर्यं मे महाबाहो दानमाश्रित्य केवलम् ॥ ५२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥ ॥ ॥

पुरा त्रेतायुगे राम ह्यरण्यं बहुविस्तरम् ॥ समन्ताद्योजनशतं निर्मृगं पक्षिवर्जितम् ॥ १ ॥ तस्मिन्निर्मानुषेऽरण्ये कुर्वाणस्तप उत्तमम् ॥ अहमाक्रमितुं सौम्य तदरण्यमुपागमम् ॥ २ ॥ तस्य रूपमरण्यस्य निर्देष्टुं न शशाक ह ॥ फलमूलैः सुखास्वादैर्बहुरूपैश्च पादपैः ॥ ३ ॥ तस्यारण्यस्य मध्ये तु सरो योजनमायतम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ४ ॥ पद्मोत्पलसमाकीर्णं समतिक्रान्तशैवलम् ॥ तदाश्चर्यमिवात्यर्थं सुखास्वादमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ अरजस्कं तथाऽक्षोभ्यं श्रीमत्पक्षिगणायुतम् ॥ समीपे तस्य सरसो महदद्भुतमाश्रमम् ॥ ६ ॥ पुराणं पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनवर्जितम् ॥ तत्राहमवसं रात्रिं नैदाघीं पुरुषर्षभ ॥७॥ प्रभाते काल्यमुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे ॥ अथापश्यं शवं तत्र सुपुष्टमजरं क्वचित् ॥ ८ ॥ ॥

एवमिति ॥ त्रेतायुगे त्रेतायुगाख्ये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीगो° श्रीरामा° मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ पुरेत्यादि ॥ पुरा त्रेतायुगे पूर्वचतुर्युगवर्तित्रेतायुगे । बहुविस्तरं बहुविस्तारम् । पक्षिवर्जितमिति । अरण्यमभूदिति शेषः॥१॥ तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्नरण्ये तदेकदेशे । तपः कुर्वाणोऽहं तदरण्यमाक्रमितुम् आसमन्तात्पर्यटनं कृत्वा कात्स्न्येंनावगन्तुमुपागमम् उपगतवान् ॥ २ ॥ तस्येति ॥ निर्देष्टुं परिज्ञातुम् । न शशाक नाशक्नुवम् । तस्य रूपमिति । सुखावहं रूपमित्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ पद्मेति ॥ सुखास्वादम् । सुखावहप्राशनपानीयवदित्यर्थः ॥ ५ ॥ अरजस्कमिति ॥ अरजस्कं निर्मलम् ॥ ६ ॥ पुराणमिति ॥ नैदाघीं निदाघसंबन्धिनीम् ॥ ७ ॥ प्रभात इति ॥ काले साधु काल्यं, प्रातःकालकर्तव्यं स्नानकर्म उद्दिश्य उत्थाय उपचक्रमे । अपरोक्षेपि लिडार्षः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥

पङ्क्तिभेदेन पुष्टाङ्गं समाश्रितसरोवरम् ॥ तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या तस्मिंस्तोयाशये नृप ॥ ९ ॥ तमर्थं चिन्तयानोहं मुहूर्तं तत्र राघव ॥ उषितोस्मि सरस्तीरे किं न्विदं स्यादिति प्रभो ॥१०॥ अथापश्यं मुहूर्तेन दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजवम् ॥ ११ ॥ अत्यर्थं स्वर्गिणं तत्र विमाने रघुनन्दन ॥ उपास्तेप्सरसां वीर सहस्रं दिव्यभूषणम् ॥ १२ ॥ गायन्ति दिव्यगेयानि वादयन्ति तथाऽपराः ॥ क्ष्वेलयन्ति तथा चान्या नृत्यन्ति च तथाऽपराः ॥ १३ ॥ अपराश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैश्च चामरैः ॥ दोधूयुर्वदनं तस्य पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥ १४॥ ततः सिंहासनं त्यक्त्वा मेरुकूटमिवांशुमान् ॥ पश्यतो मे तदा राम विमानादवरुह्य च ॥ तं शवं भक्षयामास स स्वर्गी रघुनन्दन ॥ १५ ॥ तथा भुक्त्वा यथाकामं मांसं बहुसुपीवरम् ॥ अवतीर्य सरः स्वर्गी संस्प्रष्टुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥ उपस्पृश्य यथान्यायं स स्वर्गी रघुपुङ्गव ॥ आरोढुमुपचक्राम विमानवरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ तमहं देवसंकाशमारोहन्तमुदीक्ष्य वै ॥ विमानमब्रुवं वाक्यं स्वर्गिणं पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥ को भवान् देवसंकाश आहारश्च विगर्हितः ॥ त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं वक्तुमर्हसि ॥१९॥ कस्य स्यादीदृशो भाव आहारो देवसंमतः ॥ आश्चर्यं वर्तते सौम्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२०॥ नाहमौपयिकं मन्ये तव भक्ष्यमिदं शवम् ॥ २१ ॥ इत्येवमुक्तः स नरेन्द्र नाकी कौतूहलात्सूनृतया गिरा च ॥ श्रुत्वा च वाक्यं मम सर्वमेतत्सर्वं तथा चाऽकथयन्ममेति ॥ २२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ ॥

पङ्क्तिभेदेनेति ॥ लक्ष्म्या उपेतमिति शेषः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥१३॥ १४ ॥ १५॥ तथेति ॥ संस्प्रष्टुं शुद्धाचमनं कर्तुमित्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ १८॥१९॥ कस्येति ॥ आहारः ईदृशो भावश्च देवसंमतः । अतः आश्चर्यमेव वर्तते । अहमित्यस्य क्रियाभेदाद्भेदः । अतस्तत्सर्वं तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

॥१॥ शृण्विति ॥ सुखदुःखयोरिति । देवत्वशवभुक्तरूपयोः कारणमिति शेषः ॥२॥३॥४॥ तत इति ॥ धर्म्यं धर्मादनपेतं यथा भवति तथा ॥५॥ ६॥
सोहमिति ॥ निमित्ते कस्मिंश्चिदिति । केनचिन्निमित्तेन लक्षणेन सामुद्रिकादिना । विज्ञातायुः निश्चितायुरवधिः । कालधर्मं हृदि न्यस्य । स्वस्य मरणकालं

श्रुत्वा तु भाषितं वाक्यं मम राम शुभाक्षरम् ॥ प्राञ्जलिः प्रत्युवाचेदं स स्वर्गी रघुनन्दन ॥ १ ॥ शृणु ब्रह्मन् पुरा
वृत्तं ममैतत्सुखदुःखयोः ॥ अनतिक्रमणीयं हि यथा पृच्छसि मां द्विज ॥ २ ॥ पुरा वैदर्भको राजा पिता मम
महायशाः ॥ सुदेव इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन् द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत ॥
अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान्त्सुरथोऽभवत् ॥ ४ ॥ ततः पितरि स्वर्याते पौरा मामभ्यषेचयन् ॥ तत्राहं कृतवान्राज्यं
धर्म्यं च सुसमाहितः ॥ ५ ॥ एवं वर्षसहस्राणि ममातीतानि सुव्रत ॥ राज्यं कारयतो ब्रह्मन् प्रजा धर्मेण
रक्षतः ॥ ६ ॥ सोहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्विज्ञातायुर्द्विजोत्तम ॥ कालधर्मं हृदि न्यस्य ततो वनमुपागमम्
॥ ७ ॥ सोहं वनमिदं दुर्गं मृगपक्षिविवर्जितम् ॥ तपश्चर्तुं प्रविष्टोस्मि समीपे सरसः शुभे ॥८॥ भ्रातरं सुरथं राज्ये
ह्यभिषिच्य महीपतिम् ॥ इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं मया चिरम् ॥९॥ सोहं वर्षसहस्राणि तपस्त्रीणि महावने ॥
तप्त्वा सुदुष्करं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥ १० ॥ तस्य मे स्वर्गभूतस्य क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम ॥ बाधेते परमोदार
ततोहं व्यथितेन्द्रियः ॥ गत्वा त्रिभुवनश्रेष्ठं पितामहमुवाच ह ॥११॥ भगवन् ब्रह्मलोकोयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥
कस्यायं कर्मणः पाकः क्षुत्पिपासानुगो ह्यहम् ॥ १२ ॥ आहारः कश्च मे देव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१३॥ पितामहस्तु
मामाह तवाहारः सुदेवज ॥ स्वादूनि स्वानि मांसानि तानि भक्षय नित्यशः ॥ १४ ॥ स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता
तप उत्तमम् ॥ अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते ॥ १५ ॥ ॥ ॥

॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तस्येति ॥ स्वर्गभूतस्य स्वर्गं प्राप्तस्य । स्वर्गोत्र ब्रह्मलोकः ॥११॥१२॥१३॥१४॥ स्वशरीरं त्वया पुष्ट-

मिति ॥ सुख्यं तपो न कृतं स्वशरीरमेव केवलं त्वया पुष्टम्। अनुप्तमकृतावापं बीजं न रोहते हि ॥ १५ ॥ १६॥ दत्तामिति ॥ सूक्ष्मोपि । लिङ्गव्यत्यय आर्षः। सूक्ष्ममपि अत्यल्पमपि। ते दत्तं दानं नास्ति देवपित्रतिथिषु। किन्तु तप एव केवलं निषेवसे निषेवितवानित्यर्थः। "मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्येकाग्रं परमं तपः" इत्युक्तम्। दृढसमाधिरूपं तप एव कृतमित्यर्थः ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ सोहमिति ॥ कुर्मि करोमि

तृप्तिर्न तेस्ति सूक्ष्मापि वने सत्त्वनिषेविते ॥ पुरा तु भिक्षमाणाय भिक्षा वै यतये नृप ॥ न हि दत्ता त्वयेन्द्राभ यस्मादतिथयेपि वै ॥ १६ ॥ दत्तं न तेस्ति सूक्ष्मोपि तप एव निषेवसे ॥ तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया ॥ १७ ॥ स त्वं सुपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् ॥ भक्षयित्वामृतरसं तेन तृप्तिर्भविष्यति ॥१८॥ यदा तु तद्वनं श्वेत अगस्त्यः सुमहानृषिः ॥ आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा कृच्छ्राद्विमोक्ष्यसे ॥ १९ ॥ स हि तारयितुं सौम्य शक्तः सुरगणानपि ॥ किं पुनस्त्वां महाबाहो क्षुत्पिपासावशं गतम् ॥ २० ॥ सोहं भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य निश्चयम् ॥ आहारं गर्हितं कुर्मि स्वशरीरं द्विजोत्तम ॥२१॥ बहून्वर्षगणान् ब्रह्मन् भुज्यमानमिदं मया ॥ क्षयं नाभ्येति ब्रह्मर्षे तृप्तिश्चापि ममोत्तमा ॥ २२ ॥ तस्य मे कृच्छ्रभूतस्य कृच्छ्रादस्माद्विमोक्षय ॥ अन्येषां न गतिर्ह्यत्र कुम्भयोनिमृते द्विजम् ॥ २३ ॥ इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ॥ प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ इदं तावत्सुवर्णं च धनं वस्त्राणि च द्विज ॥ भक्ष्यं भोज्यं च ब्रह्मर्षे ददात्याभरणानि च ॥ २५ ॥ सर्वान्कामान्प्रयच्छामि भोगांश्च मुनिपुङ्गव ॥ तारणो भगवन्मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ तस्याहं स्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् ॥ तारणायोपजग्राह तदाभरणमुत्तमम् ॥ २७ ॥ मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे ॥ मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेर्विननाश ह ॥ २८ ॥

॥ २१ ॥ २२ ॥ तस्येति ॥ कृच्छ्रभूतस्य कृच्छ्रं प्राप्तस्य । विमोचय मामिति शेषः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ मयेति ॥ तस्मिन् तारणनिमित्ते विननाश ह। पुनर्भक्षणाय नोपस्थितमित्यर्थः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥२९॥ ३० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ ॥
तदित्यादि ॥ गौरवात् सर्वज्ञः सर्ववक्तेति संभावनया ॥ १ ॥ भगवन्निति ॥ स यत्र तप्यति तद्वनं कथममृगद्विजम् ॥ २ ॥ तदिति ॥ कथं तादृशं तद्वनं तपश्चर्तुं चरितुं प्रविष्टः ॥ ३ ॥ ४ ॥ पुरेति ॥ दण्डधरो राजा प्रभुः वर्णाश्रमविभागतद्धर्मप्रवर्तनाधिकृतः ॥ ५ ॥६ ॥ ७॥ प्रीत इति ॥ दण्डेन चेति ।

प्रणष्टे तु शरीरेसौ राजर्षिः परया मुदा ॥ तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं सुखम् ॥२९॥ तेनेदं शक्रतुल्येन दिव्यमाभरणं मम॥तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतदर्शनम्॥३०॥इत्युत्तर श्रीरामायणे अष्टसप्ततितमः सर्गः७८॥
तदद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वागस्त्यस्य राघवः ॥ गौरवाद्विस्मयाच्चैव पुनः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥१॥ भगवंस्तद्वनं घोरं तपस्तप्यति यत्र सः ॥ श्वेतो वैदर्भको राजा कथं स्यादमृगद्विजम् ॥२॥ तद्वनं स कथं राजा शून्यं मनुजवर्जितम् ॥ तपश्चर्तुं प्रविष्टः स श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ॥ वाक्यं परमतेजस्वी वक्तुमेवोपचक्रमे ॥ ४ ॥ पुरा कृतयुगे राम मनुर्दण्डधरः प्रभुः ॥ तस्य पुत्रो महानासीदिक्ष्वाकुः कुलनन्दनः ॥५॥ तं पुत्रं पूर्वकं राज्ये निक्षिप्य भुवि दुर्जयम् ॥ पृथिव्यां राजवंशानां भव कर्तेत्युवाच ह ॥ ६ ॥ तथेति च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव ॥ ततः परमसंतुष्टो मनुः पुत्रमुवाच ह ॥ ७ ॥ प्रीतोस्मि परमोदार त्वं कर्तासि न संशयः ॥ दण्डेन च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे ॥८॥ अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानवेषु वै ॥ स दण्डो विधिवन्मुक्तः स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥ ९ ॥ तस्माद्दण्डे महाबाहो यत्नवान्भव पुत्रक ॥ धर्मो हि परमो लोके कुर्वतस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ इति तं बहु संदिश्य मनुः पुत्रं समाधिना ॥ जगाम त्रिदिवं हृष्टो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ११ ॥ ॥

क्षत्रियसहजधर्मभूतेन। अकारणे दण्डं मा पातयेति शेषः ॥ ८ ॥ ननु कथं परपीडावहो दण्डो युक्तः कर्तुमिति तत्राह—अपराधिष्वित्यादि ॥ विधिवद्यथाशास्त्रम् यथापराधम्। मुक्तः प्रवर्तित इत्यर्थः ॥ ९ ॥ १० ॥ इतीति ॥ समाधिना योगेन ॥ ११ ॥ ॥ ॥

॥ १२ ॥ कर्मभिरिति ॥ बहुरूपैरिति । यज्ञदानतपोलक्षणैरित्यर्थः ॥१३॥ तेषामिति ॥ पूर्वजाः ज्येष्ठाः ॥ १४ ॥ नामेति ॥ दण्ड इत्याख्याकरणं पितुः
सर्वज्ञत्वात् अन्वर्थतावसायपूर्वकमित्याह—अवश्यमित्यादि ॥ १५ ॥ १६ ॥ स इति ॥ पर्वतरोधसि पर्वततटप्रान्ते ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥
इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ ॥

प्रयाते त्रिदिवं तस्मिन्निक्ष्वाकुरमितप्रभः ॥ जनयिष्ये कथं पुत्रानिति चिन्तापरोऽभवत्॥१२॥ कर्मभिर्बहुरूपैश्च तैस्तैर्मनुसुतः
सुतान् ॥ जनयामास धर्मात्मा शतं देवसुतोपमान्॥१३॥तेषामवरजस्तात सर्वेषां रघुनन्दन॥मूढश्चाकृतविद्यश्च
न शुश्रूषति पूर्वजान् ॥१४॥ नाम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेल्पमेधसः ॥ अवश्यं दण्डपतनं शरीरेस्य
भविष्यति ॥ १५ ॥ अपश्यमानस्तं देशं घोरं पुत्रस्य राघव ॥ विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये राज्यं प्रादादरिन्दम ॥ १६ ॥
स दण्डस्तत्र राजाभूद्रम्ये पर्वतरोधसि ॥ पुरं चाप्रतिमं राम न्यवेशयदनुत्तमम् ॥ १७ ॥ पुरस्य चाकरोन्नाम
मधुमन्तमिति प्रभो ॥ पुरोहितं तूशनसं वरयामास सुव्रतम् ॥ १८ ॥ एवं स राजा तद्राज्यमकरोत्सपुरोहितः ॥
प्रहृष्टमनुजाकीर्णं देवराज्यं यथा वृषा ॥ १९॥ ततः स राजा मनुजेन्द्रपुत्रः सार्धं च तेनोशनसा तदानीम् ॥ चकार
राज्यं सुमहन्महात्मा शक्रो दिवीवोशनसा समेतः ॥२०॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥
एतदाख्याय रामाय महर्षिः कुम्भसंभवः ॥ अस्यामेवापरं वाक्यं कथायामुपचक्रमे ॥ १ ॥ ततः स दण्डः काकुत्स्थ
बहुवर्षगणायुतम् ॥ अकरोत्तत्र दान्तात्मा राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥ अथ काले तु कस्मिंश्चिद्राजा भार्गवमाश्रमम्
॥ रमणीयमुपाक्रामच्चैत्रे मासि मनोहरे ॥ ३ ॥ ॥ ॥

एतदित्यादि ॥ अस्यामेवापरं वाक्यमिति । प्रोक्तदानकथायामेव संबद्धम् अपरं तत्पृष्टोत्तरभूतं कथान्तरमित्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥ अथेति ॥ भार्गवः शुक्रः
तस्यायमपि भार्गवः तम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तस्येति ॥ मोहेन काममोहेन । उन्मत्तः उचितानुचितवनकर्मविवेकरहितः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ यदि वान्यदित्यादि ॥ यदि वान्यत्काममभोगानुकूलयम् ॥ १० ॥ अन्यथेति ॥ घोराभिसंहितं महानर्थसंवद्धम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रसादमिति ॥ कालं क्षेप्तुं विलम्बं कर्तुमित्यर्थः ॥ १४ ॥

तत्र भार्गवकन्यां स रूपेणाप्रतिमां भुवि ॥ विचरन्तीं वनोद्देशे दण्डोपश्यदनुत्तमाम् ॥ ४ ॥ स दृष्ट्वा तां सुदुर्मेधा अनङ्गशरपीडितः ॥ अभिगम्य सुसंविग्नां कन्यां वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ कुतस्त्वमसि सुश्रोणि कस्य वासि सुता शुभे ॥ पीडितोहमनङ्गेन गच्छामि त्वां शुभानने ॥ ६ ॥ तस्य चैवंब्रुवाणस्य मोहोन्मत्तस्य कामिनः ॥ भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं नृपम् ॥ ७ ॥ भार्गवस्य सुतां विद्धि देवस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ अरजान्नाम राजेन्द्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनीम् ॥ ८ ॥ मा मां स्पृश बलाद्राजन् कन्या पितृवशा ह्यहम् ॥ गुरुः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः ॥ व्यसनं सुमहत्क्रुद्धः स ते दद्यान्महातपाः ॥ ९ ॥ यदि वान्यन्मया कार्यं धर्मदृष्टेन सत्पथा ॥ वरयस्व नृपश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् ॥ १० ॥ अन्यथा तु फलं तुभ्यं भवेद् घोराभिसंहितम् ॥ क्रोधेन हि पिता मेसौ त्रैलोक्यमपि निर्दहेत् ॥ ११ ॥ दास्यते चानवद्याङ्ग तव मां याचितः पिता ॥ १२ ॥ एवंब्रुवाणामरजां दण्डः काममवशं गतः ॥ प्रत्युवाच मदोन्मत्तः शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥ १३ ॥ प्रसादं कुरु सुश्रोणि न कालं क्षेप्तुमर्हसि ॥ त्वत्कृते हि मम प्राणा विदीर्यन्ते वरानने ॥ १४ ॥ त्वां प्राप्य मे वधो वा स्याच्छापो वा यदि दारुणः ॥ भक्तं भजस्व मां भीरु भजमानं सुविह्वलम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा तु तां कन्यां दोर्भ्यां गृह्य बलाद्बली ॥ विस्फुरन्तीं यथाकामं मैथुनायोपचक्रमे ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

त्वामिति ॥ त्वां प्राप्य मे यदि वधादिर्भवेत् । भवतु नामेति शेषः ॥ १५ ॥ एवमिति ॥ विस्फुरन्तीं विलुठन्तीम् ॥ १६ ॥ ॥ ॥

॥ १७ ॥ अरजापीति ॥ प्रतीक्षन्ती पितरमास्त इति शेषः । प्रतीक्षन्ते स्म संत्रस्तेति पाठः ॥ १८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥ ॥ ॥ ॥ स मुहूर्तादित्यादि ॥ उपश्रुत्येति । शिष्यमुखाद्वृत्तान्तमिति शेषः ॥ १ ॥ स इति ॥ प्रत्यूषे प्रातःकाले ॥ २ ॥ ३ ॥ पश्यध्वमिति ॥ विपरीतस्य विपरीतानुष्ठानस्य विपत्तिं विनाशं मत्क्रोधतो जायमानामिति शेषः । अग्निशिखामिव स्थितां क्रुद्धामरजाम् । क्रुद्धादग्निशिखामिवेति पाठे क्रुद्धान्मत्तो जायमानामग्निशिखासदृशीं विपत्तिं विनाशं पश्यध्वम् ॥ ४ ॥ क्षय इति ॥ अस्य प्राप्तः क्षय इति योजना ॥ ५ ॥ शिखां वै स्प्रष्टुमिच्छतीत्युक्तान्यापदेशार्थं विशदयति–यस्मादित्यादि ॥ ईदृशमिति मत्पुत्रीधर्षणरूपमित्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ समन्तादिति ॥ धक्ष्यत इति । नाशयिष्यतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ॥

एतमर्थं महाघोरं दण्डः कृत्वा सुदारुणम् ॥ नगरं प्रययावाशु मधुमन्तमनुत्तमम् ॥ १७ ॥ अरजापि रुदन्ती सा
आश्रमस्याविदूरतः॥प्रतीक्षन्ती सुसंत्रस्ता पितरं देवसन्निभम्॥१८॥इत्युत्तरश्रीरामायणे अशीतितमः सर्गः॥८०॥
स मूहूर्तादुपश्रुत्य देवर्षिरमितप्रभः॥स्वमाश्रमं शिष्यवृतः क्षुधार्तः सन्न्यवर्तत ॥ १ ॥ सोपश्यदरजां दीनां रजसा
समभिप्लुताम् ॥ ज्योत्स्नामिवारुणग्रस्तां प्रत्यूषे न विराजतीम् ॥ २ ॥ तस्य रोषः समभवत् क्षुधार्तस्य विशेषतः॥
निर्दहन्निव लोकांस्त्रीन् शिष्यांश्चैतदुवाच ह ॥ ३ ॥ पश्यध्वं विपरीतस्य दण्डस्याविजितात्मनः॥ विपत्तिं घोरसं-
काशां क्रुद्धामग्निशिखामिव ॥ ४ ॥ क्षयोस्य दुर्मतेः प्राप्तः सानुगस्य दुरात्मनः ॥ यः प्रदीप्तां हुताशस्य शिखां वै
स्प्रष्टुमिच्छति ॥५॥ यस्मात्स कृतवान्पापमीदृशं घोरसंहितम् ॥ तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः फलं पापस्य कर्मणः
॥ ६ ॥ सप्तरात्रेण राजासौ सभृत्यबलवाहनः॥ पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥७॥ समन्ताद्योजन-
शतं विषयं चास्य दुर्मतेः॥ धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥ ८ ॥ ॥ ॥

सर्वेति ॥ विलयमगमन् गमिष्यन्तीति यावत् ॥ ९ ॥ दण्डस्येति ॥ सर्वसमुच्छ्रयं चराचरप्राणिमात्रमित्यर्थः । उच्छ्रयत्यस्मादित्युच्छ्रयम् । पांसुवर्षमिवालक्ष्यमिति । पांसुवर्षं प्रसिद्धप्रलयपांसुमहावर्षमिव प्राप्य सप्तरात्रं सप्तरात्रपर्यन्तमलक्ष्यं भविष्यतीति।विनष्टपुरपौरजानपदकं। भविष्यतीत्यर्थः ॥१०॥ इतीति ॥ तदाश्रमवासिनमिति । स्वाश्रमनिवासिनमित्यर्थः । जनपदान्तेषु दण्डजनपदसीमान्तदेशेष्वित्यर्थः ॥ ११ ॥ श्रुत्वेति ॥ सोश्रमावसथ इति छान्दसः सन्धिः । एतावता कथं तदमृगद्विजमित्यस्योत्तरं निवृत्तम् ॥ १२ ॥ निर्जनम् वनं कथं तपसे प्रविष्ट इत्यस्योत्तरमाह–स तथेत्यादि ॥ तव

सर्वसत्त्वानि यानीह स्थावराणि चराणि च ॥ महता पांसुवर्षेण विलयं सर्वतोगमन् ॥ ९ ॥ दण्डस्य विषयो यावत्तावत्सर्वसमुच्छ्रयम् ॥ पांसुवर्षमिवालक्ष्यं सप्तरात्रं भविष्यति ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षस्तदाश्रमनिवासिनम् ॥ जनं जनपदान्तेषु स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ श्रुत्वा तूशनसो वाक्यं सोश्रमावसथो जनः ॥ निष्क्रान्तो विषयात्तस्मात् स्थानं चक्रेथ बाह्यतः ॥ १२ ॥ स तथोक्त्वा मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् ॥ इहैव वस दुर्मेधे आश्रमे सुसमाहिता ॥ १३ ॥ इदं योजनपर्यन्तं सरः सुरुचिरप्रभम् ॥ अरजे विज्वरा भुङ्क्ष्व कालश्चात्र प्रतीक्ष्यताम् ॥ १४ ॥ त्वत्समीपे च ये सत्त्वा वासमेष्यन्ति तां निशाम् ॥ अवध्याः पांसुवर्षेण ते भविष्यन्ति नित्यदा ॥ १५ ॥ श्रुत्वा नियोगं ब्रह्मर्षेः साऽरजा भार्गवी तदा ॥ तथेति पितरं प्राह भार्गवं भृशदुःखिता ॥ इत्युक्त्वा भार्गवो वासमन्यत्र समकारयत् ॥ १६ ॥ तच्च राज्यं नरेन्द्रस्य सभृत्यबलवाहनम् ॥ सप्ताहाद्भस्मसाद्भूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिना ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

समलत्वात् इहैव वसेति । वासप्रयोजनमाह–सुसमाहितेति । शोभनसमाधिमतीत्यर्थः। समाध्यनुष्ठानस्यापि निमित्तमाह–दुर्मेध इति। यस्माद्धर्षणसहिष्णुदुर्बुद्धिरसि, ततः तादृशमलमोचनार्थं समाधिमती सती वसेत्यर्थः ॥ १३ ॥ कथं वस्तुं शक्यं पांसुवर्षे इत्यत्राह–इदं योजनपर्यन्तमित्यादि ॥१४॥ त्वत्समीप इति ॥ सत्त्वाः पक्ष्यादयः । एवं चोशनसोनुग्रहेण सरःप्रदेशस्य सुखावहत्वात्सुखवासत्वाच्चात्र तपसे प्रविष्ट इति भावः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

तस्येति ॥ तस्यासौ । व्यत्ययात् षष्ठी । सोसावित्यर्थः । सहिते पूर्णधर्मपूर्णसौख्यसहित इत्यर्थः । कृते कृतयुगे ॥ १८ ॥ १९ ॥२०॥ एत इति ॥ कृतोदकाः कृतस्नानादिकर्माण इत्यर्थः ॥२१॥ स तैरिति ॥ स रविः ब्रह्मवित्तमैः तीर्थसमीपे सहितैः संगतैस्तैर्ऋषिभिरभ्यस्तं ब्राह्मणं ब्रह्ममन्त्रतन्त्रयोगाभ्यासलक्षणपूजां प्राप्येति शेषः॥२२॥इति श्रीगो० श्री०ने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकाशीतितमः सर्गः ॥८१॥ ॥ छ ॥ ऋषेरित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥

तस्यासौ दण्डविषयो विन्ध्यशैवलयोर्नृप ॥ शप्तो ब्रह्मर्षिणा तेन वैधर्म्ये सहिते कृते ॥ १८ ॥ ततः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते ॥ तपस्विनः स्थिता ह्यत्र जनस्थानमतोभवत् ॥१९॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव ॥ सन्ध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते ॥ २० ॥ एते महर्षयः सर्वे पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥ कृतोदका नरव्याघ्र आदित्यं पर्युपासते ॥ २१ ॥ स तैर्ब्राह्मणमभ्यस्तं सहितैर्ब्रह्मवित्तमैः ॥ रविरस्तं गतो राम गच्छोदकमुपस्पृश ॥ २२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ ॥ ॥

ऋषेर्वचनमाज्ञाय रामः सन्ध्यामुपासितुम् ॥ उपाक्रमत्सरः पुण्यमप्सरोगणसेवितम् ॥१॥ तत्रोदकमुपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ॥ आश्रमं प्राविशद्रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः ॥ २ ॥ तस्यागस्त्यो बहुगुणं कन्दमूलं तथौषधिम् ॥ शाल्यादीनि पवित्राणि भोजनार्थमकल्पयत् ॥ ३ ॥ स भुक्तवान्नरश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम् ॥ प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपाविशत् ॥ ४ ॥ प्रभाते काल्यमुत्थाय कृत्वाह्निकमरिन्दमः ॥ ऋषिं समुपचक्राम गमनाय रघूत्तमः ॥५॥ अभिवाद्याब्रवीद्रामो महर्षिं कुम्भसंभवम् ॥ आपृच्छे स्वां पुरीं गन्तुं मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि दर्शनेन महात्मनः ॥ द्रष्टुं चैवागमिष्यामि पावनार्थमिहात्मनः ॥ ७ ॥ ॥

तस्येति ॥ कन्दमूलं कन्दरूपं मूलं कन्दमूलम् । तथा ओषधिं दिव्यौषधिरूपम् । जरापलितघ्नमित्यर्थः । एवं बहुगुणप्रयोजनार्थं ददौ । भोजनार्थं तु शालिपवित्राणि पवित्रशाल्यन्नानीत्यर्थः ॥३॥४॥ प्रभात इति ॥ काल्यं प्रातःकालिकमाह्निकम् कृत्वा । गमनायेति । गमनानुज्ञार्थमित्यर्थः ॥५॥६॥ धन्य इति ॥

आगमिष्यामीति । अतः परमपि यदाकाङ्क्षा तदा आत्मनः पावनार्थमागमिष्यामीत्युक्तवानित्यर्थः ॥ ७ ॥ तथेति ॥ परमप्रीत इति । एवं विनयवचनादिति शेषः । धर्मनेत्र इति । धर्मो नेत्रं ज्ञानसाधनं यस्य स तथा ॥ ८ ॥ ९ ॥ मुहूर्तमिति ॥ स्वर्गभूताः स्वर्गं प्राप्ताः ॥ १० ॥ ११ ॥

तथा वदति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ॥ उवाच परमप्रीतो धर्मनेत्रस्तपोधनः ॥ ८ ॥ अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम् ॥ पावनः सर्वभूतानां त्वमेव रघुनन्दन ॥ ९ ॥ मुहूर्तमपि राम त्वां ये च पश्यन्ति केचन ॥ पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्ते सर्वदैवतैः ॥ १० ॥ ये च त्वां घोरचक्षुर्भिः पश्यन्ति प्राणिनो भुवि ॥ हतास्ते यमदण्डेन सद्यो निरयगामिनः ॥ ११ ॥ ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् ॥ भुवि त्वां कथयन्तोपि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥ १२ ॥ गच्छ चारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥ प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ॥ अभ्यवादयत प्राज्ञस्तमृषिं पुण्यशालिनम् ॥ १४ ॥ अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं तांश्च सर्वान् तपोधनान् ॥ अध्यारोहत्तदव्यग्रः पुष्पकं हेमभूषितम् ॥ १५ ॥ तं प्रयान्तं मुनिगणा ह्याशीर्वादैः समन्ततः ॥ अपूजयन्महेन्द्राभं सहस्राक्षमिवामराः ॥ १६ ॥ खस्थः स ददृशे रामः पुष्पके हेमभूषिते ॥ शशी मेघसमीपस्थो यथा जलधरागमे ॥ १७ ॥ ततोर्धदिवसे प्राप्ते पूज्यमानस्ततस्ततः ॥ अयोध्यां प्राप्य काकुत्स्थो मध्यकक्ष्यामवारुहत् ॥ १८ ॥ ततो विसृज्य रुचिरं पुष्पकं कामगामि तत् ॥ विसर्जयित्वा गच्छेति स्वस्ति तेस्त्विति च प्रभुः ॥ १९ ॥ कक्ष्यान्तरविनिक्षिप्तं द्वाःस्थं रामोब्रवीद्वचः ॥ लक्ष्मणं भरतं चैव गत्वा तौ लघुविक्रमौ ॥ ममागमनमाख्याय शब्दापयत मा चिरम् ॥ २० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ ॥ ॥

ईदृश इति ॥ सिद्धिं परमं तत्त्वं ब्रह्मभावम् ॥ १२ ॥ गच्छेति ॥ अरिष्टं सुखम् ॥ १३ ॥ एवमिति ॥ प्रग्रहः उद्यतबाहुः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ तत इति ॥ मध्यकक्ष्यां प्राप्येति शेषः ॥ १८ ॥ १९ ॥ कक्ष्यान्तरेति ॥ विनिक्षिप्तं योजितमिति यावत् । शब्दापयतेति पुगार्षः । आत्मानं शब्दवन्तं कुर्वित्यर्थः । बहुवचनमार्षम् ॥ २० ॥ इति श्रीगोविन्द० श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

तच्छुत्वेत्यादि॥१॥२॥कृतमिति॥द्विजकार्यं यथा प्रतिज्ञातं तत्तथा तथ्यं कृतम्। बालो जीवित इत्यर्थः। धर्मसेतुं राजधर्ममर्यादाभूतं राजसूयमित्यर्थः॥३॥ अक्षय्य इति॥ धर्मप्रसाधकं धर्मवर्धकमित्यर्थः। धर्मप्रवचनामिति च पाठः॥४॥ युवाभ्यामिति॥ तत्र धर्मो हि शाश्वत इति। तत्र राजसूये। क्षत्रियस्यासा-

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ द्वाःस्थः कुमारावाहूय राघवाय न्यवेदयत्॥१॥दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्तौ प्रियौ भरतलक्ष्मणौ॥ परिष्वज्य तदा रामो वाक्यमेतदुवाच ह॥२॥ कृतं मया यथा तथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम्॥ धर्मसेतुमतो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ॥३॥ अक्षय्यश्चाव्ययश्चैव धर्मसेतुर्मतो मम॥ धर्मप्रसाधकं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम्॥४॥ युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम्॥ सहितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मो हि शाश्वतः॥५॥ इष्ट्वा तु राजसूयेन मित्रः शत्रुनिबर्हणः॥ सुहुतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत्॥६॥ सोमश्च राजसूयेन इष्ट्वा धर्मेण धर्मवित्॥ प्राप्तश्च सर्वलोकेषु कीर्तिस्थानं च शाश्वतम्॥७॥ अस्मिन्नहनि यच्छ्रेयश्चिन्त्यतां तन्मया सह॥ हितं चायतियुक्तं च प्रयतौ कर्तुमर्हथः॥८॥ श्रुत्वा तु राघवस्यैतद्वाक्यं वाक्यविशारदः॥ भरतः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह॥९॥ त्वयि धर्मः परः साधो त्वयि सर्वा वसुंधरा॥ प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम॥१०॥ महीपालाश्च सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामराः॥ निरीक्षन्ते महात्मानं लोकनाथं यथा वयम्॥११॥ प्रजाश्च पितृवद्राजन् पश्यन्ति त्वां महाबल॥ पृथिव्या गतिभूतोसि प्राणिनामपि राघव॥१२॥स त्वमेवंविधं यज्ञमाहर्तासि कथन्नृप॥ पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते॥१३॥ पृथिव्यां ये च पुरुषा राजन्पौरुषमागताः॥ सर्वेषां भविता तत्र संक्षयः सर्वकोपजः॥१४॥ ॥ ॥ ॥

धारणः अक्षयकीर्तिहेतुर्धर्म इत्यर्थः॥५॥६॥७॥ अस्मिन्निति॥ हितम्। इह लोके सुखम् आयतियुक्तम्। उत्तरः काल आयातिः। उत्तरकाले च हितामित्यर्थः॥८॥९॥ त्वयीति॥ सर्वा वसुंधरा प्रतिष्ठितेति। सार्वभौमत्वादिति भावः॥१०॥११॥ प्रजा इति॥ पितृवत्पितरमिव॥१२॥१३॥१४॥

स त्वमिति ॥ तव वशे वर्तते तव स्वाधीने वर्तत इत्यर्थः ॥१५॥१६॥१७॥१८॥एष्यदिति॥एष्यदस्मदभिप्रायात्॥अस्मदभिप्रायमेष्यतः मामकचिकीर्षामाजिगमिषत इत्यर्थः॥१९॥२०॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने त्र्यशीतितमः सर्गः८३॥

स त्वं पुरुषशार्दूल गुणैरतुलविक्रम ॥ पृथिवीं नार्हसे हन्तुं वशे हि तव वर्तते ॥ १५ ॥ भरतस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वामृतमयं तदा ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे रामः सत्यपराक्रमः॥ १६॥उवाच च शुभं वाक्यं कैकेय्यानन्दवर्धनम्॥ प्रीतोस्मि परितुष्टोस्मि तवाद्य वचनेनघ ॥ १७ ॥ इदं वचनमक्लीबं त्वया धर्मसमाहितम् ॥ व्याहृतं पुरुषव्याघ्र पृथिव्याः परिपालनम् ॥ १८ ॥ एष्यदस्मदभिप्रायाद्राजसूयात्क्रतूत्तमात् ॥ निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहृतेन च ॥ १९ ॥ लोकपीडाकरं कर्म न कर्तव्यं विचक्षणैः ॥ बालानां तु शुभं वाक्यं ग्राह्यं लक्ष्मणपूर्वज ॥ तस्माच्छृणोमि ते वाक्यं साधुयुक्तं महामते ॥ २० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ ॥ ॥

तथोक्तवति रामे तु भरते च महात्मनि॥ लक्ष्मणोथ शुभं वाक्यमुवाच रघुनन्दनम्॥ १॥अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम् ॥ पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन ॥ २॥ श्रूयते हि पुरा वृत्तं वासवे सुमहात्मनि ॥ ब्रह्महत्यावृतः शक्रो हयमेधेन पावितः॥ ३ ॥ पुरा किल महाबाहो देवासुरसमागमे ॥ वृत्रो नाम महानासीद्दैतेयो लोकसंमतः ॥ ४ ॥ विस्तीर्णो योजनशतमुच्छ्रितस्त्रिगुणं ततः ॥ अनुरागेण लोकांस्त्रीन् स्नेहात्पश्यति सर्वतः ॥ ५ ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ॥ शशास पृथिवीं स्फीतां धर्मेण सुसमाहितः ॥ ६ ॥ ॥

तथोक्तवतीत्यादि ॥ १ ॥ अश्वमेध इति ॥ रोचतामित्यादि । अनुष्ठातुमिति शेषः । "सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते" इति श्रुतेः॥ ॥ २ ॥ एवमश्वमेधस्य ब्रह्महत्यान्तसर्वपापशोधकत्वे पुरावृत्तकथनं--श्रूयते हीत्यादि ॥ ३ ॥ ४ ॥ विस्तीर्ण इति ॥ ततस्त्रिगुणमिति । योजनशतत्रयमित्यर्थः । अनुरागेण मदीयत्वाभिमानेन हेतुना, स्नेहात् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

॥७॥८॥ तस्येति॥इतरत्सुखमिति । वैषयिकसुखमित्यर्थः॥९॥स इति॥मधुरः सौम्यश्चासावीश्वरश्च मधुरेश्वरः तम् । मधुराया नगर्या ईश्वरं वा ॥१०॥तप इति ॥ परमार्तवत् परमार्तः सन् ॥११॥१२॥ यदीति ॥ भूय एव अतः परमपीत्यर्थः । भूतजातमपीति शेषः ॥ १३ ॥ तं चेति ॥ क्षणमपि न भवेत् न जीवेदित्यर्थः ॥ १४ ॥ यदा हीति ॥ उपलब्धवान् वृत्र इति शेषः ॥१५॥ स त्वामिति ॥ रक्षणेनेति शेषः ॥ १६ ॥ इमे हीति ॥ वृत्रघातेन हेतुना साह्य-

तस्मिन्प्रशासति तदा सर्वकामदुघा मही ॥ रसवन्ति प्रसूनानि मूलानि च फलानि च ॥ ७ ॥ अकृष्टपच्या
पृथिवी सुसंपन्ना महात्मनः ॥ स राज्यं तादृशं भुङ्क्ते स्फीतमद्भुतदर्शनम् ॥ ८ ॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपः
कुर्यामनुत्तमम् ॥ तपो हि परमं श्रेयः संमोहमितरत्सुखम् ॥ ९ ॥ स निक्षिप्य सुतं ज्येष्ठं पौरेषु मधुरेश्वरम् ॥ तप
उग्रं समातिष्ठत्तापयन्सर्वदेवताः ॥ १० ॥ तपस्तप्यति वृत्रे तु वासवः परमार्तवत् ॥ विष्णुं समुपसंक्रम्य वाक्यमेतदुवाच
ह ॥ ११ ॥ तपस्यता महाबाहो लोका वृत्रेण निर्जिताः ॥ बलवान्स हि धर्मात्मा नैनं शक्ष्यामि शासितुम् ॥ १२ ॥
यद्यसौ तप आतिष्ठेद्भूय एवा सुरेश्वरः ॥ यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदस्य वशानुगाः ॥ १३ ॥ तं चैनं परमोदारमुपेक्षसि
महाबलम् ॥ क्षणं हि न भवेद्वृत्रः क्रुद्धे त्वयि सुरेश्वर ॥ १४ ॥ यदा हि प्रीतिसंयोगं त्वया विष्णो समागतः ॥ तदाप्रभृति
लोकानां नाथत्वमुपलब्धवान् ॥ १५ ॥ स त्वं प्रसादं देवानां कुरुष्व सुसमाहितः ॥ त्वत्कृतेन हि सर्वं स्यात्प्रशान्तमरुजं
जगत् ॥ १६ ॥ इमे हि सर्वे विष्णो त्वां निरीक्षन्ते दिवौकसः ॥ वृत्रघातेन महता त्वेषां साह्यं कुरुष्व ह
॥ १७ ॥ त्वया हि नित्यशः साह्यं कृतमेषां महात्मनाम् ॥ असह्यमिदमन्येषामगतीनां गतिर्भवान् ॥ १८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे
चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ ॥ ॥ ॥

म् उपकारं कुरु । हशब्दः पादपूरकः ॥१७॥ त्वया हीति ॥ अन्येषामिदमसह्यम् । अन्येषामसुराणां यद्यपि त्वत्साह्यमसह्यमथापि तत्कुरु । हि यस्माद्भवानेवागतीनां गतिः तस्मात्॥१८॥इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥

लक्ष्मणस्येत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥३॥ पूर्वमिति ॥ सौहृदबद्धः भक्तिबद्धः । पूर्वमिति । युष्माभिस्तद्वधप्रार्थनात्पूर्वमित्यर्थः ॥ ४ ॥ ५ ॥ त्रिधेति ॥ त्रिधाभूतं त्रेधा विभक्तमित्यर्थः ॥ ६ ॥ एकांश इति ॥ तृतीयो भूतलं यात्विति । वृत्रदेहधारणशक्तिसिद्ध्यर्थम् इन्द्रस्य वृत्रहननजब्रह्महत्याबाधानिवृत्तिर्यावद्धरा-

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा शत्रुनिबर्हणः ॥ वृत्रघातमशेषेण कथयेत्याह सुव्रत ॥ १ ॥ राघवेणैवमुक्तस्तु सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ भूय एव कथां दिव्यां कथयामास सुव्रतः ॥ २ ॥ सहस्राक्षवचः श्रुत्वा सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ विष्णुर्देवानुवाचेदं सर्वानिन्द्रपुरोगमान् ॥३॥ पूर्वं सौहृदबद्धोस्मि वृत्रस्य तु महात्मनः ॥ तेन युष्मत्प्रियार्थं हि नाहं हन्मि महासुरम् ॥ ४ ॥ अवश्यं करणीयं च भवतां सुखमुत्तमम् ॥ तस्मादुपायमाख्यास्ये येन वृत्रो निहन्यते ॥ ५ ॥ त्रिधाभूतं करिष्यामि ह्यात्मानं सुरसत्तमाः ॥ तेन वृत्रं सहस्राक्षो वधिष्यति न संशयः ॥ ६ ॥ एकांशो वासवं यातु द्वितीयो वज्रमेव तु ॥ तृतीयो भूतलं शक्रस्तदा वृत्रं वधिष्यति ॥ ७ ॥ तथा ब्रुवति देवेशे देवा वाक्यमथाब्रुवन् ॥ एवमेतन्न सन्देहो यथा वदसि दैत्यहन् ॥ ८ ॥ भद्रन्तेस्तु गमिष्यामो वृत्रासुरवधैषिणः ॥ भजस्व परमोदार वासवं स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥ ततः सर्वे महात्मानः सहस्राक्षपुरोगमाः ॥ तदरण्यमुपाक्रामन् यत्र वृत्रो महासुरः ॥ १० ॥ तेपश्यंस्तेजसा भूतं तप्यन्तमसुरोत्तमम् ॥ पिबन्तमिव लोकांस्त्रीन्निर्दहन्तमिवाम्बरम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वैव चासुरश्रेष्ठं देवास्त्रासमुपागमन् ॥ कथमेनं वधिष्यामः कथन्न स्यात्पराजयः ॥ १२ ॥ तेषां चिन्तयतां तत्र सहस्राक्षः पुरन्दरः ॥ वज्रं प्रगृह्य पाणिभ्यां प्राहिणोद्वृत्रमूर्धनि ॥ १३ ॥ कालाग्निनेव घोरेण तप्तेनैव महार्चिषा ॥ पतता वृत्रशिरसा जगत्त्रासमुपागमत् ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥

रक्षणार्थं चेत्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ त इति ॥ भूतं व्याप्तम् । पिबन्तमित्यादिकं तेजोदुर्धर्षत्वपरम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ कालाग्निनेति ॥ तप्तेन दीप्यमानेन । “ तप,संतापदीप्त्योः ” इति धातुः । दीप्तेनेति च पाठः । वज्रेण छेदनहेतुना पतता वृत्रशिरसा जगत्त्रासमुपागमत् ॥ १४ ॥ ॥

असंभाव्यमिति ॥ असंभाव्यमनपराधिनस्तप्यतो वृत्रस्य वधमसंभाव्यमनुचितं कृतमिति चिन्तयानो विबुधाधिपः लोकस्यान्तमन्तप्रदेशं लोकालोकात्परं तमःप्रदेशं जगाम । ब्रह्महत्याभिया पलायितोभूत् ॥ १५ ॥ तमिति ॥ तं पलायमानमिन्द्रम् । ब्रह्महत्या, त्वष्ट्रा मुनिना वृत्रस्योत्पादितत्वात् । अस्य गात्रेष्वपतच्च । ब्रह्महत्येति शेषः । तमिन्द्रं ब्रह्महत्याग्रस्तमिन्द्रमित्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१॥२२॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते

असंभाव्यं वधं तस्य वृत्रस्य विबुधाधिपः ॥ चिन्तयानो जगामाशु लोकस्यान्तं महायशाः ॥ १५ ॥ तमिन्द्रं ब्रह्महत्याशु गच्छन्तमनुगच्छति ॥ अपतच्चास्य गात्रेषु तमिन्द्रं दुःखमाविशत् ॥ १६ ॥ हतारयः प्रणष्टेन्द्रा देवाः साग्निपुरोगमाः ॥ विष्णुं त्रिभुवनेशानं मुहुर्मुहुरपूजयन् ॥ १७ ॥ त्वं गतिः परमेशान पूर्वजो जगतः पिता ॥ रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ १८ ॥ हतश्चायं त्वया वृत्रो ब्रह्महत्या च वासवम् ॥ बाधते सुरशार्दूल मोक्षं तस्या विनिर्दिश ॥ १९ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ॥ मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ॥ २० ॥ पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ॥ पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयम् ॥ २१ ॥ एवं संदिश्य तां वाणीं देवानाममृतोपमाम् ॥ जगाम विष्णुर्देवेशस्तूयमानस्त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चाशीतितमःसर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ ॥ ॥

तदा वृत्रवधं सर्वमखिलेन स लक्ष्मणः ॥ कथयित्वा नरश्रेष्ठः कथाशेषं प्रचक्रमे ॥ १ ॥ ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ॥ ब्रह्महत्यावृतः शक्रः संज्ञां लेभे न वृत्रहा ॥ २ ॥ सोन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः ॥ कालं तत्रावसत्कंचिद्वेष्टमान इवोरगः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ ॥

तदा वृत्रेत्यादि ॥ कथाशेषं वक्तुमिति शेषः ॥१॥ तत इति ॥ न संज्ञां लेभ इति । ग्रहग्रस्तवदप्रकाशोभूदित्यर्थः ॥२॥ स इति ॥ कंचित्कालमित्यन्वयः ॥३॥

अथेति ॥ नष्टे अदृष्टे । उद्विग्नमिति । अराजकत्वादिति शेषः । निस्स्नेहा अनार्द्रा ॥ ४ ॥ निस्स्रोतस् इति ॥ अनावृष्टिकृत इति । इन्द्राभावमूलानावृष्टिकृत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ क्षीयमाण इति ॥ समुपानयन् संपादयन्ति स्म ॥ ६ ॥ ७ ॥ त इति ॥ तं देवेशमिति । विष्णुमित्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ त इति ॥ हे दुरासदे, ब्रह्महत्ये इति शेषः ॥ ११ ॥ देवानामिति ॥ सन्निधौ देवानां सन्निधौ । संदधाविति पाठे चतुर्धा विभागं संपादितवतीत्यर्थः । अन्यत्र

अथ नष्टे सहस्राक्षे उद्विग्नमभवज्जगत् ॥ भूमिश्च ध्वस्तसंकाशा निस्स्नेहा शुष्ककानना ॥४ ॥ निःस्रोतसश्च ते सर्वे
ह्रदाश्च सरितस्तथा॥ संक्षोभश्चैव सत्त्वानामनावृष्टिकृतोभवत्॥५॥क्षीयमाणे तु लोकेस्मिन्त्संभ्रान्तमनसः सुराः॥
यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तं यज्ञं समुपानयन् ॥६॥ ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः ॥ तं देशं समुपाजग्मुर्यत्रेन्द्रो
भयमोहितः ॥ ७ ॥ ते तु दृष्ट्वा सहस्राक्षमावृतं ब्रह्महत्यया ॥ तं पुरस्कृत्य देवेशमश्वमेधमुपाक्रमन् ॥ ८ ॥
ततोश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ववृधे ब्रह्महत्यायाः पावनार्थं नरेश्वर ॥ ९ ॥ ततो यज्ञे समाप्ते तु ब्रह्महत्या
महात्मनः ॥ अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं क्व मे स्थानं विधास्यथ ॥ १० ॥ ते तामूचुस्तदा देवास्तुष्टाः प्रीतिसमन्विताः
॥ चतुर्धा विभजात्मानमात्मनैव दुरासदे ॥ ११ ॥ देवानां भाषितं श्रुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनाम् ॥ सन्निधौ
स्थानमन्यत्र वरयामास दुर्वसा ॥ १२ ॥ एकेनांशेन वत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्दर्पघ्नी
कामवारिणी ॥ १३ ॥ भूम्यामहं सर्वकालमेकेनांशेन दुर्वसा ॥ वसिष्यामि न सन्देहः सत्येनैतद्ब्रवीमि वः॥ १४ ॥
योयमंशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौवनशालिषु ॥ त्रिरात्रं दर्पपूर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी ॥ १५ ॥ ॥

महेन्द्रादन्यत्र । दुर्वसा महेन्द्रे दुर्वसा ॥ १२ ॥ एकेनेति ॥ चतुर इति । "सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः" इति स्मरणात् । "पक्षा वै मासाः" इति पक्षानुसारेण चतुष्ट्वात् । दर्पघ्नी । अपुण्यकृतामिति शेषः । कामवारिणी । स्नातुमिच्छतामिति शेषः । कामचारिणीति च पाठः ॥ १३ ॥ १४ ॥ योयमिति ॥ दर्पघातिनी । पुरुषसंभोगसुखहारिणीति भावः ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥

॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षडशीतितमः सर्गः॥८६॥
तच्छुत्वेत्यादि ॥ अश्वमेधवैभवं स्वयमपि जानामीति प्रहासः ॥ १ ॥ २ ॥ अथ वृषध्वजप्रियं विष्णवाराधनरूपं हयमेधं श्लाघयितुं राम उपक्रमते—श्रूय-

हन्तारो ब्राह्मणान्ये तु मृषापूर्वमदूषकान् ॥ तांश्चतुर्थेन भागेन संश्रयिष्ये सुरर्षभाः ॥ १६ ॥ प्रत्यूचुस्तां ततो देवा
यथा वदसि दुर्वसे ॥ तथा भवतु तत्सर्वं साधयस्व यदीप्सितम् ॥ १७ ॥ ततः प्रीत्यान्विता देवाः सहस्राक्षं ववन्दिरे ॥
विज्वरः स च पूतात्मा वासवः समपद्यत ॥ १८ ॥ प्रशान्तं च जगत्सर्वं सहस्राक्षे प्रतिष्ठिते ॥ यज्ञं चाद्भुतसंकाशं तदा
शक्रोभ्यपूजयत् ॥ १९ ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावो रघुनन्दन ॥ यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव ॥ २० ॥ इति
लक्ष्मणवाक्यमुत्तमं नृपतिरतीव मनोहरं महात्मा ॥ परितोषमवाप हृष्टचेता निशमय्येन्द्रसमानविक्रमौजाः॥२१॥
इत्युत्तरश्रीरामायणे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ ॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणेनोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाच महातेजाः प्रहसन्राघवो वचः ॥ १ ॥ एवमेव नरश्रेष्ठ
यथा वदसि लक्ष्मण ॥ वृत्रघातमशेषेण वाजिमेधफलं च यत् ॥२॥ श्रूयते हि पुरा सौम्य कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ पुत्रो
बाह्लीश्वरः श्रीमानिलो नाम महायशाः॥३॥ स राजा पृथिवीं सर्वां वशे कृत्वा सुधार्मिकः ॥ राज्यं चैव नरव्याघ्र पु-
त्रवत्पर्यपालयत् ॥ ४ ॥ सुरैश्च परमोदारैर्दैतेयैश्च महाधनैः ॥ नागराक्षसगन्धर्वैर्यक्षैश्च सुमहात्मभिः ॥ ५ ॥ पूज्यते
नित्यशः सौम्य भयार्तै रघुनन्दन ॥ अबिभ्यंश्च त्रयो लोकाः सरोषस्य महात्मनः॥६॥ स राजा तादृशो ह्यासीद्ध-
र्मे वीर्ये च निष्ठितः ॥ बुद्ध्या च परमोदारो बाह्लिकेशो महायशाः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

त इत्यादि ॥ बाह्लिर्देशविशेषः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ पूज्यत इति ॥ भयार्तैरिति विशेषणं दैतेयादीनाम् । भयहेतुश्च । तद्दोष इत्याह—अबिभ्यन्निति । बि-
भियुरित्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ८ ॥ ९ ॥ नानेति ॥ अयुतम् अयुतसंख्याकम् । वध्यमानमभूदिति शेषः । यत्र जात इत्यादि । महासेनः स्कन्दः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ ये त्विति ॥ पुरुष इति वादो व्यपदेशो येषामिति पुरुषवादिनः । पुल्लिङ्गशब्दवाच्या ये पदार्थाः सन्ति ॥ १३ ॥ यच्चेति ॥ अन्यच्च यच्च किञ्चन नपुंसकलिङ्गवा-

स प्रचक्रे महाबाहुर्मृगयां रुचिरे वने ॥ चैत्रे मनोरमे मासि सभृत्यबलवाहनः ॥ ८ ॥ प्रजघ्ने च नृपोऽरण्ये
मृगान् शतसहस्रशः ॥ हत्वैव तृप्तिर्नाभूच्च राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ९ ॥ नानामृगाणामयुतं वध्यमानं
महात्मना ॥ यत्र जातो महासेनस्तं देशमुपचक्रमे ॥ १० ॥ तस्मिन्प्रदेशे देवेश शैलराजसुतां हरः ॥ रमयामास
दुर्धर्षः सर्वैरनुचरैः सह ॥ ११ ॥ कृत्वा स्त्रीरूपमात्मानमुमेशो गोपतिध्वजः ॥ देव्याः प्रियचिकीर्षुः सन् त-
स्मिन्पर्वतनिर्झरे ॥ १२ ॥ ये तु तत्र वनोद्देशे सत्त्वाः पुरुषवादिनः ॥ वृक्षाः पुरुषनामानस्तेभवन् स्त्रीजना-
स्तदा ॥ १३ ॥ यच्च किञ्चन तत्सर्वं नारीसंज्ञं बभूव ह ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजा स इलः कर्दमात्मजः ॥
निघ्नन्मृगसहस्राणि तं देशमुपचक्रमे ॥ १४ ॥ स दृष्ट्वा स्त्रीकृतं सर्वं सव्यालमृगपक्षिकम् ॥ आत्मानं स्त्री-
कृतञ्चैव सानुगं रघुनन्दन ॥ १५ ॥ तस्य दुःखं महच्चासीद्दृष्ट्वात्मानं तथागतम् ॥ उमापतेश्च तत्कर्म
ज्ञात्वा त्रासमुपागमत् ॥ १६ ॥ ततो देवं महात्मानं शितिकण्ठं कपर्दिनम् ॥ जगाम शरणं राजा सभृ-
त्यबलवाहनः ॥ १७ ॥ ततः प्रहस्य वरदः सह देव्या महेश्वरः ॥ प्रजापतिसुतं वाक्यमुवाच वरदः स्व-
यम् ॥ १८ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे कार्दमेय महाबल ॥ पुरुषत्वमृते सौम्य वरं वरय सुव्रत ॥ १९ ॥

च्यमस्ति तत्सर्वं नारीसंज्ञं स्त्रीलिङ्गशब्दवाच्यार्हं स्त्रीवेषं बभूव ॥ १४ ॥ स दृष्ट्वेत्यादि ॥ अथात्मानं स्त्रीकृतम् ॥ १५ ॥ तस्येति ॥ तथागतं तथावस्थां प्राप्तमात्मानं दृष्ट्वा तच्चात्मनस्तथाप्राप्तिरूपं कर्म तदिच्छावशात्प्राप्तं ज्ञात्वा त्रासमुपागमत् ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ उत्तिष्ठेति ॥ कार्दमेयेति ॥ शुभ्रादित्वाड्ढक् । पुरुषत्वमृते पुरुषत्वं विना ॥ १९ ॥

तत इति ॥ न च जग्राह स्त्रीभूत इति। गुरुवैषम्यमार्षम्। अन्यद्वरं पुंस्त्ववरणव्यतिरिक्तम् वरं न जग्राह ॥२०॥२१॥ ईश इति। सौम्येन चक्षुषा अनुग्रहचक्षुषा मां भज अनुगृहाण ॥२२॥ २३ ॥ अर्धस्येत्यादि ॥ स्त्रीपुंसोरर्धस्य। समासाजन्तनिपाताभाव आर्षः। पुरुषत्वप्राप्तिरूपे वरे अर्धस्य देवो वरदो दाता। अर्धस्यैवाहं दात्री। अस्मात्त्वं मत्तोर्धं गृहाण। यावदिच्छसि यदिच्छसि ॥ २४ ॥ २५ ॥ यदीति ॥ उपासित्वा प्राप्य ॥ २६ ॥ २७ ॥ अनुग्र-

ततः स राजा दुःखार्तः प्रत्याख्यातो महात्मना ॥ न च जग्राह स्त्रीभूतो वरमन्यं सुरोत्तमात् ॥ २० ॥ ततः शोकेन महता शैलराजसुतां नृपः ॥ प्रणिपत्य ह्युमां देवीं सर्वेणैवान्तरात्मना ॥ २१ ॥ ईशे वराणां वरदे लोकानामसि भामिनी ॥ अमोघदर्शने देवि भज सौम्येन चक्षुषा॥२२॥हृद्गतं तस्य राजर्षेर्विज्ञाय हरसन्निधौ ॥ प्रत्युवाच शुभं वाक्यं देवी रुद्रस्य सम्मता ॥ २३ ॥ अर्धस्य देवो वरदो वरार्धस्य तव ह्यहम् ॥ तस्मादर्धं गृहाण त्वं स्त्रीपुंसोर्यावदिच्छसि ॥ २४ ॥ तदद्भुततरं श्रुत्वा देव्या वरमनुत्तमम् ॥ संप्रहृष्टमना भूत्वा राजा वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २५ ॥ यदि देवि प्रसन्ना मे रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ मासं स्त्रीत्वमुपासित्वा मासं स्यां पुरुषः पुनः ॥ २६ ॥ ईप्सितं तस्य विज्ञाय देवी सुरुचिरानना ॥ प्रत्युवाच शुभं वाक्यमेवमेव भविष्यति ॥ २७ ॥ राजन् पुरुषभूतस्त्वं स्त्रीभावं न स्मरिष्यसि ॥ स्त्रीभूतश्च परं मासं न स्मरिष्यसि पौरुषम् ॥ २८ ॥ एवं स राजा पुरुषो मासं भूत्वाथ कार्दमिः ॥ त्रैलोक्यसुन्दरी नारी मासमेकमिलाभवत् ॥ २९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥

तां कथामिलसंबन्धां रामेण समुदीरिताम् ॥ लक्ष्मणो भरतश्चैव श्रुत्वा परमविस्मितौ ॥ १ ॥ ॥

हान्तरमाह—राजन्नित्यादि ॥ २८ ॥ एवमिति ॥ कार्दमिः। "अत इञ्" ॥ २९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥ ॥

तां कथामित्यादि ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ताविति ॥ प्राञ्जली इति द्विवचनम् । तस्य भावस्येति । स्त्रीपुंसभावस्येत्यर्थः ॥ २ ॥ कथमिति ॥ स्त्रीभूतः अत एव दुर्गतिः कथं वर्तयामास । तत्काल-
मिति शेषः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ वाहनानीति ॥ पर्वतानाम् आभोगो विस्तारः ॥ ७ ॥ अथेति ॥ अविदूरतः यत्र स्त्रीत्वप्राप्तिस्तस्याविदूरत इत्यर्थः ।
अन्यदेशत्वात् बुधस्य स्त्रीत्वाप्राप्तिरिति भावः ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ सेति ॥ क्षोभयामासेति । क्रीडयेति शेषः ॥ ११ ॥ बुधस्त्विति ॥ आत्मानं

तौ रामं प्राञ्जली भूत्वा तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ विस्तरं तस्य भावस्य तदा पप्रच्छतुः पुनः ॥ २ ॥ कथं स राजा
स्त्रीभूतो वर्तयामास दुर्गतिः ॥ पुरुषः स यदा भूतः कां वृत्तिं वर्तयत्यसौ ॥ ३ ॥ तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा कौतूहलसम-
न्वितम् ॥ कथयामास काकुत्स्थस्तस्य राज्ञो यथागतम् ॥ ४ ॥ तमेव प्रथमं मासं स्त्रीभूता लोकसुन्दरी ॥ ताभिः
परिवृताः स्त्रीभिर्ये च पूर्वपदानुगाः ॥ ५ ॥ तत्काननं विगाह्याशु विजह्रे लोकसुन्दरी ॥ द्रुमगुल्मलताकीर्णं पद्भ्यां
पद्मदलेक्षणा ॥ ६ ॥ वाहनानि च सर्वाणि सा त्यक्त्वा वै समन्ततः ॥ पर्वताभोगविवरे तस्मिन्रेमे इला तदा ॥ ७ ॥
अथ तस्मिन्वनोद्देशे पर्वतस्याविदूरतः ॥ सरः सुरुचिरप्रख्यं नानापक्षिगणैर्युतम् ॥ ८ ॥ ददर्श सा त्विला
तस्मिन् बुधं सोमसुतं ततः ॥ ज्वलन्तं स्वेन वपुषा पूर्णसोममिवोदितम् ॥ ९ ॥ तपन्तं च तपस्तीव्रमम्भो-
मध्ये दुरासदम् ॥ यशस्करं कामकरं तारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥ १० ॥ सा तं जलाशयं सर्वं क्षोभयामास
विस्मिता ॥ सहगैः पूर्वपुरुषैः स्त्रीभूतै रघुनन्दन ॥ ११ ॥ बुधस्तु तां समीक्ष्यैव कामबाणवशं गतः ॥ नोपलेभे
तदात्मानं संचचाल तदाम्भसि ॥ १२ ॥ इलां निरीक्षमाणस्तु त्रैलोक्याभ्यधिकां शुभाम् ॥ चिन्तां समभ्यति-
क्रामत्का न्वियं देवताधिका ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

नोपलेभे । आत्मध्यानं न प्राप्तवानित्यर्थः । कामपरवशचित्तोऽभूदिति भावः ॥ १२ ॥ इलामिति ॥ चिन्तां समभ्यतिक्रामत् । इलायामिति शेषः । इला-
विषयकचिन्तां प्राप्त इत्यर्थः । तदेवाह—का न्वित्यादि ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १४ ॥ सदृशीति ॥ नान्यपरिग्रहः अन्यपरिग्रहत्वरहिता ॥ १५ ॥ आश्रममिति ॥ शब्दापयत । पुगार्षः ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ अस्माकमिति ॥ अपतिः पतिरहिता ॥ १९ ॥ तद्वाक्यमिति ॥ अव्यक्तपदम् अस्पष्टाक्षरमित्यर्थः । आवर्तिनीम् आवर्तिन्याख्यां विद्यामावर्तयत आवर्तयाति स्म । प्रकृतप्रयोजनार्थम् । द्विजः क्षत्रियो बुधः ॥ २० ॥ स इति ॥ स बुधः तस्य राज्ञः कार्दमेः सकलमर्थं वृत्तान्तम विदित्वा । योगमाहात्म्यादिति शेषः । ताः स्त्रियः इला-

न देवीषु न नागीषु नासुरीष्वप्सरःसु च ॥ दृष्टपूर्वा मया काचिद्रूपेणानेन शोभिता ॥ १४ ॥ सदृशीयं मम भवेद्यदि नान्यपरिग्रहः ॥ इति बुद्धिं समास्थाय जलात्कूलमुपागमत् ॥ १५ ॥ आश्रमं समुपागम्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ॥ शब्दापयत धर्मात्मा ताश्चैनं च ववन्दिरे ॥ १६ ॥ स ताः पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यैषा लोकसुन्दरी ॥ किमर्थमागता चैव सर्वमाख्यात मा चिरम् ॥ १७ ॥ शुभं तु तस्य तद्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ॥ श्रुत्वा स्त्रियश्च ताः सर्वा ऊचुर्मधुरया गिरा ॥ १८ ॥ अस्माकमेषा सुश्रोणी प्रभुत्वे वर्तते सदा ॥ अपतिः काननान्तेषु सहास्माभिश्चरत्यसौ ॥ १९ ॥ तद्वाक्यमव्यक्तपदं तासां स्त्रीणां निशम्य च ॥ विद्यामावर्तिनीं पुण्यामावर्तयत स द्विजः ॥ २० ॥ सोर्थं विदित्वा सकलं तस्य राज्ञो यथागतम् ॥ सर्वा एव स्त्रियस्ताश्च बभाषे मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥ अत्र किंपुरुषीभूत्वा शैलरोधसि वत्स्यथ ॥ आवासस्तु गिरावस्मिन् शीघ्रमेव विधीयताम् ॥ २२ ॥ मूलपत्रफलैः सर्वा वर्तयिष्यथ नित्यदा ॥ स्त्रियः किंपुरुषान्नाम भर्तॄन्त्समुपलप्स्यथ ॥२३॥ तां श्रुत्वा सोमपुत्रस्य वाचं किंपुरुषीकृताः ॥ उपासां चक्रिरे शैलं वध्वस्ताबहुलास्तदा ॥ २४ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ ॥

सहचरीः ॥ २१ ॥ अत्रेति ॥ यूयं सर्वाः किंपुरुषीभूत्वा किंपुरुषाख्यदेवयोनिस्त्रियो भूत्वा अत्रास्मिन् शैलस्य रोधसि वत्स्यथ । अतोस्मिन् गिरौ शीघ्रमेव आवासः उटजादिः विधीयताम् ॥२२॥ मूलपत्रफलैरिति ॥ स्त्रियः किंपुरुषस्त्रियो यूयं किंपुरुषान्नाम प्रसिद्धान् भर्तॄन् समुपलप्स्यथ । अन्विष्य प्राप्स्यथेत्यर्थः ॥ २३ ॥ तामिति ॥ किंपुरुषीकृताः बुधस्य योगबलात्किंपुरुषस्त्रीकृता इत्यर्थः । शैलमुप शैलस्य समीप इत्यर्थः ॥२४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ ॥

श्रुत्वेत्यादि ॥ किंपुरुषोत्पत्तिं किंपुरुषत्वेन तासां स्त्रीणामुत्पत्तिमित्यर्थः । अब्रूताम् ॥ १ ॥२॥ सर्वा इति ॥ सर्वासाम् इलाव्यतिरिक्तानाम् विद्रुतत्वात्
हासः कामविकारमूल एव ॥ ३ ॥ सोमस्येति ॥ भक्त्यानुरागेण । स्निग्धं स्नेहयुक्तम् ॥ ४ ॥ तस्येति ॥ महाग्रहो ग्रहदेवः ॥ ५ ॥ अहमिति ॥ कामचरी

श्रुत्वा किंपुरुषोत्पत्तिं लक्ष्मणो भरतस्तदा॥ आश्चर्यमिति चाब्रूतामुभौ रामं जनेश्वरम् ॥१॥ अथ रामः कथामेतां
भूय एव महायशाः ॥ कथयामास धर्मात्मा प्रजापतिसुतस्य वै ॥२॥ सर्वास्ता विद्रुता दृष्ट्वा किन्नरीर्ऋषिसत्तमः ॥
उवाच रूपसंपन्नां तां स्त्रियं प्रहसन्निव ॥ ३ ॥ सोमस्याहं सुदयितः सुतः सुरुचिरानने॥ भजस्व मां वरारोहे भक्त्या
स्निग्धेन चक्षुषा ॥ ४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शून्ये स्वजनवर्जिता ॥ इला सुरुचिरप्रख्यं प्रत्युवाच महाग्रहम्॥५॥
अहं कामचरी सौम्य तवास्मि वशवर्तिनी॥ प्रशाधि मां सोमसुत यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६ ॥ तस्यास्तदद्भुतप्रख्यं
श्रुत्वा हर्षमुपागतः ॥ स वै कामी सह तया रेमे चन्द्रमसः सुतः ॥ ७ ॥ बुधस्य माधवो मासस्तामिलां
रुचिराननाम् ॥ गतो रमयतोत्यर्थं क्षणवत्तस्य कामिनः ॥ ८॥ अथ मासे तु संपूर्णे पूर्णेन्दुसदृशाननः॥ प्रजापतिसुतः
श्रीमान् शयने प्रत्यबुध्यत ॥ ९ ॥ सोपश्यत्सोमजं तत्र तपन्तं सलिलाशये॥ ऊर्ध्वबाहुं निरालम्बं तं
राजा प्रत्यभाषत ॥ १० ॥ भगवन्पर्वतं दुर्गं प्रविष्टोस्मि सहानुगः॥ न तु पश्यामि तत्सैन्यं क नु ते मामका गताः
॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वा तस्य राजर्षेर्नष्टसंज्ञस्य भाषितम्॥ प्रत्युवाच शुभं वाक्यं सान्त्वयन्परया गिरा॥१२॥ अश्मवर्षेण
महता भृत्यास्ते विनिपातिताः॥ त्वं चाश्रमपदे सुप्तो वातवर्षभयार्दितः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

स्वतन्त्रा ॥ ६ ॥ ७ ॥ बुधस्येति ॥ मासो गत इत्यन्वयः ॥ ८ ॥ अथेति ॥ प्रजापतिसुतः इलः ॥ ९ ॥ १० ॥ इलो विस्मृतस्वस्त्रीत्वादिवृत्तान्तः
पृच्छति–भगवन्नित्यादि ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वेति ॥ नष्टसंज्ञस्येति । गौरीशापवशादिति शेषः ॥ १२ ॥ अश्मवर्षेणेति ॥ अश्मवर्षेणेत्यादि छद्मवचनं
गिरीशशापानुरोधार्थम् ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥१४॥ स इति ॥ तेन वाक्येनेति। इह यथासुखं निवसेति वाक्येनेत्यर्थः ॥ १५ ॥ त्यक्ष्यामीति ॥ भृत्यैर्विनाकृतोप्यहं स्वकं राज्यं न त्यक्ष्यामि त्यक्तुं न
शक्नोमि। इह वसान इति शेषः। एतदेवाह—हे ब्रह्मन्, क्षणमपि न वर्तयेयं। नभ इहानुकर्षः। तस्मान्मां गमनाय समनुज्ञातुमर्हसि॥१६॥ उक्तवृत्तान्तमेव
पुनरौत्कण्ठ्यप्रदर्शनायाह—सुत इति ॥ प्रपत्स्यत इति। मया गत्वा कृतादभिषेकादिति भावः॥१७॥ न हीति॥ सुखान्वितानिति। देशस्थानिति शेषः।

समाश्वसिहि भद्रं ते निर्भयो विगतज्वरः॥ फलमूलाशनो वीर निवसेह यथासुखम्॥ १४ ॥ स राजा तेन वाक्येन
प्रत्याश्वस्तो महामतिः॥ प्रत्युवाच ततो वाक्यं दीनो भृत्यक्षयाद्भृशम् ॥ १५ ॥ त्यक्ष्याम्यहं स्वकं राज्यं नाहं
भृत्यैर्विनाकृतः॥ वर्तयेयं क्षणं ब्रह्मन् समनुज्ञातुमर्हसि॥ १६ ॥ सुतो धर्मपरो ब्रह्मन् ज्येष्ठो मम महायशाः॥ श-
शबिन्दुरिति ख्यातः स मे राज्यं प्रपत्स्यते॥ १७॥ न हि शक्ष्याम्यहं हित्वा भृत्यदारान्सुखान्वितान् ॥ प्रतिवक्तुं
महातेजः किञ्चिदप्यशुभं वचः॥ १८ ॥ तथा ब्रुवति राजेन्द्रे बुधः परममद्भुतम् ॥ सान्त्वपूर्वमथोवाच वासस्त इह
रोचताम् ॥ १९ ॥ न सन्तापस्त्वया कार्यः कार्दमेय महाबल ॥ संवत्सरोषितस्येह कारयिष्यामि ते हितम् ॥
॥ २० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बुधस्याक्लिष्टकर्मणः॥ वासाय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ॥ २१ ॥ मासं
स स्त्री तथा भूत्वा रमयत्यनिशं शुभा ॥ मासं पुरुषभावेन धर्मबुद्धिं चकार सः॥ २२ ॥ ततः सा नवमे मासि
इला सोमसुतात्सुतम् ॥ जनयामास सुश्रोणी पुरूरवसमूर्जितम् ॥ २३ ॥ जातमात्रं तु सुश्रोणी पितृहस्ते
न्यवेशयत् ॥ बुधस्य समवर्णाभमिलापुत्रं महाबलम् ॥ २४ ॥

हित्वा न शक्ष्यामीति। इह स्थातुमिति शेषः। अशुभं वचः इह निवासलक्षणानिष्टवचनं वक्तुं नार्हसीति शेषः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥
तत इति ॥ इला सोमसुतात्सुतं जनयामासेति। योजनगन्ध्यादिः पराशरादेर्व्यासादिमिव निषेकानन्तरमेवेति ज्ञेयम् ॥ २३ ॥ जातमात्रमिति ॥ जात-
मात्रं तत्क्षण एव। पितृसमाकारं पितृहस्ते उपनयनादिकृत्यार्थं न्यवेशयत् ॥ २४ ॥ ॥ ॥

॥ २९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥ ॥ तथेत्यादि ॥ तस्येति । पुरूरवस इत्यर्थः ॥ १ ॥ इलेति ॥ किमिति । संवत्सरात्परमिति शेषः । इलस्य पुरूरवसोपि पुत्रस्य सत्त्वाच्छशविन्दोः

बुधस्तु पुरुषीभूतं स वै संवत्सरान्तरम् ॥ कथाभी रमयामास धर्मयुक्ताभिरात्मवान् ॥ २९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥ ॥ ॥ ॥

तथोक्तवति रामे तु तस्य जन्म तदद्भुतम् ॥ उवाच लक्ष्मणो भूयो भरतश्च महायशाः ॥ १ ॥ इला सा सोमपुत्रस्य संवत्सरमथोषिता ॥ अकरोत्किं नरश्रेष्ठ तत्त्वं शंसितुमर्हसि ॥ २ ॥ तयोस्तद्वाक्यमाधुर्यं निशम्य परिपृच्छतोः ॥ रामः पुनरुवाचेमां प्रजापतिसुते कथाम् ॥३ ॥ पुरुषत्वं गते शूरे बुधः परमबुद्धिमान् ॥ संवर्तं परमोदारमाजुहाव महायशाः ॥ ४ ॥ च्यवनं भृगुपुत्रं च मुनिं चारिष्टनेमिनम् ॥ प्रमोदनं मोदकरं तथा दुर्वाससं मुनिम् ॥ ५ ॥ एतान्सर्वान्समानीय वाक्यज्ञस्तत्त्वदर्शिनः ॥ उवाच सर्वान्सुहृदो धैर्येण सुसमाहितान् ॥ ६ ॥ अयं राजा महाबाहुः कर्दमस्य इलः सुतः ॥ जानीतैनं यथाभूतं श्रेयो ह्यस्य विधीयताम् ॥ ७ ॥ तेषां संवदतामेव तमाश्रममुपागमत् ॥ कर्दमस्तु महातेजा द्विजैः सह महात्मभिः ॥ ८ ॥ पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव वषट्कारस्तथैव च ॥ ओङ्कारश्च महातेजास्तमाश्रममुपागमत् ॥ ९ ॥ ते सर्वे हृष्टमनसः परस्परसमागमे ॥ हितैषिणो बाह्लिपतेः पृथग्वाक्यान्यथाब्रुवन् ॥ १० ॥ कर्दमस्त्वब्रवीद्वाक्यं सुतार्थं परमं हितम् ॥ द्विजाः शृणुत मद्वाक्यं यच्छ्रेयः पार्थिवस्य हि ॥ ११ ॥ नान्यं पश्यामि भैषज्यमन्तरा वृषभध्वजम् ॥ नाश्वमेधात्परो यज्ञः प्रियश्चैव महात्मनः ॥ तस्माद्यजामहे सर्वे पार्थिवार्थं दुरासदम् ॥ १२ ॥

पूर्वपुत्रस्य च सत्त्वात्पुरूरवसो राज्यप्राप्तिरभून्न वेति प्रश्नाशयः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ एतानिति ॥ सुहृदः स्वसखीभूतान् ॥ ६ ॥ अयमिति ॥ यथाभूतमिलस्य वृत्तान्तम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ नान्यमिति ॥ वृषध्वज एव स्वकृतशापनिवर्तकः । तत्प्रीतिश्चाश्वमेधेन सर्वदेवताप्रीतिकरणेनैवेति

भावः। नाश्वमेधात्पर इति। राज्ञां ब्रह्महत्यान्तसर्वपापनिवारक इति शेषः। प्रियश्चैव महात्मन इति। यद्यपि प्रजापतिदेवताकः प्रजापतिप्रीतिकरोश्वमेधः
तथापि सर्वदेवताप्रीतिकरत्वात् अस्य रुद्रप्रीतिकरत्वमपि सिद्धम्। वस्तुतस्तु "यज्ञो वै विष्णुः" इति श्रुतिवचनाद्यज्ञपुरुषाराधनमश्वमेधः। विष्णवाराधन
मित्युपक्रमे लक्ष्मणोक्त्या विष्णवाराधनमेवाश्वमेधः। तदाराधनत्वेनैव हरस्यापि प्रियत्वम्। प्रकृतब्रह्महत्यावारकत्वेन तस्य प्रशंसार्थं पुनरपि रामेण तद्वि-
षयार्थवाद उक्तः। एतेन यत् केनचिदुक्तं लक्ष्मणेन विष्णवाराधनयज्ञे प्रस्तुते पुनः रामेण रुद्राराधनत्वप्रदर्शनं विष्णवपेक्षया रुद्राधिक्यस्य प्रतिपादनार्थ-

कर्दमेनैवमुक्तास्तु सर्व एव द्विजर्षभाः॥ रोचयन्ति स्म तं यज्ञं रुद्रस्याराधनं प्रति ॥१३॥ संवर्तस्य तु राजर्षेः शिष्यः
परपुरंजयः॥ मरुत्त इति विख्यातस्तं यज्ञं समुपाहरत् ॥ १४॥ ततो यज्ञो महानासीद्बुधाश्रमसमीपतः॥ रुद्रश्च परमं
तोषं जगाम सुमहायशाः ॥ १५॥ अथ यज्ञे समाप्ते तु प्रीतः परमया मुदा॥ उमापतिर्द्विजान्सर्वानुवाच इलसन्निधौ
॥ १६ ॥ प्रीतोस्मि हयमेधेन भक्त्या च द्विजसत्तमाः ॥ अस्य बाह्लीपतेश्चैव किङ्करोमि प्रियं शुभम् ॥ १७ ॥ तथा
वदति देवेशे द्विजास्ते सुसमाहिताः॥ प्रसादयन्ति देवेशं यथा स्यात्पुरुषस्त्विला॥ १८ ॥ ततः प्रीतो महादेवः पुरुष-
त्वं ददौ पुनः॥ इलायै स महातेजा दत्त्वा चान्तरधीयत ॥ १९॥ निवृत्ते हयमेधे तु गतश्चादर्शनं हरः ॥ यथागतं
द्विजाः सर्वे ह्यगच्छन्दीर्घदर्शिनः ॥ २०॥ राजा तु बाह्लिमुत्सृज्य मध्यदेशे ह्यनुत्तमम्॥ निवेशयामास पुरं प्रतिष्ठानं
यशस्करम् ॥ २१॥ शशबिन्दुस्तु राजर्षिर्बाह्लिं परपुरञ्जयः॥ प्रतिष्ठाने इलो राजा प्रजापतिसुतो बली॥ २२॥ स का-
ले प्राप्तवान् लोकमिलो ब्राह्ममनुत्तमम्॥ ऐलः पुरूरवा राजा प्रतिष्ठानमवाप्तवान् ॥ २३ ॥ ॥

मिति, तद्दूरोत्सारितम्। ब्रह्महत्यावारकप्रदर्शनार्थत्वाद्रामोक्तस्य ॥१२॥१३॥ संवर्तस्येति ॥ समुपाहरत् संभारजातमुपहृतवान् ॥१४॥१५॥१६॥
॥१७॥१८॥१९॥२०॥ राजेति ॥ बाह्लिमुत्सृज्येति। ज्येष्ठपुत्रशशबिन्द्वधिष्ठितमिति शेषः ॥ २१ ॥ शशबिन्दुस्त्विति ॥ बाह्लिमिति। अध्युवा-
सेति शेषः ॥ २२ ॥ स इति ॥ काले शरीरावसानकाले। ब्राह्मं ब्रह्मसंबन्धिनम् ॥ २३ ॥ ॥ ॥

ईदृश इति ॥ यच्चान्यदिति । उक्तब्रह्मलोकादित्यर्थः ॥ २४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एतदाख्यायेत्यादि ॥ भ्रातृभ्यामिति चतुर्थी ॥ १ ॥ वसिष्ठमिति ॥ द्विजांश्च सर्वप्रवरानिति गुरुवैषम्यमार्षम् । अश्वमेधपुरस्कृतानिति । अश्वमेधप्रयोगकुशलानित्यर्थः ॥ २ ॥ एतानिति ॥ मन्त्रयित्वा विचार्य ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ प्राञ्जलिरिति ॥ अश्वमेधस्येति । अनुष्ठानविषयकमिति शेषः । उवाच

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावः पुरुषर्षभौ ॥ स्त्रीभूतः पौरुषं लेभे यच्चान्यदपि दुर्लभम् ॥ २४ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एतदाख्याय काकुत्स्थो भ्रातृभ्याममितप्रभः ॥ लक्ष्मणं पुनरेवाह धर्मयुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥ वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् ॥ द्विजांश्च सर्वप्रवरानश्वमेधपुरस्कृतान् ॥ २ ॥ एतान्त्सर्वान्त्समानीय मन्त्रयित्वा च लक्ष्मण ॥ हयं लक्षणसंपन्नं विमोक्ष्यामि समाधिना ॥ ३ ॥ तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ॥ द्विजान्त्सर्वान्त्समाहूय दर्शयामास राघवम् ॥ ४ ॥ ते दृष्ट्वा देवसंकाशं कृतपादाभिवन्दनम् ॥ राघवं सुदुराधर्षमाशीर्भिः समपूजयन् ॥ ५ ॥ प्राञ्जलिः स तदा भूत्वा राघवो द्विजसत्तमान् ॥ आचचक्षेश्वमेधस्य ह्यभिप्रायं महायशाः ॥ ६ ॥ ते तु रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥ अश्वमेधं द्विजाः सर्वे पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

धर्मसंयुक्तमश्वमेधाश्रितं वच इति च पाठः ॥ ६ ॥ ते त्विति ॥ वृषध्वजं नमस्कृत्वेति । सोल्लुण्ठनं वचः इलवद्रुद्राराधनं विहायेत्यर्थः । कर्दमकृतयागस्यैवास्य रुद्रात्प्रयोजनगन्धाभावात् परदेवतामुद्दिश्याश्वमेधं कर्तुमुद्युक्ता इति भावः । रुद्रस्तु सर्वयज्ञानर्हः शूद्राराध्यः । यज्ञमध्ये च तत्प्रसङ्गे अप उपस्पर्शनादिप्रायश्चित्तस्य प्रसिद्धत्वात् । "इमं पशुं पशुपते ते अद्य बध्नाम्यग्ने" इत्यादिश्रुतिस्तु अग्नेरेव यज्ञान्वयप्रतिपादिका । कर्दमकृतयज्ञस्य

नाराध्यो रुद्रः । किन्तु स्वाभिमतदेवतारूपविष्णवाराधनत्वेन प्रीतो रुद्र इत्युच्यते । उपक्रमे तत्पूर्वसर्गेषु "यज्ञो वै विष्णुः" इत्युक्तरीत्या विष्णोराराध्यत्वसमर्थनात् । यद्वा विष्णुदत्तवरत्वाद्रुद्रस्य । विष्णुमपूजयन् । रामस्त्वश्वमेधं यथापूर्वमकरोत् ॥ ७ ॥ ८ ॥ यथेति ॥ महद्भिर्हरिभिः हनुमदङ्गदादिभिः । बहुभिश्चेति । अत्राभिप्रायेण अनुभोक्तुं द्रष्टुमित्यर्थः । तथैवेति । तालं गृहीत्वावचरन्तीति तालावचराः सूत्रधाराः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

स तेषां द्विजमुख्यानां वाक्यमद्भुतदर्शनम् ॥ अश्वमेधाश्रितं श्रुत्वा भृशं प्रीतोभवत्तदा ॥ ८ ॥ विज्ञाय कर्म तत्तेषां
रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ प्रेषयस्व द्रुतं दूतान् सुग्रीवाय महात्मने ॥ ९ ॥ यथा महद्भिर्हरिभिर्बहुभिश्च वनौकसाम् ॥
सार्धमागच्छ भद्रन्ते ह्यनुभोक्तुं महोत्सवम् ॥ १० ॥ बिभीषणश्च रक्षोभिः कामगैर्बहुभिर्वृतः ॥ अश्वमेधं महायज्ञमा-
यात्वतुलविक्रमः ॥ ११ ॥ राजानश्च महाभागा ये मे प्रियचिकीर्षवः ॥ सानुगाः क्षिप्रमायान्तु यज्ञं द्रष्टुमनुत्तमम्
॥ १२ ॥ देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिताः ॥ आमन्त्रयस्व तान्सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण ॥ १३ ॥ ऋष-
यश्च महाबाहो आहूयन्तां तपोधनाः ॥ देशान्तरगताः सर्वे सदाराश्च द्विजातयः ॥ तथैव तालावचरास्तथैव
नटनर्तकाः ॥ १४ ॥ यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्या नैमिशे वने ॥ आज्ञाप्यतां महाबाहो तद्धि पुण्यमनुत्तमम्
॥ १५ ॥ शान्तयश्च महाबाहो प्रवर्त्यन्तां समन्ततः ॥ १६ ॥ शतशश्चापि धर्मज्ञाः क्रतुमुख्यमनुत्तमम् ॥ अनु-
भूय महायज्ञं नैमिशे रघुनन्दन ॥ १७ ॥ तुष्टः पुष्टश्च सर्वोसौ मानितश्च यथाविधि ॥ प्रीतिं यास्यति धर्मज्ञ
शीघ्रमामन्त्र्यतां जनः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ यज्ञवाटश्चेति ॥ गोमत्या नद्यास्तीर इति शेषः ॥ १५ ॥ १६ ॥ शतश इति ॥ धर्मज्ञाः शतशः अनेके नैमिशे महायज्ञमश्वमेधमनुभूयानुष्ठाय कृतार्था इति शेषः । यद्वा धर्मज्ञ इति पाठे अनुभूय दृष्ट्वा, प्रीतिं यास्यतीत्युत्तरेणान्वयः ॥ १७ ॥ तुष्ट इति ॥ प्रतियास्यतीति च पाठः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

शतमिति ॥ वपुष्मतामिति । अखण्डानामित्यर्थः । शतं वाहसहस्राणीति । लक्षं बलीवर्दा इत्यर्थः । चणकानामिति ॥ अतोनुरूपम् उक्तब्राह्मणभोजनसंविधानानुरूपम् । स्नेहं घृततैलपयोदध्यादिकमित्यर्थः । संक्षिप्तमेव गन्धमिति । अघृष्टमेवेत्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ सुवर्णकोट्य इति ॥ हिरण्यस्य रजतस्येत्यर्थः । शतोत्तरा इति । कोट्य इत्यर्थः । समाधिना सावधानतया ॥ २१ ॥ अन्तरेति ॥ अन्तरा मार्गमध्ये । तत्र चापेक्षिताः आपणवीथ्यः । तत्प्रवर्तका वणिजश्चेत्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥ कर्मान्तिकानिति ॥ कर्मान्तिकाः किङ्कराः । कुमारान्तःपुराणीति । भरतलक्ष्मणशत्रुघ्नपत्न्य इत्यर्थः॥२४॥

शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम् ॥ अयुतं तिलमुद्गानां प्रयात्वग्रे महाबल ॥ १९ ॥ चणकानां कुलत्थानां माषाणां लवणस्य च ॥ अतोनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च ॥ २० ॥ सुवर्णकोट्यो बहुला हिरण्यस्य शतोत्तराः ॥ अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे समाधिना ॥ २१ ॥ अन्तरा पण्यवीथ्यश्च सर्वे च नटनर्त्तकाः ॥ सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः ॥२२॥ भरतेन तु सार्धन्ते यान्तु सैन्यानि चाग्रतः ॥ नैगमा बलवृद्धाश्च द्विजाश्च सुसमाहिताः ॥ २३ ॥ कर्मान्तिकान्वर्धकिनः कोशाध्यक्षांश्च नैगमान् ॥ मम मातृस्तथा सर्वाः कुमारान्तःपुराणि च ॥ २४ ॥ काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि ॥ अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः ॥ २५ ॥ उपकार्या महार्हांश्च पार्थिवानां महौजसाम् ॥ सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महाबलः ॥ २६ ॥

इत्युत्तरश्रीरामायणे एकनवतितमः सर्गः ॥९१॥ ॥ ॥ ॥

तत्सर्वमखिलेनाशु संस्थाप्य भरताग्रजः ॥ हयं लक्षणसंपन्नं कृष्णसारं मुमोच ह ॥ १ ॥ ॥

काञ्चनीमिति ॥ काञ्चनीं मम पत्नीमिति । स्वर्णमयीं सीताप्रतिमामित्यर्थः । पत्न्याश्च प्रतिनिधिसद्भावादिकं सर्वं युद्धकाण्डे सप्रकारं निरूपितम्, तत्रैव द्रष्टव्यम् ॥ २५ ॥ २६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकनवतितमः सर्गः ॥९१॥

तत्सर्वमित्यादि ॥ कृष्णसारं कृष्णप्रधानम् । प्रायशः कृष्णवर्णमित्यर्थः । कृष्णशारमिति च पाठः ॥ १ ॥ ॥ ॥

ऋत्विग्भिरिति ॥ अश्वतन्त्र इति । "चतुश्शता रक्षन्ति यज्ञस्याघाताय तथा शतेन राजपुत्रैः सहाध्वर्युः पुरस्तात्प्रत्यङ् तिष्ठन् प्रोक्षति" इति श्रुतेः । अश्वरक्षादिसंबन्धयज्ञप्रयोगनिवर्तनार्थमित्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ नैमिश इति ॥ उपहाराः उपदाः ॥ ४ ॥ ५ ॥ राजपूजामाह—अन्नेत्यादि ॥ राजसत्कारे भरतशत्रुघ्ननियोगः सुग्रीवादीनां विप्रपरिवेषणे विभीषणस्य ब्रह्मर्षिसत्कारे नियोग इत्याह—भरत इत्यादि ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ एवमिति ॥ हयचर्याम् अश्वमेधयागानुष्ठानम् ॥ ९ ॥ नेति ॥ याचकाः यावत्तुष्यन्ति तावद्देहि देहीति शब्दादन्यः शब्दो नाभवत् ॥ १० ॥ तावदिति ॥ सर्वाणि दत्तानीत्यस्यैव प्रपञ्चनं—विविधानीत्यादि । गौडानि गुडविकाररूपाणि ॥ ११ ॥ नेति ॥ अर्थिनां मुखाद्देहीति वचनं यावन्न निस्सृतं, तावद्दत्तमेवाभ्यदृश्यत॥१२॥१३॥

ऋत्विग्भिर्लक्ष्मणं सार्धमश्वतन्त्रे नियोज्य च ॥ ततोभ्यगच्छत्काकुत्स्थः सह सैन्येन नैमिशम् ॥२॥यज्ञवाटं महाबाहुर्दृष्ट्वा परममद्भुतम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे श्रीमानिति वचोब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैमिशे वसतस्तस्य सर्व एव नराधिपाः ॥ आनिन्युरुपहारांश्च तान् रामः प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥ उपकार्या महार्हाश्च पार्थिवानां महात्मनाम् ॥ सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महामतिः ॥५॥ अन्नपानानि वस्त्राणि सानुगानां महात्मनाम् ॥ भरतः सन्ददावाशु शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ ६ ॥ वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा ॥ विप्राणां प्रणताः सर्वे चक्रिरे परिवेषणम् ॥ ७ ॥ विभीषणश्च रक्षोभिर्बहुभिः स्रग्विभिर्वृतः ॥ऋषीणामुग्रतपसां पूजां चक्रे महात्मनाम्॥८॥ एवं सुविहितो यज्ञो हयमेधोभ्यवर्तत ॥ लक्ष्मणेनाभिगुप्ता च हयचर्या प्रवर्तत ॥ ईदृशं राजसिंहस्य यज्ञप्रवरमुत्तमम् ॥ ९ ॥ नान्यः शब्दोऽभवत्तत्र हयमेधे महात्मनः ॥ छन्दतो देहि देहीति यावत्तुष्यन्ति याचकाः॥१०॥तावत्सर्वाणि दत्तानि क्रतुमध्ये महात्मनः॥ विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च ॥ ११ ॥ न निस्सृतं भवत्योष्ठाद्वचनं यावदर्थिनाम् ॥ तावद्वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत॥१२॥ न कश्चिन्मलिनस्तत्र दीनो वाप्यथ कर्शितः ॥ तस्मिन्यज्ञवरे राज्ञो हृष्टपुष्टजनावृते॥१३॥

उक्त एवार्थ आदरादभ्यस्यते—न
ये चेति ॥ चिरजीविनो मुनयः ताहशं यज्ञं इतः पूर्वं ताहशो नासीदित्याहुरिति शेषः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ उक्त एवार्थ आदरादभ्यस्यते—न
शक्रस्येत्यादि ॥ १७ ॥ १८ ॥ ईदृश इति ॥ संवत्सरं वर्तते न च हीयते । संवत्सरात्परमपीति शेषः । पुनः पुनरश्वमेधः प्रावर्ततेत्यर्थः ॥ १९ ॥
इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥ ॥ ॥

नास्मरंस्तादृशं यज्ञं नाप्यासीत्स कदाचन ॥ १४ ॥ यः कृत्यवान्सुवर्णेन
ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः ॥ नास्मरंस्तादृशं यज्ञं नाप्यासीत्स कदाचन ॥ १४ ॥ यः कृत्यवान्सुवर्णेन
सुवर्णं लभते स्म सः ॥ वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च ॥ १५ ॥ रजतानां सुवर्णानामश्मनामथ वाससाम् ॥ अ-
निशं दीयमानानां राशिः समुपदृश्यते ॥ १६ ॥ न शक्रस्य धनेशस्य यमस्य वरुणस्य वा ॥ ईदृशो दृष्टपूर्वो न एवमूचु-
स्तपोधनाः ॥ १७ ॥ सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः ॥ वासोधनान्नमर्थिभ्यः पूर्णहस्ता ददुर्भृशम् ॥ १८ ॥ ईदृशो
राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः ॥ संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते ॥ १९ ॥ इति उत्तर० द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥
वर्तमाने तथाभूते यज्ञे च परमाद्भुते ॥ सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥ १ ॥ स दृष्ट्वा दिव्यसङ्काशं
यज्ञमद्भुतदर्शनम् ॥ एकान्ते ऋषिवाटानां चकार उटजाञ्छुभान् ॥ २ ॥ शकटांश्च बहून्पूर्णान्फलमूलैश्च शोभनान् ॥
वाल्मीकिवाटे रुचिरे स्थापयन्नविदूरतः ॥ ३ ॥ आसीत्सुपूजितो राज्ञा मुनिभिश्च महात्मभिः ॥ वाल्मीकिः सुमहा-
तेजा न्यवसत्परमात्मवान् ॥ ४ ॥ स शिष्यावब्रवीद्धृष्टो युवां गत्वा समाहितौ ॥ कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायेथां प-
रया मुदा ॥ ५ ॥ ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च ॥ रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥ ६ ॥ रामस्य भव-
नद्वारि यत्र कर्म प्रवर्तते ॥ ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

उटजानिति बहुवचनं बहुशिष्यत्वात् ॥ २ ॥
वर्तमान इत्यादि ॥ तथाभूते प्रागुक्तप्रकारं प्रवृत्ते ॥ १ ॥ स इति ॥ ऋषिवाटानामिति । समीप इति शेषः । उटजानिति बहुवचनं बहुशिष्यत्वात् ॥ २ ॥
शकटानिति ॥ रुचिर इति । अभूदिति शेषः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ रामस्येति ॥ यत्र कर्म चेति । अश्वमेधयाग इत्यर्थः ॥ ७ ॥ ॥

इमानीति ॥ अत्रास्माकं वाटे । विद्यमानान्यास्वाद्य । गायतामिति लोट्प्रथमपुरुषद्विवचनम् । यदा यदा श्रमः तदा तदैवं कुरुतम् । भवन्ताविति शेषः ॥८॥ नेति ॥ नगराद्बहिरास्यथः । क्षत्रियकुलेष्विति शेषः । नगराद्बहिः उटज इत्यर्थः । आस्यथः अधितिष्ठतमिति यावत् । आसेश्छान्दसः श्यन् परस्मैपदं च ॥ ९ ॥ यदीति ॥ शब्दापयेत् आह्वयेत ॥ १० ॥ दिवस इति ॥ तत्र रामायणे बहुभिः सर्गप्रमाणैर्यथा मया पुरा सर्गा उद्दिष्टाः तेषु सर्गेषु दिवसे दिवसे विंशतिसर्गा गेयाः ॥ ११ ॥ १२ ॥ यदीति ॥ आवां वाल्मीकिशिष्यौ स्व इत्येवं ब्रूतम्, नामुकदारकाविति ॥ १३ ॥ इमा इति ॥ इमास्तन्त्री-

इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च ॥ जातानि पर्वताग्रेषु चास्वाद्यास्वाद्य गायताम् ॥८॥ न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलानि वै ॥ मूलानि च सुमृष्टानि नगराद्बहिरास्यथः ॥९ ॥ यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः ॥ ऋषीणामुपविष्टानां ततो गेयं प्रवर्तताम् ॥ १० ॥ दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा ॥ प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टा मया पुरा ॥ ११ ॥ लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोपि धनकाङ्क्षया ॥ किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलोपजीविनाम् ॥ १२ ॥ यदि पृच्छेत्स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ ॥ आवां वाल्मिकिशिष्यौ स्वो ब्रूतमेवन्नराधिपम् ॥ १३ ॥ इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वा पूर्वदर्शनम् ॥ मूर्छयित्वा सुमधुरं गायेथां विगतज्वरौ ॥ १४ ॥ आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम् ॥ पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥ १५ ॥ तद्युवां हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समास्थितौ ॥ गायेथां मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ १६ ॥ इति सन्दिश्य बहुशो मुनिः प्राचेतसस्तदा ॥ वाल्मीकिः परमोदारस्तूष्णीमासीन्महायशाः ॥ १७ ॥ ॥ ॥

रिति । वीणाशिरा इत्यर्थः । अपूर्वदर्शनम् अपूर्वस्वराणां दर्शनम् यत्र तत्तथा तादृशं स्थानं, षड्जादिस्वरभेदसिद्ध्ये वीणादण्डोपरि कल्पितं शिराणां स्पर्शविशेषसिद्धिप्रयोजनस्थानपङ्क्तिः स्थानमित्युच्यते । तद्वा मूर्छयित्वा तत्र वा नादव्याप्तिं कृत्वा ॥१४॥ आदीति ॥ आदिप्रभृतीति संक्षेपमारभ्येत्यर्थः । पार्थिवं न चावज्ञायेति । तत्समीपे स्थलान्तर इव लीलापरिहासादिकं न कर्तव्यमित्यर्थः । तत्र हेतुः–पिता हि सर्वभूतानामिति ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

॥ १८ ॥ तामिति ॥ भार्गवनीतिसंहिताम् अश्विनाविव तौ तां वाणीं हृदये निवेश्य । श्वो गातव्यां स्मृत्वेत्यर्थः निशां । निशायाम् । सममिति । ऋषिभिरित्यर्थः । सममूषतुरिति च पाठः । भार्गवनीतिसंस्कृतौ इति पाठान्तरे तु वाल्मीकिशिक्षितावित्यर्थः ॥ १९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने त्रिणवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥ ॥
तौ रजन्यामित्यादि ॥ हुतहुताशनौ कृतसमिदाधानौ ॥१॥ तामिति ॥ पूर्वेति । गायकाभ्यां पूर्वमाचार्येण निर्मिताम् अपूर्वां प्रागश्रुताम् । पाठ्यस्य गेयस्य

सन्दिष्टौ मुनिना तेन तावुभौ मैथिलीसुतौ ॥ तथैव करवावेति निर्जग्मतुररिन्दमौ ॥ १८ ॥ तामद्भुतां तौ हृदये कुमारौ निवेश्य वाणीमृषिभाषितां तदा ॥ समुत्सुकौ तौ सममूषतुर्निशां यथाश्विनौ भार्गवनीतिसंहिताम् ॥ १९॥
इत्युत्तरश्रीरामायणे त्रिणवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥ ॥ ॥
तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ ॥ यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम् ॥ १ ॥ तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम् ॥ अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलंकृताम् ॥ २ ॥ प्रमाणैर्बहुभिर्युक्तां तन्त्रीलयसमन्विताम् ॥ बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोभवत् ॥ ३ ॥ अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ॥ पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान्नैगमांस्तथा ॥ ४ ॥ पौराणिकान् शब्दविदो ये च वृद्धा द्विजातयः ॥ स्वराणां लक्षणज्ञांश्च उत्सुकान् द्विजसत्तमान् ॥ ५ ॥ लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान्नैगमांश्च विशेषतः ॥ पादाक्षरसमासज्ञांश्छन्दस्सु परिनिष्ठितान् ॥ ६ ॥ कलामात्रविभागज्ञान् ज्यौतिषे च परं गतान् ॥ क्रियाकल्पविदश्चैव तथा काव्यविदो जनान् ॥ ७ ॥

जातिः पड्जादिः । गेयेन गानधर्मेण ॥२॥ प्रमाणैरिति॥प्रमाणैः ध्वनिपरिच्छेदसाधनैः । कौतूहलपरः विस्मयवान्॥३॥ अथेति ॥ कर्मान्तरे अश्वमेधस्य प्रयोगावसाने ॥४॥ पौराणिकानिति ॥ स्वराणां षड्जादिस्वराणाम् । उत्सुकान् रामायणश्रवणोत्सुकानित्यर्थः ॥५॥ लक्षणज्ञानिति ॥ गान्धर्वान् गान्धर्वशास्त्रज्ञान् । पादाक्षरसमासज्ञान् पादाक्षराणां गुरुलघुसामान्यज्ञान् । छन्दस्सु वेदेषु ॥ ६ ॥ कलामात्रेति ॥ कलामात्रविभागज्ञान् कलाः स्वराः तेषां

मात्राः एकद्वित्रिलक्षणाः तेषां विभागज्ञान् । परं पारङ्गतान् । क्रियाकल्पविदः क्रियाकल्पः क्रियाप्रयोगप्रतिपादकं कल्पसूत्रं तद्विदस्तज्ज्ञान् । काव्यविदः काव्यलक्षणलक्ष्यविद इत्यर्थः । काव्यविदो जनानिति च पाठः ॥ ७ ॥ भाषाज्ञानिति ॥ भाषाज्ञान् अष्टादशभाषास्वरूपज्ञान् । इङ्गितज्ञान् अभिप्रायविदः । नैगमान्वणिजः । पूर्वत्र पौरानित्यर्थः । वचने चापि केवलव्यवहारेपि , हेतूपचारकुशलान् युक्तिप्रयोगसमर्थान् । हैतुकान् तार्किकान्

भाषाज्ञानिङ्गितज्ञांश्च नैगमांश्चाप्यशेषतः ॥ हेतूपचारकुशलान् वचने चापि हैतुकान् ॥ ८ ॥ छन्दोविदः पुराणज्ञान्वैदिकान् द्विजसत्तमान् ॥ चित्रज्ञान्वृत्तसूत्रज्ञान्गीतनृत्यविशारदान् ॥ ९ ॥ शास्त्रज्ञान्नीतिनिपुणान्वेदान्तार्थप्रबोधकान् ॥ एतान् सर्वान्तसमानीय गातारौ समवेशयत् ॥ १० ॥ दृष्ट्वा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः ॥ पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां राजानं गायकौ च तौ ॥ ११ ॥ ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समन्ततः ॥ उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद्बिम्बमिवोत्थितौ ॥ १२ ॥ जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि ॥ विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ॥ १३ ॥ तेषां संवदतामेवं श्रोतॄणां हर्षवर्धनम् ॥ गेयं प्रचक्रतुस्तत्र तावुभौ मुनिदारकौ ॥ १४ ॥ ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ॥ न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गानसंपदा ॥ १५ ॥ प्रवृत्तमादितः पूर्वसर्गं नारददर्शितम् ॥ ततः प्रभृति सर्गांश्च यावद्विंशत्यगायताम् ॥ १६ ॥ ततोपराह्णसमये राघवः समभाषत ॥ श्रुत्वा विंशतिसर्गांस्तान् भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ १७ ॥ अष्टादशसहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः ॥ प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम् ॥ ददौ शीघ्रं स काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥ दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ ॥ ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ ॥ १९ ॥ ॥ ॥

॥ ८ ॥ छन्द इति ॥ वृत्तज्ञान् वृत्तशास्त्रज्ञान् । चित्रज्ञान् चक्रबन्धादिसहितचित्रकाव्यरचनानिपुणान् ॥ ९ ॥ शास्त्रेति ॥ शास्त्रज्ञान् व्याकरणादिशास्त्रज्ञान् । समवेशयत् । सभामध्ये इति शेषः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ प्रवृत्तमिति ॥ तत्र गेयेन नारददर्शितं पूर्वसर्गमादितः प्रवृत्तम् ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ दीयमानमिति ॥ कुशीलवौ, विस्मितौ सकृदेव बहुप्रदानतः विस्मयवन्तौ, किमनेनेत्येवोचतुश्च ॥ १९ ॥ ॥

वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ ॥ सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥ २० ॥ तथा तयोः प्रब्रुवतोः कुतूहलसमन्विताः ॥ श्रोतारश्चैव रामश्च सर्व एव सुविस्मिताः ॥ २१ ॥ तस्य चैवागमं रामः काव्यस्य श्रोतुमुत्सुकः ॥ पप्रच्छ तौ महातेजास्तावुभौ मुनिदारकौ ॥ २२ ॥ किंप्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः ॥ कर्ता काव्यस्य महतः क चासौ मुनिपुङ्गवः ॥ २३ ॥ पृच्छन्तं राघवं वाक्यमूचतुर्मुनिदारकौ ॥ २४॥ वाल्मीकिर्भगवान्कर्ता संप्राप्तो यज्ञसंविधम् ॥ येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं संप्रदर्शितम् ॥ २५ ॥ सन्निबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥ २६ ॥ आदिप्रभृति वै राजन् पञ्च सर्गशतानि च ॥ काण्डानि षट् कृतानीह सोत्तराणि महात्मना॥कृतानि गुरुणास्माकमृषिणा चरितं तव॥२७॥प्रतिष्ठाऽऽजीवितंयावत्तावत्सर्वस्य वर्तते ॥२८॥ यदि बुद्धिः कृता राजन् श्रवणाय महारथ ॥ कर्मान्तरे क्षणीभूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः॥२९॥

तदेव स्पष्टीकरोति—वन्येनेत्यादि ॥ निरतौ निरताहारौ ॥ २० ॥ २१ ॥ तस्येति ॥ आगमं प्राप्तिम् ॥ २२ ॥ किंप्रमाणमिदमित्यादि ॥ का प्रतिष्ठा कियत्पर्यन्तमित्याशयः । काव्यस्य कः कर्तेत्यनुकर्षः । मुनिपुङ्गव इति । आस्त इति शेषः ॥२३ ॥२४॥ वाल्मीकिरित्यादि ॥ येन कृतमिदमशेषं चरितं काव्यं तुभ्यं संप्रदर्शितं सोस्य काव्यस्य कर्ता भगवान् वाल्मीकिः । यज्ञसविधम् । बिन्दुश्छान्दसः । यज्ञवाटसविधदेशं प्राप्तः ॥ २५ ॥ सन्निबद्धमिति ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रमित्यादिकमग्रे स्पष्टीकरिष्यामः । चतुर्विंशतिसाहस्रं श्लोकानां सन्निबन्धनमिति च पाठः । उपाख्यानशतम् इलोपाख्यानान्तम् । भार्गवेण भृगुवंश्येन । वाल्मीकेरेव भार्गवत्वं प्राचेतसत्वं चाविरुद्धमिति दर्शितम् "तपस्स्वाध्यायनिरतम्" इति श्लोकव्याख्याने ॥२६॥ आदिप्रभृतीति ॥ पञ्च सर्गशतानीति षट्काण्डाभिप्रायेण । चकारादुत्तरकाण्डसर्गसंख्यासमुच्चयः ॥ २७ ॥ प्रतिष्ठेत्यादि ॥ आजीवितमिति पदम् । यावत् काव्यनायकस्य जीवितं तावत्तस्य यत् शुभाशुभं तस्य सर्वस्यात्र प्रतिष्ठा निबन्धनमस्ति ॥ २८ ॥ यदीति ॥ हे राजन्यदि तस्य सर्वस्य श्रवणाय बुद्धिः कृता, तदा कर्मान्तरे क्षणीभूतः सुखीभूतः शृणु ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने चतुर्णवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥ राम इत्यादि ॥ १ ॥ तस्मिन्निति ॥ गीते तु गीत एव । नतु ततः पूर्वं कस्यचिन्मुखादित्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ यदीति ॥ महामुनिमनुमान्य महामुनेरनुमतिं

बाढमित्यब्रवीद्रामस्तौ चानुज्ञाप्य राघवम् ॥ प्रहृष्टौ जग्मतुः स्थानं यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः ॥ ३० ॥ रामोपि मुनिभिः सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥ श्रुत्वा तद्गीतिमाधुर्यं कर्मशालामुपागमत् ॥३१॥ शुश्राव तत्ताललयोपपन्नं सर्गान्वितं स स्वरशब्दयुक्तम् ॥ तन्त्रीलयव्यञ्जनयोगयुक्तं कुशीलवाभ्यां परिगीयमानम् ॥ ३२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे चतुर्णवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥ ॥ ॥ ॥

रामो बहून्यहान्येवं तद्गीतं परमं शुभम् ॥ शुश्राव मुनिभिः सार्धं पार्थिवैः सह वानरैः ॥१॥ तस्मिन्गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ ॥ तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत् ॥ दूतान् शुद्धसमाचारानाहूयात्ममनीषया ॥२॥ मद्वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोन्तिकम् ॥ ३ ॥ यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा ॥ करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥ ४ ॥ छन्दं मुनेश्च विज्ञाय सीतायाश्च मनोगतम् ॥ प्रत्ययं दातुकामायास्ततः शंसत मे लघु ॥ ५ ॥ श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा ॥ करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च ॥ ६ ॥ श्रुत्वा तु राघवस्यैतद्वचः परममद्भुतम् ॥ दूताः संप्रययुर्वाटं यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः ॥७॥ ते प्रणम्य महात्मानं ज्वलन्तममितप्रभम् ॥ ऊचुस्ते रामवाक्यानि मृदूनि मधुराणि च ॥ ८ ॥ तेषां तद्व्याहृतं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम् ॥ विज्ञाय सुमहातेजा मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥ एवं भवतु भद्रं वो यथा वदति राघवः ॥ तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ॥ १० ॥ तथोक्ता मुनिना सर्वे रामदूता महौजसम् ॥ प्रत्येत्य राघवं क्षिप्रं मुनिवाक्यं बभाषिरे ॥ ११ ॥ ॥

कृत्वेत्यर्थः ॥ ४ ॥ छन्दमिति ॥ छन्दमभिप्रायम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तथोक्ता इति ॥ सीता तथैव करिष्यतीत्युक्ता इत्यर्थः ॥ ११ ॥ ॥

॥ १२ ॥ भगवन्त इति ॥ यश्चैवान्योपीति । यश्च पापी पापजल्पः प्राकृतः सोपीत्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥१७॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥ ॥ ॥

ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थः श्रुत्वा वाक्यं महात्मनः॥ऋषींस्तत्र समेतांश्च राज्ञश्चैवाभ्यभाषत॥१२॥भगवन्तः सशिष्या वै सानुगाश्च नराधिपाः ॥ पश्यन्तु सीताशपथं यश्चैवान्योपि काङ्क्षते ॥ १३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ॥ सर्वेषामृषिमुख्यानां साधुवादो महानभूत् ॥ १४ ॥ राजानश्च महात्मानं प्रशंसन्ति स्म राघवम् ॥ उपपन्नं नरश्रेष्ठ त्वय्येव भुवि नान्यतः ॥ १५ ॥ एवं विनिश्चयं कृत्वा श्वोभूत इति राघवः ॥ विसर्जयामास तदा सर्वांस्तान् शत्रुसूदनः ॥ १६ ॥ इति संप्रविचार्य राजसिंहः श्वोभूते शपथस्य निश्चयं वै ॥ विससर्ज मुनीन्नृपांश्च सर्वान्त्स महात्मा महतो महानुभावः ॥ १७ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥ ॥ ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां यज्ञवाटगतो नृपः॥ ऋषीन्त्सर्वान्महातेजाः शब्दापयति राघवः॥ १॥वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः॥विश्वामित्रो दीर्घतपा दुर्वासाश्च महातपाः॥२॥पुलस्त्योपि तथा शक्तिर्भार्गवश्चैव वामनः॥मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्मौद्गल्यश्च महायशाः॥३॥ गर्गश्च च्यवनश्चैव शतानन्दश्च धर्मवित् ॥ भरद्वाजस्य तेजस्वी ह्यग्निपुत्रश्च सुप्रभः॥४॥ नारदः पर्वतश्चैव गौतमश्च महायशाः॥कात्यायनः सुयज्ञश्च ह्यगस्त्यस्तपसां निधिः॥५॥एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः॥कौतूहलसमाविष्टाः सर्व एव समागताः॥६॥राक्षसाश्च महावीर्या वानराश्च महाबलाः॥ सर्व एव समाजग्मुर्महात्मानः कुतूहलात्॥७॥क्षत्रिया ये च शूद्राश्च वैश्याश्चैव सहस्रशः॥नानादेशगताश्चैव ब्राह्मणाः संशितव्रताः॥८॥ज्ञाननिष्ठाः कर्मनिष्ठा योगनिष्ठास्तथापरे ॥ सीताशपथवीक्षार्थं सर्व एव समागताः॥९॥

तस्यामित्यादि ॥ शब्दापयति आह्वयति स्म । यङभाव आर्षः ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥

१० ॥ ११ ॥ १२ ॥ तत इति ॥ दुःखजन्मविशालेन दुःखोत्पत्त्या विस्तीर्णेन ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ इमौ त्विति ॥ यमजातकौ यमलतयोत्पन्नौ ॥ १८ ॥ प्रचेतस इति ॥ यथाहं प्रचेतसो दशमः औरसः पुत्रः तथैव तवेमौ पुत्रौ। अनृतं वाक्यम् अहं मनसा न स्मरामि। कथनं तु दूरत एवे

तदा समागतं सर्वमश्मभूतमिवाचलम् ॥ श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ॥ १० ॥ तमृषिं पृष्ठतः सीता
त्वन्वगच्छदवाङ्मुखी ॥ कृताञ्जलिर्बाष्पगला कृत्वा रामं मनोगतम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा श्रुतिमिवायान्तीं ब्रह्माणमनुगामिनीम्
॥ वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत् ॥ १२ ॥ ततो हलहलाशब्दः सर्वेषामेवमाबभौ ॥ दुःखजन्मविशालेन
शोकेनाकुलितात्मनाम् ॥१३॥ साधु रामेति केचित्तु साधु सीतेति चापरे ॥ उभावेव च तत्रान्ये प्रेक्षकाः
संप्रचुक्रुशुः ॥१४॥ ततो मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ॥ सीतासहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम् ॥
॥ १५ ॥ इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी ॥ अपवादैः परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥१६॥ लोकापवादभीतस्य
तव राम महाव्रत ॥ प्रत्ययं दास्यते सीता तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १७ ॥ इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ ॥
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥ प्रचेतसोहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन ॥ न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ
तु तव पुत्रकौ ॥ १९ ॥ बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ॥ नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥ २० ॥
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ॥ तस्याः फलमुपाश्नीयाम पापा यदि मैथिली ॥२१॥ अहं पञ्चसु भूतेषु
मनष्षष्ठेषु राघव ॥ विचिन्त्य सीतां शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे ॥२२॥ इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ॥ लोकापवादभीतस्य
प्रत्ययं तव दास्यति ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥

ति भावः ॥ १९ वह्निति ॥ तस्याः फलमिति। यथेयमपापा एवं तपश्चर्यायाः फलम् उपाश्नीयाम्। यथा तपसः फलभोगः निश्चितस्तथेयमपापेत्यर्थः। तस्याः फलमुपाश्नीयामपापा यदि मैथिलीति च पाठः ॥ २० ॥ मनसेति ॥ तस्य किल्बिषानाचरणस्येत्यर्थः ॥ २१ ॥ अहमिति ॥ पञ्चसु भुतेष्विति। श्रोत्रादिपञ्चेन्द्रियेष्वित्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥ ॥
वाल्मीकिनेत्यादि ॥ १ ॥ एवमिति ॥ यथा वदसीति । प्रत्ययं दास्यतीत्येवमात्मनेत्यर्थः । एतदेवमेव कर्तव्यमित्यर्थः । एवंकरणं च न मम विश्वासार्थ-

तस्मादियं नरवरात्मज शुद्धभावा दिव्येन दृष्टिविषयेण तदा प्रविष्टा ॥ लोकापवादकलुषीकृतचेतसा या त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥ २४ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥ ॥
वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ॥ प्राञ्जलिर्जगतो मध्ये दृष्ट्वा तां वरवर्णिनीम् ॥ १ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित् ॥ प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः ॥२॥ प्रत्ययस्तु पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसन्निधौ॥ शपथस्तु कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता ॥ लोकापवादो बलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली ॥ ३ ॥ सेयं लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ॥ परित्यक्ता मया सीता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ ४ ॥ जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ ॥ शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ ५ ॥ अभिप्रायन्तु विज्ञाय रामस्य सुरसत्तमाः ॥सीतायाः शपथे तस्मिन्महेन्द्राद्या महौजसः ॥ ६ ॥ पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ॥ ७ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा ह्यश्विनौ समरुद्गणाः ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव सर्व एव समागताः ॥ ८ ॥ साध्याश्च विश्वेदेवाश्च सर्वे च परमर्षयः ॥ नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च ते सर्वे हृष्टमानसाः ॥ सीताशपथसम्भ्रान्ताः सर्व एव समागताः ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा देवानृषींश्चैव राघवः पुनरब्रवीत् ॥ प्रत्ययो मे सुरश्रेष्ठा ऋषिवाक्यैरकल्मषैः ॥ १० ॥ शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ ११ ॥ ततो वायुः शुभः पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरमः ॥ तज्जनौघं सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वतः॥१२॥

मित्याह—प्रत्ययो हीति ॥ जात एवेति शेषः । तव वाक्यैरिति । बहुवर्षेत्यादिना प्रागुक्तशपथवाक्यैरित्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ अभिप्रायमिति ॥
सीतायाः शपथ इति । शपथप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ ॥

तदिति ॥ अचिन्त्यमचिन्त्यहेतुकं वायुस्वरूपं, यथा पूर्वं कृतयुगे पश्यन्ति स्म तथा तदानीं सर्वे मानवाः निरीक्षन्ते स्म ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥
यथेति ॥ रामात्परमन्यं पुरुषं न वेद्मीति यथोक्तमेतत्सत्यं चेत् । माधवी माधवपत्नी भूमिः ॥ १७ ॥ तथेति ॥ तथा शपन्त्याम् त्रिः शपन्त्याम् । तत्सिंहास-

सर्वान्त्समागतान्दृष्ट्वा
तदद्भुतमिवाचिन्त्यं निरैक्षन्त समागताः ॥ मानवाः सर्वराष्ट्रेभ्यः पूर्वं कृतयुगे यथा ॥ १३ ॥ सर्वान्त्समागतान्दृष्ट्वा
सीता काषायवासिनी ॥ अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी ॥ १४ ॥ यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्त-
ये ॥ तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १५ ॥ मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ॥ तथा मे माधवी देवी
विवरं दातुमर्हति ॥ १६ ॥ यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च ॥ तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १७ ॥
तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत्तदद्भुतम् ॥ भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥ १८ ॥ ध्रियमाणं शिरोभिस्तु
नागैरमितविक्रमैः ॥ दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिली-
म् ॥ स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥ २० ॥ तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम् ॥ पुष्पवृष्टिरवि-
च्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥ २१ ॥ साधुकारश्च सुमहान् देवानां सहसोत्थितः ॥ साधु साध्विति वै सीते य-
स्यास्ते शीलमीदृशम् ॥ २२ ॥ एवं बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः ॥ व्याजह्रुर्हृष्टमनसो दृष्ट्वा सीताप्रवेशनम् ॥
॥ २३ ॥ यज्ञवाटगताश्चापि मुनयः सर्व एव ते ॥ राजानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे ॥ २४ ॥ अन्तरिक्षे च भू-
मौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥ दानवाश्च महाकायाः पाताले पन्नगाधिपाः ॥ २५ ॥ केचिद्विनेदुः संहृष्टाः केचिद्ध्यान-
परायणाः ॥ केचिद्रामं निरीक्षन्ते केचित्सीतामचेतनाः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥

नम् ॥ १८ ॥ ध्रियमाणमिति ॥ नागैः शिरोभिः ध्रियमाणमदृश्यतेति शेषः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ यज्ञवाटेति ॥ विस्मयात् आश्चर्याभिज्ञा-
वेदनव्यवहारान्नोपरेमिरे नोपरता बभूवुः ॥ २४ ॥ अन्तरिक्ष इति ॥ संहृष्टा इति । सीतायाः अयशो गतमिति संहृष्टाः । अचेतनाः विसंज्ञाः ॥ २५ ॥ २६ ॥

सीताप्रवेशनमिति ॥ तेषां मुन्यादीनाम् । समागमः हर्षसंबन्धः । यदेवमतः संमोहितमिव संमोहितमेवाभूत् ॥ २७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ ॥ ॥ रसातलमित्यादि ॥ १ ॥ दण्डकाष्ठमिति ॥ दण्डरूपं काष्ठं दण्डकाष्ठम् ॥ २ ॥ ३ ॥ अभूतपूर्वमिति ॥ मनः शोकमिव, मनः शोकमेव स्प्रष्टुमिति ।

सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत्समागमः ॥ तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं संमोहितं जगत् ॥ २७ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ ॥ ॥ ॥

रसातलं प्रविष्टायां वैदेह्यां सर्ववानराः ॥ चुक्रुशुः साधु साध्वीति मुनयो रामसन्निधौ ॥ १ ॥ दण्डकाष्ठमवष्टभ्य बाष्पव्याकुलितेक्षणः ॥ अवाक्छिरा दीनमना रामो ह्यासीत्सुदुःखितः ॥ २ ॥ स रुदित्वा चिरं कालं बहुशो बाष्पमुत्सृजन् ॥ क्रोधशोकसमाविष्टो रामो वचनमब्रवीत् ॥३॥ अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्प्रष्टुमिवेच्छति ॥ पश्यतो मे यथा नष्टा सीता श्रीरिव रूपिणी ॥ ४ ॥ साऽदर्शनं पुरा सीता लङ्कापारे महोदधेः ॥ ततश्चापि मयानीता किं पुनर्वसुधातलात् ॥ ५ ॥ वसुधे देवि भवति सीता निर्यात्यतां मम ॥ दर्शयिष्यामि वा रोषं यथा मामवगच्छसि ॥६॥ कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशाद्धि मैथिली ॥ कर्षता हलहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ॥७॥ तस्मान्निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे ॥ पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥ ८ ॥ आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोहं मैथिलीकृते ॥ न मे दास्यसि चेत्सीतां यथारूपां महीतले ॥ ९ ॥ सपर्वतवनां कृत्स्नां विधमिष्यामि ते स्थितिम् ॥ नाशयिष्याम्यहं भूमिं सर्वमापो भवत्विह॥१०॥एवंब्रुवाणे काकुत्स्थे क्रोधशोकसमन्विते॥ब्रह्मा सुरगणैः सार्धमुवाच रघुनन्दनम्॥११॥

पश्यतो मेद्य सा नष्टेति । मामप्यनादृत्य ॥ ४ ॥ सेति ॥ नीता प्रापितवतीत्यर्थः । सा अदर्शनमिति पदच्छेदः ॥५॥ ६ ॥ ७ ॥८॥ आनयेति ॥ मत्तः प्राप्तमोह इत्यर्थः । महीतल इति । प्रविष्टामिति शेषः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

राम रामेति ॥ स्मर त्वं पूर्वकं भावं, पूर्वकं स्वभावं विष्णुत्वमित्यर्थः । मन्त्रं देवैः सहावताराय कृतं विचारम् ॥१२॥ न खल्विति ॥ त्वामहं न स्मारयेयम् । सर्वज्ञत्वादिति भावः । पूर्वकं भावमित्युक्तं विशिनष्टि-इममिति ॥ १३ ॥ सीतेति ॥ तव पूर्वपरायणा तव पूर्वभावप्रवणा । तव प्रकृतिप्राप्तिसमुत्सुकेत्यर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥ एतदित्यादि ॥ एतत्काव्यमेवोत्तमं श्रुतं तत्सर्वं ज्ञापनीयम् विस्तरतो व्याख्यास्यति ज्ञापयिष्यति ॥ १६ ॥ तदेवाह–जन्मप्रभृतीत्यादि ॥ भविष्यत्युत्तरं चेति । सीतोपसंहाराडुत्तरं च यत्ते चरितं भविष्यति, तत्सर्वमपि मदनुग्रहात् त्रिकालज्ञेन वाल्मीकिना कृतं कृतनिबन्धनम् । इह काव्ये ।

राम राम न सन्तापं कर्तुमर्हसि सुव्रत ॥ स्मर त्वं पूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्शन ॥ १२ ॥ न खलु त्वां महाबाहो
स्मारयेयमनुत्तमम् ॥ इमं मुहूर्तं दुर्धर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् ॥ १३ ॥ सीता हि विमला साध्वी तव पूर्वपरायणा ॥
नागलोकं सुखं प्रायात्त्वदाश्रयतपोबलात् ॥१४॥ स्वर्गे ते सङ्गमो भूयो भविष्यति न संशयः ॥ अस्यास्तु परिषन्मध्ये
यद्ब्रवीमि निबोध तत् ॥ १५ ॥ एतदेव हि काव्यं ते काव्यानामुत्तमं श्रुतम् ॥ सर्वं विस्तरतो राम व्याख्यास्यति न
संशयः ॥ १६ ॥ जन्मप्रभृति ते वीर सुखदुःखोपसेवनम् ॥ भविष्यत्युत्तरं चेह सर्वं वाल्मीकिना कृतम् ॥ १७ ॥ आदिकाव्यमिदं
राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ न ह्यन्योर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवादृते ॥ १८ ॥ श्रुतं ते पूर्वमेतद्धि मया
सर्वं सुरैः सह ॥ दिव्यमद्भुतरूपं च सत्यवाक्यमनावृतम् ॥ १९ ॥ स त्वं पुरुषशार्दूल धर्मेण सुसमाहितः ॥ शेषं भविष्यं
काकुत्स्थ काव्यं रामायणं शृणु ॥ २० ॥ उत्तरं नाम काव्यस्य शेषमत्र महायशः ॥ तच्छृणुष्व महातेज ऋषिभिः
सार्धमुत्तमम् ॥ २१ ॥ न खल्वन्येन काकुत्स्थ श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ॥ परमं ऋषिणा वीर त्वयैव रघुनन्दन ॥ २२ ॥

भविष्यत्युत्तरं चेति च पाठः ॥ १७ ॥ आदिकाव्यमिति ॥ त्वयि त्वच्चरितविषये । राघवादृतेन्यः काव्यप्रकाशितयशोभाक् कश्चिदपि काव्यनायकतां नार्हति । अत एवाद्यापि सर्वे कवयो रामचरितमेव प्रायेणाश्रयन्ते ॥ १८ ॥ श्रुतमिति ॥ अनावृतमज्ञानावरणरहितम् ॥ १९ ॥ स त्वमिति ॥ भविष्यं भविष्यद्विषयम् ॥ २० ॥ उत्तरं नामेति ॥ उत्तरकाण्डाख्यकाव्यं शेषभूतम् ॥ २१ ॥ नेति ॥ परमर्षिणा परमराजर्षिणा ॥ २२ ॥ ॥

॥ २३ ॥ ये चेति ॥ ये च तत्रेति । यज्ञसदसीत्यर्थः । ब्राह्मलौकिकाः ब्रह्मलोकार्हाः ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ एवमिति ॥ पर्णशालामुपागमदिति । यज्ञावसान एव सीतान्तर्धानात्, ततः परं दीक्षाराहित्येन स्थलान्तरस्य सुगमत्वात्, पुत्राभ्यां सह वाल्मीकिपर्णशालामेव रामः प्राप्तवानित्यर्थः ॥ २७ ॥ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ॥ जगाम त्रिदिवं देवो देवैः सह सबान्धवैः ॥ २३ ॥ ये च तत्र महात्मान ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः ॥ ब्रह्मणा समनुज्ञाता न्यवर्तन्त महौजसः ॥ उत्तरं श्रोतुमनसो भविष्यं यच्च राघवे ॥ २४ ॥ ततो रामः शुभां वाणीं देवदेवेन भाषिताम् ॥ श्रुत्वा परमतेजस्वी वाल्मीकिमिदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ भगवन् श्रोतुमनस ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः ॥ भविष्यदुत्तरं यन्मे श्वोभूते संप्रवर्तताम् ॥ २६ ॥ एवं विनिश्चयं कृत्वा संप्रगृह्य कुशीलवौ ॥ तं जनौघं विसृज्याथ पर्णशालामुपागमत् ॥ तामेव शोचतः सीतां सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ २७ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

रजन्यां तु प्रभातायां समानीय महामुनीन् ॥ गीयतामविशङ्काभ्यां रामः पुत्रावुवाच ह ॥ १ ॥ ततः समुपविष्टेषु ब्रह्मर्षिषु महात्मसु ॥ भविष्यदुत्तरं काव्यं जगतुस्तौ कुशीलवौ ॥ २ ॥ प्रविष्टायां तु सीतायां भूतलं सत्यसंपदा ॥ तस्यावसाने यज्ञस्य रामः परमदुर्मनाः ॥ ३ ॥ अपश्यमानो वैदेहीं मेने शून्यमिदं जगत् ॥ शोकेन परमायस्तो न शान्तिं मनसागमत् ॥ ४ ॥ ॥ ॥

रजन्यां त्वित्यादि ॥ गीयतामित्युवाच । अविशङ्काभ्यां मत्पुत्रत्वविषयशङ्कारहिताभ्याम् । मातृवियोगदुःखरहिताभ्यां वा ॥ १ ॥ २ ॥ प्रविष्टायामिति ॥ सत्यसंपदा सत्यवैभवेन । तस्यावसाने यज्ञस्येति । सीतानिर्याणासन्नपूर्वकाल इत्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ॥

विसृज्येति ॥ वित्तपूर्वं वित्तदानपूर्वमित्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ नेति ॥ न सीताया इत्यनेन रामस्य एकदारव्रतं सीताप्रतिनिधिनैव यज्ञनिवर्तनं च दर्शितम् ॥ ८ ॥ दश वर्षेति ॥ दश वर्षसहस्राणोत्यनेन प्रथमयज्ञ एव सीताया भूप्रवेश इत्युक्तम् । बहुसुवर्णकान् बहुसुवर्णकयागान् ॥ ९ ॥ अग्निष्टोमेति ॥

विसृज्य पार्थिवान्त्सर्वानृक्षवानरराक्षसान् ॥ जनौघं विप्रमुख्यानां वित्तपूर्वं विसृज्य च ॥ ५ ॥ एवं समाप्य यज्ञं
तु विधिवत्स तु राघवः ॥ ततो विसृज्य तान्त्सर्वान् रामो राजीवलोचनः ॥ ६ ॥ हृदि कृत्वा तदा सीतामयोध्यां
प्रविवेश ह ॥ इष्टयज्ञो नरपतिः पुत्रद्वयसमन्वितः ॥ ७ ॥ न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः ॥ यज्ञे यज्ञे च
पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत् ॥ ८ ॥ दश वर्षसहस्राणि वाजिमेधानथाकरोत् ॥ वाजपेयान् दशगुणांस्तथा बहुसुवर्णकान्
॥ ९ ॥ अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधनैः ॥ ईजे क्रतुभिरन्यैश्च स श्रीमानाप्तदक्षिणैः ॥ १० ॥
एवं स कालः सुमहान् राज्यस्थस्य महात्मनः ॥ धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद्राघवस्य तु ॥ ११ ॥ अनुरञ्जन्ति राजानमहन्यहनि
राघवम् ॥ ऋक्षवानररक्षांसि स्थिता रामस्य शासने ॥ १२ ॥ काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला
दिशः ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा ॥ १३ ॥ नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा ॥ नाऽनर्थो
विद्यते कश्चित् रामे राज्यं प्रशासति ॥ १४ ॥ अथ दीर्घस्य कालस्य राममाता यशस्विनी ॥ पुत्रपौत्रैः परिवृता
कालधर्ममुपागमत् ॥ १५ ॥ अन्वियाय सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी ॥ धर्मं कृत्वा बहुविधं त्रिदिवे पर्यवस्थिता
॥ १६ ॥ सर्वाः प्रमुदिताः स्वर्गे राज्ञा दशरथेन च ॥ समागता महाभागाः सर्वधर्मं च लेभिरे ॥ १७ ॥

गोसवैः गोसवाख्ययागैः । अश्वमेधसंक्षेपैरिति संक्षेपवचनमेतत्परं वेदितव्यम् (?) । शतशब्दस्य बहुसंख्यावचनत्वात् । गोशतैश्चेति पाठः ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ काल इति ॥ सुभिक्षमिति । अभवदिति शेषः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ सर्वा इति ॥ सर्वधर्मं चेति । सर्वधर्मसाध्यभोगमित्यर्थः ॥ १७ ॥

॥ १८ ॥ पित्र्याणीति ॥ पित्र्याणि पितृकर्मापेक्षितानि । ब्रह्मरत्नानि ब्राह्मणदेयवस्तूनि । प्रयच्छति स्मेत्यनुकर्षः । पितॄन् देवान् विवर्धयन् यज्ञांश्चकारेति । पिण्डपितृयज्ञानित्यर्थः ॥ १९ ॥ एवमिति ॥ वर्धयानस्य वर्धमानस्येत्यर्थः ॥ २० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने ॥ ॥ ॥ उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

तासां रामो महादानं काले काले प्रयच्छति ॥ मातॄणामविशेषेण ब्राह्मणेषु तपस्विषु ॥ १८॥ पित्र्याणि ब्रह्मरत्नानि यज्ञान्परमदुस्तरान् ॥ चकार रामो धर्मात्मा पितॄन्देवान्विवर्धयन् ॥१९॥ एवं वर्षसहस्राणि बहून्यथ ययुः सुखम् ॥ यज्ञै बहुविधं धर्मं वर्धयानस्य सर्वदा ॥ २० ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य युधाजित्केकयो नृपः ॥ स्वगुरुं प्रेषयामास राघवाय महात्मने॥ गार्ग्यमङ्गिरसः पुत्रं ब्रह्मर्षिममितप्रभम् ॥१॥ दश चाश्वसहस्राणि प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥२॥ कम्बलानि च रत्नानि चित्रवस्त्रमथोत्तमम् ॥ रामाय प्रददौ राजा शुभान्याभरणानि च ॥ ३ ॥ श्रुत्वा तु राघवो धीमान् ब्रह्मर्षिं गार्ग्यमागतम् ॥ मातुलस्याश्वपतिनः प्रहितं तन्महद्धनम् ॥ ४ ॥ प्रत्युद्गम्य च काकुत्स्थः क्रोशमात्रं सहानुजः ॥ गार्ग्यं संपूजयामास यथा शक्रो बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥ तथा संपूज्य तमृषिं तद्धनं प्रतिगृह्य च ॥ पृष्ट्वा प्रतिपदं सर्वं कुशलं मातुलस्य च ॥ उपविष्टं महाभागं रामः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ ६ ॥ किमाह मातुलो वाक्यं यदर्थं भगवानिह ॥ प्राप्तो वाक्यविदां श्रेष्ठः साक्षादिव बृहस्पतिः॥७॥ रामस्य भाषितं श्रुत्वा महर्षिः कार्यविस्तरम् ॥ वक्तुमद्भुतसङ्काशं राघवायोपचक्रमे ॥ ८ ॥ मातुलस्ते महाबाहो वाक्यमाह नरर्षभ ॥ युधाजित्प्रीतिसंयुक्तं श्रूयतां यदि रोचते ॥ ९ ॥ अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः ॥ सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

कस्यचित्त्वित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रुत्वेति ॥ अश्वपतिनः अश्वपतेः ॥ ४ ॥ ५ ॥ तथेति ॥ प्रतिपदमिति । प्रत्येकं कुशलं पृष्ट्वेत्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ८ ॥ ९ ॥ अयमिति ॥ सिन्धोः सिन्धुनद्याः । अयं देशः अस्मदेशसमीप इत्यर्थः ॥ १० ॥

तं चेति ॥ शैलूषः गन्धर्वराजः ॥ ११ ॥ तानिति ॥ स्वपुरे चेति । तद्देश इति शेषः. ॥ १२ ॥ अन्यस्येति ॥ अन्यस्य त्वद्व्यतिरिक्तस्य तत्र देशे गतिः प्राप्तिप्रसङ्ग एव नास्तीत्यर्थः । तत्साधने फलमुक्तं–देशः परमशोभन इति ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वेति ॥ भरतं चान्ववैक्षतेति । पर्यालोचनार्थमित्यर्थः ॥ १४॥

तं च रक्षन्ति गन्धर्वाः सायुधा युद्धकोविदाः ॥ शैलूषस्य सुता वीर त्रिकोट्यो वै महाबलाः ॥ ११ ॥ तान्विनिर्जित्य काकुत्स्थ गन्धर्वनगरं शुभम् ॥ निवेशय महाबाहो स्वपुरे सुसमाहिते ॥ १२ ॥ अन्यस्य न गतिस्तत्र देशः परमशोभनः ॥ रोचतां ते महाबाहो नाहं त्वामहितं वदे ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतो महर्षेर्मातुलस्य च ॥ उवाच बाढमित्येव भरतं चान्ववैक्षत॥ १४॥ सोऽब्रवीद्राघवः प्रीतः साञ्जलिप्रग्रहो द्विजम् ॥ इमौ कुमारौ तं देशं ब्रह्मर्षे विचरिष्यतः ॥ १५ ॥ भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कल एव च ॥ मातुलेन सुगुप्तौ तु धर्मेण सुसमाहितौ ॥ १६ ॥ भरतं चाग्रतः कृत्वा कुमारौ सबलानुगौ ॥ निहत्य गन्धर्वसुतान् द्वे पुरे विभजिष्यतः ॥ १७ ॥ निवेश्य ते पुरवरे आत्मजौ सन्निवेश्य च ॥ आगमिष्यति मे भूयः सकाशमतिधार्मिकः ॥ १८ ॥ ब्रह्मर्षिमेवमुक्त्वा तु भरतं सबलानुगम् ॥ आज्ञापयामास तदा कुमारौ चाभ्यषेचयत् ॥ १९ ॥ नक्षत्रेण च सौम्येन पुरःस्कृत्याङ्गिरःसुतम् ॥ भरतः सह सैन्येन कुमाराभ्यां विनिर्ययौ ॥ २० ॥ सा सेना शक्रयुक्तेव नगरान्निर्ययावथ ॥ राघवानुगता दूरं दुराधर्षा सुरैरपि ॥ २१ ॥ मांसादानि च सत्त्वानि रक्षांसि सुमहान्ति च ॥ अनुजग्मुर्हि भरतं रुधिरस्य पिपासया ॥ २२ ॥ भूतग्रामाश्च बहवो मांसभक्षाः सुदारुणाः ॥ गन्धर्वपुत्रमांसानि भोक्तुकामाः सहस्रशः ॥ २३ ॥ सिंहव्याघ्रवराहाणां खेचराणां च पक्षिणाम् ॥ बहूनि वै सहस्राणि सेनाया ययुरग्रतः ॥ २४ ॥ ॥ ॥

॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ सेति ॥ शक्रयुक्तेव इन्द्रयुक्ता देवसेनेव , नगरान्निर्ययौ । दूरमिति । एकद्विवासरपर्यन्तमित्यर्थः ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ सिंहेति ॥ सेनाया अग्रतो ययुरिति । पिशिताशनादीनामग्रतो यानं सुशकुनम् । अभिमुखतः आगमनमेवापशकुनम् ॥ २४॥ ॥

अध्यर्धमासमिति ॥ केकयम् युधाजितमित्यर्थः ॥ २९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरजिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने
शततमः सर्गः ॥ १०० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
श्रुत्वेत्यादि ॥ सेनापतिं प्राप्तं युद्धसन्नाहं श्रुत्वा ॥ १ ॥ २ ॥ भरतश्चेति ॥ सबलौ चतुरङ्गबलसहितौ । सपदानुगौ शूद्रवैश्याद्यनुचरसहितौ ॥ ३ ॥

अध्यर्धमासमुषिता पथि सेना निरामया ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णा केकयं समुपागमत् ॥ २९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे
शततमः सर्गः ॥ १०० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
श्रुत्वा सेनापतिं प्राप्तं भरतं केकयाधिपः ॥ युधाजिद्गार्ग्यसहितं परां प्रीतिमुपागमत् ॥ १ ॥ स निर्ययौ जनौघेन
महता केकयाधिपः ॥ त्वरमाणोभिचक्राम गन्धर्वान्कामरूपिणः ॥ २ ॥ भरतश्च युधाजिच्च समेतौ लघुविक्रमैः ॥
गन्धर्वनगरं प्राप्तौ सबलौ सपदानुगौ ॥ ३ ॥ श्रुत्वा तु भरतं प्राप्तं गन्धर्वास्ते समागताः ॥ योद्धुकामा महावीर्या
व्यनदन्वै समन्ततः ॥ ४ ॥ ततः समभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ सप्तरात्रं महाभीमं न चान्यतरयोर्जयः ॥ ५ ॥
खड्गशक्तिधनुर्ग्राहा नद्यः शोणितसंस्रवाः ॥ नृकलेवरवाहिन्यः प्रवृत्ताः सर्वतो दिशम् ॥ ६ ॥ ततो रामानुजः क्रुद्धः
कालस्यास्त्रं सुदारुणम् ॥ संवर्तन्नाम भरतो गन्धर्वेष्वभ्यचोदयत् ॥ ७ ॥ ते बद्धाः कालपाशेन संवर्तेन विदारिताः ॥
क्षणेनाभिहतास्तेन तिस्रः कोट्यो महात्मनाम् ॥ ८ ॥ तं घातं घोरसङ्काशं न स्मरन्ति दिवौकसः ॥ निमेषान्तरमात्रेण
तादृशानां महात्मनाम् ॥ ९ ॥ हतेषु तेषु सर्वेषु भरतः केकयीसुतः ॥ निवेशयामास तदा समृद्धे द्वे पुरोत्तमे ॥ १० ॥

श्रुत्वेति ॥ व्यनदन् गर्जन्ति स्म ॥ ४ ॥ ५ ॥ खड्गेति ॥ खड्गादिरूपा ग्राहा यासु ताः । संस्रवः प्रवाहः । नृकलेवराणि नद्याः काष्ठानि वहन्तीति तथा
॥ ६ ॥ तत इति ॥ संवर्तन्नामेति । प्रलयकालाग्न्याख्यमित्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ तमिति ॥ तं घातं दिवौकसः न स्मरन्तीति । त्रिकोटिगन्धर्वघातोऽसंभाव्य इत्येव स्मृत्वा स्थितवन्त इत्यर्थः ॥ ९ ॥ हतेष्विति ॥ द्वे पुरेति । तक्षशिलापुष्कलावताख्ये ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ ११ ॥ १२ ॥ उभे इति ॥ अकिल्बिषैः धर्मन्यायोपेतैर्व्यवहारैः क्रयविक्रयादिव्यापारैः ॥ १३ ॥ उभे इति ॥ विमानसमवर्णिभिः देवायतनवद्विस्तारैः । गृहमुख्यैरभित उपशोभिते । विमानैर्बहुभिर्वृत इति च पाठः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ ॥ ॥ ॥

तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते ॥ गन्धर्वदेशे रुचिरे गान्धारविषये च सः ॥ ११ ॥ धनरत्नौघसंपूर्णे काननैरुपशोभिते ॥ अन्योन्यसंघर्षकृते स्पर्धया गुणविस्तरैः॥ १२ ॥ उभे सुरुचिरप्रख्ये व्यवहारैरकिल्बिषैः ॥ उद्यानयानसंपूर्णे सुविभक्तान्तरापणे ॥ १३ ॥ उभे पुरवरे रम्ये विस्तरैरुपशोभिते ॥ गृहमुख्यैः सुरुचिरैर्विमानसमवर्णिभिः ॥ १४ ॥ शोभिते शोभनीयैश्च देवायतनविस्तरैः ॥ तालैस्तमालैस्तिलकैर्बकुलैरुपशोभिते ॥ १५ ॥ निवेश्य पञ्चभिर्वर्षैर्भरतो राघवानुजः ॥ पुनरायान्महाबाहुरयोध्यां केकयीसुतः ॥ १६ ॥ सोभिवाद्य महात्मानं साक्षाद्धर्ममिवापरम् ॥ राघवं भरतः श्रीमान् ब्रह्माणमिव वासवः ॥१७ ॥ शशंस च यथावृत्तं गन्धर्ववधमुत्तमम् ॥ निवेशनं च देशस्य श्रुत्वा प्रीतोस्य राघवः ॥ १८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे एकोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ ॥

तच्छ्रुत्वा हर्षमापेदे राघवो भ्रातृभिः सह ॥ वाक्यं चाद्भुतसंकाशं तदा प्रोवाच लक्ष्मणम् ॥ १ ॥ इमौ कुमारौ सौमित्रे तव धर्मविशारदौ ॥ अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च राज्यार्थे दृढविक्रमौ ॥ २ ॥ इमौ राज्येभिषेक्ष्यामि देशः साधु विधीयताम्॥ रमणीयो ह्यसंबाधो रमेतां यत्र धन्विनौ ॥ ३ ॥ न राज्ञो यत्र पीडा स्यान्नाश्रमाणां विनाशनम् ॥ स देशो दृश्यतां सौम्य नापराध्यामहे यथा॥४॥तथोक्तवति रामे तु भरतः प्रत्युवाच ह ॥ अयं कारुपथो देशो रमणीयो निरामयः॥५॥

तच्छ्रुत्वेत्यादि ॥ १ ॥ इमाविति ॥ राज्यार्थे राज्यरक्षाविषये ॥ २ ॥ ३ ॥ नेति ॥ नापराध्यामहे। कस्यापि भूतस्येति शेषः ॥ ४ ॥ तथेति ॥ कारुपथः कारुपथाख्यः पाश्चात्यदेशविशेषः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

निवेश्यतामिति ॥ तत्र देशे अङ्गदस्य पुरम् अङ्गदीयाख्यम् निवेश्यतां, चन्द्रकेतोः चन्द्रकान्ताख्यम्॥६॥७॥८॥चन्द्रकेतोस्त्विति ॥ मल्लस्य श्रेष्ठस्य । मल्लभूम्यां मल्लदेशे उत्तरे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ भरत इति ॥ भरतोपि तथैवोष्येति । चन्द्रकेतुसमीप इति शेषः ॥ १४ ॥ उभाविति ॥ न जज्ञाते जानातेर्लिट्द्विवचनम् । नावगतवन्तौ । संधिः छान्दसः ॥ १५ ॥ १६ ॥ विहृत्येति ॥ धर्मसाधनं पुरं धर्मपुरं तस्मिन् ॥ १७ ॥ इति श्रीगोवि-

निवेश्यतां तत्र पुरमङ्गदस्य महात्मनः ॥ चन्द्रकेतोः सुरुचिरं चन्द्रकान्तं निरामयम् ॥ ६ ॥ तद्वाक्यं भरतेनोक्तं प्रतिजग्राह राघवः ॥ तं च कृत्वा वशे देशमङ्गदस्य न्यवेशयत् ॥ ७ ॥ अङ्गदीया पुरी रम्या ह्यङ्गदस्य निवेशिता ॥ रमणीया सुगुप्ता च रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥८॥चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता ॥ चन्द्रकान्तेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा ॥ ९ ॥ ततो रामः परां प्रीतिं लक्ष्मणो भरतस्तथा ॥ ययुर्युद्धे दुराधर्षा अभिषेकं च चक्रिरे ॥१०॥ अभिषिच्य कुमारौ स प्रस्थापयति राघवः ॥ अङ्गदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम् ॥ ११ ॥ अङ्गदं चापि सौमित्रिर्लक्ष्मणोनुजगाम ह ॥ चन्द्रकेतोस्तु भरतः पार्ष्णिग्राहो बभूव ह ॥ १२ ॥ लक्ष्मणस्त्वङ्गदीयायां संवत्सरमथोषितः ॥ पुत्रे स्थिते दुराधर्षे ह्ययोध्यां पुनरागमत् ॥ १३ ॥ भरतोपि तथैवोष्य संवत्सरमतोधिकम् ॥ अयोध्यां पुनरागम्य रामपादावुपास्त सः ॥१४ ॥ उभौ सौमित्रिभरतौ रामपादावनुव्रतौ ॥ कालं गतमपि स्नेहान्न जज्ञातेति धार्मिकौ ॥ १५ ॥ एवं वर्षसहस्राणि दश तेषां ययुस्तदा ॥ धर्मे प्रयतमानानां पौरकार्येषु नित्यदा ॥ १६ ॥ विहृत्य कालं परिपूर्णमानसाः श्रिया वृता धर्मपुरे सुसंस्थिताः॥त्रयः समिद्धा इव दीप्ततेजसो महाध्वरे साधु हुतास्त्रयोग्नयः ॥ १७ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥ ॥ ॥ ॥

कस्य चित्त्वथ कालस्य रामे धर्मपथे स्थिते ॥ कालस्तापसरूपेण राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥ ॥ ॥

न्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥ ॥ ॥

कस्यचित्त्वित्यादि ॥ कालस्य कस्यचिद्गमनानन्तरमिति शेषः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २ ॥ दूत इति ॥ महर्षेरिति । ब्रह्मण इत्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ तदिति ॥ तस्य वाक्यस्य धृदिति , रामवाक्यधारीति सौमित्रिविशेषणम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तमिति ॥ वाक्यानि संदेशवाक्यानि, प्रापयस्व निवेदय । तत्र हेतुः–यतो दूत इत्यादि ॥ ११ ॥ चोदित इति ॥ मुनिवाक्यं प्रागुक्तमहर्षिसंदिष्टवाक्यम् । द्वन्द्वमेतदिति । "द्वन्द्वं रहस्य०" इत्यादि द्वन्द्वशब्दस्य रहस्यार्थे द्विवचननिपातः । रहस्यमेतत्प्रवक्तव्यमित्यर्थः । द्वन्द्वे हि तत्प्रवक्तव्यमिति च पाठः । तदेव विशिनष्टि–न चैषामित्यादि ॥ एषां त्वत्समीपवर्तिलोकानामित्यर्थः ॥ १२ ॥ य इति ॥ अस्मद्वचनं निरीक्षेत् मन्त्रयितारौ (?) स तव वध्यः । कथमेवमतिक्रूरसंकेत इत्यत्राह-भवेदिति । तस्य मुनिमुख्यस्य वचनमित्थं संकेतपूर्वकम् वदेति चोदितवानित्यर्थः ॥ यद्यपेक्षस इति । तथा संकेतपरिपालनमिति शेषः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सोब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं धृतिमन्तं यशस्विनम् ॥ मां निवेदय रामाय संप्राप्तं कार्यगौरवात् ॥ २ ॥ दूतोस्म्यतिबलस्याहं महर्षेरमितौजसः ॥ रामं दिदृक्षुरायातः कार्येण हि महाबल ॥ ३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः॥ न्यवेदयत रामाय तापसं तं समागतम् ॥४॥ जयस्व राम धर्मेण उभौ लोकौ महाद्युते ॥ दूतस्त्वां द्रष्टुमायातस्तपसा भास्करप्रभः ॥ ५ ॥ तद्वाक्यं लक्ष्मणेनोक्तं श्रुत्वा राम उवाच ह ॥ प्रवेश्यतां मुनिस्तात महौजास्तस्य वाक्यधृत् ॥ ६ ॥ सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तं मुनिम् ॥ ज्वलन्तमिव तेजोभिः प्रदहन्तमिवांशुभिः ॥७॥ सोभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ऋषिर्मधुरया वाचा वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥ ८ ॥ तस्मै रामो महातेजाः पूजामर्घ्यपुरोगमाम् ॥ ददौ कुशलमव्यग्रं प्रष्टुमेवोपचक्रमे ॥ ९ ॥ पृष्टश्च कुशलं तेन रामेण वदतां वरः ॥ आसने काञ्चने दिव्ये निषसाद महायशाः ॥ १० ॥ तमुवाच ततो रामः स्वागतं ते महामुने ॥ प्रापयस्व च वाक्यानि यतो दूतस्त्वमागतः ॥११॥ चोदितो राजसिंहेन मुनिर्वाक्यमभाषत॥ द्वन्द्वमेतत्प्रवक्तव्यं हितं वै यद्यपेक्षसे॥१२॥ यः शृणोति निरीक्षेद्वा स वध्यो भविता तव ॥ भवेद्वै मुनिमुख्यस्य वचनं यद्यपेक्षसे ॥ १३ ॥ ॥ ॥

स इति ॥ प्रतिहारं विसर्जय अन्यतोपसारय ॥ १४ ॥ किमर्थमित्यत आह–स मे इत्यादि ॥ हे सौमित्रे, ऋषेर्मम च कथाद्वन्द्वं कथारहस्यम् । वाचं द्वन्द्व-
मिति च पाठः । यः शृणुयात् ॥ १५ ॥ तत इति ॥ संग्रहं रक्षितारम् ॥ १६ ॥ यदिति ॥ समाहितः । ममापि हृदि वर्तत इति । एवंविधं रहस्यं तन्म-
यापि श्रोतव्यमित्यर्थः । अहमपि जानामीत्यर्थः ॥ १७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्या-
ख्याने त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ द्वारि तिष्ठ महाबाहो प्रतिहारं विसर्जय ॥ १४ ॥ स मे वध्यः खलु भवे-
त्कथाद्वन्द्वं समीरितम् ॥ ऋषेर्मम च सौमित्रे पश्येद्वा शृणुयाच्च यः ॥ १५॥ ततो निक्षिप्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं द्वारि
संग्रहम् ॥ तमुवाच मुने वाक्यं कथयस्वेति राघवः ॥ १६ ॥ यत्ते मनीषितं वाक्यं येन वासि समाहितः ॥ कथयस्वा-
विशङ्कस्त्वं ममापि हृदि वर्तते ॥ १७॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ ॥
शृणु राजन्महासत्त्व यदर्थमहमागतः ॥ पितामहेन देवेन प्रेषितोस्मि महाबल ॥ १ ॥ तवाहं पूर्वसद्भावे पुत्रः
परपुरंजय ॥ मायासंभावितो वीर कालः सर्वसमाहरः ॥ २ ॥ पितामहश्च भगवानाह लोकपतिः प्रभुः ॥
समयस्ते कृतः सौम्य स्वान् लोकान्परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥ संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि ॥
महार्णवे शयानोप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

शृणु राजन्नित्यादि ॥ येन संदेशः कृतः स पितामह एवेत्याह–पितामहेनेति ॥ १ ॥ अहं च न तापसः किन्तु काल इत्याह–तवाहमित्यादि ॥ पूर्व-
सद्भावे पूर्वजन्मनि, अहं तव पुत्रः । सर्वसमाहरः कालरुद्र इति यावत् । परपुरंजयः त्रिपुरसंहारकः । तवाहं पूर्वके भावे पुत्रः परपुरंजय इति च पाठः ।
केवलं यमस्य पूर्वभावादुत्थितत्वाभावात्, मायासंभावितः मायया उत्पादितः (?) ॥ २ ॥ पितामहवाक्यमाह–पितामहश्चेत्यादि ॥ स्वान् ब्रह्मलोका-
दीन् परिरक्षितुं ते समयः । स्वलोकं प्राप्तुं समय इत्यर्थः । लोकान्त्संपरिरक्षितुमिति च पाठः ॥ ३ ॥ न केवलं त्वं रक्षकः, किन्तु संहर्ता स्रष्टा चे-

त्याह—संक्षिप्येत्यादि ॥ लोकान् चराचरात्मकाः प्रजाः । मायया विचित्रशक्त्या जनयित्वा । त्वं महाकालाग्निरूपः । सत्त्वौ प्राणिनौ । अजीजन इत्यनुषङ्गः ॥ ४ ॥ ५ ॥ कौ तावित्यत आह—मधुं च कैटभं चैवेति ॥ तत्र मधुः जलोत्पन्नमकारादिवत् मेदःप्रधानः । कैटभस्तु कमठशुक्त्यादिवत् अस्थिप्रधानः । तत्सृष्टिप्रयोजनमाह—ययोरित्यादि । ययोरस्थिचयैर्वृता इयं मही पर्वतसंबाधा सती मेदिनी तन्मेदोयुक्ता । पृषोदरादित्वात्सकारलोपः । अस्थिचयैः शिलापर्वतस्थितिहेतुभूता मेदोमयत्वाद्वृक्षलताद्युत्पत्तिहेतुर्मृदुप्रदेशाचाभूदित्यर्थः ॥ ६ ॥ मां त्वं पूर्वमजीजन इत्येतद्विवृणोति—पद्म इत्यादि ॥ नाभ्यां वर्तमाने पद्मे नाभिकमले मामुत्पाद्य, मयि प्राजापत्यं प्रजापतित्वं निवेशितम् । मम प्रजापतित्वं दत्तवानसीत्यर्थः ॥ ७ ॥ सोहमिति ॥

भोगवन्तं ततो नागमनन्तमुदकेशयम् ॥ मायया जनयित्वा त्वं द्वौ च सत्त्वौ महाबलौ ॥ ५ ॥
मधुं च कैटभं चैव ययोरस्थिचयैर्वृता ॥ इयं पर्वतसंबाधा मेदिनी चाभवन्मही ॥ ६ ॥
पद्मे दिव्येर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥ प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वन्निवेशितम् ॥ ७ ॥
सोहं सन्न्यस्तभारो हि त्वामुपासे जगत्पतिम् ॥ रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥ ८ ॥
ततस्त्वमपि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् ॥ रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ ९ ॥
अदित्यां वीर्यवान्पुत्रो भ्रातॄणां वीर्यवर्धनः ॥ समुत्पन्नेषु कृत्येषु तेषां साह्याय कल्पसे ॥ १० ॥

त्वयि सन्न्यस्तभारः अहं त्वामुपासे निरन्तरं चिन्तयामि । भूतेषु मत्सृष्टेषु रक्षां विधत्स्व ॥ ८ ॥ तत इति ॥ ततः मत्कृतभारसमर्पणेन दुर्धर्षात् दुर्ज्ञेयात्, सनातनान्नित्यात्, भावात् परवासुदेवस्वभावात्सर्वभूतानां रक्षार्थं विष्णुत्वमुपजग्मिवान् प्राप्तवान् । रक्षां विधास्यन् भूतानामिति च पाठः । यद्वा सनातनात्तस्मात् वासुदेवविग्रहात्, अदित्यां विष्णुत्वमुपजग्मिवानित्यर्थः । परवासुदेवस्त्वं प्रथमं ब्रह्मरुद्रमध्ये आदिविष्णुतयावतीर्णोसीत्यर्थः ॥ ९ ॥ अथ तस्मादुपेन्द्रावतारमाह—अदित्यामिति ॥ भ्रातॄणामिन्द्रादीनाम् वीर्यवर्धनः सन् लोकस्य कृत्येषु रक्षणकार्येषूत्पन्नेषु साह्याय तत्संपादनयोग्यत्वाय कल्पसे । ततो लोकसंरक्षणार्थमुपेन्द्रोभूरित्यर्थः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

स त्वं वित्रास्यमानासु प्रजासु जगतां वर ॥ रावणस्य वधाकाङ्क्षी मानुषेषु मनोदधाः ॥ ११ ॥ दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥ कृत्वा वासस्य नियतिं स्वयमेवात्मना पुरा ॥ १२ ॥ स त्वं मनोमयः पुत्रः पूर्णायुर्मानुषेष्विह ॥ कालोयं ते नरश्रेष्ठ समीपमुपवर्तितुम् ॥ १३ ॥ यदि भूयो महाराज प्रजा इच्छस्युपासितुम् ॥ वस वा वीर भद्रं त एवमाह पितामहः ॥ १४ ॥ अथवा विजिगीषा ते सुरलोकाय राघव ॥ सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः ॥ १५ ॥ श्रुत्वा पितामहेनोक्तं वाक्यं कालसमीरितम् ॥ राघवः प्रहसन्वाक्यं सर्वसंहारमब्रवीत् ॥ १६ ॥ श्रुत्वा मे देवदेवस्य वाक्यं परममद्भुतम् ॥ प्रीतिर्हि महती जाता तवागमनसंभवा ॥ १७ ॥ त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम संभवः ॥ भद्रन्तेस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः ॥ १८ ॥

एवं महाविष्णुरूपादुपेन्द्रावतारमुक्त्वा पुरस्ताद्रामावतारमाह—स त्वमिति ॥ हे जगतां वर, प्रजासु वित्रास्यमानासु सतीषु रावणस्य वधाकाङ्क्षी सन् । स त्वमुज्जास्यमानासु प्रजासु जगतो वरेति च पाठः । आत्मना स्वातन्त्र्येण स्वयमेव पुरा दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च, वासस्य नियतिं वासस्य नियमम् कृत्वा । वासस्य नियममिति च पाठः । मानुषेषु मनोदधा इति श्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥११॥१२॥ स त्वमिति ॥ स त्वमुपेन्द्रो भूत्वा यतमानस्त्वं, मनोमयः पुत्र इच्छाकृतदशरथपुत्रभावः । स त्वं पूर्णायुरसि, संकल्पितकालस्य निवृत्तत्वादिति भावः । अतो मत्समीपमुपवर्तितुं प्राप्तमयं कालः समयः ॥ १३ ॥ यदीति ॥ उपासितुं रक्षितुम् । तव स्वतन्त्रात्वादिति भावः ॥ १४ ॥ अथवेति ॥ भूलोकं विहाय स्वर्गलोकाय विजिगीषा चेत्तदा विष्णुना पुनर्विष्णुत्वं प्राप्तेन त्वया देवाः सनाथाः सन्तो विगतज्वराः भवन्तु । भवदागमनमेव समस्तदेवसुखकरं स्यादिति भावः ॥ १५ ॥ श्रुत्वेति ॥ प्रहसन्निति । स्वयमेवोद्युक्तस्य पितामहोक्त्या प्रहासः । सर्वसंहारं रुद्रम् ॥ १६ ॥ श्रुत्वेति ॥ तवागमनसंभवा प्रीतिर्महती जायत इति योज्यम् ॥ १७ ॥ एवं पितामहसन्देशं श्रुत्वा प्रतिसन्देशमाह—त्रयाणामित्यादि ॥ यत एवाहमागतः तदेव स्थानं गमिष्यामि ॥ १८ ॥

हृदिति ॥ हृद्गतो मम संप्राप्तः। मम हृदि यद्वर्तते तदेव पितामहेन प्रेषितमित्यर्थः। अत्र गमने विषये मे विचारणा नास्ति। ब्रह्मयाच्ञयैव ममात्रावतरणमित्याह—मया हीति। देवानां वशवर्तिना भक्तपरतन्त्रेण मया, पितामहो देवेष्वन्यतमः यथाह, तथा मया सर्वकृत्येषु स्थितिगमनादिषु स्थातव्यम्। तन्नातिक्रमणीयमित्यर्थः। अनेन ब्रह्मणः सृज्यत्वकथनात्परतत्त्वशङ्का निवृत्ता॥१९॥इति श्रीगो० श्रीरा० मणि० उत्तरश्रीरा० चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

हृद्गतो ह्यसि संप्राप्तो न मे तत्र विचारणा ॥ मया हि सर्वकृत्येषु देवानां वशवर्तिना ॥ स्थातव्यं सर्वसंहार यथा ह्याह पितामहः ॥ १९ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥ ॥ ॥

तथा तयोः संवदतोर्दुर्वासा भगवानृषिः ॥ रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत्॥१॥सोभिगम्य तु सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तमः ॥ रामं दर्शय मे शीघ्रं पुरा मेर्थोतिवर्तते ॥ २॥ मुनेस्तु भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ॥ अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥ किं कार्यं ब्रूहि भगवन् को वार्थः किं करोम्यहम् ॥ व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन् मुहूर्तं प्रतिपाल्यताम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा ऋषिशार्दूलः क्रोधेन कलुषीकृतः ॥ उवाच लक्ष्मणं वाक्यं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ५ ॥ अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिपादय ॥ अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे न निवेदयसे यदि ॥ ६ ॥ विषयं त्वां पुरं चैव शपिष्ये राघवं तथा ॥ भरतं चैव सौमित्रे युष्माकं या च सन्ततिः ॥ ७ ॥ न हि शक्ष्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि ॥ तच्छ्रुत्वा घोरसङ्काशं वाक्यं तस्य महात्मनः ॥ चिन्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥ ८ ॥ एकस्य मरणं मेस्तु मा भूत्सर्वविनाशनम् ॥ इति बुद्ध्या विनिश्चित्य राघवाय न्यवेदयत् ॥ ९ ॥ ॥ ॥

तथेत्यादि ॥ १ ॥ स इति ॥ पुरा मेर्थोतिवर्तत इति। यावन्मे प्रयोजनमतिक्रामति ततः पूर्वमेव रामं शीघ्रं दर्शयेत्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ किं कार्यमिति ॥ किं कार्यं किं कर्तव्यं, को वार्थः किं प्रयोजनम्, अहमस्मिन् काले किं करोमि। वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट्। किं करिष्ये ॥ ४ ॥ ५ ॥ अस्मिन्निति ॥ मां राघवाय निवेदयेति। न निवेदयसि यदि तर्हि शपिष्य इति ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ अद्येत्यादि ॥ वर्षसहस्रस्येति । अनशननियमोपगृहीतवर्षसहस्रस्येत्यर्थः । यथासिद्धं यथोपपन्नम् ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वेति ॥ राघवः प्रीतमानस इति । मुनिकोपः परिहृत इति प्राप्तसंतोष इत्यर्थः ॥१४॥१५॥१६॥१७॥ तत इति ॥ ततोऽनन्तरम् , कालवाक्यानि बुद्ध्या विनिश्चित्य सभ्रातृपुत्रभृत्यवर्गस्य मम सर्वोपसंहारकालः प्राप्तः उचित एवेति निश्चित्य, सामान्यतो नैतदस्तीति , एतन्मम भ्रातृभृत्यादिपरिकरजातं सर्वमपि

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः कालं विसृज्य च ॥ निसृत्य त्वरितं राजा अत्रेः पुत्रं ददर्श ह ॥१०॥ सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ किं कार्यमिति काकुत्स्थः कृताञ्जलिरभाषत ॥११॥ तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा मुनिवरः प्रभुम् ॥ प्रत्याह रामं दुर्वासाः श्रूयतां धर्मवत्सल॥१२॥अद्य वर्षसहस्रस्य समाप्तिस्तपसो मम ॥ सोऽहं भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तवानघ ॥१३॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा राघवः प्रीतमानसः ॥ भोजनं मुनिमुख्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १४ ॥ स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम् ॥ साधु रामेति संभाष्य स्वमाश्रममुपागमत ॥ १५ ॥ तस्मिन्गते मुनिवरे स्वाश्रमं लक्ष्मणाग्रजः॥संस्मृत्य कालवाक्यानि ततो दुःखमुपागमत्॥१६॥दुःखेन च सुसंतप्तः स्मृत्वा तद् घोरदर्शनम् ॥ अवाङ्मुखो दीनमना व्याहर्तुन्न शशाक ह॥१७॥ततो बुद्ध्या विनिश्चित्य कालवाक्यानि राघवः ॥ नैतदस्तीति निश्चित्य तूष्णीमासीन्महायशाः॥१८॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे पञ्चोत्तरशततमः सर्गः॥१०५॥ अवाङ्मुखमथो दीनं दृष्ट्वा सोममिवाप्लुतम् ॥ राघवं लक्ष्मणो वाक्यं हृष्टो मधुरमब्रवीत् ॥ १ ॥ न संतापं महाबाहो मदर्थं कर्तुमर्हसि ॥ पूर्वनिर्माणबद्धा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥

नास्तीति चोक्त्वा तूष्णीमासीत् । लक्ष्मणस्यापराधं नोद्भावितवानित्यर्थः ॥ १८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥ ॥ ॥ ॥

अवाङ्मुखमित्यादि ॥ आप्लुतं राहुग्रस्तम् । हृष्ट इति । सुमन्त्रवाक्यतः पूर्वमेव रामेण स्वपरित्यागस्यावगतत्वादविषाद इत्यर्थः ॥ १ ॥ नेति ॥ तदेव

दर्शयति—पूर्वेत्यादि । पूर्वनिर्माणेन प्राग्भावीयकर्मणा, बद्धा कलिपता प्रथा । ईदृशीति । “संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्” इत्युपदिष्टन्यायवतीत्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ लक्ष्मणेनेति॥ प्रचलितेन्द्रियः त्यक्तावाङ्मुखमौनतया प्रवृत्तवागादीन्द्रियः ॥ ५ ॥६॥७॥८॥९॥१०॥ स त्वमिति ॥ अभि-

जहि मां सौम्य विस्रब्धं प्रतिज्ञां परिपालय ॥ हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नराः ॥ ३ ॥ यदि प्रीतिर्महाराज
यद्यनुग्राह्यता मयि ॥ जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव ॥ ४ ॥ लक्ष्मणेन तथोक्तस्तु रामः प्रचलितेन्द्रियः ॥
मन्त्रिणः समुपानीय तथैव च पुरोधसम् ॥ ५ ॥ अब्रवीच्च तदा वृत्तं तेषां मध्ये स राघवः ॥ दुर्वासोभिगमं चैव प्रतिज्ञां
तापसस्य च ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणः सर्वे सोपाध्यायाः समासत ॥ वसिष्ठस्तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥७॥ दृष्टमेतन्महाबाहो
क्षयं ते रोमहर्षणम् ॥ लक्ष्मणेन वियोगश्च तव राम महायशः ॥ ८ ॥ त्यजैनं बलवान्कालो मा प्रतिज्ञां
वृथा कृथाः ॥ विनष्टायां प्रतिज्ञायां धर्मोपि च लयं व्रजेत् ॥ ९ ॥ ततो धर्मे विनष्टे तु त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ सदेवर्षिगणं
सर्वं विनश्येत्तु न संशयः ॥ १० ॥ स त्वं पुरुषशार्दूल त्रैलोक्यस्याभिपालनात् ॥ लक्ष्मणेन विना चाद्य जगत्स्वस्थं
कुरुष्व ह ॥ ११ ॥ तेषां तत्समवेतानां वाक्यं धर्मार्थसंहितम् ॥ श्रुत्वा परिषदो मध्ये रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १२ ॥
विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद्धर्मविपर्ययः ॥ त्यागो वधो वा विहितः साधूनां तूभयं समम् ॥ १३ ॥ रामेण भाषिते
वाक्ये बाष्पव्याकुलितेन्द्रियः ॥ लक्ष्मणस्त्वरितं प्रायात्स्वगृहं न विवेश ह ॥ १४ ॥ स गत्वा सरयूतीरमुपस्पृश्य कृताञ्जलिः॥
निगृह्य सर्वस्रोतांसि निश्वासं न मुमोच ह ॥१५॥अनिश्वसन्तं युक्तं तं सशक्राः साप्सरोगणाः॥ देवाः सर्षिगणाः
सर्वे पुष्पैरभ्यकिरंस्तदा ॥ १६ ॥ अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम् ॥ प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह ॥ १७ ॥

पालनात् । हेतौ पञ्चमी । अभिपालनार्थमित्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥१३ ॥ रामेणेति ॥ रामेण भाषित इत्युक्तरीत्येति शेषः ॥१४॥ स इति ॥ सर्वस्रोतांसि सर्वेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥ अनिश्वसन्तमिति ॥ युक्तं योगयुक्तम्, अभ्यकिरन् ॥ १६ ॥ अदृश्यमिति ॥ अदृश्यं यथा तथा ॥ १७ ॥

तत इति ॥ चतुर्थो भागश्चतुर्भागः । शेषसुपर्णविष्वक्सेनविष्णुरूपेण चतुर्विभागो विष्णुस्तत्र शेषरूपश्चतुर्थांशो लक्ष्मणः । सुपर्णभूतो भरतः । विष्वक्सेनरूपः शत्रुघ्न इति रहस्यार्थः । अत एव पुराणान्तरेषु शेषावतारो लक्ष्मण इति प्रसिद्धिः । अनन्तगरुडविष्वक्सेनविष्णुरूपेणात्मानं चतुर्धा व्यूह्य वर्तते सर्वेश्वर इति ज्ञेयम् ॥ १८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामा॰ षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥ विसृज्येत्यादि ॥ १ ॥ अद्येति ॥ भरतमयोध्याधिपतिमभिषेक्ष्यामीति मनोरथं करोमि । ततो वनं यास्यामि । महाप्रस्थानविधिनेति शेषः ॥ २ ॥

ततो विष्णोश्चतुर्भागमागतं सुरसत्तमाः ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे पूजयन्समहर्षयः ॥ १८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः ॥ पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अद्य राज्येभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम् ॥ अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम् ॥ २ ॥ प्रवेशयत संभारान्मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥ अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम् ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं सर्वाः प्रकृतयो भृशम् ॥ मूर्धभिः प्रणता भूमौ गतसत्त्वा इवाभवन् ॥ ४ ॥ भरतश्च विसंज्ञोभूच्छ्रुत्वा रामस्य भाषितम् ॥ राज्यं विगर्हयामास राघवं चेदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ सत्येनाहं शपे राजन्स्वर्गलोके न चैव हि ॥ न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन ॥ ६ ॥ इमौ कुशलवौ राजन्नभिषिञ्च नराधिप ॥ कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ॥ ७ ॥ शत्रुघ्नस्य तु गच्छन्तु दूतास्त्वरितविक्रमाः ॥ इदं गमनमस्माकं स्वर्गायाख्यान्तु मा चिरम् ॥ ८ ॥ ॥

प्रवेशयतेति ॥ संभारानिति । भरताभिषेकार्थानित्यर्थः ॥ ३ ॥ तदिति ॥ सर्वाः प्रकृतयः सुमन्त्रादयः ॥ ४ ॥ ५ ॥ सत्येनेति ॥ स्वर्गलोके न चेत्यादि । हे रघुनन्दन, त्वां विना प्राप्ये स्वर्गलोके न च कामये । सुखभोगमिति शेषः । तथा त्वां विना यथा राज्यं त्वदाज्ञया यथानुक्रमप्राप्तमयोध्याराज्यं न च कामये । हे राजन्, इममर्थं सत्येन शपे ॥ ६ ॥ एवं भरत उक्तानन्तरं कुशलवावभिषिञ्चेत्याह—इमौ कुशलवावित्यादि ॥ उत्तरेष्विति । उत्तरकोसलेष्वित्यर्थः ॥ ७ ॥ शत्रुघ्नस्येति ॥ इदम् अस्माकं प्रवर्तमानं स्वर्गाय गमनवृत्तान्तं शत्रुघ्नस्याख्यातुं दूता गच्छन्तु, गत्वा चाख्यान्तु । मा चिरं विलम्बो मा भूत् । इदं गमन-

तच्छ्रुत्वा भरतेनोक्तं दृष्ट्वा चापि ह्यधोमुखान् ॥ पौरान्दुःखेन संतप्तान् वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥९॥ वत्स राम इमाः पश्य
धरणीं प्रकृतीर्गताः ॥ ज्ञात्वैषामीप्सितं कार्यं मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥१०॥ वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्थाप्य प्रकृतीजनम् ॥
किं करोमीति काकुत्स्थः सर्वा वचनमब्रवीत् ॥११॥ ततः सर्वाः प्रकृतयो रामं वचनमब्रुवन् ॥ गच्छन्तमनुगच्छामो यत्र
राम गमिष्यसि ॥१२॥ पौरेषु यदि ते प्रीतिर्यदि स्नेहो ह्यनुत्तमः ॥ सपुत्रदाराः काकुत्स्थ समागच्छाम सत्पथम् ॥१३॥
तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा ॥ वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर ॥ १४ ॥ एषा नः परमा प्रीतिरेष
नः परमो वरः ॥ हृद्गता नः सदा प्रीतिस्तवानुगमने नृप ॥ १५ ॥ पौराणां दृढभक्तिं च बाढमित्येव सोब्रवीत् ॥ स्वकृतान्तं
चान्ववेक्ष्य तस्मिन्नहनि राघवः ॥ १६ ॥ कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ॥ अभिषिच्य महात्मानावुभौ
रामः कुशीलवौ ॥ १७ ॥ अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्य पुरे ततः ॥ परिष्वज्य महाबाहुर्मूर्ध्न्युपाघ्राय चासकृत् ॥ १८ ॥
रथानां तु सहस्राणि नागानामयुतानि च ॥ दशायुतानि चाश्वानामेकैकस्य धनं ददौ ॥ १९ ॥ बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ
॥ स्वे पुरे प्रेषयामास भ्रातरौ तु कुशीलवौ ॥ २० ॥ अभिषिच्य सुतौ वीरौ प्रतिष्ठाप्य पुरे तदा ॥ दूतान्
संप्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ २१ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥ ॥ ॥

मस्माकं शीघ्रमाख्यान्तु मा चिरमिति च पाठः ॥८॥९॥१०॥ वसिष्ठस्येति ॥ प्रकृतीजनम् । छान्दसो दीर्घः ॥११॥१२॥ पौरेष्विति ॥ सत्पथं ब्रह्मलोकमार्गम् । त्वया गम्यमानमिति शेषः ॥१३॥ तपोवनमिति ॥ वयं चेति । न त्याज्या अतः सर्वान्नय । तत्र हेतुः—ईश्वरेति ॥१४॥१५॥ पौराणामिति ॥ कृतान्तं च कर्तव्यतासिद्धान्तं च ॥१६॥ कोसलेष्विति ॥ सुतावभिषिच्य प्रस्थापयामास ॥१७॥ अभिषिक्तौ सुताविति ॥ पुरे अयोध्यायाम्, स्वसमीपे कोसलद्वयराज्यार्थमभिषिक्तौ अङ्के प्रतिष्ठाप्य मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य रथादिकं ददौ । रथानां त्वित्यादि॥ पुनर्दीयमानं राजौपवाह्यदिव्यरथादिविषयम् अभिषिच्येत्युक्तार्थम् ॥१८॥१९॥२०॥२१॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥१०७॥

ते दूता इत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ लक्षणस्येति ॥ राघवस्य प्रतिज्ञामिति । कालपुरुषं प्रति ब्रह्मलोकागमनप्रतिज्ञामित्यर्थः । पौरानुगमनं पौरानुगमनानुमतिम् ॥ ३ ॥ कुशस्येति ॥ कुशस्य कुशावती पुरी, लवस्य श्रावस्तीति श्रावितेत्यन्वयः ॥४॥५ ॥ एवमिति ॥ त्वर गमनाय त्वरितो भव । राजेति

ते दूता रामवाक्येन चोदिता लघुविक्रमाः ॥ प्रजग्मुर्मधुरां शीघ्रं चक्रुर्वासं च नाध्वनि ॥१॥ ते तु त्रिभिरहोरात्रैः संप्राप्य मधुरामथ ॥ शत्रुघ्नाय यथातत्त्वमाचख्युः सर्वमेव तत् ॥ २ ॥ लक्ष्मणस्य परित्यागं प्रतिज्ञां राघवस्य च॥ पुत्रयोरभिषेकं च पौरानुगमनं तथा ॥ ३ ॥ कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोदसि ॥ कुशावतीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता ॥ श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य च ॥ ४ ॥ अयोध्यां विजनां कृत्वा राघवो भरतस्तथा ॥ स्वर्गस्य गमनोद्योगं कृतवन्तौ महारथौ ॥ ५ ॥ एवं सर्वं निवेद्याशु शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ विरेमुस्ते ततो दूतास्त्वर राजेति चाब्रुवन् ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं कुलक्षयमुपस्थितम् ॥ प्रकृतीस्तु समानीय काञ्चनं च पुरोधसम् ॥ ७ ॥ तेषां सर्वं यथावृत्तमब्रवीद्रघुनन्दनः ॥ आत्मनश्च विपर्यासं भविष्यं भ्रातृभिः सह ॥ ८ ॥ ततः पुत्रद्वयं वीरः सोभ्यषिञ्चन्नराधिपः ॥ सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम् ॥ ९ ॥ द्विधा कृत्वा तु तां सेनां माधुरीं पुत्रयोर्द्वयोः ॥ धनं च युक्तं कृत्वा वै स्थापयामास पार्थिवः ॥ १० ॥ सुबाहुं मधुरायां च वैदिशे शत्रुघातिनम् ॥ ययौ स्थाप्य तदायोध्यां रथेनैकेन राघवः ॥ ११ ॥ स ददर्श महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ सूक्ष्मक्षौमाम्बरधरं मुनिभिः सार्धमक्षयैः ॥ १२ ॥ सोभिवाद्य ततो रामं प्राञ्जलिः प्रयतेन्द्रियः ॥ उवाच वाक्यं धर्मज्ञं धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥१३॥ कृत्वाभिषेकं सुतयोर्युक्तं राघवनन्दन ॥ तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥१४॥

राजन्नित्यर्थः ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वेति ॥ काञ्चनं काञ्चनाख्यम् । विपर्यासं देहवियोगम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ द्विधेति ॥ धनं युक्तं च कृत्वेति । यथोचितं यथाशास्त्रम् विभागं कृत्वेत्यर्थः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥

न चेति ॥ अन्यन्न वक्तव्यमिति । मास्त्विवति न वक्तव्यमित्यर्थः । विलोक्यमानमित्यादि । त्वद्विधेन परमानुग्रहसमर्थेन विलोक्यमानमनुगृह्यमाणमेव संपादयितुमात्मानमिच्छामि ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ यदीति ॥ यमदण्डमुद्यम्येव त्वया विनिपातिताः स्म । हताः

न चान्यदपि वक्तव्यमतो वीर न शासनम् ॥ विलोक्यमानमिच्छामि त्वद्विधेन विशेषतः ॥ १५ ॥ तस्य तां बुद्धिमक्लीबां
विज्ञाय रघुनन्दनः ॥ बाढमित्येव शत्रुघ्नं रामो वाक्यमुवाच ह ॥ १६ ॥ तस्य वाक्यस्य वाक्यान्ते वानराः
कामरूपिणः ॥ ऋक्षराक्षससंघाश्च समापेतुरनेकशः ॥ १७ ॥ सुग्रीवं ते पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ॥ ते रामं
द्रष्टुमनसः स्वर्गायाभिमुखं स्थितम् ॥ १८ ॥ देवपुत्रा ऋषिसुता गन्धर्वाणां सुतास्तथा ॥ रामक्षयं विदित्वा ते
सर्व एव समागताः ॥ १९ ॥ ते राममभिवाद्योचुः सर्वे वानरराक्षसाः ॥ तवानुगमने राजन् संप्राप्ताः कृतनिश्चयाः
॥ २० ॥ यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषोत्तम ॥ यमदण्डमिवोद्यम्य त्वया स्म विनिपातिताः ॥ २१ ॥ तैरेवमुक्तः
काकुत्स्थो बाढमित्यब्रवीत्स्मयन् ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोपि महाबलः ॥ प्रणम्य विधिवद्वीरं
विज्ञापयितुमुद्यतः ॥ २३ ॥ अभिषिच्याङ्गदं वीरमागतोस्मि नरेश्वर ॥ तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम्
॥ २४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो रमयतां वरः ॥ वानरेन्द्रमथोवाच मैत्रं तस्यानुचिन्तयन् ॥ २५ ॥
सखे शृणुष्व सुग्रीव न त्वयाहं विनाकृतः ॥ गच्छेयं देवलोकं वा परमं वा पदं महत् ॥ २६ ॥ बिभीषणमथोवाच
राक्षसेन्द्रं महायशाः ॥ यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावत्त्वं वै बिभीषण ॥ राक्षसेन्द्र महावीर्य लङ्कास्थस्त्वं धरिष्यसि
॥ २७ ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥ यावच्च मत्कथा लोके तावद्राज्यं तवास्त्विह ॥ २८ ॥

स्मेत्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ एवं तेषामनुगमनार्थवचनं श्रुत्वा व्यवस्थामाह–विभीषणमित्यादि ॥ विभीषणस्य ब्रह्मणा अमरत्वप्रदानप्रदर्शनात् स्नेहेनैवावस्थानं शास्ति–यावत्प्रजा इति । धरिष्यसीति । देहमिति शेषः ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ ॥

॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तमिति ॥ अथ हनुमतोपि अमरत्वं प्रति ब्रह्मदत्तवरत्वात् यावद्रामकथाप्रचारः भूलोके तावत् तच्छ्रवणस्य प्रार्थितत्वात् तथा रामेणानुज्ञातत्वाच्च तस्य च स्थापनम् । जीवित इत्यादि । जीविते जीवितावस्थाने, कृतबुद्धिः कृतनिश्चयः सन्, प्रतिज्ञां त्वत्कृतां मा विलोपय । मा प्रतिज्ञां वृथा कृथा इति च पाठः ॥ ३३ ॥ उक्त एवार्थः स्पष्टीक्रियते—मत्कथा इति ॥ ३४ ॥३५॥३६॥ जाम्बवन्तमिति ॥ जाम्बवतोपि

शासितस्त्वं सखित्वेन कार्यन्ते मम शासनम् ॥ प्रजाः संरक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ किंचान्यद्वक्तुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महामते ॥ ३० ॥ आराधय जगन्नाथमिक्ष्वाकुकुलदैवतम् ॥ आराधनीयमनिशं सर्वैर्देवैः सवासवैः ॥ ३१ ॥ तथेति प्रतिजग्राह रामवाक्यं विभीषणः ॥ राजा राक्षसमुख्यानां राघवाज्ञामनुस्मरन् ॥ ३२ ॥ तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ जीविते कृतबुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां विलोपय ॥ ३३ ॥ मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ॥ तावद्रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन् ॥ ३४ ॥ एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना ॥ वाक्यं विज्ञापयामास परं हर्षमवाप्य च ॥ ३५ ॥ यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी ॥ तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ॥ ३६ ॥ जाम्बवन्तं तथोक्त्वा तु वृद्धं ब्रह्मसुतं तथा ॥ मैन्दं च द्विविदं चैव पञ्च जाम्बवता सह ॥ यावत्कलिश्च संप्राप्तस्तावज्जीवत सर्वदा ॥ ३७ ॥ तानेवमुक्त्वा काकुत्स्थः सर्वांस्तानृक्षवानरान् ॥ उवाच बाढं गच्छध्वं मया सार्धं यथेप्सितम् ॥ ३८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

ब्रह्मपुत्रत्वात् ब्रह्मणैव दत्तवरत्वाच्च स्थापनम् । मैन्दद्विविदयोरपि पित्रोरश्विनोरनुग्रहादमृतप्राशित्वाच्च स्थापनम् । विभीषणादयोमराः पञ्च, ते यूयं यावत्कलिः यावत्प्रलयः तावज्जीवत । कलौ प्रलये संप्राप्ते सति देहं त्यजतेति शेषः॥३७॥ तानिति ॥ सर्वांस्तानिति । पञ्चामरव्यतिरिक्तानित्यर्थः॥३८॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥ ॥ ॥

प्रभातायामित्यादि ॥ १॥ अग्निहोत्रमिति ॥ वाजपेयातपत्रं चेति । तस्य धर्मानुष्ठानबलप्राप्तत्वाद्राजचिह्नस्य सन्न्यस्तत्वाच्च सीतायाः पत्न्याः स्थितत्वादग्नेरपि स्थितिरिति पूर्वमेवोक्तम् ॥ २ ॥ तत इति ॥ महाप्रस्थानमर्हतीति महाप्रास्थानिकम् ॥ ३ ॥ तत इति ॥ परं ब्रह्मावर्तयन्निति । अकारान्तत्वमार्षम् । देवमन्त्रमित्यर्थः । प्रसज्य गृहीत्वेति । अङ्गुलीविवरप्रसक्तं कृत्वेत्यर्थः ॥ ४ ॥ अव्याहरन्निति ॥ निश्चेष्टः किंचित्पदार्थदर्शनश्रवणस्पर्शनादिविषयकेन्द्रियचेष्टारहित इत्यर्थः । निःसुखः पथि, पादुकादिसुखमुपेक्ष्य शर्कराकण्टकबाधां सोढुमुद्युक्तः । निर्जगामेत्यर्थः॥५॥ रामस्येति ॥ सपद्मा पद्महस्ता ॥ ६ ॥ ७॥ ८॥ ९ ॥ तमिति ॥ नपुंसका वर्षधराः ॥ १० ॥ ११॥१२॥ मन्त्रिण इति ॥ प्रहृष्टवत्, देह विसर्जनसमये समीपावस्थानजः प्रहर्षः॥१३॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः ॥ रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ अग्निहोत्रं व्रजत्वग्रे दीप्यमानं सह द्विजैः ॥ वाजपेयातपत्रं च शोभमानं महापथे ॥ २ ॥ ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निरवशेषतः ॥ चकार विधिवद्धर्मं महाप्रास्थानिकं विधिम् ॥ ३ ॥ ततः सूक्ष्माम्बरधरो ब्रह्ममावर्तयन्परम् ॥ कुशान्गृहीत्वा पाणिभ्यां प्रसज्य प्रययावथ ॥ ४ ॥ अव्याहरन्क्वचित्किंचिन्निश्चेष्टो निःसुखः पथि ॥ निर्जगाम गृहात्तस्माद्दीप्यमान इवांशुमान् ॥ ५ ॥ रामस्य दक्षिणे पार्श्वे सपद्मा श्रीरुपाश्रिता ॥ सव्ये तु ह्रीर्महादेवी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥ ६ ॥ शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम् ॥ तथायुधानि ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥ ७ ॥ वेदा ब्राह्मणरूपेण गायत्री सर्वरक्षिणी ॥ ओङ्कारोथ वषट्कारः सर्वे राममनुव्रताः ॥ ८ ॥ ऋषयश्च महात्मानः सर्व एव महीसुराः ॥ अन्वगच्छन्महात्मानं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ ९ ॥ तं यान्तमनुगच्छन्ति ह्यन्तःपुरचराः स्त्रियः ॥ सवृद्धबालदासीकाः सवर्षधरकिङ्कराः ॥ १० ॥ सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ रामं गतिमुपागम्य साग्निहोत्रमनुव्रतः ॥ ११ ॥ ते च सर्वे महात्मानः साग्निहोत्राः समागताः ॥ सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुजग्मुर्महामतिम् ॥ १२ ॥ मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च सपुत्रपशुबान्धवाः ॥ सर्वे सहानुगा राममन्वगच्छन्प्रहृष्टवत् ॥ १३ ॥

॥१४॥१५॥ स्नाता इति ॥ किलकिलाशब्दैरिति । उपलक्षितमिति शेषः । सर्वमिति । वानरबलमिति शेषः ॥१६॥ नेति॥ व्रीडित इति । भगवदपराधादिना पूर्वकृतेनेति शेषः ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ यानीति ॥ स्वर्गाय ब्रह्मलोकगमनाय ॥ २० ॥ २१ ॥ नेति ॥ उच्छ्वसत्सप्राणमित्यर्थः । सुसूक्ष्ममपि न

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ॥ गच्छन्तमन्वगच्छंस्तं राघवं गुणरञ्जिताः ॥१४॥ ततः सस्त्रीपुमांसस्ते सपक्षिपशुवाहनाः ॥ राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतकल्मषाः ॥१५॥ स्नाताः प्रमुदिताः सर्वे हृष्टाः पुष्टाश्च वानराः ॥ दृढं किलकिलाशब्दैः सर्वं राममनुव्रतम् ॥ १६ ॥ न तत्र कश्चिद्दीनो वा व्रीडितो वापि दुःखितः ॥ हृष्टं प्रमुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥ १७ ॥ द्रष्टुकामोथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः ॥ यः प्राप्तः सोपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो मुदा ॥ १८ ॥ ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः ॥ आगच्छन्परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥ यानि भूतानि नगरेप्यन्तर्धानगतानि च ॥ राघवं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम् ॥ २० ॥ यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च ॥ सर्वाणि रामगमने ह्यनुजग्मुर्हितान्यपि ॥ २१ ॥ नोच्छ्वसत्तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते ॥ तिर्यग्योनिगताश्चापि सर्वे राममनुव्रताः ॥ २२ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥ ॥

अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ॥ सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ १ ॥ तान्नदीमाकुलावर्तां सर्वत्रानुसरन्नृपः ॥ आगतः सप्रजो रामस्तं देशं रघुनन्दनः ॥२॥ अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥३॥ आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः ॥ विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः ॥ ४ ॥ दिव्यतेजोवृतं व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम् ॥ स्वयंप्रभैः स्वतेजोभिः स्वर्गिभिः पुण्यकर्मभिः ॥५॥

दृश्यते । अननुयातमिति शेषः ॥ २२ ॥ इति श्रीगो० श्रीरा० मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥ ॥

अध्यर्धेत्यादि ॥ अर्धाधिकं योजनमध्यर्धयोजनम् । पश्चान्मुखाश्रितां पश्चान्मुखेन स्वेनाश्रिताम् ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ दिव्येति ॥ स्वयंप्रभैः स्नेहं विना

स्वयमेव प्रकाशमानैः ॥ ५ ॥ पुण्या इति ॥ महौघवत् महासमृद्धार्था ॥ ६ ॥ तस्मिन्निति ॥ गन्धर्वाप्सरसंकुले गन्धर्वाप्सरःसंकुले। पद्भ्यां समुपचक्रमे गन्तुमिति शेषः ॥ ७ ॥ तत इति ॥ अन्तरिक्षादभ्याशमागत्याभाषतेत्यर्थः ॥ ८ ॥ भ्रातृभिरिति ॥ स्वकान्तनुमिति । त्वं विष्णुतनुं लक्ष्मणः शेषतनुं भरतो गरुडतनुं शत्रुघ्नो विष्वक्सेनतनुमित्यर्थः । तद्वाकाशं सनातनम् । "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् " इति श्रुत्युक्तपरमाकाशं विष्णववतारकुलस्थानं

पुण्या वाता ववुश्चैव गन्धवन्तः सुखप्रदाः ॥ पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता महौघवत् ॥ ६ ॥ तस्मिंस्तूर्यशतैः कीर्णे गन्धर्वाप्सरसंकुले ॥ सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां समुपचक्रमे ॥ ७ ॥ ततः पितामहो वाणीमन्तरिक्षादभाषत ॥ आगच्छ विष्णो भद्रन्ते दिष्ट्या प्राप्तोसि राघव ॥ ८॥ भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्वकां तनुम् ॥ यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्वकाम् ॥ वैष्णवीं तां महातेजो तद्वाकाशं सनातनम् ॥ ९ ॥ त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित्प्रजानते॥ ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम् ॥ त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं सर्वसंग्रहम् ॥१०॥ यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम् ॥११॥ पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः॥ विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥१२॥ ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्ति स्म देवताः॥ साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ १३ ॥ ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसश्च याः॥ सुपर्णनागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥ १४ ॥ सर्वं पुष्टं प्रमुदितं सुसंपूर्णमनोरथम् ॥ साधु साध्विति तैर्देवैस्त्रिदिवं गतकल्मषम् ॥१५॥अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह ॥ एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत॥१६॥

वैकुण्ठं वा प्रविशेत्यर्थः ॥ ९ ॥ अनन्तरोक्तपक्षं विवृणोति—त्वं हीत्यादिना ॥ मायां लक्ष्मीम् । पूर्वपरिग्रहाम् अनादितया परिगृह्यमाणाम् । नित्यानपायिनीमित्यर्थः । त्वामिति । सर्वसंग्रहं सर्वानुग्राहकम् । अक्षयं चाजरं तथेति च पाठः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथेत्यादि ॥ विष्णुः विष्णुत्वं प्राप्तः रामः । लोकं दातुमर्हसि । आतिवाहिकतया दातुमर्हसीत्यर्थः ॥ १६ ॥ ॥ ॥

कथं ब्रह्मविद्यारहितानामेषां ब्रह्मलोकप्राप्तिरित्यत्राह–इमे हीति ॥ भक्ताः भक्तिमन्तः, मत्कृते त्यक्तात्मानश्च ॥ १७ ॥ तदिति ॥ सान्तानिकान् सान्तानिकाख्यान् लोकान्, संप्राप्ताः सन्तः यास्यन्ति। त्वल्लोकमिति शेषः॥१८॥न केवलमेत एव, इतः परमपि ये रामभक्तास्तेपि विष्णुलोकं प्राप्नुवन्तीत्याह–यच्चेति ॥ ब्रह्मलोकादनन्तरे अव्यवहितोपरिदेशस्थे सर्वैर्गुणैर्युक्ते। "एषु सर्वतः प्रतिष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु" इति श्रुतेः । सर्वगुणैर्नित्ययुक्ते सान्तानिके निवत्स्यतीत्यनुकर्षः ॥ १९ ॥ २० ॥ वानराणां तु आधिकारिकदेवांशत्वात्तत्तद्देवशरीरप्रवेश एवेत्याह–वानराश्चेत्यादिना ॥२१॥२२॥ तथेति ॥ गोप्रतारं गोप्रताराख्यं तीर्थम्। हर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः आनन्दाश्रुपूर्णतया विक्लवदृष्टयः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ गत्वेति ॥ तत्तोयविक्लेदं तत्तोयसेचनम् ॥२६॥२७॥

इमे हि सर्वे स्नेहान्मामनुयाता मनस्विनः ॥ भक्ता हि भजितव्याश्च त्यक्तात्मानश्च मत्कृते ॥ १७॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः ॥ लोकान्सान्तानिकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः ॥ १८ ॥ यच्च तिर्यग्गतं किंचित्त्वामेवमनुचिन्तयत् ॥ प्राणांस्त्यक्षति भक्त्या वै तत्सन्ताने विवत्स्यति ॥ १९ ॥ सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनन्तरे ॥ २० ॥ वानराश्च स्वकां योनिमृक्षाश्चैव तथा ययुः ॥ येभ्यो विनिःसृताः सर्वे सुरेभ्यः सुरसंभवाः ॥२१॥ तेषु प्रविविशे चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम् ॥ पश्यतां सर्वदेवानां स्वान्पितॄन्प्रतिपेदिरे ॥ २२ ॥ तथोक्तवति देवेशे गोप्रतारमुपागताः ॥ भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः ॥ २३ ॥ अवगाह्य जलं यो यः प्राणी ह्यासीत्प्रहृष्टवत् ॥ मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोध्यरोहत ॥ २४ ॥ तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सरयूजलम् ॥ संप्राप्य त्रिदिवं जग्मुः प्रभासुरवपूंषि च ॥ दिव्या दिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ॥ २५ ॥ गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च ॥ प्राप्य तत्तोयविक्लेदं देवलोकमुपागमन् ॥२६॥ तस्मिन्नपि समापन्ना ऋक्षवानरराक्षसाः ॥ तेपि स्वर्गं प्रविविशुर्देहान्निक्षिप्य चाम्भसि ॥ २७ ॥

तत इति ॥ दिवं परमाकाशम् वैकुण्ठम् । त्रिदशैर्नित्यसूरिभिः, सदा हृष्टैरिति विशेषणात् । हृष्टैः प्रमुदितो देवैर्जगाम त्रिदिवं महदिति च पाठः॥ २८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥ ॥ ॥ अस्य काव्यस्य अपवर्गान्तसाधकतया कथाशेषानुवादपूर्वकं पठनश्रवणादिषु फलमुपदिश्यते—एतावदित्यादि ॥ सोत्तरमुत्तरकाण्डसहितम् । मुख्यं सर्वाख्यानेभ्यः प्रशस्तमेतदाख्यानम् । एतावदेव समर्यादं एतावच्छ्लोकसर्गकाण्डसंख्याकमेव । न न्यूनं नाधिकम् ॥१॥ तत इति ॥ ततः स्वभक्तजनस्य

ततः समागतान् सर्वान्स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि ॥ जगाम त्रिदशैः सार्ध सदा हृष्टैर्दिवं महत् ॥ २८ ॥ इत्युत्तरश्रीरामायणे दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥ ॥ ॥ ॥

एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम् ॥ रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥ ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गलोके यथापुरम् ॥ येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥२॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ नित्यं शृण्वन्ति संतुष्टा दिव्यं रामायणं दिवि ॥३॥ इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम् ॥ रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः ॥ ४ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत पदमप्यस्य यः पठेत् ॥ ५ ॥ पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः ॥ पठत्येकमपि श्लोकं पापात्स परिमुच्यते ॥ ६ ॥ वाचकाय च दातव्यं वस्त्रं धेनुं हिरण्यकम् ॥ वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

स्वर्लोकप्रापणानन्तरम्, विष्णुः स्वर्गलोके परमस्वर्गे वैकुण्ठे, यथापुरं यथापूर्वम् प्रतिष्ठितः । स्वर्गशब्दस्य लोकपरत्वभ्रमव्यावृत्त्यर्थं विष्णुं विशिनष्टि—येनेति ॥२॥ इदं च रामायणं न केवलं मनुष्याणां भोग्यं, किन्तु देवतानामपि भोग्यमेवेत्याह—तत इति ॥ ततः ब्रह्मस्थानपूजितत्वादेः ॥३॥ इदमिति ॥ इदमाख्यानं रामायणरूपम्, आयुष्यम् आयुर्वर्धनम्, सौभाग्यं सौभाग्यवर्धनम्, श्राद्धे च श्रावयेत् । अक्षय्यपितृतृप्त्यर्थमिति शेषः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

एतदिति ॥ लोकेस्मिन्महीयत इत्यनुकर्षः ॥ ८ ॥ अयोध्येति ॥ निवासं सुजनाश्रयत्वम् ॥ ९ ॥ एतदाख्यानमिति ॥ सहोत्तरमिति । अभिषेकानन्तरवृत्तान्तः । सीताभूप्रवेशानन्तरभाविवृत्तान्तस्तु सभविष्यमित्युच्यते, कृतवान् प्रचेतस इति । तद्रामायणं ब्रह्माप्यन्वमन्यत । अपिः प्राधान्ये । अन्वमन्य-

एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः ॥ सपुत्रपौत्रो लोकेस्मिन् प्रेत्य चेह महीयते ॥ ८ ॥ अयोध्यापि पुरी रम्या शून्या वर्षगणान्बहून् ॥ ऋषभं प्राप्य राजानं निवासमुपयास्यति ॥९॥ एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम् ॥ कृतवान्प्रचेतसः पुत्रस्तद्ब्रह्माप्यन्वमन्यत ॥ १० ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयायुतस्य च ॥ लभते श्रवणादेव सर्गस्यैकस्य मानवः ॥११॥ प्रयागादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ नैमिशादीन्यरण्यानि कुरुक्षेत्रादिकान्यपि ॥ गतानि तेन लोकेस्मिन्येन रामायणं श्रुतम् ॥१२ ॥ हेमभारं कुरुक्षेत्रे ग्रस्ते भानौ प्रयच्छति ॥ यश्च रामायणं लोके शृणोति सदृशावुभौ ॥ १३ ॥ सम्यक्छ्रद्धासमायुक्तः शृणुते राघवीं कथाम् ॥ सर्वपापात्प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १४ ॥ आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ यः शृणोति सदा भक्त्या स गच्छेद्वैष्णवीं तनुम् ॥१५ ॥ पुत्रदाराश्च वर्धन्ते संपदः सन्ततिस्तथा ॥ सत्यमेतद्विदित्वा तु श्रोतव्यं नियतात्मभिः ॥१६॥ गायत्र्याश्च स्वरूपं तद्रामायणमनुत्तमम् ॥ १७ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत पदमप्यस्य यः पठेत् ॥ १८ ॥ यः पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह ॥ भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ चिन्तयेद्राघवं नित्यं श्रेयः प्राप्तुं य इच्छति ॥ श्रावयेदिदमाख्यानं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने ॥ २० ॥ ॥

त अङ्गीकृतवान् । सदा पठति स्मेत्यर्थः । अत्र यकारो गायत्र्यक्षरम् । तेन गायत्रीविवरणम् रामायणमिति सूचितम् ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २१ ॥ २२ ॥ २३॥२४॥२५॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे मणिमुकुटाख्याने उत्तरश्रीरामायणव्याख्याने एकादशोत्तरशततमः

यस्त्विदं रघुनाथस्य चरितं सकलं पठेत् ॥ सोसुक्षये विष्णुलोकं गच्छत्येव न संशयः ॥ २१ ॥ पिता पितामहस्तस्य तथैव प्रपितामहः ॥ तत्पिता तत्पिता चैव विष्णुं यान्ति न संशयः ॥ २२ ॥ चतुर्वर्गप्रदं नित्यं चरितं राघवस्य तु ॥ तस्माद्यत्नवता नित्यं श्रोतव्यं परमं सदा ॥ २३ ॥ शृण्वन्रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ॥ स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥२४॥ एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ॥ प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे आदिकाव्ये श्रीमद्वाल्मीकीये चतुर्विंशत्सहस्रिकायां संहितायामुत्तरश्रीरामायणे एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥ ॥

सर्गः ॥१११॥छ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभमस्तु ॥ श्रीहयग्रीवाय नमः॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ श्रीवरवरमुनये नमः ॥ ॥ सव्याख्यमुत्तरकाण्डं समाप्तम् ॥

अत्रोत्तरकाण्डे मुख्याः १११ सर्गाः, प्रक्षिप्ताः १३ सर्गाः, एवं १२४ सर्गाः सन्ति ।

॥ रामानुजी-तनिश्लोकी-श्रीगोविन्दराजीयभूषणेति-व्याख्यात्रयोपेतं श्रीवाल्मीकीयरामायणं समाप्तम् ॥

यत्नेन श्रीकृष्णदासात्मजो यो गङ्गाविष्णुः सर्वविद्वत्कृपेच्छुः ॥ कल्याणाख्ये-मोहमय्यां च तेन नैजे लक्ष्मीवेङ्कटेशाख्ययन्त्रे ॥ १ ॥
षट्काश्यप्यष्टेन्दु (१८१६)शाके तथा भ्विष्वङ्काब्जेब्दे (१९५१) वैक्रमे चाश्विने हि ॥ आर्षं काव्यं शास्त्रिभिः शोधयित्वा संमुद्र्याथो सुप्रसिद्धिं व्यनैषि॥२॥

पुस्तक मिलने का ठिकाना— गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, कल्याण-मुंबई.

सेति ॥ कालरात्रिः भीमरथिरात्रिः । रात्रिर्भीमरथिर्नाम सर्वप्राणिभयावहेत्युक्तेः । शक्तिर्वा । सती च कालरात्रिश्च भैरवी गणनायिकेत्युक्तेः ॥ १६ ॥ तत इति ॥ संसृष्टाः संमिलिताः ॥ १७ ॥ तेषामिति ॥ उद्वर्ते अभिवृद्धौ । प्रलये वा ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ उद्वर्ते संवर्ते ॥ १८ ॥ तेषामिति ॥ तेषां राक्षसानां मध्ये षट् निशाचरान् अग्निशिखोपमैः शितैः शरैः जघान ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ शितैरग्निशिखोपमैरिति पाठः ॥ १९ ॥ के ते

सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी ॥ कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा ॥ १६ ॥ ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ राममेवाभ्यवर्तन्त संसृष्टाः शरवृष्टिभिः ॥ १७ ॥ तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामपि गर्जताम् ॥ उद्वर्त इव सप्तानां समुद्राणां प्रशुश्रुवे ॥ १८ ॥ तेषां रामः शरैष्षड्भिष्षट् जघान निशाचरान् ॥ निमेषान्तरमात्रेण शितैरग्निशिखोपमैः ॥ १९ ॥ यमशत्रुश्च दुर्धर्षौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ॥ २० ॥ ते तु रामेण बाणौघैः सर्वे मर्मसु ताडिताः ॥ युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोभवन् ॥ ॥ २१ ॥ तत्र काञ्चनचित्राङ्गैः शरैरग्निशिखोपमैः ॥ दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महाबलः ॥ (रामनामाङ्कितैर्बाणैर्व्याप्तं तद्रणमण्डलम्) ॥ २२ ॥ ये त्वन्ये राक्षसा भीमा रामस्याभिमुखे स्थिताः ॥ तेपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥२३॥ सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः संपतद्भिः सहस्रशः ॥ बभूव रजनी चित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥२४॥ राक्षसानां च निनदैर्हरीणां चापि निस्वनैः ॥ सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतरा तदा ॥ २५ ॥ ॥

षडित्यपेक्षायामाह–यमेति ॥ दुर्धर्षः धर्षितुमशक्यः । यमशत्रुः । महोदरमहापार्श्वौ । महाकायः वज्रदंष्ट्रः । तौ उत्तरद्वाररक्षकत्वेन पूर्वोक्तौ उभौ शुकसारणौ चेति षट् । अत्र महाकाय इति वज्रदंष्ट्रविशेषणम् । अपसृताः पलायिताः । सावशेषायुषः आयुःशेषयुक्ता इति जीवने हेतुः ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ तत्रेति ॥ महाबलः रामः ॥ २२ ॥ ये त्विति ॥ पावकं समासाद्येत्यन्वयः ॥ २३ ॥ सुवर्णपुङ्खैरिति ॥ स्पष्टः ॥ २४ ॥ राक्षसानामिति ॥ पूर्वमेव घोरा सा भूयः विशिष्य घोरतरा बभूव ॥ २५ ॥ ॥ ॥ ॥

तेनेति ॥ प्रव्याहरदिव प्रतिव्याहरदिवेत्यर्थः ॥ २६ ॥ गोलाङ्गूला इति ॥ भक्षयन् अभक्षयन् ॥ २७ ॥ पूर्वप्रसक्तस्याङ्गदेन्द्रजितोर्द्वन्द्वयुद्धस्य शेषं वक्तुमुपक्रमते–अङ्गदस्त्वित्यादिना ॥ २८ ॥ वर्तमान इति ॥ तत्रैव तस्मिन् देश एव ॥ २९ ॥ तदिति ॥ पूजनार्हस्य स्तुत्यर्हस्य ॥ ३० ॥ प्र·

तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः ॥ त्रिकूटः कन्दराकीर्णः प्रव्याहरदिवाचलः ॥ २६ ॥ गोलाङ्गूला महाकायास्तमसा तुल्यवर्चसः ॥ संपरिष्वज्य बाहुभ्यां भक्षयन् रजनीचरान् ॥ २७ ॥ अङ्गदस्तु रणे शत्रुं निहन्तुं समुपस्थितः ॥ रावणिं निजघानाशु सारथिं च हयानपि ॥ २८ ॥ वर्तमाने तदा घोरे संग्रामे भृशदारुणे ॥ इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ॥ अङ्गदेन महाकायस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २९ ॥ तत्कर्म वालिपुत्रस्य सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ तुष्टुवुः पूजनार्हस्य तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥ प्रभावं सर्वभूतानि विदुरिन्द्रजितो युधि ॥ (अदृश्यः सर्वभूतानां योभवद्युधि दुर्जयः ॥) तेन ते तं महात्मानं तुष्टा दृष्ट्वा प्रधर्षितम् ॥ ३१ ॥ ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवबिभीषणाः ॥ साधु साध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं प्रधर्षितम् ॥ ३२ ॥ इन्द्रजित्तु तदा तेन निर्जितो भीमकर्मणा ॥ संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे रामो वानरान् वाक्यमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु कपिराजेन संगताः ॥ ३५॥ स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ॥ भवतामर्थसिद्ध्यर्थं कालेन स समागतः ॥ अद्यैव क्षमितव्यं मे भवन्तो विगतज्वराः ॥ ३६ ॥ सोन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्कशः ॥ अदृश्यो निशितान् बाणान् मुमोचाशनिवर्चसः ॥ ३७ ॥ ॥

भावमिति ॥ ते तानि । लिङ्गव्यत्यय आर्षः । महात्मानं महाधैर्यम् । तेन अङ्गदेन । प्रधर्षितं पराजितम् । दृष्ट्वा तुष्टाः ॥ ३१ ॥ तत इति ॥ स्पष्टः ॥३२॥ इन्द्रजित्त्विति ॥ स्पष्टः ॥३३॥ एतस्मिन्नित्यर्धम् ॥३४॥ सर्वे इत्यर्धम् ॥३५॥३६॥ स इति ॥ अन्तर्धानगतः अन्तर्धानविद्यां प्राप्तः॥३७॥

स इति ॥ सर्वगात्रेषु सर्वावयवेषु ॥ ३८ ॥ माययेति ॥ मायया संवृतः मायया युक्तः । अत एव अदृश्यः । कूटयोधी कपटयोधी । राघवौ रघुकुलोद्भवौ
रामलक्ष्मणौ । शरबन्धेन शररूपबन्धकेन बबन्ध । वेष्टनदंशनादिना नागमयत्वम् । वेदनादिना शरमयत्वम् ॥३९॥ तौ तेनेति ॥ स्पष्टः॥४०॥मायाप्रयोगः
किमर्थस्तत्राह–प्रकाशेति ॥ समुपाजगाम उपचक्रमे । बबन्ध च । महात्मा महाबुद्धिः ॥४१॥ इति श्रीगो॰श्रीरा॰रत्नकिरी॰यु॰चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

स रामं लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ॥ बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः ॥ ३८ ॥ मायया संवृतस्तत्र मोहयन्
राघवौ युधि ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः ॥ बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥
॥ ३९ ॥ तौ तेन पुरुषव्याघ्रौ क्रुद्धेनाशीविषैः शरैः ॥ सहसा निहतौ वीरौ तदा प्रैक्षन्त वानराः ॥ ४० ॥ प्रकाशरूपस्तु
यदा न शक्तस्तौ बाधितुं राक्षसराजपुत्रः ॥ मायां प्रयोक्तुं समुपाजगाम बबन्ध तौ राजसुतौ महात्मा
॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

स तस्य गतिमन्विच्छन् राजपुत्रः प्रतापवान् ॥ दिदेशातिबलो रामो दश वानरयूथपान् ॥१॥ द्वौ सुषेणस्य दायादौ
नीलं च प्लवगर्षभम् ॥ अङ्गदं वालिपुत्रं च शरभं च तरस्विनम् ॥२॥ विनतं जाम्बवन्तं च सानुप्रस्थं महाबलम्॥
ऋषभं चर्षभस्कन्धमादिदेश परंतपः ॥ ३ ॥ ते संप्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान् ॥ आकाशं विविशुः सर्वे
मार्गमाणा दिशो दश ॥ ४ ॥ तेषां वेगवतां वेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ॥ अस्त्रवित्परमास्त्रैस्तु वारयामास रावणिः ॥
॥ ५ ॥ तं भीमवेगा हरयो नाराचैः क्षतविग्रहाः ॥ अन्धकारे न ददृशुर्मेघैः सूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥ ॥

अथ नागपाशबन्धः पञ्चचत्वारिंशे–स तस्येत्यादि ॥ गम्यत इति गतिः स्थानम् ॥ १ ॥ तानेव दश यूथपान् दर्शयति–द्वावित्यादिना ॥ दायादौ पुत्रौ
। दायादौ सुतबान्धवावित्यमरः ॥ ❀ रामानुजीसम् ❀ ऋषभं चर्षभस्कन्दमिति पाठः ॥ २ ॥ ३ ॥ त इति ॥ मार्गमाणाः मार्गितुमित्यर्थः
॥ ४ ॥ तेषामिति ॥ परमास्त्रैरिषुभिः परमास्त्ररूपैरिषुभिः ॥ ५ ॥ तमिति ॥ स्पष्टः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

रामेति ॥ भृशं सर्वदेहभिदः शरान् रामलक्ष्मणयोरेवाधिकरणयोरावेशयामास ॥ ७ ॥ निरन्तरेति ॥ निरन्तरशरीरौ कृताविति शेषः । शरतां गतैः शरकार्यं भेदनादिकं कुर्वद्भिरित्यर्थः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ पन्नगैः शरतां गतैः । शरकार्यं भेदनं पन्नगकार्यं संवेष्टनं च कुर्वद्भिरित्यर्थः ॥ ८ ॥ तयोरिति ॥ क्षतेन जातो मार्गः क्षतजमार्गः । ननु, न भूतसङ्घसंस्थानो देहोस्य परमात्मनः । न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मांसमेदोस्थिसंभवेत्यादिभिः रामलक्ष्मणयोर्दिव्यविग्रहस्याप्राकृतत्वस्मरणात्कथं रुधिरोद्गम इति चेदत्राहुः । वस्तुतोनयो रुधिराभावेपि मनुष्यभावनानुरोधेन नट इव रुधिराणि दर्शयतः स्म । नन्वेवं निर्बन्धेन मनुष्यभावं भावयतः किं प्रयोजनं शृणु । सर्वात्मना मनुष्यभावनाननुरोधे जन एवं मन्येत । नायं मर्त्यः किं तु देवः तेन तद्वद-

रामलक्ष्मणयोरेव सर्वदेहभिदः शरान् ॥ भृशमावेशयामास रावणिः समितिं जयः ॥ ७ ॥ निरन्तरशरीरौ तौ
भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ क्रुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पन्नगैः शरतां गतैः ॥ ८ ॥ तयोः क्षतजमार्गेण सुस्राव रुधिरं बहु ॥
तावुभौ च प्रकाशेते पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥ ततः पर्यन्तरक्ताक्षो भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ रावणिर्भ्रातरौ वा-
क्यमन्तर्धानगतोब्रवीत् ॥ १० ॥ युद्ध्यमानमनालक्ष्यं शक्रोपि त्रिदशेश्वरः ॥ द्रष्टुमासादितुं वापि न शक्तः किं पुन-
र्युवाम् ॥ ११ ॥ प्रावृताविषुजालेन राघवौ कङ्कपत्रिणा ॥ एष रोषपरीतात्मा नयामि यमसादनम् ॥ १२ ॥ ॥

स्माकं न शक्यमनुष्ठातुं धर्मानिति सर्वथा मनुष्यभावनायां तु महाजनानुष्ठानदर्शनेन स्वयमनुष्ठास्यति लोक इति रहस्यम् । रावणस्य मनुष्यैकवध्यत्वेन तद्भावनेत्यप्याहुः । नागपाशबद्धतयावस्थानं तु धर्मनिरतानामपि कदाचिदापदुपतिष्ठति निवर्तते च झटितीति लोकानां प्रदर्शनायेति । एवं मोहादिष्वपि द्रष्टव्यम् ॥ ९ ॥ तत इति ॥ पर्यन्तरक्ताक्ष इत्यनेन ईषत्कोपवत्त्वं लक्ष्यते ॥ १० ॥ युद्ध्यमानमिति ॥ अनालक्ष्यं यथा भवति तथा युद्ध्यमानं मां शक्रस्त्रिदशेश्वरोपि द्रष्टुं मायया बलान्तरेण आसादितुं वापि न शक्तः । किं पुनर्युवां मानुषावित्यर्थः ॥ ११ ॥ प्रावृताविति ॥ राघवाविति संबोधनम् । अत्रापि युवामिति द्वितीयान्ततया विपरिणम्यानुषञ्जनीयम् । कङ्कपत्रिणा कङ्कपत्रवता । एष इत्यव्यवधानद्योतनाय ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमिति ॥ धर्मज्ञाविति । शब्दवेधप्रयोगासहिष्णू इत्यर्थः ॥ १३ ॥ भिन्नेति ॥ अञ्जनोपरिप्रदेशस्य दूरत्वसंभवात् भिन्नेत्युक्तम् ॥ १४ ॥ तत इति ॥ स्पष्टः ॥ १५ ॥ बद्धौ त्विति ॥ निमेषान्तरमात्रेण निमेषावकाशमात्रेण । क्षणमात्रेणेत्यर्थः ॥ १६ ॥ तत इति ॥ शरशल्याचितौ शराग्रप्रोतौ कृतौ । रज्जुमुक्तौ मुक्तरज्जू । अत एव प्रकम्पितौ महेन्द्रस्य ध्वजाविव कृतौ । जगत्यां भूमौ । जगतीपती भूपती ॥ १७ ॥ १८ ॥ ताविति ॥ वीराः शेरतेऽस्मिन्निति वीरशयनं रणभूमिः । शरतल्पं वा । शरवेष्टितसर्वाङ्गौ शरभूतसर्पवेष्टितसर्वाङ्गौ । आर्तौ मनःपीडावन्तौ । परमपीडितौ शारीरकपीडावन्तौ ।

एवमुक्त्वा तु धर्मज्ञौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ निर्बिभेद शितैर्बाणैः प्रजहर्ष ननाद च ॥ १३ ॥ भिन्नाञ्जनचयश्यामो
विस्फार्य विपुलं धनुः ॥ भूयो भूयः शरान् घोरान् विससर्ज महामृधे ॥ १४ ॥ ततो मर्मसु मर्मज्ञो
मज्जयन्निशितान् शरान् ॥ रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि
॥ निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरुदीक्षितुम् ॥ १६ ॥ ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितावुभौ ॥ ध्वजाविव
महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ ॥ १७ ॥ तौ संप्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ ॥ निपेततुर्महेष्वासौ
जगत्यां जगतीपती ॥ १८ ॥ तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ
॥ १९ ॥ न ह्यविद्धं तयोर्गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तरम् ॥ नानिर्भिन्नं न चास्तब्धमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥
तौ तु क्रूरेण निहतौ रक्षसा कामरूपिणा ॥ असृक् सुस्रुवतुस्तीव्रं जलं प्रस्रवणाविव ॥ २१ ॥ ॥

अभूतामिति शेषः ॥ १९ ॥ न हीति ॥ अङ्गुलम् अङ्गुलिप्रमाणम् । अथवा अङ्गुलिरङ्गुलमिति त्रिकाण्डीस्मरणात् अङ्गुलिप्रमाणवाच्यङ्गुलशब्दोकारान्तोप्यस्ति । तयोर्गात्रमङ्गुलमात्रेप्यवकाशे अविद्धं नाभूदिति भावः । यद्वा तयोर्गात्रम् अङ्गुलम् अङ्गुलसंबन्ध्यप्यन्तरमवकाशः । आकराग्रात्कराग्रपर्यन्तम् । अजिह्मगैः सर्परूपशरैः । आविद्धं न बभूव । अस्तब्धम् अनिश्चलं च न बभूव । अनिर्भिन्नं च न बभूव ॥ २० ॥ ताविति ॥ तीव्रम् अत्यन्तम् । प्रस्रवणौ गिरिविशेषौ ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥

पपातेति ॥ इन्द्रजित्त्वं निर्वक्ति–येनेति ॥ २२ ॥ नागास्त्रप्रयोगानन्तरं केवलशरैरपि विव्याधेत्याह–रुक्मपुङ्खैरित्यादिना ॥ प्रसन्नाग्रैः उन्मृष्टाग्रैरित्यर्थः । प्रहर्तुराकाशस्थत्वेनाधोगतिभिः । आशुगैः वक्ष्यमाणविशेषभिन्नैः । नाराचैः ऋजुवृत्ताग्रैः । अर्धनाराचैः मध्ये भिन्ननाराचतुल्यैः । भल्लैः परश्वधाग्रैः । अञ्जलिकैः अञ्जलिसदृशाग्रैः । वत्सदन्तैः वत्सदन्तसदृशाग्रैः । सिंहदंष्ट्रैः सिंहदंष्ट्रासदृशाग्रैः । क्षुरैः क्षुराग्रैः । अत्रेन्द्रजिदित्यध्याहार्यम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ क्षुरैः क्षुराकारमुखैः ॥ २३ ॥ स इति ॥ भिन्नमुष्टिपरीणाहं शिथिलमुष्टिबन्धम् । तृणतन्त्रिषु स्थानेषु पार्श्वयोर्मध्ये च न-

पपात प्रथमं रामो विद्धो मर्मसु मार्गणैः ॥ क्रोधादिन्द्रजिता येन पुरा शक्रो विनिर्जितः ॥ २२ ॥ रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैरधोगतिभिराशुगैः ॥ नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ विव्याध वत्सदन्तैश्च सिंहदंष्ट्रैः क्षुरैस्तथा ॥ २३ ॥ स वीरशयने शिश्ये विज्यमादाय कार्मुकम् ॥ भिन्नमुष्टिपरीणाहं त्रिणतं रत्नभूषितम् ॥ २४ ॥ बाणपातान्तरे रामं पतितं पुरुषर्षभम् ॥ स तत्र लक्ष्मणो दृष्ट्वा निराशो जीवितेऽभवत् ॥ २५ ॥ रामं कमलपत्राक्षं शरबन्धपरिक्षतम् ॥ शुशोच भ्रातरं दृष्ट्वा पतितं धरणीतले ॥ २६ ॥ हरयश्चापि तं दृष्ट्वा सन्तापं परमं गताः ॥ २७ ॥ बद्धौ तु वीरौ पतितौ शयानौ तौ वानराः संपरिवार्य तस्थुः ॥ समागता वायुसुतप्रमुख्या विषादमार्ताः परमं च जग्मुः ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

तम् । रुक्मभूषितं रुक्मपट्टबन्धम् । विज्यं शरसंधानप्रसङ्गाभावाद्विगतज्यम् । कार्मुकं धनुः । आदाय अवलम्ब्य । वीरशयने रणभूमौ शिश्ये ॥ २४ ॥ बाणेति ॥ बाणपातान्तरे शरतल्पे ॥ २५ ॥ राममिति ॥ शरबन्धपरिक्षतम् । बन्धः क्षतश्चेति द्वयमत्र शरकार्यमुच्यते ॥ २६ ॥ हरयश्चेत्यर्धम् ॥ २७ ॥ बद्धाविति ॥ आदौ नागपाशबद्धौ । अथ शयानौ तु तौ वीरौ संपरिवार्य वायुसुतादयो वानरास्तस्थुः । विषादं दुःखं जग्मुश्चेत्यन्वयः ॥ २८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ ॥

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः ॥ ददृशुः संततौ बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥ वृष्ट्वेवोपरते देवे कृतकर्मणि राक्षसे ॥ आजगामाथ तं देशं ससुग्रीवो बिभीषणः ॥ २ ॥ नीलद्विविदमैन्दाश्च सुषेणकुमुदाङ्गदाः ॥ तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥ ३ ॥ अचेष्टौ मन्दनिश्वासौ शोणितौघपरिप्लुतौ ॥ शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पयोः ॥ ४ ॥ निश्वसन्तौ यथा सर्पौ निश्चेष्टौ मन्दविक्रमौ ॥ रुधिरस्रावदिग्धाङ्गौ तापनीयाविव ध्वजौ ॥ ५ ॥ तौ वीरशयने वीरौ शयानौ मन्दचेष्टितौ ॥ यूथपैस्तैः परिवृतौ बाष्पव्याकुललोचनैः ॥ ६ ॥ राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमावृतौ ॥ बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सबिभीषणाः ॥ ७ ॥ अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः ॥ न चैनं मायया च्छन्नं ददृशू रावणिं रणे ॥ ८ ॥ तं तु मायाप्रतिच्छन्नं माययेव बिभीषणः ॥ वीक्षमाणो ददर्शाथ भ्रातुः पुत्रमवस्थितम् ॥ ९ ॥ तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ददर्शान्तर्हितं वीरं वरदानाद्विभीषणः ॥ १० ॥ तेजसा यशसा चैव विक्रमेण च संयुतम् ॥ ११ ॥ इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च ॥ उवाच परमप्रीतो हर्षयन् सर्वनैर्ऋतान् ॥ १२ ॥ ॥ ॥

अथ पूर्वसर्गोक्तमनुवदति–तत इत्यादि ॥ द्याम् आकाशम् । सन्ततौ व्याप्तौ ॥ १ ॥ वृष्ट्वेति ॥ वृष्ट्वा उपरते देव इव स्थिते राक्षसे । कृतकर्मणि कृतशरवर्षरूपकर्मणि सति । तं देशं रामस्थानम् ॥ २ ॥ नीलेति ॥ नीलादयः सुग्रीवात्पूर्वमेवागताः ॥ ३ ॥ अचेष्टावित्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया ॥ अचेष्टावत एव स्तब्धौ निश्चलौ । मध्ये मध्ये मन्दनिश्वासौ मध्ये मध्ये निश्चेष्टौ । कदाचित्सर्पाविव निश्वसन्तौ कदाचिन्मन्दचेष्टितौ च । अत्र पुनरुक्तयो दुःखातिरेकात् । यद्वा अचेष्टाविति श्लोकः पूर्वश्लोकेनान्वितः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ अन्तरिक्षमिति ॥ स्पष्टः ॥ ८ ॥ तं त्विति ॥ माययेवेति । अन्तर्हितवस्तुदर्शनहेतुभूतया विद्ययेत्यर्थः ॥ ९ ॥ तमिति ॥ अप्रतिद्वन्द्वं निःसमम् । वरदानादन्तर्हितमित्यन्वयः । तेजसेत्यर्धं पूर्वेणान्वेति ॥ १० ॥ ११ ॥ इन्द्रजित्त्विति ॥ आत्मनः कर्म नागास्त्रबन्धरूपम् । शयानौ तौ च वीक्ष्येत्यन्वयः ॥ १२ ॥ ॥ ॥

दूषणस्येति ॥ सादितौ पश्यतेति शेषः ॥ १३ ॥ नेमाविति ॥ समागम्य सङ्गीभूय ॥ १४ ॥ यदिति ॥ यत्कृते यन्निमित्तम् । गात्रैः शयनमस्पृष्ट्वा चिन्तयानस्यैव मम पितुः त्रियामा याति । यत्पौरुषभयान्मम पिता शर्वर्यामेकस्मिन्नपि यामे न निद्रातीत्यर्थः ॥ १५ ॥ कृत्स्नेति ॥ लङ्का लङ्कास्थजनः ।

दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ ॥ सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ नेमौ मोक्षयितुं शक्या-
वेतस्मादिषुबन्धनात् ॥ सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ॥ १४ ॥ यत्कृते चिन्तयानस्य शोकार्तस्य पितुर्मम ॥
अस्पृष्ट्वा शयनं गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ॥ १५ ॥ कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्विवाकुला ॥ सोयं
मूलहरोनर्थः सर्वेषां निहतो मया ॥ १६ ॥ रामस्य लक्ष्मणस्यापि सर्वेषां च वनौकसाम् ॥ विक्रमा निष्फलाः सर्वे
यथा शरदि तोयदाः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा तु तान् सर्वान् राक्षसान् परिपार्श्वतः ॥ यूथपानपि तान् सर्वांस्ताडयामास
रावणिः ॥ १८ ॥ नीलं नवभिराहत्य मैन्दं च द्विविदं तथा ॥ त्रिभिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्तताप प्रवरेषुभिः ॥ १९ ॥ जाम्बवन्तं
महेष्वासो विद्ध्वा बाणेन वक्षसि ॥ हनूमतो वेगवतो विससर्ज शरान् दश ॥ २० ॥ गवाक्षं शरभं चैव द्वावप्यमिततेजसौ
॥ द्वाभ्यां द्वाभ्यां महावेगो विव्याध युधि रावणिः ॥ २१ ॥ गोलाङ्गूलेश्वरं चैव वालिपुत्रमथाङ्गदम्
॥ विव्याध बहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोथ रावणिः ॥ २२ ॥ तान् वानरवरान् भित्त्वा शरैरग्निशिखोपमैः ॥ ननाद बलवांस्तत्र
महासत्त्वः स रावणिः ॥ २३ ॥ तानर्दयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान् ॥ प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदमब्रवीत्
॥ २४ ॥ शरबन्धेन घोरेण मया बद्धौ चमूमुखे ॥ सहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः ॥ २५ ॥

आकुला नदीपक्षे आविलेत्यर्थः । लङ्कापक्षे व्यग्रेत्यर्थः । सर्वेषामस्माकं मूलहरः अनर्थः अनर्थकरो रामः ॥ १६ ॥ रामस्येति ॥ विक्रमाः सेतुबन्धनादयः ॥ १७ ॥ एवमिति ॥ परिपार्श्वतः समीपतः ॥ १८ ॥ नीलमित्यादि ॥ हनूमतः हनूमदर्थमित्यर्थः । सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । गोलाङ्गूलेश्वरं गवाक्षम् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तानिति ॥ स्पष्टः ॥ २३ ॥ तानर्दयित्वेति ॥ स्पष्टः ॥ २४ ॥ शरबन्धेनेति ॥ निशामयत पश्यत ॥ २५ ॥

एवमिति ॥ कूटयोधिनः कपटयोधिनः ॥ २६ ॥ विनेदुश्चेति ॥ स्पष्टः ॥ २७ ॥ निष्पन्दाविति ॥ स्पष्टः ॥ २८ ॥ हर्षेण त्विति ॥ स्पष्टः ॥ २९ ॥ रामलक्ष्मणयोरिति ॥ शरीरे इति प्रत्येकापेक्षया द्विवचनम् । अङ्गानि करादीनि । उपाङ्गानि अङ्गुल्यादीनि । अत्रापि शरैश्चितानीति योज्यम् । दृष्ट्वा स्थित इति सुग्रीवो विशेषणीयः ॥ ३० ॥ तमिति ॥ स्पष्टः ॥३१ ॥ अलमिति ॥ एवंप्रायाणि एवंविधानि । प्रायश्चानशने मृत्यौ तुल्यबाहुल्ययोरपीति विश्वः ।

एवमुक्तास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोधिनः ॥ परं विस्मयमाजग्मुः कर्मणा तेन हर्षिताः ॥२६ ॥ विनेदुश्च महानादान् सर्वतो जलदोपमाः ॥ हतो राम इति ज्ञात्वा रावणिं समपूजयन् ॥२७ ॥ निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत ॥ २८ ॥ हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित्समितिंजयः ॥ प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन् सर्वराक्षसान् ॥ २९ ॥ रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते ॥ सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥ ३० ॥ तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं बिभीषणः ॥ सबाष्पवदनं दीनं शोकव्याकुललोचनम् ॥ ३१ ॥ अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम् ॥ एवंप्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ॥३२॥ सशेषभाग्यतास्माकं यदि वीर भविष्यति ॥ मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ ॥ ३३ ॥ पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर ॥ सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥ ३४ ॥ एवमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना ॥ सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज बिभीषणः ॥३५॥ ततः सलिलमादाय विद्यया परिजप्य च ॥ सुग्रीवनेत्रे धर्मात्मा स ममार्ज बिभीषणः॥३६॥

नैष्ठिकः नियतः ॥ ३२ ॥ सशेषभाग्यतेति ॥ अस्माकं भाग्यशेषं यद्यस्तीत्यर्थः ॥ ३३ ॥ पर्यवस्थापयेति ॥ पर्यवस्थापयात्मानं मनो निश्चलं कुरु । स्वात्मपर्यवस्थापनेन मां च पर्यवस्थापय । धैर्यं कारयेत्यर्थः । पर्यवस्थापने हेतुमाह—सत्येति । मृत्युकृतम् अपमृत्युकृतम् ॥ ३४ ॥ एवमिति ॥ जलक्लिन्नेन जलसिक्तेन ॥ ३५ ॥ एवममाङ्गल्यनिवृत्त्यर्थं श्रान्तिनिवृत्त्यर्थं वा नेत्रे प्रमृज्य राक्षसमायापरिज्ञानेनाप्यस्य धैर्यसंपादनाभिप्रायेण विद्याभिमन्त्रितजलेनापि ममार्जेत्याह—तत इति ॥ विद्यया राक्षसमायादर्शनहेतुमन्त्रेण । परिजप्य अभिमन्त्र्य ॥ ३६ ॥ ॥ ॥

प्रमृज्येति ॥ कालसंप्राप्तं तत्कालोचितम् । असंभ्रमम् अव्याकुलमिति क्रियाविशेषणम् ॥ ३७ ॥ न काल इति ॥ वैक्लव्यम् अधैर्यम् । किं करोमि अतिस्नेह एवं बाधत इत्यत्राह–अतिस्नेहोपीति ॥ ३८ ॥ एवं त्यक्तव्यमुक्त्वा कर्तव्यमुपदिशति–तस्मादिति ॥ वैक्लव्यमिति स्नेहस्याप्युपलक्षणम् । रामपुरोगाणां रामप्रभृतीनाम् । रामशरण्यानामित्यर्थः ॥ ३९ ॥ अथ वेति ॥ संज्ञाविपर्ययः मूर्च्छा यावदनुवर्तते तावद्रक्ष्यतामित्यर्थः ॥ ४० ॥ एवंभूतयोः कथं संज्ञाप्राप्तिस्तत्राह–नैतदिति ॥ एतत् शस्त्रबन्धनम् । रामस्य न किंचन । इदमसत्प्रायम् बाधकं न भवतीत्यर्थः । अतो न मुमूर्षति । मरिष्यतीति

प्रमृज्य वदनं तस्य कपिराजस्य धीमतः ॥ अब्रवीत्कालसंप्राप्तमसंभ्रममिदं वचः ॥ ३७ ॥ न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमनुवर्तितुम् ॥ अतिस्नेहोप्यकालेस्मिन् मरणायोपकल्पते ॥ ३८ ॥ तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम् ॥ हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्त्यताम् ॥ ३९ ॥ अथ वा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः ॥ लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नो व्यपनेष्यतः ॥ ४० ॥ नैतत्किंचन रामस्य न च रामो मुमूर्षति ॥ न ह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥ ४१ ॥ तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् ॥ यावत्कार्याणि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥ ४२ ॥ एते हि फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ॥ कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिसत्तम ॥ ४३ ॥ मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं संप्रहर्षितुम् ॥ त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ॥ ४४ ॥

शङ्का न कर्तव्येत्यर्थः । "आशङ्कायामुपसंख्यानम्" इति म्रियतेः सन् । एतच्च जीवनलिङ्गशरीरसौभाग्येन निश्चीयत इत्याह–नहीति । गतायुषां मृतानाम् या लक्ष्मीः मुखकान्तिः दुर्लभा । सा च एनं न हास्यते । न जहातीत्यर्थः । जीवनानुकूला लक्ष्मीर्दृश्यत इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ तस्मादिति ॥ यावत् यावत्पर्यन्तम् । सर्वाणि कार्याणि कर्तव्यानि पुनः संस्थापयामि । तावत्पर्यन्तमाश्वासयेत्यन्वयः । केचित्तु यावत्कार्याणि यावन्ति कर्तव्यानि तानि सर्वाणीत्याहुः ॥४२॥ पर्यवस्थापनं किमर्थमित्यत्राह–एते हीति ॥ आगतसाध्वसाः प्राप्तभयविकाराः । ते च विकाराः पुलकादयः । प्रकथिताः पलायनार्थं प्रवृत्तकथा इत्यर्थः । संप्रहर्षितुमित्यनन्तरम् अर्हसीत्यध्याहार्यम् । प्रधावन्तम् इन्द्रजिद्भ्रमेणेति भावः । इदमनीकविशेषणम् । गच्छामीति

वाध्याहार्यम् । संप्रहर्षितुं भयान्निवर्त्तयितुमिति यावत् । तदेवाह–त्यजन्त्विति ॥ ४३ ॥४४॥ समाश्वास्य त्विति ॥ समाश्वासयत् नाहमिन्द्रजित्किंतु बिभीषण इति समाश्वासयदित्यर्थः ॥ ४५ ॥ कथासंघट्टनाय पूर्वोक्तमनुवदति–इन्द्रजित्त्विति ॥ ४६ ॥ तत्रेति ॥ रामलक्ष्मणावित्यनन्तरमितिकरणं ज्ञेयम् ॥ ४७ ॥ उत्पपातेति ॥ उत्पपात आसनादिति शेषः ॥ ४८ ॥ पृच्छते चेति ॥ यथावृत्तं वृत्तमनतिक्रम्य । इदमेव विवृणोति–यथा ताविति ॥ ४९ ॥

समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो बिभीषणः ॥ विद्रुतं वानरानीकं तत्समाश्वासयत्पुनः ॥ ४५ ॥ इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ॥ विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ॥ ४६ ॥ तत्र रावणमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४७ ॥ उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ॥ रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ॥ उपाघ्राय स मूर्ध्न्येनं पप्रच्छ प्रीतमानसः ॥ ४८ ॥ पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥ यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ ४९ ॥ स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा श्रुत्वा वचस्तस्य महारथस्य ॥ जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थितं प्रहृष्य वाचाभिननन्द पुत्रम् ॥५०॥ इति श्रीमद्यु०षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

प्रतिप्रविष्टे लङ्कां तु कृतार्थे रावणात्मजे ॥ राघवं परिवार्यार्ता ररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥ हनुमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः ॥ गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ जाम्बवानृषभः स्कन्धो रम्भः शतवलिः पृथुः ॥ २ ॥ व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः ॥ वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः ॥ तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे ॥३॥

स इति ॥ हर्षवेगः हर्षातिशयः तेनानुगतो व्याप्तः अन्तरात्मा मनो यस्य स तथोक्तः । दाशरथेः निमित्तात् । ज्वरं चिन्तासंतापम् । अनया रात्र्या प्रविपद्धतेत्यूचे ॥ ५० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्ड० षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ अथ सीतायै वीरशयनस्थरामलक्ष्मणप्रदर्शनं सप्तचत्वारिंशे–प्रतिप्रविष्ट इत्यादि ॥१॥ ये ररक्षुस्तानाह–हनुमानित्यादिना ॥ २ ॥ अन्यान् वानरानाह–व्यूढानीकाश्चेति ॥ व्यूढानीकाः कृतव्यूहसेनावन्तः । चेष्टत्सु चेष्टमानेषु ॥ ३ ॥ ॥ ॥

रावणश्चेति ॥ स्पष्टः ॥ ४ ॥ राक्षस्य इत्यर्धम् ॥ ५ ॥ ता उवाचेत्यर्धम् ॥६॥ हतावित्यादि ॥ आख्यात कथयत ॥७॥ यदाश्रयादिति ॥ अवष्टब्धा गर्विता । निर्विशङ्का निर्विचारा । निरुद्विग्ना निःशोका । भावे निष्ठा । निरपेक्षा रामः समेष्यतीत्याशारहिता ॥ ८॥९॥ अद्येत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ अन्यां गतिम् चापश्यती । आगमशासनस्यानित्यत्वान्नुमभावः । अन्याम् मत्तोन्याम् । गम्यत इति गतिः प्राप्यम् । विनिवृत्ताशा रामाद्विनिवृत्तभावा ॥

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् ॥ आजुहाव ततः सीतारक्षिणी राक्षसीस्तदा ॥ ४ ॥ राक्षस्यस्त्रिजटा चैव शासनात्समुपस्थिताः ॥ ५ ॥ ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ॥ पुष्पकं च समारोप्य दर्शयध्वं हतौ रणे ॥ ७ ॥ यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठति ॥ सोस्या भर्त्ता सह भ्रात्रा निरस्तो रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली ॥ मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता ॥ ९ ॥ अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणम् ॥ अवेक्ष्य विनिवृत्ताशा चान्यां गतिमपश्यती ॥ निरपेक्षा विशालाक्षी मामुपस्थास्यते स्वयम् ॥ १० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः ॥ राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्र पुष्पकम् ॥ ११ ॥ ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥ अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन् ॥ १२ ॥ तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम् ॥ सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥ १३ ॥ ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ॥ जग्मुर्दर्शयितुं तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ ॥ १४ ॥ रावणोकारयल्लङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ॥ प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः ॥ राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे ॥ १५ ॥

❀रामानुजीयम्❀ अद्येति ॥ अन्यां गतिं चापश्यती । अन्यां मत्तोन्याम् । गम्यत इति गतिः प्राप्यम् । रामरूपं प्रियं प्राप्यमपश्यतीति यावत् । राममवेक्ष्य विनिवृत्ताशा सा स्वयं मामुपस्थास्यत इति संबन्धः ॥ १० ॥ तस्येति ॥ स्पष्टः ॥११॥ तत इति ॥ स्पष्टः ॥ १२ ॥ तामिति ॥ स्पष्टः ॥१३॥ तत इति ॥ त्रिजटया सह सीतामारोप्य । उभयोरेव विमानारोहणमनुज्ञायेत्यर्थः । पुत्रीत्वान्निपुणतया च त्रिजटाया विमानारोहणानुज्ञा॥१४॥ रावण इत्यादि ॥

इन्द्रजिता रण इत्यनन्तरमितिकरणं बोध्यम् ॥१५॥ विमानेनेति ॥ स्पष्टः ॥१६॥ प्रहृष्टेति ॥ स्पष्टः॥१७॥ ततः सीतेत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ विप्रविद्धशरासनौ भ्रष्टचापौ । सायकैच्छिन्नसर्वाङ्गौ अत एव शरस्तम्बमयौ शरगुल्ममयौ । स्तम्बः समूह इत्येके । क्षितौ शरतल्पयोः शयानाविति संबन्धः॥१८॥ ॥ १९ ॥ तावित्यादिश्लोकद्वयम् ॥ पावकी पावकपुत्रौ स्कन्दविशाखौ। अत्रोत्तरो वीरशब्दः कुमारावित्यस्य विशेषणम् ॥ २० ॥२१ ॥ भर्तारमिति॥

विमानेनापि सीता तु गत्वा त्रिजटया सह ॥ ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥ १६ ॥ प्रहृष्टमनसश्चापि
ददर्श पिशिताशनान् ॥ वानरांश्चापि दुःखार्तान् रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १७ ॥ ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ
शरतल्पयोः ॥ लक्ष्मणं चापि रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥ १८ ॥ विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ ॥ सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ
शरस्तम्बमयौ क्षितौ ॥ १९ ॥ तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र वीरौ सा पुरुषर्षभौ ॥ शयानौ पुण्डरीकाक्षौ
कुमाराविव पावकी ॥ २० ॥ शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ ॥ दुःखार्ता सुभृशं सीता सुचिरं विललाप ह ॥
॥ २१ ॥ भर्तारमनवद्याङ्गी लक्ष्मणं चासितेक्षणा ॥ प्रेक्ष्य पांसुषु वेष्टन्तौ रुरोद जनकात्मजा ॥ २२ ॥ सा
बाष्पशोकाभिहता समीक्ष्य तौ भ्रातरौ देवसमप्रभावौ ॥ वितर्कयन्ती निधनं तयोः सा दुःखान्विता वाक्यमिदं
जगाद ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ ॥
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता ॥ १ ॥ ऊचुर्लक्षणिनो
ये मां पुत्रिण्यविधवेति च ॥ तेद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥ ॥ ॥

स्पष्टः ॥२२॥ सेति ॥ अत्र वीक्षणगदनरूपक्रियाभेदात्तच्छन्दद्वयम् ॥२३॥ इति श्रीगो० श्रीरामा० रत्नकिरीटा० युद्ध० सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥ अथ सीताप्रलापोष्टचत्वारिंशे–भर्तारमिति ॥ करुणं यथा तथा विललाप ॥ १ ॥ ऊचुरिति ॥ लक्षणिन इति । लक्षणशब्देनात्र लक्षणज्ञानं लक्ष्यते तदेषामस्तीति लक्षणिनः । षडुत्तरषष्टिलक्षणसामुद्रिकशास्त्रज्ञा इत्यर्थः । षष्टिष्षडुत्तरा योषिदङ्गलक्षणमीरितमित्युक्तेः । अत एवाविधवा वि-

यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिणः ॥ तेद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोनृतवादिनः ॥ ३ ॥ ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम् ॥ तेद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोनृतवादिनः ॥ ४ ॥ वीरपार्थिवपत्नी त्वं ये धन्येति च मां विदुः ॥ तेद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोनृतवादिनः ॥ ५ ॥ इमानि खलु पद्मानि पादयोर्यैः किल स्त्रियः ॥ आधिराज्येभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह ॥ ६ ॥ वैधव्यं यान्ति यैर्नार्यो लक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः ॥ नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥ ७ ॥ ॥

धवालक्षणरहिता । निर्लोमसहृदयं यस्याः सम निम्नत्ववर्जितम् । ऐश्वर्यं चाप्यवैधव्यं प्रियप्रेम च सा लभेत् ॥ इत्युक्तलक्षणेत्यर्थः । पुत्रिणी पुत्रलाभलक्षणवती । दीर्घाङ्गुलिश्च या नारी दीर्घकेशी च या भवेत् । दीर्घमायुरवाप्नोति पुत्रैश्च सह वर्तते ॥ इत्युक्तलक्षणवतीत्यर्थः । ज्ञानिनो लक्षणज्ञानवन्तः । अनृतवादिनः आसन्निति शेषः ॥ २ ॥ यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिण इति ॥ यज्वनः कृताश्वमेधादिकस्य । यज्वा तु विधिनेष्टवानित्यमरः । बहुयजमानकानि गवामयनप्रभृतीनि सत्राणि तत्कर्ता सत्री तस्य महिषीं कृताभिषेकाम् । कृताभिषेका महिषीत्यमरः । पत्नीं यज्ञसंयोगवतीम् । “ पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ” इति पतिशब्दस्य नकारान्तादेशः । ततो “ ऋन्नेभ्यो ङीप् ” इति ङीप् ॥ ३ ॥ ऊचुरिति ॥ संश्रवणे मम सम्यक्श्रवणे । मयि शृण्वन्त्यामित्यर्थः । यद्वा सम्यक् श्रवणमस्मिन्निति संश्रवणः सन्निधिः । मत्सन्निधावित्यर्थः । मात्रादिसमीप इति शेषः । कृतान्तः कालः तद्विदः कार्तान्तिकाः । स्युर्मौहूर्तिकमौहूर्तज्ञानिकार्तान्तिका अपीत्यमरः । शुभां नित्यमङ्गलाम् । स्मितं प्रशस्तं सुदृशामनिमीलितलोचनम् । समवृत्तपुटा नासा लघुच्छिद्रा शुभावह ॥ इत्याद्युक्तलक्षणैरिति शेषः ॥ ४ ॥ वीरेति ॥ त्वं वीरपार्थिवपत्नी धन्या चेति ये विदुः । विदित्वा ऊचुरित्यर्थः । तेप्यनृतवादिन इति पूर्वेणान्वयः ॥ ५ ॥ इमानीति ॥ यैः पद्मैरुपलक्षिताः स्त्रियः आधिराज्येभिषिच्यन्ते किलेत्यैतिह्ये । तानीमानि पद्मानि रेखारूपाणि दृश्यन्त इति शेषः । खल्विति प्रसिद्धौ । स्पष्टं दृश्यन्त इत्यर्थः । कथमेषां निष्फलत्वमिति भावः ॥ ६ ॥ वैधव्यमिति ॥ भाग्यदुर्लभाः दुर्लभभाग्याः नार्यः यैर्लक्षणैर्वैधव्यं यान्ति तानि लक्षणानि पश्यन्ती विमृशन्ती न पश्यामि । कुत्रापि वैधव्यहेतुदुर्लक्षणं न

पश्यामीत्यर्थः। किंतु केवलं हतलक्षणा निष्फललक्षणास्मीत्यर्थः। तादृशलक्षणानि च सामुद्रिकोक्तानि। परस्परं समारूढाः पादाङ्गुल्यो भवन्ति चेत्। हत्वा बहूनपि पतीन् परप्रेष्या तथा भवेत्॥ यस्याः कनिष्ठिका भूमिं न गच्छन्त्याः परिस्पृशेत्। पतिद्वयं निहन्त्याद्या द्वितीया च पतित्रयम्॥ एकरोमा राजपत्नी द्विरोमातिसुखान्विता। त्रिरोमा रोमकूपेषु भवेद्वैधव्यदुःखभागित्यादिना॥ ७॥ सत्येति॥ पदि पदे मा श्रीयेंषां तानि पद्मानीत्येवं सत्यनामानि। पदश्रीकराणीत्यर्थः। यद्वा पद्मावत्त्वात् पद्मशब्दवाच्यानि रेखारूपाणि यानि पद्मानि। सत्यनामानि अन्वर्थनामानि। पद्माशब्दादर्शआद्यचि कृते रूपम्। केचित्सत्यनामानि अमोघफलानीत्याहुः। लक्षणैः ध्वजादिलक्षणैः सह यानि सत्यनामानि पद्मान्युक्तानि तानि मे वितथानि निष्फलानि भवन्तीति योजना॥ ८॥ केशा इत्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया॥ अहं सूक्ष्मकेशत्वादिलक्षणलक्षितास्मि।

सत्यनामानि पद्मानि स्त्रीणामुक्तानि लक्षणैः॥ तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे॥ ८॥ केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंगते मम॥ वृत्ते चारोमशे जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम॥ ९॥ शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू च मे चितौ॥ अनुवृत्तनखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम॥ १०॥ स्तनौ चाविरलौ पीनौ ममेमौ मग्नचूचुकौ॥ मग्ना चोत्सङ्गिनी नाभिः पार्श्वोरस्काश्च मे चिताः॥ ११॥ मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च॥ प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् १२॥

अतो मां शुभलक्षणामूचुरित्यन्वयः। समाः न्यूनाधिक्यरहिताः। असंगते परस्परमसंयुक्ते। अरोमशे रोमरहिते। वृत्ते वर्तुले। अत्र स्कान्दम्—रोमहीने शुभे स्निग्धे यज्जङ्घे क्रमवर्तुले। सा राजपत्नी भवति विशिरे सुमनोहरेति॥ शङ्खे नेत्रोपान्तभूतललाटपार्श्वे। चितौ उपचितौ। एतच्छङ्खे नेत्रे इत्यत्र लिङ्गव्यत्ययेन योजनीयम्। अनुवृत्तनखाः वृत्तनखाः। अङ्गुलयः पादहस्ताङ्गुलयः। तदुक्तं स्कान्दे—स्निग्धाः समुन्नतास्तत्र वृत्ताः पादनखाः शुभा इति। समाः हस्तपरिमाणसदृशाः। नातिदीर्घा नातिह्रस्वा इत्यर्थः। यद्वा एकहस्तवद्धस्तान्तरेपि तुल्यपरिमाणा इत्यर्थः। अन्यूनाधिकसंख्याका इति वार्थः। अविरलौ निरन्तरौ। मग्नचूचुकौ ईषन्मग्नाग्रौ। मग्ना गम्भीरा। उत्सङ्गिनी उन्नतपर्यन्तप्रदेशः। पार्श्वोरस्काः पार्श्वे च उरस्कं च। आर्षो लिङ्गव्यत्ययः। चिताः उचिताः। मणिनिभः मणिवत्स्निग्धवर्णः। प्रतिष्ठितां द्वादशभिः दशभिः पादाङ्गुलिभिः द्वाभ्यां पादतलाभ्यां च भूमौ सुप्रतिष्ठिताम्॥ ९॥ १०॥ ११॥ १२॥ ॥ ॥ ॥

समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत् ॥ मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालक्षणिनो द्विजाः ॥ १३ ॥
आधिराज्येभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह ॥ कृतान्तकुशलैरुक्तं तत्सर्वं वितथीकृतम् ॥ १४ ॥ शोधयित्वा
जनस्थानं प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥ तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे हतौ ॥ १५ ॥ ननु वारुणम्
आग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्यताम् ॥ १६ ॥ अदृश्यमानेन रणे
मायया वासवोपमौ ॥ मम नाथावनाथाया निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥ न हि दृष्टिपथं प्राप्य
राघवस्य रणे रिपुः ॥ जीवन्प्रति निवर्तेत यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥ न कालस्यातिभारोस्ति कृतान्तश्च
सुदुर्जयः ॥ यत्र रामः सह भ्रात्रा शेते युधि निपातितः ॥ १९ ॥ न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं
च महाबलम् ॥ नात्मानं जननीं वापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम् ॥ २० ॥ ॥

समग्रेति ॥ समग्रयवं संपूर्णयवाकाररेखम् । अच्छिद्रं श्लिष्टाङ्गुल्यन्तरालम् । वर्णवत् अरुणवर्णम् । मामूचुरित्यनुषञ्जनीयम् । मन्दस्मितेत्येवेत्येवकारः अयोगव्यवच्छेदार्थः । नित्यमन्दस्मितेत्यर्थः ॥ १३ ॥ आधिराज्य इति ॥ कृतान्तकुशलैः ज्यौतिषिकसिद्धान्तनिपुणैः । अत्र इतिकरणं द्रष्टव्यम् । अभिषेक इत्युक्तमित्यन्वयः । चक्रवर्तिस्त्रियः पाणौ नन्द्यावर्तः प्रदक्षिण इत्याद्युक्तनन्द्यावर्तादिलक्षणैरिति भावः । सर्वं वितथीकृतमित्यतः परं यज्वनो महिषीं ये मामित्यधस्तनश्लोकः केषुचित्कोशेषु दृश्यते । स तु लेखकप्रमादकृतः ॥ १४ ॥ शोधयित्वेति ॥ शोधयित्वा अन्विष्य । प्रवृत्तिं वृत्तान्तम् । गोष्पदे इन्द्रजिन्मायामात्र इति भावः ॥ १५ ॥ नन्विति ॥ ब्रह्मशिरः अस्त्रविशेषः । प्रत्यपद्यतां नन्वित्यन्वयः । परस्मैपदमार्षम् । नन्विति प्रसिद्धौ । आमन्त्रणे वा । प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे नन्वित्यमरः । प्रलापे निर्निमित्तमामन्त्रणं संभवति ॥१६॥ अदृश्यमानेनेति ॥ स्पष्टः ॥१७॥ दृश्यमानत्वे नैवं हन्तुं शक्नुयादित्याह—न हीति ॥ १८ ॥ नेति ॥ शुभाशुभप्रापकस्य कालस्यातिभारो नास्ति । अशक्यार्थो नास्तीत्यर्थः । कृतान्तः दैवम् । यत्र यतः । रामः अतिबलपराक्रमशाल्यपीति भावः ॥ १९ ॥ न शोचामीति ॥ जननीं मन्मातरम् ॥ २० ॥ ॥

उक्तार्थे हेतुमाह–सेति ॥ समाप्तव्रतम् अथ आगतं सराघवं लक्ष्मणं सीतां च कदा द्रक्ष्यामीति अनुचिन्तयत इत्यन्वयः ॥ २१ ॥ परीति ॥ परिदेवयमानां विलपन्तीम् ॥ २२॥ मा विषादमित्यर्धम् ॥ २३ ॥ कारणानीति ॥ इमौ रामलक्ष्मणौ जीवत इति यथा ज्ञातुं शक्यते तथा। महान्ति स्फुटानि। सदृशानि पूर्वानुभूततुल्यानि। दृष्टसंवादानीति यावत्। कारणानि हेतून् वक्ष्यामीत्यन्वयः ॥ २४ ॥ तान्येव कारणानि व्यतिरेकमुखेनाह–न हीति ॥

सानुचिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम् ॥ कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च सराघवम् ॥ २१ ॥ परिदेवयमानां
तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत् ॥ २२ ॥ मा विषादं कृथा देवि भर्तायं तव जीवति ॥ २३ ॥ कारणानि च वक्ष्यामि
महान्ति सदृशानि च ॥ यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥ नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि
च ॥ भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥ २५ ॥ इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः ॥ दिव्यं
त्वां धारयेन्नैवं यद्येतौ गतजीवितौ ॥२६॥ हतवीरप्रधाना हि हतोत्साहा निरुद्यमा ॥ सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव
नौर्जले ॥ २७ ॥ इयं पुनरसंभ्रान्ता निरुद्विग्ना तरस्विनी ॥ सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या निवेदितौ ॥२८॥
सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः ॥ अहतौ पश्य काकुत्स्थौ स्नेहादेतद्ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥ अनृतं नोक्तपूर्वं
मे न च वक्ष्ये कदाचन ॥ चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासि मनो मम ॥ ३० ॥ नेमौ शक्यौ रणे जेतुं सेन्द्रैरपि
सुरासुरैः ॥ तादृशं दर्शनं दृष्ट्वा मया चावेदितं तव ॥ इदं च सुमहच्चिह्नं शनैः पश्यस्व मैथिलि ॥ ३१ ॥ ॥

हर्षेण पर्युत्सुकानि। प्रसन्नानीति यावत् ॥ २५ ॥ इदमिति ॥ स्पष्टः ॥ २६ ॥ हतवीरेति ॥ हतकर्णा हतकर्णधारा ॥ २७ इयमिति ॥ निवेदितौ निवेदितजीवितौ ॥ २८ ॥ सा त्वमित्यादि ॥ अनुमानैः चिह्नैः । सुखोदयैः सुखज्ञेयैरित्यर्थः । चारित्रसुखशीलत्वात्। चरित्रमेव चारित्रं पातिव्रत्यम् तदेव सुखं प्रियं शीलं स्वभावः यस्या सा तस्याः भावश्चारित्रसुखशीलत्वं तस्मात्। यद्वा चारित्रेणाह्लादकस्वभावत्वादित्यर्थः । प्रविष्टासि मनो मम। त्वयि मम स्नेहो वर्तत इत्यर्थः ॥२९॥३०॥ नेमाविति ॥ तादृशं तादृग्विधम्। जीवनव्यञ्जकमिति यावत्। दृश्यते ज्ञायतेनेनेति दर्शनं सैन्यमुखप्रसादा-

दिकम् । पूर्वदृष्टं स्वप्नमिति वार्थः । शनैः पश्यस्व सावधानेन पश्येत्यर्थः ॥ ३१ ॥ निःसंज्ञाविति ॥ न वियुज्यते न जहाति । गतायुषाम् अत एव गतसत्त्वानां गतप्राणानाम् । द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुष्वित्यमरः । वैकृतं विकृतिः ॥ ३२ ॥ त्यजेति ॥ रामलक्ष्मणयोरर्थे शोकं शोककृतं मुखविकारम् । मोहं विपरीतबुद्धिम् । दुःखं मनोव्यथां च त्यज । अजीवितुं न शक्यं जीवितुं शक्यमेवेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ श्रुत्वेति ॥ कृताञ्जलिरित्यनेन

निःसंज्ञावप्युभावेतौ नैव लक्ष्मीर्वियुज्यते ॥ प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ॥ दृश्यमानेषु वक्त्रेषु
परं भवति वैकृतम् ॥ ३२ ॥ त्यज शोकं च मोहं च दुःखं च जनकात्मजे ॥ रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्य-
मजीवितुम् ॥ ३३ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदमेवमस्त्विति मैथिली ॥
॥ ३४ ॥ विमानं पुष्पकं तत्तु सन्निवर्त्य मनोजवम् ॥ दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥ ३५ ॥
ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा ॥ अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥ ३६ ॥ प्रविश्य सीता
बहुवृक्षषण्डां तां राक्षसेन्द्रस्य विहारभूमिम् ॥ संप्रेक्ष्य संचिन्त्य च राजपुत्रौ परं विषादं समुपाजगाम ॥
॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥
घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ ॥ निश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥ सर्वे ते वा-
नरश्रेष्ठाः ससुग्रीवा महाबलाः ॥ परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥ ॥

भगवद्विषयोपदेष्टा योपि कोप्यादरणीय इत्युक्तम् । इदं शब्दाविवरणं एवमस्त्विति ॥ ३४ ॥ विमानमिति ॥ सन्निवर्तने प्रवेशे च त्रिजटैव कर्त्री ॥ ३५ ॥ तत इति ॥ राक्षसीभिरित्यनेन त्रिजटादर्शनायानीतेति गम्यते ॥ ३६ ॥ प्रविश्येति ॥ विहारभूमिं प्रमदावनम् । संप्रेक्ष्य संचिन्त्य । प्रेक्षितप्रकारेण संचिन्त्येत्यर्थः । यद्वा भावनाप्रकर्षात्पुरःस्थितौ संप्रेक्ष्येत्यर्थः ॥ ३७ ॥ इति श्रीगो० श्रीरामा० रत्नकिरी० अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ ॥
अथ रामप्रबोधनमेकोनपञ्चाशे—घोरेणेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ नागौ यथा नागाविव निश्वसन्तावित्यन्वयः । शोकपरिप्लुताः शोकपूर्णाः ॥ १ ॥ २ ॥

एतस्मिन्निति ॥ स्थिरत्वात् धीरत्वात् । सत्त्वयोगाद्बलयोगात् । संदानितोपि बद्धोपि । बद्धे संदानितं मूतमित्यमरः ॥ ३ ॥ तत इति ॥ आर्पितं
शरैरिति शेषः ॥ ४ ॥ किं न्वित्यादिश्लोकद्वयम् ॥ विचिन्वता मयेति शेषः । सचिवः सहायः । साम्परायिकः युद्धे साधुः । युद्धायत्योः सम्परा-
य इत्यमरः ॥ ५ ॥ ६ ॥ परित्यक्ष्यामीति ॥ पञ्चत्वं मृतिम् ॥ ७ ॥ किं न्वित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अहं तं लक्ष्मणं विना अयोध्यां यदा यास्या-

एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान् ॥ स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्च शरैः संदानितोपि सन् ॥ ३ ॥ ततो दृष्ट्वा
सरुधिरं विषण्णं गाढमर्पितम् ॥ भ्रातरं दीनवदनं पर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥ किं नु मे सीतया कार्यं किं कार्यं
जीवितेन वा ॥ शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम् ॥ ५ ॥ शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके
विचिन्वता ॥ न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः सांपरायिकः ॥ ६ ॥ परित्यक्ष्याम्यहं प्राणं वानराणां तु पश्य-
ताम् ॥ यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ७ ॥ किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम् ॥
कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥ विवत्सां वेपमानां च क्रोशन्तीं कुररीमिव ॥ कथमाश्वास-
यिष्यामि यदा यास्यामि तं विना ॥ ९ ॥ कथं वक्ष्यामि शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ॥ १० ॥ मया सह वनं
यातो विना तेन गतः पुनः ॥ उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं बत सुमित्रया ॥ ११ ॥ इहैव देहं त्यक्ष्यामि न हि
जीवितुमुत्सहे ॥ १२ ॥ धिङ् मां दुष्कृतकर्माणमनार्यं यत्कृते ह्यसौ ॥ लक्ष्मणः पतितः शेते शरतल्पे गतासु-
वत् ॥ १३ ॥ त्वं नित्यं स विषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण ॥ गतासुर्नाद्य शक्नोषि मामार्तमभिभाषितुम् ॥ १४ ॥

मि तदा कौसल्यां केकयीं च किं वक्ष्यामि। सुमित्रां कथमाश्वासयिष्यामि ॥ ८ ॥ ९ ॥ कथमित्यर्धम् ॥ यशस्विनमित्यनेन तद्यशो मया न लब्धमिति
खिद्यति ॥ १० ॥ मयेति ॥ यो मया सह वनं यातः तेन विनायोध्यां गतोहं सुमित्रया कृतमुपालम्भम् उक्तप्रकारं सोढुं कथं शक्ष्यामि ॥ ११ ॥ इहैवे-
त्यर्धम् ॥ १२ ॥ धिगिति ॥ दुष्कृतकर्माणं लक्ष्मणवनानयनमेव दुष्कृतं कर्म ॥ १३ ॥ त्वमिति ॥ स त्वमित्यन्वयः ॥ १४ ॥ ॥

येनेति ॥ स्पष्टः ॥ १५ ॥ शयान इति ॥ अयमिति शेषः । अत्र शरतल्पस्थानीयोस्तगिरिः । शरस्थाने किरणाः। शोणितस्थाने रक्तवर्णत्वम् ॥ १६ ॥
बाणेति ॥ रुजा व्यथा । दृष्टिरागेण वीक्षणप्रेम्णा ॥ १७ ॥ यथैवेति ॥ तथैव तेन प्रकारेण । मात्रादिस्नेहमविचार्येत्यर्थः । यमक्षयमित्यत्रापि यान्तमित्यनुषज्यते
॥ १८ ॥ इष्टेति ॥ स्पष्टः ॥ १९ ॥ सुरुष्टेनेति ॥ विप्रियम् अहितम् । सुरुष्टेनापि लक्ष्मणेन श्रावितं विप्रियं परुषं वाक्यम् न स्मरामीत्यर्थः ॥
॥ २०॥ विससर्जेति ॥ यः कार्तवीर्यः । एकेन वेगेन एकप्रयत्नेन । यत्सहस्रबाहुः कार्तवीर्यः । यावता कालेन पञ्चबाणशतानि विससर्ज प्रायुङ्क्त । द्विसु-

येनाद्य निहता युद्धे राक्षसा विनिपातिताः ॥ तस्यामेव क्षितौ वीरः स शेते निहतः परैः ॥ १५ ॥ शयानः शरतल्पेस्मिन्
स्वशोणितपरिप्लुतः ॥ शरजालैश्चितो भाति भास्करोस्तमिव व्रजन् ॥ १६ ॥ बाणाभिहतमर्मत्वान्न शक्नोत्यभिभाषितुम् ॥
रुजा चाब्रुवतोप्यस्य दृष्टिरागेण सूच्यते ॥ १७ ॥ यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः ॥ अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं
यमक्षयम् ॥ १८ ॥ इष्टबन्धुजनो नित्यं मां च नित्यमनुव्रतः ॥ इमामद्य गतोवस्थां ममानार्यस्य दुर्नयैः ॥ १९ ॥ सुरुष्टेनापि
वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे ॥ परुषं विप्रियं वापि श्रावितं न कदाचन ॥ २० ॥ विससर्जैकवेगेन पञ्चबाणशतानि
यः ॥ इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्च लक्ष्मणः ॥ २१ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि यो हन्याच्छक्रस्यापि महात्मनः ॥ सोयमुर्व्यां
हतः शेते महार्हशयनोचितः ॥ २२ ॥ यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां बिभीषणः ॥ तच्च मिथ्या प्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति
न संशयः ॥ २३ ॥ अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमितोऽर्हसि ॥ मत्वा हीनं मया राजन् रावणोभिद्रवेद्बली ॥ २४ ॥

जोप्ययं लक्ष्मणः तावतैव कालेन तावतो बाणान् विसृजन् । इष्वस्त्रेषु विषये तस्मात्कार्तवीर्यादधिक इत्यर्थः ॥२१॥ अस्त्रैरिति ॥ हन्यात् हन्तुं शक्तः ।
शक्ति लिङ् ॥ २२ ॥ यदिति ॥ यत् यस्मात् । बिभीषणो राक्षसानां राजा न कृतः । तस्मात् मिथ्याप्रलप्तम् राजानं त्वां करिष्यामीति मिथ्या प्रलपितं
मां प्रधक्ष्यति । दहतीत्यर्थः । आश्रुतकार्यनिर्वाहाभावेन मिथ्येत्युच्यते । आश्रुतं प्रतिज्ञातम् ॥ २३ ॥ अस्मिन्निति ॥ प्रतियातुं किष्किन्धामिति शेषः
। हीनं त्वामिति शेषः ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अङ्गदमिति ॥ स्पष्टः ॥ २५ ॥ कृतमित्यादिसार्धश्लोकत्रयम् ॥ संपातिना वानरेण ॥२६॥२७॥२८॥ यत्त्विति ॥ वयस्येन मित्रेण । सुहृदा च शोभनहृदयेन वा । चशब्दो वाशब्दार्थकः । धर्मभीरुणा धर्मो नश्यतीति भीरुणेत्यर्थः । अधर्मभीरुणेति वा पदच्छेदः ॥२९॥ मित्रेति॥३०॥ शुश्रुवुरिति॥ वर्तयांचक्रुः प्रवर्तयांचक्रुः । कृष्णेतरेक्षणाः रक्तेक्षणा इत्यर्थः ॥३१॥ तत इत्यादिश्लोकद्वयम् ॥३२॥३३॥ इति श्रीगो० श्रीरामा० रत्नकि० युद्ध० एको० सर्गः ॥४९॥

अङ्गदं तु पुरस्कृत्य ससैन्यः ससुहृज्जनः ॥ सागरं तर सुग्रीव नीलेन च नलेन च ॥ २५ ॥ कृतं हनुमता कार्यं यदन्यैर्दुष्करं रणे ॥ ऋक्षराजेन तुष्यामि गोलाङ्गूलाधिपेन च ॥ २६ ॥ अङ्गदेन कृतं कर्म मैन्देन द्विविदेन च ॥ युद्धं केसरिणा संख्ये घोरं संपातिना कृतम् ॥ २७ ॥ गवयेन गवाक्षेण शरभेण गजेन च ॥ अन्यैश्च हरिभिर्युद्धं मदर्थे त्यक्तजीवितैः ॥ न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः ॥ २८ ॥ यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा च परंतप ॥ कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवता धर्मभीरुणा ॥ २९ ॥ मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ॥ अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ॥ ३० ॥ शुश्रुवुस्तस्य ते सर्वे वानराः परिदेवनम् ॥ वर्तयाञ्चक्रुरश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः ॥ ३१ ॥ ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा बिभीषणः ॥ आजगाम गदापाणिस्त्वरितो यत्र राघवः ॥३२॥ तं दृष्ट्वा त्वरितं यान्तं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ वानरा दुद्रुवुः सर्वे मन्यमानास्तु रावणिम् ॥ (निश्चेष्टौ विगतज्ञानौ रणरेणुसमुत्क्षितौ ॥ शयानौ शरतल्पस्थौ द्रष्टुमायाद्विभीषणः ॥ तं राक्षसेन्द्रात्मजशङ्कया ते निपातितौ राजसुतौ च दृष्ट्वा ॥ बिभीषणं विव्यथिरे च दृष्ट्वा मेघा यथा वायुहताः प्लवङ्गमाः)॥३३॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

अथोवाच महातेजा हरिराजो महाबलः ॥ किमियं व्यथिता सेना मूढवातेव नौर्जले ॥ १ ॥ ॥

अथ रामस्य नागपाशविमोचनं पञ्चाशे–अथोवाचेत्यादि ॥ तादात्विकसेनापलायननिमित्तमजानानः पृच्छति–किमिति । किं किमर्थम् । उवाच वानरानिति शेषः । मूढः मूर्च्छितः । विरुद्धदिग्वाय्वन्तराभिहत इत्यर्थः । वात्याहतेति यावत् ॥ १ ॥ ॥ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा वालिपुत्रोङ्गदोब्रवीत् ॥ २ ॥ न त्वं पश्यसि रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ शरजालाचितौ वीरावुभौ दशरथात्मजौ ॥ शरतल्पे महात्मानौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ ३ ॥ अथाब्रवीद्वानरेन्द्रः सुग्रीवः पुत्रमङ्गदम् ॥ नानिमित्तमिदं मन्ये भवितव्यं भयेन तु ॥ ४ ॥ विषण्णवदना ह्येते त्यक्तप्रहरणा दिशः ॥ प्रपलायन्ति हरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥ अन्योन्यस्य न लज्जन्ते न निरीक्षन्ति पृष्ठतः ॥ विप्रकर्षन्ति चान्योन्यं पतितं लङ्घयन्ति च ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो गदापाणिर्बिभीषणः ॥ सुग्रीवं वर्धयामास राघवं च निरैक्षत ॥ ७ ॥ बिभीषणं तं सुग्रीवो दृष्ट्वा वानरभीषणम् ॥ ऋक्षराजं समीपस्थं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ ८ ॥ बिभीषणोयं संप्राप्तो यं दृष्ट्वा वानरर्षभाः ॥ विद्रवन्ति परित्रस्ता रावणात्मजशङ्कया ॥ ९ ॥ शीघ्रमेतान् सुसंत्रस्तान् बहुधा विप्रधावितान् ॥ पर्यवस्थापयाख्याहि बिभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥ सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु जाम्बवानृक्षपार्थिवः ॥ वानरान् सान्त्वयामास सन्निरुध्य प्रधावतः ॥ ११ ॥ ते निवृत्ताः पुनः सर्वे वानरास्त्यक्तसंभ्रमाः ॥ ऋक्षराजवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा बिभीषणम् ॥ १२ ॥ बिभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम् ॥ लक्ष्मणस्य च धर्मात्मा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे प्रमृज्य च ॥ शोकसंपीडितमना रुरोद विललाप च ॥ १४ ॥ इमौ तौ सत्त्वसंपन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ ॥ इमामवस्थां गमितौ राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥ १५ ॥ ॥

सुग्रीवस्येत्यर्धम् ॥ २ ॥ रामव्यथां विना किमन्यन्निमित्तमित्युत्तरयति—न त्वमिति ॥ अत्र काकुः । त्वं न पश्यसि किमित्यर्थः । रामं लक्ष्मणं चेत्युभावित्यन्वयः ॥ ३ ॥ स्वयमुद्घाटयति—अथेत्यादिना ॥ इदं रघुसिंहयोः शरतल्पशयनम् अनिमित्तं न भवतीति मन्ये । अन्येन भयनिमित्तेन भवितव्यमित्यर्थः । तत्र हेतुमाह—विषण्णेत्यादिना ॥ त्यक्तप्रहरणाः त्यक्तशिलाद्यायुधाः । अन्योन्यस्य अन्योन्यम् । विप्रकर्षन्ति द्रुतगमनार्थमाकर्षन्ति॥४॥ ॥५॥६॥ एतस्मिन्निति ॥ स्पष्टः॥७॥बिभीषणमिति ॥ स्पष्टः॥८॥बिभीषणोयमिति ॥ विप्रधावितान् पलायमानान्॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥

भ्रातुरिति ॥ दुष्पुत्रेण कपटयुद्धेन पितुरवद्यावहेन । चालितौ वञ्चितौ । ऋजुविक्रमौ अकपटविक्रमौ ॥ १६ ॥ शरैरिति ॥ सुप्तौ सुप्तसदृशौ । शल्यकौ कण्टकिवराहौ ॥ १७ ॥ ययोरित्यादिचतुःश्लोकी ॥ अत्र वक्तव्यं सर्वमभयप्रदाने दर्शितम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ न रुजेति ॥ न रुजापीडितौ

भ्रातुः पुत्रेण मे तेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना ॥ राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या चालितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥ शरैरिमावलं विद्धौ रुधिरेण समुक्षितौ ॥ वसुधायामिमौ सुप्तौ दृश्येते शल्यकाविव ॥ १७ ॥ ययोर्वीर्यमुपाश्रित्य प्रतिष्ठा काङ्क्षिता मया ॥ तावुभौ देहनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषर्षभौ ॥ १८ ॥ जीवन्नद्य विपन्नोस्मि नष्टराज्यमनोरथः ॥ प्राप्तप्रतिज्ञश्च रिपुः सकामो रावणः कृतः ॥ १९ ॥ एवं विलपमानं तं परिष्वज्य बिभीषणम् ॥ सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नो हरिराजोब्रवीदिदम् ॥ २० ॥ राज्यं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ लङ्कायां नात्र संशयः ॥ रावणः सह पुत्रेण सकामं नेह लप्स्यते ॥ २१ ॥ न रुजापीडितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ ॥ त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥ २२ ॥ तमेनं सान्त्वयित्वा तु समाश्वास्य च राक्षसम् ॥ सुषेणं श्वशुरं पार्श्वे सुग्रीवस्तमुवाच ह ॥ २३ ॥ सह शूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिन्दमौ ॥ गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥ अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सहबान्धवम् ॥ मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम् ॥ श्रुत्वैतद्वानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥ दैवासुरं महद्युद्धमनुभूतं सुदारुणम् ॥ तदा स्म दानवा देवान् शरसंस्पर्शकोविदाः ॥ २६ ॥ निजघ्नुः शस्त्रविदुषश्छादयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥

इयं रुजा अनयोरात्यन्तिकहानिकरी न भवति । किंतु मोहमात्रकारिणीत्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ दैवासुरमिति ॥ अनुभूतं मया ज्ञातम् । शरसंस्पर्शकोविदाः शरप्रयोगसमर्थाः । स्पर्शो दानमिति पर्यायः ॥ २६ ॥ २७ ॥

तानिति ॥ मन्त्रयुक्ताभिः मन्त्रप्रचुराभिः । विद्याभिर्मृतसंजीविनीप्रभृतिभिः । चिकित्सति अचिकित्सत् ॥ २८ ॥ तान्यौषधानीत्यादिसार्धश्लोकः ॥ स्पष्टः ॥ २९ ॥ संजीवकरणीमित्यर्धमेकं वाक्यम् ॥ अत्रानयितुं यान्त्वित्यनुषज्यते । पूर्वोक्तक्षीरोदमध्ये संजीवकरणीं विशल्यां चानयितुं यान्त्वित्यर्थः । तयोरेवात्रोपयोगादिति भावः ॥ ३० ॥ ते कुत्र विद्येते इत्यत्राह—चन्द्रश्चेत्यादिना ॥ सागरोत्तमे क्षीरोदे यत्र प्रदेशे अमृतं मथितं तत्र चन्द्रद्रोणाख्यौ पर्वतौ स्तः तयोस्ते महौषधी स्त इत्यर्थः । तत्रावस्थाने हेतुमाह—ते तत्रेति । पर्वते पर्वतयोः जात्येकवचनम् ॥ ३१ ॥ अयमित्यर्धम् ॥

तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च परासूंश्च बृहस्पतिः ॥ विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २८ ॥ तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् ॥ जवेन वानराः शीघ्रं संपातिपनसादयः ॥ हरयस्तु विजानन्ति पार्वतीस्ता महौषधीः ॥ २९ ॥ संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥ चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे ॥ अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी ॥ ते तत्र निहिते देवैः पर्वते परमौषधी ॥ ३१ ॥ अयं वायुसुतो राजन् हनुमांस्तत्र गच्छतु ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मेघांश्चापि सविद्युतः ॥ पर्यस्यन् सागरे तोयं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ३३ ॥ महता पक्षवातेन सर्वद्वीपमहाद्रुमाः ॥ निपेतुर्भिन्नविटपाः समूला लवणाम्भसि ॥ ३४ ॥ अभवन् पन्नगास्त्रस्ता भोगिनस्तत्रवासिनः ॥ शीघ्रं सर्वाणि यादांसि जग्मुश्च लवणार्णवम् ॥ ३५ ॥ ततो मुहूर्ताद्गरुडं वैनतेयं महाबलम् ॥ वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३६ ॥ ॥ ॥

औषध्यन्तरानयने पनसादयो गच्छन्तु । संजीवविशल्यानयने तु हनुमान् गच्छत्विति विज्ञेयम् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्निति ॥ मेघान् सागरतोयं च पर्यस्यन् पर्वतान् कम्पयन्निव गरुडपक्षवायुरुदभूदिति शेषः । सर्वद्वीपमहाद्रुमाः । सर्वपदं द्रुमविशेषणम् । द्वीपं च लङ्का । लवणाम्भसि लवणसमुद्रे ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अभवन्निति ॥ भोगिनः प्रशस्तकायाः । तत्रवासिनः लङ्काद्वीपवासिनः । यादांसि जलजन्तवश्च । लवणार्णवं लवणार्णवमध्यम् । भयादन्तर्मग्ना इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वैनतेयेनेति ॥ व्रणाः क्षतानि । संरुरुहुः संरूढाः । अज्ञातस्वरूपा बभूवुरित्यर्थः ॥ ३९ ॥ तेज इति ॥ तेजः पराभिभवनसामर्थ्यम् । पराधिक्षेपासहनं वा । वीर्यं पराक्रमः । बलं शारीरम् । ओजः कान्तिः । उत्साहः लोकोत्तरकार्येषु स्थिरतरप्रयत्नः । दर्शनं सूक्ष्मार्थपरिज्ञानम् । बुद्धिः विवेकः । स्मृतिः अनुभूतार्थाविस्मरणम् । एतत् सर्वं द्विगुणम् वैनतेयसंस्पर्शवशात् पूर्वतोप्यधिकं जातमित्यर्थः । अत्र धीरिति गायत्र्याः सप्तदशाक्षरम् ।

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः ॥ यैस्तौ सत्पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलौ ॥ ३७॥ ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ दृष्ट्वा प्रत्यभिनन्दितः ॥ विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥ ३८ ॥ वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ॥ सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ ३९ ॥ तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणः ॥ प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणं तयोः ॥ ४० ॥ तावुत्थाप्य महावीर्यौ गरुडो वासवोपमौ ॥ उभौ तौ सस्वजे हृष्टौ रामश्चैनमुवाच ह ॥ ४१ ॥ भवत्प्रसादाद्व्यसनं रावणिप्रभवं महत् ॥ आवामिह व्यतिक्रान्तौ पूर्ववद्बलिनौ कृतौ ॥ ४२ ॥ यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् ॥ तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥ ४३ ॥ को भवान् रूपसंपन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥ तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः ॥ पतत्त्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणः ॥ ४५ ॥ अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ गरुत्मानिह संप्राप्तो युवाभ्यां साह्यकारणात् ॥ ४६ ॥ असुरा वा महावीर्या दानवा वा महाबलाः ॥ सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ४७ ॥ नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ॥ मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा॥ ॥ ४८ ॥ एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्रा विषोल्बणाः ॥ रक्षोमायाप्रभावेन शरा भूत्वा त्वदाश्रिताः ॥ ४९ ॥

षोडशसहस्रश्लोका गताः ॥ ४० ॥ ताविति ॥ क्रियाभेदात्तच्छन्दद्वयम् ॥ ४१ ॥ भवदिति ॥ व्यतिक्रान्तौ लङ्घितवन्तौ । गत्यर्थत्वात् कर्तरि क्तः ॥ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ को भवानिति ॥ विरजे निर्मले ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अहमिति ॥ सखा वाहनत्वेन सहाय इति गूढोक्तिः । युवाभ्यां युवयोः । षष्ठ्यर्थे तृतीया । साह्यकारणात्साहाय्यार्थम् ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ एत इति ॥ काद्रवेयाः कद्रूपुत्राः । मायाबलात् आश्चर्यशक्तिरूपबलात् ॥ ४९ ॥

॥५०॥ इममिति ॥ सहसा जवेन॥५१॥ मोक्षिताविति ॥ अप्रमादश्च कर्तव्य इति। तत्तदस्त्रानुगुणप्रत्यस्त्रप्रयोगेषु सावधानाभ्यां भवितव्यमित्यर्थः॥५२॥ प्रकृत्येत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ एतेनैवोपमानेनेति। अनेन दृष्टान्तेन राक्षसा जिह्मा ज्ञेया इत्यर्थः॥५३॥५४॥५५॥ सख इति ॥ रिपूणामपि वत्सलेत्यनेन इन्द्रजिद्वधोपायो न ज्ञात इति द्योत्यते ॥ ५६ ॥ अहं सखा ते काकुत्स्थेत्यादिनोक्तं सखित्वं कथमिति रामाशयमाशङ्क्य रहस्यत्वादिदानीं तद्विषय-

सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना ॥ ५० ॥ इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणोहमागतः ॥ सहसा युवयोः स्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥ ५१ ॥ मोक्षितौ च महाघोरादस्मात्सायकबन्धनात् ॥ अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥ ५२ ॥ प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ॥ शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥ ५३ ॥ तन्न विश्वसितव्यं वो राक्षसानां रणाजिरे ॥ एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥ ५४ ॥ एवमुक्त्वा ततो रामं सुपर्णः सुमहाबलः ॥ परिष्वज्य सुहृत्स्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥ सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथागतम् ॥ ५६ ॥ न च कौतूहलं कार्यं सखित्वं प्रति राघव ॥ कृतकर्मा रणे वीरः सखित्वमनुवेत्स्यसि ॥ ५७ ॥ बालवृद्धावशेषां तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः ॥ रावणं च रिपुं हत्वा सीतां समुपलप्स्यसे ॥ ५८ ॥ इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः ॥ रामं च विरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥ ५९ ॥ प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् ॥ जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥ ६० ॥ विरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ॥ सिंहनादांस्तदा नेदुर्लाङ्गूलान् दुधुवुस्तदा ॥ ६१ ॥

प्रश्नो न कर्तव्यः रावणवधानन्तरं स्वयमेव ज्ञास्यसीत्याह—न चेति ॥ सखित्वं प्रति सखित्वप्रश्नं प्रतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥ रामस्योत्साहवर्धनाय भाविनमर्थं कथयति—बालेत्यादिना ॥ शरोर्मिभिः शरपरम्पराभिः ॥५८॥ इत्येवमिति ॥ शीघ्रविक्रमः शीघ्रगतिः । क्रियाभेदेन सुपर्णपदद्वयान्वयः ॥५९॥६०॥ विरुजाविति ॥ सिंहनादं नेदुः सिंहनादं चक्रुरित्यर्थः । दुधुवुः अकम्पयन् ॥ ६१ ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ यथापुरं यथापूर्वम् । ननु, पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् । अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामित्युक्तनिरवधिकशक्तिसम्पन्नः
सर्वज्ञो रामः कथमज्ञ इवाशक्त इवेन्द्रजिता हतो लोहिताक्तो भूमौ स्थित इवाभावयत् । उच्यते । लोके समाचारप्रवर्तनायैवं स्थितः । इन्द्रजि-
त्पराजयेन ह्ययमर्थोंवगम्यते । शुचीनां शुद्धभावानामृजूनां प्राणसन्देहदायिविपद्यपि न विनाशः । विपरीतानां पापिष्ठानां तु करतलगतापि कार्य-
सिद्धिर्विगलति । अतः शुचित्वार्जवादिगुणयुक्तैः पुम्भिर्भवितव्यमिति सतां धर्मनिश्चयप्रतिपत्तिर्जायते । ननु रावणवधार्थं दैवतैरर्थितो हि विष्णू रा-

ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्चाप्यनादयन् ॥ दध्मुः शङ्खान् संप्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम् ॥ ६२ ॥
आस्फोट्यास्फोट्य विक्रान्ता वानरा नगयोधिनः ॥ द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः ॥ ६३ ॥
विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान् ॥ लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥ ६४ ॥ त-
तस्तु भीमस्तुमुलो निनादो बभूव शाखामृगयूथपानाम् ॥ क्षये निदाघस्य यथा घनानां नादः सुभीमो
नदतां निशीथे ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ॥
तेषां सुतुमुलं शब्दं वानराणां तरस्विनाम् ॥ नदतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥ १ ॥ स्निग्धग-
म्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा स निनदं भृशम् ॥ सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ ॥

मत्वेनावतीर्णः । सत्यं, दुष्कृद्विनाशवद्धर्मसंस्थापनमपि ह्यवतारप्रयोजनम् । रावणवधमात्रस्य प्रयोजनत्वे ह्येतावान् प्रयासो व्यर्थः स्यात् । अत
एवोक्तम्—चातुर्वर्ण्यं च लोकेस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यतीति । नच धर्मोंपदेशमात्रेण तत्सिद्धिः । तादृशोपदेशस्य श्रुतिस्मृतिभिरेव कृतत्वात् ।
स्वाचारमुखेन धर्मप्रवचनाय हि मानुषभावना च कृता । अतः स्वाचारमुखेन धर्मप्रवर्तनमित्यादिप्रबन्धादावेवोक्तम् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥
इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ॥
अथ धूम्राक्षनिर्गम एकपञ्चाशे—तेषामित्यादि ॥ राक्षसैः सह शुश्रावेत्यन्वयः ॥ १ ॥ स्निग्धेति ॥ निर्घोषः ध्वनिः ॥ २ ॥ ॥

यथासावित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ यथा येन प्रकारेण । सुमहानादः समुत्थितः ततः एतेषां सुमहती प्रीतिः । अस्तीति शेषः ॥ ३ ॥ तथा हीत्यर्धम् ॥ तथा प्रसिद्धप्रकारः ॥ ४ ॥ तौ त्विति ॥ तुशब्दश्चार्थः । तौ च बद्धौ नादश्च श्रूयते । स च प्रकृतविरुद्धो नादः । शङ्कां

यथासौ संप्रहृष्टानां वानराणां समुत्थितः॥ बहूनां सुमहानादो मेघानामिव गर्जताम् ॥ व्यक्तं सुमहती प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः ॥ ३ ॥ तथा हि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे वरुणालयः ॥ ४ ॥ तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥ ५ ॥ एतत्तु वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः ॥ उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥ ६ ॥ ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां वनचारिणाम् ॥ शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥ तथोक्तास्तेन संभ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य ते ॥ ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥ ८ ॥ तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ ॥ समुत्थितौ महावेगौ विषेदुः प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥ ९ ॥ संत्रस्तहृदयाः सर्वे प्राकारादवरुह्य ते ॥ विषण्णवदना घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः ॥ १० ॥ तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य निशाचराः ॥ कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ११ ॥ यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ ॥ ॥ १२ ॥ विमुक्तौ शरबन्धेन तौ दृश्येते रणाजिरे ॥ पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विषण्णवदनोब्रवीत् ॥ १४ ॥ घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौ शरैराशीविषोपमैः ॥ अमोघैः सूर्यसंकाशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥ १५ ॥ ॥ ॥

राजपुत्रयोः शरबन्धापगमशङ्काम् जनयतीव । इवशब्दः संभावनायाम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ज्ञायतामिति ॥ उत्थितं हर्षकारणं ज्ञायतामित्यन्वयः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ संत्रस्तेति ॥ उपस्थिताः प्राप्ताः ॥ १० ॥ तदप्रियमित्यादि ॥ यौ तौ । यावित्यर्थः । पाशानिति । पाशान् छित्त्वा स्थितौ गजाविव भासमानावित्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ घोरैरित्यादि ॥ दत्तवरैः वरदत्तैः । प्रमथ्य बलात्कृत्य । बद्धौ अभूतामिति शेषः । संशयस्थं प्राणसंशयस्थम् ।

आदत्तम् आत्तम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ बलेनेति ॥ त्वं वधायाभिनिर्याहीत्यमङ्गलसूचकं वचः ॥ १९ ॥ २० ॥ अभिनिष्क्रम्येति ॥ द्वारमभिनिष्क्रम्य द्वारान्निष्क्रम्य । युयुत्सतः ममेति शेषः । किं चिरेण किं विलम्बेन॥२१॥धूम्राक्षेति ॥ रावणस्याज्ञया रावणाज्ञाकृतं धूम्राक्षवचनं श्रुत्वेत्य-

तदस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम ॥ संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम् ॥ १६ ॥ निष्फलाः खलु संवृत्ताः शरा वासुकितेजसः ॥ आदत्तं यैः सुसंग्रामे रिपूणां मम जीवितम् ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ अब्रवीद्रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥ १८ ॥ बलेन महता युक्तो रक्षसां भीमविक्रम ॥ त्वं वधायाभिनिर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता ॥ कृत्वा प्रणामं संहृष्टो निर्जगाम नृपालयात् ॥ २० ॥ अभिनिष्क्रम्य तद्द्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह ॥ त्वरयस्व बलं तूर्णं किं चिरेण युयुत्सतः ॥ २१ ॥ धूम्राक्षवचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः ॥ बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया द्रुतम् ॥ २२ ॥ ते बद्धघण्टा बलिनो घोररूपा निशाचराः ॥ विगर्जमानाः संहृष्टा धूम्राक्षं पर्यवारयन् ॥ विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः ॥ २३ ॥ गदाभिः पट्टिशैर्दण्डैरयसैर्मुसलैर्भृशम् ॥ २४ ॥ परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः प्रासैः परश्वधैः ॥ निर्ययू राक्षसा दिग्भ्यो नर्दन्तो जलदा यथा ॥२५॥ रथैः कवचिनस्त्वन्ये ध्वजैश्च समलंकृतैः ॥ सुवर्णजालविहितैः खरैश्च विविधाननैः ॥ २६ ॥ हयैः परमशीघ्रैश्च गजेन्द्रैश्च मदोत्कटैः ॥ निर्ययू राक्षसव्याघ्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥ २७ ॥ वृकसिंहमुखैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ॥ आरुरोह रथं दिव्यं धूम्राक्षः खरनिःस्वनः ॥ २८ ॥ ॥

र्थः ॥ २२ ॥ त इति ॥ बद्धघण्टाः शूरत्वज्ञापनाय कटिबद्धघण्टा इत्यर्थः । ते पूर्वोक्तसेनास्थाः । विविधेति । आयुधानि शूलादिभिन्नानि । अस्यार्धस्य पूर्वेणान्वयः ॥२३॥ गदाभिरित्यादि ॥ गदा प्रसिद्धा । पट्टिशः दण्डविशेषः । परिघः भिन्दिपालः । भल्लः अयोमयः शरः । प्रासैः परश्वधैः । दिग्भ्यो जलदा इवेत्यन्वयः ॥ २४ ॥ २५ ॥ रथैरिति ॥ अन्ये कवचिनः । ध्वजैः विविधाननैः खरैश्च समलङ्कृतै रथैर्निर्ययुः । अन्ये हयैः अन्ये गजैश्च निर्ययु-

रित्यन्वयः ॥२६॥२७॥२८॥२९॥ प्रयान्तमिति ॥ शकुनाः निमित्तसूचकाः पक्षिणः ॥ ३० ॥ रथशीर्ष इति ॥ कुणपाशनाः गृध्राः ग्रथिताः मिलिताः ॥ ३१ ॥ रुधिरेति ॥ विस्वरमिति क्रियाविशेषणम् ॥३२॥ ववर्षेत्यादि ॥ देवः पर्जन्यः । प्रतिलोमं प्रतिकूलम् ॥३३॥३४॥३५॥ मुमुहुरित्यर्धम् ॥ पुरः-

स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः ॥ प्रहसन् पश्चिमद्वारं हनूमान्यत्र यूथपः ॥ रथप्रवरमास्थाय खरयुक्तं खरस्वनम् ॥ २९ ॥ प्रयान्तं तु महाघोरं राक्षसं भीमविक्रमम् ॥ अन्तरिक्षगता घोराः शकुनाः प्रत्यवारयन् ॥ ३० ॥ रथशीर्षे महान् भीमो गृध्रश्च निपपात ह ॥ ध्वजाग्रे ग्रथिताश्चैव निपेतुः कुणपाशनाः ॥ ३१ ॥ रुधिरार्द्रो महान् श्वेतः कबन्धः पतितो भुवि ॥ विस्वरं चोत्सृजन्नादं धूम्राक्षस्य समीपतः ॥ ३२ ॥ ववर्ष रुधिरं देवः संचचाल च मेदिनी ॥ प्रतिलोमं ववौ वायुर्निर्घातसमनिःस्वनः ॥ ३३ ॥ तिमिरौघावृतास्तत्र दिशश्च न चकाशिरे ॥ ३४ ॥ स तूत्पातांस्तदा दृष्ट्वा राक्षसानां भयावहान् ॥ प्रादुर्भूतान् सुघोरांश्च धूम्राक्षो व्यथितोभवत् ॥ ३५ ॥ मुमुहू राक्षसाः सर्वे धूम्राक्षस्य पुरःसराः ॥ ३६ ॥ ततः सुभीमो बहुभिर्निशाचरैर्वृतोभिनिष्क्रम्य रणोत्सुको बली ॥ ददर्श तां राघवबाहुपालितां महौघकल्पां बहुवानरीं चमूम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् ॥ विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥ तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥ अन्योन्यं पादपैर्घोरं निघ्नतां शूलमुद्गरैः ॥ २ ॥ ॥ ॥

सराः अग्रगाः ॥ ३६ ॥ तत इति ॥ अभिनिष्क्रम्य पुरादिति शेषः । महौघकल्पां महानोघो अस्मिन्निति महौघः सागरः तत्कल्पाम् । बहुवानरीम् ङीबत्रार्षः । द्वितीयायां प्रातर्धूम्राक्षनिर्गमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धका० एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

अथ धूम्राक्षवधो द्विपञ्चाशे–धूम्राक्षमित्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥

घोरैरिति ॥ संहतैः संगतैः । राक्षसविशेषणमेतत् ॥ ३ ॥ वानरैरित्यादि ॥ समीकृताः पातिताः । घोरसंकाशैः घोरकालाग्न्यादितुल्यैः । अजिह्मगैः अवक्रगैः । कङ्कपत्रैः कङ्कपत्राण्येव पत्राणि येषां ते कङ्कपत्राः तैः ॥ ४ ॥ त इति ॥ जनितोद्धर्षा जनितोत्साहाः ॥ ५ ॥ ६ ॥ शरेति ॥ शूलनिर्भिन्न-

घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि संहतैः ॥ राक्षसैर्वानरा घोरैर्विनिकृत्ताः समन्ततः ॥ ३ ॥ वानरै राक्षसाश्चापि द्रुमैर्भूमौ
समीकृताः ॥ राक्षसाश्चापि संक्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः ॥ विव्यधुर्घोरसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः॥ ४ ॥
ते गदाभिश्च भीमाभिः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः ॥ ५ ॥ विदार्यमाणा रक्षोभिर्वानरास्ते महाबलाः ॥ अमर्षाज्जनितोद्धर्षा-
श्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ६ ॥ शरनिर्भिन्नगात्रास्ते शूलनिर्भिन्नदेहिनः ॥ जगृहुस्ते द्रुमांस्तत्र शिलाश्च हरियूथपाः
॥ ७ ॥ ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः ॥ ममन्थू राक्षसान् भीमान्नामानि च बभाषिरे ॥ ८ ॥
तद्बभूवाद्भुतं घोरं युद्धं वानररक्षसाम् ॥ शिलाभिर्विविधाभिश्च बह्वीभिश्चैव पादपैः ॥ ९ ॥ राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः॥
ववमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः॥१०॥पार्श्वेषु दारिताः केचित् केचिद्राशीकृता द्रुमैः॥
शिलाभिश्चूर्णिताः केचित् केचिद्दन्तैर्विदारिताः॥११॥ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैः खरैश्च विनिपातितैः॥ रथैर्विध्वंसितैश्चापि
पतितै रजनीचरैः ॥ १२ ॥ गजेन्द्रैः पर्वताकारैः पर्वताग्रैर्वनौकसाम् ॥ मथितैर्वाजिभिः कीर्णं सारोहैर्वसुधातलम्
॥ १३ ॥ वानरैर्भीमविक्रान्तैराप्लुत्याप्लुत्य वेगितैः ॥ राक्षसाः करजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषु विनिकर्तिताः ॥ १४ ॥
विवर्णवदना भूयो विप्रकीर्णशिरोरुहाः ॥ मूढाः शोणितगन्धेन निपेतुर्धरणीतले ॥ १५ ॥ ॥

देहिनः । कर्मधारयादिनिरार्षः ॥७॥ त इति ॥ नामानि स्वनामानि ॥८॥९॥१०॥११॥ ध्वजैरिति ॥ वनौकसां पर्वताग्रैः वानरप्रेरितपर्वताग्रैः । तैर्मथितैः गजेन्द्रैः । सारोहैः साधिष्ठातृभिः । वसुधातलं कीर्णमभूत् ॥ १२ ॥ १३ ॥ वानरैरित्यादि ॥ भीमविक्रान्तैः भीमविक्रमैः । वेगितैः संजातवेगैः । वानरैः कर्तृभिः । करजैः नखैः करणैः । आक्रम्याक्रम्य मुखेषु विनिकर्तिताः खण्डिताः । मूढाः मूर्च्छिताः ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥

अन्य इति ॥ तलैरेवाभिधावन्ति । हस्ततलान्येवायुधस्थाने कृत्वा अभ्यधावन्नित्यर्थः ॥१६॥ वानरैरिति ॥ अवपोथिताः हिंसिताः । "व्यथ, हिंसायाम्" इति धातुः ॥१७॥ सैन्यं त्विति ॥ कदनं हिंसनम् ॥१८॥ प्रासैरित्यादिचतुःश्लोकी ॥ विह्वलन्तः विवशाः । गतासवः अभवन्निति शेषः । अन्त्रैर्विनिःसृ-

अन्ये परमसंक्रुद्धा राक्षसा भीमनिःस्वनाः ॥ तलैरेवाभिधावन्ति वज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥ १६ ॥ वानरैरापतन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः ॥ मुष्टिभिश्चरणैर्दन्तैः पादपैश्चावपोथिताः ॥ वानरैर्हन्यमानास्ते राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥ १७ ॥ सैन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः ॥ क्रोधेन कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम् ॥ १८ ॥ प्रासैः प्रमथिताः केचिद्वानराः शोणितस्रवाः ॥ मुद्गरैराहताः केचित्पतिता धरणीतले ॥ १९ ॥ परिघैर्मथिताः केचिद्भिन्दिपालैर्विदारिताः ॥ पट्टिशैराहताः केचिद्विह्वलन्तो गतासवः ॥२०॥ केचिद्विनिहताः शूलै रुधिरार्द्रा वनौकसः ॥ केचिद्विद्राविता नष्टा सबलै राक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥ विभिन्नहृदयाः केचिदेकपार्श्वेन दारिताः ॥ विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥२२॥ तत्सुभीमं महायुद्धं हरिराक्षससंकुलम् ॥ प्रबभौ शब्दबहुलं शिलापादपसंकुलम् ॥ २३ ॥ धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ॥ मन्दस्तनितसंगीतं युद्धगान्धर्वमाबभौ ॥ २४ ॥ धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान् रणमूर्धनि ॥ हसन्विद्रावयामास दिशस्तु शरवृष्टिभिः ॥२५॥ धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं दृश्य मारुतिः ॥ अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ २६ ॥ क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः पितृतुल्यपराक्रमः ॥ शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ ॥ २७ ॥ आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य संभ्रमात् ॥ रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ २८ ॥ ॥

ताः विनिःसृतान्त्रा इत्यर्थः ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ धनुरिति॥ तन्त्री वीणा । आर्षो ह्रस्वः । तया मधुरं रम्यम् । हिक्का विरम्य विरम्य कण्ठात् पवनोद्गमः । मन्दस्तनितम् अशक्त्या मन्दभाषणं तदेव संगीतं सम्यग्गानं यस्मिन् तत् तथोक्तम् । युद्धगान्धर्वं युद्धसंगीतम् । संगीतं नृत्तगीतवाद्यम् ॥२४॥ धूम्राक्ष इति ॥ दिशः दिशः प्रति ॥२५॥ धूम्राक्षेणेति ॥ व्यथितं दुःखितम् । दृश्य दृष्ट्वा । मारुतिः हनुमान् ॥२६॥ क्रोधादिति ॥ पिता वायुः ॥२७॥२८॥

सेति ॥ कूबरः युगंधरः । कूबरस्तु युगंधरः इत्यमरः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तमिति ॥ अभिद्रवत् अभ्यद्रवत् । आगमशासनस्यानित्यत्वादडभावः ॥ ३३ ॥ तत इति ॥ बहुकण्टकां बहुकीलाम् ॥ ३४ ॥ ताडित इति ॥ ताडितः आसीदिति शेषः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ स इति ॥ विह्वलितानि

सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ॥ सचक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम् ॥ २९ ॥ स भङ्क्त्वा तु
रथं तस्य हनुमान्मारुतात्मजः ॥ रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ३० ॥ विभिन्नशिरसो भूत्वा राक्षसाः
शोणितोक्षिताः ॥ द्रुमैः प्रव्यथिताश्चान्ये निपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥ विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनुमान्मारुतात्मजः
॥ गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥ तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ॥ विनर्दमानः
सहसा हनुमन्तमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥ ततः क्रुद्धस्तु वेगेन गदां तां बहुकण्टकाम् ॥ पातयामास धूम्राक्षो मस्तके तु
हनूमतः ॥३४॥ ताडितः स तया तत्र गदया भीमरूपया ॥३५॥ स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ॥ धूम्राक्षस्य
शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ॥ ३६ ॥ स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ॥ पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव
पर्वतः॥३७॥धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः॥ त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः॥३८॥स तु पवनसुतो
निहत्य शत्रुं क्षतजवहाः सरितश्च सन्निकीर्य ॥ रिपुवधजनितश्रमो महात्मा मुदमगमत्कपिभिश्च पूज्यमानः
॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥
धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ क्रोधेन महताविष्टो निश्वसन्नुरगो यथा ॥ १ ॥ ॥

विवशीकृतानि ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ स त्विति ॥ वहन्तीति वहाः क्षतजस्य वहाः क्षतजवहाः । सन्निकीर्य उत्सार्येत्यर्थः ॥ द्वितीयायां धूम्राक्षवधः ॥ ३९ ॥
इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥
अथ वज्रदंष्ट्रयुद्धं त्रिपञ्चाशे–धूम्राक्षमित्यादि ॥ आविष्टः अभूदिति शेषः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

॥२॥ गच्छ त्वं वीर निर्याहीति॥ इतो गच्छ पुरान्निर्याहीत्यर्थः ॥३॥ तथेत्युक्त्वेति ॥ बहुभिः बलाध्यक्षैरिति शेषः ॥४॥ नागैरित्यादि॥ रथैरित्यस्य संयुक्त इत्यनेनान्वयः । समलंकृतः चन्दनकुसुमादिभिरलङ्कृतः । तनुत्राणि कवचतलत्रकण्ठत्रशिरस्त्राणानि । संरुद्ध्य संबध्य धृत्वेत्यर्थः॥५॥६॥७॥ यष्टिभि-

दीर्घमुष्णं विनिश्वस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ॥ अब्रवीद्राक्षसं शूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ २ ॥ गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः ॥ जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥३॥ तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः ॥ निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥ नागैरश्वैः खरैरुष्ट्रैः संयुक्तः सुसमाहितः ॥ पताकाध्वजचित्रैश्च रथैश्च समलंकृतः ॥ ५ ॥ ततो विचित्रकेयूरमुकुटैश्च विभूषितः ॥ तनुत्राणि च संरुद्ध्य सधनुर्निर्ययौ द्रुतम् ॥६॥ पताकालंकृतं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥ रथं प्रदक्षिणं कृत्वा समारोहच्चमूपतिः ॥ ७ ॥ यष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैः शूलैश्च मुसलैरपि ॥ भिन्दिपालैश्च पाशैश्च शक्तिभिः पट्टिशैरपि ॥ ८ ॥ खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च निशितैश्च परश्वधैः ॥ पदातयश्च निर्यान्ति विविधाः शस्त्रपाणयः ॥ विचित्रवाससः सर्वे दीप्ता राक्षसपुङ्गवाः ॥ ९ ॥ गजा मदोत्कटाः शूराश्चलन्त इव पर्वताः ॥ ते युद्धकुशलै रूढास्तोमराङ्कुशपाणिभिः ॥१०॥ अन्ये लक्षणसंयुक्ताः शूरा रूढा महाबलाः ॥ ११ ॥ तद्राक्षसबलं घोरं विप्रस्थितमशोभत ॥ प्रावृट्काले यथा मेघा नर्दमानाः सविद्युतः ॥ १२ ॥ निःसृता दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः ॥ तेषां निष्क्रममाणानामशुभं समजायत ॥ १३ ॥ आकाशाद्विघनात्तीव्रा उल्काश्चाभ्यपतंस्तदा ॥ वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरं ववाशिरे ॥ १४ ॥ व्याहरन्ति मृगा घोरा रक्षसां निधनं तदा ॥ समापतन्तो योधास्तु प्रास्खलन् भयमोहिताः ॥ १५ ॥ ॥ ॥

रित्यादिसार्धश्लोकद्वयम् ॥८॥९॥ गजा इति ॥ अत्र निर्यान्तीत्यनुषज्यते । गजानेव विशिनष्टि—ते युद्धेत्यादिना । तोमराङ्कुशपाणिभिः यन्तृभिः । रूढाः आरूढा इत्यर्थः॥१०॥अन्ये लक्षणसंयुक्ता इति ॥ अत्रापि गजा निर्यान्तीत्यनुषङ्गः॥११॥१२॥१३॥आकाशादित्यादि॥विघनात् घनशून्यात्॥१४॥१५॥

एतानिति ॥ औत्पातिकान् अशुभसूचकान् ॥ १६ ॥ तांस्त्विति ॥ पूरयन् अपूरयंश्चेत्यर्थः । केचित्तु पूरयन् पूरयन्त इत्यर्थः, वचनव्यत्यय आर्ष इत्याहुः ॥ १७ ॥ तत इति ॥ तुमुलं रणसङ्कुलम् । तुमुलं रणसङ्कुले इत्यमरः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ केचिदिति ॥ अस्त्राणि संसृज्य सर्वाण्यस्त्राणि प्रयुज्य । तदनन्तरमस्त्राभावात् वाहुयुद्धमकुर्वतेत्यर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ बलवन्त इति ॥ अस्त्रविदुषः अस्त्रविद्वांसः । प्रथमार्थे द्वितीया ॥ २६ ॥ निघ्नत इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ संवर्तके प्रलयकाले । तान् राक्षसगणानित्यत्र निजघानेति विपरिणामः ॥ २७ ॥ २८ ॥२९ ॥ ॥

एतानौत्पातिकान् दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रो महाबलः ॥ धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी निर्जगाम रणोत्सुकः ॥ १६ ॥ तांस्तु निष्क्रमतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः ॥ प्रणेदुः सुमहानादान् पूरयंश्च दिशो दश ॥ १७॥ ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ॥ घोराणां भीमरूपाणामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ १८॥ निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतन् जगतीतले ॥ १९ ॥ केचिदन्योन्यमासाद्य शूराः परिघपाणयः ॥ चिक्षिपुर्विविधं शस्त्रं समरेष्वनिवर्तिनः॥ ॥ २० ॥ द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निस्वनः ॥ श्रूयते सुमहांस्तत्र घोरो हृदयभेदनः ॥ २१ ॥ रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि निःस्वनः ॥ शङ्खभेरीमृदङ्गानां बभूव तुमुलः स्वनः ॥ २२ ॥ केचिदस्त्राणि संसृज्य बाहुयुद्धमकुर्वत ॥ २३ ॥ तलैश्च चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च द्रुमैरपि ॥ जानुभिश्च हताः केचिद्भिन्नदेहाश्च राक्षसाः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २४ ॥ वज्रदंष्ट्रो भृशं बाणै रणे वित्रासयन् हरीन् ॥ चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः ॥ २५ ॥ बलवन्तोस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे ॥ जघ्नुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्छिताः ॥ २६ ॥ निघ्नतो राक्षसान् दृष्ट्वा सर्वान्वालिसुतो रणे ॥ क्रोधेन द्विगुणाविष्टः संवर्तक इवानलः ॥ २७ ॥ तान् राक्षसगणान् सर्वान् वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ अङ्गदः क्रोधताम्राक्षः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ चकार कदनं घोरं शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ॥ २८ ॥ अङ्गदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ विभिन्नशिरसः पेतुर्विकृत्ता इव पादपाः ॥ २९ ॥ ॥

रथैरश्वैर्ध्वजैश्चित्रैः शरीरैर्हरिरक्षसाम् ॥ रुधिरेण च संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा ॥ ३० ॥ हारकेयूरवस्त्रैश्च शस्त्रैश्च समलंकृता ॥ भूमिर्भाति रणे तत्र शारदीव यथा निशा ॥ ३१ ॥ अङ्गदस्य च वेगेन तद्राक्षसबलं महत् ॥ प्राकम्पत तदा तत्र पवनेनाम्बुदो यथा ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥

बलस्य च निघातेन अङ्गदस्य जयेन च ॥ राक्षसः क्रोधमाविष्टो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ॥ १ ॥ स विस्फार्य धनुर्घोरं शक्राशनिसमस्वनम् ॥ वानराणामनीकानि प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥ राक्षसाश्चापि मुख्यास्ते रथेषु समवस्थिताः ॥ नानाप्रहरणाः शूराः प्रायुध्यन्त तदा रणे ॥ ३ ॥ वानराणां तु शूरा ये सर्वे ते प्लवगर्षभाः ॥ आयुध्यन्त शिलाहस्ताः समवेताः समन्ततः ॥ ४ ॥ तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्नायोधने भृशम् ॥ राक्षसाः कपिमुख्येषु पातयांचक्रिरे तदा ॥ ५ ॥ वानराश्चापि रक्षःसु गिरीन् वृक्षान्महाशिलाः ॥ प्रवीराः पातयामासुर्मत्तवारणसन्निभाः ॥ ६ ॥ शूराणां युध्यमानानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ तद्राक्षसगणानां च सुयुद्धं समवर्तत ॥ ७ ॥ प्रभिन्नशिरसः केचिद्भिन्नैः पादैश्च बाहुभिः ॥ शस्त्रैरर्पितदेहास्तु रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ८ ॥ हरयो राक्षसाश्चैव शेरते गां समाश्रिताः ॥ कङ्कगृध्रवलैराढ्या गोमायुगणसंकुलाः ॥ ९ ॥ ॥ ॥

॥३०॥हारेति॥शारदीव यथा निशेत्यत्र इव शब्दयथाशब्दावेकार्थकौ। अपिचेतिवत् इवशब्दः पादपूरण इत्येके॥३१॥३२॥इ०गो०त्रिपञ्चाशः सर्गः॥५३॥

अथ वज्रदंष्ट्रवधश्चतुःपञ्चाशे—बलस्य चेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम्॥१॥२॥३॥ वानराणामिति ॥ निर्धारणे षष्ठी ॥४॥ तत्रेति ॥ तत्र कपिमुख्येष्वित्यन्वयः। आयोधने युद्धे॥५॥६॥शूराणामिति॥ तद्राक्षसगणानां चेति। ते च राक्षसगणाश्च तद्राक्षसगणाः तेषाम्। तच्छब्देन वानरा उच्यन्ते। युद्ध्यमानानां सुयुद्धं समवर्ततेत्यनेन उत्तरोत्तरयुद्धाधिक्यमुच्यते ॥ ७ ॥ प्रभिन्नेति ॥ पादैश्च बाहुभिरित्युपलक्षणे तृतीया। अर्पितदेहाः आरोपितदेहाः । गां भूमिम्। कङ्कः अवटः स च श्येनविशेषः गृध्रः दूरदर्शी वलः श्येनविशेषः काकश्च तैराढ्याः व्याप्ताः ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥

कबन्धानीत्यर्धम् ॥ १० ॥ पुनः केषांचित्पतनमाह–भुजेति ॥ भुजपाणिशिरस्सु छिन्नाः छिन्नकायाः छिन्नमध्यकायाः ॥ ११ ॥ तत इति ॥ निशाचरं निशाचरसंबन्धि । अणवृद्ध्यभाव आर्षः । यद्वा निशायां चरतीति योगमात्रविवक्षा ॥ १२ ॥ राक्षसानित्यादि ॥ भयवित्रस्तान् भयहेतुभ्यो

कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै॥१०॥भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ॥ वानरा राक्षसाश्चापि निपेतुस्तत्र वै रणे ॥११॥ ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम् ॥ प्राभज्यत बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ॥ १२ ॥ राक्षसान् भयवित्रस्तान् हन्यमानान् प्लवङ्गमैः॥दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १३ ॥ प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन् हरिवाहिनीम् ॥ शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ १४॥ बिभेद वानरांस्तत्र सप्ताष्टौ नव पञ्च च॥विव्याध परमक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १५ ॥ त्रस्ताः सर्वे हरिगणा शरैः संकृत्तकन्धराः ॥ अङ्गदं संप्रधावन्ति प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ १६ ॥ ततो हरिगणान् भयार्तान् दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा ॥ क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥ १७ ॥ वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ संगतौ हरिराक्षसौ ॥ चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥ १८ ॥ ततः शरसहस्रेण वालिपुत्रं महाबलः ॥ जघान मर्मदेशेषु मातङ्गमिव तोमरैः ॥ १९ ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो वालिसूनुर्महाबलः ॥ चिक्षेप वज्रदंष्ट्राय वृक्षं भीमपराक्रमः ॥ २० ॥ दृष्ट्वा पतन्तं तं वृक्षमसंभ्रान्तश्च राक्षसः ॥ चिच्छेद बहुधा सोपि निकृत्तः पतितो भुवि ॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रस्य विक्रमं प्लवगर्षभः ॥ प्रगृह्य विपुलं शैलं चिक्षेप च ननाद च ॥ २२ ॥ समापतन्तं तं दृष्ट्वा रथादाप्लुत्य वीर्यवान् ॥ गदापाणिरसंभ्रान्तः पृथिव्यां समतिष्ठत ॥ २३ ॥ साङ्गदेन गदाक्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनि ॥ २४ ॥ ॥ ॥

वित्रस्तान् ॥१३॥१४॥ विभेदेति ॥ सप्ताष्टौ नव पञ्च चेति एकैकप्रयोगेणेति शेषः ॥१५॥१६॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ तत इति ॥ उदीक्षन्तम् उदीक्षमाणम् ॥१७॥ वज्रदंष्ट्र इति ॥ हरिमत्तगजौ सिंहमत्तगजौ ॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ सेति ॥ सा वज्रदंष्ट्रधृता गदा आक्षिप्ता अपहृता ॥२४॥

स चक्रेति ॥ सः अङ्गदक्षिप्तशैलः ॥२५॥२६॥ अभवदिति ॥ शोणितोद्गारी रक्तोद्गारी । गदाम् अन्याम् । यद्वा, जघान परमक्रुद्धो वक्षोदेशे निशाचर इत्यस्यानन्तरं, साङ्गदेन गदाक्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनीत्यर्धं योज्यम् ॥ २७ ॥ स इत्यादि ॥ अवर्तत अवर्त्तयत् ॥ २८ ॥ २९ ॥ ततः परमतेजस्वीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ वृक्षोत्पाटनार्षभचर्मखण्डग्रहणादिकमङ्गदस्योच्यमानमितरस्याप्युपलक्षणम् । विचित्रांश्चेरतुर्मार्गानिति वक्ष्यमाणयुद्धस्य उभयोरविशेषेण वर्णनाद् । अङ्गदेन वृक्षे गृहीते राक्षसोपि वृक्षं जग्राह । अङ्गदेन खड्गादौ गृहीते राक्षसोपि खड्गादिकं जग्राहेति भावः । आर्षभं चर्म ऋषभचर्मपिनद्धं फलकम् । चर्मणा खड्गकोशेन ॥

स चक्रकूबरं साश्वं प्रममाथ रथं तदा ॥ २५ ॥ ततोन्यं गिरिमाक्षिप्य विपुलं द्रुमभूषितम् ॥ वज्रदंष्ट्रस्य शिरसि पातयामास सोऽङ्गदः ॥ २६ ॥ अभवच्छोणितोद्गारी वज्रदंष्ट्रः स मूर्छितः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढो गदामालिङ्ग्य निःश्वसन् ॥ २७ ॥ स लब्धसंज्ञो गदया वालिपुत्रमवस्थितम् ॥ जघान परमक्रुद्धो वक्षोदेशे निशाचरः ॥ गदां त्यक्त्वा ततस्तत्र मुष्टियुद्धमवर्तत ॥ २८ ॥ अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र तावुभौ हरिराक्षसौ ॥ रुधिरोद्गारिणौ तौ तु प्रहारैर्जनितश्रमौ ॥ बभूवतुः सुविक्रान्तावङ्गारकबुधाविव ॥ २९ ॥ ततः परमतेजस्वी अङ्गदः कपिकुञ्जरः ॥ उत्पाट्य वृक्षं स्थितवान् बहुपुष्पफलाञ्चितम् ॥ ३० ॥ जग्राह चार्षभं चर्म खड्गं च विपुलं शुभम् ॥ किङ्किणीजालसंछन्नं चर्मणा च परिष्कृतम् ॥ ३१ ॥ विचित्रांश्चेरतुर्मार्गान् रुषितौ कपिराक्षसौ ॥ जघ्नतुश्च तदान्योन्यं निर्दयं जयकाङ्क्षिणौ ॥ ३२ ॥ व्रणैः सास्रैरशोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ युध्यमानौ परिश्रान्तौ जानुभ्यामवनीं गतौ ॥ ३३ ॥ निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः ॥ उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः ॥ ३४ ॥ ॥

❀ रामानुजीयम् ❀ स जग्राहेति ॥ सः वज्रदंष्ट्रः ॥३०॥३१॥ विचित्रानिति ॥ मार्गान् पूर्वोक्तमण्डलादिमार्गान् । निर्दयं जघ्नतुरित्यन्वयः ॥ ३२ ॥ व्रणैरिति ॥ सास्रैः सरुधिरैः । अस्रमश्रुणि शोणित इत्यमरः । अवनीं गतौ अभूतामिति शेषः ॥ ३३ ॥ निमेषेति ॥ निमेषान्तरमात्रेण निमेषावकाशमात्रेण ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥

निर्मलेनेति ॥ सुधौतेन शाणोल्लिखितेन अत एव निर्मलेन । अस्य वज्रदंष्ट्रस्येत्यन्वयः । केचित्तु स जग्राहार्षभं चर्मेति पठित्वा सः वज्रदंष्ट्रः खड्गं ज-
ग्राह अङ्गदो वृक्षं जग्राहेति व्याख्याय, खड्गेनास्य महच्छिर इत्यत्र वृक्षे प्रतिहतेङ्गदोपि चर्मासी जग्राहेति अनेनावगम्यत इत्यपि वर्णयन्ति ॥ ❀ रा-
मानुजीयम् ❀ खड्गेनास्य वज्रदंष्ट्रस्य शिरो जघानेत्यनेन वृक्षे प्रतिहतेङ्गदोपि चर्मासी जग्राहेत्यवगम्यते ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वज्रदंष्ट्रमित्यादि ॥

निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः ॥ जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥ ३५ ॥ रुधिरोक्षितगात्रस्य
बभूव पतितं द्विधा ॥ स रोषपरिवृत्ताक्षं शुभं खड्गहतं शिरः ॥ ३६ ॥ वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः ॥
त्रस्ताः प्रत्यपतन् लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ विषण्णवदना दीना ह्रिया किंचिदवाङ्मुखाः ॥ ३७ ॥ निहत्य तं
वज्रधरप्रभावः स वालिसूनुः कपिसैन्यमध्ये ॥ जगाम हर्षं महितो महाबलः सहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३८ ॥
इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः ॥ बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमवस्थितम् ॥ १ ॥ शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा
राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रप्रकोविदम् ॥२॥ एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधि संमतः॥
भूतिकामश्च मे नित्यं नित्यं च समरप्रियः ॥३॥ एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम् ॥ वानरांश्चा परान्
घोरान् हनिष्यति परंतपः ॥ ४ ॥ परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः ॥ बलं संत्वरयामास तदा लघुपराक्रमः ॥
॥ ५ ॥ ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः ॥ निष्पेतू रक्षसां मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥ ६ ॥ ॥

विषण्णवदनाः शुष्कवदनाः ॥ तृतीयायां वज्रदंष्ट्रवधः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इति श्रीगोविन्द०श्रीरामा०रत्नकिरी०युद्धकाण्ड०चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥५४॥
अथाकम्पनयुद्धं पञ्चपञ्चाशे–वज्रदंष्ट्रमित्यादि ॥ बलाध्यक्षं प्रहस्तम् ॥ १ ॥ २ ॥ एष इति ॥ शास्ता परसैन्यनिग्राहकः । गोप्ता स्वबलरक्षकः । नेता
नायकः । सेनापतिरित्यर्थः । संमतः प्रसिद्धः ॥३॥४॥ परिगृह्येति ॥ बलचोदनेन स्वचोदनमर्थसिद्धं मत्वेत्यर्थः ॥५॥ तत इति ॥ निष्पेतुः पुरान्निर्ययुः ॥६॥

रथमित्यादि ॥ मेघाभः मेघवत् स्थूलः । मेघस्वनमहास्वनः । सप्तम्युपमानपूर्वपदस्येत्यादिना उत्तरपदलोपस्य वैकल्पिकत्वे प्रथमस्वनपदश्रवणम् ॥
॥ ७ ॥ प्रसङ्गादाह—न हीति ॥ हि यस्मात् महामृधे महायुद्धेपि कम्पयितुं न शक्यते अतो हेतोरकम्पनः अकम्पनशब्दवाच्यः । तेषां रक्षसाम् मध्ये
तेजसा आदित्य इव स्थित इत्यर्थः ॥ ८ ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ तस्येति ॥ हयानां रथवाहिनामिति पाठः ॥ ९ ॥ व्यस्फुरदित्यादि ॥ विवर्णः विप-

रथमास्थाय विपुलं तप्तकाञ्चनकुण्डलः ॥ मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः ॥ राक्षसैः संवृतो भीमै-
स्तदा निर्यात्यकम्पनः ॥ ७ ॥ न हि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे ॥ अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव
तेजसा ॥८॥ तस्य निर्धावमानस्य संरब्धस्य युयुत्सया ॥ अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानां रथवाहिनाम् ॥ ९ ॥
व्यस्फुरन्नयनं चास्य सव्यं युद्धाभिनन्दिनः ॥ विवर्णो मुखवर्णश्च गद्गदश्चाभवत्स्वनः ॥ १० ॥ अभवत्सुदिने चा-
पि दुर्दिनं रूक्षमारुतम् ॥ ऊचुः खगा मृगाः सर्वे वाचः क्रूरा भयावहाः ॥ ११ ॥ स सिंहोपचितस्कन्धः शार्दूल-
समविक्रमः ॥ तानुत्पातानचिन्त्यैव निर्जगाम रणाजिरम् ॥ १२ ॥ तदा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः ॥
बभूव सुमहान्नादः क्षोभयन्निव सागरम् ॥ १३ ॥ तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः ॥ द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुं
समवतिष्ठत ॥ १४ ॥ तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥ रामरावणयोरर्थे समभित्यक्तजीविनाम् ॥ १५ ॥
सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसन्निभाः ॥ हरयो राक्षसाश्चैव परस्परजिघांसवः ॥ १६ ॥ तेषां विनर्दतां शब्दः
संयुगेतितरस्विनाम् ॥ शुश्रुवे सुमहान् क्रोधादन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ १७॥ ॥ ॥

रीतवर्णः । दुर्दिनं मेघच्छन्नदिनम् । मेघच्छन्नेह्नि दुर्दिनमित्यमरः ॥ १० ॥ ११ ॥ स इति ॥ सिंहोपचितस्कन्धः सिंहस्येवोन्नतस्कन्धवान् ॥ १२ ॥
॥ १३ ॥ १४ ॥ तेषामिति ॥ समभित्यक्तजीविनां तृणीकृतशरीराणामित्यर्थः ॥ १५ ॥ सर्वं इति ॥ परस्परजिघांसवः आसन्निति शेषः ॥ १६ ॥ ते-
षामिति ॥ विनर्दतां सिंहनादं कुर्वताम् । अभिगर्जताम् आभिमुख्येन गर्जनं कुर्वताम् ॥ १७ ॥ ॥ ॥

रजश्चेति ॥ अरुणवर्णेन रक्तिम्ना आभातीत्यरुणवर्णाभम् ॥ १८ ॥ अन्योन्यमिति ॥ कौशेयोद्धूतपाण्डुना उद्धूतकौशेयपाण्डुना। आहिताग्न्यादित्वात्
परनिपातः। रजसो रक्तत्वपाण्डुत्वे भूभेदादिति ज्ञेयम्। संवृतानि छन्नानि। भूतानि वस्तूनि न ददृशुः। वानरा राक्षसाश्चेति शेषः॥१९॥उक्तं विवृणोति–न
ध्वजा इति ॥ वर्मादिष्वपि नञनुवर्तनीयः ॥ २० ॥ परस्परादर्शनादिजन्यं शब्दान्तरमाह–शब्दश्चेति ॥ रूपाणि पदार्थान्तराणि ॥२१॥ अदर्शनफल-

रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् ॥ उद्धूतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश ॥ १८॥ अन्योन्यं रजसा तेन कौशे-
योद्धूतपाण्डुना॥ संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे ॥ १९ ॥ न ध्वजा न पताका वा वर्म वा तुरगोपि वा ॥ आ-
युधं स्यन्दनं वापि ददृशे तेन रेणुना ॥ २० ॥ शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् ॥ श्रूयते तुमुले युद्धे न रूपाणि
चकाशिरे ॥२१॥ हरीनेव सुसंक्रुद्धा हरयो जघ्नुराहवे ॥ राक्षसाश्चापि रक्षांसि निजघ्नुस्तिमिरे तदा ॥ २२ ॥
परांश्चैव विनिघ्नन्तः स्वांश्च वानरराक्षसाः ॥ रुधिरार्द्रांस्तदा चक्रुर्महीं पङ्कानुलेपनाम् ॥ २३॥ ततस्तु रुधिरौघेण
सिक्तं व्यपगतं रजः ॥ शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुंधरा ॥ २४॥ द्रुमशक्तिशिलाप्रासैर्गदापरिघतोमरैः ॥ हरयो रा-
क्षसाश्चैव जघ्नुरन्योन्यमोजसा॥२५॥बाहुभिः परिघाकारैर्युध्यन्तः पर्वतोपमाः ॥ हरयो भीमकर्माणो राक्षसाञ्जघ्नुरा-
हवे ॥ २६ ॥ राक्षसास्त्वपि संक्रुद्धाः प्रासतोमरपाणयः ॥ कपीन्निजघ्निरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः ॥ २७॥ अकम्पनः सु-
संक्रुद्धो राक्षसानां चमूपतिः ॥ संहर्षयति तान् सर्वान् राक्षसान् भीमविक्रमान् ॥ २८ ॥ ॥ ॥

माह–हरीनिति ॥ २२ ॥ परानिति ॥ प्रथमं रक्तार्द्राम् अथ च रणक्षोदेन पङ्किलामित्यर्थः। पङ्कानुलेपनां पङ्कानुलिप्ताम्। कर्मणि ल्युट् ॥ २३ ॥ तत
इति ॥ शरीरशवसंकीर्णा शवभूतशरीरसंकीर्णा ॥ २४ ॥ द्रुमेति ॥ द्रुमशैला वानरीयाः। शक्त्यादयो राक्षसीयाः ॥ २५ ॥ बाहुभिरिति ॥ बाहुभिः
परिघाकारैरित्यस्योत्तरार्धः, हरयो भीमकर्माणो राक्षसान् जघ्नुराहव इति ॥ २६ ॥ राक्षसास्त्वपीति ॥ शस्त्रैः उक्तप्रासादिभिः ॥ २७ ॥ अकम्पन
इति ॥ संहर्षयति उत्साहयति ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ संहर्षयति समहर्षयत्। संभावयामासेत्यर्थः। तान् कपीन्निघ्नतः ॥ २८ ॥ ॥

हरयस्त्विति ॥ अभिक्रम्य अभिमुखीभूय । आच्छिद्य अपहृत्य ॥ २९ ॥ एतस्मिन्निति ॥ स्पष्टः ॥ ३० ॥ ते त्वित्यादिसार्धश्लोकः ॥ लीलया अनायासेन
॥ ३१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ ॥

हरयस्त्वपि रक्षांसि महाद्रुममहाश्मभिः ॥ विदारयन्त्यभिक्रम्य शस्त्राण्याच्छिद्य वीर्यतः ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे
वीरा हरयः कुमुदो नलः ॥ मैन्दश्च द्विविदः क्रुद्धाश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ ते तु वृक्षैर्महावेगा राक्षसानां
चमूमुखे ॥ कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरियूथपाः ॥ ममन्थू राक्षसान् सर्वे वानरा गणशो भृशम् ॥ ३१ ॥ इति
श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ ॥ ॥

तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः ॥ क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥ १ ॥ क्रोधमूर्छितरूपस्तु धून्वन्
परमकार्मुकम् ॥ दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ तत्रैव तावत्त्वरितं रथं प्रापय सारथे ॥ यत्रैते बहवो
घ्नन्ति सुबहून् राक्षसान् रणे ॥ ३ ॥ एतेत्र बलवन्तो हि भीमकायाश्च वानराः ॥ द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुखे
मम ॥ ४ ॥ एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ॥ एतैः प्रमथितं सर्वं दृश्यते राक्षसं बलम् ॥ ५ ॥ ततः प्रजवनाश्वेन
रथेन रथिनां वरः ॥ हरीनभ्यहनत्क्रोधाच्छरजालैरकम्पनः ॥ ६ ॥ न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे
॥ अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एव विदुद्रुवुः ॥ ७ ॥ तान् मृत्युवशमापन्नानकम्पनवशं गतान् ॥ समीक्ष्य
हनुमान् ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥ ८ ॥ तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे प्लवगयूथपाः ॥ समेत्य समरे वीराः
संहृष्टाः पर्यवारयन् ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

अथाकम्पनवधः षट्पञ्चाशे—तद्दृष्ट्वेत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ एत इति ॥ प्रमुखे अग्रे ॥ ४ ॥ ५ ॥ तत इति ॥ प्रजवनाश्वेन वेगवदश्वेन ॥ ६ ॥ ७ ॥ तानिति
॥ उपतस्थे अकम्पनसमीपमाजगाम ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ अचिन्तयित्वेति ॥ अकम्पनवधार्थाय अकम्पनवधरूपप्रयोजनाय ॥ १२ ॥ १३ ॥ तस्येति ॥ तस्य हनुमतः ॥ १४ ॥ आत्मानमिति ॥ अप्रहरणम् अनायुधम् ॥ १५ ॥ तमिति ॥ महानादं विनद्य महानादं कृत्वेत्यर्थः ॥ १६ ॥ तत इति ॥ तत्र सः शैलेनेत्यध्याहार्यम् । सहनुमान्

अवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा हरियूथपाः ॥ बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तं समाश्रिताः ॥ १० ॥ अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् ॥ महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥ ११ ॥ अचिन्तयित्वा बाणौघान् शरीरे पतितान् शितान् ॥ अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥ १२ ॥ स प्रसह्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ॥ अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १३ ॥ तस्याभिनर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ॥ बभूव रूपं दुर्धर्ष दीप्तस्येव विभावसोः ॥ १४ ॥ आत्मानमप्रहरणं ज्ञात्वा क्रोधसमन्वितः ॥ शैलमुत्पाटयामास वेगेन हरिपुङ्गवः ॥ १५ ॥ तं गृहीत्वा महाशैलं पाणिनैकेन मारुतिः ॥ स विनद्य महानादं भ्रामयामास वीर्यवान् ॥ १६ ॥ ततस्तमभिदुद्राव राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥ पुरा हि नमुचिं संख्ये वज्रेणेव पुरंदरः ॥ १७ ॥ अकम्पनस्तु तद्दृष्ट्वा गिरिशृङ्गं समुद्यतम् ॥ दूरादेव महाबाणैरर्धचन्द्रैर्व्यदारयत् ॥ १८ ॥ तत्पर्वताग्रमाकाशे रक्षोबाणविदारितम् ॥ विशीर्णं पतितं दृष्ट्वा हनुमान् क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥ सोश्वकर्णं समासाद्य रोषदर्पान्वितो हरिः ॥ तूर्णमुत्पाटयामास महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ २० ॥ तं गृहीत्वा महास्कन्धं सोश्वकर्णं महाद्युतिः ॥ प्रहस्य परया प्रीत्या भ्रामयामास संयुगे ॥ २१ ॥ प्रधावन्नुरुवेगेन प्रभञ्जन् तरसा द्रुमान् ॥ हनुमान् परमक्रुद्धश्चरणैर्दारयत्क्षितिम् ॥ २२ ॥ गजांश्च सगजारोहान् सरथान् रथिनस्तथा ॥ जघान हनुमान् धीमान् राक्षसांश्च पदातिगान् ॥ २३ ॥ ॥

अकम्पनं पुरन्दरो नमुचिं यथा तथा शैलेन वज्रेणेवाभिदुद्राव ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदिति ॥ क्रोधमूर्छितः अभूदिति शेषः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ प्रधावन्निति ॥ चरणैः चरणन्यासैः । दारयत् अदारयत् ॥ २२ ॥ गजांश्चेति ॥ पदातितया गच्छन्तीति पदातिगाः तान् ॥ २३ ॥ ॥

॥२४॥ २५ ॥ २६ ॥ सइति ॥ प्ररूढः प्ररूढवृक्षः ॥२७॥ २८ ॥ २९ ॥ स इति ॥ वानरेन्द्रेण कर्त्रा । तेन वृक्षेण हत इत्यन्वयः ॥३०॥ तमिति ॥ क्षितिकम्पे भूकम्पे ॥३१॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ सोपीति ॥ प्रत्यभ्यपूजयत् भवत्साहाय्येनैव मया जितमित्येवमिति भावः॥३६॥३७॥ ३८ ॥ ३९ ॥ चतुर्थ्यामकम्पनवधः ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम् ॥ हनुमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥ २४ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ॥ ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्रोध च ननाद च ॥२५॥ स चतुर्दशभिर्बाणैः शितैर्देहविदारणैः ॥ निर्बिभेद हनूमन्तं महावीर्यमकम्पनः ॥२६॥ स तदा प्रतिविद्धस्तु बह्वीभिः शरवृष्टिभिः ॥ हनुमान् ददृशे वीरः प्ररूढ इव सानुमान्॥२७॥ विरराज महाकायो महावीर्यो महामनाः ॥ पुष्पिताशोकसंकाशो विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ ततोन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ॥ शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम्॥२९॥ स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ॥ राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥ ३० ॥ तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥ व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः ॥३१॥ त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः ॥ लङ्कामभिययुस्त्रस्ता वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥३२॥ ते मुक्तकेशाः संभ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः ॥ स्रवच्छ्रमजलैरङ्गैः श्वसन्तो विप्रदुद्रुवुः ॥३३॥ अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते विविशुर्नगरं भयात्॥ पृष्ठतस्ते सुसंमूढाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥३४॥ तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः॥ समेत्य हरयः सर्वे हनुमन्तमपूजयन्॥३५॥सोपि प्रहृष्टस्तान् सर्वान् हरीन् प्रत्यभ्यपूजयत्॥हनुमान् सत्त्वसंपन्नो यथार्हमनुकूलतः॥३६॥विनेदुश्च यथाप्राणं हरयो जितकाशिनः॥ चकर्षुश्च पुनस्तत्र सप्राणानपि राक्षसान्॥३७॥ स वीरशोभामभजन्महाकपिः समेत्य रक्षांसि निहत्य मारुतिः॥महासुरं भीमममित्रनाशनं यथैव विष्णुर्बलिनं चमूमुखे॥३८॥अपूजयन् देवगणास्तदा कपिं स्वयं च रामोतिबलश्च लक्ष्मणः॥ तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवङ्गमा बिभीषणश्चैव महाबलस्तथा॥३९॥इ०यु० षट्प० सर्गः॥५६॥

अथ युद्धाय प्रहस्तनिर्याणं सप्तपञ्चाशे—अकम्पनवधमित्यादि ॥ १ ॥ स त्वित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ ततः स रावणः पुरीं परिययौ । पूर्वदिवसे
दिवसस्य पूर्वभागे । पूर्वाह्ण इत्यर्थः । गुल्मान् सेनाव्यूहान् ॥ २ ॥ ३ ॥ रुद्धामिति ॥ काले निदेशार्हसमये ॥ ४ ॥ पुरस्येति ॥ उप समीपे निविष्टं परसेनानिवेशो यस्य तस्य उपरुद्धस्येत्यर्थः । अत एव वाशब्दश्चार्थे । पीडितस्य च मोक्षं मोक्षोपायम् ॥ ५ ॥ अहमिति ॥ वहेयुरिति शकि लिङ्

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः ॥ किंचिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥ स तु ध्यात्वा मुहूर्तं
तु मन्त्रिभिः संविचार्य च ॥ ततस्तु रावणः पूर्वदिवसे राक्षसाधिपः ॥ पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान् गुल्मानवेक्षितुम्
॥ २ ॥ तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् ॥ ददर्श नगरीं लङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ॥३॥
रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ उवाचामर्षतः काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥ ४॥ पुरस्योपनिविष्टस्य
सहसा पीडितस्य वा ॥ नान्यं युद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ॥५॥ अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा
सेनापतिर्मम ॥ इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥ ६ ॥ स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च ॥
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥ ७ ॥ निर्याणादेव ते नूनं चपला हरिवाहिनी ॥ नर्दतां राक्षसेन्द्राणां
श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ॥ ८ ॥ चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः ॥ न सहिष्यन्ति ते नादं सिंहनादमिव
द्विपाः ॥९॥ विद्रुते च बले तस्मिन् रामः सौमित्रिणा सह ॥ अवशस्ते निरालम्बः प्रहस्तवशमेष्यति ॥
॥ १० ॥ आपत्संशयिता श्रेयो न तु निःसंशयीकृता ॥ प्रतिलोमानुलोमं वा यद्वा नो मन्यसे हितम् ॥ ११ ॥

॥ ६ ॥ स इति ॥ शीघ्रमादाय । परिगृह्य स्वाधीनं कृत्वा । यत्र वनौकसो वर्तन्ते तत्र इतो निर्याहीत्यन्वयः ॥ ७ ॥ निर्याणादिति ॥ चपला धैर्यरहिता ॥ ८ ॥ ९ ॥ विद्रुत इति ॥ अवशः प्रभुत्वरहितः । वशमिच्छाप्रभुत्वयोरिति विश्वः । हे प्रहस्त । ते तव वशमेष्यतीत्यन्वयः ॥ १० ॥ ननु युद्धे सत्यात्महानेरपि संभवात्तदकरणमेव श्रेय इत्याशङ्क्य तथात्वे शत्रुकृताया हानेर्निश्चितत्वात् युद्धकरणे तस्याः संदेहात । यत्रायुद्धे ध्रुवो मृत्युर्युद्धे जी-

वितसंशयः। तमेव कालं युद्धस्य प्रवदन्ति मनीषिणः, इत्युक्तरीत्या इदानीं युद्धमेव श्रेय इत्याह—आपदिति ॥ संशयिता वितर्किता। आपत् मृतिः श्रेयः। युद्धे मृतिः श्रेयस्करीत्यर्थः। जयापजययोर्व्यवस्थितत्वेन पाक्षिकजयस्यापि संभवादिति भावः। पक्षान्तरं प्रतिक्षिपति—नत्विति। निस्संशयीकृता निश्चिता मृतिस्तु युद्धं विना शत्रुभिर्मरणं तु न श्रेयः एतन्मम मतम्। त्वन्मतं तु किमित्याह—प्रतिलोमेति। प्रतिलोमं मदुक्तप्रकारविपरीतप्रकारम्। अनुलोमं वा नोस्माकं यद्धितं मन्यसे तद्वदेति शेषः। वेति पक्षान्तरे। अहं तदेव श्रेयो मन्ये त्वमन्यच्च यदि मन्यसे तद्वद। तदेवास्माकं हितमित्यर्थः ॥११॥ ॥ १२ ॥ मन्त्रसमये मया यथा निर्धारितं तत्तथा प्रवृत्तमित्याह—राजन्नित्यादिना ॥ कुशलैर्मन्त्रिभिः बिभीषणादिभिः सह नः अस्माभिः इदं वक्ष्यमाणं मन्त्रितपूर्वम्। तर्हि मन्त्रितत्वे तथा किमिति नानुष्ठितम् तत्राह—विवाद इति। परस्परं समवेक्ष्य बहुमतितया आलोच्य। नः अस्माकं विवादश्चापि वृत्तः।

रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशना ॥ १२ ॥ राजन्मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः ॥ विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम् ॥ १३ ॥ प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया ॥ अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेतत्तथैव नः ॥ १४ ॥ सोहं दानैश्च मानैश्च सततं पूजितस्त्वया ॥ सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां प्रियं तव ॥ १५ ॥ न हि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि वा ॥ त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः ॥ उवाचेदं बलाध्यक्षान् प्रहस्तः पुरतः स्थितान् ॥ १७ ॥ ॥

येन विभीषणो निरगच्छदिति भावः ॥ १३ ॥ मन्त्रितमर्थमाह—प्रदानेन त्विति ॥ सीतायाः प्रदानेन तु श्रेयः। अप्रदाने तु युद्धमिति च मम व्यवसितमित्यर्थः। सर्वमरणं युद्धशब्देनोपचर्यते। यथैव व्यवसितं तथैव नः अस्माभिः दृष्टं च ॥ १४ ॥ एवं स्वमतमुक्त्वा संप्रति त्वन्मतानुसारेण युद्धमेव करिष्यामीत्याह—सोहमित्यादिना ॥ दानैः भूषणादिप्रदानैः। मानैः त्वदधीनं जीवितमित्यादिप्रियभाषणैः। पूजितः उत्कर्षमापादितः। काले आपत्काले। किन्न कुर्यां जीवितत्यागमपि कुर्यामित्यर्थः ॥ १५ ॥ उक्तमेव विशदयति—न हीति ॥ जुहूषन्तं होतुमिच्छन्तम्। जुहोतेः सन्प्रत्ययः। अनेन जीवितस्य हविष्ट्वं युद्धस्याग्निरूपत्वं च गम्यते। तेन चात्महविःप्रदानस्य महाफलत्वं युद्धसङ्गतिमात्रेण स्वविनाशश्च द्योत्यते। गतानुगतिकास्तु जुहूषन्तं त्यक्तुमिच्छन्तमित्यर्थः। जुहोतेर्दानार्थत्वादित्याहुः ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥१८॥ मद्बाणेति॥ हतानां काननौकसां तृप्यन्त्वित्यन्वयः। "पूरणगुण०" इत्यादिना समासप्रतिषेधेन सुहितार्थयोगे ज्ञापिता षष्ठी॥ १९॥२०॥२१॥ हुताशनमिति॥ हुताशनं तर्पयताम् अग्नौ बहुधा शान्तिहोमानाचरताम्। ब्राह्मणांश्च नमस्यतां गन्धपुष्पादिभिरर्चयताम् सम्बन्धी आज्यगन्धप्रतिवहः ब्राह्मणार्चनकुसुमादिना सुरभिर्मारुतो ववौ॥ २२॥ स्रजश्चेति॥ संग्रामसज्जाः संग्रामायोद्युक्ता राक्षसाः अभिमन्त्रिताः विजयमन्त्रेणाभिमन्त्रिताः स्रजः जगृहुः। धारयन् अधारयंश्च॥ २३॥ सधनुष्का इति॥ रावणं प्रेक्ष्य स्वामितया प्रधानं रावणमभिवन्द्येत्यर्थः॥ २४॥

समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महद्बलम्॥ १८॥ मद्बाणशतवेगेन हतानां च रणाजिरे॥ अद्य तृप्यन्तु मांसादाः पक्षिणः काननौकसाम्॥ १९॥ इत्युक्तास्ते प्रहस्तेन बलाध्यक्षाः कृतत्वराः॥ बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन् राक्षसमन्दिरे॥२०॥ सा बभूव मुहूर्तेन तिग्मनानाविधायुधैः॥ लङ्का राक्षसवीरैस्तैर्गजैरिव समाकुला॥ २१॥ हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम्॥ आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मारुतो ववौ॥ २२॥ स्रजश्च विविधाकारा जगृहुस्त्वभिमन्त्रिताः॥ संग्रामसज्जाः संहृष्टा धारयन् राक्षसास्तदा॥ २३॥ सधनुष्काः कवचिनो वेगादाप्लुत्य राक्षसाः॥ रावणं प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्तं पर्यवारयन्॥ २४॥ अथामन्त्र्य च राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम्॥ आरुरोह रथं दिव्यं प्रहस्तः सज्जकल्पितम्॥ २५॥ हयैर्महाजवैर्युक्तं सम्यक्सूतसुसंयतम्॥ महाजलदनिर्घोषं साक्षाच्चन्द्रार्कभास्वरम्॥ २६॥ उरगध्वजदुर्धर्षं सुवरूथं स्ववस्करम्॥ सुवर्णजालसंयुक्तं प्रहसन्तमिव श्रिया॥ २७॥

अथेत्यादिश्लोकत्रयम्॥ सज्जकल्पितं सज्जमुद्युक्तम् सर्वायुधादिसमवेतत्वेन कल्पितमित्यर्थः। सुसंयतं नियमितम्। साक्षाच्चन्द्रार्कभास्वरं चन्द्रार्कतुल्यं भास्वरं च। साक्षात् प्रत्यक्षतुलययोरित्यमरः। आह्लादकत्वेन चन्द्रसाम्यम्। तेजसार्कसाम्यम्। सुवरूथं शोभनरथगुप्तिकम्। रथगुप्तिर्वरूथो नेत्यमरः। स्ववस्करं शोभनरथाङ्गम्। "अवस्करो रथाङ्गम्" इति निपातनात् सुडागमः। जालं गवाक्षम्। प्रहसन्तमिव श्रिया स्वकान्त्या सर्वकान्तिमद्वस्तु परिहसन्तमिव स्थितम्॥ २५॥ २६॥ २७॥ ॥ ॥ ॥

ततस्तमिति ॥ ततः आरोहणानन्तरम् ॥ २८ ॥ तत इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ पर्जन्यः मेघविशेषः ॥ २९ ॥ निनदन्त इति ॥ पुरःसराः अग्रगाः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ व्यूढेनेति ॥ व्यूढेन सन्नद्धकङ्कटेन । व्यूढः सन्नद्धकङ्कट इत्यमरशेषे ॥ ३२ ॥ सागरेति ॥ कालान्तकयमोपमः काले प्रलयकाले अन्तको विनाशको यो यमस्तदुपमः ॥३३॥ तस्येति ॥ तस्य प्रहस्तस्य निर्याणघोषेण निर्गमकालिकसिंहनादेन । राक्षसानां निर्याणघोषेण च प्रयोजने

ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः ॥ लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महतावृतः ॥ २८ ॥ ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ वादित्राणां च निनदः पूरयन्निव सागरम् ॥ शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ ॥ २९ ॥ निनदन्तः स्वरान् घोरान् राक्षसा जग्मुरग्रतः ॥ भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः ॥ ३० ॥ नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ॥ प्रहस्तसचिवा ह्येते निर्ययुः परिवार्य तम् ॥ ३१ ॥ व्यूढेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात्स निर्ययौ ॥ गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः ॥ ३२ ॥ सागरप्रतिमौघेन वृतस्तेन बलेन सः ॥ प्रहस्तो निर्ययौ तूर्णं कालान्तकयमोपमः ॥३३॥ तस्य निर्याणघोषेण राक्षसानां च नर्दताम् ॥ लङ्कायां सर्वभूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥ ३४ ॥ व्यभ्रमाकाशमाविश्य मांसशोणितभोजनाः ॥ मण्डलान्यपसव्यानि खगाश्चक्रू रथं प्रति ॥३५॥ वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरं ववाशिरे ॥ अन्तरिक्षात्पपातोल्का वायुश्च परुषो ववौ ॥ ३६ ॥ अन्योन्यमभिसंरब्धा ग्रहाश्च न चकाशिरे ॥ ३७ ॥ मेघाश्च खरनिर्घोषा रथस्योपरि रक्षसः ॥ ववृषू रुधिरं चास्य सिषिचुश्च पुरःसरान् ॥ ३८ ॥ केतुमूर्धनि गृध्रोऽस्य निलीनो दक्षिणामुखः ॥ तुदन्नुभयतः पार्श्वं समग्रामहरत्प्रभाम् ॥ ३९ ॥ ॥

न । सर्वभूतानि विकृतैः स्वरैरुपलक्षितानि सन्ति विनेदुरिति सम्बन्धः ॥३४॥ व्यभ्रमिति ॥ अपसव्यानि अप्रदक्षिणानि । व्यभ्रमित्यनेन मण्डलकरणस्याकालिकत्वमुक्तम् । साभ्रकाले हि पक्षिणो मण्डलान्याचरन्ति । यद्वात्र खगाः गरुडाः । अपसव्यं प्रदक्षिणम् । अपसव्यन्तु दक्षिणमित्यमरः । गरुडानां ह्यप्रदक्षिणं शोभनम् ॥३५॥ वमन्त्य इत्यादि ॥ ग्रहाः चन्द्रसूर्यादयः । तत्काले ग्रहयुद्धमासीदित्यर्थः ॥३६॥३७॥ ३८ ॥ केत्विति ॥ तुदन्नुभयतः पा-

र्थम् । उभौ पक्षौ मुखेन कण्डूयमानः समग्रामहरत् प्रभां प्रहस्तस्येति शेषः । ध्वजाग्रारूढगृध्रदर्शनेन प्रहस्तमुखं विवर्णमासीदित्यर्थः॥३९॥सारथेरिति ॥
सूतस्य सूतजातस्य । हयसादिनः हयप्रस्थापकस्य। प्रतोदः तोत्रम् । यद्वा सूतस्य सूतकुलोत्पन्नस्य । अभ्यस्तप्रतोदधारणस्यापीत्यर्थः। हयसादिनः
अश्वगतिशिक्षकस्य ॥ ४० ॥ निर्याणेति ॥ वसुदुर्लभा अष्टवसुदुर्लभा । भास्वरा वसुदुर्लभेति पाठः । निर्याणश्रीः निर्गमकालिकश्रीः । निरुत्साहः प्रह-

सारथेर्बहुशश्चास्य संग्राममवगाहतः ॥ प्रतोदोन्यपतद्धस्तात्सूतस्य हयसादिनः ॥ ४० ॥ निर्याणश्रीश्च या-
स्यासीद्भास्वरा वसुदुर्लभा ॥ सा ननाश मुहूर्तेन समे च स्खलिता हयाः ॥ ४१ ॥ प्रहस्तं त्वभिनिर्यान्तं प्र-
ख्यातबलपौरुषम् ॥ युधि नानाप्रहरणा कपिसेनाऽभ्यवर्तत ॥४२॥ अथ घोषः सुतुमुलो हरीणां समजायत॥
वृक्षानारुजतां चैव गुर्वीरागृह्णतां शिलाः ॥ ४३ ॥ नदतां राक्षसानां च वानराणां च गर्जताम् ॥ उभे प्र-
मुदिते सैन्ये रक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४४ ॥ वेगितानां समर्थानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ परस्परं चाह्वयतां
निनादः श्रूयते महान् ॥ ४५ ॥ ततः प्रहस्तः कपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थे विजयाय दुर्मतिः ॥ विवृद्धवेगां
च विवेश तां चमूं यथा मुमूर्षुः शलभो विभावसुम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥५७॥
ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा भीमपराक्रमम् ॥ उवाच सस्मितं रामो बिभीषणमरिन्दमः ॥ १ ॥ ॥

स्तोभूदित्यर्थः । स्खलिताः चस्खलुः । कर्तरि क्तः ॥ ४१ ॥ प्रहस्तामिति ॥ नानाप्रहरणा शिलावृक्षादिनानाप्रहरणा ॥ ४२ ॥ अथेति ॥ आरुजताम्
उन्मूलयताम् । आगृह्णताम् आसमन्तात् गृह्णताम् ॥ ४३ ॥ नदतामिति त्रिपादश्लोकः ॥ रक्षोगणवनौकसामित्युत्तरशेषः ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तत इति ॥
कपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थे तां चमूं विवेश च ॥ ४६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामा०रत्नकि०युद्धकाण्डव्याख्याने सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥५७॥
अथ प्रहस्तवधोष्टपञ्चाशे–ततः प्रहस्तामित्यादि ॥ सस्मितमिति । बलवच्छत्रुदर्शनहर्षेणेति भावः । तदेव व्यञ्जयति–अरिन्दम इति ॥ १ ॥

क एष इति ॥ ननु प्रहस्तः पूर्वद्वारान्निर्गतः, रामस्तु उत्तरद्वारि तिष्ठति स्म, कथमस्यानेकयोजनस्थसाक्षात्कारः । उच्यते । आप्तवचनेन प्रत्यक्षतुल्येन महाकायः कश्चन गच्छतीति विदित्वा एष इत्याह। आचक्ष्व तमिति शेषः ॥ २ ॥ ३ ॥ एष इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ तस्य रावणस्य असह्यतया नामाग्रहणम्। संवृतशब्दोऽन्तर्भावितण्यर्थः । रावणेन लङ्कायां स्वबलस्य तृतीयभागेन संवारित इत्यर्थः । लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभा-

क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः ॥ आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम् ॥ २ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच बिभीषणः ॥ ३ ॥ एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ॥ लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः ॥ वीर्यवानस्त्रविच्छूरः प्रख्यातश्च पराक्रमे ॥ ४ ॥ ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ॥ गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥ ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ॥ अतिसंजातरोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥ खड्गशक्त्यृष्टिबाणाश्च शूलानि मुसलानि च ॥ गदाश्च परिघाः प्रासा विविधाश्च परश्वधाः ॥ ७ ॥ धनूंषि च विचित्राणि राक्षसानां जयैषिणाम् ॥ प्रगृहीतान्यशोभन्त वानरानभिधावताम् ॥ ८ ॥ जगृहुः पादपांश्चापि पुष्पितान्वानरर्षभाः ॥ शिलाश्च विपुला दीर्घा योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥ ९ ॥ तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ॥ बहूनामश्मवृष्टिं च शरवृष्टिं च वर्षताम् ॥ १० ॥ बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरयूथपान् ॥ वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ ११ ॥ ॥ ॥

गबलसंवृत इति पाठः । रावणस्य सैन्येषु भागत्रयमस्याधीनमिति भावः । वीर्यवान् बलवान् । वीर्यं बले प्रभावे चेत्यमरः । शूरः रणेष्वपरावृत्तः । पराक्रमे परपरिभवने । अत्रेतिकरणं बोध्यम् ॥ ४ ॥ तत इत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ भीमं भयंकरवेषम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ खड्गेत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ राक्षसानामिति तृतीयार्थे षष्ठी । राक्षसैरित्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ जगृहुरिति ॥ वानरश्रेष्ठत्वेप्यवानरत्ववारणाय प्लवङ्गमा इत्युक्तम् । यद्वा प्लवङ्गमाः युद्धोत्साहेन प्लवगत्या गच्छन्तः । असंज्ञायां खशार्षः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

शूलैरित्यादि ॥ परमायुधैः चक्रैः । चक्रं तु परमायुधमिति निघण्टुः ॥ १२ ॥ शूलपातादिकार्यं दर्शयति–निरुच्छ्वासा इत्यादि ॥ निरुच्छ्वासाः कृताः । इषुसन्धानसंदिताः इषव एव संधानानि वन्धनरज्जवः तैः संदिताः संस्यूताः । स्फुरन्तः लुठन्तः । अवदारिताः भिन्नाः ॥ १३ ॥ १४ ॥ वानरैरित्यादि॥

शूलैः प्रमथिताः केचित्केचिच्च परमायुधैः ॥ परिघैराहताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥ १२ ॥ निरुच्छ्वासाः
कृताः केचित्पतिता धरणीतले ॥ विभिन्नहृदयाः केचिदिषुसंधानसंदिताः ॥ १३ ॥ केचिद्द्विधा कृताः खड्गैः
स्फुरन्तः पतिता भुवि ॥ वानरा राक्षसैः शूलैः पार्श्वतश्चावदारिताः ॥ १४ ॥ वानरैश्चापि संक्रुद्धै राक्षसौघाः
समन्ततः ॥ पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च संपिष्टा वसुधातले ॥ १५ ॥ वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हता भृशम् ॥ वेमुः
शोणितमास्येभ्यो विशीर्णदशनेक्षणाः ॥ १६ ॥ आर्तस्वनं च स्वनतां सिंहनादं च नर्दताम् ॥ बभूव तुमुलः
शब्दो हरीणां रक्षसां युधि ॥ १७ ॥ वानरा राक्षसाः क्रुद्धा वीरमार्गमनुव्रताः ॥ विवृत्तनयनाः क्रूराश्चक्रुः क-
र्माण्यभीतवत् ॥ १८ ॥ नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ॥ एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥
॥ १९ ॥ तेषामापततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् ॥ द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥ २० ॥
दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः स विपुलद्रुमम् ॥ राक्षसं क्षिप्रहस्तस्तु समुन्नतमपोथयत् ॥ २१ ॥ जाम्बवांस्तु सु-
संक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥ पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥ २२ ॥ ॥

संपिष्टाः चूर्णिताः । वेमुः वमनं चक्रुः ॥१५॥१६॥ आर्तेति ॥ स्वनतां नर्दतामित्यत्र कुर्वतामित्यर्थः । तुमुलः निबिडितः । रक्षसां वानराणां च ॥१७॥ वानरा इति ॥ वीरमार्गं युद्धकौशलम् । विवृत्तनयनाः भ्रान्तनेत्राः । कर्माणि युद्धकर्माणि । अभीतवत् भयरहितं यथा भवति तथा ॥१८॥१९॥ तेषामिति ॥ इयं निर्धारणे षष्ठी । एकं मुख्यम् ॥२०॥ दुर्मुख इति ॥ उत्थाय उद्धृत्य । समुन्नताख्यं राक्षसम् अपोथयत् अमारयत् । "पुथ, हिंसायाम्" इति धातुः॥२१॥२२॥

अथेति ॥ तत्र प्रहस्तसचिवेषु । सन्त्याजयत् संतत्याज । स्वार्थिको णिच्प्रत्ययः ॥ २३ ॥ २४ ॥ आवर्त इति॥ आवर्तें संवर्तें । प्रलय इव स्थिते तस्मिन् युद्धे क्षुभितस्य सागरस्य निःस्वन इव सेनाया निस्वनः संजज्ञे ॥ २५ ॥ तेषु प्रहस्तप्रकर्षं प्रतिपादयितुं पुनराह–महतेत्यादि ॥ २६ ॥ वानराणामिति॥ निचिता व्याप्ता ॥ २७ ॥ २८ ॥ अपरिच्छिन्नवानरवधो वृत्त इति द्योतयितुं युद्धभूमिं नदीत्वेन वर्णयति–हतेत्यादिना ॥ उभयसेनाग्रयोर्हतवीराणामोघः समूह एव वप्रं तटं यस्यास्ताम् । भग्नायुधान्येव महाद्रुमाः भग्नाः तीरमहाद्रुमा यस्यास्ताम् । शोणितौघा एव महातोयानि कलुषजलानि यस्यास्ताम् ।

अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् ॥ वृक्षेणाभिहतो मूर्ध्नि प्राणान् संत्याजयद्रणे ॥ २३ ॥ अमृष्यमाणस्तत्कर्म
प्रहस्तो रथमास्थितः ॥ चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २४ ॥ आवर्त इव संजज्ञे उभयोः सेनयोस्तदा
॥ क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निस्वनः ॥ २५ ॥ महता हि शरौघेण प्रहस्तो युद्धकोविदः ॥ अर्दयामास
संक्रुद्धो वानरान् परमाहवे ॥ २६ ॥ वानराणां शरीरैश्च राक्षसानां च मेदिनी ॥ बभूव निचिता घोरा पतितैरिव
पर्वतैः ॥ २७ ॥ सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना संप्रकाशते ॥ संछन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥ २८ ॥
हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् ॥ शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम् ॥ २९ ॥ यकृत्प्लीहमहापङ्कां
विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् ॥ भिन्नकायशिरोमीनामङ्गावयवशाद्वलाम् ॥ ३० ॥ गृध्रहंसगणाकीर्णां कङ्कसारससेविताम्
॥ मेदःफेनसमाकीर्णामार्तस्तनितनिःस्वनाम् ॥ तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् ॥ ३१ ॥ ॥

यमसागरगामिनीं युद्धभूमौ यमो जीवग्रहणाय सन्निधत्त इति प्रसिद्धिः । तद्रूपसागरगामिनीम् । यकृत्प्लीहशब्दौ हृदयस्य दक्षिणवामभागस्थमांसविशेषपरौ । अन्त्राणां शैवलत्वनिरूपणं स्तम्बमयत्वात् । भिन्नकायशिरसोर्मीनत्वनिरूपणं स्फुरितवत्त्वात् । अङ्गावयवाः करचरणाद्यङ्गानामवयवाः अङ्गुलय इत्यर्थः । त एव शाद्वलानि शाद्वलभूजन्यतृणानि यस्यास्ताम् । कङ्कः धवलवर्णः श्येनः । सारसो हंसविशेषः । मेदः रुधिरमण्डलम् । आर्तानां स्तनितः शब्द इति यावत् । तदेव निम्नोन्नतपतनजनितस्वनो यस्यास्ताम् । यद्यपि रुधिरप्रवाहस्यापि स्वत एव घोषोस्ति तथापि रूपकत्वायैवमुक्तम् । कापुरुषाः भी-

रवः तैः दुस्ताराम्। वृद्धिरार्षी। युद्धभूमिमयीमिति स्वार्थे मयट्। व्यस्तरूपकम्। प्रावर्तयन्नित्यध्याहार्यम्। यद्वा तेरुरिति वक्ष्यमाणमत्राप्यनुषज्यते। अत्र सावयवरूपकालंकारः॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उपमानमुखेनापि तत्तरणं दर्शयति—नदीमिति ॥ घनापाये वर्षान्ते। तां पूर्वत्र रूपकेण दर्शिताम्। केचित्तु अत्रोत्तरश्लोकस्थनदीपदवैयर्थ्यभयेन युद्धभूमिमयीं नदीं प्रवर्तयित्वेत्यध्याहरन्ति ॥ ३२ ॥ उक्तानां रक्षोवानराणामुपमामाह—यथेति ॥ पद्मरजोभिः ध्वस्तां वर्णान्तरं प्राप्तां नलिनीं सरसीं यथा गजयूथपास्तरन्ति। तीर्त्वा रक्ततनवो भवन्तीति यावत्। तथा अरुणशरीरा उत्तेरुरित्यर्थः ॥३३॥

नदीमिव घनापाये हंससारससेविताम् ॥ राक्षसाः कपिमुख्याश्च तेरुस्तां दुस्तरां नदीम् ॥ ३२ ॥ यथा
पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥ ३३ ॥ ततः सृजन्तं बाणौघान् प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् ॥ ददर्श तरसा
नीलो विनिघ्नन्तं प्लवङ्गमान् ॥ ३४ ॥ उद्धूत इव वायुः खे महदभ्रबलं बलात् ॥ समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो
वाहिनीपतिः ॥ रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३५ ॥ स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे ॥
नीलाय व्यसृजद्बाणान् प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ ३६ ॥ ते प्राप्य विशिखा नीलं विनिर्भिद्य समाहिताः ॥
महीं जग्मुर्महावेगा रुषिता इव पन्नगाः ॥ ३७ ॥ नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं
महाकपिः ॥ ३८ ॥ प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥ स तेनाभिहतः क्रुद्धो
नदन् राक्षसपुङ्गवः ॥ ववर्ष शरवर्षाणि प्लवङ्गानां चमूपतौ ॥ ४० ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ स्यन्दने रथे स्थितम्। बाणौघान् सृजन्तं मुञ्चन्तम्। तरसा वेगेन। प्लवङ्गमान् विनिघ्नन्तं प्रहस्तं ददर्श ॥३४॥ उद्धूत इत्यादिसार्द्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ खे स्वदेशभूते। उद्धूतः उल्बणः वायुः अभ्रबलं अभ्रजालमिव। युद्धे बलादभिद्रुतम् आभिमुख्येनायान्तं नीलं समीक्ष्य रथेन नीलमेवाभिदुद्रुवे इति योजना ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ त इति ॥ रुषिताः पन्नगा इव स्थिताः समाहिताः ऋजवः नीलं विनिर्भिद्य महीं जग्मुः विविशुरित्यर्थः ॥ ३७ ॥ नील इत्यादि सार्द्धश्लोकः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥

तस्येति ॥ अपारयन् अशक्नुवन् ॥ ४१ ॥ यथैवेत्यादिसार्द्धश्लोकः ॥ यथैवेत्यत्र एवकारोत्यन्तायोगव्यवच्छेदार्थकः । शारदमित्यनेन शरपातस्य

तस्य बाणगणान् घोरान् राक्षसस्य महाबलः ॥ अपारयन् वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥ ४१ ॥ यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम् ॥ एवमेव प्रहस्तस्य शरवर्षं दुरासदम् ॥ निमीलिताक्षः सहसा नीलः सेहे सुदारुणम् ॥ ॥ ४२ ॥ रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान् ॥ प्रजघान हयान्नीलः प्रहस्तस्य मनोजवान् ॥ ४३ ॥ ततः स चापमुद्गृह्य प्रहस्तस्य महाबलः ॥ बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः ॥ ४४ ॥ विधनुस्तु कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥ ४५ ॥ तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ ॥ स्थितौ क्षतजदिग्धाङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ ॥ ४६ ॥ उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ॥ सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ४७ ॥ विक्रान्तविजयौ वीरौ समरेष्वनिवर्तिनौ ॥ काङ्क्षमाणौ यशः प्राप्तुं वृत्रवासवयोः समौ ॥ ४८ ॥ आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः ॥ प्रहस्तः परमायत्तस्तस्य सुस्राव शोणितम् ॥ ४९ ॥ ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य सुमहातरुम् ॥ प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ॥ ५० ॥ तमचिन्त्यप्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत् ॥ अभिदुद्राव बलिनं बलान्नीलं प्लवङ्गमम् ॥ ५१ ॥ तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः ॥ ततः संप्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम् ॥ ५२ ॥ तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः ॥ प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ॥ ५३ ॥ सा तेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला ॥ बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥ ५४ ॥ स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ॥ पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ५५ ॥ ॥

क्षयित्वं व्यनक्ति ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तावुभावित्यादिश्लोकत्रयमेकं वाक्यम् ॥ प्रभिन्नौ मत्तौ । सिंहशार्दूलसदृशाविति बले साम्यम् । विक्रान्तविजयौ सर्वत्र प्राप्तविजयौ । काङ्क्षमाणौ अभूतामिति शेषः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ आजघानेति ॥ परमायत्तः परमोद्युक्तः ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तमिति ॥ अ-

चिन्त्य अचिन्तयित्वा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ प्रभिन्नेति ॥ प्रभिन्नशिरसः प्रभिन्नाच्छिरसः । शरीरादपीति समुच्चयः । प्रस्रवणं निर्झरः ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ न शेकुरिति ॥ विकीर्णं भग्नम् ॥ ५८ ॥ हत इत्यादि सार्द्धश्लोकः ॥ ध्यानमूकत्वं ध्यानेन वाग्व्यापारशून्यत्वम् । तीव्रं घोरम् शोकार्णवं प्राप्ताः । शोकार्णवे मग्ना इत्यर्थः ॥ ५९ ॥ ततस्त्विति ॥ स्वकृतेन कर्मणा रिपुवधेन प्रहृष्टरूपः अतिशयेन प्रहृष्टः । प्रशंसायां रूपप् । पञ्च-

प्रभिन्नशिरसस्तस्य बहु सुस्राव शोणितम् ॥ शरीरादपि सुस्राव गिरेः प्रस्रवणं यथा ॥५६॥ हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं
महद्बलम् ॥ रक्षसामप्रहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ॥५७॥ न शेकुः समरे स्थातुं निहते वाहिनीपतौ ॥ सेतुबन्धं समासाद्य
विकीर्णं सलिलं यथा ॥५८॥ हते तस्मिंश्चमूमुख्ये राक्षसास्ते निरुद्यमाः ॥ रक्षःपतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वमास्थिताः ॥
प्राप्ताः शोकार्णवं तीव्रं निःसंज्ञा इव तेभवन् ॥ ५९ ॥ ततस्तु नीलो विजयी महाबलः प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ॥
समेत्य रामेण सलक्ष्मणेन च प्रहृष्टरूपस्तु बभूव यूथपः ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥
तस्मिन् हते राक्षससैन्यपाले प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ॥ भीमायुधं सागरतुल्यवेगं विदुद्रुवे राक्षसराजसैन्यम् ॥
॥ १ ॥ गत्वाथ रक्षोधिपतेः शशंसुः सेनापतिं पावकसूनुशस्तम् ॥ तच्चापि तेषां वचनं निशम्य रक्षोधिपः क्रोधवशं जगाम ॥ २ ॥ संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य शोकार्दितः क्रोधपरीतचेताः ॥ उवाच तान्नैर्ऋतयोधमुख्यानिन्द्रो यथा चामरयोधमुख्यान् ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

म्यां प्रहस्तवधः ॥ ६० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥
अथ रावणमुकुटभङ्ग एकोनषष्टितमे—तस्मिन् हत इत्यादि ॥ १ ॥ गत्वेति ॥ पावकसूनुशस्तं पावकसूनुना नीलेन शस्तं हतम् । तच्चापीत्यनेन रावणेन स्वप्नेपि न तच्चिन्तितमिति सूच्यते । यद्वा शत्रोरुपचये स्वस्यापचये समाश्रयः कार्य इति नीतिः । तथापि रावणः कालचोदिततया समाश्रयणं विहाय अस्थाने क्रोधवशं गत इत्यपिशब्देन सूच्यते ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

नावज्ञेति ॥ रिपवे रामाय । नावज्ञा कार्या उपेक्षा न कर्तव्या । क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति चतुर्थी । यैश्च वानरैर्हेतुभिः मम सैन्यपालः प्रहस्तः । सानुयात्रः सानुचरः । सकुञ्जरश्च सूदितः । तेभ्योपि नावज्ञा कार्येत्यर्थः । केचित्तु रिपवे रिपुभ्यः, अवज्ञा एते कपयः किं करिष्यन्तीत्येवंरूपा न कार्या । कुत इत्यत्राह– यैरित्यादीत्याहुः ॥ ४ ॥ सोहमिति ॥ अद्भुतं दुर्बलैः प्रबलविनाशनादाश्चर्यम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ स एवमिति ॥ तुरङ्गोत्तमराजैः

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसूदनः ॥ सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ४ ॥ सोहं रिपुविनाशाय
विजयायाविचारयन् ॥ स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥ ५ ॥ अद्य तद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् ॥
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥ (अद्य संतर्पयिष्यामि पृथिवीं कपिशोणितैः) ॥ ६ ॥ स एवमुक्त्वा
ज्वलनप्रकाशं रथं तुरङ्गोत्तमराजयुक्तम् ॥ प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तं समारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥ स शङ्खभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादैः ॥ पुण्यैः स्तवैश्चाप्यभिपूज्यमानस्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥
स शैलजीमूतनिकाशरूपैर्मांसादनैः पावकदीप्तनेत्रैः ॥ बभौ वृतो राक्षसराजमुख्यो भूतैर्वृतो रुद्र इवासुरेशः ॥
॥ ९ ॥ ततो नगर्याः सहसा महौजा निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ महार्णवाभ्रस्तनितं ददर्श समुद्यतं पादपशैलहस्तम् ॥ १० ॥ तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्डमालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः ॥ बिभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठमुवाच सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

तुरङ्गश्रेष्ठतमैः युक्तम् । प्रकाशमानम् अलङ्कारैर्भासमानम् । वपुषा ज्वलन्तं स्वरूपत एव प्रकाशमानम् ॥ ७ ॥ स शङ्खेति ॥ आस्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादैः आस्फोटितं भुजास्फालनम् । क्ष्वेलितशब्दः शब्दमात्रपरः । आस्फोटितजनितशब्दैः सिंहनादैश्चेत्यर्थः । पुण्यैः चारुभिः ॥ ८ ॥ स इति ॥ काठिन्यसिद्धये शैलौपम्यम् । संकोचविकासार्हत्वसिद्ध्यै मेघौपम्यम् । रूपं शरीरम् । रुद्रस्यासुरेश्वरत्वं तामसप्रकृतित्वात् । तदुक्तं मैत्रायणीयानामुपनिषदि– यो ह वा अस्य तामसोंशः सोसौ रुद्र इति ॥ ९ ॥ तत इति ॥ महार्णवाभ्रस्तनितं महार्णवाभ्रयोरिव स्तनितं घोषो यस्येति तथा ॥ १० ॥ तदिति ॥ अ-

ति प्रचण्डम् अत्यन्तकोपनम् । भुजगेन्द्रबाहुः युद्धौत्सुक्येन प्रवर्धमानबाहुरित्यर्थः । पृथुश्रीः युद्धहर्षेण सञ्जातलक्ष्मीकः । सेनानुगतः स्वामिसंरक्षणाय सर्वतः समवेतसेनापरिवृतः । शस्त्रभृतां वरिष्ठं वीरभटतारतम्यज्ञमिति भावः ॥११॥ नानेति ॥ पताकाध्वजयोर्मात्रया भेदः । प्रथमं शस्त्रशब्दः उपात्तः प्रासादिभिन्नपरः । आयुधं धनुः । इन्द्रायुधमित्यादौ तथा प्रयोगात् । प्रासासिशूलायुधरूपैः शस्त्रैर्जुष्टमित्यर्थः । वज्रजुष्टमिति पाठान्तरम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ नानापताकाध्वजशस्त्रजुष्टमिति पाठः । शस्त्रशब्देन पठितव्यतिरिक्तान्यायुधान्युच्यन्ते ॥ १२ ॥ तत इति ॥ शक्रसमानवीर्य इत्यनेन वक्ष्यमाणं न भीतिमूलमिति द्योत्यते । बलप्रवेकं बलप्रवरम् । प्रवेकानुत्तमोत्तमा इत्यमरः । महात्मनां महाधैर्याणाम् ॥ १३ ॥ योसाविति ॥

नानापताकाध्वजशस्त्रजुष्टं प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ॥ सैन्यं गजेन्द्रोपमनागजुष्टं कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टम् ॥ १२ ॥ ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं बिभीषणः शक्रसमानवीर्यः ॥ शशंस रामस्य बलप्रवेकं महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम् ॥ १३ ॥ योसौ गजस्कन्धगतो महात्मा नवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ॥ प्रकम्पयन्नागशिरोभ्युपैति ह्यकम्पनं त्वेनमवेहि राजन् ॥ १४ ॥ योसौ रथस्थो मृगराजकेतुर्धून्वन् धनुः शक्रधनुःप्रकाशम् ॥ करीव भात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रः स इन्द्रजिन्नाम वरप्रधानः ॥ १५ ॥ यश्चैष विन्ध्यास्तमहेन्द्रकल्पो धन्वी रथस्थोतिरथोतिवीरः ॥ विस्फारयंश्चापमतुल्यमानं नाम्नातिकायोतिविवृद्धकायः ॥ १६ ॥ ॥

महात्मा महाकायः । नवोदितार्कोपमं ताम्रवक्त्रं यस्य स तथा । बालसूर्यमुखरागतुल्योस्य मुखराग इत्यर्थः । योसौ गजस्कन्धगतो दृश्यते स गजस्कन्धगतः स्वशरीरभारान्नागशिरः कम्पयन्नुपैति एनमकम्पनं रावणपुत्रमवेहि ॥१४॥ योसाविति ॥ मृगराजकेतुः सिंहध्वजः । धनुः धून्वन्नित्यनेन भुजबलाधिक्यमुच्यते । करीवेत्यनेन कायबलम् । करितुल्यत्वे हेतुरुग्रविवृत्तदंष्ट्र इति । वरप्रधानः ब्रह्मदत्तान्तर्धानवरप्रधानः । अनेन वरबलमुक्तम् ॥ १५ ॥ यश्चेति ॥ विन्ध्यादित्रयौपम्येन उन्नतत्वपरतेजोभिभावकत्वनिश्चलत्वान्युच्यन्ते । अतिरथः सहस्राश्वयुक्तत्वेनातिशयितरथः । अतिवीरः मायाबलाभावेपीन्द्रजितोप्यतिशयितवीर्यः । अतुल्यमानम् अतिशयितपरिमाणं चापम् । विस्फारयन् आकर्षन्नित्यर्थः । अत्रासावित्यध्याहार्यम् ॥ १६ ॥ ॥

योसौ नवेति ॥ नवार्कोदितताम्रचक्षुः नवोदितार्कताम्रचक्षुः । घण्टानिनदप्रणादं घण्टानिनदेन प्रकृष्टो नादः स्वनो यस्य तम् । खरमिति क्रियाविशेषणम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ योसाविति ॥ योसौ नवार्कोपमताम्रचक्षुरिति पाठः । घण्टानिनदप्रणादं घण्टानिनदेन प्रभूतो नादो यस्य तम् ॥ १७ ॥ योसौ हयमिति ॥ काञ्चनचित्रभाण्डं काञ्चनमयनानाविधाश्वाभरणम् । स्याद्भाण्डमश्वाभरण इत्यमरः । अत एव सन्ध्याभ्रगिरिप्रकाशं सन्ध्याभ्रयुक्तगिरिप्रकाशम् हयमारुह्य । मरीचिनद्धं किरणैर्बद्धं प्रासमुद्यम्य गर्जतीति पूर्वश्लोकादनुषज्यते । एष पिशाचः पिशाचनामकः ॥ १८ ॥ यश्चेति ॥ किंकरो वज्रवेगो यस्य तत् ङ्किंकरवज्रवेगम् । वज्रवेगादप्यधिकवेगमित्यर्थः। वृषेन्द्रं वृषभेन्द्रम्। योसौ प्रसिद्धोसावित्यर्थः। आयाति सोसौ त्रिशिरा इत्यपि पठन्ति॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ आयाति सोसौ त्रिशिरा यशस्वीति पाठः ॥ १९ ॥ असाविति ॥ पृथुव्यूढसुजातवक्षाः पृथु पीनं व्यूढं विशालं सुजातं सुन्दरं च वक्षो यस्य स तथोक्तः । समाहितः सन्नद्धः । धनुर्विस्फारयन् ज्यामवलम्ब्य कर्षन् । पुनर्लीलया विधून्वन् असौ कुम्भो भाति । अत्र यच्छब्दाप्रयोगः सन्निहितत्वादिति भाव्यम् ॥२०॥ यश्चेति ॥ जाम्बूनदवज्राभ्यामन्योन्यमिलिताभ्यां जुष्टम् अत एव दीप्तं ज्वालायुक्तम् । सधूमं सधूममिव स्थितम् । अभेदनिर्देशः सर्वथा सादृश्यप्रतिपत्तये। रक्षोबलकेतुभूतः रक्षोबलप्रधानभूत इत्यर्थः ॥२१॥ यश्चैष इति ॥ उदग्रः उन्नतः। नगशृङ्गैः साधनैः युध्यत इति नगशृङ्गयोधी । प्रतियोद्ध्रभावात् भुजकण्डूनिवृत्त्यर्थं नगैः सह युध्यत इति वार्थः ॥ २२ ॥ ॥ ॥ ॥

योसौ नवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्य घण्टानिनदप्रणादम् ॥ गजं खरं गर्जति वै महात्मा महोदरो नाम स एष वीरः ॥
॥ १७ ॥ योसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्डमारुह्य सन्ध्याभ्रगिरिप्रकाशम् ॥ प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धं पिशाच एषोशनितुल्यवेगः
॥ १८॥ यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य विद्युत्प्रभं किंकरवज्रवेगम् ॥ वृषेन्द्रमास्थाय गिरिप्रकाशमायाति
योसौ त्रिशिरा यशस्वी ॥ १९ ॥ असौ च जीमूतनिकाशरूपः कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः ॥ समाहितः
पन्नगराजकेतुर्विस्फारयन् भाति धनुर्विधून्वन् ॥ २० ॥ यश्चैष जाम्बूनदवज्रजुष्टं दीप्तं सधूमं परिघं प्रगृह्य ॥
आयाति रक्षोबलकेतुभूतस्त्वसौ निकुम्भोद्भुतघोरकर्मा ॥ २१ ॥ यश्चैष चापासिशरौघजुष्टं पताकिनं पावकदीप्तरूपम्
॥ रथं समास्थाय विभात्युदग्रो नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी ॥२२॥ ॥

अथ त्रिभिः रावणं दर्शयति–यश्चेति ॥ विवृत्तनेत्रैः घूर्णितनेत्रैः ॥२३॥२४॥ असाविति॥ नगेन्द्रः हिमवान् ॥२५॥ अहो इति। दीप्तः कान्तिमान्। महातेजाः महाप्रतापः ॥२६॥ आदित्य इति ॥ आदित्य इव रश्मिभिः दुष्प्रेक्षः प्रेक्षितुमशक्यः। अनयोरर्थयोर्भिन्नवाक्यत्वान्न पुनरुक्तिशङ्का ॥२७॥ देवेत्यर्धद्वय-

यश्चैष नानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेन्द्रमृगाश्ववक्त्रैः ॥ भूतैर्वृतो भाति विवृत्तनेत्रैः सोसौ सुराणामपि दर्पहन्ता ॥
॥ २३ ॥ यत्रैतदिन्द्रप्रतिमं विभाति च्छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ॥ अत्रैष रक्षोधिपतिर्महात्मा भूतैर्वृतो रुद्र इवा-
वभाति ॥ २४ ॥ असौ किरीटी चलकुण्डलास्यो नगेन्द्रविन्ध्योपमभीमकायः ॥ महेन्द्रवैवस्वतदर्पहन्ता रक्षोधिपः सू-
र्य इवावभाति ॥ २५ ॥ प्रत्युवाच ततो रामो बिभीषणमरिन्दमम् ॥ अहो दीप्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥
आदित्य इव दुष्प्रेक्षो रश्मिभिर्भाति रावणः ॥ सुव्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजःसमावृतम् ॥ २७ ॥ देवदानववीराणां
वपुर्नैवंविधं भवेत् ॥ यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतत्प्रकाशते ॥ २८ ॥ सर्वे पर्वतसंकाशाः सर्वे पर्वतयोधिनः ॥ सर्वे दी-
प्तायुधधरा योधाश्चास्य महौजसः ॥ २९ ॥ भाति राक्षसराजोसौ प्रदीप्तैर्भीमविक्रमैः ॥ भूतैः परिवृतस्तीक्ष्णैर्देहवद्भि-
रिवान्तकः ॥ ३० ॥ दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः ॥ अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसंभवम् ॥ ३१ ॥
एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥३२॥ ततः स रक्षोधिपति-
र्महात्मा रक्षांसि तान्याह महाबलानि ॥ द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशङ्काः ॥ ३३ ॥ इहागतं मां स-
हितं भवद्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदं विदित्वा ॥ शून्यां पुरीं दुष्प्रसहां प्रमथ्य प्रधर्षयेयुः सहसा समेताः ॥ ३४ ॥ ॥

मेकं वाक्यम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ भातीति ॥ देहवद्भिः प्रशस्तदेहैः ॥३० ॥ दिष्ट्येति ॥ क्रोधं विमोक्ष्यामि क्रोधं कार्यकरं करिष्यामीत्यर्थः। मम दृष्टिपथं गत इति पाठः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तत इति ॥ द्वारेषु अन्तर्द्वारेषु। चर्यायुक्ताः पुरद्वारेषु गोपुरपार्श्वयोः भटनिवासार्थं निर्मिता विशङ्कटा गृहाः चर्यागृहाः। सुनिर्वृताः अतिसुखिताः ॥ ३३ ॥ इहेति ॥ इहागतं मां विदित्वा इदम् छिद्रं विदित्वेत्यन्वयः। प्रमथ्य ध्वंसित्वा। प्रधर्षयेयुः अभिभवेयुः ॥३४॥

विसर्जयित्वेति ॥ सहितान् संमिलितान् । महाझषः महामत्स्यः ॥ ३५ ॥ तमिति ॥ दीप्ते इषुचापे यस्य स तथोक्तः । युधि संयुगनिमित्तं सहसा आपतन्तं राक्षसेन्द्रं समीक्ष्य महीधराग्रं पर्वतशृङ्गं समुत्पाट्य हरीशः सुग्रीवः रक्षोधिपतिं दुद्राव ॥ ३६ ॥ बहुवृक्षसानुं बहुतरुयुततटम् । तपनीयं स्व-

विसर्जयित्वा सहितान् ततस्तान् गतेषु रक्षःसु यथानियोगम् ॥ व्यदारयद्वानरसागरौघं महाझषः पूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३५ ॥ तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य दीप्तेषुचापं युधि राक्षसेन्द्रम् ॥ महत्समुत्पाट्य महीधराग्रं दुद्राव रक्षोधिपतिं हरीशः ॥३६॥ तच्छैलशृङ्गं बहुवृक्षसानुं प्रगृह्य चिक्षेप निशाचराय ॥ तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य बिभेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ३७ ॥ तस्मिन् प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षे शृङ्गे विकीर्णे पतिते पृथिव्याम् ॥ महाहिकल्पं शरमन्तकाभं समाददे राक्षसलोकनाथः ॥ ३८ ॥ स तं गृहीत्वानिलतुल्यवेगं सविस्फुलिङ्गज्वलनप्रकाशम् ॥ बाणं महेन्द्राशनितुल्यवेगं चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः ॥ ३९ ॥ स सायको रावणबाहुमुक्तः शक्राशनिप्रख्यवपुः शिताग्रः ॥ सुग्रीवमासाद्य बिभेद वेगाद्गुहेरिता क्रौञ्चमिवोग्रशक्तिः ॥४०॥ स सायकार्तो विपरीतचेताः कूजन् पृथिव्यां निपपात वीरः ॥ तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥ ४१ ॥ ततो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रस्तथर्षभो ज्योतिमुखो नभश्च ॥ शैलान् समुद्यम्य विवृद्धकायाः प्रदुद्रुवुस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४२ ॥ तेषां प्रहारान् स चकार मोघान् रक्षोधिपो बाणगणैः शिताग्रैः ॥ तान्वानरेन्द्रानपि बाणजालैर्बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ॥ ४३ ॥ ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमकायाः ॥ ततस्तु तद्वानरसैन्यमुग्रं प्रच्छादयामास स बाणजालैः ॥ ४४ ॥ ॥

र्णम् ॥ ३७ ॥३८ ॥ स तमिति ॥ महेन्द्राशनिः वज्रम् । औत्पातिकाशनिव्यावृत्तये महेन्द्रपदम् । यद्वा महेन्द्रसंबन्धोक्तिः अभ्यासवता मुक्तत्वेनातिवेगद्योतनाय ॥ ३९ ॥ स इति ॥ शक्राशनिप्रख्यं शक्राशनितुल्यं वपुः यस्य । गुहः स्कन्दः ॥४०॥ स सायकेति ॥ विपरीतचेताः भ्रान्तचित्तः ॥४१॥ तत इति ॥ ज्योतिमुखः ज्योतिर्मुखः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ते वध्यमाना इति । ते प्रसिद्धाः वानरेन्द्राः न तु क्षुद्राः। वध्यमानाः प्रथमं हिंस्यमानाः । ततः पतिताः रावणवेगेन भूमौ पतिताः । तदानीं रक्षकान्तरादर्शनान्नानद्यमानाः अतिशयेन नदन्तः। “ नदतेर्यङ्सित्यङोः” इत्यभ्यासदिर्घादिः । भयशल्यविद्धाः तादृशहेतुना भयरूपशल्येन विद्धाः। शाखामृगाः वनचारित्वेनैतादृशभयानभिज्ञाः । उक्तप्रकारेण सायकार्ताः सन्तः शरण्यं सर्वलोकशरणार्हं रामं शरणं जग्मुः । एतेनार्तिरेव शरणागतिप्रयोजिका। ननु देशकालाधिकारिफलनियमा इत्युक्तम् ॥४५॥ शरणागतकृत्यमुक्त्वा शरण्यकृत्यमाह–तत इति ॥ अत्र प्रपत्तेरार्तप्रपत्तिरूपतया तस्याः सद्यः फलद्योतनाय तत इत्युक्तम्। प्रपत्त्युत्तरक्षण इत्यर्थः। महात्मा शरणागतितारतम्यज्ञः। धनुष्मान् प्रशस्तधनुष्कः। धनुर्युद्धसमर्थ इत्यर्थः। सहसेत्यनेन लक्ष्मणः स्वयं गमिष्यामीति तत्पूर्वमेवाश्रितत्राणत्वरया सधनुः सन् जगामेत्युक्तम् । तथैव घट्टकुट्यां प्रभातमित्याह–तमिति। तम् आर्तत्राणत्वरया व्रजन्तम्। लक्ष्मणः

ते वध्यमानाः पतिताः प्रवीरा नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः ॥ शाखामृगा रावणसायकार्ता जग्मुः शरण्यं शरणं
स्म रामम् ॥४५॥ ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मानादाय रामः सहसा जगाम ॥ तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य उवाच
वाक्यं परमार्थयुक्तम् ॥ ४६ ॥ काममार्यः सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः ॥ विधमिष्याम्यहं नीचमनुजानीहि मां
प्रभो ॥ ४७ ॥ तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ ४८ ॥ गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ॥ रावणो
हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः ॥ ४९ ॥ ॥ ॥

रामकैङ्कर्यलक्ष्मीसंपन्नः। अनतिक्रमणाय नाथं निगलयति–प्राञ्जलिरिति। अभ्युपेत्य अभितः उपेत्य। अनेन लक्ष्मणागमनमजानन्निव नानापार्श्वेषु रामोनेकधा जगामेत्यवगम्यते। परमार्थयुक्तं न तूपचारयुक्तम्। यद्वा परमार्थयुक्तं परमप्रयोजनयुक्तम् । शेषिविषये कैङ्कर्यस्य शेषभूतं प्रति परमप्रयोजनत्वात् ॥ ॥४६॥ काममिति ॥ हे आर्य, अस्य दुरात्मनः परदारापहरणविषयदुर्बुद्धेः कामं प्रकामं वधाय सुपर्याप्तः सुशक्तोसि । तथापि नीचं भवता योद्धुमनर्हम् । अहं वधिष्यामि। महाबलेन भवता नीचोयं न योद्धुमर्ह इति भावः। यद्वा अस्य वधायाहं पर्याप्तोस्मीत्यर्थः । तर्हि स्वयमेव गम्यतामित्यत्राह–अनुजानीहीति । प्रभो शेषिन्। त्वं मां शेषभूतमनुजानीहि। भवदनुज्ञामन्तरेण मे कार्यकरणं स्वरूपहानिकरमिति भावः ॥४७॥ तमिति ॥ तं विनयेनोक्तवन्तम् । महातेजाः तादात्विकहर्षप्रकर्षावेदकसुषमाविशेषशाली। सति कस्मिंश्चिद्विधेये सति । अपराक्रमः निवृत्तपराक्रमः अब्रवीत्॥४८॥ गच्छेत्यादि ॥ नीचपद-

सूचितमनादरं वारयति-यत्नपर इति। युद्धे यत्नपरश्चापि भव यथा युद्धपरोसि एवं यत्नपरो भव। यत्नस्यावश्यकर्तव्यत्वे हेतुमाह-रावण इति। अद्भुतपराक्रमः एवमस्त्रमाददान इवापरं सन्धत्ते तत्संदधान इवापरं मोक्षयतीत्यर्थः। त्रिलोक्येव त्रैलोक्यं तेन। युगपद्युद्धप्रवृत्तेनेत्यर्थः।यत्नपरत्वं दर्शयति-तस्येति ॥ चक्षुषा तस्य रावणस्य। छिद्राणि अनवधानादीनि। यत्नान्मार्गस्व अन्वेषयस्व। स्वच्छिद्राणि लक्षय काकान् पश्येतिवत् स्वस्य छिद्राणि यथा न भवन्ति तथा

तस्य च्छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय ॥ चक्षुषा धनुषा यत्नाद्रक्षात्मानं समाहितः ॥५०॥ राघवस्य
वचः श्रुत्वा परिष्वज्याभिपूज्य च ॥ अभिवाद्य ततो रामं ययौ सौमित्रिराहवम् ॥ ५१ ॥ स रावणं
वारणहस्तबाहुर्ददर्श दीप्तोद्यतभीमचापम् ॥ प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालैस्तान्वानरान् भिन्नविकीर्णदेहान्
॥५२॥ तमालोक्य महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ॥ निवार्य शरजालानि प्रदुद्राव स रावणम् ॥५३॥
रथं तस्य समासाद्य भुजमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ त्रासयन् रावणं धीमान् हनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः ॥ अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥ ५५ ॥ एष मे दक्षिणो
बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः ॥ विधमिष्यति ते देहाद्भूतात्मानं चिरोषितम् ॥ ५६ ॥ श्रुत्वा हनुमतो
वाक्यं रावणो भीमविक्रमः ॥ संरक्तनयनः क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५७ ॥ क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं
स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि ॥ ततस्त्वां ज्ञातविक्रान्तं नाशयिष्यामि वानर ॥ ५८ ॥ ॥

पश्येत्यर्थः। यद्वा लक्षय लक्षित्वा प्रच्छादयेत्यर्थः। एवं समाहितः सावधानः सन् धनुषा आत्मानं रक्ष ॥४९॥५०॥ राघवस्येति ॥ अभिपूज्य प्रदक्षिणीकृत्येत्यर्थः ॥ ५१ ॥५२॥ तमालोक्येति ॥ भृत्ये मयि विद्यमाने कथमसौ समासीदतीति जगामेत्यर्थः ॥५३॥ ५४ ॥ देवेति ॥ भयं प्राप्तमिति शेषः ॥५५॥ एष इति ॥ पञ्चशाखः पञ्चाङ्गुलिकः। भूतात्मानं विधमिष्यति निष्क्रामयिष्यति। धातूनामनेकार्थत्वात् ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ क्षिप्रमिति ॥ स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहीति सोपालम्भोक्तिः। हनुमान् रावणमुपसृत्य प्रहृतवानित्येतादृशीं किर्तिमवाप्स्यसीत्यर्थः। ज्ञातविक्रान्तं ज्ञातविक्रमम्। भावे क्तः ॥ ५८ ॥

रावणस्येति ॥ रावणवचनं ज्ञात्वा तदुचितमुत्तरमाह–प्रहृतं हीति ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ ज्ञातविक्रान्तमिति वचनं सोल्लुण्ठनं ज्ञात्वा तदुचितमुत्तरमाह–प्रहृतमिति ॥ ५९ ॥ एवमुक्त इति ॥ मर्मोद्घाटनेन संजातरोष इत्यर्थः ॥ ६० ॥ स इत्यादि ॥ तलेनेति । रावणेन तलेन प्रहरणात् स्वयमपि तलेनैव प्राहरदिति भावः ॥ ६१ ॥ तत इति ॥ समाधूतः कम्पितः अभूत् । भूमिचले भूकम्पे सति अचलः गिरिर्यथा

रावणस्य वचः श्रुत्वा वायुसूनुर्वचोब्रवीत् ॥ प्रहृतं हि मया पूर्वमक्षं स्मर सुतं तव ॥५९॥ एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ६० ॥ स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः ॥ स्थित्वा मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः ॥ आजघानाभिसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥ ६१ ॥ ततस्तलेनाभिहतो वानरेण महात्मना ॥ दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥६२॥ संग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम् ॥ ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सहासुरैः ॥ ६३ ॥ अथाश्वास्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥६४॥ साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोसि मे रिपुः ॥ रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥ धिगस्तु मम वीर्येण यस्त्वं जीवसि रावण ॥ सकृत्तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे ॥ ततस्त्वां मामिका मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम् ॥ ६६ ॥ ततो मारुतिवाक्येन क्रोधस्तस्य तदाज्वलत् ॥ ६७ ॥ संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान् ॥ ६८ ॥ ॥

॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ धिगस्त्विति ॥ वीर्येणेति द्वितीयाभाव आर्षः । यस्त्वं जीवसि । मया प्रहृतोपीति शेषः । सकृत्तु प्रहर। शत्रुणा प्रहृते पुनरात्मनः प्रहारो विक्रमपरिपाटीमाटीकत इति हनुमतो हृदयम् । इदानीमिति। पूर्वं मदनवधानाज्जीवसीति भावः । दुर्बुद्धे प्रहारतारतम्यानभिज्ञ । किं किमर्थं विकत्थसे श्लाघसे । “ कत्थ, श्लाघायाम् ” इति धातुः । यमक्षयं यमनिलयम् । निलयापचयौ क्षयावित्यमरः ॥ ६६ ॥ तत इति ॥ ततः तेनेत्यर्थः । अन्यथा तदाशब्दोतिरिच्येत । अज्वलत् ववृध इत्यर्थः ॥ ६७ ॥ संरक्तेति ॥ वीर्यवान् बलवान् । वीर्यं बले चेत्यमरः ॥ ६८ ॥ ॥

हनुमानित्यर्धम् ॥ व्यूढे विशाले ॥ ६९ ॥ विह्वलमिति ॥ विह्वलं मूर्छितम् । महाबलं तदानीमपि परैरनभिभवनीयम् ॥७०॥ राक्षसानामिति ॥ आदीपयामास आसमन्ताज्ज्वालयामास ॥ ७१ ॥ स इति ॥ समायस्तः आयासवान् । एकेनेत्यनेन इतरेण शरवारणं गम्यते ॥ ७२ ॥ हनुमानपीत्यादि ॥

हनुमान् वक्षसि व्यूढे संचचाल हतः पुनः ॥ ६९ ॥ विह्वलं तु तदा दृष्ट्वा हनुमन्तं महाबलम् ॥ रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात् ॥ ७० ॥ राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ पन्नगप्रतिमैर्भीमैः परमर्मातिभेदिभिः ॥ शरैरादीपयामास नीलं हरिचमूपतिम् ॥ ७१ ॥ स शरौघसमायस्तो नीलः कपिचमूपतिः ॥ करेणैकेन शैलाग्रं रक्षोधिपतयेऽसृजत् ॥ ७२ ॥ हनुमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः ॥ विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७३ ॥ नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ अन्येन युध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम् ॥ ७४ ॥ रावणोपि महातेजास्तच्छृङ्गं सप्तभिः शरैः ॥ आजघान सुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विकीर्णं पपात ह ॥ ७५ ॥ तद्विकीर्णं गिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा हरिचमूपतिः ॥ कालाग्निरिव जज्वाल क्रोधेन परवीरहा ॥ ७६ ॥ सोऽश्वकर्णान् धवान् सालांश्चूतांश्चापि सुपुष्पितान् ॥ अन्यांश्च विविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेप संयुगे ॥ ७७ ॥ स तान् वृक्षान्समासाद्य प्रतिचिच्छेद रावणः ॥ अभ्यवर्षत्सुघोरेण शरवर्षेण पावकम् ॥ ७८ ॥ अभिवृष्टः शरौघेण मेघेनेव महाचलः ॥ ह्रस्वं कृत्वा तदा रूपं ध्वजाग्रे निपपात ह ॥ ७९ ॥ पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समुपस्थितम् ॥ जज्वाल रावणः क्रोधात्ततो नीलो ननाद च ॥ ८० ॥ ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम् ॥ लक्ष्मणोथ हनूमांश्च दृष्ट्वा रामश्च विस्मिताः ॥ ८१ ॥ ॥

रावणम् अब्रवीदिति संबन्धः । अभिधावनम् अन्येन युद्ध्यमानं प्रत्यभिधावनमित्यर्थः । अत्रेतिकरणं द्रष्टव्यम् ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ स तानिति ॥ समासाद्य समीपं प्राप्य । पावकिं पावकपुत्रम् ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ पावकात्मजमिति ॥ जज्वाल चुक्रोधेत्यर्थः ॥ ८० ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ ध्वजाग्र इति ॥ हनुमांश्च विस्मितः । न मारुतेरस्ति गतिप्रमाणमिति प्रसिद्धगतिलाघवो हनुमानपि संजातविस्मयोभूदित्यर्थः ॥ ८१ ॥

रावणोपीति ॥ आहारयामास आददे ॥ ८२ ॥ तत इति ॥ लब्धलक्षाः लब्धहर्षविषयाः । नीलमेव पश्यन्त इति वार्थः ॥ ८३ ॥ वानराणां चेति ॥ चशब्देन नीललाघवं समुच्चीयते । संभ्रमः व्यग्रता । प्रत्यपद्यत अजानात् । आग्नेयेन आग्नेयमन्त्रेण । संयुक्तम् अभिमन्त्रितम् ॥८४॥८५ ॥ कप इत्यादि ॥ कपे चञ्चलप्रकृते इत्यर्थः। अतो न वानरवधेन पौनरुक्त्यम्। तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकश इति ॥ लाघवातिशयेन सृजसीव दृश्यस इत्यर्थः।

रावणोपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः ॥ अस्त्रमाहारयामास दीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८२ ॥ ततस्ते चुक्रुशुर्हृष्टा लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ॥ नीललाघवसंभ्रान्तं दृष्ट्वा रावणमाहवे ॥८३॥ वानराणां च नादेन संरब्धो रावणस्तदा ॥ संभ्रमाविष्टहृदयो न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥ ८४ ॥ आग्नेयेनाथ संयुक्तं गृहीत्वा रावणः शरम् ॥ ध्वजशीर्षस्थितं नीलमुदैक्षत निशाचरः ॥ ततोब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥८५॥ कपे लाघवयुक्तोसि मायया परयानया ॥ जीवितं खलु रक्षस्व यदि शक्तोसि वानर ॥८६॥ तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकशः ॥ ८७ ॥ तथापि त्वां मया युक्तः सायकोस्त्रप्रयोजितः ॥ जीवितं परिरक्षन्तं जीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥ ८८ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः ॥ संधाय बाणमस्त्रेण चमूपतिमताडयत् ॥ ८९ ॥ सोस्त्रयुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडितः ॥ निर्दह्यमानः सहसा निपपात महीतले ॥ ९० ॥ पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापि तेजसा ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौ न च प्राणैर्व्ययुज्यत ॥ ९१ ॥ विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः ॥ रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९२ ॥ ॥

ननु तानि तानीत्यनेन रावणो नीलं नानातनुपरिग्रहयुक्तं मन्यत इत्यवगम्यत इति चेन्न। कपे लाघवयुक्तोसीति पूर्वोक्तिविरोधात्। युक्तः प्रयुक्तः। अस्त्रप्रयोजितः अस्त्रमन्त्रेणाभिमन्त्रितः । जीवितं परिरक्षन्तं त्वां जीवितात् भ्रंशयिष्यतीत्यन्वयः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकश इत्यभिधानात् ध्वजकिरीटादिषु नीलस्य वेगातिशयकृतमवस्थानम् युगपदनेकशरीरपरिग्रहकृतमिति रावणो भ्रान्तवानित्यवगम्यते ॥ ८६ ॥ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ पितृमाहात्म्येति ॥ पितृमाहात्म्यम् अग्नेः पुत्रतया दयालुत्ववैभवम् ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ॥

आसाद्येति ॥ सौमित्रिमासाद्य । वारयित्वा सुग्रीवादीन् वारयित्वा । रणमध्ये ज्वलन् स्थितः धनुर्विस्फारयामासेत्यन्वयः ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ स तस्येति ॥ रक्षः रक्षोरूपः राजेत्यन्वयः ॥९५॥ दिष्ट्येति ॥ अन्तगामी विनाशेच्छुः अत एव विपरीतबुद्धिः त्वं दिष्ट्या यदृच्छया दृष्टिमार्गं प्राप्तोसि । संसाद्यमानः पीडयमानः ॥ ९६ ॥ तमिति ॥ अविस्मयानः तृणीकुर्वन्नित्यर्थः । उद्वृत्तसिताग्रदंष्ट्रम् उन्नतधवलाग्रदंष्ट्रम् । न गर्जन्ति नात्मश्लाघां कुर्वन्तीत्यर्थः ।

आसाद्य रणमध्ये तु वारयित्वा स्थितो ज्वलन् ॥ धनुर्विस्फारयामास कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥९३॥ तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम् ॥ अभ्येहि मामेव निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हः ॥९४॥ स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा ॥ आसाद्य सौमित्रिमवस्थितं तं कोपान्वितो वाक्यमुवाच रक्षः ॥९५॥ दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं प्राप्तोन्तगामी विपरीतबुद्धिः ॥ अस्मिन् क्षणे यास्यसि मृत्युदेशं संसाद्यमानो मम बाणजालैः ॥९६॥ तमाह सौमित्रिरविस्मयानो गर्जन्तमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ॥ राजन्न गर्जन्ति महाप्रभावा विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ ॥ ९७ ॥ जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं च पराक्रमं च ॥ अवस्थितोहं शरचापपाणिरागच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥९८॥ स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज रक्षोधिपः सप्त शरान् सुपुङ्खान् ॥ तान् लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खैश्चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः ॥ ९९ ॥ तान् प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान् ॥ लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम ससर्ज चान्यान्निशितान् पृषत्कान् ॥ १०० ॥ स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं रामानुजः कार्मुकसंप्रयुक्तम् ॥ क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णिभल्लैः शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥ १०१ ॥ ॥

पापकृतां वरिष्ठेति हेतुगर्भितविशेषणम् । पापकृद्वरिष्ठत्वाद्विकत्थस इत्यर्थः ॥ ९७ ॥ जानामीति ॥ सोपहासोक्तिः । तव विजने यतिवेषेण सीतामपहृतवतः । प्रतापं शत्रुभीषणत्वं पराक्रमं शौर्यम् । शौर्योद्योतौ पराक्रमावित्यमरः । मोघविकत्थनेन निष्फलश्लाघनेन ॥ ९८ ॥ स इति ॥ निशिते अग्रधारे अग्रपार्श्वे येषां तैः ॥९९॥ तानिति ॥ पृषत्कान् बाणान् ॥१००॥ स इति ॥ कार्मुकसंप्रयुक्तं चापसंहितम् । क्षुरेति । क्षुरैः नापित शस्त्राकारैः अर्धचन्द्रैः

अर्धचन्द्राकारमुखैः। उत्तमैः कर्णिभिः कर्णिशरैः। भल्लैः उभयपार्श्वधारैः। शरान् रावणशरान् चिच्छेद। तथापि न चुक्षुभे न कलुषितहृदयोभूत्॥१०१॥ स इति ॥ त्रिदशारिराजः राक्षसराजः ॥ १०२ ॥ स लक्ष्मण इति॥ महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगान् महेन्द्रवज्रस्याशनेश्च तुल्यवेगान् ॥ १०३ ॥ १०४॥

स बाणजालानथ तानि तानि मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः॥ विसिष्मिये लक्ष्मणलाघवेन पुनश्च बाणान्निशितान् मुमोच
॥१०२॥ स लक्ष्मणश्चाशु शरान् शिताग्रान् महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगान्॥संधाय चापे ज्वलनप्रकाशान् ससर्ज
रक्षोधिपतेर्वधाय ॥ १०३॥ स तान् प्रचिच्छेद हि राक्षसेन्द्रश्छित्त्वा च ताँल्लक्ष्मणमाजघान ॥ शरेण कालाग्निसमप्रभेण
स्वयम्भुदत्तेन ललाटदेशे ॥१०४॥ स लक्ष्मणो रावणसायकार्तश्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य ॥ पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य
कृच्छ्राच्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः॥ १०५॥ निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः॥ स
सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥ १०६॥ स कृत्तचापः शरताडितश्च मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः॥
जग्राह शक्तिं समुदग्रशक्तिः स्वयम्भुदत्तां युधि देवशत्रुः॥ १०७॥ स तां विधूमानलसन्निकाशां वित्रासिनीं
वानरवाहिनीनाम्॥ चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः॥ १०८॥ तामापतन्तीं भरतानुजोग्रैर्जघान
बाणैश्च हुताग्निकल्पैः॥ तथापि सा तस्य विवेश शक्तिर्बाह्वन्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥१०९॥ स शक्तिमान् शक्तिसमाहतः
सन् मुहुः प्रजज्वाल रघुप्रवीरः॥ तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम्॥ ११०॥
हिमवान्मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः॥ शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न संख्ये भरतानुजः॥ १११॥ ॥

स लक्ष्मण इति ॥ शिथिलं यथा भवति तथा प्रगृह्य ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ स कृत्तेति ॥ मेदेत्यकारान्तत्वमार्षम्। समुदग्रशक्तिः समधिकसामर्थ्यः ॥ ॥ १०७ ॥ स तामिति ॥ राक्षसराष्ट्रनाथः राक्षससमूहनाथः॥ १०८॥ तामिति॥ बाह्वन्तरं वक्षः ॥ १०९ ॥ स इति ॥ विह्वलन्तं मुह्यन्तम् ॥११०॥ लक्ष्मणं भुजाभ्यामुद्धर्तुमुद्युक्तं रावणमृषिः परिहसति–हिमवानिति ॥ शक्यमित्यव्ययम्। हिमवान् धैर्येण हिमवानिवेति। समस्तधीरोपमानभूतो हिम-

वानपि रावणस्य भुजाभ्यामुद्धर्तुं शक्यम् । तदेकदेशस्य कैलासस्य पुरा चालितत्वात् । मन्दरः सकलसागरप्रधानगभीरतरक्षीरोदक्षोभणक्षमोपि मन्दरो वा भुजाभ्यामुद्धर्तुं शक्यम् । स्वनिर्जितैरेव निर्जरैरमृतमथने जर्झरितत्वात्। मेरुः सकलकुलाचलवलयललामभूतोपि मेरुस्तथा कर्तुं शक्यम्। वायुनैव तच्छिखरस्य लङ्काया अकूपारकुक्षौ निक्षिप्तत्वात्। त्रैलोक्यं पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णमुत्तीर्णपरिमाणान्तरं त्रैलोक्यमपि तथा कर्तुं शक्यम् । तदेकदेशधरण्या हिरण्याक्षेण कक्षीकृतत्वात् । सहामरैः त्रैलोक्यनिर्वाहकगीर्वाणैः सहितमपि तथा कर्तुं शक्यम् । तदधिपतेर्निजतनुजेनैव निगृहीतत्वात्। भरतानुजः रामानुजानुजः। रामचतुर्थभाग इत्यर्थः। रामचतुर्थभागोद्धरणेप्यशक्तः कथं रामेण योद्धुं शक्नोतीति भावः। अयोध्याकाण्डे पञ्चपञ्चाशे—सीतामादाय गच्छ त्वमग्रतो भरताग्रजेति वचनं बहुव्रीह्योक्तम् । भुजाभ्यामित्यनेन हिमवदादयो द्वाभ्यामेवोद्धर्तुं शक्यम् । अयं तु विंशतिभुजैरपि न शक्यत इति सूच्यते । रिपूणामप्रकम्प्योपीत्यनुवादात् । सपरिकरेणापि रावणेन न शक्यमित्यपि सिद्धम्। कथं तर्हि हनुमतोद्धृत इत्यत्राह—संख्य इति । दुर्हृदयैनोद्धर्तुं शक्य इत्यर्थः । अतएव वक्ष्यति—वायुसूनोः सुहृत्त्वेनेति। अनेन हिमवदादिभ्योपि संख्ये पतितस्य लक्ष्मणशरीरस्य गरीयस्तोक्ता ॥ १११ ॥

शक्त्या ब्राह्म्यापि सौमित्रिस्ताडितस्तु स्तनान्तरे ॥ विष्णोरचिन्त्यं स्वं भागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ॥ ११२ ॥

कुतोस्येतादृशी गरीयस्तेत्यत्राह—शक्त्येति ॥ ब्राह्म्या ब्रह्मसंबन्धिन्या शक्त्या । स्तनान्तरे वक्षसि सौमित्रिस्ताडितः सन् विष्णोर्भागम् अंशभूतम् अचिन्त्यम् ईदृक्तया इयत्तया च चिन्तयितुमशक्यम्। स्वमात्मानं स्वस्वरूपं, स्वात्माप्येनं विगर्हत इति तथा प्रयोगात् । स्वात्मांश इति गुरुव्यवहाराच्च । प्रत्यनुस्मरत् स्मृतवान् । स्वस्वरूपस्मरणातिरिक्तव्यापाराकरणोक्त्या स्वाभाविकमेवास्येदं गुरुत्वमित्युक्तम् । यत्तु स्वकीयांशस्मरणेन हेतुना लक्ष्मणेन स्वशरीरस्य गरीयस्त्वं संपादितमित्यनेनोक्तमिति । तन्न । अपदार्थत्वादवाक्यार्थत्वाच्च । स्वरूपस्मरणस्य गरीयस्त्वं प्रति कारणताग्राहकप्रमाणाभावाच्च । यदपि विपत्परिहारार्थं भगवन्तं स्वमूलकारणं विष्णुमस्मरदित्यर्थ इति तदपि न । स्वस्यैव विष्णुरूपत्वेन विपत्परिहारान्तराभावात् । ननु मनुष्यभावना क्रियमाणा विरुध्येत यदि स्वतो गौरवं भजेत, अतो विष्णुस्मरणमिति चेन्न । मानसभावनाया अपि लौकिकैरज्ञातत्वेन एवमपि मनुष्यभावनाया अनुपायात् । अतः अपर्यनुयोज्यवस्तुस्वभावेनैव भक्ताभक्तेषु गरीयस्तागरीयस्ते । अत एवाऽचिन्त्यमित्युक्तम् ॥ ११२ ॥ ॥ ॥ ॥

ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः ॥ तं पीडयित्वा बाहुभ्यामप्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥ अथैवं वैष्णवं भागं
मानुषं देवमास्थितम् ॥ ११३ ॥ अथ वायुसुतः क्रुद्धो रावणं समभिद्रवत् ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पे-
न मुष्टिना ॥ ११४ ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौ चचाल च पपात च ॥११५॥
आस्यैः सनेत्रश्रवणैर्ववाम रुधिरं बहु ॥११६॥ विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत्॥ विसंज्ञो मूर्छित-
श्चासीन्न च स्थानं समालभत्॥११७॥ विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमम्॥ ऋषयो वानराः सर्वे नेदुर्देवाः
सवासवाः॥११८॥ हनुमानपि तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ॥ अनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥११९॥

वस्तुस्वरूपस्यैवंविधत्वात्तोलयितुमशक्तोभवदित्युपसंहरति—तत इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ यतः स्वाभाविकमेव गरीयस्त्वं ततो हेतोः लङ्घने उद्धरणे अप्रभुः असमर्थः । अथ रणे पतनानन्तरं देवकण्टकः रावणः मानुषं देहमास्थितं दानवदर्पघ्नं वैष्णवं भागं सौमित्रिं भुजाभ्यां पीडयित्वा ततः वैष्णवभागरूपत्वाद्धेतोः लङ्घने अप्रभुरभवदित्यन्वयः । अत्रापि विशेषणसामर्थ्याद्वस्तुस्वरूपकृतमेवाकम्प्यत्वमित्युक्तम् । ननु च कथमंशसंभवः विष्णुस्वरूपस्य निरवयवत्वात् । सत्यम् । स्वरूपेण नांशत्वमुच्यते, किन्तु गुणाविर्भावतारतम्यात् । गुणैः षड्भिस्त्वेतैः प्रथमतरमूर्तिस्तव बभौ ततस्तिस्रस्तेषां त्रियुगयुगलैर्हि त्रिभिरभूत् । व्यवस्थायां चैषां ननु वरद साविष्कृतिवशात् भवान् सर्वत्रैव त्वगणितमहामङ्गलगुणः ॥ इत्यभियुक्तैरुक्तत्वात् । मानुषरूपत्वं चास्य मानुषसमानाकृतिकत्वम् ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ तेनेत्यादि ॥ जानुभ्यां रथभूमावपतत् । अथ चचाल । ततः पपात अशयिष्ट । दशभिरास्यैः रुधिरं ववाम । सनेत्रश्रवणैरित्यनेन नेत्रेभ्यः श्रवणेभ्यश्च रुधिरं ववामेत्युच्यते ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ विघूर्णमान इति॥ किंचित्कालं विघूर्णमानः भ्रमन्। पुनर्निश्चेष्टः सन् रथोपस्थे रथमध्ये। उपाविशत् स्थितः । ततो मूर्छितः अत एव विसंज्ञः संज्ञाशून्यश्चासीत् । पुनः संज्ञां लब्ध्वापि स्थानं स्थितिम्। नालभत् नालभत चचालेत्यर्थः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ रथोपस्थ उपाविशदिति । रथोपर्यवस्थानाभिधानात्पुना रथारोहणमवगम्यते ॥ ११७ ॥ विसंज्ञमिति ॥ नेदुः हर्षेणेति शेषः ॥ ११८ ॥ हनुमानिति ॥ अभ्याशं समीपम् ॥ ११९ ॥ ॥

ननु पूर्वं हिमवानित्यादिना लक्ष्मणस्याकम्प्यत्वमुक्तम्, तादृशस्य कपिना रामसमीपप्रापणं कथमित्याशङ्क्य विरोधं परिहरति–वायुसूनोरिति ॥ सुहृत्त्वेन शोभनहृदयत्वेन । अनुकूलहृदयत्वेनेत्यर्थः । हृदयानुकूल्यमेवालं भक्तिस्त्वधिकेत्याह–भक्त्या परमया चेति । चशब्दोन्वाचये । सः लक्ष्मणः । शत्रूणां रावणस्य तत्परिकराणां चेत्यर्थः । अप्रकम्प्योपि कम्पितुमशक्योपि । कपेः कपेरपि । हनुमत एकस्य लघुत्वमगमत् लघुत्वमकरोत् । अनेन लघुत्वस्य बुद्धिपूर्वकत्वमुक्तम् । शत्रुमित्रयोर्दुष्प्रापत्वसुप्रापत्वे स्वरूपप्रयुक्ते अस्येति भावः । मूर्छितस्यापि लक्ष्मणस्य ज्ञानशक्तिप्रतिपादनेन तत्र तत्र राघवयोरज्ञानाशक्तिप्रत्यायकानि वचनानि मानुषवेषनिर्वहणपराणीति मन्तव्यानि ॥ १२० ॥ तमिति ॥ दुर्जयमिति हेतुगर्भम् ।

वायुसुनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः ॥ शत्रूणामप्रकम्प्योपि लघुत्वमगमत्कपेः ॥ १२० ॥ तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रिं युधि दुर्जयम् ॥ रावणस्य रथे तस्मिन् स्थानं पुनरुपागता ॥ १२१ ॥ आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ॥ विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥१२२॥ रावणोपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे ॥ आददे निशितान् बाणान् जग्राह च महद्धनुः ॥१२३॥ निपातितमहावीरां द्रवन्तीं वानरीं चमूम् ॥ राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥१२४॥ अथैनमुपसंगम्य हनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि ॥ १२५ ॥ विष्णुर्यथा गरुत्मन्तं बलवन्तं समाहितः ॥ तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम् ॥ आरुरोह महाशुरो बलवन्तं महाकपिम् ॥ १२६ ॥ ॥

तस्य दुर्जयस्वरूपत्वाच्छक्तिस्तं त्यक्त्वा गतेति भावः । एतच्छ्लोकानन्तरमाश्वस्त इति श्लोकः । ततो रावणोपीति श्लोकः पठनीयः ॥१२१॥ आश्वस्त इति ॥ आश्वस्तः लब्धसंज्ञः । विशल्यः प्ररूढव्रणमुखः । अभवदिति शेषः । अकाण्डे शक्तिनिर्गमाश्वासनविशल्यत्वेषु को हेतुरत आह-विष्णोरिति । विरोधिप्रत्यनीकस्वभावत्वादिति भावः । अमीमांस्यम् अचिन्त्यम् । अनुस्मरन्नित्यनेन साधनानुष्ठानं किमपि न कृतवानित्युक्तम् ॥१२२ ॥१२३ ॥ निपातितेति ॥ द्रवन्तीमिति । रावणस्य बाणसंधानदर्शनादिति भावः ॥१२४॥ अथेति ॥ अर्हसीत्यनन्तरमितिकरणं द्रष्टव्यम् ॥ १२५ ॥ विष्णुर्यथेति सार्धश्लोक एकान्वयः ॥ वायुपुत्रेण भाषितं तद्वाक्यं श्रुत्वा समाहितः सन् विष्णुर्गरुत्मन्तं यथा तथा महाकपिं हनुमन्तमारुरोहेति योजना ॥१२६ ॥

रथस्थमित्यर्धमेकं वाक्यम् ॥१२७॥ तमिति ॥ तमालोक्येत्यनुवादः अव्यवहितपूर्वकालद्योतनार्थः । अभ्युद्यतायुधः क्रुद्धो राघवः विष्णुर्वैरोचनं बलि-
मिव प्रदुद्राव। साग्रहगमनमात्रे दृष्टान्तः॥१२८॥ज्याशब्दमित्यर्धम्॥ वज्रनिष्पेषः स्फूर्जथुः। स्फूर्जथुर्वज्रनिष्पेष इत्यमरः ॥१२९॥ गिरेत्यर्धम् ॥१३०॥
तिष्ठ तिष्ठेति ॥ ईदृशं लक्ष्मणप्रहाररूपं सीताहरणरूपं वा । मोक्षं मत्त इति शेषः ॥ १३१ ॥ यदीति॥ इन्द्रादीन् वा स्वयम्भ्वादीन् वा यदि गमिष्यसि
यद्यपि गमिष्यसि तथापि अद्य मत्समीपं गतस्त्वं मे मत्तः न विमोक्ष्यसे। दश वा दिशो वेत्यत्र एको वाकारश्चार्थः॥१३२॥यश्चैवेति॥अद्य य एष त्वया श-

रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः ॥ १२७ ॥ तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स राघवः ॥ वैरोचनमिव क्रुद्धो
विष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ १२८ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम् ॥ १२९ ॥ गिरा गम्भीरया रामो राक्षसे-
न्द्रमुवाच ह ॥१३०॥ तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ॥ क नु राक्षसशार्दूल गतो मोक्षमवाप्स्यसि॥१३१॥
यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान्वा स्वयम्भुवैश्वानरशंकरान्वा॥ गमिष्यसि त्वं दश वा दिशोथवा तथापि मे नाद्य गतो विमो-
क्ष्यसे ॥ १३२ ॥ यश्चैव शक्त्याभिहतस्त्वयाद्य इच्छन्विषादं सहसाभ्युपेतः ॥ स एव रक्षोगणराजमृत्युः सपुत्रदार-
स्य तवाद्य युद्धे ॥ १३३ ॥ एतेन चात्यद्भुतदर्शनानि शरैर्जनस्थानकृतालयानि ॥ चतुर्दशान्यात्तवरायुधानि रक्षःस-
हस्राणि निषूदितानि ॥१३४॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाकपिम् ॥ वायुपुत्रं महावीर्यं वहन्तं राघवं रणे ॥
आजघान शरैस्तीक्ष्णैः कालानलशिखोपमैः ॥ १३५ ॥ ॥ ॥

क्त्याभिहतः स एषः तव विषादमिच्छन् सन् सपुत्रदारस्य तव मृत्युः सन् सहसा अभ्युपेतः अभ्युपागतप्रायः। अचिरादागमिष्यतीत्यर्थः। यद्वा अभे-
देनोच्यते । यः शक्त्याभिहतः स एवाहमागतवानस्मि । लक्ष्मणं प्राहरमिति मा गा गर्वमिति भावः ॥१३३॥ लक्ष्मणेनाप्रहृतः कथं त्वया प्रहृतः स्या-
मित्याशङ्क्य स्वपराक्रमविशेषं दर्शयति–एतेनेति ॥ एतच्छब्दः सन्निहितपरः। एषोस्मीत्यादिप्रयोगात् अयं जन इति प्रयोगाच्च । मयेत्यर्थः । मृत्युश-
ब्दापेक्षया वा एतेनेत्युक्तिः । चतुर्दशानि चतुर्दशशब्दादर्श आद्यचि टिलोपे कृते जसि रूपम् । यद्वा एतेनेति स्वाभेदेन लक्ष्मणो निर्दिश्यते ॥ १३४ ॥
राघवस्येत्याद्यर्धत्रयमेकं वाक्यम् ॥ वहन्तामिति । आत्मानं प्रहृत्य पुनरपि रामं वहतीति क्रोधादिति भावः ॥ १३५ ॥ ॥

राक्षसेनाहवे तस्य ताडितस्यापि सायकैः ॥ स्वभावतेजोयुक्तस्य भूयस्तेजोऽभ्यवर्धत ॥१३६॥ ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम् ॥ दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं कोपस्य वशमेयिवान् ॥ १३७॥ तस्याभिचङ्क्रम्य रथं सचक्रं साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ॥ ससारथिं साशनिशूलखड्गं रामः प्रचिच्छेद शरैः सुपुङ्खैः ॥ १३८॥ अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान बाणेन वज्राशनिसन्निभेन ॥ भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः॥ १३९ ॥ यो वज्रपाताशनिसन्निपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ॥ स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥ १४० ॥ तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् ॥ तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥ १४१॥ तं निर्विषाशीविषसन्निकाशं शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम् ॥ गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटमुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥ १४२ ॥

राक्षसेनेति ॥ स्वभावतेजः स्वाभाविकतेजः ॥ १३६ ॥ तत इति ॥ एयिवान् प्राप्तः ॥ १३७ ॥ तस्येति ॥ अभिचङ्क्रम्य पौनःपुन्येन समीपं गत्वा ॥ ॥ १३८ ॥ अथेति ॥ वज्राशनिसन्निभेनेति । बाणस्य वज्रसाम्यमुच्यते । वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्र इति । प्रहर्तू रामस्येन्द्रसाम्यमित्यपुनरुक्तिः । भगवान् वीर्यवान् । भगः श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिष्वित्यमरः ॥१३९॥ य इति ॥ यः पुरा । वज्रपातयुक्ताशनिसन्निपातादिति मध्यमपदलोपिसमासः । वज्रम् इन्द्रायुधम् । अशनिः औत्पातिकः । न चुक्षुभे नार्तिं प्राप्तः । नापि चचाल नार्तिनिमित्तं चलनं प्राप्तः । राजा अन्यूनराजभावश्च स्थितः । सः रामबाणाभिहतः । भृशार्तः भृशमार्तः क्षुब्धः। चचाल । वीरोपि चापं मुमोच । स्वस्य स्वरक्ष्यत्वात्स्वयं त्यक्तवान् रामैकरक्ष्यत्वद्योतनाय ॥१४०॥ तमिति॥ विह्वलन्तं मूर्च्छितम् । प्रसमीक्ष्य तस्यानन्यशरणत्वमवलोक्य । अर्धचन्द्रम् अर्धचन्द्राकाराग्रं बाणम् आददे । तेन मुकुटं चिच्छेद । मानभङ्गमकरोदित्यर्थः । महात्मा महामनाः । दयालुरित्यर्थः । आभ्यां श्लोकाभ्यां भगवद्रक्षणे निमित्तं स्वयत्ननिवृत्तिरेवेत्युक्तम् ॥१४१॥ तमिति ॥ तं त्यक्तचापम् अत एव निर्विषाशीविषसन्निकाशं निर्विषसर्पतुल्यम् । अप्रकाशं निस्तेजस्कम् अत एव शान्तार्चिषं शान्तकिरणं सूर्यमिव स्थितम् । कृत्तकिरीटकूटं छिन्नकिरीटसमूहम् । मायानिश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु । आयोघने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियामित्यमरः । अत एव गतश्रियं निष्प्रभम् उवाच ॥१४२॥ ॥

कृतमिति ॥ महत् अनितरदुष्करम्। सुभीमं कर्म युद्धं कृतम्। किं चाहं हतलक्ष्मणादिप्रवीरश्च कृतोस्मि। तस्मात् अनेकवीरपतनाधिकरणकरणात्। त्वं परिश्रान्तः आयुधधारणेपि श्रान्त इति व्यवस्य निश्चित्य। त्वां मृत्युवशं मृत्योरधीनतां न नयामि। चिररणपरिश्रान्तकृन्तनकृतापवादापनोदाय संप्रति भवतः प्राणापहरणकर्मणो विरमामीत्यर्थः ॥ १४३ ॥ गच्छेति ॥ रिपौ पुरो विलसति कथं गच्छेयमित्यत्राह–अनुजानामीति। रणार्दितः युद्धे श्रान्तः। रात्रिंचरराज कूटयोधिन्निति सापहासोक्तिः। आश्वास्य विश्रम्य। रथी धन्वी च सन्निर्याहि ! स त्वं तदा तादृशं मे बलं रथस्थ इत्युपलक्षणं, धानुष्कश्च सन् द्रक्ष्यसीत्यन्वयः ॥ १४४ ॥ स इति ॥ अत्र क्रियाभेदात्तच्छन्दत्रयमिति न तद्वैयर्थ्यम्। सहसा मुकुटभङ्गकृतलज्जयेति भावः ॥१४५॥

कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ॥ तस्मात्परिश्रान्त इव व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥
॥१४३॥ गच्छानुजानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम्॥ आश्वास्य निर्याहि रथी च धन्वी तदा बलं द्रक्ष्यसि
मे रथस्थः॥१४४॥ स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स हताश्वसूतः॥ शरार्दितः कृत्तमहाकिरीटो विवेश लङ्कां सहसा
स राजा॥ १४५ ॥ तस्मिन् प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे महाबले दानवदेवशत्रौ ॥ हरीन्विशल्यान् सह लक्ष्मणेन चकार
रामः परमाहवाग्रे ॥१४६॥ तस्मिन्प्रभिन्ने त्रिदशेन्द्रशत्रौ सुरासुरा भूतगणा दिशश्च ॥ ससागराः सर्षिमहोरगाश्च तथैव
भूम्यम्बुचराश्च हृष्टाः ॥ १४७ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥
स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः ॥ भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥ ॥

तस्मिन्निति ॥ प्रविष्टे लङ्कामिति शेषः। दानवदेवशत्रावित्यनेन रावणनिर्गमो देवदानवहर्षहेतुरिति सूच्यते। सह लक्ष्मणेनेति। लक्ष्मणस्य पूर्वमेव विशल्यत्वेप्यादरात् पुनः करणम्। परमाहवाग्र इत्यनेन विशल्यकरणं विना सुग्रीवादीनां हरीणामन्यत्रानयनासंभवः सूच्यते ॥१४६॥ पूर्वसूचितं देवादिहर्षं प्रपञ्चयति–तस्मिन्निति ॥ प्रभिन्ने पराजिते। दिशः दिक्पालाः। सागराः सागरवासिनः। अम्बुचराः सागरभिन्नाम्बुचराः। हृष्टाः बभूवुरिति शेषः ॥ षष्ठ्यां रावणमुकुटभङ्गः ॥ १४७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥ ॥

अथ कुम्भकर्णप्रबोधनं षष्ठौ–स प्रविश्येत्यादि॥ रामबाणभयार्दितः किमिदानीमपि रामबाणाः पतेयुरिति भयपीडितः। व्यथितेन्द्रियः दुःखितमनस्कः॥१॥

मनोव्यथासुपपादयितुं तद्धेतुं सदृष्टान्तमनुवदति–मातङ्ग इवेति ॥ महात्मना महास्वभावेन । बलवतेत्यर्थः ॥ २ ॥ ब्रह्मदण्डेति ॥ ब्रह्मदण्डः ब्रह्मशापः। सर्वास्त्रनिगरणक्षमो वसिष्ठदण्डो वा ब्रह्मास्त्रं वा । युगान्तकालसमुत्थितोग्निवर्णो धूमकेतुरित्येके । तत्प्रकाशानां बाणानामिति "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति षष्ठी ॥३॥४॥ सर्वमिति ॥ मे मया । यत्तपस्ततं तत् सर्वं मोघं जातमिति शेषः ॥५॥ ब्रह्मवाक्यं तु फलितमित्याह–इदमिति ॥ त्वं मानुषेभ्यो भयं विजानीहीति यत् ब्रह्मणो घोरं वाक्यं तदिदं मामभि मां प्रति उपस्थितं मयि फलितमित्यर्थः। यतस्तत् ब्रह्मवाक्यं तथा । नतु मोघं भविष्यतीत्यर्थः॥६॥

मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ॥ अभिभूतोभवद्राजा राघवेण महात्मना॥२॥ ब्रह्मदण्डप्रकाशानां विद्युत्सदृशवर्चसाम् ॥ स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम् ॥ विप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ सर्वं तत्खलु मे मोघं यत्तप्तं परमं तपः ॥ यत्समानो महेन्द्रेण मानुषेणास्मि निर्जितः ॥ ५ ॥ इदं तद्ब्रह्मणो घोरं वाक्यं मामभ्युपस्थितम् ॥ मानुषेभ्यो विजानीहि भयं त्वमिति तत्तथा ॥६॥ देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ अवध्यत्वं मया प्राप्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥ ७ ॥ विदितं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ॥ इक्ष्वाकुकुलनाथेन अनरण्येन यत्पुरा ॥ ८॥ उत्पत्स्यते हि मद्वंशे पुरुषो राक्षसाधम ॥ यस्त्वां सपुत्रं सामात्यं सबलं साश्वसारथिम् ॥ निहनिष्यति संग्रामे त्वां कुलाधम दुर्मते ॥ ९ ॥ ॥ ॥

देवेति॥ प्राप्तं याचित्वा प्राप्तम्। मानुषेभ्योऽवध्यत्वं नैव याचितमित्यर्थः॥७॥विदितमित्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम्॥ यस्त्वामित्यत्र तु आमिति छेदः। आमित्यङ्गीकारे। यस्तु पुरुषस्त्वां संग्रामे निहनिष्यति सः मद्वंशे उत्पत्स्यते। आं निश्चितम्। इत्येवं प्रकारेण इक्ष्वाकुकुलनाथेन अनरण्येन यत् यस्मात् पुरा विदितं प्रतिज्ञातम्। विदितौ ज्ञातविश्रुताविति नानार्थरत्नमाला। तस्मात् मानुषं रामं दशरथात्मजं दशरथपुत्रत्वेन जातं मन्ये। राक्षसाधम कुलाधमेति जातितः कुलतश्च नीचत्वमुच्यते। दुःखातिरेकादनरण्योक्तपरुषानुवादः। अन्ये तु त्वामिति द्विरुक्तिरनुस्मरणार्थेत्याहुः। अपरे त्वाग्रहातिशयेन द्विरुक्तिरिति। त्वां प्रत्युत्पत्स्यत इति द्वितीयत्वांशब्दान्वय इत्येके ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

शप्तोहमिति॥ किं चाहं पुरा वेदवत्या शप्तोस्मि । मत्कृते तव विनाशो भविष्यतीति । कदेत्यत्राह–यदेति । सा वेदवतो यदा धर्षिता बलात्कृता तदा। अद्य
तथा किं क्रियते सीता ह्येतदुपद्रवमूलमित्यत्राह–सेयमिति । सा वेदवती स्वशापनिर्वाहार्थं सीता जाता ॥ १० ॥ उमेति ॥ उमादयश्चत्वारः तपसा त-
पःप्रभावेन यथोक्ताः यथोक्तवन्तः तथा प्राप्तं सिद्धम्। ऋषिभाषितं न मिथ्या भवति हि। नन्दीश्वररम्भाशापावुत्तररामायणे प्रोक्तौ । उमावरुणकन्यका-
शापौ चानेनैव सिद्धौ ॥ ११ ॥ एतदिति ॥ एतत् शापस्वरूपम् । अभ्युपागम्य ज्ञात्वा। इह प्रकृते शत्रुविजये कार्ये यत्नम् अवधानं कर्तुमर्हथ । चर्याः
गोपुरपार्श्वस्थभटसंचारप्रदेशाः ॥१२॥ स चेति ॥ ब्रह्मशापाभिभूतः ब्रह्मशापकृतनिद्रापरवश इत्यर्थः ॥१३॥ किमर्थं कुम्भकर्णो विबोध्यत इत्याशङ्क्य

शप्तोहं वेदवत्या च यदा सा धर्षिता पुरा ॥ सेयं सीता महाभागा जाता जनकनन्दिनी ॥१०॥ उमा नन्दीश्वरश्चापि
रम्भा वरुणकन्यका ॥ यथोक्तास्तपसा प्राप्तं न मिथ्या ऋषिभाषितम् ॥ ११ ॥ एतदेवाभ्युपागम्य यत्नं कर्तुमिहार्ह-
थ ॥ राक्षसाश्चापि तिष्ठन्तु चर्यागोपुरमूर्धसु ॥ १२ ॥ स चाप्रतिमगम्भीरो देवदानवदर्पहा ॥ ब्रह्मशापाभिभूतस्तु
कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥ १३ ॥ स पराजितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ॥ ज्ञात्वा रक्षोबलं भीममादिदेश महाब-
लः ॥ १४ ॥ द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥ निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥ १५ ॥ सुखं
स्वपिति निश्चिन्तः कालोपहतचेतनः ॥ नव षट् सप्त चाष्टौ च मासान् स्वपिति राक्षसः ॥ १६ ॥ ॥

कविराह–स पराजितमिति॥ आदिदेश कुम्भकर्णविबोधनार्थमिति शेषः ॥१४॥ द्वारेष्विति॥ द्वारेषु अवान्तरद्वारेषु । यत्नः क्रियतां, प्राकारश्चाधिरुह्य-
ताम्। वानरानारोहार्थमिति भावः । निद्रावशसमाविष्टः निद्रावशेन शयानः । सद्यः कर्तव्यत्वाय पुनरुक्तिः ॥ १५ ॥ सुखमिति ॥ दुःखिते चिन्ताकुले
अनवाप्तकामे मयि जाग्रति सतीति शेषः । न केवलमिदानीमेव सर्वदाप्येवमेवेत्याह–नवेति। कदाचिन्नवमासान् कदाचित् षण्मासान् कदाचित्सप्तमासान्
कदाचिदष्टमासांश्चानियमेन स्वपितीत्यर्थः। अत एवोत्तरकाण्डे अविशेषेण वरप्रार्थना कुम्भकर्णेन क्रियते–स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितमिति ।
उत्तरत्र रामं प्रति विभीषणवचने–शयिता ह्येष षण्मासानेकाहं जागरिष्यतीति वचनं तु पक्षान्तराणामप्युपलक्षकम् । अन्यूनाभिप्रायं वा सप्तमासादि-

स्वापसंभवेपि षण्मासस्वापः संभवत्येव । यद्वा, नवसप्तदशाष्टौ च मासान् स्वपिति राक्षस इति पाठः । दशाष्टौ दशमासहानौ सत्यां नवसप्तमासान् षण्मासानित्यर्थः । अष्टिरशनम् नाश इति यावत्। नवसप्तमासाः षोडशमासाः तेषु दशमासलोपे हि षण्मासा एवावशिष्यन्ते। अथवा षडहैर्मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति षडहैर्हि मासान्त्संपश्यन्त्यर्धमासैर्मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्त्यर्धमासैर्हि मासान्त्संपश्यन्त्यमावास्यया मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्त्यमावास्यया हि मासान् संपश्यन्ति पौर्णमास्या मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति पौर्णमास्या हि मासान्त्संपश्यन्तीत्युक्तमासविकल्पेषु षडहानामपि मासत्वश्रवणात्तत्प्रकारेण नवषडित्युक्तात्रिंशन्मासा अपि अशीत्युत्तरशतदिनतया अमावास्यया पौर्णमास्या वा परिगणनेन षण्मासा एव संपद्यन्त इति न कश्चिद्विरोधः । तथा हि अस्ति किंचित् उत्सर्गिणामयनं नाम सत्रं गवामयनस्य विकृतिः । तत्र प्रकृतौ द्वादशमासेष्वनुष्ठेयानां सोमयागविशेषाणां त्रिंशतोनुष्ठेयत्वान्न किंचिदहरुत्स्रष्टुं शक्यते । तद्विकृतावत्र प्रतिमासमेकस्मिन्नहनि सोमयागपरित्यागो विधीयते।तत्र कतममहस्त्यज्यतामित्यपेक्षायामुच्यते-अमावास्यया मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्त्यमावास्यया हि मासान्त्संपश्यन्ति पौर्णमास्या मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति पौर्णमास्या हि मासान्त्संपश्यन्तीति । अस्यार्थः अमावास्यायामनुष्ठेयेन यागेन पूर्वमासं परिसमाप्य उत्तरस्यादिभूतमहस्त्यज्यतामिति । पौर्णमास्यामनुष्ठेयेन यागेन पूर्वमासं परिसमाप्य उत्तरस्यादिभूतमहस्त्यज्यतामिति च। अस्मिन् विधाने अर्थवादे प्रसिद्धिवाचिना हिशब्देन अमावास्याया मासान्तत्वम्। उत्तरवाक्ये पौर्णमास्या मासान्तत्वं च श्रुतम् । एवम्, अर्धमासैर्मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्त्यर्धमासैर्हि मासान् संपश्यन्ति षडहैर्मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्ति षडहैर्हि मासान्त्संपश्यन्तीत्यत्रापि पक्षात्मकः षडहात्मकोपि मासोस्तीति हिशब्देन दर्शितम् । ननु च षडहैरिति बहुवचननिर्देशात् पञ्चभिः षडहैरिति व्याख्यानेन त्रिंशद्दिनात्मको मास एवात्र कथ्यत इति चेन्न । अर्धमासैरित्यत्रापि तथात्वापत्तेः । तदानीं बह्वर्धमासानां मासत्वस्वीकारे पक्षत्रयस्यापि मासत्वप्रसङ्गः । तत्र पक्षा वै मासा इत्युक्तरीत्या एकैकस्य पक्षस्य मासत्वस्वीकारे अत्राप्येकैकस्यैव षडहस्य मासत्वस्वीकारो युक्तः । पूर्वकल्पेष्विवात्रापि प्रसिद्धिवाचकहिशब्दप्रयोगात् । अन्यथा उत्तरानुवाके षडहैर्मासान्त्संपाद्य यत्सप्तममहस्तस्मिन्नुत्सृजेयुरिति वाक्यविरोधः स्यात्। सप्तमत्वं ह्यत्र विशिष्यते। षडहैर्मासानित्यत्र मासशब्दस्य मासैकदेशलक्षणाङ्गीकारे स एव दोषः ।तस्मात् षडहात्मकोपि मासोस्तीति सिद्धम् । तमिमं श्रौत्रं षडहमासत्वपक्षमनुस्मरन्तः षण्मासानेव वदन्ति। नव षट् सप्त चाष्टौ च मासान् स्वपिति राक्षस इति ॥ १६॥ ॥ ॥ ॥

मन्त्रयित्वा प्रसुप्तोयमितस्तु नवमेहनि ॥ तं तु बोधयत क्षिप्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ १७ ॥ ॥

ननु सुप्तः कथं बोधयितुं शक्य इत्याशङ्क्य इदानीमेव स्वापारम्भात् सुप्रबोधोयमित्याशयेनाह—मन्त्रयित्वेति ॥ अत्र केचित् एकाहं जागरिष्यतीति कुम्भकर्णस्य स्वापोत्सर्जनानन्तरमेकस्मिन् दिन एव प्रबोधनियमस्योक्तत्वान्मन्त्रकरणदिनसमनन्तरदिन एव कुम्भकर्णस्य स्वापारम्भः । आजगाम मुहूर्तेनेत्यनेन विभीषणागमनमपि मन्त्रदिन एव, विभीषणेनाशु जगाम संगममित्यनेन तदागमनानन्तरमेव तस्य स्वीकारः। तद्दिवसप्रभृति दिवसप्रत्यये समुद्रप्रार्थनार्थं रामस्य दर्भशयनम्। तदनन्तरं पञ्च दिनेषु सेतुबन्धः। सेतुबन्धपूर्तिदिवस एव सायंकाले सुवेलारोहणम्। तस्यामेव रात्रौ सुग्रीवरावणयोर्द्वन्द्वयुद्धम् । समनन्तरदिने तुमुलयुद्धम् । तत्रैव रात्रौ नागपाशबन्धमोक्षौ । धूम्राक्षवज्रदंष्ट्राकम्पनवधश्च । अनन्तरदिने प्रहस्तवधः रावणमुकुटभङ्गश्च । एवं दिवसगणनोपपत्तिरिति वदन्ति । तच्चिन्त्यम् । सुवेलारोहणरात्रौ पूर्णचन्द्रोदयवर्णनेन सुवेलारोहणदिनं पौर्णमासीति सिद्धम् । रावणमरणदिनं चामावास्येति स्फुटम् । एवं च त्वदुक्तरीत्या द्वितीयायामेव मुकुटभङ्गे रावणस्य दर्शपर्यन्तं विलम्ब्य युद्धकरणं चिन्त्यम् । वस्तुतस्तु इतः प्रसक्ताद्युद्धारम्भदिनादित्यर्थः । तद्दिनमपहाय तत्पूर्वदिनापेक्षया नवमेहनि तत्पूर्वदिनकृतमन्त्रः प्रसुप्तः । तथा च पौर्णमास्यां सुवेलारोहणं प्रथमायां युद्धारम्भः । तत्पूर्वं नवमदिनं सप्तमी । तस्यां कुम्भकर्णः सुप्तः । रामस्य दर्भशयनारम्भश्च षष्ठ्याम् । कुम्भकर्णादिभिर्मन्त्रविचारः तस्यामेव विभीषणनिर्गम इति । इत्थं चाहुः । सीताहरणात् पूर्वं त्रयोदशसंवत्सरा गताः । चतुर्दशवर्षारम्भे सीता हृता पम्पातीरे वसन्तवर्णनात् । आषाढे वालिवधः । तदनन्तरं वर्षर्तुवर्णनात् आश्वयुजे सीतान्वेषणसमुत्साहनमिति स्फुटम् । स्वयंप्रभाबिले बहुकालो गतः । फाल्गुनशुद्धत्रयोदश्यां हनुमतो लङ्काप्रवेशः । पुष्पिताग्रान् वसन्तादौ ददर्श विविधान् द्रुमानिति वसन्तादिभूतफाल्गुनमासतासूचकवृक्षाग्रपुष्पितत्वोक्त्या तथा प्रतीतेः । स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्ग इति श्लोके प्रतिपूर्णशृङ्ग इति पदेन प्रतिपूर्णशृङ्गवच्चन्द्रवर्णनस्य तस्यामेव संभवात् । यस्मिन्दिने रात्रौ लङ्कायां सीतान्वेषणं तदनन्तरदिन एव प्रातर्लङ्कादाहः । अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षय इत्युक्तत्वात् । अनन्तरं तस्मिन्नेव दिने अविलम्बेन प्रत्यागमनम् । यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दमेति सीतया पृष्टे, एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान्मारुतात्मजः । गमनाय मतिं चक्र इत्युक्तेः । उषसि लङ्कादाहानन्तरं तस्मिन्नेव दिने मध्याह्नात् पूर्वमेवाङ्गदादिभिर्मधुवनविधमनपूर्वकं रामप्राप्तिः । अरिष्टपर्वतारोहणे तद्वर्णनव्याजेन बोध्यमानमिव प्रीत्या दिवाकरकरैः सुखैरिति सूर्योदयसमयमुक्त्वा

अनन्तरमस्तमयानुक्तेः। तस्मिन्नेव दिवसे चतुर्दशीशेषयुक्तपौर्णमासीयुते मध्याह्ने युद्धयात्रा। अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीवप्रयाणमभिरोचये । युक्तो मुहूर्तो विजयः प्राप्तो मध्यं दिवाकर इत्युक्तेः। यस्मिन्दिनेभिजिति प्रस्थानं तत्परेद्युरेव समुद्रतीरे सेनानिवेशः । सा स्म याति दिवारात्रं महती हरिवाहिनीत्यारभ्य, मुहूर्तं क्वापि नासतेत्युक्तेः । यत्र दिने लङ्कादाहस्तत्रैव दिवसे सभायां मन्त्रिभिः सह किंचिद्विचारमुक्त्वा, विसर्जयित्वा तान् सर्वान् प्रविवेश स्वकं गृहमित्यन्तेन लङ्कादाहदिनवृत्तान्तं परिसमाप्य, ततः प्रत्युषसि प्राप्त इत्यादिना अनन्तरदिने उषःकाले बिभीषणोपदेशं द्वितीयमुक्त्वा ततो मन्त्रविचाराय रावणे कुम्भकर्णविभीषणादिभिः सभां प्रविष्टे विभीषणस्य तृतीयमुपदेशमुक्त्वा, इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः। आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः॥ इत्यविच्छेदेन लङ्कादाहादिनानन्तरदिन एव समुद्रतीरे रामसकाशागमवर्णनेन च द्वितीयदिने रामेण समुद्रतीरं प्राप्तमित्यवगम्यते । समुद्रतीरप्राप्तिदिनं च शिष्टफाल्गुनपौर्णमासी । अत एव, उत्तराफल्गुनी ह्यद्येति चतुर्थसर्गश्लोके प्रस्थानदिनस्य पौर्णमासीयुक्तत्ववचनमप्यविरुद्धम् । समुद्रतीरप्राप्तिदिनस्य पौर्णमासीयुक्तत्वं च, चण्डनक्रग्रहं घोरं क्षपादौ दिवसक्षये। चन्द्रोदयसमुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलमिति, संध्यासमय एव चन्द्रोदयप्रतिपादनात् सिद्धम्। सेनानिवेशवृत्तान्तो विभीषणागमनवृत्तान्तश्च एकदिनभाव्यपि वाचः क्रमावर्त्तित्वात् क्रमेणोक्तः। प्रथमायां रामस्य दर्भशयनारम्भः कुम्भकर्णस्वापारम्भश्च । चतुर्थीपञ्चमीषष्ठीसप्तम्यष्टमीषु सेतुबन्धः। अष्टम्यां रात्रौ सुवेलारोहणम्। यस्तु सुवेले, पूर्णचन्द्रप्रदीपा च निशा समभिवर्ततेति वचनम्, तत्पूर्णचन्द्र इव प्रदीपा यस्यां निशायामित्येवमर्थकं व्याख्येयम्। सुग्रीवसेनायां भेर्यादीनामिव प्रदीपादीनामपि संभवात् । सुवेलारोहणानन्तरदिने दिवा लङ्कानिरोधः। तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरिपुङ्गवाः । लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि चेत्युपक्रम्य युद्धवर्णनात् । तत्रैव प्रथमदिनयुद्धे रात्रौ नागास्त्रबन्धतद्विमोक्षादि। युद्ध्यतामेव तेषां तु तथा वानररक्षसाम्। रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणीत्यारभ्य, सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी। ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ राममेवाभ्यवर्तन्त। तं भीमवेगा हरयो नाराचैः क्षतविग्रहाः । अन्धकारे न ददृशुरित्यादिभिस्तामेव रात्रिं प्रत्यभिज्ञाप्य, निरन्तरशरीरौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । क्रुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पन्नगैः शरतां गतैः, इत्यादिप्रतिपादनात्। तत्रैव निशीथे वानरहर्षनादकुपितेन रावणेन प्रेषितयोर्धूम्राक्षवज्रदंष्ट्रयोर्युद्धं तद्वधश्च। तयोर्युद्धे दिवा ज्ञापकाभावात् वानरहर्षानन्तर्यश्रवणाच्च । रात्रिविशेषेण तयोर्वधानन्तरं द्वितीयदिने अकम्पनयुद्धम्। तन्निर्गमनवेलायाम्–अभवत्सुदिने चापि दुर्दिनं रूक्षमारुतमिति दिवा ज्ञापकसत्त्वात्। अकम्पनवधानन्तरमेव रावणस्य पूर्वाह्ण एव पुरीपर्यटनम्। अकम्पनवधा-

नन्तरं प्रहस्तयुद्धमविलम्बेन तस्मिन्नेव दिने मध्याह्ने। ननु, अन्योन्यमभिसंरब्धा ग्रहाश्च न चकाशिर इति ग्रहाणां प्रकाशप्रतिषेधेन प्रहस्तयुद्धं रात्राविति चेन्न। उत्तरत्र दिवायुद्धेषु दिवादर्शनायोग्यानामप्यर्थानां प्रतिपादनात्। यथा रावणयुद्धे। प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम्। समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामशुभावह इत्यादि। न च सर्वरात्रमवर्ततेति पाठानुरोधाद्रात्रावेव तत्प्रतिपादनमिति वक्तुं शक्यम्। तदपपाठत्वस्यान्ते वक्ष्यमाणत्वात्। तस्मिन्नेव द्वितीयदिने रावणपराजयकुम्भकर्णप्रबोधनकुम्भकर्णयुद्धानि। कालविशेषमसंकीर्त्यानन्तरमविच्छेदेन तदुक्तिपूर्वकमग्रिमकृत्ये ब्रह्मास्त्रबन्धनतद्विमोक्षरूपे कालविशेषकीर्तनात्। दृश्यते हि। सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम्। अह्नः पञ्चमशेषेण वल्लभेन स्वयंभुव इति ॥ अत्र अह्नः पञ्चमशेषो नाम सायंकाल एव। प्रातःसंगवमध्याह्नापराह्णाः सायमित्यमी। एकस्याह्नः पञ्च भागा विहिताः कालचिन्तकैरिति वचनात् ॥ तस्यामेव द्वितीयायां रात्रौ ब्रह्मास्त्रविमोक्षानन्तरं पुनर्लङ्कानिरोधतद्दाहकुम्भनिकुम्भयूपाक्षशोणिताक्षप्रजंघाकम्पनमकराक्षवधाः। ततोस्तंगत आदित्ये रात्रौ तस्मिन्निशामुखे। लङ्काभिमुखस्योल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभा इत्युक्तेः॥एवं परिपूर्णदिनद्वयेन मूलबलेन्द्रजिद्रावणव्यतिरिक्तेषु व्यपदिष्टराक्षसेषु हतेषु तृतीयदिनमारभ्य दिनत्रयेणेन्द्रजिद्युद्धम्। अहो रात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद्विनिपातित इत्युक्तत्वात्। अथ षष्ठदिने मूलबलवधः। तस्मिन् दिने सायंकालमारभ्य दिवारात्रं रावणयुद्धम्। सप्तमदिने रावणवधः। अथवा सप्तमदिने रावणयुद्धम्। अष्टमदिने प्रातः प्रातःकाले रावणवधः। अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम्। कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृत इत्यादि संदर्भस्योभयथापि योजयितुं शक्यत्वात्। पुच्छामावस्यायां रावणवध इति कृत्वा अमावास्यायां रावणवध इति प्रवादः। एवं सति रामरावणयोर्युद्धं सप्तरात्रमवर्ततेत्यादिपाठोपि सेनासहितरावणयुद्धापेक्षया संगच्छते। मन्त्रयित्वा प्रसुप्तोयमितस्तु नवमेहनीति सकलकोशस्थितवचनं च संगच्छते। इतः अस्माद्दिनात् मम मुकुटभङ्गदिनादित्यर्थः। नवमेहनि एतद्दिनमपहाय एतत्पूर्वदिनापेक्षया नवमेहनि। मन्त्रयित्वा प्रसुप्तः। तत्पूर्वदिने मन्त्रं कृत्वा तस्मिन् दिने प्रसुप्त इत्यर्थः। ननु हनुमतो लङ्काप्रवेशकालो दशममास इत्यवगम्यते। तथाहि सीतां प्रति रावणः। द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योवधिस्ते मया कृत इति। हनुमन्तं प्रति सीतावचनं च। द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः। वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गमेत्यादि। अतः कथमुक्तप्रक्रियासंगतिरिति चेत्। मैवम्। ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयम्। मासादूर्ध्वं न जीविष्ये। त्वया हीना नृपात्मजेत्यादिवचनविरोधेन तादृशवचनस्य रावणाभिप्रायविषयत्वात्। रावणो हि सीतासान्त्वनाय तथोक्तवान्। सीता तु वर्तमानमासमात्रेण चतुर्दशवर्षपूर्तिं जानन्ती, मासादूर्ध्वं न जीविष्य इति संदिदेशेति सर्वं सुस्थम् ॥ १७॥ ॥ ॥ ॥

स तु संख्ये महाबाहुः ककुदः सर्वरक्षसाम् ॥ वानरान् राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव वधिष्यति ॥ १८ ॥ एष केतुः परः संख्ये मुख्यो वै सर्वरक्षसाम् ॥ कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः ॥ १९ ॥ रामेण हि निरस्तस्य संग्रामेस्मिन् सुदारुणे ॥ भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते ॥ २० ॥ किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि ॥ ईदृशे व्यसने प्राप्ते यो न साह्याय कल्पते ॥ २१ ॥ ते तु तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥ जग्मुः परमसंभ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम् ॥ २२ ॥ ते रावणसमादिष्टा मांसशोणितभोजनाः॥गन्धमाल्यांस्तथा भक्ष्यानादाय सहसा ययुः ॥२३॥ तां प्रविश्य महाद्वारां सर्वतो योजनायताम् ॥ कुम्भकर्णगुहां रम्यां सर्वगन्धप्रवाहिनीम् ॥ २४ ॥ कुम्भकर्णस्य निःश्वासादवधूता महाबलाः ॥ प्रतिष्ठमानाः कृच्छ्रेण यत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥ २५ ॥ तां प्रविश्य गुहां रम्यां शुभां काञ्चनकुट्टिमाम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं शयानं भीमदर्शनम् ॥ २६ ॥ ते तु तं विकृतं सुप्तं विकीर्णमिव पर्वतम् ॥ कुम्भकर्णं महानिद्रं सहिताः प्रत्यबोधयन् ॥ २७ ॥ ॥ ॥

स त्विति ॥ स तु अहमिव न शापग्रस्त इत्यर्थः । ककुदः प्रधानम् । प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्ग ककुदोस्त्रियामित्यमरः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ अकाले तत्प्रबोधनमनुचितमित्यत्राह–किं करिष्यामीति ॥ साह्याय साहाय्याय ॥ २१ ॥ ते त्विति ॥ परमसंभ्रान्ताः कथमेनमकाले प्रबोधयिष्याम इति व्याकुलाः ॥ २२ ॥ त इति ॥ प्रबोधशक्तिविवृद्ध्यर्थं मांसादिकं भुक्त्वा कुम्भकर्णस्य प्रबोधकालिकक्षुत्तापादिशान्तये गन्धमाल्यादिकं गृहीत्वा ययुरित्यर्थः ॥ २३ ॥ तामित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ सर्वतः चतसृषु दिक्षु । सर्वगन्धप्रवाहिनीं कुम्भकर्णानुलिप्तचन्दनादिगन्धप्रवाहवतीम् । कुम्भकर्णगुहां प्रविश्य निश्वासादवधूताः सन्तः कृच्छ्रेण प्रतिष्ठमानाः अभिमुखं गच्छन्तः यत्नात्तां गुहां विविशुरिति योजना ॥ २४ ॥ २५ ॥ तामिति ॥ काञ्चनकुट्टिमां स्वर्णमयनिबद्धभूमिम् ॥ २६ ॥ ते तु तमिति ॥ विकृतं निद्राकालिकविकारयुक्तम् । विकीर्णं शिथिलम् ॥ २७ ॥ ॥

ऊर्ध्वेत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ ऊर्ध्वरोमाञ्चिततनुम् ऊर्ध्वभूतरोमव्याप्ततनुम् । भीमनासापुटं भयंकरनासारन्ध्रम्। मेदोरुधिरेति। पीतावशिष्टेति शेषः ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ तत इति ॥ अग्रतश्चक्रुः पुरतश्चिक्षिपुरित्यर्थः । परमतर्पणम् अत्यन्ततृप्तिकरम् ॥ ३१ ॥ मृगाणामिति ॥ राशिं चक्रुः अग्रतो राशिं चक्रुरित्यर्थः ॥ ३२ ॥ तत इत्यादि ॥ मद्यानि मद्यकुम्भानीत्यर्थः । लिलिपुः लेपनं चक्रुः । परार्ध्येन श्लाघ्यगन्धेन । माल्यगन्धैः माल्यचन्द-

ऊर्ध्वरोमाञ्चिततनुं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ त्रासयन्तं महाश्वासैः शयानं भीमदर्शनम् ॥ २८ ॥ भीमनासापुटं तं तु पातालविपुलाननम् ॥ शय्यायां न्यस्तसर्वाङ्गं मेदोरुधिरगन्धिनम् ॥२९॥ काञ्चनाङ्गदनद्धाङ्गं किरीटिनमरिन्दमम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ३० ॥ ततश्चक्रुर्महात्मानः कुम्भकर्णाग्रतस्तदा ॥ मांसानां मेरुसंकाशं राशिं परमतर्पणम् ॥ ३१ ॥ मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च संचयान् ॥ चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूला राशिमन्नस्य चाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ ततः शोणितकुम्भांश्च मद्यानि विविधानि च॥३३॥ पुरस्तात्कुम्भकर्णस्य चक्रुस्त्रिदशशत्रवः॥ लिलिपुश्च परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम् ॥३४॥ दिव्यैराच्छादयामासुर्माल्यैर्गन्धैः सुगन्धिभिः॥ धूपं सुगन्धं ससृजुस्तुष्टुवुश्च परन्तपम् ॥३५॥ जलदा इव चोन्नेदुर्यातुधानास्ततस्ततः ॥ शङ्खानापूरयामासुः शशाङ्कसदृशप्रभान् ॥ तुमुलं युगपच्चापि विनेदुश्चाप्यमर्षिताः॥ ३६ ॥ नेदुरास्फोटयामासुश्चिक्षिपुस्ते निशाचराः॥ कुम्भकर्णविबोधार्थं चक्रुस्ते विपुलं स्वनम् ॥३७॥ सशङ्खभेरीपणवप्रणादमास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादम् ॥ दिशो द्रवन्तस्त्रिदिवं किरन्तः श्रुत्वा विहङ्गाः सहसा निपेतुः ॥३८॥

नैः । ततस्ततः पुनः पुनरित्यर्थः । तुमुलं निरन्तरं यथा तथा । युगपद्विनेदुः अमर्षिताः महता प्रयत्नेनाप्यनुत्थानाज्जातक्रोधाः सन्तः नेदुः । आस्फोटयामासुः ताडयामासुः । चिक्षिपुः शरीरं कम्पयामासुः । कुम्भेति । इत्थं कुम्भकर्णविबोधार्थं विपुलं स्वनं चक्रुरिति संग्रहः॥३३॥ ३४ ॥३५ ॥ ३६ ॥३७॥ स शङ्खेति ॥ आस्फोटितं बाहुताडनजन्यशब्दः । क्ष्वेलितशब्देन गर्जितमात्रमुच्यते । सिंहनादमित्येकवद्भावः । तद्विहङ्गाः श्रुत्वा भयेन सर्वा दिशो द्रवन्तः

गच्छन्तः। तत्रापि भयनिवृत्त्यदर्शनात् त्रिदिवम् आकाशम् किरन्तः विशन्तः। तत्रापि भयशान्तिमलभमानाः सहसा निपेतुः भूमौ निपतन्ति स्म॥३८॥
यदेति ॥ भृशार्तैः अत्यन्तार्तिपूर्वकैः उच्चावचैरित्यर्थः। भृशं तैरिति पाठान्तरम्। महात्मा महाशरीरः। ततः तदा। मुसुण्ठी मुद्गरविशेषः॥३९॥ गृहीत्वा
प्रजघ्नुश्चेत्याह—तमिति ॥४०॥ तस्येति ॥ रक्षस इति विशेषणं निश्वासातिशयद्योतनाय ॥ ४१ ॥ तत इत्यर्धमेकं वाक्यम्॥ परिहिताः दृढीकृतपरिधानाः
आसन्। वक्ष्यमाणकार्यें सावधाना आसन्नित्यर्थः ॥४२॥ मृदङ्गेति ॥ शङ्खकुम्भगणान् शङ्खकुम्भवाद्यगणान्। दशराक्षससाहस्राः दश राक्षस-

यदा भृशार्तैर्निनदैर्महात्मा न कुम्भकर्णो बुबुधे प्रसुप्तः ॥ ततो मुसुण्ठीर्मुसलानि सर्वे रक्षोगणास्ते जगृहुर्गदाश्च ॥३९॥
तं शैलशृङ्गैर्मुसलैर्गदाभिर्वृक्षैस्तलैर्मुद्गरमुष्टिभिश्च ॥ सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्णं रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः ॥४०॥
तस्य निःश्वासवातेन कुम्भकर्णस्य रक्षसः॥राक्षसा बलवन्तोपि स्थातुं नाशक्नुवन्पुरः॥४१॥ततः परिहिता गाढं राक्षसा
भीमविक्रमाः ॥ ४२ ॥ मृदङ्गपणवान् भेरीः शङ्खकुम्भगणांस्तदा॥ दशराक्षससाहस्रा युगपत्पर्यवादयन् ॥ ४३ ॥नीलाञ्जनचयाकारास्ते तु तं प्रत्यबोधयन् ॥ अभिघ्नन्तो नदन्तश्च नैव संविविदे तु सः ॥ ४४ ॥ यदा चैनं न शेकुस्ते प्रतिबोधयितुं
तदा॥ ततो गुरुतरं यत्नं दारुणं समुपाक्रमन्॥ ४५॥ अश्वानुष्ट्रान् खरान्नागान् जघ्नुर्दण्डकशाङ्कुशैः॥
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च सर्वप्राणैरवादयन् ॥ ४६ ॥ निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटङ्करैः॥ मुद्गरैर्मुसलैश्चैव
सर्वप्राणसमुद्यतैः ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सहस्राणि परिवारभूता येषां ते तथोक्ताः ॥ ४३ ॥ नीलेति ॥ ते राक्षसाः अभिघ्नन्तो नदन्तश्च सन्तः तं प्रत्यबोधयन्नित्यनुवादः। प्रतिबोधनेपि स न
संविविदे न बुबुधे। नीलाञ्जनचयाकारा इति परितः संचारित्वद्योतनायोक्तम् ॥ ४४ ॥ यदेति ॥ गुरुतरं यत्नमुपाक्रमन् प्रबलं बोधनोपायमारेभिर
इत्यर्थः ॥ ४५ ॥ तमेव यत्नं दर्शयति—अश्वानिति ॥ तस्योपरिधावनायेति भावः। सर्वप्राणैः सर्वबलैः ॥ ४६ ॥ निजघ्नुरिति ॥ महाकाष्ठकटंकरैः
महाकाष्ठाग्रस्तम्भैः। काष्ठाग्रस्थकशाभिरित्यर्थः। कटंकरः स्तम्भभेद इति केचित्। सर्वप्राणसमुद्यतैः सर्वबलेन समुद्यतैः ॥ ४७ ॥ ॥

तेन शब्देन महता लङ्का समभिपूरिता ॥ सपर्वतवना सर्वा सोपि नैव प्रबुध्यते ॥ ४८ ॥ ततः सहस्रं भेरीणां युगपत्समहन्यत ॥ मृष्टकाञ्चनकोणानामसक्तानां समन्ततः ॥४९॥ एवमप्यतिनिद्रस्तु यदा नैव प्रबुध्यते ॥ शापस्य वशमापन्नस्ततः क्रुद्धा निशाचराः ॥ महाक्रोधसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमाः ॥५०॥ तद्रक्षो बोधयिष्यन्तश्चक्रुरन्ये पराक्रमम् ॥ ॥५१॥अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चक्रुर्महास्वनम् ॥ केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णावन्ये दशन्ति च॥५२॥उदकुम्भशतान्यन्ये समसिञ्चन्त कर्णयोः॥ न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिन्द्रावशं गतः ॥५३॥ अन्ये च बलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणयः ॥ मूर्ध्नि वक्षसि गात्रेषु पातयन् कूटमुद्गरान् ॥ ५४ ॥ रज्जुबन्धनबद्धाभिः शतघ्नीभिश्च सर्वतः ॥ वध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षसः ॥५५॥ वारणानां सहस्रं तु शरीरेस्य प्रधावितम् ॥ कुम्भकर्णस्ततो बुद्धः स्पर्शं परमबुध्यत ॥५६॥ स पात्यमानैर्गिरिशृङ्गवृक्षैरचिन्तयंस्तान्विपुलान्प्रहारान् ॥ निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्च विजृम्भमाणः सहसोत्पपात॥५७॥

तेनेति ॥ प्रबुद्ध्यते प्राबुध्यत ॥ ४८ ॥ तत इति ॥ मृष्टकाञ्चनकोणानां मृष्टकाञ्चनं शोधितकाञ्चनं तन्निर्मिताः कोणाः वादनदण्डाः यासां ताः तथोक्ताः। आसक्तानां संहतानाम् ॥ ४९ ॥ एवमपीत्यादि ॥ शापस्य ब्रह्मशापस्य । क्रुद्धाः पूर्वमेव कुपिताः । पुनरपि महाक्रोधसमाविष्टाः अभवन् ॥५०॥ तद्रक्ष इत्यादि ॥ पराक्रमं मुष्टिप्रहारादिकम् । महास्वनं महागर्जितम् । प्रलुलुपुः लुप्तवन्तः । दशन्ति अदशन् । उदकुम्भशतानि आदायेति शेषः॥५१॥ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अन्य इति ॥ कूटमुद्गरपाणय इत्यनेन तत्प्रहारपरिचयो लक्ष्यते । पातयन् अपातयन् ॥ ५४ ॥ रज्ज्विति ॥ बध्यन्ते एभिरिति बन्धनानि चर्मादीनि रज्जवश्च वन्धनानि च तैर्बद्धाभिः । रज्जुबन्धनादिना दृढीकृताभिरित्यर्थः । शतघ्नीभिः गदाविशेषैः । वध्यमानः पीड्यमानः ॥५५॥ वारणानामिति ॥ स्पर्शं परमबुध्यत । वारणप्रधावनं केवलस्पर्शमबुध्यत । कीटादिस्पर्शोयमिति मन्यते स्म । बुद्धः विरतनिद्रः ॥५६॥ स पात्यमानैरिति ॥ पात्यमानैः प्रबोधेप्युत्थानाय पुनः क्षिप्यमाणैः । क्षुद्भयपीडितः क्षुद्भयाभ्यां पीडितः । भयमत्राकालबोधनकृतम् । क्षुद्रूपभयपीडित इति वा । विजृम्भमाणः गात्रभङ्गं कुर्वाणः । उत्पपात उदतिष्ठत् ॥ ५७ ॥

विजृम्भमाण इत्युक्तं विवृणोति—स इति ॥ दैर्घ्ये नागभोगदृष्टान्तः । काठिन्ये अचलशृङ्गदृष्टान्तः । यद्वा पीनत्वे दृष्टान्तः । गिरिशृङ्गसारौ गिरिशृङ्गबलौ । सारो बले स्थिरांशे चेत्यमरः । विवृत्य व्यादाय । वडवा समुद्रमध्यवर्तिन्यश्वस्त्री । विकृतं भयंकरं यथा भवति तथा ॥५८॥ तस्येति ॥ जाजृम्भमाणस्य । यङ्लुक्यात्मनेपदरुगागमाभावावार्षौ । मेरुशृङ्गाग्रे । मेरुरत्र सावर्णिमेरुः तदग्रस्यैव सूर्यसंबन्धसंभवात् । अत्र दिवाकरस्योदितत्वं महामेरोरुत्तरभागस्थपुर्यपेक्षया । यद्वा उदितः दृष्ट इत्यर्थः । गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थत्वात् ॥ ५९ ॥ स जृम्भमाण इति ॥ प्रतिबुद्धः अभूदिति शेषः । सम्यक् प्रबोधोत्र विवक्षितः ॥ ६० ॥ रूपमिति ॥ तस्य साभरणस्येत्यर्थः । अतः सबलाकस्येति नाधिकोपमा । विवर्षत इति नीलरूपातिशयोक्तिः । ॥ ६१ ॥ तस्येति ॥ विद्युत्सदृशवर्चसीति निद्राविरामकालिकचाञ्चल्योक्तिः । महाग्रहौ शन्यङ्गारकाविति परपीडकत्वोक्तिः । दीप्ताग्निसदृशे इति क्रौर्यातिशयोक्तिः ॥ ६२ ॥ ततस्त्वित्यादि ॥ अदर्शयन् राक्षसा इति शेषः । सर्वान् सर्वविधान् । तदवान्तरभेदतो विविधान् बहून्विपुलान् । वराहान् वराहविकारान् । बभक्ष भक्षयामास । बुभुक्षितो मांसमदन् बुभुक्षाशान्त्यर्थं मांसमदन्नित्यर्थः । तृषितः शोणितं पिबन् तृष्णाशान्त्यर्थं शोणितं पिबन्नित्यर्थः । पुनराप्यायनार्थं मेदःकुम्भान् मद्यं च पपौ । कुम्भपरिमितमेदांसीत्यर्थः ॥६३॥ ६४ ॥ ततस्तृप्त इतीति ॥ समुत्पेतुरिति पूर्वं कुम्भकर्णभया-

स नागभोगाचलशृङ्गकल्पौ विक्षिप्य बाहू गिरिशृङ्गसारौ ॥ विवृत्य वक्त्रं वडवामुखाभं निशाचरोसौ विकृतं जजृम्भे ॥५८॥ तस्य जाजृम्भमाणस्य वक्त्रं पातालसन्निभम् ॥ ददृशे मेरुशृङ्गाग्रे दिवाकर इवोदितः ॥५९॥ स जृम्भमाणोतिबलः प्रतिबुद्धो निशाचरः ॥ निःश्वासश्चास्य संजज्ञे पर्वतादिव मारुतः ॥ ६० ॥ रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद्बभौ ॥ तपान्ते सबलाकस्य मेघस्येव विवर्षतः ॥ ६१ ॥ तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी ॥ ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ ॥ ६२ ॥ ततस्त्वदर्शयन् सर्वान् भक्ष्यांश्च विविधान्बहून् ॥ वराहान् महिषांश्चैव स बभक्ष महाबलः ॥ ६३ ॥ अदन् बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितः पिबन् ॥ मेदःकुम्भांश्च मद्यं च पपौ शक्ररिपुस्तदा ॥ ६४ ॥ ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुर्निशाचराः ॥ शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६५ ॥ ॥

दन्तर्धाय स्थिताः । इदानीं तृप्तत्वेन शान्तक्रोधत्वात् प्रकाशमाजग्मुरित्यर्थः॥६५॥ निद्रेति॥ निद्रया अविशदे अप्रसन्ने ईषदुन्मीलिते नेत्रे यस्य स तथोक्तः ॥६६॥ स इति ॥ बोधनात् अप्रबोध्यबोधनात् ॥ ६७ ॥ किमर्थमिति ॥ राज्ञः रावणस्य सुकुशलं कच्चित्। एष राजा च भयवान्न किम् भययुक्तो न भवति हि ॥ ६८ ॥ एवं संशय्य पुनर्निश्चिनोति—अथवेति ॥ तत्र हेतुमाह—यदर्थमिति। यदर्थं यद्भयनिवृत्त्यर्थम् ॥६९॥ अद्येति ॥ ज्ञातयिष्ये ज्ञातयिष्यामि

निद्राविशदनेत्रस्तु कलुषीकृतलोचनः ॥ चारयन्सर्वतो दृष्टिं तान् ददर्श निशाचरान् ॥ ६६ ॥ स सर्वान् सान्त्वयामास
नैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः ॥ बोधनाद्विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ६७॥ किमर्थमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥
कच्चित् सुकुशलं राज्ञो भयवानेष वा न किम् ॥ ६८॥ अथवा ध्रुवमन्येभ्यो भयं परमुपस्थितम् ॥ यदर्थमेवं त्वरितैर्भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥ ६९ ॥ अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम् ॥ पातयिष्ये महेन्द्रं वा शातयिष्ये तथानलम् ॥
॥ ७० ॥ न ह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मां गुरुः ॥ तदाख्यातार्थतत्त्वेन मत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७१ ॥ एवं ब्रुवाणं संरब्धं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरुवाच ह ॥ ७२ ॥ न नो दैवकृतं किंचिद्भयमस्ति कदाचन ॥
मानुषान्नो भयं राजंस्तुमुलं संप्रबाधते ॥७३॥ न दैत्यदानवेभ्यो वा भयमस्ति हि तादृशम् ॥ यादृशं मानुषं राजन् भयमस्मानुपस्थितम् ॥७४॥ वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता ॥ सीताहरणसंतप्ताद्रामान्नस्तुमुलं भयम् ॥ ७५ ॥ एकेन वानरेणेयं पूर्वं दग्धा महापुरी ॥ कुमारो निहतश्चाक्षः सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ७६ ॥ ॥ ॥

छेत्स्यामीत्यर्थः। "शद्लृ, शातने" इति धातोर्णिचि "शदेरगतौ तः" इति तादेशः ॥७०॥ न हीति॥ अल्पकारणे अल्पकार्यनिमित्तम्। गुरुः अग्रजः। आख्यात कथयत। अर्थतत्त्वेन तत्त्वार्थेन याथार्थ्येनेति यावत्॥७१॥७२॥ न न इति॥ दैवकृतम् इन्द्रादिकृतम्। मानुषादिति । नः अस्मान् मानुषाज्जातं तुमुलं भयं संप्रबाधत इत्यन्वयः ॥ ७३ ॥ न दैत्येति ॥ वाशब्दार्थोनुक्तसमुच्चयार्थः। देवेभ्यश्चेत्यर्थः। मानुषं मनुष्यादागतम् ॥७४॥ ७५॥ इन्द्रादिभिरपि दुष्पीडमिदं नगरं कथं वानरैः पीड्यत इत्यत्राह—एकेनेत्यादि ॥ सानुयात्रः सानुगः। एकेनैव महती पीडा कृता। किं पुनरनेकैरिहागतैरिति भावः ॥७६॥

स्वयमिति ॥ मृतेति। हे मृतेत्युक्त्वा। वस्तुतस्तु मृतेत्यविभक्तिकनिर्देशः। मृत इति कृत्वेत्यर्थः। मृतप्राय इति मत्वेत्यर्थ इत्यप्याहुः ॥७७॥ यदित्यादि॥यत् य इत्यर्थः। प्राणसंशयादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। यो राजा देवादिभिरपि प्राणसंशयं नीत्वा मुक्तो न कृतः स रावणो रामेण प्राणसंशयं नीत्वा अद्य विमुक्तः कृत इत्यर्थः। यद्वा राजा देवादिभिरपि यत् न कृतः न प्रापितः तत् रामेण कृतः प्राणसंशयाद्विमुक्तश्चेत्यर्थः ॥ ७८॥ स इति ॥

स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥ मृतेति संयुगे मुक्तो रामेणादित्यतेजसा ॥७७॥ यन्न देवैः कृतो राजा नापि दैत्यैर्न दानवैः ॥ कृतः स इह रामेण विमुक्तः प्राणसंशयात् ॥ ७८ ॥ स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराजयम् ॥ कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७९ ॥ सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम् ॥ राघवं च रणे हत्वा पश्चाद्द्रक्ष्यामि रावणम् ॥ ८० ॥ राक्षसांस्तर्पयिष्यामि हरीणां मांसशोणितैः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापि स्वयं पास्यामि शोणितम् ॥ ८१ ॥ तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य सगर्वितं रोषविवृद्धदोषम् ॥ महोदरो नैर्ऋतयोधमुख्यः कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥८२॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषौ विमृश्य च ॥ पश्चादपि महाबाहो शत्रून् युधि विजेष्यसि ॥८३॥ महोदरवचः श्रुत्वा राक्षसैः परिवारितः ॥ कुम्भकर्णो महातेजाः संप्रतस्थे महाबलः ॥८४॥ तं समुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् ॥ राक्षसास्त्वरिता जग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥८५॥ ततो गत्वा दशग्रीवमासीनं परमासने॥ ऊचुर्बद्धाञ्जलिपुटाः सर्व एव निशाचराः ॥८६॥ प्रबुद्धः कुम्भकर्णोयं भ्राता ते राक्षसर्षभ ॥ कथं तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यस्येनमिहागतम् ॥ ॥ ८७ ॥ रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टो राक्षसांस्तानुपस्थितान् ॥ द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथान्यायं च पूज्यताम् ॥ ८८ ॥ ॥

पराजयं पराजयबोधकम् ॥७९॥८०॥८१॥ तदिति ॥ सगर्वितं सगर्वम्। रोषविवृद्धदोषं क्रोधविवृद्धदुर्नयं कुम्भकर्णमिति शेषः॥८२॥८३॥महोदरेति ॥ संप्रतस्थे प्रस्थातुमुपचक्रमे। शयनादुत्पपात हेत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥८४॥८५॥ तत इति ॥ गत्वा रावणनिवेशनं गत्वा। तत ऊचुरित्यन्वयः॥८६॥ प्रबुद्ध इति ॥ तत्रैव निर्यातु वा इहागतमेनं द्रक्षसि वा कथं, कथं करोत्विति सम्बन्धः ॥ ८७ ॥ रावणस्त्विति ॥ पूज्यताम् एष इति शेषः ॥ ८८ ॥ ॥

॥८९॥ ९० ॥ ९१ ॥ प्रक्षाल्येति ॥ वलसमीरणं वलवर्धनम् ॥ ९२ ॥ ततस्त इति ॥ रावणाज्ञया त्वरितास्ते क्षिप्रम् उपहारयन् उपाहारयन्निति संबन्धः
॥ ९३ ॥ पीत्वेति ॥ ईषत्समुत्कटः पानेन ईषन्मदोत्कटः । मत्तः स्वभावेनोन्मत्तश्चेत्यर्थः । कालान्तकयमोपमः काले प्रलयकाले योन्तकः संहारको

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः ॥ कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥ ८९ ॥ द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा
सर्वराक्षसपुङ्गवः ॥ गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं संप्रहर्षय ॥ ९० ॥ कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥ तथेत्युक्त्वा
महाबाहुः शयनादुत्पपात ह ॥ ९१ ॥ प्रक्षाल्य वदनं हृष्टः स्नातः परमभूषितः ॥ पिपासुस्त्वरयामास पानं
बलसमीरणम् ॥ ९२ ॥ ततस्ते त्वरितास्तस्य राक्षसा रावणाज्ञया ॥ मद्यकुम्भांश्च विविधान् क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥
॥ ९३ ॥ पीत्वा घटसहस्रे द्वे गमनायोपचक्रमे ॥ ईषत्समुत्कटो मत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ कुम्भकर्णो बभौ हृष्टः
कालान्तकयमोपमः ॥ ९४ ॥ भ्रातुः स भवनं गच्छन् रक्षोगणसमन्वितः ॥ कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम्
॥ ९५ ॥ स राजमार्गं वपुषा प्रकाशयन् सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ॥ जगाम तत्राञ्जलिमालयावृतः शतक्रतुर्गेहमिव
स्वयंभुवः ॥ ९६ ॥ तं राजमार्गस्थममित्रघातिनं वनौकसस्ते सहसा बहिः स्थिताः ॥ दृष्ट्वाप्रमेयं गिरिशृङ्गकल्पं
वितत्रसुस्ते हरियूथपालाः ॥ ९७ ॥ केचिच्छरण्यं शरणं स्म रामं व्रजन्ति केचिद्व्यथिताः पतन्ति ॥ केचिद्दिशः स्म
व्यथिताः प्रयान्ति केचिद्भयार्ता भुवि शेरते स्म ॥ ९८ ॥ तमद्रिशृङ्गप्रतिमं किरीटिनं स्पृशन्तमादित्यमिवात्मतेजसा ॥
वनौकसः प्रेक्ष्य विवृद्धमद्भुतं भयार्दिता दुद्रुविरे ततस्ततः ॥ ९९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥

यमस्तत्सदृश इत्यर्थः ॥ ९४ ॥ भ्रातुरिति ॥ रक्षोवलं राक्षससेना ॥९५॥ स इति ॥ तत्र राजमार्गे । अञ्जलिमालया पौरजनकृतयेति शेषः ॥ ९६ ॥ तमिति
॥ यूथपाला इत्यत्र चकारो द्रष्टव्यः । अन्यथा तच्छन्दोतिरिच्येत ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ तमिति ॥ आत्मतेजसा शरीरकान्त्या ॥९९॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते
श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥ ॥

अथ रामेण कुम्भकर्णस्वरूपप्रश्नः विभीषणेन तदुत्तरं च क्रियत एकषष्टितमे–तत इत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ तं दृष्ट्वा धनुरादाय पुनर्विशेषेण ददर्शेति योजना । महाकायं उन्नतकायम् । पर्वताकारदर्शनम् दृश्यत इति दर्शनं शरीरं पर्वतवत् स्थूलशरीरमित्यर्थः । काञ्चनाङ्गदभूषणं काञ्चनमयाङ्गदभूषणम् । अत एव सतोयाम्बुदः वर्षुकमेघः तत्सदृशम् ॥ १ ॥ २ ॥ दृष्ट्वेत्यर्धम् ॥ कुम्भकर्णमिति शेषः ॥ ३ ॥ विद्रुतामिति ॥ सविस्मयमिति क्रियाविशेषणम् । वर्धमानमिति । कामरूपत्वादिति भावः ॥ ४ ॥ कोसाविति ॥ हरिलोचनः कपिलेक्षणः । हरिर्ना कपिले त्रिषु इत्यमरः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८॥ येनेत्यादि ॥ सैष इत्यत्र "सोचि लोपे चेत् पादपूरणम्" इति सुलोपः । प्रमाणं स्थौल्यौन्नत्ये ॥ ९ ॥ एतेनेति ॥ संप्रभग्नाः अभज्यन्त ॥ १० ॥ शूलपाणिमिति ॥ विरूपाक्षं विकटाक्षम् । मोहिताः भ्रान्ताः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ॥ किरीटिनं महाकायं कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥१॥ तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् ॥
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं प्रभुम् ॥ सतोयाम्बुदसंकाशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ॥२॥ दृष्ट्वा पुनः
प्रदुद्राव वानराणां महाचमूः ॥ ३ ॥ विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वर्धमानं च राक्षसम् ॥ सविस्मयमिदं रामो बिभीषणमुवाच ह ॥ ४ ॥
कोसौ पर्वतसंकाशः किरीटी हरिलोचनः ॥ लङ्कायां दृश्यते वीर सविद्युदिव तोयदः ॥ ५ ॥ पृथिव्याः
केतुभूतोसौ महानेकोत्र दृश्यते ॥ यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे विद्रवन्ति ततस्ततः ॥ ६ ॥ आचक्ष्व मे महान् कोसौ
रक्षो वा यदि वासुरः ॥ न मयैवंविधं भूतं दृष्टपूर्वं कदाचन ॥ ७ ॥ स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ बिभीषणो
महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ येन वैवस्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः ॥ सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः
प्रतापवान् ॥ अस्य प्रमाणात्सदृशो राक्षसोन्यो न विद्यते ॥ ९ ॥ एतेन देवा युधि दानवाश्च यक्षा भुजङ्गाः
पिशिताशनाश्च ॥ गन्धर्वविद्याधरकिन्नराश्च सहस्रशो राघव संप्रभग्नाः ॥ १० ॥ शूलपाणिं विरूपाक्षं कुम्भकर्णं
महाबलम् ॥ हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोयमिति मोहिताः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

प्रकृत्या तेजस्वी स्वप्रभावेन बलवान् । न तु वरप्रदानेनेत्यर्थः । अन्येषां रावणादीनां भवतीति शेषः ॥१२॥ प्रकृत्या तेजस्वित्वमुपपादयति—एतेनेत्यादिना ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ तस्येति ॥ नानद्यमानस्य अतिशयेन नदतः । वित्रस्ता भूमिः भूयो वितत्रसे उत्तरोत्तरं भीताभूत् ॥१६॥ तत्रेति ॥ तत्र तदानीम् । विकृष्य उत्पाट्य ॥ १७ ॥ कुम्भकर्णेति ॥ विजज्वाल चुकोपेति यावत् ॥१८॥ प्रजाभिरित्यादि ॥ ते शक्रादयः । प्रजापतेः प्रजापतये

प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः ॥ अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम् ॥ १२ ॥ एतेन जातमात्रेण क्षुधार्तेन महात्मना ॥ भक्षितानि सहस्राणि सत्त्वानां सुबहून्यपि ॥ १३ ॥ तेषु संभक्ष्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिताः ॥ यान्ति स्म शरणं शक्रं तमप्यर्थं न्यवेदयन् ॥ १४॥ स कुम्भकर्णं कुपितो महेन्द्रो जघान वज्रेण शितेन वज्री ॥ स शक्रवज्राभिहतो महात्मा चचाल कोपाच्च भृशं ननाद ॥ १५॥ तस्य नानद्यमानस्य कुम्भकर्णस्य धीमतः॥ श्रुत्वातिनादं वित्रस्ता भूयो भूमिर्वितत्रसे ॥१६॥ तत्र कोपान्महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबलः॥ विकृष्यैरावताद्दन्तं जघानोरसि वासवम्॥१७॥ कुम्भकर्णप्रहारार्तो विजज्वाल स वासवः ॥ ततो विषेदुः सहसा देवब्रह्मर्षिदानवाः ॥ १८ ॥ प्रजाभिः सह शक्रश्च ययौ स्थानं स्वयंभुवः॥ कुम्भकर्णस्य दौरात्म्यं शशंसुस्ते प्रजापतेः॥ १९ ॥ प्रजानां भक्षणं चापि देवानां चापि धर्षणम् ॥ आश्रमध्वंसनं चापि परस्त्रीहरणं भृशम् ॥ २० ॥ एवं प्रजा यदि त्वेष भक्षयिष्यति नित्यशः॥ अचिरेणैव कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥२१॥ वासवस्य वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः॥ रक्षांस्यावाहयामास कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥२२॥ कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव वितत्रास प्रजापतिः ॥ दृष्ट्वा विश्वास्य चैवेदं स्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

॥ १९ ॥ दौरात्म्यं प्रपञ्चयति—प्रजानामित्यादि ॥ २० ॥ एवमिति ॥ एवम् इदानीं क्रियमाणप्रकारेण । यदि भक्षयिष्यतीत्यन्वयः ॥ २१ ॥ वासवस्येति ॥ प्राधान्याद्वासवग्रहणम् । कुम्भकर्णम् तेष्विति शेषः ॥ २२ ॥ कुम्भकर्णमिति ॥ इदं रक्षः इदं वक्ष्यमाणमिति इदंशब्दद्वयनिर्वाहः । विश्वास्य प्रलोभ्य । सान्त्वपूर्वकं समीपमानीयेत्यर्थः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥

ध्रुवमिति ॥ पौलस्त्येन विश्रवसा। तस्मात्त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यस इत्ययं शापः। स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम्। एवमस्त्विति तच्चोक्त्वा प्रहृष्टास्ते दिवौकसः ॥ इति तपश्चर्यानन्तरप्रार्थनालब्धबहुवार्षिकनिद्रासमनन्तरकालभावीत्यवगन्तव्यम्। अन्यथा मृतकल्पः शयिष्यस इति शप्तस्य तपश्चर्याद्यसंभवात् ॥ २४ ॥ ब्रह्मेति ॥ प्रभोः रावणस्य ॥ २५ ॥ विवृद्ध इति ॥ काञ्चनः काञ्चनवत् स्पृहणीयः। चम्पकवृक्षो वा। विवृद्धः

ध्रुवं लोकविनाशाय पौलस्त्येनासि निर्मितः ॥ तस्मात्त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसे ॥ २४ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतोथ निपपाताग्रतः प्रभोः ॥ ततः परमसंभ्रान्तो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥ विवृद्धः काञ्चनो वृक्षः फलकाले निकृत्यते॥न नप्तारं स्वकं न्याय्यं शप्तुमेवं प्रजापते ॥२६॥ न मिथ्यावचनश्च त्वं स्वप्स्यत्येष न संशयः ॥ कालस्तु क्रियतामस्य शयने जागरे तथा ॥ २७ ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २८ ॥ शयिता ह्येष षण्मासानेकाहं जागरिष्यति ॥ एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन् भूमिं बुभुक्षितः ॥ व्यात्तास्यो भक्षयेल्लोकान् संक्रुद्ध इव पावकः ॥२९॥ सोसौ व्यसनमापन्नः कुम्भकर्णमबोधयत्॥ त्वत्पराक्रमभीतश्च राजा संप्रति रावणः ॥३०॥ स एष निर्गतो वीरः शिबिराद्भीमविक्रमः ॥ वानरान् भृशसंक्रुद्धो भक्षयन्परिधावति ॥३१॥ कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव हरयोद्य प्रविद्रुताः ॥ कथमेनं रणे क्रुद्धं वारयिष्यन्ति वानराः॥३२॥ उच्यन्तां वानराः सर्वे यन्त्रमेतत्समुच्छ्रितम् ॥ इति विज्ञाय हरयो भविष्यन्तीह निर्भयाः ॥३३॥

वर्धितः। फलकाले पुष्पकाले। निकृत्यते छिद्यते। नप्तारं पौत्रम् ॥२६॥ नेति ॥ कालः कालनियमः॥२७॥२८॥शयितेति ॥ षण्मासानित्येतदर्वाङ्निषेधपरम्। अन्यथा नव षट् सप्त चाष्टौ च मासानिति पूर्वोक्तविरोधात्॥२९॥ सोसाविति ॥ सोसौ रावणः ॥३०॥ स इति ॥ शिबिरात् स्वनिलयात्। भक्षयन् परिधावति भक्षणहेतोः परिधाविष्यति। "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति शतृप्रत्ययः। वर्तमानसामीप्यादिना भविष्यदर्थे लट् ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ उच्यन्तामिति ॥ यन्त्रं बिभीषिका। समुच्छ्रितमुन्नतम् ॥ ३३ ॥ ॥ ॥

विभीषणेति ॥ सुमुखेरितं सुमुखं यथा भवति तथा ईरितम् उक्तम् ॥ ३४ ॥ गच्छेत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ आदाय स्वीकृत्य । आवृत्येति यावत् । उप-
संहर राशीकुरु । युद्धसाधनशिलादिकमिदानीमेव संपादयेत्यर्थः । तिष्ठन्तु वानराः सर्वे सायुधाः शैलपाणयः इति पाठः । सायुधाः खड्गाद्यायुधवन्तः
॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ रामेति ॥ परवाहिनीं नगररक्षार्थं बहिश्चरन्तीम् । यद्वा कुम्भकर्णं दृष्ट्वा पलायमानान् वानरान् प्रत्यनुद्रुतां परवाहिनीमि-

विभीषणवचः श्रुत्वा हेतुमत्सुमुखेरितम् ॥ उवाच राघवो वाक्यं नीलं सेनापतिं तदा ॥३४॥ गच्छ सैन्यानि सर्वाणि
व्यूह्य तिष्ठस्व पावके ॥ द्वाराण्यादाय लङ्कायाश्चर्याश्चाप्यथ संक्रमान् ॥ ३५ ॥ शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च शिलाश्चाप्युप-
संहर ॥ तिष्ठन्तु वानराः सर्वे सायुधाः शैलपाणयः ॥ ३६ ॥ राघवेण समादिष्टो नीलो हरिचमूपतिः ॥ शशास वानरा-
नीकं यथावत्कपिकुञ्जरः ॥३७॥ ततो गवाक्षः शरभो हनुमानङ्गदस्तथा ॥ शैलशृङ्गाणि शैलाभा गृहीत्वा द्वारमभ्ययुः
॥ ३८ ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्य हरयो जितकाशिनः ॥ पादपैरर्दयन्वीरा वानराः परवाहिनीम् ॥ ३९ ॥ ततो हरीणां
तदनीकमुग्रं रराज शैलोद्यतदीप्तहस्तम् ॥ गिरेः समीपानुगतं यथैव महन्महाम्भोधरजालमुग्रम् ॥ ४० ॥
इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥
स तु राक्षसशार्दूलो निद्रामदसमाकुलः ॥ राजमार्गं श्रिया जुष्टं ययौ विपुलविक्रमः ॥ १ ॥ राक्षसानां सहस्रैश्च
वृतः परमदुर्जयः ॥ गृहेभ्यः पुष्पवर्षेण कीर्यमाणस्तदा ययौ ॥ २ ॥ ॥ ॥

त्यर्थः ॥ ३९ ॥ तत इति ॥ शैलोद्यतदीप्तहस्तं शैलोद्यताः उद्यतशैलाः । महन्महाम्भोधरजालम् । महत् गुरु महाम्भोधरजालं मेघजालमित्यर्थः ॥
॥ ४० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥
अथ कुम्भकर्णं प्रति रावणस्य सान्त्ववचनं द्विषष्टितमे—स त्वित्यादि ॥ निद्रामदसमाकुलः निद्रया अकालोत्थितत्वेनानुवर्तमानया मदेन मद्यपानकृते-
न च समाकुलः । गृहेभ्यः निर्गतेनेति शेषः ॥ १ ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥

स हेमेति ॥ हेमजालविततं स्वर्णमयगवाक्षविततम् । भानुभास्वरदर्शनम् दृश्यत इति दर्शनं रूपम् । भानुवत् प्रकाशमानमित्यर्थः ॥ ३ ॥ स इति ॥ दूरे कक्ष्यान्तरप्रदेशे ददर्श । उन्नतपुष्पकवत्त्वादिति भावः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ अथेति ॥ सन्निकर्षं समीपम् ॥ ७ ॥ अथेति ॥ कृत्यं मया

स हेमजालविततं भानुभास्वरदर्शनम् ॥ ददर्श विपुलं रम्यं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥ स तत्तदा सूर्य इवाभ्रजालं प्रविश्य रक्षोऽधिपतेर्निवेशम् ॥ ददर्श दूरेग्रजमासनस्थं स्वयंभुवं शक्र इवासनस्थम् ॥ ४ ॥ भ्रातुः स भवनं गच्छन् रक्षोगणसमन्वितम् ॥ कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ५ ॥ सोभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च ॥ ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥ ६ ॥ अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ॥ तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥ अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः ॥ भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥ उत्पत्य चैनं मुदितो रावणः परिषस्वजे ॥ स भ्रात्रा संपरिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः ॥ ९ ॥ कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ॥ स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ॥ संरक्तनयनः कोपाद्रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्विबोधितः ॥ शंस कस्माद्भयं तेस्ति कोद्य प्रेतो भविष्यति ॥ ११ ॥ भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् ॥ ईषत्तु परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ अद्य ते सुमहान्कालः शयानस्य महाबल ॥ सुखितस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम् ॥ १३ ॥ एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली ॥ समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति ॥ १४ ॥ ॥ ॥

कर्तव्यम् ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ किमर्थमिति ॥ आदृत्य स्थितेनेति शेषः । शंसेति । तमिति शेषः । प्रेतो भविष्यति मृतो भविष्यति ॥ ११ ॥ भ्रातरमिति ॥ ईषत्परिवृत्ताभ्यामित्यनेन ईषत् कोपो लक्ष्यते ॥ १२ ॥ ईषत्त्वमेव विवृणोति–अद्येत्यादिना ॥ सुमहान् कालः नवदिनपरिमितः । गत इति शेषः ॥ ॥ १३ ॥ एष इति ॥ मूलं मूलबलम् । परिकृन्तति बाधत इत्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥ ॥

मूलकृन्तनमुपपादयति–हन्तेति ॥ लङ्कायां वनान्युपवनानि च सर्वम् । सेतुना सुखमागम्य स्वनिर्मितसेतुमात्रेण सुखमागम्य । रामेण । वानरैकार्णवीकृतं
वानररूपैकार्णवीकृतम् । पश्यस्व । आत्मनेपदमार्षम् । यद्वा स्वलङ्कायामिति छेदः । आत्मीयलङ्काद्वीप इत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदिति
॥ तदेतत् एतादृशम् । भयमुत्पन्नम् । अस्माद्भयादिमां पुरीं त्रायस्व । इमान् वानरान् नाशय । तदर्थं नाशनार्थम् ॥ १८ ॥ सर्वक्षपितेति ॥ सर्वक्षपितकोशं
क्षपितसर्वैश्वर्यम् । कोशोस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेर्थौघदिव्ययोः इत्यमरः । अभ्यवपद्य जानीहि इत्यर्थः । बालवृद्धावशेषितामित्यति-

हन्त पश्यस्व लङ्कायां वनान्युपवनानि च ॥ सेतुना सुखमागम्य वानरैकार्णवीकृतम् ॥ १५ ॥ ये रक्षसां मुख्यतमा हतास्ते
वानरैर्युधि ॥ वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥ १६ ॥ न चापि वानरा युद्धे जितपूर्वाः कदाचन ॥१७॥
तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेमां महाबल ॥ नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥ १८ ॥ सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्यवपद्य
माम् ॥ त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥१९॥ भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥ मयैवं नोक्तपूर्वो
हि कश्चिद्भ्रातः परंतप॥२०॥ त्वय्यस्ति तु मम स्नेहः परा संभावना च मे ॥ दैवासुरेषु युद्धेषु बहुशो राक्षसर्षभ ॥
त्वया देवा प्रतिव्यूह्य निर्जिताश्चासुरा युधि ॥ २१ ॥ तदेतत्सर्वमातिष्ठ वीर्यं भीमपराक्रम ॥ न हि ते सर्वभूतेषु दृश्यते
सदृशो बली ॥ २२ ॥ कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं यथाप्रियं प्रियरण बान्धवप्रिय ॥ स्वतेजसा विधम सपत्नवाहिनीं
शरद्घनं पवन इवोद्यतो महान् ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ ॥

शयोक्तिः । मूलबलाद्युत्सादनस्य वक्ष्यमाणत्वात् ॥ १९ ॥ भ्रातुरिति ॥ कच्चिदिति प्रश्ने । कदाचिदपि नोक्तपूर्वोसीत्यर्थः । कश्चिदिति पाठे त्वदन्यः
कश्चिदपि नैवमुक्तपूर्व इत्यर्थः ॥ २० ॥ त्वयीति ॥ सम्भावना आदरः । दैवासुरेषु देवासुरसंबन्धिषु । प्रतिव्यूह्य विभज्य । असुराः असुरा अपीत्यर्थः ॥ २१ ॥ तदेतदिति ॥ आतिष्ठ अवलम्बस्व ॥ २२ ॥ कुरुष्वेति ॥ यथाप्रियं यथास्नेहम् । आवयोः प्रीत्यनुरूपमित्यर्थः ॥ २३ ॥
इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ ॥

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् ॥ कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ १ ॥ दृष्टो दोषो हि योस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये ॥ हितेष्वनभिरक्तेन सोयमासादितस्त्वया ॥ २ ॥ शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः ॥ निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥ प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् ॥ केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ४ ॥ यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः ॥ पूर्वं चापरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ५ ॥ देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ॥ क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥ ॥

अथ कुम्भकर्णबुद्धिस्त्रिषष्टितमे–तस्येत्यादि ॥ परिदेवितम् पूर्वोक्तवचनानां परिदेवनतुल्यत्वात् परिदेवितत्वम् । कुम्भकर्णो वचनं बभाषे जहास चेत्यत्र व्यत्ययः कार्यः । उक्त्वा जहासेति वार्थः ॥ १ ॥ दृष्ट इति ॥ पुरा मन्त्रनिर्णये क्रियमाणे । अस्माभिः यो दोषो दृष्टः शत्रुभिस्तवापत् भविष्यतीति निश्चितः। हितेषु हितपरेषु । अनभिरक्तेन असक्तेन । हितपरवचनमशृण्वतेत्यर्थः । त्वया सोयं दोष आसादितः । पूर्वमेव चिन्तिता विपत् प्राप्तेत्यर्थः ॥ २ ॥ शीघ्रमिति ॥ पापस्य सीताहरणरूपस्य कर्मणः फलम् त्वाम् शीघ्रम् अभ्युपेतं प्राप्तम् । अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते इति न्यायात् । अत्रोदाहरणमाह–निरयेष्विति । दुष्कृतकर्मणः महापातकिनः पुरुषान् । निरयेष्वेव पतनं यथा प्राप्नोति तद्वत् । एवकारेणापरिहार्यत्वमुच्यते ॥ ३ ॥ प्रथममिति ॥ हे महाराज । केवलं वीर्यदर्पेण एतत्कृत्यं सीताहरणरूपं कार्यम् वै । प्रथमं सीताहरणात् पूर्वम् । न चिन्तितम् साध्वसाधु वेति त्वया न विचारितम् । अनुबध्नातीत्यनुबन्धः दोषोत्पादः । दोषोत्पादेऽनुबन्धः स्यात् इत्यमरः ॥४॥ प्रथमं विचार्य पश्चात् कर्म कर्तव्यमिति प्रेक्षावतां कृत्यं, त्वया तु तद्विपरीतं कृतमित्याह–य इति ॥ ऐश्वर्यम् आस्थितः प्राप्तः यः पुमान् पूर्वकार्याणि कार्यारम्भात् पूर्वं कर्तव्यानि मन्त्रणादीनि कुर्यात् । अपरकार्याणि उत्तरकाले विचार्याणि च पूर्वं कुर्यात्। सः नयानयौ नीत्यनीती न वेद ॥५॥ एवं देशकालानुरोधेन कर्म कर्तव्यमित्युक्तम्, तदनुरोधे दोषमाह–देशेति ॥ देशकालविहीनानि क्रियमाणानि । अदेशे अकाले च कृतानि कर्माणि । विपरीतवत् देशकालवैकल्याद्विपरीतकर्माणीव । अप्रयतेषु मन्त्रानध्ययनादिना अपूतेषु अपात्रेषु हवींषीव दुष्यन्ति विफलानि भवन्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

देशकालानुरोधस्य फलमाह–त्रयाणामिति ॥ सचिवैः मन्त्रिभिः सह । समयं निश्चयरूपम् सिद्धान्तं कृत्वा । समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविद इत्यमरः । त्रयाणाम् उत्तममध्यमाधमकर्मणाम् । तत्र आत्मोदयपरज्यानिसंभवसमये क्रियमाणं दण्डोपयोगि यानमुत्तमं कर्म । आत्मपरयोः बलसाम्ये क्रियमाणं संधानं मध्यमं कर्म । परोदयात्मज्यानिसमये क्रियमाणं दानपूर्वसमाश्रयणमधमं कर्म । तेषां पञ्चधा योगम् । कर्मणामारम्भोपायः । पुरुषद्रव्यसंपत् । देशकालविभागः । विनिपातप्रतीकारः । कार्यसिद्धिश्चेत्युक्तैः पञ्चभिर्योगम् । यद्वा त्रयाणाम् उत्तममध्यमाधमभावेन त्रिविधानां कर्मणाम् । पञ्चधा योगं देशकालात्मद्रव्यप्रयोजनसंबन्धवशात् पञ्चविधं संबन्धम् । यः पश्यति सः सभ्ये साधौ । सभ्यः सामाजिके साधौ इति रत्नमाला । पथि नीतिमार्गे वर्तते । सम्यङ्नीतिफलं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ यथागममिति ॥ यथागमं नीतिशास्त्रमनतिक्रम्य । यो राजा । समयं का-

त्रयाणां पञ्चधा योगं कर्मणां यः प्रपश्यति ॥ सचिवैः समयं कृत्वा स सभ्ये वर्तते पथि ॥ ७ ॥ यथागमं
च यो राजा समयं विचिकीर्षति॥ बुध्यते सचिवान्बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति ॥८॥ धर्ममर्थं च कामं च सर्वा-
न्वा रक्षसां पते ॥ भजेत पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥९॥ त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ॥
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

र्यनिर्णयम् । चिकीर्षति । सचिवांश्च बुध्यते सचिवैः सहालोचयतीति यावत् । सुहृदश्चानुपश्यति सुहृद्भिः सह विचारयतीति यावत् । स सभ्ये पथि वर्तत इति पूर्वेणान्वयः ॥ ८ ॥ धर्ममिति ॥ धर्ममर्थं कामं च प्रत्येकं वा । त्रीणि द्वन्द्वानि वा । धर्मार्थौ अर्थधर्मौ कामार्थौ वा । सर्वान् वा । कालेषु विहितेषु प्रातर्मध्याह्नसायाह्नेषु भजेत । अकाले न सेवेतेति भावः । एतदुक्तं भवति । प्रातःकाले धर्मो विहितः, तं तदा सेवेत । मध्याह्ने अर्थो विहितः, तं तदा सेवेत । सायंकाले कामो विहितः, तं तदा सेवेतेति । यद्वा प्रातःकाले स्वकालविहितं धर्मं मध्याह्ने विहितमर्थं च सेवेत । मध्याह्ने स्वकालविहितमर्थं प्रातर्विहितं धर्मं च सेवेत । सायंकाले स्वकालविहितं कामं मध्याह्नविहितमर्थं च सेवेत । अथवा सायंकाले स्वविहितं कामं प्रातर्मध्याह्नयोर्विहितौ धर्मार्थौ च सेवेतेति । केवलकामं सर्वकालेष्वपि सेवमानः पुरुषाधम एवेत्यभिसंधिः ॥ ९ ॥ एवं कर्तव्यमुक्त्वा तदकर्तारं निन्दति–त्रिष्विति ॥

एतेषु पूर्वोक्तेषु त्रिषु भजनेषु धर्मार्थकामेषु वा। यच्छ्रेष्ठं प्रत्येकभजनम् धर्मो वा। तच्छ्रुत्वा। यो राजा वा राजमात्रो वा राजसदृशो वा। न बुध्यते आचरितुं न जानाति। तस्य बहुश्रुतं शास्त्रश्रवणं व्यर्थम्। अनुष्ठानपर्यवसानाभावादिति भावः। एवं सामान्यरूपया अप्रस्तुतप्रशंसया त्रिवर्गेषु श्रेष्ठं धर्मं परित्यज्य जघन्यं काममेवाश्रितस्य ते शास्त्रश्रवणं समुद्रघोषमात्रमासीदिति प्रस्तुतोऽर्थोऽवगम्यते ॥ १० ॥ अकाले काम इवाकाले विक्रमोपि त्याज्य इत्याह—उपप्रदानमित्यादिश्लोकद्वयेन॥ काले तत्तदुचितकाले। उपप्रदानं प्रतिपक्षिणः समीपं गत्वा द्रविणादिप्रदानम्। सान्त्वं समीचीनभाषणम्। भेदं मित्रादिवर्गस्य द्वैधीकरणम्। विक्रमं दण्डं च। प्रत्येकं तेषां योगं समवायं च। तौ पूर्वोक्तौ नयानयौ। तेषां निर्वाहप्रकारान् धर्मा-

उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं काले च विक्रमम् ॥ योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥११॥ काले धर्मार्थ-
कामान् यः संमन्त्र्य सचिवैः सह ॥ निषेवेतात्मवान् लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ हितानुबन्धमालो-
च्य कार्याकार्यमिहात्मनः ॥ राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैः स हि जीवति ॥ १३ ॥ अनभिज्ञाय शास्त्रा-
र्थान्पुरुषाः पशुबुद्धयः ॥ प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छन्ति मन्त्रेष्वभ्यन्तरीकृताः ॥ १४ ॥ ॥

र्थकामांश्च सचिवैः संमन्त्र्य। काले पूर्वोक्तकाले। आत्मवान् वशीकृतमनस्कः। यो निषेवेत स लोके व्यसनं नाप्नुयात्॥ ११ ॥ १२ ॥ हितेति ॥ अत्र कार्यमित्यध्याहारः। निषेवेतेत्यनुषङ्गः। यो राजा अर्थतत्त्वज्ञैः सचिवैः सह। हितानुबन्धं हितोदर्कम्। आत्मनः कार्याकार्यं कर्तव्याकर्तव्यम्। आलोच्य निश्चित्य। कार्यमेव निषेवेत सः इह लोके जीवतीत्यर्थः। हीत्यनेनायमर्थो लोकप्रसिद्ध इत्यवगम्यते। हितानुबन्धकार्याकार्यानालोचनात्त्वेदं व्यसनमापन्नमिति भावः ॥ १३ ॥ एवं सामान्येन राजानमधिक्षिप्य मन्त्रिणोप्यधिक्षिपति—अनभिज्ञायेति ॥ शास्त्रार्थान् नीतिशास्त्रार्थान्। अनभिज्ञाय गुरुमुखादश्रुत्वा। वेषेण पुरुषाः पशुबुद्धयः आहारनिद्रादिमात्राभिज्ञाः। भ्रान्तेन राज्ञा। मन्त्रेषु राजकार्यविचारेषु। अभ्यन्तरीकृता मन्त्रयितृत्वेन वृताः सन्तः। प्रागल्भ्यात् ऊहापोहौ विना केवलधाष्ट्र्यात्। वक्तुमिच्छन्ति। नतु सम्यक् संगतं निश्चित्य वदन्तीत्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥

अशास्त्रेति ॥ शास्त्रानभिज्ञानां तेषां मन्त्रिणाम् । अहितं वचः अर्थशास्त्रानभिज्ञानाम् अथापि विपुलां श्रियमिच्छतां राज्ञां न कार्यम् । राजभिस्तदुक्तप्रकारो नानुष्ठेय इत्यर्थः ॥ १५ ॥ न केवलं तद्वचनाश्रवणं, मन्त्रेषु बहिष्कार्याश्च त इत्याह—अहितमिति ॥ वस्तुतः अहितं हिताकारं हितमिवापाततः प्रतीयमानमर्थम् । धाष्टर्यात् शास्त्रज्ञानं विना केवलप्रागल्भ्यात् । ये जल्पन्ति अक्रमेण वदन्ति । कृत्यदूषणाः कार्यदूषकास्ते । अवेक्ष्य पूर्वमेव परीक्ष्य । मन्त्रबाह्याः मन्त्रबहिर्भूताः कर्तव्याः ॥ १६ ॥ न केवलमहितवचनं, विपरीतं च कुर्वन्तीत्याह—विनाशयन्त इत्यादि ॥ मन्त्रिणः दुर्मन्त्रिणः । बुधैः उपायज्ञैः । शत्रुभिः सहिताः प्रेरिताः । विनाशयन्तः विनाशार्थम् । इह प्रयोजनविषये । विपरीतानि विपरीतफलकानि कृ-

अशास्त्रविदुषां तेषां न कार्यमहितं वचः ॥ अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥ अहितं च हिताकारं धाष्टर्याज्जल्पन्ति ये नराः ॥ अवेक्ष्य मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्या कृत्यदूषणाः ॥ १६ ॥ विनाशयन्तो भर्तारं सहिताः शत्रुभिर्बुधैः ॥ विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥ १७ ॥ तान् भर्ता मित्रसंकाशानमित्रान्मन्त्रनिर्णये ॥ व्यवहारेण जानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥ चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः ॥ छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ १९ ॥ ॥

त्यानि । भर्तारं कारयन्ति ॥ १७ ॥ दुर्मन्त्रित्वनिर्णयोपायमाह—तानिति ॥ उपसंहितानुपजापितान् उत्कोचप्रदानादिना शत्रुभिर्भेदं प्रापितान् । मित्रसंकाशान् मित्रवद्भावयतः कार्यतोऽमित्रान् सचिवान् । व्यवहारेण व्यामिश्रभाषणेन । जानीयात् ॥ १८ ॥ स्वयमसमर्था विपरीतबुद्धयो मन्त्रिणः किं करिष्यन्तीत्यत्राह—चपलस्येति ॥ इह प्रस्तुते कार्ये विषये । कृत्यानि उपसंहितमन्त्रिप्रेरितानि कार्याणि । सहसा अचिरेण । अनुप्रधावतः दुर्मन्त्रिषु मन्त्रित्वमनुसरतः । चपलस्य झटिति कार्ये प्रवर्तमानस्य राज्ञः । छिद्रं रन्ध्रम् । अन्ये शत्रवः । क्षिप्रं प्रपद्यन्ते स्वीकुर्वन्ति । कथमिव । द्विजाः पक्षिणः । दन्तविप्राण्डजा द्विजा इत्यमरः । क्रौञ्चस्य स्कन्दशक्तिविदारितस्य क्रौञ्चाख्यपर्वतस्य खमिव । पण्डिताः शत्रवः उत्कोचप्रदानादिना वशीकृतैर्मन्त्रिभिः कुत्रचिच्चापलकार्ये राजानं प्रापय्य तदेव रन्ध्रमासाद्य अन्तः प्रविशन्तीति भावः ॥ १९ ॥ ॥

एवं कपटवृत्तेः शत्रोः स्वरूपापरिज्ञाने राजा विपद्यत इत्याह—यो हीति ॥ यो हि राजा । शत्रुं वञ्चनपरम् । अविज्ञाय मन्त्रव्यवहारादिना अविज्ञाय । आत्मानं च नाभिरक्षति दुर्मन्त्रिनिरासादिना नात्मानं प्रकृतौ स्थापयति । सोऽर्थानवाप्नोति । स्थानात् राजासनात् । व्यवरोप्यते प्रच्याव्यते । इयता ग्रन्थेन तव कामव्यसनात् कुमन्त्रिवचनाच्चेयमापदिति दर्शितम् ॥ २० ॥ २१ ॥ तत्त्विति ॥ क्रुद्धः सन् भ्रुकुटिं उर्ध्वीकृतभ्रुवं चक्रे । एनमभाषत चेत्यन्वयः ॥ २२ ॥ मान्य इति ॥ हे कुम्भकर्ण । त्वं मान्यः बहुमानार्हः । आचार्यः आचारप्रवर्तकः गुरुरिव मां मान्यमाचार्यं गुरुम् । अनुशाससि शिक्षसे । आर्षः शप् । वैपरीत्यमेवाचरसीत्यर्थः । एवं वचनं तवायुक्तमिति भावः । अफलं चेदं वचनमित्याह—किमेवमिति । एवम् उक्तप्रकारेण । वाक्छ्रमं

योहि शत्रुमभिज्ञाय नात्मानमभिरक्षति॥ अवाप्नोति हि सोनर्थान्स्थानाच्च व्यवरोप्यते॥२०॥यदुक्तमिह ते पूर्वं क्रियतामनुजेन च ॥ तदेव नो हितं कार्यं यदिच्छसि च तत्कुरु॥ २१ ॥ तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम्॥ भ्रुकुटिं चैव संचक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥ मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससि॥ किमेवं वाक्छ्रमं कृत्वा काले युक्तं विधीयताम् ॥ २३ ॥ विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा ॥ नाभिपन्नमिदानीं यद्व्यर्थास्तस्य पुनः कथाः॥ ॥ २४ ॥ अस्मिन् काले तु यद्युक्तं तदिदानीं विधीयताम् ॥ गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ २५ ॥ ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु॥ यदि खल्वास्ति मे स्नेहो विक्रमं वावगच्छसि॥यदि वा कार्यमेतत्ते हृदि कार्यतमं मतम्॥२६॥

कृत्वा । प्रयासैकफलां वाचमुक्त्वेत्यर्थः । किं फलम् । किमपि प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः । नीतिकालस्यातीतत्वादिति भावः । काले नयमार्गातीतकाले । यद्युक्तं पराक्रमरूपम् तत् विधीयतां क्रियताम् ॥ २३ ॥ पूर्वमनालोच्य कृतस्य निमित्तमाह—विभ्रमादिति ॥ विभ्रमात् अनीतौ नीतिबुद्ध्या । चित्तमोहात् ज्ञानानुदयात् । बलवीर्याश्रयेण बलवीर्ययोराश्रयणेन । गर्वेणेति यावत् । यत्कार्यं नाभिपन्नं न कृतम् । तस्य पुनः कथाः पुनः पुनः कथनानि । इदानीमतीतकाले व्यर्थाः ॥ २४ ॥ अस्मिन्निति ॥ इदानीं सद्यः । गतं तु गतमेव । न तत्पुनरायास्यतीति भावः ॥ २५ ॥ ममेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ दोषं वैषम्यम् । शत्रुभिराक्रमणमिति यावत् । समीकुरु समतया कुरु । वैषम्यसमता नाम वैषम्यनाश एव । खलु

वाक्यालङ्कारे । मे मयि यदि स्नेहोऽस्ति स्वकीयं विक्रमं यदि वा अवगच्छसि । स्वपराक्रममज्ञात्वैव नीत्युपन्यासस्त्वया कृत इति भावः । एतत् युद्धरूपं कार्यं ते हृदि कार्यतमम् अवश्यकर्तव्यम् । मतम् इष्टम् । अवश्यकर्तव्यत्वेन मन्यसे चेदित्यर्थः । तदा समीकुर्वित्यन्वयः ॥ २६ ॥ इदानीं साहाय्याकरणे तव बन्धुत्वमेव भज्येतेति सदृष्टान्तमाह—स इति ॥ विपन्नार्थं विपन्नः शङ्कितापायः अर्थः प्रयोजनं यस्य तम् । दीनं मलिनमनस्कम् पुरुषम् । यः सुहृत् अभ्यवपद्यते अभितः प्राप्नोति । सदा सन्निधत्त इत्यर्थः । स एव सुहृत् । यो बन्धुः अपनीतेषु विषमितनीतिषु पुरुषेषु साहाय्यायोपकल्पते साहाय्याय प्रभवति स एव बन्धुः । सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायात् ॥ २७ ॥ तमिति ॥ धीरदारुणम् । यदि वा कार्यमित्युक्त्या धीरम् सुहृ-

स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्यवपद्यते ॥ स बन्धुर्योपनतिषु साहाय्यायोपकल्पते ॥ २७ ॥ तमथैवं ब्रुवाणं तु वचनं
धीरदारुणम् ॥ रुष्टोयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ॥ २८ ॥ अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम् ॥
कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन् ॥ २९ ॥ अलं राक्षसराजेन्द्र संतापमुपपद्य ते ॥ रोषं च संपरित्यज्य
स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥३०॥ नैतन्मनासि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव ॥ तमहं नाशयिष्यामि यत्कृते परितप्यसे ॥
॥ ३१ ॥ अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव ॥ बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥ ३२ ॥ ॥

दित्याद्युक्त्या दारुणं निष्ठुरम् । रुष्टोयमिति विज्ञाय । भ्रुकुटिबन्धनेनानुमायेत्यर्थः ॥ २८ ॥ उक्तमेवार्थं प्रपञ्चयन्नाह—अतीवेति ॥ अतीव क्षुभितेन्द्रियमित्यनेन रुष्टपदं व्याख्यातम् । परिसान्त्वयन्नित्यनेन श्लक्ष्णपदम् ॥ २९ ॥ अलमिति ॥ ते त्वया संतापम् उपपद्य प्राप्य अलम् । संतापो न कर्तव्य इत्यर्थः । "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" इति क्त्वाप्रत्ययः । स्वस्थो भव । स्वर्गस्थो भवेत्यर्थान्तरम् ॥३०॥ नैतदिति ॥ नैतन्मनासि कर्तव्यम् विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वेत्युक्तं मनसि न कर्तव्यमित्यर्थः । यत्कृते यस्य रामस्य कृते । अर्थान्तरं तु मयि जीवति सति एतन्मनासि न कर्तव्यम् । यद्यहं जीविष्यामि तदा एवं न कर्तव्यम् । अहमेव न जीविष्यामीत्यर्थः । यत्कृते यस्य मम कृते । परितप्यसे अयं सुखेन जीवन् मत्कार्यं न करोतीति परितप्तोसि । तं मां रामेण नाशयिष्यामीति ॥३१॥ तर्हि किमर्थमेवमुक्तमित्यत्राह—अवश्यमित्यादि ॥ बन्धुभावात् सामान्यस्नेहात् विशेषतो भ्रातृस्नेहाच्च ।

सर्वावस्थम् रोषहर्षादिसर्वावस्थावस्थितमित्यर्थः । अवश्यं वाच्यं ते हितं मयाभिहितम् ॥ ३२ ॥ सदृशमिति ॥ अस्मिन् काले आपत्काले । स्निग्धेन बन्धुना यत्कर्तुं सदृशं युक्तम् । तादृशं कदनं मया क्रियमाणं पश्य । अत्र शत्रुकर्तृकं कदनमित्यर्थान्तरम् ॥ ३३ ॥ अद्येति ॥ अर्थान्तरम् । हे परज्येष्ठ, मया सह समरमूर्धनि हते भग्ने सति रामे रामनिमित्तम् द्रवन्तीम् आगच्छन्तीम् वाहिनीं पश्येति ॥ ३४ ॥ अद्य रामस्येति ॥ अर्थान्तरम् । मया सह रामस्य रणाद्धेतोः आनीतं दूरे क्षितम् । शिरः मच्छिरः । दृष्ट्वा सुखी भव । तदानीं मयि रोषत्यागादिति भावः । सीता दुःखिता भवतु । सर्वलोकमातृत्वादिति भावः

सदृशं यत्तु कालेऽस्मिन् कर्तुं स्निग्धेन बन्धुना ॥ शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ॥ ३३ ॥ अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि ॥ हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं परवाहिनीम् ॥ ३४ ॥ अद्य रामस्य तद्दृष्ट्वा मयानीतं रणाच्छिरः ॥ सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता ॥ ३५ ॥ अद्य रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत्प्रियम् ॥ लङ्कायां राक्षसाः सर्वे ये ते निहतबान्धवाः ॥ ३६ ॥ अद्य शोकपरीतानां स्वबन्धुवधकारणात् ॥ शत्रोर्युधि विनाशेन करोम्यास्रप्रमार्जनम् ॥ ३७ ॥ अद्य पर्वतसंकाशं ससूर्यमिव तोयदम् ॥ विकीर्णं पश्य समरे सुग्रीवं प्लवगोत्तमम् ॥ ३८ ॥ कथं त्वं राक्षसैरेभिर्मया च परिरक्षितः ॥ जिघांसुभिर्दाशरथिं वध्यसे त्वमिहानघ ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३५ ॥ अद्य रामस्य पश्यन्त्विवति ॥ अर्थान्तरम् । रामस्येति कर्तरि षष्ठी । रामकर्तृकं मन्निधनम् ये निहतबान्धवाः ते राक्षसाः पश्यन्तु । न दुःखं पञ्चभिः सह इति न्यायादिति भावः । उत्तरश्लोकेप्येवमेव योजना ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अद्येति ॥ ससूर्यमिव तोयदमिति । रुधिराक्ततया ससूर्यप्रकाशं मेघमिव स्थितमित्यर्थः ॥ ३८ ॥ कथमिति ॥ ससैन्यं दाशरथिं जिघांसुभिः एभिः राक्षसैः मया च परिरक्षितस्त्वं कथं रामेण वध्यस इति योजना । अर्थान्तरम् । जिघांसुभिः हननेच्छामात्रवद्भिः । पराक्रमासमर्थैरित्यर्थः । कथं परिरक्षितः । प्रत्युत वध्यस इति । अत्र विभीषणः क्व गत इति कुम्भकर्णस्य प्रश्नः मया धिक्कृतो गत इति रावणस्योत्तरं च क्वचित् कोशे दृश्यते तत्पूर्वापरविरुद्धम् ॥ ३९ ॥ ॥ ॥

अथेति ॥ अत्र अथशब्दः प्रक्रमान्तरे । मयि हते सति हि पश्चात्त्वां रामो हन्ति हनिष्यति । अहं च आत्मनि स्वस्मिन् संतापं शत्रुपरिभवजं न कदाचिदपि गच्छेयम् । न केनचिद्धन्तुं शक्य इत्यर्थः । अतः कुतस्ते भयमिति भावः । अर्थान्तरम् । अहमात्मनि विषये संतापम् न गच्छेयं न गच्छामि। "व्यत्ययो बहुलम्" इति लकारव्यत्ययः । मन्निधनं नानुशोचामीत्यर्थः । किं तु मयि हते सति । अथ राघवस्त्वां हन्ति हनिष्यतीति

अथ पूर्वं हते तेन मयि त्वां हन्ति राघवः ॥ नाहमात्मनि संतापं गच्छेयं राक्षसाधिप ॥ ४० ॥ कामं त्विदानीमपि मां व्यादिश त्वं परंतप ॥ न परः प्रेषणीयस्ते युद्धायातुलविक्रम ॥ ४१ ॥ अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबल ॥४२॥ यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ॥ तानहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि ॥ ४३ ॥ गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य मे ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाच्च पुरंदरः ॥ ४४ ॥ अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्नतस्तरसा रिपून् ॥ न मे प्रतिमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः ॥ ४५ ॥ नैव शक्त्या न गदया नासिना निशितैः शरैः ॥ हस्ताभ्यामेव संरब्धो हनिष्याम्यपि वज्रिणम् ॥ ४६ ॥ यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोद्य सहिष्यते ॥ ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य तु ॥ ४७ ॥ चिन्तया बाध्यसे राजन् किमर्थं मयि तिष्ठति ॥ सोहं शत्रुविनाशाय तव निर्यातुमुद्यतः ॥ ४८ ॥ मुञ्च रामाद्भयं राजन्हनिष्यामीह संयुगे ॥ राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं च महाबलम् ॥ हनुमन्तं च रक्षोघ्नं लङ्का येन प्रदीपिता ॥ ४९ ॥ हरींश्चापि हनिष्यामि संयुगे समवस्थितान् ॥ असाधारणमिच्छामि तव दातुं महद्यशः ॥ ५० ॥

संतापं गच्छामीति ॥ ४० ॥ काममिति ॥ इदानीमपि इदानीमेव युद्धाय व्यादिश । ते त्वया परः अन्यः न प्रेषणीयः ॥ ४१ ॥ अहमित्यर्धमेकं वाक्यम् ॥ ४२ ॥ उक्तं विवृणोति—यदीति ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अथ वेति ॥ मृद्नतः प्रहरतः । प्रतिमुखे अग्रे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ यदीति ॥ रामः प्रथमं मे मुष्टिप्रप्रहारमेव न सहिष्यते । कुतो मां प्रहरिष्यतीति भावः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ यदीति ॥ राघवो मुष्टिवेगं यदि सहिष्यति ततः राघवस्य बाणौघाः मे रुधिरं पास्यन्ति । राघवो मुष्टिवेगं न सहिष्यत इति भावः ॥ ४७ ॥ चिन्तयेति ॥ उद्यतः अस्मीति शेषः ॥ ४८ ॥ मुञ्चेत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥

अर्थान्तरम् । रामात् भयम् अस्तीति शेषः । हनिष्यामीत्येतन्मुञ्चेति । दातुं खण्डितुमित्यर्थान्तरम् ॥ ४९ ॥ ५० ॥ यदि चेत्यर्धम् ॥ इन्द्रात् स्वयंभुवश्च भयं यद्यस्ति तदपि मोचयिष्यामीत्युपस्कार्यम् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ नन्विति ॥ त्रिदिवं त्रिलोकी । आहारस्य न पूर्यते आहाराय न पूर्यते । न पर्याप्तमित्यर्थः ॥ ५५ ॥ वधेनेति ॥ सुखार्हम् उत्तरोत्तरसुखावहम् । ते वधेन दाशरथेः सुखावहमित्यर्थान्तरम् ॥ ५६ ॥

यदि चेन्द्राद्भयं राजन् यदि वापि स्वयंभुवः ॥ ५१ ॥ अपि देवाः शयिष्यन्ते क्रुद्धे मयि महीतले ॥ यमं च शमयिष्यामि भक्षयिष्यामि पावकम् ॥ आदित्यं पातयिष्यामि सनक्षत्रं महीतले ॥ ५२ ॥ शतक्रतुं वधिष्यामि पास्यामि वरुणालयम् ॥ पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ॥ ५३ ॥ दीर्घकालं प्रसुप्तस्य कुम्भकर्णस्य विक्रमम् ॥ अद्य पश्यन्तु भूतानि भक्ष्यमाणानि सर्वशः ॥ ५४ ॥ नन्विदं त्रिदिवं सर्वमाहारस्य न पूर्यते ॥ ५५ ॥ वधेन ते दाशरथेः सुखार्हं सुखं समाहर्तुमहं व्रजामि ॥ निहत्य रामं सह लक्ष्मणेन खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ५६ ॥ रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं कुरुष्व कृत्यानि विनीयतां ज्वरः ॥ मयाद्य रामे गमिते यमक्षयं चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ॥ ॥

तदुक्तमतिकायस्य बलिनो बाहुशालिनः ॥ कुम्भकर्णस्य वचनं श्रुत्वोवाच महोदरः ॥ १ ॥ ॥

रमस्वेति ॥ मया निमित्तेन रमस्वेत्यादौ काकुः । इयमक्षयमिति च्छेदः । रामे विषये गमिता इयं सीता चिराय वशगा भविष्यतीत्यर्थान्तरम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ॥

अथ मन्त्रिकृतानयमसहमानो महोदरः कुम्भकर्णं निर्भर्त्सयति–तदुक्तमित्यादिना ॥ उक्तं सूचनं विना कण्ठरवेण दर्शितम् । अतिकायस्य महाशरीरस्य । प्रतिवचनानर्हत्वद्योतनाय विशेषणानि ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

कुम्भकर्ण कुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः॥ अवलिप्तो न शक्नोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥२॥ न हि राजा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ॥ त्वं तु कैशोरकाद्धृष्टः केवलं वक्तुमिच्छसि ॥३॥ स्थानं वृद्धिं च हानिं च देशकालविभागवित्॥आत्मनश्च परेषां च बुध्यते राक्षसर्षभः ॥ ४ ॥ यत्त्वशक्यं बलवता कर्तुं प्राकृतबुद्धिना ॥ अनुपासितवृद्धेन कः कुर्यात्तादृशं बुधः ॥५॥ यांस्तु धर्मार्थकामांस्त्वं ब्रवीषि पृथगाश्रयान् ॥ अनुबोद्धुं स्वभावे तान्नहि लक्षणमस्ति ते ॥ ६ ॥

मन्त्रिभिः सह विचार्यैव रावणेनाकार्यं कृतम् । अहमसहाय एव रामादिभिर्योत्स्यामीति यदुक्तं कुम्भकर्णेन तदुभयं दूषयितुमाह–कुम्भकर्णेत्यादिना ॥ कुले जातोपि प्राकृतदर्शनः क्षुद्रबुद्धिः । केवलं धृष्टः न तु शास्त्रज्ञ इत्यर्थः । अवलिप्तः गर्वितः । त्वं सर्वत्र कार्ये । कृत्यं मन्त्ररूपम् । तद्वेदितुं न शक्नोषि ॥ २ ॥ केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः, न स वेद नयानयावित्यादिना रावणोद्देशेन कुम्भकर्णोक्तं दूषयति–न हीत्यादिना ॥ राजा नयानयौ न जानीत इति न । जानीत एवेत्यर्थः । किशोरः बालः तस्य भावः कैशोरकं तस्मात् बाल्यात् । केवलं धृष्टः न तु शास्त्रज्ञानेनेति भावः ॥ ३ ॥ स्थानमिति ॥ देशकालविभागवित् विविक्तादिमन्त्रोचिततद्भिन्नयोः देशयोः तथा मन्त्रोचितानुचितयोश्च कालयोर्विभागं वेत्तीति तथोक्तः । राक्षसर्षभः रावणः । आत्मनः शत्रूणां च वृद्धिं हानिं स्थानं समतां च बुध्यते । रावणो देशकालविभागाद्यनभिज्ञ इति त्वयोक्तं न युक्तमिति भावः ॥ ४ ॥ लोके कापुरुषेणापि यत् कर्तुमनर्हं तादृशं कर्म विवेकी रावणः कथं कुर्यादित्यभिप्रेत्याह–यत्त्विति ॥ बलवता केवलशौर्यावलम्बिना प्राकृतबुद्धिना यत् कर्तुं शक्यं तादृशं कर्म बुधः कः कुर्यात् न कोपि कुर्यात् । किमुत रावण इति भावः ॥ ५ ॥ धर्माधर्मयोर्हिताहितसाधनत्वं निश्चित्य, शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मण इत्यादिना सीताहरणरूपात् पापात्तवायमनर्थः प्राप्त इति यदुक्तं कुम्भकर्णेन तदपि धर्माधर्मयोर्हिताहितफलनियमाभावान्न संगच्छत इति प्रतिपादयितुमाह–यांस्त्वत्यादिना ॥ पृथगाश्रयान् पृथक्कारणान् भिन्नफलान् । धर्मार्थकामान् ब्रवीषि । तान् स्वभावे अनुबोद्धुं स्वरूपतो ज्ञातुम् । लक्षणं लक्ष्यतेनेनेति लक्षणं प्रमाणम् । तव नास्तीत्यर्थः । सुखफलदयागादिधर्मानुष्ठानदशायां तात्कालिकशरीरायासजनितदुःखदर्शनात् दुःखजनकपरद्रव्यापहरणाद्यधर्माचरणसमये तात्कालिकसुखदर्शनाच्च । अर्थकामयोरप्येवं दर्शनाच्च । कर्मणामनियतफलकत्वान्नियतफलकत्वे न किंचित् प्रमाणमुपलभ्यत इत्यर्थः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

तदेव प्रदर्शयति–कर्म चेत्यादिना ॥ सर्वेषां कारणानां स्वर्गनरकरूपाणां फलानां कर्मैव प्रयोजकं साधकम् । जात्येकवचनम् । किं तु अत्र कर्मजाते पापीयसामपि कर्मणां श्रेयः फलं भवति ॥ ७ ॥ उक्तमेवार्थं विशदयति–निःश्रेयसेति ॥ धर्मार्थौ धर्मार्थसाधनभूते कर्मणी । इतरौ अधर्मानर्थसाधनभूते कर्मणी च । निःश्रेयसफलौ एतानि चतुर्विधानि निःश्रेयसकराण्येव । किं तु कदाचिदधर्मानर्थयोः प्रत्यवायिकम् । अश्रेय इति यावत् । प्रत्यवायोस्मिन् कारणतयास्तीति प्रत्यवायिकम् । "अत इनिठनौ" इति ठन् । प्राप्यत इति प्राप्तिः फलम् । कर्मणि क्तिन्प्रत्ययः । एतेनाधर्मानर्थयोः श्रेयस्तदितरच्चोभयं फलं भवतीत्युक्तम् ॥८॥ एवं धर्माधर्मयोरव्यवस्थितफलत्वमुक्त्वा कामस्यापि तदाह–ऐहलौकिकेति ॥ ऐहलौकिकं इहलोकोपयोगि । पारत्रं परलोकोपयोगि च कर्म पुंभिर्निषेव्यते । तत्फलं चानुभूयते । तथैव काममास्थितः यथेच्छाचारोपि कल्याणि कर्माणि कल्याणानि कर्मफला-

कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजकम् ॥ श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम् ॥ ७ ॥ निःश्रे-
यसफलावेव धर्मार्थावितरावपि ॥ अधर्मानर्थयोः प्राप्तिः फलं च प्रत्यवायिकम् ॥ ८ ॥ ऐहलौकिकपार-
त्रं कर्म पुंभिर्निषेव्यते ॥ कर्माण्यपि तु कल्याणि लभते काममास्थितः ॥ ९ ॥ तत्र क्लृप्तमिदं राज्ञा हृदि
कार्यं मतं च नः ॥ शत्रौ हि साहसं यत्स्यात् किमिवात्रापनीयताम् ॥ १० ॥ एकस्यैवाभियाने तु हेतुर्यः
कथितस्त्वया ॥ तत्राप्यनुपपन्नं ते वक्ष्यामि यदसाधु च ॥ ११ ॥

नि लभते । अतो विहितमेव शुभप्रदम्, निषिद्धं तु तथा न भवतीति नियमो नास्तीत्यर्थः॥९॥धर्मादीनां फलनियमो नास्ति, सर्वं सर्वस्य फलमित्यस्मिन् पक्षे स्थित्वा रावणेन सीताहरणं कृतमस्माभिश्चानुमतमित्याह–तत्र क्लृप्तमिति ॥ तत्र राज्ञा कामसेव्यपि सुखानि लभत इति मते स्थितेन राज्ञा । इदं कार्यं सीताहरणरूपं कार्यम् । हृदि क्लृप्तं हृदि चिन्तितम् । नः अस्माकमपि । मतं संमतम् । शत्रौ शत्रुविषये यत् साहसं स्यात् । अत्र अस्मिन् साहसकर्मणि किमिवापनीयते । न किंचित् क्रियते इत्यर्थः ॥१०॥ एवं रावणस्याविमृश्यकारित्वपक्षं प्रतिक्षिप्य कुम्भकर्णस्यैकस्यैवाभियानपक्षं निरस्यति–एकस्येत्यादिना ॥ एकस्यासहायस्य । अभियाने युद्धाय निर्गमे । यो हेतुः बलपराक्रमरूपः । त्वयापकृतः प्रस्तावितः । तत्रापीत्यपिशब्देन पूर्वं निराकृतः पक्षः समुच्चीयते । यदनुपपन्नं अयुक्तम् । असाधु अहितं च । तद्वक्ष्यामि ॥ ११ ॥ ॥ ॥

अनुपपत्तिमुपपादयति—येनेति ॥ १२ ॥ असाधुत्वं दर्शयति—ये पुरेति ॥ तान् तज्जातीयानित्यर्थः ॥ १३ ॥ तमिति ॥ संक्रुद्धं सिंहमिव संक्रुद्धसिंहसदृशम्।
तमबुध्य अबुध्वा । सुप्तं सर्पमिव प्रबोधयितुमिच्छसीत्यन्वयः ॥ १४ ॥ ज्वलन्तमिति ॥ असह्यं सोढुमशक्यम् । अपरिहार्यपराक्रममित्यर्थः ।
आसादयितुमासादितुम् ॥१५॥ संशयस्थमिति ॥ यत्र शत्रोः प्रतिसमासने प्रतिमुखस्थितौ इदं सर्वं बलं संशयस्थं भवति । तत्र एकस्य तव गमनं न
रोचते ॥ १६ ॥ हीनार्थं इति ॥ हीनार्थः हीयमानबलः । कः पुमान् जीवितत्यागे विषये । निश्चित्य निश्चयं कृत्वा । समृद्धार्थं वर्धमानबलं रिपुम् प्राकृतं

येन पूर्वं जनस्थाने बहवोतिबलाहताः ॥ राक्षसा राघवं तं त्वं कथमेको जयिष्यसि ॥१२॥ये पुरा निर्जितास्तेन जनस्थाने
महौजसः ॥ राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान् भीतानद्यापि पश्यसि ॥ १३ ॥ तं सिंहमिव संक्रुद्धं रामं दशरथात्मजम् ॥ सर्पं सुप्तमिवाबुध्य
प्रबोधयितुमिच्छसि ॥१४॥ ज्वलन्तं तेजसा नित्यं क्रोधेन च दुरासदम्॥ कस्तं मृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति
॥ १५ ॥ संशयस्थमिदं सर्वं शत्रोः प्रतिसमासने ॥ एकस्य गमनं तत्र न हि मे रोचते भृशम् ॥१६॥ हीनार्थः सुसमृद्धार्थं
को रिपुं प्राकृतं यथा ॥ निश्चित्य जीवितत्यागे वशमानेतुमिच्छति ॥१७॥ यस्य नास्ति मनुष्येषु सदृशो राक्षसोत्तम
॥ कथमाशंससे योद्धुं तुल्येनेन्द्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वा तु संरब्धः कुम्भकर्णं महोदरः ॥ उवाच रक्षसां
मध्ये रावणं लोकरावणम् ॥ १९॥ लब्ध्वा पुनस्त्वं वैदेहीं किमर्थं संप्रजल्पसि ॥ यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति
॥ २० ॥ दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः ॥ रुचिरश्चेत्स्वया बुद्ध्या राक्षसेश्वर तं शृणु ॥ २१ ॥

यथा क्षुद्रपुरुषमिव । वशमानेतुमिच्छतीत्यन्वयः । जीवितत्यागे निश्चयोस्ति चेत्तं प्रति युद्धाय याहीत्यर्थः ॥ १७ ॥ यस्येति ॥ यस्य मनुष्येषु सदृशो
नास्ति । किं तु देवयोः इन्द्रविवस्वतोः इन्द्रसूर्ययोस्तुल्येन तेन रामेणेति शेषः । योद्धुं कथमासंशसे । वक्तुमेव न शक्यं किमुत कर्तुमिति शेषः ॥१८॥
॥१९॥ लब्ध्वेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ संप्रजल्पसि बहुविधं भाषसे । अद्येति शेषः । यदीच्छसि । वक्ष्यमाणोपायमिति शेषः । तदा तदैव । मे मया ।
उपस्थानं स्वयमेव समीपागमनम् । रुचिरः प्रियः । स्वया बुद्ध्या शृणु । न तु परबुद्धिमनुसरेत्यर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ ॥

अहं द्विजिह्वः संह्रादी कुम्भकर्णो वितर्दनः ॥ पञ्च रामवधायैते निर्यान्त्वित्यवघोषय ॥ २२ ॥ ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः ॥ जेष्यामो यदि ते शत्रून्नोपायैः कृत्यमस्ति नः ॥२३॥ अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः ॥ ततस्तदभिपतस्यामो मनसा यत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥ वयं युद्धादिहेष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः ॥ विदार्य स्वतनुं बाणै रामनामाङ्कितैः शितैः ॥ २५ ॥ भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः ॥ तव पादौ ग्रहीष्यामस्त्वं नः कामं प्रपूरय ॥ २६ ॥ ततोवघोषय पुरे गजस्कन्धेन पार्थिव ॥ हतो रामः सह भ्रात्रा ससैन्य इति सर्वतः ॥ ॥ २७ ॥ प्रीतो नाम ततो भूत्वा भृत्यानां त्वमरिंदम ॥ भोगांश्च परिवारांश्च कामांश्च वसु दापय ॥ २८ ॥ ततो माल्यानि वासांसि वीराणामनुलेपनम् ॥ पेयं च बहु योधेभ्यः स्वयं च मुदितः पिब ॥२९॥ ततोस्मिन्बहुलीभूते कौलीने सर्वतो गते ॥ भक्षितः ससुहृद्रामो राक्षसैरिति विश्रुते ॥ ३० ॥ प्रविश्याश्वास्य चापि त्वं सीतां रहसि सान्त्वय ॥ धनधान्यैश्च कामैश्च रत्नैश्चैनां प्रलोभय ॥ ३१ ॥ ॥

॥ २२ ॥ तत इति ॥ उपायैः सीताहरणोपायैः । कृत्यं साध्यम् नास्ति । सिद्धे साधनायोगादिति भावः ॥ २३ ॥ अथेति ॥ अथ जीवति यदि जीवतीत्यर्थः । ततः तदा समीक्षितमालोचितम् यत् तत् अभिपतस्यामः । करिष्याम इति यावत् ॥ २४ ॥ तत् किमित्यत्राह—वयमित्यादि ॥ वयं बाणैः स्वतनुं विदार्य रामेण विदारितां कारयित्वा । रुधिरेण समुक्षिताः रामनामाङ्कितैः शरैः सह युद्धादिहेष्याम इति योजना । इदं च रामयुद्धं कृतमिति सीतासमाश्वासाय ॥ २५ ॥ भक्षित इति ॥ ततः आगमनानन्तरम् । रामो लक्ष्मणश्च रिपुः निःशेषं भक्षित इति तव पादौ ग्रहीष्यामः । त्वं संतोषातिशयव्यञ्जनार्थम् नः कामं प्रपूरय । अभीष्टं पारितोषिकं देहीत्यर्थः ॥ २६ ॥ तत इति ॥ गजस्कन्धेन गजस्कन्धगतपुरुषेण ॥ २७ ॥ प्रीत इति ॥ नामेत्यलीके । परिवारान् दासदासीः गजाश्वादीन् परिच्छदान् वा । स्याज्जङ्गमे परीवार इत्यमरः । कामान् काम्यमानानभीष्टान् । वसु सुवर्णम् ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ तत इत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ कौलीने लोकवादे । स्यात्कौलीनं लोकवाद इत्यमरः । कौलीनमेव विशदयति—भक्षित इति ।

प्रविश्य । समीपं गत्वेत्यर्थः । आश्वास्य रामात्ययजं शोकं निवार्य । सान्त्वय मयि प्रीतिं कुर्वित्येवं सान्त्ववादं कथयेत्यर्थः । धनैः सुवर्णैः ॥३०॥३१॥ अनयेति ॥ उपधया कपटोपायेन । भयशोकानुबन्धया संपादितसीताभयशोकेनेत्यर्थः । अकामा पूर्वं त्वदनभिलाषिणी ॥ ३२ ॥ रञ्जनीयमिति ॥ स्त्रीलघुत्वात् स्त्रीचापलात् ॥ ३३ ॥ सेति ॥ त्वय्यधीनं त्वयि विषये अधीनं परतन्त्रम् उपगमिष्यति । त्वामिति शेषः ॥ ३४ ॥ उक्तमर्थं निगमयति—एतदिति ॥ एतत् मम दर्शनेन बुद्ध्या । सुनीतं निर्णीतम् । रामं दृष्ट्वा स्थितस्य तव अनर्थो भवेत् । मोत्सुको भूः मारणोत्सुको भूः । अयुद्धेन यु-

अनयोपधया राजन् भयशोकानुबन्धया ॥ अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा गमिष्यति ॥ ३२ ॥ रञ्जनीयं हि भर्तारं विनष्टमवगम्य सा ॥ नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्च त्वद्वशं प्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥ सा पुरा सुखसंवृद्धा सुखार्हा दुःखकर्षिता ॥ त्वय्यधीनं सुखं ज्ञात्वा सर्वथोपगमिष्यति ॥ ३४ ॥ एतत्सुनीतं मम दर्शनेन रामं हि दृष्ट्वैव भवेदनर्थः ॥ इहैव ते सेत्स्यति मोत्सुको भूर्महानयुद्धेन सुखस्य लाभः ॥ ३५ ॥ अदृष्टसैन्यो ह्यनवाप्तसंशयो रिपूनयुद्धेन जयन्नराधिपः ॥ यशश्च पुण्यं च महन्महीपते श्रियं च कीर्तिं च चिरं समश्नुते ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

स तथोक्तस्तु निर्भर्त्स्य कुम्भकर्णो महोदरम् ॥ अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठं भ्रातरं रावणं ततः ॥ १ ॥ ॥

द्धव्यतिरिक्तासनबलेन । प्रसज्य प्रतिषेधेपि समासस्येष्टत्वात् साधुः ॥ ३५ ॥ तदेवायुद्धं स्तौति—अदृष्टेति ॥ अदृष्टसैन्यः अदृष्टशत्रुसैन्यः । अत एवानवाप्तसंशयः अप्राप्तप्राणसंदेहः । अयुद्धेन जयन् युद्धव्यतिरिक्तोपायेन जयन्नित्यर्थः । महत् पुण्यं पुण्यफलं सुखम् । श्रियं श्रीमत्प्रियालाभेन जनितां संपदम् । कीर्तिं प्रसादम् । विस्तारं वा । कीर्तिः प्रसादे यशसि कर्दमे विस्तृतावपि इति रत्नमाला । महीपते इति संबोधनम् । सीतानुरागाभावेन नैराश्याद्रामः स्वयं विनश्यतीति महोदरहृदयम् ॥३६॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामा॰रत्नकिरीटाख्याने युद्धका॰चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥ अथ युद्धाय कुम्भकर्णनिर्याणं पञ्चषष्टितमे—स तथोक्तस्त्वित्यादि ॥ निर्भर्त्स्य गर्जन्तीत्यादिवक्ष्यमाणप्रकारेणेति शेषः ॥ १ ॥ ॥

सोहमिति ॥ प्रमार्जामि । निवर्तयिष्यामीत्यर्थः । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवत् प्रयोगः ॥२ ॥ गर्जन्तीति ॥ वृथा कर्मणा विना । मया तु कर्मणा संपाद्यमानं गर्जितं पश्य । गर्जितानुसारेण कर्म करोमीत्यर्थः ॥ ३ ॥ न मर्षयतीति ॥ शूराः परकृतामवमानोक्तिम् । न मर्षयति न मर्षयन्ति । न सहन्ते । आत्मना स्वयम् आत्मानं न संभावयति न संभावयन्ति न बहुमन्यन्ते । उभयत्रापि व्यत्ययेनैकवचनम् । किं तु अदर्शयित्वा अप्रकाश्य । आत्मपौरुषमनुक्त्वेत्यर्थः । दुष्करमपि कर्म कुर्वन्ति॥४॥विक्लवानामिति ॥ अत्र पञ्चम्यर्थे षष्ठी । सादितमिति भावे निष्ठा । विक्लवेभ्यः कातरेभ्यः। अबुद्धिभ्यः पण्डि

सोहं तव भयं घोरं वधात्तस्य दुरात्मनः ॥ रामस्याद्य प्रमार्जामि निर्वैरो हि सुखी भव ॥ २॥ गर्जन्ति न वृथा
शूरा निर्जला इव तोयदाः ॥ पश्य संपाद्यमानं तु गर्जितं युधि कर्मणा ॥ ३ ॥ न मर्षयति चात्मानं संभावयति
नात्मना ॥ अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥ ४ ॥ विक्लवानामबुद्धीनां राज्ञा पण्डितमानिनाम् ॥
शृण्वता सादितमिदं त्वद्विधानां महोदर ॥ ५ ॥ युद्धे कापुरुषैर्नित्यं भवद्भिः प्रियवादिभिः॥ राजानमनुगच्छद्भिः
कृत्यमेतद्धि सादितम् ॥ ६॥ राजशेषा कृता लङ्का क्षीणः कोशो बलं हतम् ॥ राजानमिममासाद्य सुहृच्चिह्नममित्रकम्
॥ ७ ॥ एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये ॥ दुर्नयं भवतामद्य समीकर्तुमिहाहवे ॥८॥ एवमुक्तवतो
वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः ॥ प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन्राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥ ॥

तमानिभ्यः त्वद्विधेभ्यः शृण्वता राज्ञा । इदमीदृशम् । सादितं प्राप्तं भवति ॥ ५ ॥ इदंशब्दनिर्दिष्टं दर्शयति–युद्ध इति ॥ युद्धे कापुरुषैः युद्धभीरुभिरित्यर्थः । राजानमनुगच्छद्भिः राजेच्छानुसारिभिरित्यर्थः । एतत् प्रकृतयुद्धपर्यवसायि सीताहरणकृत्यं सादितं संपादितम् ॥ ६ ॥ राजशेषेति॥ अत्राप्यनुगच्छद्भिः भवद्भिरित्यनुषञ्जनीयम् । सुहृच्चिह्नं सुहृद्व्यपदेश्यम् । अमित्रकं भवतामित्रभूतम् । इमं राजानमासाद्य अनुगच्छद्भिः भवद्भिः लङ्का राजशेषा कृता । अकार्यप्रवृत्तो राजा यैर्न निवार्यते स तेषाममित्र इत्यभिप्रायेण अमित्रकमित्युक्तम् ॥ ७ ॥ एष इति ॥ दुर्नयं समीकर्तुम् शत्रुनिर्जये । तद्विनाश इत्यर्थः। उद्यतः उद्युक्तः सन् । युद्धं युद्धभूमिं प्रति । एष निर्यामि । अद्यैव निर्यास्यामीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ तस्मादिति ॥ तस्मात् भवतो निःसमत्वात् । संबोधितः प्रबोधितः । अयं हि कालः । युद्धायेति शेषः ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ एवमिति ॥ पुनर्जातमिव मेने । जेष्यत्ययमिति विश्वासादिति भावः ॥ १५ ॥ १६ ॥ इत्येवमित्यर्धम् ॥ निर्जगाम निर्गन्तुमुद्युक्तः ॥ १७ ॥ राज्ञस्त्वि-

महोदरोयं रामात्तु परित्रस्तो न संशयः ॥ न हि रोचयते तात युद्धं युद्धविशारद ॥ १० ॥ कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च ॥ गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च ॥ ११ ॥ तस्मात्तु भयनाशार्थं भवान्संबोधितो मया ॥ अयं हि कालः सुहृदां राक्षसानामरिंदम ॥ १२ ॥ तद्गच्छ शूलमादाय पाशहस्त इवान्तकः ॥ वानरान्राजपुत्रौ च भक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥ समालोक्य तु ते रूपं विद्रविष्यन्ति वानराः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वा महाराजः कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ पुनर्जातमिवात्मानं मेने राक्षसपुङ्गवः ॥ १५ ॥ कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानंस्तस्य पराक्रमम् ॥ बभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मलः ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ॥ १७ ॥ राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कुम्भकर्णः समुद्यतः ॥ आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिवर्हणम् ॥ १८ ॥ सर्वकालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥ इन्द्राशनिसमं भीमं वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ १९ ॥ देवदानवगन्धर्वयक्षकिन्नरसूदनम् ॥ रक्तमाल्यं महाधाम स्वतश्चोद्गतपावकम् ॥ २० ॥ आदाय निशितं शूलं शत्रुशोणितरञ्जितम् ॥ कुम्भकर्णो महातेजा रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥ गमिष्याम्यहमेकाकी तिष्ठत्विह बलं मम ॥ अद्य तान्क्षुभितान् क्रुद्धो भक्षयिष्यामि वानरान् ॥ कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ सैन्यैः परिवृतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः ॥ वानरा हि महात्मानः शीघ्राः सुव्यवसायिनः ॥ २३ ॥

त्यादि ॥ सर्वकालायसम् बहुकार्ष्णायसमयमित्यर्थः । महाधाम महातेजः । स्वतश्चोद्गतपावकं क्रौर्यात् स्वत एवोत्पन्नाग्निकणम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ सैन्यैरित्यादि ॥ महात्मानः महाबुद्धयः । शीघ्राः वेगवन्तः । सुव्यवसायिनः दृढनिश्चयाः ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ अथेति ॥ स्रजं काञ्चनमालाम् । कुम्भकर्णस्य आबबन्ध कुम्भकर्णे आबबन्धेत्यर्थः ॥ २५ ॥ अङ्गदानीति ॥ अङ्गुलीवेष्टान् अङ्गुलीयकानि ॥ २६ ॥ दिव्यानीति ॥ आसञ्जयामास । बबन्धेत्यर्थः । अत्र केयूरादीनामप्युपलक्षणम् । काञ्चनाङ्गदकेयूर इत्यनुवादात् ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रोणीसूत्रेणेति ॥ अमृतोत्पादने नद्ध इति निमित्तसप्तमी । भुजङ्गेन वासुकिना ॥ २९ ॥ स इति ॥ भारसहम् आयुधादिभिः प्रहारैरप्यशिथिलमित्य-

एकाकिनं प्रमत्तं वा नयेयुर्दशनैः क्षयम् ॥ तस्मात्परमदुर्धर्षैः सैन्यैः परिवृतो व्रज ॥ रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्षं निषूदय ॥ २४ ॥ अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् ॥ आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥ २५ ॥ अङ्गदान्यङ्गुलीवेष्टान्वराण्याभरणानि च ॥ हारं च शशिसंकाशमाबबन्ध महात्मनः॥ ॥ २६ ॥ दिव्यानि च सुगन्धीनि माल्यदामानि रावणः ॥ श्रोत्रे चासंजयामास श्रीमती चास्य कुण्डले ॥ ॥ २७॥ काञ्चनाङ्गदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ॥ कुम्भकर्णो बृहत्कर्णः सुहुतोग्निरिवाबभौ ॥ २८ ॥ श्रोणीसुत्रेण महता मेचकेन व्यराजत ॥ अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥ २९ ॥ स काञ्चनं भारसहं निवातं विद्युत्प्रभं दीप्तमिवात्मभासा ॥ आबध्यमानः कवचं रराज संध्याभ्रसंवीत इवाद्रिराजः ॥ ३० ॥ सर्वाभरणसर्वाङ्गः शूलपाणिः स राक्षसः ॥ त्रिविक्रमकृतोत्साहो नारायण इवाबभौ ॥ ३१ ॥ भ्रातरं संपरिष्वज्य कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ॥ प्रणम्य शिरसा तस्मै संप्रतस्थे महाबलः ॥ ३२ ॥ ॥

र्थः । दृढमिति वार्थः । यद्वा उपनीतायां तुलायां स्थाप्यमानान् बहून् भारान् सहत इति भारसहः । अनेकभारपरिमाण इत्यर्थः । निवातं वातप्रवेशनिवारकम् । निरन्तरमिति यावत् । आत्मभासा कवचकान्त्या । यद्वा निवातं शस्त्राभेद्यम् । निवातावाश्रयावातौ शस्त्राभेद्यं च वर्म यत् इत्यमरः । आबध्यमानः आबध्नन् । आर्षविकरणव्यत्ययेन श्यन्प्रत्ययः ॥ ३० ॥ सर्वेति ॥ सर्वाभरणसर्वाङ्गः सर्वाभरणयुक्तसर्वाङ्गः । त्रिविक्रमकृतोत्साहः त्रिषु विक्रमेषु पदन्यासेषु कृतोत्साहः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ सर्पैरिति ॥ सर्पादीनां महाशरीराणां वाहनत्वं संभवतीति बोध्यम् । द्विपाः गजाः । द्विजाः हंसादयः ॥ ३६ ॥ स इति ॥ मदोत्कटः स्वाभाविकमदेन मत्तः । मत्ते शौण्डोत्कटक्षीबा इत्यमरः ॥ ३७ ॥ पदातयश्चेत्यादि ॥ बहुव्यामान् अनेकव्यामप्रमाणान् । व्यामो बाह्वोः

निष्पतन्तं महाकायं महानादं महाबलम् ॥ तमाशीर्भिः प्रशस्ताभिः प्रेषयामास रावणः ॥ ३३ ॥ शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः सैन्यैश्चापि वरायुधैः ॥ तं गजैश्च तुरङ्गैश्च स्यन्दनैश्चाम्बुदस्वनैः ॥ ३४ ॥ अनुजग्मुर्महात्मानं रथिनो रथिनां वरम् ॥ ३५ ॥ सर्पैरुष्ट्रैः खरैरश्वैः सिंहद्विपमृगद्विजैः ॥ अनुजग्मुश्च तं घोरं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ३६ ॥ स पुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो धृतातपत्रः शितशूलपाणिः ॥ मदोत्कटः शोणितगन्धमत्तो विनिर्ययौ दानवदेवशत्रुः ॥ ३७ ॥ पदातयश्च बहवो महानादा महाबलाः ॥ अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥ ३८ ॥ रक्ताक्षाः सुमहाकाया नीलाञ्जनचयोपमाः ॥ शूलानुद्यम्य खड्गांश्च निशितांश्च परश्वधान् ॥ ३९ ॥ बहुव्यामांश्च परिघान् गदाश्च मुसलानि च ॥ तालस्कन्धांश्च विपुलान् क्षेपणीयान् दुरासदान् ॥ ४० ॥ अथान्यद्वपुरादाय दारुणं रोमहर्षणम् ॥ निष्पपात महातेजाः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ४१ ॥ धनुःशतपरीणाहः स षट्छतसमुच्छ्रितः ॥ रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसन्निभः ॥ ४२ ॥ सन्निपत्य च रक्षांसि दग्धशैलोपमो महान् ॥ कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ॥ निर्दहिष्यामि संक्रुद्धः शलभानिव पावकः ॥ ४४ ॥ नापराध्यन्ति मे कामं वानरा वनचारिणः ॥ जातिरस्मद्विधानां सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४५ ॥ ॥ ॥

सकरयोस्ततयोस्तिर्यगनन्तरम् इत्यमरः । तालस्कन्धान् तालकाण्डान् ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ धनुःशतेत्यादि ॥ धनुःशतपरीणाहः धनुःशतविशालः । षट्छतसमुच्छ्रितः षट्छतधनुरुच्छ्रायः । सन्निपत्य स्वानुगमनायोद्युक्तानां राक्षसानां समीपं गत्वेत्यर्थः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अद्येत्यादि ॥ सा जातिः वानरजातिः । अस्मद्विधानां क्रीडापराणाम् ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥ ॥

॥४६॥४७॥ तस्येति ॥ घोररूपाणि अत्यन्तघोराणि ॥४८॥ उल्केत्यादि ॥ गर्दभारुणाः गर्दभवदव्यक्तरागाः। अव्यक्तरागस्त्वरुण इत्यमरः। निष्पपाते-

पुररोधस्य मूलं तु राघवः सहलक्ष्मणः ॥ हते तस्मिन्हतं सर्वं तं वधिष्यामि संयुगे ॥ ४६ ॥ एवं तस्य ब्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसाः ॥ नादं चक्रुर्महाघोरं कम्पयन्त इवार्णवम् ॥ ४७ ॥ तस्य निष्पततस्तूर्णं कुम्भकर्णस्य धीमतः ॥ बभूवुर्घोररूपाणि निमित्तानि समन्ततः ॥ ४८ ॥ उल्काशनियुता मेघा बभूवुर्गर्दभारुणाः ॥ ससागरवना चैव वसुधा समकम्पत ॥ ४९ ॥ घोररूपाः शिवा नेदुः सज्वालकवलैर्मुखैः ॥ मण्डलान्यपसव्यानि बबन्धुश्च विहङ्गमाः ॥ ५० ॥ निष्पपात च मालेव गृध्रोस्य पथि गच्छतः ॥ प्रास्फुरन्नयनं चास्य सव्यो बाहुश्च कम्पते ॥ ५१ ॥ निपपात तदा चोल्का ज्वलन्ती भीमनिस्वना ॥ आदित्यो निष्प्रभश्चासीन्न प्रवाति सुखोनिलः ॥५२॥ अचिन्तयन्महोत्पातानुत्थितान् रोमहर्षणान् ॥ निर्ययौ कुम्भकर्णस्तु कृतान्तबलचोदितः ॥५३॥ स लङ्घयित्वा प्राकारं पद्भ्यां पर्वतसन्निभः ॥ ददर्शाभ्रघनप्रख्यं वानरानीकमद्भुतम् ॥ ५४ ॥ ते दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं वानराः पर्वतोपमम् ॥ वायुनुन्ना इव घना ययुः सर्वा दिशस्तदा ॥ ५५ ॥ तद्वानरानीकमतिप्रचण्डं दिशो द्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ॥ स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हर्षान्ननाद भूयो घनवद्घनाभः ॥ ५६ ॥ ते तस्य घोरं निनदं निशम्य यथा निनादं दिवि वारिदस्य ॥ पेतुर्धरण्यां बहवः प्लवङ्गा निकृत्तमूला इव सालवृक्षाः ॥ ५७ ॥ विपुलपरिघवान्स कुम्भकर्णो रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा ॥ कपिगणभयमाददत्सुभीमं प्रभुरिव किङ्करदण्डवान् युगान्ते ॥५८॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥

ति। गच्छतोस्य उपरिप्रदेशे गृध्रो मालेव निष्पपातेत्यन्वयः। गृध्र इति जात्येकवचनम्। सव्यशब्दो लिङ्गव्यत्ययेन नयनशब्देनापि संबध्यते। कम्पते अकम्पत। उल्का मेघनिर्गतज्वालाविशेषः ॥४९॥५०॥५१॥५२॥५३॥ स इति ॥ अभ्रघनः अभ्रसंघातः ॥५४॥५५॥५६॥५७॥ विपुलेति ॥ प्रभुः

अन्तकः । किंकरदण्डवान् किं करोमीत्यवस्थायी सचेतनो दण्डः तद्वान् ॥ ५८॥ इति श्रीगो०श्रीरा०रत्न०यु०पञ्चषष्टितमः सर्गः॥ ६५ ॥ ॥
अथ कुम्भकर्णयुद्धप्रवृत्तिः—स इत्यादि ॥ १ ॥ स ननादेति ॥ विधमन् दहन् ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ आत्मानमिति ॥ अभिजनानि प्रशस्तकुलानि ॥ ५ ॥

स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् ॥ निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥ स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ॥ जनयन्निव निर्घातान् विधमन्निव पर्वतान् ॥२॥ तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन वा ॥ प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥ तांस्तु विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ॥ नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम् ॥ ४ ॥ आत्मानमत्र विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च ॥ क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा ॥५॥ साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ॥ नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं बिभीषिका ॥ ६ ॥ महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां बिभीषिकाम् ॥ विक्रमाद्विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेण तु समाश्वस्य संगम्य च ततस्ततः ॥ वृक्षाद्रिहस्ता हरयः संप्रतस्थू रणाजिरम्॥ ८ ॥ ते निवृत्य तु संक्रुद्धाः कुम्भकर्णं वनौकसः ॥ निजघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः ॥९॥ प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलः ॥ पादपैः पुष्पिताग्रैश्च हन्यमानो न कम्पते ॥१०॥ तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते शतशः शिलाः ॥ पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥११॥ सोपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् ॥ ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः ॥ निरस्ता पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

साध्विति ॥ बिभीषिका भयजनकः कृत्रिमपुरुषवेषः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ त इति ॥ परमक्रुद्धा इति कुञ्जरविशेषणम् ॥ ९ ॥ प्रांशुभिरिति ॥ प्रांशुभिः उन्नतैः । महाबलः कुम्भकर्णः ॥ १० ॥ ११ ॥ सोपीति ॥ ममन्थ । ददाहेत्यर्थः ॥ १२ ॥ लोहितार्द्रा इति ॥ निरस्ताः उत्क्षिप्ताः ॥ १३ ॥ ॥

लङ्घयन्त इत्यर्धम् ॥ नावलोकयन् नावालोकयन् । पृष्ठदेशमित्यर्थः ॥ १४ ॥ केचिदिति ॥ केचित्ते वानरा इति योजना ॥ १५ ॥ सागरमित्यर्धम् ॥ ते वानराः ॥ १६ ॥ ते स्थलानीति ॥ स्थलानि अतिधावनयोग्यान् देशान् उन्नतप्रदेशान् वा । आश्रिता इत्यन्वयः ॥ १७ ॥ ममज्जुरित्यादि ॥ निषेदुः भूमौ पतिता इव तस्थुः ॥ १८ ॥ अवतिष्ठतेत्यादि ॥ परिगम्य प्रदक्षिणीकृत्येत्यर्थः । स्थानं न पश्यामीत्यन्वयः ॥ १९ ॥ निरायुधानामिति ॥ अ-

लङ्घयन्तः प्रधावन्तो वानरा नावलोकयन् ॥ १४ ॥ केचित्समुद्रे पतिताः केचिद्गगनमाश्रिताः ॥ वध्यमानास्तु ते वीरा राक्षसेन बलीयसा ॥ १५ ॥ सागरं येन ते तीर्णाः पथा तेन प्रदुद्रुवुः ॥ १६ ॥ ते स्थलानि तथा निम्नं विषण्णवदना भयात् ॥ ऋक्षा वृक्षान्समारूढाः केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ १७ ॥ ममज्जुरर्णवे केचिद्गुहाः केचित्समाश्रिताः ॥ निषेदुः प्लवगाः केचित् केचिन्नैवावतस्थिरे ॥ (केचिद्भूमौ निपतिताः केचित्सुप्ता मृता इव) तान्समीक्ष्याङ्गदो भग्नान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ अवतिष्ठत युध्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ॥ भग्नानां वो न पश्यामि परिगम्य महीमिमाम् ॥ स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ॥ १९ ॥ निरायुधानां द्रवतामसङ्गगतिपौरुषाः ॥ दारा ह्यपहसिष्यन्ति स वै घातस्तु जीविनाम् ॥ २० ॥ कुलेषु जाताः सर्वे स्म विस्तीर्णेषु महत्सु च ॥ क्व गच्छथ भयत्रस्ता हरयः प्राकृता यथा ॥ २१ ॥ अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत ॥ २२ ॥ विकत्थनानि वो यानि तदा वै जनसंसदि ॥ तानि वः क्व नु यातानि सोदग्राणि महान्ति च ॥ २३ ॥ ॥ ॥

सङ्गगतिपौरुषाः अप्रतिबद्धपराक्रमा इति वानरसंबोधनम् । निरायुधानां द्रवतां निरायुधेषु द्रवत्सु । यद्वा निरायुधानां द्रवतां दारास्तान् अपहसिष्यन्तीति । सः अपहासः । घातः मृतिः॥२०॥कुलेष्विति ॥ सर्वे । वयमिति शेषः । विस्तीर्णेषु ज्ञातिपरम्परया विततेषु । महत्सु प्रशस्तेषु॥२१॥अनार्या इत्यर्धम् ॥ यद्यस्मात् भीताः प्रधावत पलायथ । तस्मादनार्याः खलु ॥२२॥ विकत्थनानीति ॥ सोदग्राणि उदग्रतायुक्तानि । महान्ति भूयांसीत्यर्थः ॥२३॥

भीरुप्रवादा इति ॥ यस्तु धिक्कृतो जीवति तद्विषये भीरुप्रवादाः भीरुत्वापवादाः श्रूयन्ते । सत्पुरुषैः शूरैः । जुष्टः सेवितः ॥ २४ ॥ सत्पुरुषजुष्टो
मार्गः क इत्यपेक्षायामाह–शयामह इत्यादि ॥ युद्धमरणं हि सत्पुरुषजुष्टो मार्ग इत्यर्थः । समरान्निवृत्य पलायितानामपि मरणस्यावश्यंभावित्वप्रदर्श-
नार्थमल्पजीविता इत्युक्तम् । समरानिवर्तिनां वीराणां तु मरणजीवनयोरुभयोरपि श्रेयस्करत्वं प्रतिपादयति–दुष्प्रापमिति । निहत्वा निहत्य । जीवि-
तमिति । वीरलोकस्य वीराणां लोको ब्रह्मलोकः तस्य वसु मूल्यभूतं जीवितं मोक्ष्यामः ॥ २५ ॥ २६ ॥ न कुम्भकर्ण इति ॥ दीप्यमानं ज्वलनमिव

भीरुप्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः ॥ मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम् ॥ २४ ॥ शया-
महेथ निहताः पृथिव्यामल्पजीविताः ॥ दुष्प्रापं ब्रह्मलोकं वा प्राप्नुमो युधि सूदिताः ॥ २५ ॥ संप्राप्नुयामः
कीर्तिं वा निहत्वा शत्रुमाहवे ॥ जीवितं वीरलोकस्य मोक्ष्यामो वसु वानराः ॥ २६ ॥ न कुम्भकर्णः का-
कुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन् गमिष्यति ॥ दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा ॥ २७ ॥ पलायनेन चोद्दिष्टाः
प्राणान् रक्षामहे वयम् ॥ एकेन बहवो भग्ना यशो नाशं गमिष्यति ॥२८॥ एवं ब्रुवाणं तं शूरमङ्गदं कनका-
ङ्गदम् ॥ द्रवमाणास्ततो वाक्यमूचुः शूरविगर्हितम् ॥ २९ ॥ कृतं नः कदनं घोरं कुम्भकर्णेन रक्षसा ॥ न
स्थानकालो गच्छामो दयितं जीवितं हि नः ॥ ३० ॥ एतावदुक्त्वा वचनं सर्वे ते भेजिरे दिशः ॥ भीमं भी-
माक्षमायान्तं दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ ३१ ॥ द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन वलीमुखाः ॥ सान्त्वैश्चैवानुमानैश्च
ततः सर्वे निवर्तिताः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥

रामममासाद्य कुम्भकर्णः पतङ्गो यथेति यथेवशब्दयोर्निर्वाहः ॥२७॥ पलायनेनेति ॥ उद्दिष्टाः व्यपदिष्टाः । बहवो वयमनेन कुम्भकर्णेन भग्नाः पलायने-
न प्राणान् रक्षामहे यदि ततो यशो नाशं गमिष्यतीति योजना ॥२८॥ एवमिति॥ शूरं पराक्रमवन्तम्। कनकाङ्गदमुत्साहातिशयेन प्रकाशितस्वर्णाङ्गदम्।
॥ २९ ॥ कृतमिति ॥ कदनं मर्दनम् । दयितमिष्टम् ॥ ३० ॥ ३१॥ द्रवमाणा इति ॥ अनुमानैः सालगिरिभेदनादिदृष्टान्तपुरस्कृतैर्युक्तिविशेषैः ॥३२॥

प्रहर्षमिति ॥ आज्ञाप्रतीक्षाः सुग्रीवाद्याज्ञाप्रतीक्षाः ॥ ३३ ॥ ऋषभशरभेति ॥ त्वरिततराभिमुखं त्वरिततरम् अभिमुखं चेति क्रियाविशेषणम् । अत्र वायुपुत्रस्तु न पलाय्य निवृत्तः । किं तु ऋषभादिभिर्मिलित्वा कुम्भकर्णेन सह युद्धार्थं निवृत्त इति ज्ञेयम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ ॥ ॥
ते निवृत्ता इत्यादि, चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविता इत्यन्तमेकं वाक्यम्॥नैष्ठिकीं निष्ठा नाशः तत्संबन्धिनीम्।मरणव्यवसायिनीमित्यर्थः।समुदीरि-

प्रहर्षमुपनीताश्च वालिपुत्रेण धीमता ॥ आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्च सर्वे वानरयूथपाः ॥ ३३ ॥ ऋषभशरभमैन्द-
धूम्रनीलाः कुमुदसुषेणगवाक्षरम्भताराः ॥ द्विविदपनसवायुपुत्रमुख्यास्त्वरिततराभिमुखं रणं प्रयाताः
॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ ॥ ॥
ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाङ्गदवचस्तदा ॥ नैष्ठिकीं बुद्धिमासाद्य सर्वे संग्रामकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥ समुदी-
रितवीर्याश्च समारोपितविक्रमाः ॥ पर्यवस्थापिता वाक्यैरङ्गदेन वलीमुखाः ॥ २ ॥ प्रयाताश्च गता हर्षं म-
रणे कृतनिश्चयाः ॥ चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥ अथ वृक्षान्महाकायाः सानूनि सु-
महान्ति च ॥ वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रुताः ॥ ४ ॥ स कुम्भकर्णः संक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्य-
वान् ॥ अर्दयन्सुमहाकायः समन्ताद्व्याक्षिपद्रिपून् ॥ ५ ॥ शतानि सप्त चाष्टौ च सहस्राणि च वानराः ॥
प्रकीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन पोथिताः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

तवीर्याः कथितात्मपराक्रमाः। समारोपितविक्रमाः समवलम्बितपराक्रमाः । मरणनिश्चयहेतुमाह—त्यक्तजीविता इति । जीवनाशारहिता इत्यर्थः॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ स इति ॥ व्याक्षिपत् अपातयत् ॥ ५ ॥ शतानीति ॥ प्रकीर्णाः शिथिलावयवाः । पोथिताः हिंसिताः । कुम्भकर्णस्यैकेन व्यापारेण शतादिसंघरूपेण पतिता इत्यर्थः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

षोडशेत्यादि ॥ परिक्षिप्य परिगृह्य । खादन् भक्षयन् । पन्नगान् भक्षयन्निवेति गरुडविशेषणम् ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेणेति ॥ हरयः बलवन्त इति शेषः । संगम्य संभूय ॥ ८ ॥ तत इति ॥ विशेषेण लम्बत इति विलम्बः । पचाद्यच् । गिरिशृङ्गाभं गिरिशृङ्गवदुन्नतम् ॥ ९ ॥ तमिति ॥ तं कुम्भकर्णं समुत्पत्य समीपमागत्य । कुम्भकर्णस्य कुम्भकर्णाय ॥ १० ॥ ममर्देत्यादि त्रिपादश्लोकः ॥ तानि प्रसिद्धानि । रक्षांसि ममर्देति

षोडशाष्टौ च दश च विंशत्रिंशत्तथैव च ॥ परिक्षिप्य च बाहुभ्यां खादन् विपरिधावति ॥ भक्षयन् भृशसंक्रुद्धो गरुडः
पन्नगानिव ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेण च समाश्वस्ताः संगम्य च ततस्ततः ॥ वृक्षाद्रिहस्ता हरयस्तस्थुः संग्राममूर्धनि ॥ ८ ॥
ततः पर्वतमुत्पाट्य द्विविदः प्लवगर्षभः ॥ दुद्राव गिरिशृङ्गाभं विलम्ब इव तोयदः ॥ ९ ॥ तं समुत्पत्य चिक्षेप कुम्भकर्णस्य
वानरः ॥ तमप्राप्तो महाकायं तस्य सैन्येऽपतत्तदा ॥ १० ॥ ममर्दाश्वान् गजांश्चापि रथांश्चैव नगोत्तमः ॥
तानि चान्यानि रक्षांसि पुनश्चान्यद्गिरेः शिरः ॥ ११ ॥ तच्छैलशृङ्गाभिहतं हताश्वं हतसारथि ॥ रक्षसां रुधिरक्लिन्नं
बभूवायोधनं महत् ॥ १२ ॥ रथिनो वानरेन्द्राणां शरैः कालान्तकोपमैः ॥ शिरांसि नदतां जह्रुः सहसा भीमनिस्वनाः
॥ १३ ॥ वानराश्च महात्मानः समुत्पाट्य महाद्रुमान् ॥ रथानश्वान् गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ॥ १४ ॥
हनुमान् शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च विविधान्बहून् ॥ ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः ॥ १५ ॥ तानि पर्वतशृङ्गाणि
शूलेन स बिभेद ह ॥ बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १६ ॥ ततो हरीणां तदनीकमुग्रं दुद्राव
शूलं निशितं प्रगृह्य ॥ तस्थौ ततोस्यापततः पुरस्तान्महीधराग्रं हनुमान्प्रगृह्य ॥ १७ ॥ ॥

पूर्वेणान्वयः । पुनश्चेति पादश्लोकः । अन्यतो गिरेः शृङ्गं चिक्षेपेति योज्यम् ॥ ११ ॥ तदिति ॥ तच्छैलशृङ्गाभिहतम् अनन्तरप्रयुक्तशैलशृङ्गाभिहतसैन्यम् । आयोधनं युद्धम् ॥ १२ ॥ रथिन इति ॥ कालान्तकः प्रलयकालरुद्रः ॥ १३ ॥ वानराश्चेति ॥ अभ्यसूदयन् अघ्नन् ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ तत इति ॥ दुद्राव द्रावयामास ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

स इति ॥ मेदार्द्रेत्यत्र संधिरार्षः ॥ १८ ॥ स इति ॥ आविध्य भ्रामयित्वा । गुहः स्कन्दः ॥ १९ ॥ स इति ॥ प्रविह्वलः प्रमुह्यन् । युगान्तेति । युगान्तमेघस्य स्तनितरूपो यः स्वनः तत्तुल्यमिति क्रियाविशेषणम् ॥ २० ॥ तत इति ॥ कुम्भकर्णात् भयार्ता इत्यन्वयः । संयति युद्धे ॥ २१ ॥ तत इति ॥

स कुम्भकर्णं कुपितो जघान वेगेन शैलोत्तमभीमकायम् ॥ स चुक्षुभे तेन तदाभिभूतो मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः॥ १८ ॥ स शूलमाविध्य तडित्प्रकाशं गिरिं यथा प्रज्वलिताग्रशृङ्गम् ॥ बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान गुहोचलं क्रौञ्चमिवोग्रशक्त्या ॥ १९ ॥ स शूलनिर्भिन्नमहाभुजान्तरः प्रविह्वलः शोणितमुद्वमन्मुखात् ॥ ननाद भीमं हनुमान्महाहवे युगान्तमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥ २० ॥ ततो विनेदुः सहसा प्रहृष्टा रक्षोगणास्तं व्यथितं समीक्ष्य ॥ प्लवङ्गमास्तु व्यथिता भयार्ताः प्रदुद्रुवुः संयति कुम्भकर्णात् ॥ २१ ॥ ततस्तु नीलो बलवान्पर्यवस्थापयन्बलम् ॥ प्रविचिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते ॥ २२ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मुष्टिनाभिजघान ह ॥ मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत ॥ २३ ॥ सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात महीतले ॥ ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः ॥ २४ ॥ पञ्च वानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ॥ २५ ॥ शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः ॥ कुम्भकर्णं महाकायं सर्वतोभिप्रदुद्रुवुः ॥ २६ ॥ स्पर्शानिव प्रहारांस्तान्वेदयानो न विव्यथे ॥ ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २७ ॥ कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः ॥ निपपातर्षभो भीमः प्रमुखाद्वान्तशोणितः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

पर्यवस्थापयन् बलमिति । पलायमानान् सन्निवर्तयन्नित्यर्थः ॥ २२ ॥ तमापतन्तमिति ॥ व्यशीर्यत शीर्णमभूत् ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ शैलैरिति ॥ पादैः प्रहारोद्यतैः । सर्वत्रोपलक्षणे तृतीया ॥ २६ ॥ स्पर्शानिति ॥ स्पर्शानिव सुखस्पर्शानिव । सुखमर्दनमिव जानन्नित्यर्थः ॥ २७॥ कुम्भकर्णेति ॥ प्रेति छेदः । मुखात् वान्तशोणितः पपातेत्यन्वयः । "व्यवहिताश्च" इत्युपसर्गस्य व्यवहितप्रयोगः । वान्तशोणितः उद्गीर्णरक्तः ॥ २८ ॥ ॥

॥२९॥३०॥३१॥ तमिति ॥ समारुह्य समुत्पत्य समुत्पत्य समारुह्येति क्रमः ॥३२॥३३॥ स इति ॥ आचितः व्याप्तः । आत्मरुहैः वृक्षैः ॥३४॥ ३९ ॥

मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे ॥ आजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ॥२९ ॥ पादेनाभ्यहनत्क्रुद्धस्तरसा गन्धमादनम् ॥ दत्तप्रहारव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः ॥३०॥ निपेतुस्ते तु मेदिन्यां निकृत्ता इव किंशुकाः॥ तेषु वानरमुख्येषु पतितेषु महात्मसु ॥ वानराणां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रदुद्रुवुः ॥ ३१ ॥ तं शैलमिव शैलाभाः सर्वे ते प्लवगर्षभाः ॥ समारुह्य समुत्पत्य ददंशुश्च महाबलाः ॥ ३२ ॥ तं नखैर्दशनैश्चापि मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥ कुम्भकर्णं महाकायं ते जघ्नुः प्लवगर्षभाः ॥३३॥ स वानरसहस्रैस्तैराचितः पर्वतोपमः॥ रराज राक्षसव्याघ्रो गिरिरात्मरुहैरिव ॥ ३४ ॥ बाहुभ्यां वानरान्सर्वान्प्रगृह्य सुमहाबलः ॥ भक्षयामास संक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ ३९ ॥ प्रक्षिप्ताः कुम्भकर्णेन वक्त्रे पातालसन्निभे ॥ नासापुटाभ्यां निर्जग्मुः कर्णाभ्यां चैव वानराः ॥ ३६ ॥ भक्षयन् भृशसंक्रुद्धो हरीन्पर्वतसन्निभः ॥ बभञ्ज वानरान् सर्वान् संक्रुद्धो राक्षसोत्तमः ॥ ३७ ॥ मांसशोणितसंक्लेदां भूमिं कुर्वन्स राक्षसः ॥ चचार हरिसैन्येषु कालाग्निरिव मूर्च्छितः ॥ ३८॥ वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः ॥ शूलहस्तो बभौ संख्ये कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ३९ ॥ यथा शुष्कान्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः ॥ तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो विनिर्दहत् ॥ ४० ॥ ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथा विनायकाः ॥ वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विस्वरं भृशम् ॥४१॥ अनेकशो वध्यमानाः कुम्भकर्णेन वानराः ॥ राघवं शरणं जग्मुर्व्यथिताः खिन्नचेतसः॥४२॥.

॥ ३६ ॥ भक्षयन्निति ॥ भक्षयन् बभञ्ज । भक्षणार्थं बभञ्जेत्यर्थः ॥ ३७ ॥ मांसेति ॥ मांसशोणितसंक्लेदां मांसशोणितसंसिक्तामित्यर्थः ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ यथेति ॥ विनिर्दहत् विनिरदहत् ॥ ४० ॥ तत इति ॥ विनायकाः विगतनायकाः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ॥ ॥

प्रभग्नान्वानरान्दृष्ट्वा वज्रहस्तसुतात्मजः ॥ अभ्यधावत वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे ॥ ४३ ॥ शैलशृङ्गं महद्गृह्य विनदंश्च मुहुर्मुहुः ॥ त्रासयन्राक्षसान्सर्वान्कुम्भकर्णपदानुगान् ॥ ४४ ॥ चिक्षेप शैलशिखरं कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ॥ स तेनाभिहतोत्यर्थं गिरिशृङ्गेण मूर्धनि ॥ ४५ ॥ कुम्भकर्णः प्रजज्वाल कोपेन महता तदा ॥ सोभ्यधावत वेगेन वालिपुत्रममर्षणः ॥ ४६ ॥ कुम्भकर्णो महानादस्त्रासयन्सर्ववानरान् ॥ शूलं ससर्ज वै रोषादङ्गदे स महाबलः ॥ ४७ ॥ तमापतन्तं बुद्ध्वा तु युद्धमार्गविशारदः ॥ लाघवान्मोचयामास बलवान्वानरर्षभः ॥ ४८ ॥ उत्पत्य चैनं सहसा तलेनोरस्यताडयत् ॥ स तेनाभिहतः कोपात्प्रमुमोहाचलोपमः ॥ ४९ ॥ स लब्धसंज्ञो बलवान्मुष्टिमावर्त्य राक्षसः ॥ अपहासेन चिक्षेप विसंज्ञः स पपात ह ॥ ५० ॥ तस्मिन्प्लवगशार्दूले विसंज्ञे पतिते भुवि ॥ तच्छूलं समुपादाय सुग्रीवमभिदुद्रुवे ॥ ५१ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ उत्पपात तदा वीरः सुग्रीवो वानराधिपः ॥ ५२ ॥ पर्वताग्रं समुत्क्षिप्य समाविध्य महाकपिः ॥ अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ५३ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्लवङ्गमम् ॥ तस्थौ विकृतसर्वाङ्गो वानरेन्द्रसमुन्मुखः ॥ ५४ ॥ कपिशोणितदिग्धाङ्गं भक्षयन्तं प्लवङ्गमान् ॥ कुम्भकर्णं स्थितं दृष्ट्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ पातिताश्च त्वया वीराः कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ भक्षितानि च सैन्यानि प्राप्तं ते परमं यशः ॥ ५६ ॥ त्यज तद्वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यसि ॥ सहस्वैकनिपातं मे पर्वतस्यास्य राक्षस ॥ ५७ ॥ तद्वाक्यं हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम् ॥ श्रुत्वा राक्षसशार्दूलः कुम्भकर्णोब्रवीद्वचः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥

॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ तमिति ॥ समुन्मुखः अभिमुखः ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

प्रजापतेस्तु पौत्रस्त्वं तथैवर्क्षरजःसुतः ॥ श्रुतपौरुषसंपन्नः कस्माद्गर्जसि वानर ॥ ५९ ॥ स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य व्याविध्य शैलं सहसा मुमोच ॥ तेनाजघानोरसि कुम्भकर्णं शैलेन वज्राशनिसन्निभेन ॥ ६० ॥ तच्छैलशृङ्गं सहसा विशीर्णं भुजान्तरे तस्य तदा विशाले ॥ ततो विषेदुः सहसा प्लवङ्गा रक्षोगणाश्चापि मुदा विनेदुः ॥ ६१ ॥ स शैलशृङ्गाभिहतश्चुकोप ननाद कोपाच्च विवृत्य वक्त्रम् ॥ व्याविध्य शूलं च तडित्प्रकाशं चिक्षेप हर्यक्षपतेर्वधाय ॥ ६२ ॥ तत्कुम्भकर्णस्य भुजप्रविद्धं शूलं शितं काञ्चनधामजुष्टम् ॥ क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां बभञ्ज वेगेन सुतोनिलस्य ॥ ६३ ॥ कृतं भारसहस्रस्य शूलं कालायसं महत् ॥ बभञ्ज जानुन्यारोप्य प्रहृष्टः प्लवगर्षभः ॥ ६४ ॥ शूलं भग्नं हनुमता दृष्ट्वा वानरवाहिनी ॥ हृष्टा ननाद बहुशः सर्वतश्चापि दुद्रुवे ॥ ६५ ॥ सिंहनादं च ते चक्रुः प्रहृष्टा वनगोचराः ॥ मारुतिं पूजायांचक्रुर्दृष्ट्वा शूलं तथागतम् ॥ ६६ ॥

प्रजापतेरिति ॥ इदमत्रैतिह्यमनुसंधेयम् । पुरा किल ब्रह्मणो जृम्भमाणस्य वदनादृक्षरजा नाम वानरो जातः । स कदाचित् पर्यटन् ब्रह्मलोकेप्सरोरूपकारिणि कस्मिंश्चित् सरसि निमज्याप्सरोरूपमभजत् । तां दृष्ट्वा काममोहिताविन्द्रादित्यौ हस्तेन युगपदगृह्णीताम् । तत्रान्तरे तयोः क्षुभितं रेतोऽपतत् । तत्र द्वौकुमारावभवताम् । वाले पतनाद्वाली ग्रीवायां पतनात् सुग्रीवः । तं दृष्ट्वा प्रहस्य ब्रह्मा अप्सरोरूपधारिणम् ऋक्षरजसं यथापूर्वरूपप्राप्तये कुमारौ गृहीत्वा अन्यस्मिन् वानररूपकारिणि सरसि निमज्जेत्यभ्यधात्। सोपि तथा कृत्वा कुमाराभ्यां सह वानररूपमभजदृक्षरजाः । तत्पुत्रौ वालिसुग्रीवाविति । तदनेन प्रकारेण सुग्रीवः प्रजापतेः पौत्रः ऋक्षरजसः पुत्रश्च । काश्यपात् प्रजापतेर्विवस्वान् विवस्वतः सुग्रीव इत्यन्ये ॥५९॥ स इति ॥ व्याविध्य तोलयित्वा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ वृतमिति ॥ भारसहस्रस्य भारसहस्रेण कृतं जानुन्यारोप्य बभञ्जेत्यन्वयः ॥ ६४ ॥ शूलमिति ॥ सर्वतः सर्वस्मात् प्रदेशात् दुद्रुवे आजगाम ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ॥ ॥

स इति ॥ सुग्रीवमुपेत्य तेन शृङ्गेण जघान । त्रिकूटशिखरस्थलङ्काद्वारे स्थित्वा युध्यतः कुम्भकर्णस्य प्रदेशान्तरस्थलङ्कामलयशृङ्गोत्पाटनं कथमुपपद्यत इति चेत् तदनुगुणप्रमाणशरीरत्वान्न दोषः । लङ्कामलयशब्देन त्रिकूटं वोपचर्यते ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ स तमिति ॥ अभ्युच्छ्रितम् उन्नतम् ।

स तत्तदा भग्नमवेक्ष्य शूलं चुकोप रक्षोधिपतिर्महात्मा ॥ उत्पाट्य लङ्कामलयात्स शृङ्गं जघान सुग्रीवमुपेत्य
तेन ॥ ६७ ॥ स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः ॥ तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं
विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टास्त्वथ यातुधानाः ॥ ६८ ॥ तमभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यं स कुम्भकर्णो युधि वानरेन्द्रम् ॥
जहार सुग्रीवमभिप्रगृह्य यथानिलो मेघमतिप्रचण्डः ॥ ६९ ॥ स तं महामेघनिकाशरूपमुत्पाट्य गच्छन्
युधि कुम्भकर्णः ॥ रराज मेरुप्रतिमानरूपो मेरुर्यथाभ्युच्छ्रितघोरशृङ्गः ॥ ७० ॥ ततस्तमुत्पाट्य जगाम वीरः
संस्तूयमानो युधि राक्षसेन्द्रैः ॥ शृण्वन्निनादं त्रिदशालयानां प्लवङ्गराजग्रहविस्मितानाम् ॥ ७१ ॥ ततस्तमादाय
तदा स मेने हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रवीर्यः ॥ अस्मिन्हते सर्वमिदं हतं स्यात्सराघवं सैन्यमितीन्द्रशत्रुः
॥ ७२ ॥ विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वानराणां ततस्ततः ॥ कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीतं चापि वानरम्
॥ ७३ ॥ हनुमांश्चिन्तयामास मतिमान्मारुतात्मजः ॥ एवं गृहीते सुग्रीवे किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥ ७४ ॥
यद्वै न्याय्यं मया कर्तुं तत्करिष्यामि सर्वथा ॥ भूत्वा पर्वतसंकाशो नाशयिष्यामि राक्षसम् ॥ ७५ ॥ ॥

स्वाकारसादृश्याय प्रथमं मेरूपादानम् । द्वितीयं तु सुग्रीवधारणकालिकसादृश्याय ॥ ७० ॥ तत इति ॥ उत्पाट्य उद्धृत्य । त्रिदशालयानां स्वर्गिणाम् ॥ ७१ ॥ बलवान् कुम्भकर्णो युद्धे पतितं सुग्रीवं किमर्थं हृतवानित्यत्राह—ततस्तमादायेति ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ॥

॥ ७६ ॥ अथवेति ॥ सासुरोरगैः सुरैः गृहितोप्ययं मोक्षं प्राप्तुं शक्नोति। किं पुनरनेन राक्षसापसदेनेति भावः ॥ ७७ ॥ तर्हि मोचयित्वात्मानं किमिति न निवर्तत इत्यत्राह–मन्य इत्यादिना ॥ तावदित्यवधारणे। आत्मानमेव न बुध्यत इत्यर्थः । पथ्यं हितम् ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ कृच्छ्रगतः

मया हते संयति कुम्भकर्णे महाबले मुष्टिविकीर्णदेहे ॥ विमोचिते वानरपार्थिवे च भवन्तु हृष्टाः प्लवगाः समस्ताः ॥ ॥ ७६ ॥ अथवा स्वयमप्येष मोक्षं प्राप्स्यति पार्थिवः॥ गृहीतोयं यदि भवेत्त्रिदशैः सासुरोरगैः॥ ७७ ॥ मन्ये न तावदात्मानं बुध्यते वानराधिपः॥ शैलप्रहाराभिहतः कुम्भकर्णेन संयुगे ॥ ७८ ॥ अयं मुहूर्तात्सुग्रीवो लब्धसंज्ञो महाहवे ॥ आत्मनो वानराणां च यत्पथ्यं तत्करिष्यति ॥७९॥ मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ अप्रीतिश्च भवेत्कष्टा कीर्तिनाशश्च शाश्वतः॥८०॥ तस्मान्मुहूर्तं काङ्क्षिष्ये विक्रमं पार्थिवस्य तु ॥ भिन्नं च वानरानीकं तावदाश्वासयाम्यहम् ॥ ८१ ॥ इत्येवं चिन्तयित्वा तु हनुमान्मारुतात्मजः ॥ भूयः संस्तम्भयामास वानराणां महाचमूम् ॥ ॥ ८२ ॥ स कुम्भकर्णोथ विवेश लङ्कां स्फुरन्तमादाय महाकपिं तम् ॥ विमानचर्यागृहगोपुरस्थैः पुष्पाग्र्यवर्षैरवकीर्यमाणः ॥ ८३ ॥ लाजगन्धोदवर्षैस्तु सिच्यमानः शनैः शनैः ॥ राजमार्गस्य शीतत्वात्संज्ञामाप महाबलः ॥ ॥ ८४ ॥ ततः स संज्ञामुपलभ्य कृच्छ्राद्बलीयसस्तस्य भुजान्तरस्थः ॥ अवेक्षमाणः पुरराजमार्गं विचिन्तयामास मुहुर्महात्मा ॥ ८५ ॥ एवं गृहीतेन कथं नु नाम शक्यं मया संप्रतिकर्तुमद्य ॥ तथा करिष्यामि यथा हरीणां भविष्यतीष्टं च हितं च कार्यम् ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

स्वामी भृत्येनावश्यं मोचनीय एवेत्याशङ्क्याह–मया त्विति ॥ ८० ॥ तस्मादिति ॥ तावत् सुग्रीवागमनपर्यन्तम् ॥ ८१ ॥ इतीति ॥ संस्तम्भयामास गमनान्निवर्तयामास ॥ ८२ ॥ स इति ॥ पुष्पाग्र्यवर्षैः श्लाघ्यपुष्पवृष्टिभिः ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ एवमिति ॥ संप्रतिकर्तुं सम्यक् प्रतिकर्तुम् । अन्यथा अद्येति पुनरुक्तिः स्यात् ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ खरैः तीक्ष्णैः कराग्रैः कर्णौ समेत्य संहृत्य । दशनैः नासां च ददंश । पार्श्वेषु कपोलयोरंसयोरुदरान्तरयोश्च पादाभ्याम् विददारेति शेषः ॥

ततः कराग्रैः सहसा समेत्य राजा हरीणाममरेन्द्रशत्रुम् ॥ खरैश्च कर्णौ दशनैश्च नासां ददंश पार्श्वेषु च कुम्भकर्णम् ॥ ८७ ॥ स कुम्भकर्णो हृतकर्णनासो विदारितस्तेन विमर्दितश्च ॥ रोषाभिभूतः क्षतजार्द्रगात्रः सुग्रीवमाविध्य पिपेष भूमौ ॥ ८८ ॥ स भूतले भीमबलाभिपिष्टः सुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ॥ जगाम खं वेगवदभ्युपेत्य पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ८९ ॥ कर्णनासाविहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबलः ॥ रराज शोणितैः सिक्तो गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ९० ॥ शोणितार्द्रो महाकायो राक्षसो भीमविक्रमः ॥ युद्धायाभिमुखो भूयो मनश्चक्रे महाबलः ॥ ९१ ॥ अमर्षाच्छोणितोद्गारी शुशुभे रावणानुजः ॥ नीलाञ्जनचयप्रख्यः ससंध्य इव तोयदः ॥ ९२ ॥ गते तु तस्मिन्सुरराजशत्रुः क्रोधात्प्रदुद्राव रणाय भूयः ॥ अनायुधोस्मीति विचिन्त्य रौद्रो घोरं तदा मुद्गरमाससाद ॥ ९३ ॥ ततः स पुर्याः सहसा महौजा निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ बभक्ष रक्षो युधि कुम्भकर्णः प्रजा युगान्ताग्निरिव प्रदीप्तः ॥ ९४ ॥ बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्नुः प्रविश्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ चखाद रक्षांसि हरीन् पिशाचानृक्षांश्च मोहाद्युधि कुम्भकर्णः ॥ ९५ ॥ यथैव मृत्युर्हरते युगान्ते स भक्षयामास हरींश्च मुख्यान् ॥ ९६ ॥ एकं द्वे त्रीन्बहून् क्रुद्धो वानरान्सह राक्षसैः ॥ समादायैकहस्तेन प्रचिक्षेप त्वरन्मुखे ॥ ९७ ॥ ॥

॥ ८७ ॥ स इति ॥ विमर्दितः संपीडितः ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ कर्णेति ॥ प्रस्रवणैः निर्झरैः ॥ ९० ॥ शोणितार्द्र इति ॥ अभिमुखः सन् युद्धाय मनश्चक्र इति संबन्धः ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ बुभुक्षित इति ॥ शोणितमांसगृध्नुः शोणितमांसलोलुपः ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ॥

संप्रस्रवन्निति॥ संप्रस्रवन् तालुभ्यामुद्वमन्। शोणितं मेदश्च भक्षितवानरसंबन्धि ॥९८॥ त इत्यर्धम् ॥ गतिं शरणम् ॥९९॥ कुम्भकर्ण इत्यर्धम् ॥प्रधावति प्राधावत्। उत्तरश्लोकेप्येवमेव ॥१००॥१०१॥ तस्मिन् काल इति॥ स्पष्टः॥१०२॥स कुम्भकर्णस्येति ॥स्पष्टः॥१०३॥अतिक्रम्येति॥ स्पष्टः॥१०४॥

संप्रस्रवंस्तदा मेदः शोणितं च महाबलः ॥ वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान् ॥ ९८ ॥ ते भक्ष्यमाणा
हरयो रामं जग्मुस्तदा गतिम् ॥ ९९ ॥ कुम्भकर्णो भृशं क्रुद्धः कपीन्खादन्प्रधावति ॥ १०० ॥
शतानि सप्त चाष्टौ च विंशत्त्रिंशत्तथैव च ॥ संपरिष्वज्य बाहुभ्यां खादन् विपरिधावति ॥ १०१ ॥
तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः ॥ चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरंजयः ॥ १०२ ॥ स कुम्भकर्णस्य
शरान् शरीरे सप्त वीर्यवान् ॥ निचखानाददे बाणान् विससर्ज च लक्ष्मणः ॥ १०३ ॥ अतिक्रम्य च
सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ राममेवाभिदुद्राव दारयन्निव मेदिनीम् ॥ १०४ ॥ अथ दाशरथी रामो
रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन् ॥ कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशितान् शरान् ॥ १०५ ॥ तस्य रामेण विद्धस्य
सहसाभिप्रधावतः ॥ अङ्गारमित्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ १०६ ॥ रामास्त्रविद्धो घोरं वै नदन्राक्षसपुङ्गवः॥
अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन् विद्रावयन्रणे ॥१०७॥ तस्योरसि निमग्नाश्च शरा बर्हिणवाससः॥
हस्ताच्चापि परिभ्रष्टा पपातोर्व्यां महागदा ॥ आयुधानि च सर्वाणि विप्राकीर्यन्त भूतले ॥ १०८ ॥ स निरायुधमात्मानं
यदा मेने महाबलः ॥ मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च चकार कदनं महत् ॥ १०९ ॥ स बाणैरतिविद्धाङ्गः
क्षतजेन समुक्षितः ॥ रुधिरं प्रतिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणं यथा ॥ ११० ॥ ॥

अथेति ॥ स्पष्टः ॥ १०५ ॥ तस्येति ॥ अर्चिषः ज्वालाः ॥१०६॥ रामास्त्रेति ॥ स्पष्टः १०७ ॥ तस्येति सार्धः ॥ बर्हिणवाससः बर्हिणं बर्हिपत्रं वासो वासःस्थानं येषां ते तथोक्ताः। आयुधानि खड्गादीनि ॥ १०८ ॥ स इति ॥ कदनं वानराणामिति शेषः ॥१०९॥ स बाणैरिति ॥ स्पष्टः ॥११०॥

स तीव्रेणेति ॥ मूर्च्छितः व्याप्तः ॥ १११ ॥ अथेति ॥ स्पष्टः ॥ ११२ ॥ अप्राप्तमिति ॥ स्पष्टः ॥ ११३ ॥ तन्मेरुशिखरेति ॥ द्वे शते उद्दिश्य पतमानं
गच्छन्तम् अपातयत् । शरैरिति शेषः ॥ ११४ ॥ तस्मिन् काल इति ॥ योगान् परिमृशन् उपायान् विचारयन् ॥ ११५ ॥ नैवायमिति ॥ स्पष्टः ॥

स तीव्रेण च कोपेन रुधिरेण च मूर्छितः ॥ वानरान्राक्षसानृक्षान्खादन् विपरिधावति ॥ १११ ॥ अथ शृङ्गं समाविध्य
भीमं भीमपराक्रमः ॥ चिक्षेप राममुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥ ११२ ॥ अप्राप्तमन्तरा राम सप्तभिस्तैरजिह्मगैः ॥ शरैः
काञ्चनचित्राङ्गैश्चिच्छेद पुरुषर्षभः ॥ ११३ ॥ तन्मेरुशिखराकारं द्योतमानमिव श्रिया ॥ द्वे शते वानरेन्द्राणां पतमानमपातयत् ॥ ११४ ॥
तस्मिन्काले स धर्मात्मा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ कुम्भकर्णवधे युक्तो योगान्परिमृशन्बहून् ॥
॥ ११५ ॥ नैवायं वानरान्राजन्नापि जानाति राक्षसान् ॥ मत्तः शोणितगन्धेन स्वान्परांश्चैव खादति ॥ ११६ ॥ साध्वेनमधिरोहन्तु
सर्वे ते वानरर्षभाः ॥ यूथपाश्च यथा मुख्यास्तिष्ठन्त्वस्य समन्ततः ॥ ११७ ॥ अप्ययं दुर्मतिः काले
गुरुभारप्रपीडितः ॥ प्रपतन्राक्षसो भूमौ नान्यान्हन्यात्प्लवङ्गमान् ॥ ११८ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ॥
ते समारुरुहुर्हृष्टा कुम्भकर्णं प्लवङ्गमाः ॥ ११९ ॥ कुम्भकर्णस्तु संक्रुद्धः समारूढः प्लवङ्गमैः ॥ व्यधूनयत्तान्वेगेन दुष्टहस्तीव
हस्तिपान् ॥ १२० ॥ तान्दृष्ट्वा निर्धुतान्रामो दुष्टोयमिति राक्षसः ॥ समुत्पपात वेगेन धनुरुत्तममाददे ॥ १२१ ॥
क्रोधताम्रेक्षणो वीरो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ राघवो राक्षसं रोषादभिदुद्राव वेगितः ॥ यूथपान्हर्षयन्सर्वान्कुम्भकर्णभयार्दितान्
॥ १२२ ॥ स चापमादाय भुजङ्गकल्पं दृढज्यमुग्रं तपनीयचित्रम् ॥ हरीन्समाश्वास्य समुत्पपात रामो
निबद्धोत्तमतूणबाणः ॥ १२३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ११६ ॥ साध्विति ॥ यथा यथायोग्यम् ॥ ११७ ॥ अप्ययमिति ॥ भारः वानरारोहणरूपः ॥ ११८ ॥ तस्येति ॥ स्पष्टः ॥ ११९ ॥ कुम्भकर्णस्त्विति
॥ स्पष्टः ॥ १२० ॥ तानिति ॥ निर्धुतानिति ह्रस्व आर्षः ॥ १२१ ॥ क्रोधताम्रेत्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ १२२ ॥ स चापमिति
॥ निबद्धोत्तमतूणबाणः निबद्धोत्तमबाणतूण इत्यर्थः ॥ १२३ ॥ ॥ ॥

॥ १२४ ॥ स ददर्शेत्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया ॥ कालान्तकयमोपमम् । रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वेतिवत् । एकस्यैवावस्थाभेदात् कालादिनामभेदः । यद्वा । काले युगान्तकाले अन्तको नाशको यमः उपमा यस्य स तथोक्तः ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

स वानरगणैस्तैस्तु वृतः परमदुर्जयः ॥ लक्ष्मणानुचरो रामः संप्रतस्थे महाबलः ॥ १२४ ॥ स ददर्श महात्मानं किरीटिनमरिंदमम् ॥ शोणिताप्लुतसर्वाङ्गं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ १२५ ॥ सर्वान्समभिधावन्तं यथा रुष्टं दिशागजम् ॥ मार्गमाणं हरीन् क्रुद्धं राक्षसैः परिवारितम् ॥ १२६ ॥ विन्ध्यमन्दरसंकाशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ॥ स्रवन्तं रुधिरं वक्त्राद्वर्षमेघमिवोत्थितम् ॥१२७॥ जिह्वया परिलिह्यन्तं शोणितं शोणितेक्षणम् ॥ मृद्नन्तं वानरानीकं कालान्तकयमोपमम् ॥ १२८ ॥ तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं प्रदीप्तानलवर्चसम् ॥ विस्फारयामास तदा कार्मुकं पुरुषर्षभः ॥ १२९ ॥ स तस्य चापनिर्घोषात्कुपितो राक्षसर्षभः ॥ अमृष्यमाणस्तं घोषमभिदुद्राव राघवम् ॥ १३० ॥ ततस्तु वातोद्धतमेघकल्पं भुजङ्गराजोत्तमभोगबाहुम् ॥ तमापतन्तं धरणीधराभमुवाच रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥१३१॥ आगच्छ रक्षोधिप मा विषादमवस्थितोहं प्रगृहीतचापः ॥ अवेहि मां शक्रसपत्न रामं मया मुहूर्ताद्भविता विचेताः ॥ १३२ ॥ रामोयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम् ॥ अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन् विद्रावयन्रणे ॥ १३३ ॥ पातयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम् ॥ १३४ ॥ प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् ॥ कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३५ ॥ नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च ॥ न वाली न च मारीचः कुम्भकर्णोहमागतः ॥ १३६ ॥ ॥ ॥ ॥

आगच्छेति ॥ मा माम् अविषादम् आगच्छेत्यन्वयः । यद्वा विषादं मा गच्छ । मरणेन शरीरभरणक्लेशं त्यजेर्थः । आङ् उपसर्गमात्रम् ॥ १३२ ॥ रामोयमित्यादि ॥ स्पष्टः ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ प्रहस्येति ॥ विकृतमित्यादिविशेषणत्रयं क्रियाविशेषणम् ॥ १३५ ॥ नाहमिति ॥ स्पष्टः ॥ १३६ ॥

पश्य मे मुद्गरमिति ॥ यद्यपि निरायुधत्वं पूर्वमुक्तं तथाप्यद्य मुद्गरं गृहीतवानिति ज्ञेयम् । सर्वकालायसं बहुलायसमयमित्यर्थः ॥ १३७ ॥ विकर्णनास
इति ॥ १३८ ॥ दर्शयेति ॥ लघु क्षिप्रम् । दृष्टपौरुषविक्रमं दृष्टबलपराक्रमम् ॥ १३९ ॥ स इति ॥ चक्षुभ इति । क्षोभोत्र मानसः ॥ १४० ॥ यैः

पश्य मे मुद्गरं घोरं सर्वकालायसं महत् ॥ अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥ १३७ ॥ विकर्णनास
इति मां नावज्ञातुं त्वमर्हसि ॥ स्वल्पापि हि न मे पीडा कर्णनासाविनाशनात् ॥१३८॥ दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूल
वीर्यं गात्रेषु मे लघु ॥ ततस्त्वां भक्षयिष्यामि दृष्टपौरुषविक्रमम् ॥ १३९ ॥ स कुम्भकर्णस्य
वचो निशम्य रामः सुपुङ्खान् विससर्ज बाणान् ॥ तैराहतो वज्रसमग्रवेगैर्न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः
॥ १४० ॥ यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता वाली हतो वानरपुङ्गवश्च ॥ ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरे वज्रोपमा
न व्यथयां प्रचक्रुः ॥ १४१ ॥ स वारिधारा इव सायकांस्तान् पिबन् शरीरेण महेन्द्रशत्रुः ॥ जघान
रामस्य शरप्रवेगं व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम् ॥ १४२ ॥ ततस्तु रक्षः क्षतजानुलिप्तं वित्रासनं देवमहाचमूनाम्
॥ विव्याध तं मुद्गरमुग्रवेगं विद्रावयामास चमूं हरीणाम् ॥ १४३ ॥ वायव्यमादाय ततो वरास्त्रं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ॥ समुद्गरं तेन जघान बाहुं स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥ १४४ ॥ स तस्य बाहुर्गिरिशृङ्गकल्पः
समुद्गरो राघवबाणकृत्तः ॥ पपात तस्मिन्हरिराजसैन्ये जघान तां वानरवाहिनीं च॥१४५॥

सायकैरिति ॥ सालभेदकस्य वालिविनाशकस्य च बाणस्यैकत्वेपि बहुवचनं तद्गर्याणामनेकत्वादुपपद्यते ॥ १४१ ॥ स इति ॥ शरीरेण पिबन् ।
शरीरनिमग्नबाण इत्यर्थः । जघान मोघीचकार ॥ १४२ ॥ ततस्त्विति ॥ विव्याध अचालयत् ॥ १४३ ॥ वायव्यमिति ॥ स्पष्टः ॥ १४४ ॥
स तस्येति ॥ स्पष्टः ॥ १४५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ते वानरा इति ॥ सन्निपातं द्वन्द्वयुद्धम् ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ स तस्येति ॥ ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन ऐन्द्रास्त्रमन्त्राभिमन्त्रितेन ॥ १४८ ॥ स कुम्भकर्णस्येति ॥ विवेष्टमानः विवर्तमानः ॥ १४९ ॥ तमिति ॥ प्रगृह्य युगपत् संधाय ॥ १५० ॥ ताविति ॥ विनाशयन्तौ दिगादीन् प्रतिध्वनयन्तौ ॥ १५१ ॥ निकृत्ते-

ते वानरा भग्नहतावशेषाः पर्यन्तमाश्रित्य तदा विषण्णाः ॥ प्रवेपिताङ्गं ददृशुः सुघोरं नरेन्द्ररक्षोधिपसन्निपातम् ॥ १४६ ॥ स कुम्भकर्णोस्त्रनिकृत्तबाहुर्महान्निकृत्ताग्र इवाचलेन्द्रः ॥ उत्पाटयामास करेण वृक्षं ततोभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम् ॥ १४७ ॥ स तस्य बाहुं सहसालवृक्षं समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम् ॥ ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन ॥ १४८ ॥ स कुम्भकर्णस्य भुजो निकृत्तः पपात भूमौ गिरिसन्निकाशः ॥ विवेष्टमानोभिजघान वृक्षान् शैलान् शिला वानरराक्षसांश्च ॥ १४९ ॥ तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः समापतन्तं सहसा नदन्तम् ॥ द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥ १५० ॥ तौ तस्य पादौ प्रदिशो दिशश्च गिरीन् गुहाश्चैव महार्णवं च ॥ लङ्कां च सेनां कपिराक्षसानां विनादयन्तौ विनिपेततुश्च ॥ १५१ ॥ निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादो विदार्य वक्त्रं वडवामुखाभम् ॥ दुद्राव रामं सहसाभिगर्जन्राहुर्यथा चन्द्रमिवान्तरिक्षे ॥ १५२ ॥ अपूरयत्तस्य मुखं शिताग्रै रामः शरैर्हेमपिनद्धपुङ्खैः ॥ स पूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुं चुकूज कृच्छ्रेण मुमोह चापि ॥ ॥ १५३ ॥ अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम् ॥ अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥ १५४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ दुद्राव राममिति । ऊरुशेषाभ्यामिदम् । अन्यथेदं गमनं वक्ष्यमाणं पतनं च न संभवतः । राहुर्यथेति । चन्द्रमिव स्थितं रामम् राहुर्यथा तथा कुम्भकर्ण इत्यर्थः ॥ १५२ ॥ अपूरयदिति ॥ स्पष्टः ॥ १५३ ॥ अथेति ॥ अरिष्टं रिपूणामशुभप्रदम् । अरिष्टे तु शुभाशुभे इत्यमरः ॥ १५४ ॥ ॥

तमिति ॥ स्पष्टः ॥ १५५ ॥ स इति ॥ वैश्वानरः अग्निः ॥ १५६ ॥ स तदिति ॥ स्पष्टः ॥ १५७॥ कुम्भकर्णेति ॥ कर्तनवेगादुद्गतं गगने स्थितम् । रात्रौ आदित्ये अदितिदेवताके पुनर्वसुनक्षत्रे तारकाद्वयात्मके अभ्युदिते तन्मध्यगतश्चन्द्रमा इव बभावित्यर्थः ॥ १५८ ॥ तदिति ॥ चर्याः प्राका-

तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खं प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम् ॥ महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ॥ १५५ ॥ स सायको राघवबाहुचोदितो दिशः स्वभासा दश संप्रकाशयन् ॥ सधूमवैश्वानरदीप्तदर्शनो जगाम शक्राशनिवीर्यविक्रमः ॥ १५६ ॥ स तन्महापर्वतकूटसन्निभं विवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम् ॥ चकर्त रक्षोधिपतेः शिरस्तथा यथैव वृत्रस्य पुरा पुरंदरः ॥ १५७ ॥ कुम्भकर्णशिरो भाति कुण्डलालङ्कृतं महत् ॥ आदित्येभ्युदिते रात्रौ मध्यस्थ इव चन्द्रमाः ॥ १५८ ॥ तद्रामबाणाभिहतं पपात रक्षःशिरः पर्वतसन्निकाशम् ॥ बभञ्ज चर्यागृहगोपुराणि प्राकारमुच्चं तमपातयच्च ॥ १५९ ॥ न्यपतत्कुम्भकर्णोथ स्वकायेन निपातयन् ॥ प्लवङ्गमानां कोट्यश्च परितः संप्रधावताम् ॥ १६० ॥ तच्चातिकायं हिमवत्प्रकाशं रक्षस्ततस्तोयनिधौ पपात ॥ ग्राहान्वरान्मीनवरान्भुजङ्गान्ममर्द भूमिं च तदा विवेश ॥ १६१ ॥ तस्मिन्हते ब्राह्मणदेवशत्रौ महाबले संयति कुम्भकर्णे ॥ चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे हर्षाच्च देवास्तुमुलं प्रणेदुः ॥ १६२ ॥ ततस्तु देवर्षिमहर्षिपन्नगाः सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यकाः ॥ सयक्षगन्धर्वगणा नभोगताः प्रहर्षिता रामपराक्रमेण ॥ १६३ ॥ ततस्तु ते तस्य वधेन भूरिणा मनस्विनो नैर्ऋतराजबान्धवाः ॥ विनेदुरुच्चैर्व्यथिता रघूत्तमं हरिं समीक्ष्यैव यथा सुरार्दिताः ॥ १६४ ॥

रोपान्तक्लृप्तभटसंचारार्हप्रदेशाः ॥ १५९ ॥ न्यपतदिति ॥ कोट्यः कोटीः ॥ १६० ॥ तच्चातिकायमिति ॥ रक्षः कबन्धरूपं भूमिं तदा विवेश । भूमिमस्पृशदित्यर्थः ॥ १६१ ॥ तस्मिन् हत इति ॥ स्पष्टः ॥ १६२ ॥ ततस्त्विति ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

स इति॥वानरौघे वानरौघमध्ये॥१६५॥ प्रहर्षमिति॥ प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिति। प्रतिमाशब्दोत्र रूपवचनः नतु सदृशवचनः इवशब्दप्रयोगात्। इष्टभागिनं जयरूपेष्टभाजम्॥१६६॥स कुम्भकर्णमिति॥ पराजितश्रमं त्यक्तश्रमम्। अत्र सर्गे अधिकाः केचन श्लोकाः क्वापि क्वापि दृश्यन्ते ते न व्याख्याताः। अस्मिन्सर्गे सार्धषट्षष्ट्युत्तरशतश्लोकाः॥१६७॥इति श्रीगो० विरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने सप्तषष्टितमः सर्गः॥६७॥

स देवलोकस्य तमो निहत्य सूर्यो यथा राहुमुखाद्विमुक्तः ॥ तथा व्यभासीद्भुवि वानरौघे निहत्य रामो
युधि कुम्भकर्णम् ॥१६५॥ प्रहर्षमीयुर्बहवस्तु वानराः प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः॥ अपूजयन्राघवमिष्टभागिनं
हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥ १६६ ॥ स कुम्भकर्णं सुरसंघमर्दनं महत्सु युद्धेषु पराजितश्रमम्॥ ननन्द
हत्वा भरताग्रजो रणे महासुरं वृत्रमिवामराधिपः॥ १६७॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः॥६७॥
कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना॥ राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ १ ॥ राजन्स
कालसंकाशः संयुक्तः कालकर्मणा॥ विद्राव्य वानरीं सेनां भक्षयित्वा च वानरान्॥ २॥ प्रतपित्वा मुहूर्तं
च प्रशान्तो रामतेजसा॥ कायेनार्धप्रविष्टेन समुद्रं भीमदर्शनम्॥ ३ ॥ निकृत्तकण्ठोरुभुजो विक्षरन्रुधिरं
बहु ॥ रुद्ध्वा द्वारं शरीरेण लङ्कायाः पर्वतोपमः ॥ ४ ॥ कुम्भकर्णस्तव भ्राता काकुत्स्थशरपीडितः॥
लगण्डभूतो विकृतो दावदग्ध इव द्रुमः॥५॥ ॥ ॥ ॥

कुम्भकर्णवधश्रवणेन रावणस्य प्रलापः—कुम्भकर्णमित्यादि ॥ अत्र रावणायेत्यत्र यकारो गायत्र्या अष्टादशाक्षरम् ।सप्तदशसहस्रश्लोका गताः ॥ १॥ कालकर्मणा कालस्य मृत्योः कर्मणा। मरणरूपक्रिययेति यावत्। यद्वा काले कर्मणा कालकर्मणा। परिपक्वकर्मणेत्यर्थः॥ २ ॥ प्रतपित्वा पराक्रम्य, एतदारभ्य श्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ अर्धप्रविष्टेन अर्धेन कबन्धमात्रेण प्रविष्टेन कायेन समुद्रं रुद्ध्वा। शरीरेण उत्तमाङ्गेन द्वारं रुद्ध्वा। लगण्डभूतः पिण्डीभूतः। लगण्डोऽजगर इत्येके। विकृतः विकृतशरीरः। रामतेजसा प्रशान्त इत्यन्वयः॥ ३ ॥ ४ ॥५ ॥ ॥ ॥

॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ममेति ॥ मम बान्धवानां च शल्यं शोकमित्यर्थः ॥ ११ ॥ इदानीमिति ॥ सुरासुरान् सुरासुरेभ्यः ॥ १२ ॥ १३ ॥

तं श्रुत्वा निहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥ ६ ॥ पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा देवान्तकनरान्तकौ ॥ त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥ ७ ॥ भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥ ८ ॥ ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः ॥ कुम्भकर्णवधाद्दीनो विललाप स रावणः ॥ ९ ॥ हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ॥ त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोसि यमसादनम् ॥ १० ॥ मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल ॥ शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकस्त्वं मां संत्यज्य गच्छसि ॥ ११ ॥ इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे दक्षिणो भुजः ॥ पतितो यं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरान् ॥ १२ ॥ कथमेवंविधो वीरो देवदानवदर्पहा ॥ कलाग्निरुद्रप्रतिमो रणे रामेण वै हतः ॥ १३ ॥ यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा ॥ स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोसि महीतले ॥ १४ ॥ एते देवगणाः सार्धमृषिभिर्गगने स्थिताः ॥ निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा निनदन्ति प्रहर्षिताः ॥ १५ ॥ ध्रुवमद्यैव संहृष्टा लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ॥ आरोक्ष्यन्ति हि दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः ॥ १६ ॥ राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ॥ कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे रतिः ॥ १७ ॥ यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् ॥ ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥ १८ ॥ अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ॥ नहि भ्रातॄन्समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥ १९ ॥ देवा हि मां हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूर्वापकारिणम् ॥ कथमिन्द्रं जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि ॥ २० ॥ तदिदं मामनुप्राप्तं बिभीषणवचः शुभम् ॥ यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ॥ २१ ॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ ध्रुवमिति ॥ लब्धलक्षाः लब्धावसराः ॥ १६ ॥ १७ ॥ यद्यहमिति ॥ भ्रातृहन्तारं न हन्मि यदि तदा इदं व्यर्थजीवितम् श्रेयः न च । नैवेत्यर्थः । किंतु मरणमेव श्रेयो नन्विति संबन्धः ॥ १८ ॥ अद्यैवेति ॥ भ्रातॄनिति बहुवचनं पूजार्थम् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

विभीषणेति ॥ कुम्भकर्णप्रहस्तयोरयं दारुणो विनाशः यावत् यदा समुत्पन्नः तत आरभ्य विभीषणवचो मां व्रीडयति पीडयतीत्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने अष्टषष्टितमः सर्गः॥ ६८ ॥ ॥

अथातिकायनिर्गमः—एवमित्यादि॥ १ ॥ एवमिति ॥ तातमध्यमः तातेषु मध्यमः मध्यमपितेत्यर्थः । एवमेव महावीर्यः त्वदुक्तप्रकारेणैव महावीर्यः हतः।

विभीषणवचो यावत्कुम्भकर्णप्रहस्तयोः ॥ विनाशोयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ॥२२॥ तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको
मम शोकदः ॥ यन्मया धार्मिकः श्रीमान्स निरस्तो विभीषणः ॥ २३ ॥ इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा कृपणमतीव
विलप्य कुम्भकर्णम् ॥ न्यपतदथ दशाननो भृशार्तस्तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे
अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥

एवं विलप्यमानस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ श्रुत्वा शोकाभितप्तस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ एवमेव महावीर्यो
हतो नस्तातमध्यमः ॥ न तु सत्पुरुषा राजन् विलपन्ति यथा भवान् ॥ २ ॥ नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि
प्रभो ॥ स कस्मात्प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मदत्तास्ति ते शक्तिः कवचः सायको धनुः ॥ सहस्रखरसंयुक्तो
रथो मेघस्वनो महान् ॥ ४ ॥ त्वयासकृद्विशस्त्रेण विशस्ता देवदानवाः ॥ स सर्वायुधसंपन्नो राघवं
शास्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणम् ॥ उद्धरिष्यामि ते शत्रून् गरुडः पन्नगानिव
॥ ६ ॥ शम्बरो देवराजेन नरको विष्णुना यथा ॥ तथाद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥ ७ ॥ ॥

दैवादिति शेषः ॥ २ ॥ नूनमिति ॥ ईदृशमिति शोकक्रियाविशेषणम् । आत्मानम् उद्दिश्येति शेषः ॥ ३ ॥ ब्रह्मदत्तेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ विशस्त्रेण निरायुधेन ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ शम्बर इति ॥ नरकोत्र सिंहिकायां विप्रचित्तेर्जातेषु वातापिप्रमुखेष्वन्यतमः । वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः सृमरस्तथा । अन्धको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव चेत्युक्तेः ॥ न तु कृष्णहतो भूसुतो नरकासुरः । तस्य वाल्मीकिप्रबन्धनिर्माणकाले असंजातत्वात् ॥७॥

॥ ८ ॥ श्रुत्वा त्रिशिरस इत्यादि ॥ त्रिशिरसो वचनं स्वेषामपि तुल्यत्वाद्देवान्तकादयोपि युद्धोद्युक्ता बभूवुरित्यर्थः ॥ ९ ॥ १० ॥ अन्तरिक्षेति ॥ अन्तरिक्षे गतं गमनं येषां तेन्तारिक्षगताः ॥ ११ ॥ सर्वे इत्यादि ॥ देवादिभिः सह समरमासाद्य पराजिता न श्रूयन्त इत्यन्वयः ॥ १२ ॥ सर्वे इति ॥ विदुषः विद्यावन्तः । प्रवरविज्ञानाः उत्कृष्टशास्त्रज्ञानाः॥ १३ ॥ स तैरिति ॥ तुल्यवर्चसैरित्यत्र समासान्त आर्षः ॥ १४ ॥ स इति ॥ आशीर्भिः सहेति

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ॥ पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ ८ ॥ श्रुत्वा त्रिशि-
रसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ ॥ अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ९ ॥ ततोहमहमित्येव गर्जन्तो
नैर्ऋतर्षभाः ॥ रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १० ॥ अन्तरिक्षगताः सर्वे सर्वे मायाविशारदाः ॥
सर्वे त्रिदशदर्पघ्नाः सर्वे च रणदुर्जयाः ॥ ११ ॥ सर्वे सुबलसंपन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः ॥ सर्वे समरमासाद्य न
श्रूयन्ते पराजिताः ॥ देवैरपि सगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ १२ ॥ सर्वे च विदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥
सर्वे प्रवरविज्ञानाः सर्वे लब्धवरास्तथा ॥ १३ ॥ स तैस्तदा भास्करतुल्यवर्चसैः सुतैर्वृतः शत्रुबलप्रमर्दनैः ॥
रराज राजा मघवान् यथामरैर्वृतो महादानवदर्पनाशनैः ॥ १४ ॥ स पुत्रान्संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ॥
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास संयुगे ॥ १५ ॥ युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः ॥ रक्षणार्थं
कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥१६॥ तेभिवाद्य महात्मानं रावणं रिपुरावणम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः
प्रतस्थिरे ॥१७॥ सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः ॥ निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥

शेषः॥ १५ ॥ युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावण इति ॥ अत्र युद्धोन्मत्तौ महोदरमहापार्श्वपर्यायनामानौ रावणभ्रातरौ । एतौ परत्र प्रकाशयिष्येते ॥ १६ ॥ त इति ॥ रिपून् रावयतीति रिपुरावणः ॥ १७ ॥ सर्वौषधीभिरिति ॥ सर्वौषधीभिः । कोष्टं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दने । वचाचम्पकमुस्ताश्च सर्वौषध्यो दश स्मृताः ॥ इत्युक्ताभिः आयुधप्रहारनिवर्तिकाभिः ओषधीभिरित्याहुः । समालभ्य समालिप्य ॥ १८ ॥

॥ १९ ॥ २० ॥ सर्वायुधेति ॥ अस्तमूर्धनीत्येतदुत्तरक्षणे विनाशसूचनाय ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ त्रिभिरिति ॥ त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः शिखरभूतैर्हिमवानिवेत्यर्थः ॥ २४ ॥ अतिकाय इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ सुसंयुक्तं सुदृढम् । स्वनुकर्षम् । अनुकर्षो दार्वधस्थमित्यमरः । सुकूबरं शोभनयु-

त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥ महोदरमहापार्श्वौ निर्जग्मुः कालचोदिताः ॥ १९ ॥ ततः सुदर्शनं
नाम नीलजीमूतसन्निभम् ॥ ऐरावतकुले जातमारुरोह महोदरः ॥ २० ॥ सर्वायुधसमायुक्तं तूणीभिश्च स्वलंकृतम्
॥ रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूर्धनि ॥ २१ ॥ हयोत्तमसमायुक्तं सर्वायुधसमाकुलम् ॥ आरुरोह रथश्रेष्ठं
त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ २२ ॥ त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः ॥ सविद्युदुल्कः शैलाग्रे सेन्द्रचाप इवाम्बुदः
॥ २३ ॥ त्रिभिः किरीटैः शुशुभे त्रिशिराः स रथोत्तमे ॥ हिमवानिव शैलेन्द्रस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः ॥ २४ ॥
अतिकायोपि तेजस्वी राक्षसेन्द्रसुतस्तदा ॥ आरुरोह रथश्रेष्ठं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥२५॥ सुचक्राक्षं सुसंयुक्तं
स्वनुकर्षं सुकूबरम् ॥ तूणीबाणासनैर्दीप्तं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥ २६ ॥ स काञ्चनविचित्रेण मुकुटेन विराजता
॥ भूषणैश्च बभौ मेरुः किरणैरिव भासयन् ॥ २७ ॥ स रराज रथे तस्मिन्राजसूनुर्महाबलः ॥ वृतो नैर्ऋतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः
॥ २८ ॥ हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यं श्वेतं कनकभूषणम् ॥ मनोजवं महाकायमारुरोह नरान्तकः
॥२९॥ गृहीत्वा प्रासमुल्काभं विरराज नरान्तकः ॥ शक्तिमादाय तेजस्वी गुहः शिखिगतो यथा ॥३०॥
देवान्तकः समादाय परिघं वज्रभूषणम् ॥ परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन् ॥ ३१ ॥ ॥

गंधरम् । कूबरस्तु युगंधर इत्यमरः ॥२५॥२६॥ स इति । किरणैः भासयन् भासमानः । मेरुरिव बभावित्यन्वयः ॥ २७ ॥ २८॥२९ ॥ ३० ॥ देवान्तक इति ॥ अत्रापि विरराजेति संबध्यते । देवान्तकः परिघमादाय समुद्रमथने गिरिं मन्दरगिरिम् परिगृह्य तिष्ठतो विष्णोर्वपुर्विडम्बयन् विरराज ॥ ३१ ॥

॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ मरणं वेत्यर्धं निर्जग्मुरित्युपस्कार्यम् ॥ ३७ ॥ इति कृत्वेत्यर्धम् ॥ इत्थं कर्तव्यमित्येवं रूपां मतिं कृत्वेत्यर्थः

महापार्श्वो महाकायो गदामादाय वीर्यवान् ॥ विरराज गदापाणिः कुबेर इव संयुगे ॥ ३२ ॥ प्रतास्थिरे महात्मानो बलैरप्रतिमैर्वृताः ॥ सुरा इवामरावत्या बलैरप्रतिमैर्वृताः ॥ ३३ ॥ तान् गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिस्वनैः ॥ अनुजग्मुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥३४॥ ते विरेजुर्महात्मानः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥ किरीटिनः श्रिया जुष्टा ग्रहा दीप्ता इवाम्बरे ॥ ३५॥ प्रगृहीता बभौ तेषां शस्त्राणामावलिः सिता ॥ शारदाभ्रप्रतीकाशा हंसावलिरिवाम्बरे ॥ ३६ ॥ मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् ॥ ३७॥ इति कृत्वा मतिं वीरा निर्जग्मुः संयुगार्थिनः ॥ ३८ ॥ जगर्जुश्च प्रणेदुश्च चिक्षिपुश्चापि सायकान् ॥ जगृहुश्चापि ते वीरा निर्यान्तो युद्धदुर्मदाः ॥ ३९ ॥ क्ष्वेलितास्फोटनिनदैश्चचाल च वसुंधरा ॥ रक्षसां सिंहनादैश्च पुस्फोटेव तदाम्बरम् ॥ ४० ॥ तेभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ॥ ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम् ॥४१॥ हरयोपि महात्मानो ददृशुर्नैर्ऋतं बलम् ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधं किङ्किणीशतनादितम् ॥ ४२ ॥ नीलजीमूतसंकाशं समुद्यतमहायुधम् ॥ दीप्तानलरविप्रख्यैः सर्वतो नैर्ऋतैर्वृतम् ॥ ४३ ॥ तद्दृष्ट्वा बलमायात लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ॥ समुद्यतमहाशैलाः संप्रणेदुर्महाबलाः ॥ अमृष्यमाणा रक्षांसि प्रतिनर्दन्ति वानराः ॥ ४४ ॥ ततः समुद्घुष्टरवं निशम्य रक्षोगणा वानरयूथपानाम् ॥ अमृष्यमाणाः परहर्षमुग्रं महाबला भीमतरं विनेदुः ॥ ४५ ॥

॥ ३८ ॥ जगर्जुश्चेति ॥ जगर्जुः मेघध्वनिं चक्रुः । प्रणेदुः सिंहनादं चक्रुः । चिक्षिपुः क्षेपवचनान्यूचुः । सायकान् जगृहुरित्यन्वयः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तदित्यादि ॥ लब्धलक्षाः लब्धपराक्रमविषयाः ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥ संचारप्रकारमेवाह—केचिदित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ द्रुमशिलायुधाः इति स्वभावोक्तिः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ त इति ॥ अनूपमाम् अ-

ते राक्षसबलं घोरं प्रविश्य हरियूथपाः ॥ विचेरुरुद्यतैः शैलैर्नगा शिखारिणो यथा ॥ ४६ ॥ केचिदाकाशमाविश्य केचिदुर्व्यां प्लवङ्गमाः ॥ रक्षःसैन्येषु संक्रुद्धाश्चेरुर्द्रुमशिलायुधाः ॥ ४७ ॥ द्रुमांश्च विपुलस्कन्धान् गृह्य वानरपुङ्गवाः ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं रक्षोवानरसंकुलम् ॥ ४८ ॥ ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम् ॥ बाणौघैर्वार्यमाणाश्च हरयो भीमविक्रमाः ॥ ४९ ॥ सिंहनादान् विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ॥ शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान्प्लवङ्गमाः ॥ ५० ॥ निजघ्नुः संयुगे क्रुद्धाः कवचाभरणावृतान् ॥ केचिद्रथगतान् वीरान् गजवाजिगतानपि ॥ ५१ ॥ निजघ्नुः सहसाप्लुत्य यातुधानान्प्लवङ्गमाः ॥ शैलशृङ्गाचिताङ्गाश्च मुष्टिभिर्वान्तलोचनाः ॥ ५२ ॥ चेरुः पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसपुङ्गवाः ॥ राक्षसाश्च शरैस्तीक्ष्णैर्बिभिदुः कपिकुञ्जरान् ॥ ५३ ॥ शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः ॥ अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥ ५४ ॥ रिपुशोणितदिग्धाङ्गास्तत्र वानरराक्षसाः ॥ ततः शैलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैर्हरिराक्षसैः ॥५५॥ मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणिताप्लुता ॥ विकीर्णपर्वताकारै रक्षोभिररिमर्दनैः ॥ आसीद्वसुमती पूर्णा तदा युद्धमदान्वितैः ॥ ५६ ॥ आक्षिप्ताः क्षिप्तमाणाश्च भग्नशूलाश्च वानरैः ॥ पुनरङ्गैस्तथा चक्रुरासन्ना युद्धमद्भुतम् ॥ ५७ ॥ वानरान्वानरैरेव जघ्नुस्ते रजनीचराः ॥ राक्षसान्राक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि ॥ ५८ ॥ आक्षिप्य च शिलास्तेषां निजघ्नू राक्षसा हरीन् ॥ तेषां चाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नू रक्षांसि वानराः ॥ ५९ ॥ निजघ्नुः शैलशूलास्त्रैर्बिभिदुश्च परस्परम् ॥ सिंहनादान्विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ॥ ६० ॥

नुपमाम् ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ आक्षिप्ता इति ॥ आक्षिप्ता क्षिप्यमाणाश्चेति नियुद्धप्रकारकथनम्। अङ्गैः हस्तपादादिभिः ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ॥ ॥

छिन्नेति ॥ छिन्नवर्मतनुत्राणाः छिन्नवर्मरूपतनुत्राणाः । रुधिरं प्रस्नुताः स्रुतवन्तः । मुमुचुरिति यावत् । रससारं निर्यासम् ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ क्षु-

छिन्नवर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैर्हताः ॥ रुधिरं प्रस्नुतास्तत्र रससारमिव द्रुमाः ॥ ६१ ॥ रथेन च रथं चापि वारणेनैव वारणम् ॥ ६२ ॥ हयेन च हयं केचिन्निजघ्नुर्वानरा रणे ॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे प्रगृहीतमनःशिलाः ॥ ६३ ॥ हरयो राक्षसान् जघ्नुर्द्रुमैश्च बहुशाखिभिः ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं रक्षोवानरसंकुलम् ॥ ६४ ॥ क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः ॥ राक्षसा वानरेन्द्राणां चिच्छिदुः पादपान् शिलाः ॥ ॥ ६५ ॥ विकीर्णैः पर्वताग्रैश्च द्रुमैश्छिन्नैश्च संयुगे ॥ हतैश्च कपिरक्षोभिर्दुर्गमा वसुधाभवत् ॥ ६६ ॥ ते वानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः संग्राममासाद्य भयं विमुच्य ॥ युद्धं तु सर्वे सह राक्षसैस्तैर्नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ ६७ ॥ तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विमर्दे प्रहृष्यमाणेषु वलीमुखेषु ॥ निपात्यमानेषु च राक्षसेषु महर्षयो देवगणाश्च नेदुः ॥ ६८ ॥ ततो हयं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ॥ नरान्तको वानरराजसैन्यं महार्णवं मीन इवाविवेश ॥ ६९ ॥ स वानरान्सप्त शतानि वीरः प्रासेन दीप्तेन विनिर्बिभेद ॥ एकक्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा जघान सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ॥ ७० ॥ ददृशुश्च महात्मानं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम् ॥ चरन्तं हरिसैन्येषु विद्याधरमहर्षयः ॥ ७१ ॥ स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः ॥ पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ ७२ ॥ ॥ ॥

रप्रैरिति ॥ शिलाः शिलाश्चेत्यर्थः ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ते वानरा इति ॥ गर्वितं हृष्टं च यथा भवति तथा चेष्टन्त इति गर्वितहृष्टचेष्टाः । नानायुधाः गृहीतराक्षसायुधा इत्यर्थः ॥ ६७ ॥ तस्मिन्निति ॥ विमर्दे युद्धे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ स वानरानिति ॥ जघानेति । इत्थमिति शेषः ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

॥ ७३ ॥ ज्वलन्तमिति ॥ ज्वलन्तं ज्वलन्तमिव स्थितम् । विभावसुः वह्निः ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ दिक्ष्विति ॥ प्रमृद्गन् मर्दयन् ॥ ७६ ॥ न शेकुरिति ॥ यतो
हेतोरुत्पतन्तं स्थितं यान्तं च विव्याध अतः स्पन्दनादौ न शेकुरित्यर्थः ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ कुम्भकर्णेन पातितानां नीलादीनामुत्तरत्र

यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः ॥ तावदेताननतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥ ७३ ॥ ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य
संग्रामाग्रे नरान्तकः ॥ ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः ॥ ७४ ॥ यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षान् शैलान्वनौकसः॥
तावत्प्रासहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः ॥ ७५ ॥ दिक्षु सर्वासु बलवान् विचचार नरान्तकः ॥ प्रमृद्गन्सर्वतो युद्धे
प्रावृट्काले यथानिलः ॥ ७६ ॥ न शेकुर्धावितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं भयात् ॥ उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान् विव्याध
वीर्यवान् ॥ ७७ ॥ एकेनान्तककल्पेन प्रासेनादित्यतेजसा ॥ भिन्नानि हरिसैन्यानि निपेतुर्धरणीतले ॥ ७८ ॥
वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम् ॥ न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥ ७९ ॥ पततां हरिवीराणां
रूपाणि प्रचकाशिरे ॥ वज्रभिन्नाग्रकूटानां शैलानां पततामिव ॥ ८० ॥ ये तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पातिताः॥
ते स्वस्था वानरश्रेष्ठाः सुग्रीवमुपतस्थिरे ॥ ८१ ॥ विप्रेक्षमाणः सुग्रीवो ददर्श हरिवाहिनीम् ॥ नरान्तकभयत्रस्तां
विद्रवन्तीमितस्ततः ॥ ८२ ॥ विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् ॥ गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम्
॥ ८३ ॥ अथोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ॥ कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ ८४ ॥ गच्छ
त्वं राक्षसं वीरो योसौ तुरगमास्थितः ॥ क्षोभयन्तं हरिबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥ ८५ ॥ स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्ततः
॥ अनीकान्मेघसंकाशान्मेघानीकादिवांशुमान् ॥ ८६ ॥

पौरुषकथनसांगत्यायैषां लब्धसंज्ञत्वमाह—ये त्विति ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ स इति ॥ मेघसंकाशादिति निबिडत्वलक्षणसमानधर्मप्रयुक्तेयमुपमा
। मेघानीकादित्यत्र तु निष्क्रमणापादानत्वधर्मप्रयुक्तेत्युपमाद्वयस्य निर्वाहः ॥ ८६ ॥

शैलेति ॥ संघातः निबिडसंवेशः । अङ्गदसन्नद्धः सन्नद्धाङ्गदः ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ अभिगम्येति ॥ अयमुत्तरशेषः ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

शैलसंघातसंकाशो हरीणामुत्तमोङ्गदः ॥ रराजाङ्गदसन्नद्धः सधातुरिव पर्वतः ॥ ८७ ॥ निरायुधो महातेजाः
केवलं नखदंष्ट्रवान् ॥ नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ ८८ ॥ तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं
करिष्यसि ॥ अस्मिन्वज्रसमस्पर्शे प्रासं क्षिप ममोरसि ॥ ८९ ॥ अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ॥
संदश्य दशनैरोष्ठं विनिश्वस्य भुजङ्गवत् ॥ ९० ॥ अभिगम्याङ्गदं क्रुद्धो वालिपुत्रं नरान्तकः ॥ ९१ ॥ प्रासं
समाविध्य तदाङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज ॥ स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च
भूमौ ॥ ९२ ॥ तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम् ॥ तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रस्तुरङ्गमं
तस्य जघान मूर्ध्नि ॥९३॥ निमग्नतालुः स्फुटिताक्षितारो निष्क्रान्तजिह्वोचलसन्निकाशः ॥ स तस्य वाजी
निपपात भूमौ तलप्रहारेण विशीर्णमूर्धा ॥ ९४ ॥ नरान्तकः क्रोधवशं जगाम हतं तुरङ्गं पतितं निरीक्ष्य
॥ स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥ ९५॥ अथाङ्गदो मुष्टिविभिन्नमूर्धा
सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम् ॥ मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि संज्ञां समासाद्य विसिष्मिये च ॥ ९६ ॥
अथाङ्गदो वज्रसमानवेगं संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् ॥ निपातयामास तदा महात्मा नरान्तकस्योरसि
वालिपुत्रः ॥ ९७ ॥ स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नवक्षा ज्वालावमच्छोणितदिग्धगात्रः ॥ नरान्तको भूमितले
पपात यथाचलो वज्रनिपातभग्नः ॥ ९८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ स मुष्टीति ॥ ज्वालारूपेण वमता उद्गच्छता शोणितेन दिग्धगात्रः ॥९८॥ ॥ ॥ ॥

॥ ९९ ॥ अथेति ॥ तत् कृतवानित्यत्र तदित्यव्ययं पदम् । तस्मादित्यर्थः । अङ्गदः हि यस्मात् सुदुष्करम् अत एव राममनःप्रहर्षणं विक्रमं कृतवान् । तस्मादित्यर्थः । विसिष्मिये । सोपीत्यत्र तच्छब्देन राममनःप्रहर्षणमित्यत्र गुणीभूतो रामशब्दः परामृश्यते । हर्षितः विस्मितेन रामेण श्लाघया तोषितः । स च अङ्गदश्च पुनः युद्धे बभूव । युद्धविषये सन्नद्धो बभूवेत्यर्थः ॥१००॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने

अथान्तरिक्षे त्रिदशोत्तमानां वनौकसां चैव महाप्रणादः ॥ बभूव तस्मिन्निहतेग्र्यवीरे नरान्तके वालिसुतेन संख्ये ॥ ९९ ॥ अथाङ्गदो राममनःप्रहर्षणं सुदुष्करं तत्कृतवान् हि विक्रमम् ॥ विसिष्मिये सोप्यतिवीर्यविक्रमः पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः ॥१००॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ॥ देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥ १ ॥ आरूढो मेघसंकाशं वारणेन्द्रं महोदरः ॥ वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वीर्यवान् ॥ २ ॥ भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तथा देवान्तको बली ॥ आदाय परिघं दीप्तमङ्गदं समभिद्रवत् ॥ ३ ॥ रथमादित्यसंकाशं युक्तं परमवाजिभिः ॥ आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्ययात् ॥ ४ ॥ स त्रिभिर्देवदर्पघ्नैर्नैर्ऋतेन्द्रैरभिद्रुतः ॥ वृक्षमुत्पाटयामास महाविटपमङ्गदः ॥ ५ ॥ देवान्तकाय तं वीरश्चिक्षेप सहसाङ्गदः ॥ महावृक्षं महाशाखं शक्रो दीप्तमिवाशनिम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

युद्धकाण्डव्याख्याने एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥

नरान्तकमित्यादि ॥ पौलस्त्य इति त्रिमूर्धविशेषणम् । न तु महोदरस्य । देवान्तकादयस्त्रयश्चुक्रुशुरिति संबन्धः ॥ १ ॥ २ ॥ भ्रातृव्यसनेति ॥ समभिद्रवत् समभ्यद्रवत् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ देवान्तकश्चेति ॥ व्यपचक्राम पश्चादाजगाम ॥ ११ ॥ १२ ॥ स इति ॥ अस्य महोदरस्य ॥ १३ ॥ तस्येति ॥ तस्य अ-

त्रिशिरास्तं प्रचिच्छेद शरैराशीविषोपमैः ॥ स वृक्षं कृत्तमालोक्य उत्पपात तदाङ्गदः ॥ ७ ॥ स ववर्ष ततो वृक्षान् शैलांश्च कपिकुञ्जरः ॥ तान्प्रचिच्छेद संक्रुद्धस्त्रिशिरा निशितैः शरैः ॥ ८ ॥ परिघाग्रेण तान्वृक्षान्बभञ्ज च सुरान्तकः ॥ त्रिशिराश्चाङ्गदं वीरमभिदुद्राव सायकैः ॥ ९ ॥ गजेन समभिद्रुत्य वालिपुत्रं महोदरः ॥ जघानोरसि संक्रुद्धस्तोमरैर्वज्रसन्निभैः ॥ १० ॥ देवान्तकश्च संक्रुद्धः परिघेण तदाङ्गदम् ॥ उपगम्याभिहत्याशु व्यपचक्राम वेगवान् ॥ ११ ॥ स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः ॥ न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ १२ ॥ स वेगवान्महावेगं कृत्वा परमदुर्जयः ॥ तलेन भृशमुत्पत्य जघानास्य महागजम् ॥ १३ ॥ तस्य तेन प्रहारेण नागराजस्य संयुगे ॥ पेततुर्लोचने तस्य विननाद स वारणः ॥ १४ ॥ विषाणं चास्य निष्कृष्य वालिपुत्रो महाबलः ॥ देवान्तकमभिप्लुत्य ताडयामास संयुगे ॥ ॥ १५ ॥ स विह्वलितसर्वाङ्गो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥ १६ ॥ अथाश्वास्य महातेजाः कृच्छ्राद्देवान्तको बली ॥ आविध्य परिघं घोरमाजघान तदाङ्गदम् ॥ १७ ॥ परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा ॥ जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह ॥ १८ ॥ तमुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः ॥ घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेभिजघान ह ॥ १९ ॥ ततोङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः ॥ हनुमानपि विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥ २० ॥

ङ्गदस्य । तस्य नागराजस्येति द्वितीयतच्छब्दान्वयः ॥ १४ ॥ विषाणमिति ॥ महाबलः वालिपुत्रः अस्य महोदरवाहनस्य गजस्य विषाणं निष्कृष्य अभिप्लुत्य वेगेन सन्निपत्य देवान्तकं ताडयामासेति संबन्धः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

॥ २१ ॥ २२ ॥ तत इति ॥ जृम्भितं भग्नमिति यावत् । जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वेत्यादिवत् ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६॥२७॥२८॥२९॥ तत इति ॥ नि-

ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा ॥ तद्रावणसुतो धीमान् बिभेद निशितैः शरैः ॥ २१ ॥ तद्बाणशतनिर्भिन्नं
विदारितशिलातलम् ॥ सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात गिरेः शिरः ॥ २२ ॥ ततो जृम्भितमालोक्य हर्षाद्देवान्तकस्तदा ॥
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥ २३ ॥ तमापतन्तमुत्प्लुत्य हनुमान्मारुतात्मजः ॥ आजघान
तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ २४ ॥ शिरसि प्रहरन्वीरस्तदा वायुसुतो बली ॥ नादेनाकम्पयच्चैव
राक्षसान्स महाकपिः ॥ २५ ॥ स मुष्टिनिष्पिष्टविकीर्णमूर्धा निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः ॥ देवान्तको राक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यां
सहसा पपात ॥ २६ ॥ तस्मिन्हते राक्षसयोधमुख्ये महाबले संयति देवशत्रौ ॥ क्रुद्धस्त्रिमूर्धा
निशिताग्रमुग्रं ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥ २७॥ महोदरस्तु संक्रुद्धः कुञ्जरं पर्वतोपमम् ॥ भूयः समधिरुह्याशु
मन्दरं रश्मिमानिव ॥ २८ ॥ ततो बाणमयं वर्षं नीलस्योरस्यपातयत् ॥ गिरौ वर्षं तडिच्चक्रचापवानिव
तोयदः ॥ २९ ॥ ततः शरौघैरभिवर्ष्यमाणो विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः ॥ नीलो बभूवाथ निसृष्टगात्रो
विष्टम्भितस्तेन महाबलेन ॥ ३० ॥ ततस्तु नीलः प्रतिलभ्य संज्ञां शैलं समुत्पाट्य सवृक्षषण्डम् ॥ ततः समुत्पत्य
भृशोग्रवेगो महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ॥ ३१ ॥ ततः स शैलेन्द्रनिपातभग्नो महोदरस्तेन महाद्विपेन ॥ विपोथितो
भूमितले गतासुः पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः ॥३२॥ पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे ॥ हनुमन्तं च संक्रुद्धो
विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥

सृष्टगात्रः शिथिलगात्रः । विष्टम्भितः स्तब्धीकृतः । एतन्निसृष्टत्वे हेतुः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ततः स शैलेति ॥ विपोथितः हिंसितः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तामिति ॥ घोरसंकाशां भयंकरप्रकाशाम् ॥ ४० ॥ तत इति ॥ व्यूढे विशाले ॥ ४१ ॥४२॥ स इति ॥

स वायुसूनुः कुपितश्चिक्षेप शिखरं गिरेः ॥ त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेद बहुधा बली ॥ ३४ ॥ तद्व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमवर्षं महाकपिः ॥ विससर्ज रणे तस्मिन्रावणस्य सुतं प्रति ॥ ३५ ॥ तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान् ॥ त्रिशिरा निशितैर्बाणैश्चिच्छेद च ननाद च ॥ ३६ ॥ ततो हनूमानुत्प्लुत्य हयांस्त्रिशिरसस्तदा ॥ विददार नखैः क्रुद्धो गजेन्द्रं मृगराडिव ॥ ३७ ॥ अथ शक्तिं समादाय कालरात्रिमिवान्तकः ॥ चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ ३८ ॥ दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसंगताम् ॥ गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥ ३९ ॥ तां दृष्ट्वा घोरसंकाशां शक्तिं भग्नां हनूमता ॥ प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा इव ॥ ४० ॥ ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः ॥ निजघान तदा व्यूढे वायुपुत्रस्य वक्षसि ॥ ४१ ॥ खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान्मारुतात्मजः ॥ आजघान त्रिशिरसं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ४२ ॥ स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्तायुधो भुवि ॥ निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ ४३ ॥ स तस्य पततः खड्गं समाच्छिद्य महाकपिः ॥ ननाद गिरिसंकाशस्त्रासयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥ ४४ ॥ अमृष्यमाणस्तं घोषमुत्पपात निशाचरः ॥ उत्पत्य च हनूमन्तं ताडयामास मुष्टिना ॥ ४५ ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण संचुकोप महाकपिः ॥ कुपितश्च निजग्राह किरीटे राक्षसर्षभम् ॥ ४६ ॥ स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि ॥ क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य त्वष्टुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः ॥ ४७ ॥ तान्यायताक्षाण्यगसन्निभानि प्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि ॥ पेतुः शिरांसीन्द्ररिपोर्धरण्यां ज्योतींषि मुक्तानि यथार्कमार्गात् ॥ ४८ ॥

त्यक्तचेतनः मूर्छित इत्यर्थः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ स तस्येति ॥ त्वष्टुः सुतः विश्वरूपः । विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहित इत्यादि श्रुतिप्रसिद्धः ॥ ४७ ॥ तानीति ॥ मुक्तानि अनुभूतपुण्यफलानि । अर्कमार्गात् आकाशात् ॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥ हतं त्रिशिरसमित्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया । मत्तः महापार्श्वः । मत्त इति महापार्श्वस्य नामान्तरम् । मांसशोणितफेनिलामिति युद्धकालिकरूपम् । शत्रुशोणितरञ्जितामिति पूर्वकालिकरूपम् । महापद्मः पुण्डरीकाह्वयदिग्गजः ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ अथेति ॥

तस्मिन्हते देवरिपौ त्रिशीर्षे हनूमता शक्रपराक्रमेण ॥ नेदुः प्लवङ्गाः प्रचचाल भूमी रक्षांस्यथो दुद्रुविरे
समन्तात् ॥ ४९ ॥ हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा तथैव च महोदरम् ॥ हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥
॥ ५० ॥ चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुङ्गवः ॥ जग्राहार्चिष्मतीं घोरां गदां सर्वायसीं शुभाम् ॥५१॥
हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितफेनिलाम् ॥ विराजमानां वपुषा शत्रुशोणितरञ्जिताम् ॥ ५२ ॥ तेजसा
संप्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम् ॥ ऐरावतमहापद्मसार्वभौमभयावहाम् ॥ ५३ ॥ गदामादाय संक्रुद्धो
मत्तो राक्षसपुङ्गवः ॥ हरीन्समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ ५४ ॥ अथर्षभः समुत्पत्य वानरो
रावणानुजम् ॥ मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ ५५ ॥ तं पुरस्तात् स्थितं दृष्ट्वा वानरं
पर्वतोपमम् ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥ ५६ ॥ स तयाभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः ॥
भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु ॥ ५७ ॥ स संप्राप्य चिरात्संज्ञामृषभो वानरर्षभः ॥ अभिदुद्राव
वेगेन गदां तस्य महात्मनः ॥५८॥ गृहीत्वा तां गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ॥ मत्तानीकं महात्मानं
जघान रणमूर्धनि ॥५९॥ स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ॥ निपपात ततो मत्तो वज्राहत इवाचलः
॥ ६० ॥ विशीर्णनयने भूमौ गतसत्त्वे गतायुषि ॥ पतिते राक्षसे तस्मिन् विद्रुतं राक्षसं बलम् ॥ ६१ ॥

मत्तानीकम् मत्तानीक इति च महापार्श्वस्य नामान्तरम् ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ स तयेति ॥ समाधूतः कम्पितः ॥ ५७ ॥ स इति ॥ गदामभिदुद्राव ॥ ॥ गदां ग्रहीतुं दुद्रावेत्यर्थः ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

तस्मिन्निति ॥ केवलजीवितार्थं यशोरहितजीवनार्थम् । भिन्नार्णवसन्निकाशमिति क्रियाविशेषणम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

(उन्मत्तस्तु तदा दृष्ट्वा गतासुं भ्रातरं रणे ॥ चुकोप परमक्रुद्धः प्रलयाग्निसमद्युतिः ॥ ततः समादाय गदां स वीरो वित्रासयन् वानरसैन्यमुग्रम् ॥ दुद्राव वेगेन तु सैन्यमध्ये दहन् यथा वह्निरतिप्रचण्डः ॥ आपतन्तं तदा दृष्ट्वा राक्षसं भीमविक्रमम् ॥ शैलमादाय दुद्राव गवाक्षः पर्वतोपमः ॥ जिघांसू राक्षसं भीमं तं शैलेन महाबलः ॥ आपतन्तं तदा दृष्ट्वा उन्मत्तोपि महागिरिम् ॥ चिच्छेद गदया वीरः शतधा तत्र संयुगे ॥ चूर्णीकृतं गिरिं दृष्ट्वा रक्षसा कपिकुञ्जरः ॥ विस्मितोभून्महाबाहुर्जगर्ज च मुहुर्मुहुः ॥ उन्मत्तस्तु सुसंक्रुद्धो ज्वलन्तीं राक्षसोत्तमः ॥ गदामादाय वेगेन कपेर्वक्षस्यताडयत् ॥ स तया गदया वीरस्ताडितः कपिकुञ्जरः ॥ पपात भूमौ निःसंज्ञः सुस्राव रुधिरं बहु ॥ पुनः संज्ञामथास्थाय वानरः स समुत्थितः ॥ तलेन ताडयामास ततस्तस्य शिरः कपिः ॥ तेन प्रताडितो वीरो राक्षसः पर्वतोपमः ॥ विस्रस्तदन्तनयनो निपपात महीतले ॥ सुस्राव रुधिरं सोष्णं गतासुश्च ततोभवत् ॥) तस्मिन्हते भ्रातरि रावणस्य तन्नैर्ऋतानां बलमर्णवाभम् ॥ त्यक्तायुधं केवलजीवितार्थं दुद्राव भिन्नार्णवसन्निकाशम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ भ्रातॄंश्च निहतान्दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १ ॥ पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे सन्निषूदितौ ॥ युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसर्षभौ ॥ २ ॥

स्वबलमित्यादि ॥ भ्रातरौ अन्योन्यं भ्रातरौ ॥ १ ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ ४ ॥ स इति ॥ मृष्टकुण्डलः शुद्धकुण्डलः ॥ ५ ॥ ६ ॥ त इति ॥ माहात्म्यं महत्त्वम् । उत्थित इत्यनन्तरमितिकरणं द्रष्टव्यम् ॥ ७ ॥ ८ ॥

चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि ॥ अतिकायोद्रिसंकाशो देवदानवदर्पहा ॥ ३ ॥ स भास्करसहस्रस्य संघातमिव भास्वरम् ॥ रथमास्थाय शक्रारिरभिदुद्राव वानरान् ॥ ४ ॥ स विस्फार्य महच्चापं किरीटी मृष्टकुण्डलः ॥ नाम विश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥ ५ ॥ तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेन च ॥ ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥ ६ ॥ ते दृष्ट्वा देहमाहात्म्यं कुम्भकर्णोयमुत्थितः ॥ भयार्ता वानराः सर्वे संश्रयन्ते परस्परम् ॥ ७ ॥ ते तस्य रूपमालोक्य यथा विष्णोस्त्रिविक्रमे ॥ भयाद्वानरयूथास्ते विद्रवन्ति ततस्ततः॥८॥ तेतिकायं समासाद्य वानरा मूढचेतसः ॥ शरण्यं शरणं जग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥ ९ ॥ ततोतिकायं काकुत्स्थो रथस्थं पर्वतोपमम् ॥ ददर्श धन्विनं दूराद्गर्जन्तं कालमेघवत् ॥ १० ॥ स तं दृष्ट्वा महात्मानं राघवस्तु विसिष्मिये ॥ वानरान्सान्त्वयित्वाथ बिभीषणमुवाच ह ॥ ११ ॥ कोसौ पर्वतसंकाशो धनुष्मान् हरिलोचनः ॥ युक्तो हयसहस्रेण विशाले स्यन्दने स्थितः ॥ १२ ॥ य एष निशितैः शूलैः सुतीक्ष्णैः प्रासतोमरैः ॥ अर्चिष्मद्भिर्वृतो भाति भूतैरिव महेश्वरः ॥ १३ ॥ कालजिह्वाप्रकाशाभिर्य एषोतिविराजते ॥ आवृतो रथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ १४ ॥ धनूंषि चास्य सज्यानि हेमपृष्ठानि सर्वशः ॥ शोभयन्ति रथश्रेष्ठं शक्रचाप इवाम्बरम् ॥ १५ ॥ क एष रक्षःशार्दूलो रणभूमिं विराजयन् ॥ अभ्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनादित्यतेजसा ॥ १६ ॥ ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेन राहुणाभिविराजते ॥ सूर्यरश्मिनिभैर्बाणैर्दिशो दश विराजयन् ॥ १७ ॥ ॥ ॥

॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ कोसावित्यादि ॥ हरिलोचनः सिंहदृष्टिः । रथशक्तीभिः रथस्थिताभिः शक्तिभिः ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेनेति ॥ अनेन राहुध्वजोयमित्युक्तम् ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

त्रिणतमिति ॥ त्रिणतं त्रिषु आद्यन्तयोर्मध्ये च नतम् । मेघनिह्रादं मेघतुल्यज्यास्वनम् । हेमपृष्ठं हेमलिप्तपार्श्वमित्यर्थः । धनुः रथस्थेभ्यः अन्यत् करधृतमिदम् ॥ १८ ॥ सध्वज इति ॥ ध्वजः असाधारणकेतनम् । पताका साधारणा । अनुकर्षः रथाधःस्थदारु । चतुःसादिसमायुक्तः चतुःसारथियुक्तः ॥ १९ ॥ विंशतिरिति ॥ कार्मुकाणि धनुर्भेदा इति न पौनरुक्त्यम् ॥ २० ॥ द्वौ चेति ॥ पार्श्वशोभितौ पार्श्वाभ्यां शोभितौ । चतुर्ह-

त्रिणतं मेघनिह्रादं हेमपृष्ठमलङ्कृतम् ॥ शतक्रतुधनुःप्रख्यं धनुश्चास्य विराजते ॥ १८ ॥ सध्वजः सपताकश्च सानुकर्षो महारथः ॥ चतुःसादिसमायुक्तो मेघस्तनितनिस्वनः ॥ १९ ॥ विंशतिर्दश चाष्टौ च तूण्योस्य रथमास्थिताः ॥ कार्मुकानि च भीमानि ज्याश्च काञ्चनपिङ्गलाः ॥ २० ॥ द्वौ च खड्गौ रथगतौ पार्श्वस्थौ पार्श्वशोभितौ ॥ चतुर्हस्तत्सरुयुतौ व्यक्तहस्तदशायतौ ॥ २१ ॥ रक्तकण्ठगुणो धीरो महापर्वतसन्निभः ॥ कालः कालमहावक्त्रो मेघस्थ इव भास्करः ॥ २२ ॥ काञ्चनाङ्गदनद्धाभ्यां भुजाभ्यामेष शोभते ॥ शृङ्गाभ्यामिव तुङ्गाभ्यां हिमवान्पर्वतोत्तमः ॥ २३ ॥ कुण्डलाभ्यां तु यस्यैतद्भाति वक्त्रं शुभेक्षणम् ॥ पुनर्वस्वन्तरगतं पूर्णं बिम्बमिवैन्दवम् ॥ २४ ॥ आचक्ष्व मे महाबाहो त्वमेनं राक्षसोत्तमम् ॥ यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे भयार्ता विद्रुता दिशः ॥ ॥ २५ ॥ स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणामिततेजसा ॥ आचचक्षे महातेजा राघवाय विभीषणः ॥ २६ ॥ दशग्रीवो महातेजा राजा वैश्रवणानुजः ॥ भीमकर्मा महोत्साहो रावणो राक्षसाधिपः ॥ २७ ॥ तस्यासीद्वीर्यवान्पुत्रो रावणप्रतिमो रणे ॥ वृद्धसेवी श्रुतिधरः सर्वास्त्रविदुषां वरः ॥ २८ ॥ ॥

स्तत्सरुयुतौ चतुर्हस्तप्रमाणत्सरुयुक्तौ । त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यादित्यमरः । व्यक्तहस्तदशायतौ व्यक्तौ च तौ हस्तदशायतौ चेति तथा ॥ २१ ॥ रक्तेति ॥ रक्तकण्ठगुणः रक्तकण्ठमाल्यः । कालमहावक्त्रः कालस्येव महावक्त्रं यस्य स तथोक्तः । काल इव महावक्त्र इति वा ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ तस्येत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ नये युक्तौ । मन्त्रे विचारे ॥ २८ ॥ ॥

॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वज्रमित्यादिश्लोकद्वयम् ॥ विष्टम्भितं निश्चलीकृतम् । राक्षसानामथर्षभ इत्यत्राथशब्दः कार्त्स्न्ये ॥ ३४ ॥

अश्वपृष्ठे रथे नागे खड्गे धनुषि कर्षणे ॥ भेदे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च संमतः ॥ २९ ॥ यस्य बाहू समाश्रित्य लङ्का वसति निर्भया ॥ तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः ॥ ३० ॥ एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भावितात्मना ॥ अस्त्राणि चाप्यवाप्तानि रिपवश्च पराजिताः ॥ ३१ ॥ सुरासुरैरवध्यत्वं दत्तमस्मै स्वयंभुवा ॥ एतच्च कवचं दिव्यं रथश्चैषोर्कभास्वरः ॥ ३२ ॥ एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिताः ॥ रक्षितानि च रक्षांसि यक्षाश्चापि निषूदिताः ॥ ३३ ॥ वज्रं विष्टम्भितं येन बाणैरिन्द्रस्य धीमतः ॥ पाशः सलिलराजस्य रणे प्रतिहतस्तथा ॥ ३४ ॥ एषोतिकायो बलवान्राक्षसानामथर्षभः ॥ रावणस्य सुतो धीमान्देवदानवदर्पहा ॥ ३५ ॥ तदस्मिन् क्रियतां यत्नः क्षिप्रं पुरुषपुङ्गव ॥ पुरा वानरसैन्यानि क्षयं नयति सायकैः ॥ ३६ ॥ ततोतिकायो बलवान्प्रविश्य हरिवाहिनीम् ॥ विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥ तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम् ॥ अभिपेतुर्महात्मानो ये प्रधाना वनौकसः ॥ ३८ ॥ कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च ॥ पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत्समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥ तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः ॥ ४० ॥ तांश्चैव सर्वान्स हरीन् शरैः सर्वायसैर्बली ॥ विव्याधाभिमुखः संख्ये भीमकायो निशाचरः ॥ ४१ ॥ तेर्दिता बाणवर्षेण भग्नगात्राः प्लवङ्गमाः ॥ न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महारणे ॥ ४२ ॥ तत्सैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः ॥ मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनदर्पितः ॥ ४३ ॥

॥ ३५ ॥ तदस्मिन्निति ॥ पुरा नयति नेष्यतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कुमुद इति ॥ समभिद्रवन् । आगमशासनस्यानित्यत्वादडभावः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तांश्चेति ॥ अभिमुखः स्थित इति शेषः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तादिति ॥ हरिः सिंहः ॥ ४३ ॥

स इति ॥ कलापी तूणीरवान् । कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतावपीत्यमरः । सगर्वितं सगर्वम् ॥४४॥ रथ इति ॥ व्यवसायः उत्साहः ॥ ४५ ॥ तत्त-
स्येति ॥ स्मयित्वा अनादृत्य । "ष्मिङ्, अनादरे" इति धातुः ॥ ४६ ॥४७॥ पूरयन्निति ॥ त्रासयन् अभूदिति शेषः ॥४८॥ सौमित्रेरिति ॥ प्रतिभ-

स राक्षसेन्द्रो हरिसैन्यमध्ये नायुध्यमानं निजघान कंचित् ॥ उपेत्य रामं सधनुः कलापी सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे
॥ ४४ ॥ रथे स्थितोहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कंचन योधयामि ॥ यश्चास्ति कश्चिद्व्यवसाययुक्तो ददातु मे क्षिप्रमि-
हाद्य युद्धम् ॥ ४५ ॥ तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता ॥ अमृष्यमाणश्च समुत्पपात जग्राह
चापं च ततः स्मयित्वा ॥४६॥ क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम्॥ पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः
॥ ४७ ॥ पूरयन्स महीं शैलानाकाशं सागरं दिशः ॥ ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४८ ॥ सौमित्रे-
श्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभयं तदा ॥ विसिष्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥ ४९ ॥ अथातिकायः कुपितो दृष्ट्वा
लक्ष्मणमुत्थितम् ॥ आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत् ॥५०॥ बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः ॥ गच्छ
किं कालसदृशं मां योधयितुमिच्छसि ॥५१॥ न हि मद्बाहुसृष्टानामस्त्राणां हिमवानपि॥ सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिक्षम-
थो मही॥५२॥ सुखप्रसुप्तं कालाग्निं निबोधयितुमिच्छसि ॥ न्यस्य चापं निवर्तस्व मा प्राणान् जहि मद्गतः ॥ ५३ ॥ अथ
वा त्वं प्रतिष्टब्धो न निवर्तितुमिच्छसि ॥ तिष्ठ प्राणान्परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम्॥५४॥ पश्य मे निशितान्बाणा-
नरिदर्पनिषूदनान् ॥ ईश्वरायुधसंकाशांस्तप्तकाञ्चनभूषणान् ॥ ५५ ॥ एष ते सर्पसंकाशो बाणः पास्यति शो-
णितम् ॥ मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम् ॥ इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरं धनुषि संदधे ॥ ५६ ॥

यम् । भयंकरं प्रतिभयमित्यमरः ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ सुखप्रसुप्तमिति ॥ निबोधयितुं ज्वलयितुम् । मा जहि मा हिंसीः । "हन्तेर्जः" इति
जादेशः । मद्गतः मां प्राप्तः ॥ ५३ ॥ अथ वेति ॥ प्रतिष्टब्धः प्रतिमुखं स्थितः ॥ ५४ ॥ पश्येति ॥ ईश्वरायुधं त्रिशूलम् ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

॥ ५७ ॥ न वाक्यमात्रेणेति ॥ कत्थनात् आत्मश्लाघनात् । सत्पुरुषाः शूरपुरुषाः ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ तत इति ॥ वृन्तात् प्रसवबन्धनात् । वृन्तं प्रसवबन्धनमित्यमरः ॥ ६१ ॥ अद्य त इति ॥ बाणशल्यान्तरोत्थितमिति । बाणशल्यान्तराणि बाणशल्यकृतान्यन्तराणि ॥ ६२ ॥ बाल इति ॥ मृत्युं

श्रुत्वातिकायस्य वचः सरोषं सगर्वितं संयति राजपुत्रः ॥ स संचुकोपातिबलो बृहच्छ्रीरुवाच वाक्यं च ततो महार्थम्
॥ ५७ ॥ न वाक्यमात्रेण भवान्प्रधानो न कत्थनात्सत्पुरुषा भवन्ति ॥ मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ निदर्शय
स्वात्मबलं दुरात्मन् ॥ ५८ ॥ कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि ॥ पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति
स्मृतः ॥ ५९ ॥ सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः ॥ शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥ ६० ॥
ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः ॥ मारुतः कालसंपक्वं वृन्तात्तालफलं यथा ॥ ६१ ॥ अद्य ते मामका बाणास्
तप्तकाञ्चनभूषणाः ॥ पास्यन्ति रुधिरं गात्राद्बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥ ६२ ॥ बालोयमिति विज्ञाय न मावज्ञातुमर्हसि
॥ ६३ ॥ बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ॥ बालेन विष्णुना लोकास्त्रयः क्रान्तास्त्रिभिः क्रमैः॥
॥ ६४ ॥ लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् ॥ अतिकायः प्रचुक्रोध बाणं चोत्तममाददे ॥ ६५ ॥ ततो विद्याधरा
भूता देवा दैत्या महर्षयः ॥ गुह्यकाश्च महात्मानस्तद्युद्धं द्रष्टुमागमन् ॥६६॥ ततोतिकायः कुपितश्चापमारोप्य
सायकम् ॥ लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥ ६७ ॥ तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् ॥ अर्धचन्द्रेण
चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥६८॥ तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम्॥अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्च बाणान्
समाददे ॥६९॥ तान् शरान्संप्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ॥ तानप्राप्तान् शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भरतानुजः ॥ ७० ॥
स ताञ्छित्त्वा शरैस्तीक्ष्णैर्लक्ष्मणः परवीरहा ॥ आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ७१ ॥

जानीहि । मामिति शेषः ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ तत इति ॥ सायकं चापमारोप्य बाणं धनुषि संधायेत्यर्थः । संक्षिपन्निव बाणवेगेनान्तरावस्थितमाकाशं ग्रसन्निवेत्यर्थः ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ॥ ॥

॥ ७२ ॥ पूर्णायतेति ॥ पूर्णायतेन पूर्णाकृष्टेन । विसृष्टेन क्षिप्तेन । नतपर्वणा निलीनपर्वणा । ऋजुनेति यावत् ॥७३ ॥ स इति ॥ अक्तः लिप्तः ॥ ७४ ॥ राक्षस इति ॥ त्रिपुरगोपुरं त्रिपुरद्वारम् ॥७५॥ चिन्तयामासेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ विमृश्य करणीयं निर्धार्य। बाणनिपातेन मे साधु श्लाघनीयो

तमादाय धनुःश्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः ॥ विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च वीर्यवान् ॥ ७२ ॥ पूर्णायतविसृष्टेन शरेण
नतपर्वणा ॥ ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान् ॥ ७३ ॥ स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः ॥
ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाचले ॥ ७४ ॥ राक्षसः प्रचकम्पे च लक्ष्मणेषुप्रपीडितः ॥ रुद्रबाणहतं घोरं यथा
त्रिपुरगोपुरम् ॥ ७५ ॥ चिन्तयामास चाश्वास्य विमृश्य च महाबलः ॥ साधु बाणनिपातेन श्लाघनीयोसि मे रिपुः
॥ ७६ ॥ विधायैवं विनम्यास्यं नियम्य च भुजावुभौ ॥ स रथोपस्थमास्थाय रथे च प्रचचार ह ॥७७॥ एकं त्रीन्पञ्च
सप्तेति सायकान्राक्षसर्षभः ॥ आददे संदधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥ ७८ ॥ ते बाणाः कालसंकाशा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युताः
॥ हेमपुङ्खा रविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवाम्बरम् ॥ ७९ ॥ ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टान् शरौघान्राघवानुजः ॥ असंभ्रान्तः
प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥ ८० ॥ तान् शरान् युधि संप्रेक्ष्य निकृत्तान् रावणात्मजः ॥ चुकोप त्रिदशेन्द्रारिर्जग्राह
निशितं शरम् ॥ ८१ ॥ स संधाय महातेजास्तं बाणं सहसोत्सृजत् ॥ ततः सौमित्रिमायान्तमाजघान
स्तनान्तरे ॥ ८२ ॥ अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि ॥ सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदं मत्त इव द्विपः ॥ ८३ ॥
स चकार तदात्मानं विशल्यं सहसा विभुः ॥ जग्राह च शरं तीक्ष्णमस्त्रेणापि च संदधे ॥ ८४ ॥ आग्नेयेन तदास्त्रेण
योजयामास सायकम् ॥ स जज्वाल तदा बाणो धनुष्यस्य महात्मनः ॥ ८५ ॥ ॥ ॥ ॥

रिपुरसीति । एवं लक्ष्मणम् विधाय अभिधाय । आस्यं विनम्य भुजौ नियम्य वशे स्थापयित्वा । रथोपस्थमास्थाय रथेन प्रचचार हेति संवन्धः ॥७६ ॥ ॥ ७७ ॥ एकमिति ॥ इति उक्तप्रकारेण ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ स चकारेति ॥ अस्त्रेण अस्त्रमन्त्रेण । संदधे योजयामास ॥ ८४ ॥ आग्नेयेनेत्यादि ॥ पूर्वोक्तस्यैव विवरणम् ॥ ८५ ॥ ॥ ॥ ॥

अतिकायोपीति ॥ समादधे अनुसंदधे ॥ ८६ ॥ तदिति ॥ आहितं संहितम् ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ताविति ॥ भस्मकृतौ भस्मतया कृतौ ॥ ९० ॥

अतिकायोपि तेजस्वी सौरमस्त्रं समादधे ॥ तेन बाणं भुजङ्गाभं हेमपुङ्खमयोजयत् ॥ ८६ ॥ तदस्त्रं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम् ॥ अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥ ८७ ॥ आग्नेयेनाभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः ॥ उत्ससर्ज तदा बाणं दीप्तं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥८८॥ तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ तेजसा संप्रदीप्ताग्रौ क्रुद्धाविव भुजङ्गमौ ॥ ८९ ॥ तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ॥ निरर्चिषौ भस्मकृतौ न भ्राजेते शरोत्तमौ ॥ ९० ॥ ततोतिकायः संक्रुद्धस्त्वस्त्रमैषीकमुत्सृजत् ॥ तत्प्रचिच्छेद सौमित्रिरस्त्रेणैन्द्रेण वीर्यवान् ॥ ९१ ॥ ऐषीकं निहतं दृष्ट्वा रुषितो रावणात्मजः ॥ याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् ॥ ९२ ॥ ततस्तदस्त्रं चिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ॥ वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥ ९३ ॥ अथैनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदः ॥ अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो लक्ष्मणो रावणात्मजम् ॥ ९४ ॥ तेतिकायं समासाद्य कवचे वज्रभूषिते ॥ भग्नाग्रशल्याः सहसा पेतुर्बाणा महीतले ॥ ९५ ॥ तान् मोघानभिसंप्रेक्ष्य लक्ष्मणः परवीरहा ॥ अभ्यवर्षन्महेषूणां सहस्रेण महायशाः ॥ ९६ ॥ स वृष्यमाणो बाणौघैरतिकायो महाबलः ॥ अवध्यकवचः संख्ये राक्षसो नैव विव्यथे ॥ (शरं चाशीविषाकारं लक्ष्मणाय व्यपासृजत् ॥ स तेन विद्धः सौमित्रिर्मर्मदेशे शरेण ह ॥ मुहूर्तमात्रं निःसंज्ञो ह्यभवच्छत्रुतापनः ॥ ततः संज्ञामुपालभ्य चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ निजघान हयान् संख्ये सारथिं च महाबलः ॥ ध्वजस्योन्मथनं कृत्वा शरवर्षैररिंदमः ॥ असंभ्रान्तः स सौमित्रिस्तान् शरानभिलक्षितान् ॥ मुमोच लक्ष्मणो बाणान्वधार्थं तस्य रक्षसः ॥) न शशाक रुजं कर्तुं युधि तस्य शरोत्तमः ॥ ९७ ॥ अथैनमभ्युपागम्य वायुर्वाक्यमुवाच ह ॥ ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्यकवचावृतः ॥ ९८ ॥ ॥

॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ९९ ॥ ततस्त्विति ॥ ब्राह्ममस्त्रं ब्रह्मास्त्रमन्त्रम् । नियोज्य जपित्वेति यावत् ॥ १०० ॥ तस्मिन्निति ॥ दिशश्चेत्यादौ तत्रसुरिति विपरिणम्यानुषज्यते

ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा ॥ अवध्य एष ह्यन्येषामस्त्राणां कवची बली ॥ ९९ ॥ ततस्तु वायोर्वचनं निशम्य सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानवीर्यः ॥ समाददे बाणममोघवेगं तद्ब्राह्ममस्त्रं सहसा नियोज्य॥ १०० ॥ तस्मिन्महास्त्रे तु नियुज्यमाने सौमित्रिणा बाणवरे शिताग्रे ॥ दिशश्च चन्द्रार्कमहाग्रहाश्च नभश्च तत्रास चचाल चोर्वी ॥१०१॥ तं ब्रह्मणोस्त्रेण नियोज्य चापे शरं सुपुङ्खं यमदूतकल्पम् ॥ सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥ १०२ ॥ तं लक्ष्मणोत्सृष्टममोघवेगं समापतन्तं ज्वलनप्रकाशम् ॥ सुवर्णवज्रोत्तमचित्रपुङ्खं तदातिकायः समरे ददर्श ॥ १०३ ॥ तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो जघान बाणैर्निशितैरनेकैः ॥ स सायकस्तस्य सुपर्णवेगस्तदातिकायस्य जगाम पार्श्वम् ॥ १०४ ॥ तमागतं प्रेक्ष्य तदातिकायो बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् ॥ जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः शूलैर्हुलैश्चात्यविपन्नचेताः ॥ १०५ ॥ तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि मोघानि कृत्वा स शरोग्निदीप्तः ॥ प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं ततोतिकायस्य शिरो जहार ॥ १०६ ॥ तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रपीडितम् ॥ पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥ १०७ ॥ तं तु भूमौ निपतितं दृष्ट्वा विक्षिप्तभूषणम् ॥ बभूवुर्व्यथिताः सर्वे हतशेषा निशाचराः ॥ १०८ ॥ ते विषण्णमुखा दीनाः प्रहारजनितश्रमाः ॥ विनेदुरुच्चैर्बहवः सहसा विस्वरैः स्वरैः ॥१०९॥ ततस्ते त्वरितं याता निरपेक्षा निशाचराः ॥ पुरीमभिमुखा भीता द्रवन्तो नायके हते॥११०॥

॥१०१॥ तमिति ॥ नियोज्य जपित्वा । तस्य यमदूतकल्पमित्यन्वयः ॥१०२॥ १०३ ॥ १०४ ॥ तमागतमिति ॥ हुलैः द्विफलपत्राग्रायुधविशेषैः । हुलं द्विफलपत्राग्रमिति वैजयन्ती ॥१०५॥१०६॥१०७॥१०८॥ त इति ॥ विस्वरैः विस्वररूपैः ॥ १०९ ॥ तत इति ॥ निरपेक्षाः युद्धानपेक्षाः ॥ ११० ॥

प्रहर्षेति ॥ प्रबुद्धेत्यत्र प्रसन्नत्वे तात्पर्यम् । इष्टस्य जयस्य भागः प्राप्तिः सोऽस्यास्तीतीष्टभागी तम् ॥ १११ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरा-
मायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ॥

प्रहर्षयुक्ता बहवस्तु वानरा प्रबुद्धपद्मप्रतिमाननास्तदा ॥ अपूजयन् लक्ष्मणमिष्टभागिनं हते रिपौ भीम-
बले दुरासदे ॥ १११ ॥ (अतिबलमतिकायमभ्रकल्पं युधि विनिपात्य स लक्ष्मणः प्रहृष्टः ॥ त्वरितमथ
तदा स रामपार्श्वं कपिनिवहैश्च सुपूजितो जगाम ॥) इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥
अतिकायं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महौजसा ॥ उद्वेगमगमद्राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ धूम्राक्षः परमा-
मर्षी धन्वी शस्त्रभृतां वरः ॥ अकम्पनः प्रहस्तश्च कुम्भकर्णस्तथैव च ॥ २ ॥ एते महाबला वीरा राक्षसा
युद्धकाङ्क्षिणः ॥ जेतारः परसैन्यानां परैर्नित्यापराजिताः ॥ ३ ॥ निहतास्ते महावीर्या रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥
राक्षसाः सुमहाकाया नानाशस्त्रविशारदाः ॥ अन्ये च बहवः शूरा महात्मानो निपातिताः ॥ ४ ॥ प्रख्या-
तबलवीर्येण पुत्रेणेन्द्रजिता मम ॥ यौ हि तौ भ्रातरौ वीरौ बद्धौ दत्तवरैः शरैः ॥ ५ ॥ यन्न शक्यं सुरैः सर्वै-
रसुरैर्वा महाबलैः ॥ मोक्तुं तद्बन्धनं घोरं यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ६ ॥ तन्न जाने प्रभावैर्वा मायया मोहनेन
वा ॥ शरबन्धाद्विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥ ये योधा निर्गताः शूरा राक्षसा मम शासनात् ॥
ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहाबलैः ॥ ८ ॥ ॥ ॥

अथ रावणचिन्ता—अतिकायमित्यादि ॥१॥२॥३॥४॥ प्रख्यातेत्यादिश्लोकत्रयमेकं वाक्यम् ॥ वीरौ यौ भ्रातरौ खरदूषणादिवधेन प्रसिद्धौ तावपि
बद्धौ । तदेव बन्धनं वर्णयति—यदिति ॥ यद्बन्धनं सुरादिभिः मोक्तुं मोचयितुम् अशक्यं तद्बन्धनं घोरम् । भ्रातरौ तौ शरबन्धाद्विमुक्ताविति यत् तत्प्र-
भावादिषु केन वा जातं न जान इत्यन्वयः। प्रभावः सामर्थ्यम् । माया व्यामोहकारिणी विद्या । मोहनम् औषधादिकम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

॥९॥ अहो न्वित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ पिहितद्वारतोरणा द्वारम् अन्तर्द्वारम् तोरणं बहिर्द्वारम् ॥ १० ॥११॥ एवं रामप्रभावं सप्रपञ्चमुक्त्वा सैन्यं प्रति पुरीरक्षणं नियमयति—अप्रमत्तैरित्यादिना ॥ गुप्तैः स्वयं कृतरक्षणैः । गुल्मैरिति वा पाठः ॥१२॥ अशोकेति ॥ यत्र सीता अभिरक्ष्यते तत्र अशोकवनिकायाम् । निष्कामः निर्गमः प्रवेशो वा । नः अस्माभिः ज्ञातव्यः । मदनुज्ञां विना न कोपि जनो निर्गमयितव्यो नापि प्रवेष्टव्य इत्यर्थः ॥१३॥ यत्र

तं न पश्याम्यहं युद्धे योद्धं रामं सलक्ष्मणम् ॥ शासयेत्सबलं वीरं ससुग्रीवविभीषणम् ॥ ९ ॥ अहो नु बलवान् रामो महदस्त्रबलं च वै ॥ यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ॥ १० ॥ तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ तद्भयाद्धि पुरी लङ्का पिहितद्वारतोरणा ॥ ११॥ अप्रमत्तैश्च सर्वत्र गुप्तै रक्ष्या पुरी त्वियम् ॥१२॥ अशोकवनिकायां च यत्र सीताभिरक्ष्यते ॥ निष्क्रामो वा प्रवेशो वा ज्ञातव्यः सर्वथैव नः॥१३॥ यत्र यत्र भवेद्गुल्मस्तत्र तत्र पुनः पुनः॥सर्वतश्चापि तिष्ठध्वं स्वैः स्वैः परिवृता बलैः ॥१४॥द्रष्टव्यं च पदं तेषां वानराणां निशाचराः॥ प्रदोषे वार्धरात्रे वा प्रत्यूषे वापि सर्वतः ॥१५॥ नावज्ञा तत्र कर्तव्या वानरेषु कदाचन ॥ द्विषतां बलमुद्युक्तमापतत् किं स्थितं सदा ॥१६॥ ततस्ते राक्षसाः सर्वे श्रुत्वा लङ्काधिपस्य तत् ॥ वचनं सर्वमातिष्ठन् यथावत्तु महाबलाः ॥१७॥ स तान् सर्वान् समादिश्य रावणो राक्षसाधिपः ॥ मन्युशल्यं वहन् दीनः प्रविवेश स्वमालयम् ॥ १८ ॥ ततः स संदीपितकोपवह्निर्निशाचराणामधिपो महाबलः ॥ तदेव पुत्रव्यसनं विचिन्तयन् मुहुर्मुहुश्चैव तदा व्यनिश्वसत् ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

यत्रेति॥ गुल्मः सेनासन्निवेशः॥१४॥ द्रष्टव्यमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ पदं व्यवसितम् । दर्शनप्रकारमाह—द्विषतामिति । द्विषतां बलं स्थितं किम् । उद्युक्तम् उद्यतं किम् । आपतन्तम् । लिङ्गादिव्यत्यय आर्षः । आपतत् किमिति सदा द्रष्टव्यमित्यर्थः । आपतत् किमिति पाठः सुशोभनः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने यु० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

अथ ब्रह्मास्त्रबन्धस्त्रिसप्ततितमे–ततो हतानित्यादि ॥ ❋ रामानुजीयम् ❋ अत्र देवान्तकादित्रिशिरोतिकायान् हतान् त्वरितं शशंसुः । घोरं पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च विचिन्त्य विपुलं प्रदध्याविति चाभिधानात् । पूर्वं रावणेन अतिकायवध एव श्रुत इत्यवगम्यते । यद्वा पूर्वोक्तानुवादः ॥ १ ॥ पूर्वं कु-

ततो हतान् राक्षसपुङ्गवांस्तान् देवान्तकादित्रिशिरोतिकायान् ॥ रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टास्ते रावणाय त्वरितं शशंसुः ॥ १ ॥ ततो हतांस्तान् सहसा निशम्य राजा मुमोहाश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च घोरं विचिन्त्य राजा विपुलं प्रदध्यौ ॥ २ ॥ ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं शोकार्णवे संपरिपुप्लुवानम् ॥ रथर्षभो राक्षसराजसूनुस्तमिन्द्रजिद्वाक्यमिदं बभाषे ॥ ३ ॥ न तात मोहं प्रतिगन्तुमर्हसि यत्रेन्द्रजिज्जीवति राक्षसेन्द्र ॥ नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित् प्राणान् समर्थः समरेभिपातुम् ॥ ४ ॥ पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ॥ गतायुषं भूमितले शयानं शितैः शरैराचितसर्वगात्रम् ॥ ५ ॥ इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ॥ अद्यैव रामं सह लक्ष्मणेन सन्तर्पयिष्यामि शरैरमोघैः ॥ ६ ॥ अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुमित्रसाध्याश्विवैश्वानरचन्द्रसूर्याः ॥ द्रक्ष्यन्तु मे विक्रममप्रमेयं विष्णोरिवोग्रं बलियज्ञवाटे ॥ ७ ॥ स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रुरापृच्छ्य राजानमदीनसत्त्वः ॥ समारुरोहानिलतुल्ययोगं रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥ ८ ॥

म्भकर्णादिवधः सामान्येन श्रुतः सम्प्रत्याप्तैः सविशेषं श्रुत इत्याह–तत इति ॥ पूर्वोक्तसर्वानुवादो वा ॥ २ ॥ तत इति ॥ संपरिपुप्लुवानम् । लटः शानजादेशः ॥ ३ ॥ न तातेति ॥ यत्र यदा । इन्द्रारिः इन्द्रजित् ॥ ४ ॥ ५ ॥ इमामिति ॥ पौरुषदैवयुक्तां पुरुषबलदैवबलयुक्ताम् । सन्तर्पयिष्यामि पूरयिष्यामि ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ स इति ॥ खरश्रेष्ठसमाधियुक्तं खरश्रेष्ठसंबन्धयुक्तम् । खरश्रेष्ठैः समाधिना समाधानेन च युक्तमिति वा ॥ ८ ॥

तमिति ॥ हरिरथः सूर्यरथः । यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु । शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु, इत्यमरः । युद्धमिति । कर्तव्यमिति शेषः ॥ ९ ॥ तं प्रस्थितमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥१३॥ अवीज्यतेति ॥ हैमैः हेमदण्डैः । हेमविभूषितैः हेमशलाकायुक्तैः ॥

तमास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम् ॥ जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिन्दमः ॥ ९ ॥ तं प्रस्थितं महात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ॥ संहर्षमाणा बहवो धनुःप्रवरपाणयः ॥ १० ॥ गजस्कन्धगताः केचित् केचित् प्रवरवाजिभिः ॥ (व्याघ्रवृश्चिकमार्जारैः खरोष्ट्रैश्च भुजङ्गमैः ॥ वराहश्वापदैः सिंहैर्जम्बुकैः पर्वतोपमैः ॥ शशहंसमयूरैश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥) प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधराः ॥ ११ ॥ स शङ्खनिनदैः पूर्णैर्भेरीणां चापि निस्वनैः ॥ जगाम त्रिदशेन्द्रारिः स्तूयमानो निशाचरैः ॥१२॥ स शङ्खशशिवर्णेन छत्रेण रिपुसूदनः ॥ रराज प्रतिपूर्णेन नभश्चन्द्रमसा यथा ॥१३॥ अवीज्यत ततो वीरो हैमैर्हैमविभूषितैः ॥ चारुचामरमुख्यैश्च मुख्यः सर्वधनुष्मताम्॥ (स तु दृष्ट्वा विनिर्यान्तं बलेन महता वृतम् ॥ राक्षसाधिपतिः श्रीमान् रावणः पुत्रमब्रवीत् ॥ त्वमप्रतिरथः पुत्र त्वया वै वासवो जितः ॥ किं पुनर्मानुषं धृष्यं निहनिष्यसि राघवम् ॥ तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रत्यगृह्णान्महाशिषः ॥) ॥१४॥ ततस्त्विन्द्रजिता लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा॥ रराजाप्रतिवीरेण द्यौरिवार्केण भास्वता ॥१५॥ स संप्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिन्दमः ॥ स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः॥१६॥ ततस्तु हुतभोक्तारं हुतभुक्सदृशप्रभः ॥ जुहाव राक्षसश्रेष्ठो मन्त्रवद्विधिवत्तदा ॥ १७॥ स हविर्लाजसंस्कारैर्माल्यगन्धपुरस्कृतैः ॥ जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्॥१८॥ शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोथ विभीतकाः ॥लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥१९॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ स सम्प्राप्येति ॥ रथं प्रति रथसिद्धिमुद्दिश्य ॥ १६ ॥ ततस्त्विति ॥ विधिवत् क्रमवत् ॥ १७ ॥ स इति ॥ हविर्लाजसंस्कारैः संस्कृतहविर्लाजैः ॥ १८ ॥ शस्त्राणीति ॥ शस्त्राणि आयुधानि । शरपत्राणि काशपत्रस्थानीयानि । तानि परिस्तरणान्यासन्नित्यर्थः । शरमयं बर्हिस्तृणातीत्य-

भिचारे काशश्चोदितः । अत्र त्वभिचारविशेषे तत्स्थाने शस्त्राणि कृतानीति बोध्यम् । विभीतकाः कलिद्रुमविकाराः । वैभीतक इध्म इति श्रुतेः । वासांसि स्वधार्याणि । यद्वा शस्त्राणि तोमरादीनि शरपत्राणि च । बर्हींष्यासन्निति शेषः । शरपत्रैः सतोमरैरित्यनुवादात् । कार्ष्णायसं स्रुवम् । कृतमिति शेषः ॥ १९ ॥ स तत्रेति ॥ तत्र युद्धभूमौ । आस्तीर्य परिस्तीर्य ॥२०॥ सकृदेवेति ॥ सकृत् समिद्धस्य एकदा समिद्भिर्ज्वलितस्य । लिङ्गानि उक्तसकृ-

स तत्राग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः ॥ छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥ २० ॥ सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ॥ बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं यान्यदर्शयन् ॥ २१ ॥ प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनभूषणः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमास्थितः ॥ २२ ॥ सोस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममिन्द्ररिपुस्तदा ॥ धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् ॥ २३ ॥ तस्मिन्नाहूयमानेस्त्रे हूयमाने च पावके ॥ सार्धं ग्रहेन्दुनक्षत्रैर्वितत्रास नभःस्थलम्॥ २४ ॥ स पावकं पावकदीप्ततेजा हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ॥ सचापबाणासिरथाश्वसूतः खेन्तर्दधेत्मानमचिन्त्यरूपः ॥ २५ ॥ ततो हयरथाकीर्णं पताकाध्वजशोभितम् ॥ निर्ययौ राक्षसबलं नर्दमानं युयुत्सया ॥ २६ ॥ ते शरैर्बहुभिश्चित्रैस्तीक्ष्णवेगैरलंकृतैः ॥ तोमरैरङ्कुशैश्चापि वानरान् जघ्नुराहवे ॥ २७ ॥ रावणिस्तु ततः क्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य निशाचरान् ॥ हृष्टा भवन्तो युद्ध्यन्तु वानराणां जिघांसया ॥ २८ ॥

त्समिद्धत्वविधूमत्वमहार्चिष्ट्वानि । विजयं यान्यदर्शयन् । पूर्वमिति शेषः ॥२१॥ प्रदक्षिणेति ॥ प्रदक्षिण आवर्तो भ्रमिर्यासां ताः शिखा यस्येति विग्रहः । स्वयमास्थितः स्वयमास्थावान् । स्वयमुत्थित इति पाठे पुरुषरूपेणोत्थितः इत्यर्थः ॥ २२ ॥ स इति ॥ आहारयामास आजुहाव । अभ्यमन्त्रयत् अभिमन्त्रितवान् ॥ २३ ॥ तस्मिन्निति ॥ वितत्रास चचाल ॥ २४ ॥ स इति ॥ आत्मानम् अन्तर्दधे अन्तर्धापयामास । अन्तर्भावितण्यर्थोयम् । खेन्तर्दधेत्मानमित्यत्र आर्षं पूर्वरूपत्वम् । अचिन्त्यरूपः अचिन्त्यमन्त्रशक्तिः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ रावणिस्त्विति ॥ उवाचेति शेषः ॥ २८ ॥

तत इति ॥ ततः तस्मात् रावणिवचनात् । द्वितीयस्ततः शब्दः पश्चाच्छब्दार्थः ॥ २९ ॥ स त्विति ॥ नालीकः विशालाग्रशरः । रक्षोभिः संवृतः रक्षोगणमध्यत उपरिस्थित इत्यर्थः । अन्यथा खेन्तर्दधे इति पूर्वोक्तं विरुध्येत । विचकर्त हिंसितवान् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ ॥ रक्षोभिः सहित इति

ततस्ते राक्षसाः सर्वे नर्दन्तो जयकाङ्क्षिणः॥ अभ्यवर्षंस्ततो घोरान् वानरान् शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥ स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि ॥ रक्षोभिः संवृतः संख्ये वानरान्विचकर्त ह ॥ ३० ॥ ते वध्यमानाः समरे वानराः पादपायुधाः॥ अभ्यद्रवन्त सहिता रावणिं रणकर्कशम् ॥ ३१ ॥ इन्द्रजित्तु ततः क्रुद्धो महातेजा महाबलः ॥ वानराणां शरीराणि व्यधमद्रावणात्मजः ॥ ३२ ॥ शरेणैकेन च हरीन् नव पञ्च च सप्त च ॥ चिच्छेद समरे क्रुद्धो राक्षसान् संप्रहर्षयन् ॥ ३३ ॥ स शरैः सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषितैः ॥ वानरान् समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयः ॥३४॥ ते भिन्नगात्राः समरे वानराः शरपीडिताः॥पेतुर्मथितसङ्कल्पाः सुरैरिव महासुराः ॥३५॥ तं तपन्तमिवादित्यं घोरैर्बाणगभस्तिभिः ॥ अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः संयुगे वानरर्षभाः ॥ ३६ ॥ ततस्तु वानराः सर्वे भिन्नदेहा विचेतसः ॥ व्यथिता विद्रवन्ति स्म रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ३७ ॥ रामस्यार्थे पराक्रम्य वानरास्त्यक्तजीविताः ॥ नर्दन्तस्तेभिवृत्तास्तु समरे सशिलायुधाः ॥ ३८ ॥ ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च शिलाभिश्च प्लवङ्गमाः ॥ अभ्यवर्षन्त समरे रावणिं पर्यवस्थिताः ॥ ३९ ॥ तद्द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ॥ व्यपोहत महातेजा रावणिः समितिञ्जयः ॥४०॥ ततः पावकसंकाशैः शरैराशीविषोपमैः ॥ वानराणामनीकानि बिभेद समरे प्रभुः ॥ ४१ ॥ ॥

वा पाठः ॥ ३० ॥ त इति ॥ रावणिं रावणिमुक्तायुधागमनप्रदेशम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ रावणिं रावणिमुक्तायुधागमनप्रदेशम् । खेन्तर्दधे इत्यभिधानात् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ त इति ॥ मथितसंकल्पाः नाशितमनोरथाः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामस्येति ॥ त्यक्तजीविताः त्यक्तजीवितेच्छाः । अभिवृत्ताः अभिमुखं प्रवृत्ताः । तुरवधारणे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तदिति ॥ व्यपोहत वारयामास ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अष्टादशेत्यादिसार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ दत्तवरैः वरदत्तैः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अन्यानिति ॥ मूर्छितः प्रवृद्धः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ आकुलामिति ॥ परया प्रीत्या हृष्टः उद्धतः ॥ ४७ ॥ पुनरेवेत्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ खड्गादीनि शस्त्राणि । अत्र द्वितीयबलिशब्दो वरदानबलवत्तावाचकः ।

अष्टादश शरैस्तीक्ष्णैः स विद्धा गन्धमादनम् ॥ विव्याध नवभिश्चैव नलं दूरादवस्थितम् ॥ ४२ ॥ सप्तभिस्तु महावीर्यो मैन्दं मर्मविदारणैः ॥ पञ्चभिर्विशिखैश्चैव गजं विव्याध संयुगे ॥ ४३ ॥ जाम्बवन्तं तु दशभिर्नीलं त्रिंशद्भिरेव च ॥ सुग्रीवमृषभं चैव सोङ्गदं द्विविदं तथा ॥ घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ ४४ ॥ अन्यानपि तदा मुख्यान् वानरान् बहुभिः शरैः ॥ अर्दयामास संक्रुद्धः कालाग्निरिव मूर्छितः ॥ ४५ ॥ स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥ वानराणामनीकानि निर्ममन्थ महारणे ॥ ४६ ॥ आकुलां वानरीं सेनां शरजालेन मोहिताम् ॥ हृष्टः स परया प्रीत्या ददर्श क्षतजोक्षिताम् ॥ ४७ ॥ पुनरेव महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥ संसृज्य बाणवर्षं च शस्त्रवर्षं च दारुणम् ॥ ममर्द वानरानीकमिन्द्रजित्त्वरितो बली ॥ ४८ ॥ स्वसैन्यमुत्सृज्य समेत्य तूर्णं महारणे वानरवाहिनीषु ॥ अदृश्यमानः शरजालमुग्रं ववर्ष नीलाम्बुधरो यथाम्बु ॥ ४९ ॥ ते शक्रजिद्बाणविशीर्णदेहा मायाहता विस्वरमुन्नदन्तः ॥ रणे निपेतुर्हरयोऽद्रिकल्पा यथेन्द्रवज्राभिहता नगेन्द्राः ॥ ५० ॥ ते केवलं संददृशुः शिताग्रान् बाणान् रणे वानरवाहिनीषु ॥ मायानिगूढं तु सुरेन्द्रशत्रुं न चावृतं राक्षसमभ्यपश्यन् ॥ ५१ ॥ ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा सर्वा दिशो बाणगणैः शिताग्रैः ॥ प्रच्छादयामास रविप्रकाशैर्विषादयामास च वानरेन्द्रान् ॥ ५२ ॥ स शूलनिस्त्रिंशपरश्वधानि व्याविध्य दीप्तानलसन्निभानि ॥ सविस्फुलिङ्गोज्ज्वलपावकानि ववर्ष तीव्रं प्लवगेन्द्रसैन्ये ॥ ५३ ॥

प्रथमो वीर्यवत्तावाचकः ॥ ४८ ॥ स्वसैन्यमिति ॥ स्वसैन्यं स्वसैन्योपरिभागम् ॥ ४९ ॥ ५० ॥ त इति ॥ मायानिगूढम् अत एव आवृतम् अप्रकाशम् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ततो ज्वलनेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ शरैः तीक्ष्णैरित्यर्थः ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उदीक्षमाणा इति ॥ विविशुरन्योन्यम् अन्योन्योपर्यालम्बनार्थं पेतुरित्यर्थः ॥ ५६ ॥ हनुमन्तामित्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया ॥ केसरिमित्यार्षम् ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ स वा इति ॥ गदाभिरित्येतत् पूर्वोक्तप्रासादीनामुपलक्षणम् ॥ ६१ ॥ स बाणेति ॥ बाणवर्षैः बाणनिरन्तरपातैः । अभिवर्ष्यमाणः अभितः पात्यमानः स रामः । तान् बाणवर्षान् । धारानिपाता-

ततो ज्वलनसंकाशैः शरैर्वानरयूथपाः ॥ ताडिताः शक्रजिद्बाणैः प्रफुल्ला इव किंशुकाः ॥ ५४ ॥ तेन्योन्यमभिसर्पन्तो
निनदन्तश्च विस्वरम् ॥ राक्षसेन्द्रास्त्रनिर्भिन्ना निपेतुर्वानरर्षभाः ॥ ५५ ॥ उदीक्षमाणा गगनं केचिन्नेत्रेषु ताडिताः
॥ शरैर्विविशुरन्योन्यं पेतुश्च जगतीतले ॥ ५६ ॥ हनुमन्तं च सुग्रीवमङ्गदं गन्धमादनम् ॥ जाम्बवन्तं सुषेणं च
वेगदर्शिनमेव च ॥ ५७ ॥ मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गजगोमुखौ ॥ केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम् ॥५८॥
सूर्याननं ज्योतिमुखं तथा दधिमुखं हरिम्॥पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम्॥५९॥प्रासैः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः॥विव्याध हरिशार्दूलान् सर्वांस्तान् राक्षसोत्तमः॥६०॥ स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान् निर्भिद्य बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ववर्ष रामं सह वृष्टिजालैः सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः ॥ ६१ ॥ स बाणवर्षैरभिवर्ष्यमाणो धारानिपातानिव तानचिन्त्य ॥ समीक्षमाणः परमाद्भुतश्री रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ॥ ६२ ॥ असौ पुनर्लक्ष्मण
राक्षसेन्द्रो ब्रह्मास्त्रमाश्रित्य सुरेन्द्रशत्रुः ॥ निपातयित्वा हरिसैन्यमुग्रमस्मान् शरैरर्दयति प्रसक्तः ॥ ६३ ॥ स्वयम्भुवा दत्तवरो महात्मा खमास्थितोन्तर्हितभीमकायः॥कथं नु शक्यो युधि नष्टदेहो निहन्तुमद्येन्द्रजिदुद्यतास्त्रः ॥६४॥

निव लघूनचिन्त्य । बाणवर्षं तृणीकृत्येत्यर्थः । अत्र हेतुमाह—परमेति । अत्यन्ताश्चर्यकरधैर्यसमृद्धिः सन् लक्ष्मणं समीक्षमाणः स्वस्वभावावलम्बनेन ब्रह्मास्त्रप्रतिक्रियां कर्तुमुद्युक्तमिङ्गितैरभिवीक्षमाणः सन्नित्युवाच ॥ ६२ ॥ असाविति ॥ असौ ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मास्त्रमन्त्रम् आश्रित्य । प्रहरन्निति शेषः॥६३॥ स्वयम्भुवेति ॥ नष्टदेहः अदृष्टदेहः । तत्र हेतुः—अन्तर्हितभीमकाय इति ॥ ६४ ॥ ॥ ॥

तर्हि तत्र प्रतिक्रिया कर्तव्येत्यत्राह-मन्य इति ॥ स्वयम्भूः अचिन्त्यः अचिन्त्यप्रभाव इति मन्ये। तत्र हेतुमाह—यस्येति। एतदस्त्रं यस्य यद्देवताकं यः अस्यास्त्रस्य प्रभवः उत्पत्तिकारणम्। सोचिन्त्यः। तर्ह्यावाभ्याम् किं कर्तव्यमित्यत्राह—बाणेति। धीमन् आपत्सु न चलितव्यमिति ज्ञानिन्॥६५॥ ॥ ६६ ॥ आवामिति ॥ गतरोषहर्षौ मूर्छिताविति यावत्। अमरारिवासं लङ्काम्। रणाग्रलक्ष्मीं विजयलक्ष्मीम्। अग्रपदेन रणमूललक्ष्मीर्न ग्रहीतुं

मन्ये स्वयम्भूर्भगवानचिन्त्यो यस्यैतदस्त्रं प्रभवश्च योस्य ॥ बाणावपातांस्त्वमिहाद्य धीमन् मया सहाऽव्यग्रमनाः सहस्व॥६५॥ प्रच्छादयत्येष हि राक्षसेन्द्रः सर्वा दिशः सायकवृष्टिजालैः॥ एतच्च सर्वं पतिताग्र्यशूरं न भ्राजते वानरराजसैन्यम् ॥ ६६ ॥ आवां तु दृष्ट्वा पतितौ विसंज्ञौ निवृत्तयुद्धौ गतरोषहर्षौ ॥ ध्रुवं प्रवेक्ष्यत्यमरारिवासमसौ समादाय रणाग्रलक्ष्मीम् ॥ ६७ ॥ ततस्तु ताविन्द्रजिदस्त्रजालैर्बभूवतुस्तत्र तथा विशस्तौ ॥ स चापि तौ तत्र विदर्शयित्वा ननाद हर्षाद्युधि राक्षसेन्द्रः ॥ ६८ ॥ स तत्तदा वानरसैन्यमेवं रामं च संख्ये सह लक्ष्मणेन ॥ विषादयित्वा सहसा विवेश पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ ॥

तयोस्तदा सादितयो रणाग्रे मुमोह सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ॥ सुग्रीवलीलाङ्गदजाम्बवन्तो न चापि किंचित्प्रतिपेदिरे ते ॥ १॥ ततो विषण्णं समवेक्ष्य सैन्यं बिभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥ उवाच शाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥ २ ॥ मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो यदार्यपुत्रौ ह्यवशौ विषण्णौ ॥ स्वयम्भुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ यत्सादिताविन्द्रजिदस्त्रजालैः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

शक्येत्युच्यते। एतेन मूलघातः कर्तुं न शक्यत इत्युच्यते ॥ ६७ ॥ ततास्त्विति ॥ विशस्तौ पीडितौ तौ पतितौ विदर्शयित्वा दृष्ट्वा ननाद ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ ॥ ॥

अथ ब्रह्मास्त्रबन्धविमुक्तिश्चतुःसप्ततौ—तयोरित्यादि॥सादितयोः अवसादितयोः। किंचिन्न प्रतिपेदिरे। मूढा बभूवुरित्यर्थः॥१॥२॥ मा भैष्टेति ॥ आर्यपुत्रौ

अवशौ विषण्णाविति यत्। अत्र विषादकालो नास्ति विषादहेतुकालो नास्ति । कुतः । स्वयम्भुवो वाक्यम् उद्वहन्तौ मानयन्तौ इन्द्रजिदस्त्रजालैः सादितौ सादिताविव वर्तमानाविति यत्। तत् ततः । मा भैष्टेत्यर्थः ॥३॥ उक्तमेवार्थं विशदयति–तस्मा इति ॥४॥ ब्राह्ममिति॥ मानयित्वा मुहूर्तमात्रं ब्रह्मास्त्रपरवशः स्थित्वा ॥५॥६॥७॥ भिन्नलाङ्गूलेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम्॥ स्रवद्भिः मूत्रयद्भिः ॥८॥९॥ सुग्रीवमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥

तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत्स्वयम्भुवा ब्राह्मममोघवेगम् ॥ तन्मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ निपातितौ कोत्र विषादकालः
॥ ४ ॥ ब्राह्ममस्त्रं ततो धीमान् मानयित्वा तु मारुतिः ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा हनुमांस्तमथाब्रवीत् ॥ ५ ॥ एत-
स्मिन्निहते सैन्ये वानराणां तरस्विनाम् ॥ यो यो धारयते प्राणांस्तं तमाश्वासयावहै ॥ ६ ॥ तावुभौ युगपद्वीरौ हनु-
मद्राक्षसोत्तमौ ॥ उल्काहस्तौ तदा रात्रौ रणशीर्षे विचेरतुः ॥७॥ भिन्नलाङ्गूलहस्तोरुपादाङ्गुलिशिरोधरैः ॥ स्रवद्भिः
क्षतजं गात्रैः प्रस्रवद्भिस्ततस्ततः ॥ ८ ॥ पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसङ्कुलाम् ॥ शस्त्रैश्च पतितैर्दीप्तैर्ददृशाते वसुन्धराम्
॥९॥ सुग्रीवमङ्गदं नीलं शरभं गन्धमादनम् ॥ गवाक्षं च सुषेणं च वेगदर्शिनमाहुकम् ॥१०॥ मैन्दं नलं ज्योतिमुखं द्वि-
विदं पनसं तथा॥ एतांश्चान्यांस्ततो वीरौ ददृशाते हतान् रणे॥११॥सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम्॥अह्नः
पञ्चमशेषेण वल्लभेन स्वयम्भुवः॥१२॥सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम्॥मार्गते जाम्बवन्तं स हनुमान् सबिभी-
षणः॥१३॥ स्वभावजरया युक्तं वृद्धं शरशतैश्चितम्॥ प्रजापतिसुतं वीरं शाम्यन्तमिव पावकम्॥१४॥ दृष्ट्वा तमुपसंगम्य
पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥ कच्चिदार्य शरैस्तीक्ष्णैः प्राणा न ध्वंसितास्तव ॥ १५ ॥ ॥ ॥

आहुक इति कश्चिद्यूथपः । गवाक्षं च सुषेणं च वेगदर्शिनमाहुकमिति पाठः । हतान् हतप्रायान् । प्रहतानिति वा ॥ १० ॥ ११ ॥ सप्तषष्टिरिति ॥ वानराणां यूथपवानराणामित्यर्थः । सुग्रीवाङ्गदादिभिः सह पाठात्। अह्नः पञ्चमशेषेण पञ्चमभागेन प्रातःसङ्गवमध्याह्नापराह्णसायाह्नसंज्ञाः षण्नाडिकात्मकाः अह्नः पञ्च भागाः सन्ति । तेषु पञ्चमेन सायाह्नसंज्ञेन नाडीषट्केनेत्यर्थः । स्वयम्भुवो वल्लभेन इन्द्रजिता । ब्रह्मास्त्रेण वा ॥१२॥१३॥१४॥१५॥

विभीषणेति ॥ वाक्यं वाक्योपयोगि स्वरम् ॥ १६ ॥ १७ ॥ अञ्जनेति ॥ धारयत इत्यत्र काकुः । किं धारयत इत्यर्थः॥ १८ ॥ श्रुत्वेत्यादिश्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तत इति ॥ मारुतात्मजः हनुमान् । वृद्धं जाम्बवन्तम् उपागम्य । नियमेन श्रोत्रहस्तसंस्पर्शव्यत्य-

बिभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानृक्षपुङ्गवः ॥ कृच्छ्रादभ्युद्गिरन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ नैर्ऋतेन्द्र महावीर्य स्वरेण त्वाभिलक्षये॥ पीड्यमानः शितैर्बाणैर्न त्वां पश्यामि चक्षुषा॥१७॥ अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च नैर्ऋत॥ हनुमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित् ॥ १८॥ श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं बिभीषणः ॥ आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात्पृच्छसि मारुतिम्॥१९॥नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे॥आर्य संदर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते परः॥२०॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान्वाक्यमब्रवीत् ॥ शृणु नैर्ऋतशार्दूल यस्मात्पृच्छामि मारुतिम् ॥२१ ॥ तस्मिन् जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् ॥ हनुमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोपि वयं हताः ॥ २२ ॥ धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि ॥ वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत् ॥२३॥ ततो वृद्धमुपागम्य नियमेनाभ्यवादयत् ॥ गृह्य जाम्बवतः पादौ हनुमान्मारुतात्मजः ॥२४॥ श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं तथापि व्यथितेन्द्रियः॥ पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते स्मर्क्षपुङ्गवः॥२५॥ ततोब्रवीन्महातेजा हनुमन्तं स जाम्बवान् ॥ २६ ॥ आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा ॥ २७ ॥ त्वत्पराक्रमकालोयं नान्यं पश्यामि कंचन ॥ ऋक्षवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय ॥ विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥ ॥ ॥

स्तहस्तत्वादिरूपेण सह । जाम्बवतः पादौ गृह्य गृहीत्वा अभ्यवादयत् । स्वनामोच्चारणपूर्वकं युगपत् पादावगृह्णादित्यर्थः ॥ २४ ॥ श्रुत्वेति ॥ वाक्यं हनुमानहमस्मीत्यभिवादनवाक्यम् । तथा व्यथितेन्द्रियोपि हनुमतो वाक्यं श्रुत्वा ऋक्षपुङ्गवः जाम्बवान् आत्मानं पुनर्जातं मन्यते स्मेति संबन्धः ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ आगच्छेति ॥ विक्रमपर्याप्तः पर्याप्तविक्रमः । विक्रमपूर्ण इति यावत् ॥ २७ ॥ त्वदिति ॥ अन्यं पराक्रमितारम् ॥ २८ ॥ ॥

गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम् ॥ हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनुमन् गन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ ततः काञ्चनमत्युच्चमृषभं पर्वतोत्तमम् ॥ कैलासशिखरं चापि द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ३० ॥ तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम् ॥ सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥ ३१ ॥ तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि सम्भवाः ॥ द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्त्यो दिशो दश ॥ ३२ ॥ मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि ॥ सावर्ण्यकरणीं चैव सन्धानकरणीं तथा ॥ ३३ ॥ ताः सर्वा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज ॥ ३४ ॥ श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमान् हरिपुङ्गवः ॥ आपूर्यत बलोद्धर्षैस्तोयवेगैरिवार्णवः ॥ ३५ ॥ स पर्वततटाग्रस्थः पीडयन् पर्वतोत्तमम् ॥ हनुमान् दृश्यते वीरो द्वितीय इव पर्वतः ॥ ३६ ॥ हरिपादविनिर्भग्नो निषसाद स पर्वतः ॥ न शशाक तदात्मानं सोढुं भृशनिपीडितः ॥३७॥ तस्य पेतुर्नगा भूमौ हरिवेगाच्च जज्वलुः ॥ शृङ्गाणि च व्यशीर्यन्त पीडितस्य हनूमता ॥ ३८॥

गत्वेति ॥ परमं दीर्घम् । उपर्युपरि सागरं सागरस्य समीपोपरि प्रदेशे । "उपर्यध्यधसः सामीप्ये" इति सामीप्ये द्विर्वचनम् । "धिगुपर्यादिषु त्रिषु द्वितीया" इति द्वितीयेति द्वितीया॥२९॥ तत इति ॥ ऋषभम् ऋषभाख्यम् । पर्वतोत्तमं शिखरमित्यर्थः॥३०॥३१॥ तस्येत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ ओषधयः ओषधीः । दीपयन्त्यः दीपयन्तीः । व्यत्ययेन द्वितीयार्थे प्रथमा । मृतं सञ्जीवयतीति मृतसञ्जीवनी । जीवनानन्तरं संचारक्षमतायै विशल्यं करोतीति विशल्यकरणी । विशल्ये कृते त्वचः सन्धानं करोतीति सन्धानकरणी । ततो व्रणकृतवैवर्ण्यं विहाय प्रदेशान्तरसावर्ण्यं करोतीति सावर्ण्यकरणी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ श्रुत्वेति ॥ बलोद्धर्षैः बलोत्कर्षैः । आपूर्यत पूर्णोभूत् ॥ ३५ ॥ स इति ॥ पर्वततटाग्रस्थः त्रिकूटशिखरस्थः । पर्वतोत्तमं त्रिकूटम् ॥ ३६ ॥ हरीति ॥ हरिः हनुमान्॥ ३७ ॥ तस्येति ॥ तस्य त्रिकूटस्य । नगाः वृक्षाः । हरिवेगात् हनुमतो हिमवदुत्तरप्रदेशस्थौषधिपर्वतपर्यन्तगमनोचितशक्त्यास्थानवेगात् । जज्वलुश्च । वेगोद्धर्षजवह्निनेत्यर्थः । पीडितस्य पर्वतस्येति शेषः ॥ ३८ ॥

तस्मिन् संपीडचमाने तु भग्नद्रुमशिलातले ॥ न शेकुर्वानराः स्थातुं घूर्णमाने नगोत्तमे ॥ ३९ ॥ सा घूर्णितमहाद्वारा प्रभग्नगृहगोपुरा ॥ लङ्का त्रासाकुला रात्रौ प्रनृत्तेवाभवत्तदा ॥ ४० ॥ पृथिवीधरसंकाशो निपीड्य धरणीधरम् ॥ पृथिवीं क्षोभयामास सार्णवां मारुतात्मजः ॥ ४१ ॥ आरुरोह तदा तस्माद्धरिर्मलयपर्वतम् ॥ मेरुमन्दरसंकाशं नानाप्रस्रवणाकुलम् ॥ ४२ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं विकासिकमलोत्पलम् ॥ सेवितं देवगन्धर्वैः षष्टियोजनमुछ्रितम् ॥ ४३ ॥ विद्याधरैर्मुनिगणैरप्सरोभिर्निषेवितम् ॥ नानामृगगणाकीर्णं बहुकन्दरशोभितम् ॥ ४४ ॥ सर्वानाकुलयंस्तत्र यक्षगन्धर्वकिन्नरान् ॥ हनुमान् मेघसंकाशो ववृधे मारुतात्मजः ॥ ४५ ॥ पद्भ्यां तु शैलमापीड्य वडवामुखवन्मुखम् ॥ विवृत्योग्रं ननादोच्चैस्त्रासयन्निव राक्षसान् ॥ ४६ ॥ तस्य नानद्यमानस्य श्रुत्वा निनदमद्भुतम् ॥ लङ्कास्था राक्षसाः सर्वे न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ॥ ४७ ॥ नमस्कृत्वाथ रामाय मारुतिर्भीमविक्रमः ॥ राघवार्थे परं कर्म समीहत परन्तपः ॥ ४८ ॥ स पुच्छमुद्यम्य भुजङ्गकल्पं विनम्य पृष्ठं श्रवणे निकुञ्च्य ॥ विवृत्त्य वक्रं वडवामुखाभमापुप्लुवे व्योमनि चण्डवेगः ॥ ४९ ॥

तस्मिन्निति ॥ न शेकुरिति । त्रिकूटतटस्य युद्धरङ्गत्वात् घूर्णमाने कम्पमाने ॥ ३९ ॥ सेति ॥ प्रनृत्तेवाभवत् त्रिकूटाग्रनिर्मितत्वात्तस्याः ॥ ४० ॥ ४१ ॥ आरुरोहेत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ मलयपर्वतमित्यत्र लङ्कामलय उच्यते ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ पद्भ्यामिति ॥ त्रासयन् त्रासनार्थं ननाद । "लक्षणहेत्वोः०" इति शतृप्रत्ययः । स्वागमनपर्यन्तं राक्षसनिर्गमनं मा भूदिति तेषां त्रासनार्थं ननादेति भावः । इवशब्दो वाक्यालंकारे ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ नमस्कृत्वाथ रामायेति ॥ अयं प्रारीप्सितकर्मसमाप्तये सम्यगिष्टदेवतानमस्कारः ॥ ४८ ॥ स पुच्छमिति ॥ पुच्छोद्यमनेनोत्साहातिरेक उक्तः । पृष्ठविनमनेनाकाशगमनानुकूलप्राणवायुनिरोध उक्तः । श्रवणनिकुञ्चनेन बलोद्दीपनम् । मुखव्यादानेनाभिनिवेशः ॥ ४९ ॥

स इति ॥ प्राकृतवानरान् त्रिकूटवननित्यवासिनः । आजहार उज्जहार । अस्यैवानुवादो बाह्विति । बाहूरुवेगोद्धतसंप्रणुन्नाः बाहूर्वोर्वेगेन उद्धताः उन्मूलिताः संप्रणुन्नाः दूरं प्रेरिताः । क्षीणवेगाः क्रमेण क्षीणवेगाः सन्तः ॥ ५० ॥ स ताविति ॥ मेरुं कैलासपार्श्ववर्तिनम् । अस्ति ह्यन्यो हिमवदन्तर्वर्ती मेरुः । यद्वा मेरुं मेरूपलक्षितदिशि स्थितं नगराजं हिमवन्तम् । यद्वा मेरुमुद्दिश्य जगाम । उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगामेत्यर्थः । यद्वा मेरुं मेरुसदृशम् । प्रकर्षन्

स वृक्षषण्डांस्तरसा जहार शैलान् शिलाः प्राकृतवानरांश्च ॥ बाहूरुवेगोद्धतसंप्रणुन्नास्ते क्षीणवेगाः सलिले निपेतुः ॥ ५० ॥ स तौ प्रसार्योरगभोगकल्पौ भुजौ भुजङ्गारिनिकाशवीर्यः ॥ जगाम मेरुं नगराजमग्र्यं दिशः प्रकर्षन्निव वायुसूनुः ॥ ५१ ॥ स सागरं घूर्णितवीचिमालं तदा भृशं भ्रामितसर्वसत्त्वम् ॥ समीक्षमाणः सहसा जगाम चक्रं यथा विष्णुकराग्रमुक्तम् ॥ ५२ ॥ स पर्वतान् वृक्षगणान् सरांसि नदीस्तटाकानि पुरोत्तमानि ॥ स्फीतान् जनान्तानपि संप्रवीक्ष्य जगाम वेगात्पितृतुल्यवेगः ॥ ५३ ॥ आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतक्लमः ॥ हनुमांस्त्वरितो वीरः पितृतुल्यपराक्रमः ॥ ५४ ॥ जवेन महता युक्तो मारुतिर्मारुतो यथा ॥ जगाम हरिशार्दूलो दिशः शब्देन पूरयन् ॥ ५५ ॥ स्मरन्जाम्बवतो वाक्यं मारुतिर्वातरंहसा ॥ ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः ॥ ५६ ॥ नानाप्रस्रवणोपेतं बहुकन्दरनिर्झरम् ॥ श्वेताभ्रचयसंकाशैः शिखरैश्चारुदर्शनैः ॥ शोभितं विविधैर्वृक्षैरगमत्पर्वतोत्तमम् ॥ ५७ ॥ स तं समासाद्य महानगेन्द्रमतिप्रवृद्धोत्तमघोरशृङ्गम् ॥ ददर्श पुण्यानि महाश्रमाणि सुरर्षिसङ्घोत्तमसेवितानि ॥ ५८ ॥

कम्पयन् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ स पर्वतानिति ॥ जनान्तान् जनपदान् ॥ ५३ ॥ आदित्यपथमिति ॥ पूर्वमुपर्युपरिसागरमित्युक्त्या आदित्यपथमाकाशम् ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ स्मरन् जाम्बवत इति ॥ जाम्बवद्वाक्यस्मरणम् औषधिपर्वतमतीत्य वेगातिशयेनान्यत्र गमननिवृत्त्यर्थम् । वातरंहसा । उपलक्षित इति शेषः ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

दृष्टानामाश्रमाणां नामान्यनुक्रामति–स ब्रह्मकोशमित्यादिना ॥ ब्रह्मणश्चतुर्मुखस्य कोशो गृहम् । कोशोऽस्त्री कुड्मलेऽर्थौघे गुह्यदेशेण्डशीर्षयोः । गृहे देहे पुस्तकोघ पेट्यामासिपिधानके, इति रत्नमाला । रजतालयं कैलासं । शक्रस्य इन्द्रस्य । स्थानम् आश्रमस्थानम् । रुद्रशराः प्रमोक्ष्यन्ते लीलार्थं यस्मिन् तद्रुद्रशरप्रमोक्षं स्थानम् । हयाननं हयग्रीवाराधनस्थानम् । ब्रह्मशिरः रुद्रनिकृत्तब्रह्मशिरःप्रक्षेपस्थानम् । वैवस्वतकिङ्करान् विवस्वत्संबन्धिकिङ्करान् । ग्रामण्यादीन् मासान्तपरिचारकान् विश्रमार्थमत्र स्थितान् ॥ ५९ ॥ वज्रालयमिति ॥ इन्द्राय ब्रह्मणा वज्रप्रदानस्थानम् । सूर्यप्रभमिति वैश्रवणालयविशेषणम् । सूर्यनिबन्धनं छायादेवीप्रीतये विश्वकर्मणा शाणारोपणाय सूर्यनिबन्धनस्थानम् । ब्रह्मासनं देवगणसंदर्शनाय कृतं ब्रह्मणः सिंहासनम् । ब्रह्मणामृषीणामासनं स्थानं वा । शङ्करकार्मुकं तत्स्थानमित्यर्थः । नाभिं पातालप्रवेशरन्ध्रम् ॥ ६० ॥ ब्रह्मादिस्थानेषु रजतालयमिति परिगणितमपि जाम्ववदुपदिष्टप्रकारेण दर्शनाय पुनराह- कैलासमिति ॥ हिमवच्छिला नाम कैलासपार्श्वे कश्चिच्छिलाविशेषः । ऋषभम् ऋषभाख्यमौषधिपर्वतम् । काञ्चनशैलं पूर्वं मेरुमित्युक्तम् । संदीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तम् संदीप्ताभिः रात्रौ ज्वलन्तीभिः सर्वाभिः ओषधीभिः तृणज्योतिर्भिः संप्रदीप्तं सम्यक्प्रकाशमानम् । सर्वौषधिपर्वतेन्द्रं मृतसञ्जीवन्यादिसर्वौषधियुक्तपर्वतेन्द्रं ददर्श ॥ ६१ ॥ स इति ॥ वासवदूतः वायुः वासवादेशेन मेघप्रेरकत्वात् । अत एवाभिषेकसमये इन्द्रेण प्रेरितो हारं रामायोपाहरत् । विचयम् अन्वेषणम् ॥ ६२ ॥ स इति ॥ अतीत्य अतीत्यापीत्यर्थः । अनेन श्रमरहितत्वमुक्तम् ॥ ६३ ॥

स ब्रह्मकोशं रजतालयं च शक्रालयं रुद्रशरप्रमोक्षम् ॥ हयाननं ब्रह्मशिरश्च दीप्तं ददर्श वैवस्वतकिङ्करांश्च
॥ ५९ ॥ वज्रालयं वैश्रवणालयं च सूर्यप्रभं सूर्यनिबन्धनं च ॥ ब्रह्मासनं शङ्करकार्मुकं च ददर्श नाभिं च
वसुन्धरायाः ॥ ६० ॥ कैलासमग्र्यं हिमवच्छिलां च तथर्षभं काञ्चनशैलमग्र्यम् ॥ संदीप्तसर्वौषधिसंप्र-
दीप्तं ददर्श सर्वौषधिपर्वतेन्द्रम् ॥ ६१ ॥ स तं समीक्ष्यानलरश्मिदीप्तं विसिष्मिये वासवदूतसूनुः ॥ आ-
वृत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं तत्रौषधीनां विचयं चकार ॥ ६२ ॥ स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपिः ॥
दिव्यौषधिधरं शैलं व्यचरन्मारुतात्मजः ॥ ६३ ॥ ॥ ॥ ॥

महौषध्य इति ॥ ततः तस्य हनुमतः अदर्शनम् ॥६४॥ स ता इति ॥ ताः औषधीः ॥ ६५ ॥ किमिति ॥ राघवे कृतानुकम्पो नासीति यत् एतत् एवं सुविनिश्चितं यदि तर्हि आत्मानमथो विकीर्णं पश्येति संबन्धः ॥ ६६ ॥ एतच्छ्लोकानन्तरमित्युक्त्वेत्यध्याहार्यम् । स इति ॥ सनागं सगजम्।

महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन् पर्वतसत्तमे ॥ विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ॥ ६४ ॥ स ता महात्मा हनुमानपश्यन् चुकोप कोपाच्च भृशं ननाद॥ अमृष्यमाणोऽग्निनिकाशचक्षुर्महीधरेन्द्रं तमुवाच वाक्यम् ॥ ६५ ॥ किमतदेवं सुविनिश्चितं ते यद्राघवेनासि कृतानुकम्पः ॥ पश्याद्य मद्बाहुबलाभिभूतो विकीर्णमात्मानमथो नगेन्द्र ॥ ६६ ॥स तस्य शृङ्गं सनगं सनागं सकाञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम्॥ विकीर्णकूटज्वलिताग्रसानुं प्रगृह्य वेगात्सहसोन्ममाथ॥६७॥स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात वित्रास्य लोकान् ससुरासुरेन्द्रान्॥संस्तूयमानः खचरैरनेकैर्जगाम वेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥६८॥ स भास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तं भास्कराभं शिखरं प्रगृह्य ॥ बभौ तदा भास्करसन्निकाशो रवेः समीपे प्रतिभास्कराभः ॥६९॥ स तेन शैलेन भृशं रराज शैलोपमो गन्धवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेण सपावकेन चक्रेण खे विष्णुरिवार्पितेन ॥७०॥ तं वानराः प्रेक्ष्य विनेदुरुच्चैः स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद ॥ तेषां समुद्घुष्टरवं निशम्य लङ्कालया भीमतरं विनेदुः ॥७१॥ ततो महात्मा निपपात तस्मिन् शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये॥हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद्य बिभीषणं तत्र स सस्वजे च॥ ७२ ॥

उन्ममाथ उत्पाटयामास ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ स इति ॥ भास्कराध्वानम् अन्तरिक्षम् । भास्कराभशिखरग्रहणात् स्वयं भास्करसन्निकाशत्वाच्च सूर्यसमीपस्थः प्रतिसूर्य इव बभावित्यर्थः ॥ ६९ ॥ स तेनेति ॥ सहस्रधारेण । अर्पितेन हस्तेऽर्पितेन । सपावकेन अग्निज्वालावता । चक्रेण विष्णुरिव रराज ॥ ७० ॥ तं वानरा इत्यनेन दूरादेव गन्धाघ्राणेन सर्वे जीविता इति गम्यते ॥ ७१ ॥ तत इति ॥ शैलोत्तमे त्रिकूटशिखरे ॥ ७२ ॥

॥७३॥सर्वे इति ॥विशल्यकरण्या विशल्याः । सन्धानकरण्या विरुजः । ये पूर्वं निहतास्तेपि सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रबुद्धाः । अनेन सावर्ण्यसिद्धिरप्युक्ता ॥ ७४ ॥ तर्हि निहता राक्षसाः किं न प्रबुद्धा इत्यत्राह–यदाप्रभृतीति ॥ मानार्थं हतानां राक्षसानाम् इयत्ताया अपरिज्ञानार्थम् । मृतशरीरसंख्याप्रतिपत्त्यर्थं वा । पूर्वयोजनायामर्थशब्दो निवृत्तिपरः । अर्थोभिधेयरैवस्तु प्रयोजननिवृत्तिष्वित्यमरः । परैः परिच्छिद्य ज्ञानं मा भूदित्येवमर्थमिति भावः । हताहताः मुमूर्षावस्थाः। किं पुनर्मृता इति भावः। " क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् " इति कर्मधारयः । यद्वा यदा यदा ये ये हताः तदा तदा

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥ ७३ ॥ सर्वे विशल्या विरुजः क्षणेन हरिप्रवीरा निहताश्च ये स्युः ॥ गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रबुद्धाः ॥७४॥ यदाप्रभृति लङ्कायां युध्यन्ते कपिराक्षसाः॥ तदाप्रभृति मानार्थमाज्ञया रावणस्य च ॥७५॥ ये हन्यन्ते रणे तत्र राक्षसा कपिकुञ्जरैः॥ हताहतास्तु क्षिप्यन्ते सर्व एव तु सागरे ॥ ७६ ॥ ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु तमोषधीशैलमुदग्रवीर्यः ॥ निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ७७ ॥

इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

ततोब्रवीन्महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ॥ अर्थ्यं विज्ञापयंश्चापि हनुमन्तमिदं वचः ॥ १ ॥

ते ते क्षिप्ता इत्यर्थः ॥७५॥७६॥७७॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

एवं हनुमदानीतौषधिपर्वतगन्धमात्रेण समागतप्राणेषु सर्वेषु विशल्येषु समुत्थितेषु सुग्रीवः स्वातिसन्धानजनितकोपातिरेकेण सद्यो निःशेषं लङ्कानिर्दहनं हनुमते नियमयति–तत इत्यादि ॥ अर्थ्यम् अर्थादनपेतम् । प्रयोजननियतं वाक्यं विज्ञापयन् । रामायेति शेषः । ततो हनुमन्तमब्रवीदिति योजना । यद्वा अर्थ्यं विज्ञापयन् विशेषेण ज्ञापयन् ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इदानीं लङ्कादाहोपदेशे निमित्तमाह—यत इति ॥ उपनिर्हारम् उपनिष्क्रमणम् । युद्धाय निर्गमनमिति यावत् । हतपुत्रादित्वेनानुत्साहाद्रावणो न निर्गमिष्यतीति भावः । अत्र आग्रहेण प्रेतनिर्यापनरूढनिर्हारपदप्रयोगः । दातुं कर्तुमिति यावत् । धातूनामनेकार्थत्वात् । उपनिर्हारशब्दः उपनिष्क्रम्य युद्धपरो वा ॥ २ ॥ य इति ॥ लघवः वेगवन्तः। उत्पतन्तु प्राकारमुत्प्लुत्य गच्छन्तु ॥ ३॥ तत इति ॥ ननु पूर्वमुल्काहस्तौ तदा रात्रावित्युक्तम्, अत्र आदित्यास्तमयसमय इति गम्यते, अतो विरुद्धमिति चेन्न विरोधः । आदित्येस्तं गत इति प्रकाशाभावोक्तिः । निशामुख इति रात्रेः प्रथमयाम उच्यते । रौद्र इति विशेषणात् यामान्तत्वेन गाढान्धकारत्वमुच्यते । हनुमांश्च महाद्भुतवेगशालितया मुहूर्तमात्रेण प्रस्थायौषधिपर्वतमानीय तं पुन-

यतो हतः कुम्भकर्णः कुमाराश्च निषूदिताः ॥ नेदानीमुपनिर्हारं रावणो दातुमर्हति ॥ २ ॥ ये ये महाबलाः सन्ति
लघवश्च प्लवङ्गमाः ॥ लङ्कामभ्युत्पतन्त्वाशु गृह्योल्काः प्लवगर्षभाः ॥ (हरयो हरिसंकाशाः प्रदग्धुं रावणालयम् ॥)
॥ ३ ॥ ततोस्तं गत आदित्ये रौद्रे तस्मिन्निशामुखे ॥ लङ्कामभिमुखाः सोल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥ उल्का-
हस्तैर्हरिगणैः सर्वतः समभिद्रुताः ॥ आरक्षस्था विरूपाक्षाः सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु विवि-
धासु च ॥ प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम् ॥ तेषां गृहसहस्राणि ददाह हुतभुक्तदा ॥ ६ ॥ प्रासादाः पर्वता-
काराः पतन्ति धरणीतले ॥ अगरुर्दह्यते तत्र वरं च हरिचन्दनम् ॥ ७ ॥ ॥

स्तत्र निक्षिप्यागतवानिति तस्य वेगातिशयश्च प्रतिपादितो भवति ॥ ४ ॥ उल्काहस्तैरिति ॥ आरक्षस्थाः गुल्मस्थाः नगररक्षिणो वा । आरक्षो दुर्गरक्षिणां स्थानम् । तत्रस्था वा । त्रिष्वारक्षस्तु रक्षण इति रत्नमाला । विरूपाक्षाः राक्षसाः ॥ ५ ॥ गोपुरेत्यादि ॥ गोपुरं पुरद्वारम् । अट्टन्ति हिंसन्ति योधा एषु स्थित्वेत्यट्टाः प्राकाराग्रस्थितगृहाणि । स्यादट्टः क्षौममस्त्रियामित्यमरः । प्रतोल्यः वीथ्यः । चर्या अवान्तरवीथ्यः । ते वानराः । ससृजुः क्षिप्तवन्तः । तेषां वानराणां संबन्धी हुतभुगित्यन्वयः ॥ ६ ॥ दहनकार्यं प्रपञ्चयति—प्रासादा इत्यादि ॥ तत्र प्रासादेषु दह्यते अदह्यत । व्यत्ययेन भूतार्थे लट् । वरं सुगन्धम् ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥

मौक्तिका इत्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया ॥ सर्वत्र अदह्यतेत्यस्य यथायथं विपरिणामेनान्वयः । मणयः उपात्तमौक्तिकादिव्यतिरिक्ताः । क्षौमकौशेययोरुपादानभेदात् भेदः । वाल्कं क्षौमादि । कौशेयं कृमिकोशोत्थमित्युभयत्राप्यमरः । शोभनं शोभमानम् । आविकम् अविरोमनिर्मितं कम्बलम् । और्णं मेषादिरोमनिर्मितं कम्बलम् । ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादित्यमरः । भाण्डम् उपकरणम् । आभरणादि वा । भाण्डं तु भूषायां नादे पात्राश्वभूषयोः। मार्जने कलशादौ च वणिङ्मूलधनेपि च ॥ इति रत्नमाला । नानाविकृतसंस्थानं नानाविधविकारवद्विचित्रसन्निवेशमिति भूषणादिसर्वविशेषणम् । वाजिभाण्डपरिच्छदौ अश्वालंकारपल्ययनादिपरिबर्हौ । भाण्डशब्देनैवाश्वाभरणसिद्धावपि कर्णावतंसादिवत् साहित्यबोधनार्थं वाजिपदम् । गजानां ग्रैवेयकानि

मौक्तिका मणयः स्निग्धा वज्रं चापि प्रवालकम् ॥ क्षौमं च दह्यते तत्र कौशेयं चापि शोभनम् ॥ ८ ॥
आविकं विविधं चौर्णं काञ्चनं भाण्डमायुधम् ॥ नानाविकृतसंस्थानं वाजिभाण्डपरिच्छदौ ॥ ९ ॥ गजग्रैवेयकक्ष्याश्च
रथभाण्डाश्च संस्कृताः ॥ तनुत्राणि च योधानां हस्त्यश्वानां च वर्म च ॥ १० ॥ खड्गा
धनूंषि ज्या बाणास्तोमराङ्कुशशक्तयः ॥ रोमजं वालजं चर्म व्याघ्रजं चाण्डजं बहु ॥ ११ ॥ मुक्तामणिविचित्रांश्च
प्रासादांश्च समन्ततः ॥ विविधानस्त्रसंयोगानग्निर्दहति तत्र वै॥१२॥ नानाविधान् गृहच्छन्दान्
ददाह हुतभुक्तदा॥ आवासान् राक्षसानां च सर्वेषां गृहगर्धिनाम् ॥ १३ ॥ ॥

कण्ठभूषणानि । कक्ष्याः इभबन्धिन्यः । ग्रैवेयकं कण्ठभूषा । कक्ष्या प्रकोष्ठे हर्म्यादेः काञ्च्यां मध्येभबन्धने इत्युभयत्राप्यमरः । संस्कृताः उत्तेजिताः । योधानां तनुत्राणि वर्माणि । हस्त्यश्वानां वर्म अयःकांस्यादिनिर्मितम् । रोमजम् अविमेषादिरोमभिन्नरोमनिर्मितं कम्बलादि । वालजं चामरादि । चर्मसंस्तरणं खेटकं वा । व्याघ्रजं वैयाघ्रं नखवालादि । अण्डजं कस्तूरिकादि द्रव्यम् ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ मुक्तेति ॥ प्रासादाः पर्वताकारा इत्यत्र केवलप्रासादाः अत्र । मुक्तादिखचिताः । अस्त्रसंयोगान् संयुज्यन्त इति संयोगाः सङ्घाताः तान् । तत्र लङ्कायाम् ॥ १२ ॥ नानाविधानिति ॥ गृहच्छन्दान् स्वस्तिकादिगृहविन्यासान् । गृहगर्धिनां गृहस्थानाम् ॥ १३ ॥ ॥

हठोपनतत्वेन खेदातिशयं व्यञ्जयितुं तेषां व्यासङ्गं दर्शयति–हेमेत्यादिना ॥ हेमचित्रतनुत्राणां हेममयाद्भुतवर्मणाम् । आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रमित्यमरः । वर्मग्रहणव्यासक्तानामित्यर्थः । स्रग्दामानि पुष्पमालाः । दामशब्दो हारपरः । स्रग्दामशब्देनानेकसरनिर्मितपुष्पमालोच्यत इत्याचार्याः । अत्र सर्वत्रापि व्यासङ्ग एव तात्पर्यम् । शीधुपानचलाक्षाणां मद्यपानलोलदृष्टीनाम् । अत एव मदविह्वलगामिनां मदेन मन्दगामिनाम् । कान्तालम्बितवस्त्राणाम् आलम्बितवस्त्रकान्तानाम् । रतिपराणामिति यावत् । शत्रुषु सञ्जातमन्युनां सञ्जातक्रोधानाम् । दीर्घाभाव आर्षः । खादतां मांसादिकं भक्षयताम् । पिबतां मद्यपानं कुर्वताम् । शीधुपानेत्यत्र मद्यपानकार्यमुक्तम् । क्षीरादिकं पिबतामिति वा । महार्हेष्विति विशेषणेन सुप्त्यतिशयहेतुरुक्तः । प्रियैः दारैरिति

हेमचित्रतनुत्राणां स्रग्दामाम्बरधारिणाम् ॥ शीधुपानचलाक्षाणां मदविह्वलगामिनाम् ॥ १४ ॥ कान्तालम्बितवस्त्राणां शत्रुसञ्जातमन्युनाम् ॥ गदाशूलासिहस्तानां खादतां पिबतामपि ॥ १५ ॥ शयनेषु महार्हेषु प्रसुप्तानां प्रियैः सह ॥ त्रस्तानां गच्छतां तूर्णं पुत्रानादाय सर्वतः ॥ १६ ॥ तेषां शतसहस्राणि तदा लङ्कानिवासिनाम् ॥ अदहत्पावकस्तत्र जज्वाल च पुनः पुनः ॥ १७ ॥ सारवन्ति महार्हाणि गम्भीरगुणवन्ति च ॥ हेमचन्द्रार्धचन्द्राणि चन्द्रशालोन्नतानि च ॥ १८ ॥ रत्नचित्रगवाक्षाणि साधिष्ठानानि सर्वशः ॥ मणिविद्रुमचित्राणि स्पृशन्तीव दिवाकरम् ॥ १९ ॥ क्रौञ्चबर्हिणवीणानां भूषणानां च निस्वनैः ॥ नादितान्यचलाभानि वेश्मान्यग्निर्ददाह सः ॥ २० ॥ ॥

विशेष्यम् । तेषाम् एवं व्यासक्तानां शतसहस्राणीति संख्यासंख्येययोरभेदेन निर्देशः । अनेकशतसहस्रराक्षसानित्यर्थः । पुनः पुनरित्यनेन तद्रुधिरवसास्नेहेनाधिकज्वालोच्यते ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ रावणस्य पुनर्धननाशं व्यञ्जयितुमुत्तमगृहदहनं दर्शयति–सारवन्तीत्यादिना ॥ सारवन्ति श्रेष्ठधनवन्ति । सारो बले स्थिरांशेर्थे पुमान् न्याये वरे त्रिष्विति रत्नमाला । गम्भीराणि महातलपवन्ति । गुणवन्ति सौन्दर्यवन्ति । हेमचन्द्रार्धचन्द्राणि हेमकृतानि चन्द्राकाराण्यर्धचन्द्राकाराणि चेत्यर्थः । चन्द्रशालाभिः शिरोगृहैः उन्नतानि । चन्द्रशाला शिरोगृहमित्यमरः । साधिष्ठानानि शय्यासनादिसहितानि । स्पृशन्तीव दिवाकरम् । सूर्यपथपर्यन्तोन्नतानीत्यर्थः । क्रौञ्चादयो लीलार्थं गृहेषु संवर्धिताः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ ॥

ज्वलनेनेति ॥ घर्मोऽस्माद्गच्छतीति घर्मगः वर्षाकाल इत्यर्थः । घर्मगे निदाघे गच्छतीति शेष इत्यप्याहुः । घर्मशब्देन घर्मान्तो लक्ष्यते । तं गच्छति प्राप्नोतीति घर्मगः वर्षादिरित्यपरे । वस्तुतो घर्मगे ग्रीष्म इत्येवार्थः । लङ्कायां दह्यमानायां सन्तापे च समन्ततः प्रसरति दह्यमानतोरणादीनि निदाघप्ररूढसविद्युन्मेघतुल्यानीत्यर्थः ॥ २१ ॥ ज्वलनेन परीतानि निपेतुरित्यस्य वज्रिवज्रहतानीवेत्युत्तरार्धम् ॥ २२ ॥ विमानेष्विति ॥ त्यक्ताभरणसर्वाङ्गाः

ज्वलनेन परीतानि तोरणानि चकाशिरे ॥ विद्युद्भिरिव नद्धानि मेघजालानि घर्मगे ॥ २१ ॥ ज्वलनेन परीतानि निपेतुर्भवनान्यथ ॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि महागिरेः ॥ २२ ॥ विमानेषु प्रसुप्ताश्च दह्यमाना वराङ्गनाः ॥ त्यक्ताभरणसर्वाङ्गा
हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ॥ २३ ॥ तानि निर्दह्यमानानि दूरतः प्रचकाशिरे ॥ हिमवच्छिखराणीव दीप्तौषधिवनानि च ॥ २४ ॥
हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्च ज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥ रात्रौ सा दृश्यते लङ्का पुष्पितैरिव किंशुकैः ॥ २५ ॥
हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्च तुरगैरपि ॥ बभूव लङ्का लोकान्ते भ्रान्तग्राह इवार्णवः ॥ २६ ॥ अश्वं मुक्तं गजो दृष्ट्वा क्वचिद्भीतोपसर्पति ॥
भीतो भीतं गजं दृष्ट्वा क्वचिदश्वो निवर्तते ॥ २७ ॥ लङ्कायां दह्यमानायां शुशुभे स महार्णवः ॥ छायासंसक्तसलिलो
लोहितोद इवार्णवः ॥ २८ ॥ सा बभूव मुहूर्तेन हरिभिर्दीपिता पुरी ॥ लोकस्यास्य क्षये घोरे प्रदीप्तेव वसुन्धरा ॥ २९ ॥
नारीजनस्य धूमेन व्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः॥ स्वनो ज्वलनतप्तस्य शुश्रुवे दशयोजनम् ॥ ३० ॥ प्रदग्धकायानपरान्
राक्षसान्निर्गतान् बहिः ॥ सहसाभ्युत्पतन्ति स्म हरयोथ युयुत्सवः ॥ ३१ ॥

सर्वाङ्गाभरणान्यपि त्यक्त्वेत्यर्थः ॥ २३ ॥ तानीति ॥ तानि पूर्वश्लोके प्रस्वापाधिकरणतयोपात्तानि विमानानि । दीप्तौषधिवनानि प्रकाशिततृणज्योतिर्वनानि ॥ २४ ॥ हर्म्याग्रैरिति ॥ ज्वालाप्रज्वलितैः ज्वालाविशिष्टैरित्यर्थः ॥ २५ ॥ हस्त्यध्यक्षैरिति ॥ हस्त्यध्यक्षैः हस्तिपकैः । मुक्तैः निगलान्मोचितैः। मुक्तैश्च तुरगैरपीत्यत्राप्यश्वाध्यक्षैरित्यध्याहार्यम् । लोकान्ते प्रलये ॥ २६ ॥ २७ ॥ लङ्कायामिति ॥ छायासंसक्तसलिलः प्रतिबिम्बसंक्रान्तजलः । लोहितोदः लोहितोदकः । उदादेश आर्षः ॥ २८ ॥ २९ ॥ नारीति ॥ नारीजनस्यातिसाहसिकत्वाद्दशयोजनस्वनश्रवणम् ॥ ३० ॥ ३१ ॥

उद्घुष्टमिति॥उद्घुष्टम् उद्घोषः । भावे क्तः ॥३२॥ विशल्याविति॥विशल्यौ निर्गलितशरीरनिमग्नशरफलकौ । तदोभे धनुषी वरे इति पाठः ॥३३॥ तत इति ॥ विस्फारयानस्य ध्वनयतः । विस्फारो धनुषः स्वान इत्यमरः। "स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः" इति षत्वम् । मुगभाव आर्षः ॥३४ ॥ अशोभतेति ॥ वेदमयं धनुः वेदोक्तलक्षणं धनुः। कृत्तिवासाः पिनाकीति श्रुत्या प्रतिपादितमहिमेति वार्थः ॥३५॥ उद्घुष्टमिति ॥ रामस्य ज्याशब्दः वा-

उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निस्वनः ॥ दिशो दश समुद्रं च पृथिवीं चान्वनादयत् ॥३२॥ विशल्यौ तु महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ असंभ्रान्तौ जगृहतुस्तदोभे धनुषी वरे ॥ ३३ ॥ ततो विस्फारयानस्य रामस्य धनुरुत्तमम् ॥ बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः ॥ ३४ ॥ अशोभत तदा रामो धनुर्विस्फारयन् महत् ॥ भगवानिव संक्रुद्धो भवो वेदमयं धनुः॥ ३५ ॥ उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निस्वनम् ॥ ज्याशब्दस्तावुभौ शब्दावतिरामस्य शुश्रुवे ॥ ३६ ॥ वानरोद्घुष्टघोषश्च राक्षसानां च निस्वनः ॥ ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप दिशो दश ॥३७॥ तस्य कार्मुकमुक्तैश्च शरैस्तत्पुरगोपुरम् ॥ कैलासशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमपतद्भुवि ॥ ३८ ॥ ततो रामशरान् दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च ॥ सन्नाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ॥ ३९ ॥ तेषां सन्नह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम् ॥ शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत ॥ ४० ॥ आदिष्टा वानरेन्द्रास्तु सुग्रीवेण महात्मना ॥ आसन्नद्वारमासाद्य युध्यध्वं प्लवगर्षभाः ॥४१॥ यश्च वो वितथं कुर्यात्तत्र तत्र ह्युपस्थितः ॥ स हन्तव्यो हि संप्लुत्य राजशासनदूषकः ॥ ४२ ॥ तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु ॥ स्थितेषु द्वारमासाद्य रावणं मन्युराविशत् ॥४३॥

नराणामुद्घुष्टं राक्षसानां निस्वनं च तावुभावतीत्य शुश्रुवे ॥ ३६ ॥ वानरेति ॥ वानरोद्घुष्टघोषः वानरोत्पादितघोषः ॥३७॥३८॥ तत इति ॥ तुमुलः अधिकः ॥ ३९ ॥ तेषामिति ॥ सन्नह्यमानानां कक्ष्याबन्धनादियुद्धसन्नाहं कुर्वताम् । रौद्री प्रलयरात्रिः ॥ ४०॥ आदिष्टा इत्यादि श्लोकद्वयमेकान्वयम्॥अन्ते इतिकरणं बोध्यम् । व इति निर्धारणे षष्ठी । वितथं कुर्यात् । मच्छासनमिति शेषः । आसन्नद्वारं रावणान्तःपुरासन्नमध्यकक्ष्याद्वारम् । तत्र तत्र युद्धभूमौ उपस्थितः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

तस्येति ॥ जृम्भितविक्षेपात् गात्रविनामविस्तारात् । व्यामिश्राः व्याकुलाः। अभवन्निति शेषः । दिशः दिक्स्थिताः । रुद्रस्य कालाग्निरुद्रस्य गात्रे यो रूपवान् मन्युः स इव रावणोलक्ष्यत ॥ ४४ ॥ ४५ ॥४६॥ शशासेति ॥ अत्रैव अस्मिन् गृह एवारभ्य। सिंहनादं नादयन् नादयन्तः कुर्वन्तः गच्छत । नादयन्नित्यत्र "व्यत्ययो बहुलम्" इति बहुवचनविषये एकवचनम्॥४७॥ ततस्त्विवति ॥ ज्वलितेति । आयुधानां ज्वलितत्वं युद्धयात्रासु शिक्षाविशेषप्रदर्शनात् । लङ्काया इति पञ्चमी ॥४८॥ रक्षसामिति ॥ स्वाभिः स्वासाधारणाभिः । रक्षसां भूषणस्थाभिः भाभिश्च । व्योम सेनामध्याकाशम् ॥४९॥

तस्य जृम्भितविक्षेपाद्व्यामिश्रा वै दिशो दश ॥ रूपवानिव रुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥ ४४ ॥ स निकुम्भं च कुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ ॥ प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह॥ ४५ ॥यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा ॥ निर्ययुः कौम्भकर्णिभ्यां सह रावणशासनात् ॥ ४६ ॥ शशास चैव तान् सर्वान् राक्षसान् सुमहाबलान्॥ नादयन् गच्छतात्रैव जयध्वं शीघ्रमेव च ॥४७॥ ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः॥लङ्काया निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः॥४८॥रक्षसां भूषणस्थाभिर्भाभिः स्वाभिश्च सर्वशः॥ चक्रुस्ते सप्रभं व्योम हरयश्चाग्निभिः सह ॥ ४९ ॥ तत्र ताराधिपस्याभा ताराणां च तथैव च ॥ तयोराभरणस्था च बलयोर्द्यामभासयन् ॥५०॥ चन्द्राभा भूषणाभा च गृहाणां ज्वलतां च भा ॥ हरिराक्षससैन्यानि भ्राजयामास सर्वतः ॥ ५१ ॥ तत्र चोर्ध्वं प्रदीप्तानां गृहाणां सागरः पुनः॥ भाभिः संसक्तपातालश्चलोर्मिः शुशुभेधिकम् ॥ ५२ ॥ पताकाध्वजसंसक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ॥ भीमाश्वरथमातङ्गं नानापत्तिसमाकुलम् ॥५३॥

तदानीं चन्द्रोदयात् पुनः प्रकाशातिशयमाह–तत्रेति॥ तत्र तदानीम् । ताराधिपस्याभा ताराणां चाभा तयोर्बलयोराभरणस्था भा च द्याम् आकाशम् अभासयन् ॥ ५० ॥ दह्यमानलङ्कागृहप्रकाशैः पुनरपि स प्रकाशोवर्धतेत्याह–चन्द्रेति ॥५१॥ तत्र चेति ॥ संसक्तपातालः पातालपर्यन्तं संसक्तः ॥ ५२ ॥ पताकेत्यादिसार्धचतुःश्लोक्येकान्वया ॥ चलत्पटा पताका । मत्स्यादिचिह्नितं ध्वजम् । उत्तमासिपरश्वधम् । परश्वधोसिरूपः कुठाररूपश्चास्ति तत्रासिरूपपरश्वधोसिपरश्वधः । तेन वक्ष्यमाणयोः खड्गपरश्वधयोर्न पौनरुक्त्यम् । ज्वलितप्रासमित्यत्र प्रासशब्दः क्षेप्तव्ये ह्रस्वकुन्ते वर्तते ।

तेन तस्यापि न पौनरुक्त्यम् । पत्तयः पदातयः । तेषां नानात्वं वेषायुधादिभेदात् । प्रासस्य ज्वलितत्वं युद्धागमनसमये शिक्षाविशेषप्रदर्शकक्रियासंबन्धात् । किङ्किणोशतनादितं रथगजादिकिङ्किणीशतनादितम् । हेमजालाचितभुजं हेमाभरणजालाबद्धभुजम् । व्यावेष्टितपरश्वधं मदेन चालितपरश्वधम् । शस्त्रम् उक्तव्यतिरिक्तायुधम् । बाणसंसक्तकार्मुकमिति । दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकमित्यत्र यत् पूर्वोक्तं कार्मुकं तद्भङ्गे पुनरादातुं पृष्ठे बद्ध-

दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ॥ तद्राक्षसबलं घोरं भीमविक्रमपौरुषम् ॥ ५४ ॥ ददृशे ज्वलितप्रासं किङ्किणीशतनादितम् ॥ हेमजालाचितभुजं व्यामिश्रितपरश्वधम् ॥ ५५ ॥ व्याघूर्णितमहाशस्त्रं बाणसंसक्तकार्मुकम्॥गन्धमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥५६॥ घोरं शूरजनाकीर्णं महाम्बुधरनिस्वनम् ॥५७॥ तद्दृष्ट्वा बलमायान्तं राक्षसानां सुदारुणम् ॥ संचचाल प्लवङ्गानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥ ५८ ॥ जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद्बलं रक्षसां महत् ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलं पतङ्गा इव पावकम्॥ ५९॥ तेषां भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि॥राक्षसानां बलं श्रेष्ठं भूयस्तरमशोभत ॥ ६० ॥ तत्रोन्मत्ता इवोत्पेतुर्हरयोऽथ युयुत्सवः ॥ तरुशैलैरभिघ्नन्तो मुष्टिभिश्च निशाचरान् ॥ ६१ ॥ तथैवापततां तेषां कपीनामसिभिः शितैः ॥ शिरांसि सहसा जह्रू राक्षसा भीमदर्शनाः ॥६२॥ दश नैर्ऋतकर्णाश्च मुष्टिनिष्कीर्णमस्तकाः॥शिलाप्रहारभग्नाङ्गा विचेरुस्तत्र राक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामभिलक्षिताः ॥ प्रवीरानभितो जघ्नू राक्षसानां तरस्विनाम् ॥ ६४ ॥ ॥

मपरमिदं कार्मुकमिति ज्ञेयम् । गन्धेति । गन्धः चन्दनादिः गन्धमाल्याभ्यां मधूत्सेकेन वीरपाणरूपमधुसेवनेन च संमोदितमहानिलं वासितमहावातम् ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तद्दृष्ट्वेत्यादि ॥ आयान्तमिति पुल्लिङ्गमार्षम् । संचचाल अभिमुखं जगाम ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ तेषामिति ॥ भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनिसन्ततभुजस्पर्शेन उत्तेजितपरिघवज्रम् ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तथैवेति ॥ कपीनाम् अभिलक्षिताः प्रसिद्धाः । कपिप्रवरा इत्यर्थः ॥ ६४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तथैवेति ॥ कपीनां मध्ये हरिवीरान् वीरहरीन् निजघ्नुः ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ देहीति ॥ अन्यो वीरः प्रहरणमत्र देहीति बभाषे । अन्यो ददातीति व-
भाषे । अपरः पुनः ददामीति बभाषे । आत्मानम् आयासेन किं क्लेशयसि तिष्ठत्यन्यो बभाषे । तत्रैवमन्योन्यं बभाषिरे ॥ ६७ ॥ विप्रलम्बितवस्त्रमि-
त्यादि ॥ सर्वं क्रियाविशेषणम् ॥ ६८ ॥ वानरान् दश सप्तेति ॥ राक्षसाः दश सप्तेत्यनेन प्रकारेण वानरान् जघ्नुः । वानराश्च दश सप्तेत्यनेन प्रकारेण

तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामसिभिः शितैः॥ हरिवीरा निजघ्नुश्च घोररूपा निशाचराः ॥६५॥ घ्नन्तमन्यं जघानान्यः
पातयन्तमपातयत्॥गर्हमाणं जगर्हेन्यो दशन्तमपरोदशत् ॥६६॥ देहीत्यन्यो ददात्यन्यो ददामीत्यपरः पुनः ॥
किं क्लेशयति तिष्ठेति तत्रान्योन्यं बभाषिरे ॥६७॥ विप्रलम्बितवस्त्रं च विमुक्तकवचायुधम् ॥ समुद्यतमहाप्रासं य-
ष्टिशूलासिसंकुलम् ॥ प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥६८॥ वानरान् दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे ॥ राक्ष-
सान् दश सप्तेति वानराश्चाभ्यपातयन् ॥ ६९ ॥ विस्रस्तकेशवसनं विध्वस्तकवचध्वजम् ॥ बलं राक्षसमालम्ब्य
वानराः पर्यवारयन् ॥ ७० ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ ॥
प्रवृत्ते संकुले तस्मिन् घोरे वीरजनक्षये ॥ अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥ १ ॥ आहूय सोङ्गदं को-
पात्ताडयामास वेगितः ॥ गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥ २ ॥ ॥ ॥

राक्षसानभ्यपातयन्निति संबन्धः ॥ ६९ ॥ विस्रस्तेति ॥ आलम्ब्य वेगेन धावमानं प्रतिष्टभ्य ततः परितोवारयन् ॥ ७० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविर-
चिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ ॥ ॥
अथ कुम्भवधः षट्सप्ततितमे—प्रवृत्त इत्यादि ॥ संकुले निरन्तरे ॥ १ ॥ आहूयेति ॥ आहूय स्पर्धयित्वा । "ह्वेञ्, स्पर्धायां शब्दे च" इति धातो-
र्ल्यप् । वेगितः सञ्जातवेगः । तारकादित्वादितच् । सः अङ्गदः ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥

स इति ॥ चिक्षेप कम्पनोरसीति शेषः ॥ ३ ॥ ततस्त्विति ॥ कम्पनं हतमित्यन्वयः । तत्र कम्पनयुद्धस्थाने । अभीतवत् । अभीतमिति क्रिया विशेषणम् ॥ ४ ॥ स इत्यादि ॥ कालाग्निसमविग्रहैः कालाग्नितुल्याकारैरित्यर्थः ॥ ५ ॥ क्षुरेत्यादि ॥ क्षुरः नापितशस्त्राकारमुखः । क्षुरप्रः अर्धचन्द्राकृतिः। नाराचः शल्यकः । वत्सदन्तैः वत्सदन्ताकारमुखैः । शिलीमुखैः कङ्कपत्राकारमुखैः । उभयपार्श्वकृतकर्णः कर्णी । अर्धनाराचः शल्यः ।

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः ॥ अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥ ३ ॥ ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे ॥ रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥ ४ ॥ सोङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः ॥ शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः कालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥ क्षुरक्षुरप्रैर्नाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ॥ कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥ अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ धनुरग्र्यं रथं बाणान् ममर्द तरसा बली ॥ ७ ॥ शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे ॥ उत्पपात दिवं क्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥ तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्याङ्गदो बली ॥ करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥ ९ ॥ तस्यांसफलके खड्गं निजघान ततोङ्गदः ॥ यज्ञोपवीतवच्चैनं चिच्छेद कपिकुञ्जरः ॥ १० ॥ तं प्रगृह्य महाखड्गं विनद्य च पुनः पुनः ॥ वालिपुत्रोभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥ ॥ ११ ॥ आयसीं तु गदां वीरः प्रगृह्य कनकाङ्गदः ॥ शोणिताक्षः समाविध्य तमेवानु पपात ह ॥ १२ ॥ प्रजङ्घसहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली ॥ रथेनाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥ १३ ॥ तयोर्मध्ये कपिश्रेष्ठः शोणिताक्षप्रजङ्घयोः ॥ विशाखयोर्मध्यगतः पूर्णचन्द्र इवाभवत् ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥

विपाठः करवीरपत्राग्रसदृशः ॥ ६ ॥ ७ ॥ शोणिताक्ष इति ॥ असिश्चर्म चेत्यसिचर्म । एकवद्भावः । उत्पपात । रथादिति शेषः ॥ ८ ॥ तमिति ॥ परामृश्य प्रगृह्य ॥ ९ ॥ तस्येति ॥ चिच्छेद। छिन्नस्तु न मृतः ॥ १० ॥ तमिति ॥ अपरान् प्रजङ्घादीन् ॥ ११ ॥ आयसीमिति ॥ तमेव अङ्गदमेव ॥ १२ ॥ प्रजङ्घेति ॥ स्पष्टः ॥ १३ ॥ तयोरिति ॥ यूपाक्षस्य दूरस्थत्वादनुक्तिः ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥

अङ्गदमिति॥ परिरक्षन्तौ । मातुलत्वादिति भावः । परस्परदिदृक्षया । स्वानुरूपप्रतिभटराक्षसजिज्ञासयेत्यर्थः॥ १५ ॥ अभिपेतुरिति ॥ प्रतियत्ताः प्रतियत्नवन्तः । गुणाधानं प्रतियत्नः । आरोपितवीर्या इत्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ रथानिति ॥ रथानश्वान् । प्रतीति शेषः ॥ १९ ॥ सृष्टानिति ॥

अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च ॥ तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परदिदृक्षया ॥ १५ ॥ अभिपेतुर्महाकायाः प्रतियत्ता महाबलाः॥राक्षसा वानरान् रोषादसिचर्मगदाधराः॥ १६ ॥ त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुङ्गवैः॥संसक्तानां महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ १७ ॥ ते तु वृक्षान् समादाय संप्रचिक्षिपुराहवे ॥ खड्गेन प्रतिचिच्छेद तान् प्रजङ्घो महाबलः ॥ १८ ॥ रथानश्वान् द्रुमैः शैलैस्ते प्रचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैः प्रतिचिच्छेद तान् यूपाक्षो निशाचरः ॥ १९ ॥ सृष्टान् द्विविदमैन्दाभ्यां द्रुमानुत्पाट्य वीर्यवान् ॥ बभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्षः प्रतापवान् ॥ २० ॥ उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मनिकृन्तनम् ॥ प्रजङ्घो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः॥ २१ ॥ तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः ॥ आजघानाश्वकर्णेन द्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २२॥बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसिः ॥ २३ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गमुत्पलसन्निभम् ॥ मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥ २४ ॥ ललाटे स महावीर्यमङ्गदं वानरर्षभम्॥आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चचाल ह ॥२५॥ स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ प्रजङ्घस्य शिरः कायात्खड्गेनापातयत् क्षितौ॥२६॥ स यूपाक्षोश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे ॥ अवरुह्य रथात्क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥२७॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन् ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो जग्राह च बलाद्बली ॥ २८॥

उत्पाट्य सृष्टानित्यन्वयः ॥२०॥ उद्यम्येति ॥ वालिपुत्राय वालिपुत्रं हन्तुम् । “क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः” इति चतुर्थी ॥२१॥ तमिति ॥ वानरेन्द्रः अङ्गदः ॥ २२ ॥ बाहुमिति ॥ सनिस्त्रिंशं सखड्गम् ॥ २३ ॥ तमिति ॥ उत्पलसन्निभम् । नीलोत्पलसमानकान्तिमित्यर्थः । महाबलः प्रजङ्घः ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ताविति ॥ प्लवङ्गाभ्यां मैन्दद्विविदाभ्याम् । आकर्षोत्पाटनम् आकर्षणताडने । अन्योन्यमिति शेषः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ आपतन्तीमित्यर्धम् ॥ सान्त्वयत् असान्त्वयत् ॥ ३६ ॥ अथेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ लब्धलक्षैः अप्रतिद्वन्द्विभिः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तस्येति ॥ वि-

गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलः ॥ आजघान गदाग्रेण वक्षसि द्विविदं ततः ॥ २९ ॥ स गदाभिहतस्तेन चचाल च महाबलः ॥ उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम् ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो मैन्दो वानरयूथपः ॥ यूपाक्षं ताडयामास तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ तौ शोणिताक्षयूपाक्षौ प्लवङ्गाभ्यां तरस्विनौ ॥ चक्रतुः समरे तीव्रमाकर्षोत्पाटनं भृशम् ॥ ३२ ॥ द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे ॥ निष्पिपेष च वेगेन क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥ ३३ ॥ यूपाक्षमपि संक्रुद्धो मैन्दो वानरयूथपः ॥ पीडयामास बाहुभ्यां स पपात हतः क्षितौ ॥ ३४ ॥ हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तदा ॥ जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णसुतो यतः ॥ ३५ ॥ आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयच्चमूम् ॥ ३६ ॥ अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवङ्गमैः ॥ निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं ततः ॥ कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥ ३७ ॥ स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः ॥ मुमोचाशीविषप्रख्यान् शरान् देहविदारणान् ॥ ३८ ॥ तस्य तच्छुशुभे भूयः सशरं धनुरुत्तमम् ॥ विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥ ३९ ॥ आकर्णाकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा ॥ तेन हाटकपुङ्खेन पत्रिणा पत्रवाससा ॥ ४० ॥ ॥

द्युदैरावताभ्याम् अर्चिष्मत् । ज्यास्थानीया विद्युत् । बाणस्थानीयमैरावतम् । ऐरावतं नाम दीर्घेन्द्रधनुः । इन्द्रायुधं शक्रधनुस्तद्दीर्घमृजुरोहितम् । ऐरावतं चेति वैजयन्ती । एवंभूतं द्वितीयमिन्द्रधनुरिव स्थितम् । ऐरावतादिसंयोग उत्पातकाले भवति । अभूतोपमा वा ॥ ३९ ॥ आकर्णेति ॥ हाटकं स्वर्णम् । पत्रिणा बाणेन । पत्रवाससा वासःस्थानीयकङ्कपत्रेण ॥ ४० ॥ ॥ ॥

सहसेति ॥ विप्रमुक्तपदः शिथिलपदविन्यासः । स्फुरन् चलन् । विह्वलः विवशः सन् ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तमिति ॥ तोमरैः अङ्कुशैः ॥ ४७ ॥ स इति ॥ अकुण्ठधारैः अभग्नाग्रैः । निशितैः उत्कृष्टैः । तीक्ष्णैः अयोमयैः । तीक्ष्णं गरे मृधे लोह इति रत्नमाला ॥ ४८ ॥ अङ्गद

सहसाभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन् ॥ निपपाताद्रिकूटाभो विह्वलः प्लवगोत्तमः ॥ ४१ ॥ मैन्दस्तु भ्रातरं दृष्ट्वा भग्नं तत्र महाहवे ॥ अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥ ४२ ॥ तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः ॥ बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पञ्चभिः शरैः ॥ ४३ ॥ सन्धाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम् ॥ आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥ ४४ ॥ स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः ॥ मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्छितः ॥४५॥ अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा पतितौ तु महाबलौ ॥ अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥ ४६ ॥ तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः ॥ त्रिभिश्चान्यैः शितैर्बाणैर्मातङ्गमिव तोमरैः ॥४७॥ सोऽङ्गदं विविधैर्बाणैः कुम्भो विव्याध वीर्यवान् अकुण्ठधारैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कनकभूषणैः ॥ ४८ ॥ अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रो न कम्पते ॥ शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह ॥ ४९ ॥ स प्रचिच्छेद तान् सर्वान् बिभेद च पुनः शिलाः ॥ कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान् वालिपुत्रसमीरितान् ॥ ५० ॥ आपतन्तं च संप्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ॥ भ्रुवोर्विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम् ॥ तस्य सुस्राव रुधिरं पिहिते चास्य लोचने ॥ ५१ ॥ अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते ॥ सालमासन्नमेकेन परिजग्राह पाणिना ॥ ५२ ॥ संपीड्य चोरसि स्कन्धं करेणाभिनिवेश्य च ॥ किंचिदभ्यवनम्यैनमुन्ममाथ यथा गजः ॥ ५३ ॥ तमिन्द्रकेतुप्रतिमं वृक्षं मन्दरसन्निभम् ॥ समुत्सृजन्तं वेगेन पश्यतां सर्वरक्षसाम् ॥ ५४ ॥ ॥

इति ॥ न कम्पते नाकम्पत ॥ ४९ ॥ स इति ॥ तान् वृक्षान् प्रचिच्छेद शिलाः विभेदेत्यन्वयः ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ संपीड्येति ॥ एकहस्तस्य नेत्रपिधानव्यापृतत्वादेकहस्तेनोत्पाटनासम्भवादुरसि संपीड्येत्युक्तम्। अभिनिवेश्य । अभिगृह्येत्यर्थः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ॥

॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥५८॥ तत इति ॥ रिरक्षिषन्तः रक्षितुमिच्छन्तः ॥५९॥६०॥६१॥ समीक्ष्येति ॥ जलाशयं जलप्रवाहम् । नगेनेव वृक्षेणेव । वृक्षौघपरोयं शब्दः ॥ ६२ ॥ तस्येति ॥ अतिवर्तितुम् अतिक्रम्याभिमुख्येन गन्तुम् ॥६३॥ तांस्त्वित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा ।

स बिभेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः ॥ ५५ ॥ अङ्गदो विव्यथेभीक्ष्णं ससाद च मुमोह च ॥ ५६ ॥ अङ्गदं व्यथितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरे ॥ दुरासदं हरिश्रेष्ठं रामायान्ये न्यवेदयन् ॥ ५७ ॥ रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं रणाजिरे ॥ व्यादिदेश हरिश्रेष्ठान् जाम्बवत्प्रमुखांस्ततः ॥ ५८ ॥ ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम् ॥ अभिपेतुः सुसंक्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥ ५९ ॥ ततो द्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ॥ रिरक्षिषन्तोऽभ्यपतन्नङ्गदं वानरर्षभाः ॥६०॥ जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ॥ कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥ समीक्ष्यापततस्तांस्तु वानरेन्द्रान् महाबलान् ॥ आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम् ॥ ६२ ॥ तस्य बाणपथं प्राप्य न शेकुरतिवर्तितुम् ॥ वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः ॥ ६३ ॥ तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणान् शरवृष्टिभिरर्दितान् ॥ अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा भ्रातृजं प्लवगेश्वरः ॥ ६४ ॥ अभिदुद्राव वेगेन सुग्रीवः कुम्भमाहवे ॥ शैलसानुचरं नागं वेगवानिव केसरी ॥ ६५ ॥ उत्पाट्य च महाशैलानश्वकर्णान् धवान् बहून् ॥ अन्यांश्च विविधान् वृक्षांश्चिक्षेप च महाबलः ॥ ६६ ॥ तां छादयन्तीमाकाशं वृक्षवृष्टिं दुरासदाम् ॥ कुम्भकर्णात्मजः शीघ्रं चिच्छेद निशितैः शरैः ॥६७॥ अभिलक्षेण तीव्रेण कुम्भेन निशितैः शरैः॥ आचितास्ते द्रुमा रेजुर्यथा घोराः शतघ्नयः ॥ ६८ ॥ द्रुमवर्षं तु तच्छिन्नं दृष्ट्वा कुम्भेन वीर्यवान् ॥ वानराधिपतिः श्रीमान् महासत्त्वो न विव्यथे ॥ ६९ ॥

अन्यथा हन्यादिति भावः । शैलसानुचरं शैलसानुचरत्वेनातिबलम् । गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्तीति कालिदासोक्तेः ॥ ६४ ॥६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ अभिलक्षेणेति ॥ अभिलक्षेण अभिगतलक्ष्येण । आचिताः सर्वतो नीरन्ध्रतया व्याप्ताः । शतघ्नयः शतघ्न्यः । शङ्कुचिता आयुधविशेषाः ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

॥ ७० ॥ ७१ ॥ निकुम्भाग्रजेति ॥ वीर्यस्य बाणवेगवत्त्वं तद्धेतुत्वात् । सन्नतिः राक्षसेषु विनयः राक्षसप्रावण्यं वा । कम्पनप्रजङ्घयूपाक्षशोणिताक्षमारकाणामङ्गदमैन्दाद्विविदानां निराकरणाद्राक्षसप्रावण्योक्तिः । तव वा रावणस्य वा । रावणतुल्या तव सन्नतिरित्यर्थः ॥ ७२ ॥ प्रह्लादेति ॥ पितरमनुजातोसि पित्रा सदृशोसीत्यर्थः । बलवृत्ततः बलव्यापारेण ॥ ७३ ॥ त्वामिति ॥ नातिवर्तन्ते न धर्षयन्तीत्यर्थः ॥ ७४ ॥ विक्रमस्वेत्यर्धम् ॥ कर्माणि

निर्भिद्यमानः सहसा सहमानश्च तान् शरान् ॥ कुम्भस्य धनुराक्षिप्य बभञ्जेन्द्रधनुष्प्रभम् ॥ ७० ॥ अवप्लुत्य ततः शीघ्रं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ अब्रवीत्कुपितः कुम्भं भग्नशृङ्गमिव द्विपम् ॥ ७१ ॥ निकुम्भाग्रज वीर्यं ते बाणवेगवदद्भुतम् ॥ सन्नतिश्च प्रभावश्च तव वा रावणस्य वा॥७२॥ प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपम ॥ एकस्त्वमनुजातोसि पितरं बलवृत्ततः ॥ ७३ ॥ त्वामेवैकं महाबाहुं चापहस्तमरिंदमम् ॥ त्रिदशा नातिवर्तन्ते जितेन्द्रियमिवाधयः ॥७४॥ विक्रमस्व महाबुद्धे कर्माणि मम पश्यतः॥७५॥वरदानात् पितृव्यस्ते सहते देवदानवान् ॥ कुम्भकर्णस्तु वीर्येण सहते च सुरासुरान् ॥ ७६ ॥ धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च॥ त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोसि बलवीर्यतः ॥७७॥ महाविमर्दं समरे मया सह तवाद्भुतम् ॥ अद्य भूतानि पश्यन्तु शक्रशम्बरयोरिव ॥ ७८ ॥ कृतमप्रतिमं कर्म दर्शितं चास्त्रकौशलम् ॥ पातिता हरिवीराश्च त्वया वै भीमविक्रमाः॥७९॥उपालम्भभयाच्चापि नासि वीर मया हतः॥कृतकर्मा परिश्रान्तो विश्रान्तः पश्य मे बलम् ॥८०॥

युद्धकर्माणि प्रति । विक्रमस्व पराक्रमं कुरु । युद्धकर्मसिद्ध्यर्थं पराक्रमं कुर्वित्यर्थः ॥ ७५ ॥ वरदानादिति ॥ पितृव्यः रावणः वरदानात् देवदानवान् सहते । कुम्भकर्णस्तु वीर्येण शारीरबलेन सुरासुरान् सहते । रोद्धुं शक्नोतीत्यर्थः । त्वं तु ताभ्यामुभाभ्यां तान् सहस इति भावः ॥७६॥७७॥ महाविमर्दमिति ॥ महाविमर्दं महाप्रहारम् ॥७८॥७९॥ उपालम्भेति ॥ उपालम्भभयात् बहुभिः सह युद्धेन श्रान्तो हत इत्यपवादभयात् ॥ ८० ॥

तेनेत्यादि ॥ सावमानेन मानितः । बहुमानेन व्याजेनावमानित इत्यर्थः । तस्य तथावमानितस्य कुम्भस्य॥८१॥ गजावित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः॥ आहितमदौ आहितमदचेष्टौ । अन्योन्यगात्रग्रथितौ अन्योन्यसंश्लिष्टगात्रौ । परिश्रमात् युद्धजनितश्रमात् मुखतः सधूमां ज्वालां विसृजन्तौ । बभूवतुरिति शेषः ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ तत इति ॥ दर्शयन्नुदधेस्तलम् । निकुम्भो यथा उदधितलं पश्येत्तथा वेगेन पातयामासेत्यर्थः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ तत इति ॥ शतयोजनविस्तीर्णत्रिकूटशिखरमध्ये युध्यन् सुग्रीवः कुम्भं लङ्काद्वीपतले लवणाम्भसि पातयामासेत्यभिधानात् सुग्रीवस्यापरिमेयबलव-

तेन सुग्रीववाक्येन सावमानेन मानितः ॥ अग्नेराज्याहुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ततः कुम्भस्तु सुग्रीवं बाहुभ्यां जगृहे तदा ॥८१॥ गजाविवाहितमदौ निश्वसन्तौ मुहुर्मुहुः॥ अन्योन्यगात्रग्रथितौ कर्षन्ताावितरेतरम्॥ सधूमां मुखतो ज्वालां विसृजन्तौ परिश्रमात् ॥ ८२ ॥ तयोः पादाभिघाताच्च निमग्ना चाभवन्मही ॥ व्याघूर्णिततरङ्गश्च चुक्षुभे वरुणालयः ॥ ८३ ॥ ततः कुम्भं समुत्क्षिप्य सुग्रीवो लवणाम्भसि ॥ पातयामास वेगेन दर्शयन्नुदधेस्तलम् ॥८४॥ ततः कुम्भनिपातेन जलराशिः समुत्थितः ॥ विन्ध्यमन्दरसंकाशो विससर्प समन्ततः॥८५॥ ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपत्य च ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगेन मुष्टिना ॥८६॥ तस्य चर्म च पुस्फोट बहु सुस्राव शोणितम् ॥ स च मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले ॥ ८७ ॥ तदा वेगेन तत्रासीत्तेजः प्रज्वलितं मुहुः ॥ वज्रनिष्पेषसञ्जाता ज्वाला मेरौ यथा गिरौ ॥ ८८ ॥ स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः ॥ मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥८९॥

त्ता द्योत्यते ॥ ८४ ॥ तत इति ॥ विससर्प अभ्यवर्धत ॥ ८५ ॥ ततः कुम्भ इति ॥ स्पष्टः ॥ ८६ ॥ तस्येति ॥ पुस्फोट विभिन्नम् । स चेति । सः मुष्टिः सुग्रीवस्यास्थिमण्डले । प्रतिजघ्ने प्रतिहतः । मोघो बभूवेत्यर्थः । स च मुष्टिर्महावेग इति पाठः ॥ ८७ ॥ तदेति ॥ वेगेन कुम्भवेगेन । तत्र सुग्रीववक्षसि । तेजः संघट्टजम् प्रज्वलितमासीत् । वज्रनिष्पेषसञ्जाता इन्द्रेण पक्षच्छेदकाले वज्रसंघट्टजन्येत्यर्थः ॥ ८८ ॥ स तत्रेति ॥ संवर्तयामास चकारेत्यर्थः ॥ ८९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अर्चिरिति ॥ अर्चिःसहस्रविकचम् अर्चिःसहस्रावृतमित्यर्थः । अत एव रविमण्डलसप्रभम् ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ कुम्भस्येति ॥ गवां पतेः सूर्यस्य॥ ॥ ९३ ॥ तस्मिन्निति ॥ स्पष्टः ॥९४॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने षट्सप्ततितमः सर्गः॥७६॥ अथ निकुम्भवधः सप्तसप्ततितमे–निकुम्भ इत्यादि ॥१॥ तत इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ स्रग्दामसन्नद्धं स्रक्समूहनिबद्धम् । दत्तपञ्चाङ्गुलं चन्दन-

अर्चिःसहस्रविकचं रविमण्डलसप्रभम् ॥ स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥ ९० ॥ स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशताडितः ॥ निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥ ९१ ॥ मुष्टिनाभिहतस्तेन निपपाताशु राक्षसः ॥ लोहिताङ्ग इवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ ९२ ॥ कुम्भस्य पततो रूपं भग्नस्योरसि मुष्टिना ॥ बभौ रुद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गवां पतेः॥ ९३ ॥ तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ॥ मही सशैला सवना चचाल भयं च रक्षांस्यधिकं विवेश ॥ ९४ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ॥ प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमवैक्षत ॥ १ ॥ ततः स्रग्दामसन्नद्धं दत्तपञ्चाङ्गुलं शुभम् ॥ आददे परिघं वीरो नगेन्द्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥ हेमपट्टपरिक्षिप्तं वज्रविद्रुमभूषितम् ॥ यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भयनाशनम् ॥ ३ ॥ तमाविध्य महातेजाःशक्रध्वजसमं तदा ॥ विननाद विवृत्तास्यो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ४ ॥ उरोगतेन निष्केण भुजस्थैरङ्गदैरपि ॥ कुण्डलाभ्यां च चित्राभ्यां मालया च विचित्रया ॥ ५ ॥ निकुम्भो भूषणैर्भाति तेन स्म परिघेण च ॥ यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ६ ॥ ॥

कुङ्कुमादिनार्पितपञ्चाङ्गुलमुद्रामुद्रितम् । अथवा क्रियाविशेषणमेतत् । दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा तथा आददे । परिक्षिप्तं परिणद्धम् ॥२॥३॥४ ॥ उरोगतेनेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम्॥ निष्कः पदकम् । भूषणैः हारादिभिः भाति स्म । “लट् स्मे ”इति भूते लट् । स्तनयित्नुमान् गर्जितवान् । स्तनयित्नुस्तु गर्जिते मेघ इति रत्नमाला । इन्द्रधनुःस्थाने परिघः । विद्युत्स्थाने भूषणानि । विननादेति पूर्वश्लोकोक्तो विनादः स्तनयित्नुस्थान इति नोपमेयन्यूनता ॥५॥६॥

परिघाग्रेणेति ॥ वातग्रन्थिः आवहादिसप्तवातस्कन्धः । सघोषः ससिंहनाद इति निकुम्भविशेषणम् । परिघविशेषणं वा ॥ ७ ॥ नगर्येत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ विटपावत्या अलकया । अत्रापि सहेति शेषः । भवनैः अमरभवनैः । ताराः अश्विन्यादयः । ग्रहाः बुधादयः । नक्षत्राणि अश्विन्यादिभिन्नानि । महाग्रहाः शुक्रादयः । अत्र रात्रित्वात् सूर्यो नोक्तः । निकुम्भपरिघाघूर्णम् । अत्र परिघशब्देन तद्वात उपलक्ष्यते । इवशब्दो वाक्यालंकारे ॥ ८ ॥ ९ ॥ दुरासदश्चेति ॥ परिघेणाभरणैश्च प्रभातीति परिघाभरणप्रभः । यद्वा परिघाभरणान्येव प्रभा यस्य स तथा । कपीनां दुरासदो जज्ञ इति

परिघाग्रेण पुस्फोट वातग्रन्थिर्महात्मनः॥ प्रजज्वाल सघोषश्च विधूम इव पावकः ॥ ७॥ नगर्या विटपावत्या गन्धर्वभवनोत्तमैः ॥ सह चैवामरावत्या सर्वैश्च भवनैः सह ॥ ८ ॥ सतारग्रहनक्षत्रं सचन्द्रं समहाग्रहम् ॥ निकुम्भपरिघाघूर्णं भ्रमतीव नभःस्थलम् ॥ ९ ॥ दुरासदश्च संजज्ञे परिघाभरणप्रभः ॥ कपीनां स निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १० ॥ राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ॥ हनुमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ ११ ॥ परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् ॥ बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ॥ १२ ॥ स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः॥ विशीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे॥१३॥ स तु तेन प्रहारेण विचचाल महाकपिः ॥ परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेचलः ॥ १४ ॥ स तदाभिहतस्तेन हनुमान् प्लवगोत्तमः ॥ मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः ॥१५॥ तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान्॥अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान् वायुविक्रमः ॥ १६ ॥

संवन्धः ॥ १० ॥ राक्षसा इति ॥ प्रवलेषु प्रजङ्घादिषु हतेषु दुर्बलैर्भवद्भिः किमर्थं युद्धाय प्रयत्नः कृत इति निकुम्भः कुप्येदिति राक्षसानां भयं वेदितव्यम् । विवृत्य विस्तार्य । प्रमुखतः अग्रे ॥ ११ ॥ परिघेति ॥ परिघोपमवाहुः निकुम्भः ॥ १२ ॥ स्थिर इति ॥ व्यूढे विशाले । उल्काशतमिव वभाविति ॥ १३ ॥ स त्विति ॥ भूमिचले भूकम्पे ॥ १४ ॥ स इति ॥ संवर्तयामास । चकारेत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ १८ ॥ विचुकुशुरिति ॥ भीमं विचुकुशुः । हनुमद्ग्रहणहर्षादिति भावः । उद्यतं गृहीतम् ॥ १९ ॥ २० ॥ आत्मानमिति ॥ क्षितावभ्यवपद्यत स्थितः ॥ २१ ॥ निक्षिप्येति ॥ निक्षिप्य भूमौ पातयित्वा । परमायत्तः अतिप्रयासयुक्तः । उत्पत्य ऊर्ध्वमुद्गत्य । उरसि वेगेन पपात ॥ २२ ॥ परिगृह्येति ॥ बाहुभ्यां शिरोधरां परिगृह्य परिवर्त्य शिर उत्पाटयामास ॥ २३ ॥ उत्तरसर्गद्वयार्थं संग्रहेण दर्शयति—अथेति ॥ विनदति निकुम्भे पवनसुतेन

ततः पुस्फोट चर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम् ॥ मुष्टिना तेन संजज्ञे ज्वाला विद्युदिवोत्थिता ॥ १७ ॥ स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल ह ॥ स्वस्थश्चापि निजग्राह हनुमन्तं महाबलम् ॥ १८ ॥ विचुक्रुशुस्तदा संख्ये भीमं लङ्कानिवासिनः ॥ निकुम्भेनोद्यतं दृष्ट्वा हनुमन्तं महाबलम् ॥ १९ ॥ स तदा ह्रियमाणोपि कुम्भकर्णात्मजेन ह ॥ आजघानानिलसुतो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ २० ॥ आत्मानं मोचयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत ॥ हनुमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ॥ २१ ॥ निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष ह ॥ उत्पत्य चास्य वेगेन पपातोरसि वीर्यवान् ॥ २२ ॥ परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् ॥ उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥ २३ ॥ अथ विनदति सादिते निकुम्भे पवनसुतेन रणे बभूव युद्धम् ॥ दशरथसुतराक्षसेन्द्रसून्वोर्भृशतरमागतरोषयोः सुभीमम् ॥ २४ ॥ व्यपेते तु जीवे निकुम्भस्य हृष्टा विनेदुः प्लवङ्गा दिशः सस्वनुश्च ॥ चचालेव चोर्वी पफालेव च द्यौर्भयं राक्षसानां बलं चाविवेश ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सादिते सति । दशरथसुतराक्षसेन्द्रसून्वोः राममकराक्षयोः युद्धं बभूव । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । उत्तरत्र भुजङ्गप्रयातम् ॥ २४ ॥ व्यपेते त्विति ॥ दिशः सस्वनुः प्रतिध्वनिं चक्रुः । पफालेव पुस्फोटेव । बलं कर्म । भयं कर्तृ ॥ २५ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ मकराक्षनिर्गमोऽष्टसप्ततितमे, प्रथमपक्षे अयं दशम्यां प्रातः, द्वितीयपक्षे तु दशम्यां प्रातरारभ्य कम्पनवधप्रहस्तवधरावणमुकुटभङ्गकुम्भकर्णप्रबोधतद्वधाः, अथापराह्णे ब्रह्मास्त्रबन्धः, रात्रौ तन्मोक्षलङ्कादहनकुम्भनिकुम्भयूपाक्षशोणिताक्षप्रजङ्घकम्पनमकराक्षवधाः—निकुम्भं चेत्यादि ॥ १ ॥

निकुम्भं च हतं श्रुत्वा कुम्भं च विनिपातितम् ॥ रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥ १ ॥ नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छ पुत्र मयाज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः ॥ राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तांश्च वनौकसः ॥ ३ ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरः ॥ ४ ॥ सोभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥ ५ ॥ समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रोब्रवीदिदम् ॥ रथश्चानीयतां शीघ्रं सैन्यं चाहूयतां त्वरात् ॥६॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो निशाचरः ॥ स्यन्दनं च बलं चैव समीपं प्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणं रथं कृत्वा आरुरोह निशाचरः ॥ सूतं संचोदयामास शीघ्रं मे रथमावह ॥८॥ अथ तान् राक्षसान् सर्वान् मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयं सर्वे प्रयुध्यध्वं पुरस्तान्मम राक्षसाः ॥ ९ ॥ अहं राक्षसराजेन रावणेन महात्मना ॥ आज्ञप्तः समरे हन्तुं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥१०॥ अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः ॥ शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः ॥ ११ ॥ अद्य शूलनिपातैश्च वानराणां महाचमूम् ॥ प्रदहिष्यामि संप्राप्तः शुष्केन्धनमिवानलः ॥ १२॥ मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा वचनं ते निशाचराः ॥ सर्वे नानायुधोपेता बलवन्तः समागताः ॥ १३ ॥ ॥

नैर्ऋत इति ॥ परिमूर्छितः व्याप्तः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ समीपस्थमिति ॥ त्वरात् त्वरया ॥ ६ ॥ तस्येति ॥ प्रत्यपादयत् प्रापयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणमिति ॥ आवह चोदय । अत्रेतिकरणं द्रष्टव्यम् ॥ ८ ॥ अथ तानित्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ मकराक्षस्येति ॥ समागताः समाजग्मुः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

ते कामरूपिण इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ स्पष्टः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ प्रभ्रष्ट इति ॥ करात्तस्य आर्त्तकरस्य वशीकृतकरस्य । लघुहस्तस्येति यावत् ॥ १७ ॥ तस्येति ॥ विक्रमवर्जिताः विविधपदन्यासविरहिताः । प्रथममाकुलैश्चरणैर्गत्वा पश्चाद्ययुरित्यर्थः ॥ १८ ॥ प्रवातीति ॥ सपांसुः अत एव खरदारुणः खरः परुषः दारुणो भयंकरश्च ॥ १९ ॥ तानीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ असकृद्गदासिभिन्ना इत्यनेन शौर्यातिशयः

ते कामरूपिणः सर्वे दंष्ट्रिणः पिङ्गलेक्षणाः ॥ मातङ्गा इव नर्दन्तो ध्वस्तकेशा भयानकाः ॥१४॥ परिवार्य महाकाया महाकायं खरात्मजम् ॥ अभिजग्मुस्ततो हृष्टाश्चालयन्तो वसुन्धराम् ॥ १५॥ शङ्खभेरीसहस्राणामाहतानां समन्ततः ॥ क्ष्वेलितास्फोटितानां च ततः शब्दो महानभूत्॥१६॥प्रभ्रष्टोथ करात्तस्य प्रतोदः सारथेस्तदा॥पपात सहसा चैव ध्वजस्तस्य च रक्षसः॥१७॥ तस्य ते रथयुक्ताश्च हया विक्रमवर्जिताः ॥ चरणैराकुलैर्गत्वा दीनाः सास्रमुखा ययुः १८॥ प्रवाति पवनस्तस्मिन् सपांसुः खरदारुणः॥ निर्याणे तस्य रौद्रस्य मकराक्षस्य दुर्मतेः॥१९॥तानि दृष्ट्वा निमित्तानि राक्षसा वीर्यवत्तमाः॥ अचिन्त्य निर्गताः सर्वे यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥ घनगजमहिषाङ्गतुल्यवर्णाः समरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः॥अहमहमिति युद्धकौशलास्ते रजनिचराः परितः समुन्नदन्तः॥२१॥इति श्रीमद्युद्ध०अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा ऽव्यवस्थिताः॥१॥ ततः प्रवृत्तं सुमहत्तद्युद्धं रोमहर्षणम् ॥ निशाचरैः प्लवङ्गानां देवानां दानवैरिव ॥ २ ॥ वृक्षशूलनिपातैश्च शिलापरिघपातनैः ॥ अन्योन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

सूचितः । युद्धकौशलाः युद्धकुशलाः । स्वार्थेण् । अहमहमिति वदन्तः । अचिन्त्य निर्गता इति पूर्वेण संबन्धः ॥ २० ॥ २१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ ॥ ॥

अथ मकराक्षवध एकोनाशीतौ—निर्गतमिति ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

शक्तीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ निखातैः आयुधविशेषैः । निर्घातैरिति पाठे अशनिभिरित्यर्थः । केचिन्निशाचराः शक्तिखड्गादिभिः अपरे रजनीचराः पाशमुद्गरादिभिश्च कदनं चक्रुरिति योजना ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तान् दृष्ट्वेति ॥ राक्षसा जितकाशिन इति भिन्नं वाक्यम् । जितं जयः तेन काशन्त इति तथोक्ता जितकाशिनः । बभूवुरिति शेषः । अन्यथा द्वितीयराक्षसपदवैयर्थ्यं स्यात् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ तिष्ठेति ॥ द्वन्द्वयुद्धं

शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः ॥ पट्टिशैर्भिण्दिपालैश्च निर्घातैश्च समन्ततः ॥ ४ ॥ पाशमुद्गरदण्डैश्च निखातैश्चापरे तदा ॥ कदनं कपिवीराणां चक्रुस्ते रजनीचराः ॥ ५ ॥ बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः ॥ संभ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥ ६ ॥ तान् दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान् वलीमुखान् ॥ नेदुस्ते सिंहवद्दृष्टा राक्षसा जितकाशिनः ॥ ७ ॥ विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः ॥ रामस्तान्वारयामास शरवर्षेण राक्षसान् ॥ ८ ॥ वारितान् राक्षसान् दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ॥ क्रोधानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं ददामि ते ॥ त्याजयिष्यामि ते प्राणान् धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥ १० ॥ यत्तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान् मम ॥ मदग्रतः स्वकर्मस्थं दृष्ट्वा रोषोभिवर्धते ॥ ११ ॥ दह्यन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन् मम राघव ॥ यन्मयासि न दृष्टस्त्वं तस्मिन् काले महावने ॥ १२ ॥ दिष्ट्यासि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह ॥ काङ्क्षितोसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः ॥१३॥ अद्य मद्बाणवेगेन प्रेतराड्विषयं गतः ॥ ये त्वया निहता वीराः सह तैश्च समेष्यसि॥१४॥ बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम ॥ पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे ॥ १५ ॥ ॥ ॥

ददामि त इति पाठः ॥१०॥ यत्तदेति ॥ स्वकर्मस्थं वधकर्मस्थम् । यथा पिता हतस्तथा वध्यमित्यर्थः । यद्वा क्षात्रधर्मकर्मानुतिष्ठन्तमित्यर्थः । स्वकर्मस्थमिति सुतरामकृत्यनिरतमिति वार्थः ॥११॥ दह्यन्त इति ॥ तस्मिन् काले महावने यद्यस्मान्न दृष्टोसि तस्मान्ममाङ्गानि दह्यन्ते । तदानीमेव दृष्टश्चेत्प्रतिकारेण तापः शाम्येदित्यर्थः ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ ॥

अस्त्रैरिति ॥ महाहवे निमित्ते । येन वा अन्येनायुधेनाभ्यस्तं तेनैव युधि वर्तताम् । भवानिति शेषः ॥ १६ ॥ मकराक्षेति ॥ उत्तरोत्तरवादिनम् । बहुप्रलापिनमित्यर्थः ॥ १७ ॥ कत्थस इति ॥ युद्धेन विना प्रहारेण विना ॥ १८ ॥ १९ ॥ स्वाशिता इति ॥ स्वाशिताः सुष्ठु आशितवन्तः ॥ २० ॥ २१ ॥

अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा महाहवे ॥ अभ्यस्तं येन वा राम तेनैव युधि वर्तताम् ॥ १६ ॥ मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥ कत्थसे किं वृथा रक्षो बहून्यसदृशानि तु ॥ न रणे शक्यते जेतुं विना युद्धेन वाग्बलात् ॥ १८ ॥ चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः ॥ त्रिशिरा दूषणश्चैव दण्डके निहता मया ॥१९॥ स्वाशितास्तव मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः ॥ भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुराः ॥ २० ॥ राघवेणैवमुक्तस्तु खरपुत्रो निशाचरः ॥ बाणौघानमुचत्तस्मै राघवाय रणाजिरे ॥ २१ ॥ तान् शरान् शरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा ॥ निपेतुर्भुवि ते च्छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सहस्रशः ॥ २२ ॥ तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा ॥ रक्षसः खरपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥ २३ ॥ जिमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोस्तदा ॥ धनुर्मुक्तः स्वनोत्कृष्टः श्रूयते च रणाजिरे ॥ २४ ॥ देवदानवगन्धर्वाः किन्नराश्च महोरगाः ॥ अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ २५ ॥ विद्धमन्योन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते परम् ॥ कृतप्रतिकृतान्योन्यं कुरुतां तौ रणाजिरे ॥ ॥ २६ ॥ राममुक्तांस्तु बाणौघान्राक्षसस्त्वच्छिनद्रणे ॥ रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥२७॥ बाणौघैर्वितताः सर्वा दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥ संछन्ना वसुधा चैव समन्तान्न प्रकाशते ॥२८॥ ॥ ॥

॥ २२ ॥ २३ ॥ जीमूतयोरिति ॥ ज्यातलयोः शब्दः ज्यातलयोः संघर्षजः शब्दः । स्वनोत्कृष्टः स्वनेषूत्कृष्टः ॥ २४ ॥ २५ ॥ विद्धमिति ॥ विद्धं वेधनम् । वर्धते अवर्धत । कृतप्रतिकृतान्योन्यं कृतस्य प्रतिकृतं ययोस्तौ तादृशावन्योन्यं यस्मिन् युद्धकर्मणि तत्तथोक्तम् । कुरुताम् अकुरुताम् । युद्धमिति शेषः ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २९ ॥ भित्त्वेति ॥ वसुधां तिष्ठत् वसुधायामतिष्ठत् ॥ ३० ॥ तदिति ॥ वसुधां वसुधायाम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तच्छूलमिति ॥ नभोगता नभोगतानि। "सुपां सुलुक्०" इत्यादिना आकारादेशः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ दशरथेति ॥ गिरिमिव वज्रहतं यथेति । द्वे अप्य-

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद रक्षसः॥ अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः॥२९॥ भित्त्वा शरै रथं रामो रथाश्वान् समपातयत् ॥ विरथो वसुधां तिष्ठन्मकराक्षो निशाचरः ॥ ३० ॥ तत्तिष्ठद्वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ॥ त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥३१॥ विभ्राम्यतु महच्छूलं प्रज्वलत्तं निशाचरः॥स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महाहवे ॥३२॥ तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम् ॥ बाणैस्तु त्रिभिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः॥ ३३ ॥ स च्छिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डितः॥ व्यशीर्यत महोल्केव रामबाणार्दितो भुवि ॥ ३४ ॥ तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ साधु साध्विति भूतानि व्याहरन्ति नभोगताः ॥ ३५ ॥ तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः ॥ मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ स तं दृष्ट्वा पतन्तं वै प्रहस्य रघुनन्दनः ॥ पावकास्त्रं ततो रामः सन्दधे तु शरासने॥३७॥ तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे ॥ संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ॥ लङ्कामेवाभ्यधावन्त रामबाणार्दितास्तदा ॥ ३९ ॥ दशरथनृपपुत्रबाणवेगै रजनिचरं निहतं खरात्मजं तम् ॥ ददृशुरथ सुरा भृशं प्रहृष्टा गिरिमिव वज्रहतं यथा विकीर्णम् ॥ ४० ॥इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

व्ययपदे संभूयैकार्थमेवाचक्षाते । पक्षद्वयेपि मकराक्षवधेन दशममहः समाप्तम् ॥ ४० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिंजयः ॥ क्रोधेन महताविष्टो दन्तान् कटकाटापयन् ॥१॥ कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन् ॥ आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥ २ ॥ जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः॥३॥ त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे॥ किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥४॥ तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः ॥ यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहवेन्द्रजित् ॥५॥ जुह्वतश्चापि तत्राग्निं रक्तोष्णीषधराः स्त्रियः॥ आजग्मुस्तत्र सम्भ्रान्ता राक्षस्यो यत्र रावणिः॥६॥ शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोथ बिभीतकाः॥ लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥७॥ सर्वतोग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः ॥ छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥ ८ ॥ सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः॥ बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं दर्शयन्ति च ॥९॥ प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसन्निभः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥ १० ॥ हुत्वाग्निं तर्पयित्वा च देवदानवराक्षसान् ॥ आरुरोह रथश्रेष्ठमन्तर्धानगतं शुभम् ॥११॥

अथेन्द्रजिन्निर्गमोशीतितमे—मकराक्षमित्यादि ॥ आविष्टः अभूदिति शेषः ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ त्वमिति ॥ जयसि अजैषीः । पुनःशब्दस्त्वर्थे । मानुषौ पुनः मानुषौ तु । संयुगे दृष्ट्वापि न वधिष्यसि किं दर्शनमात्रेण वधिष्यस्येवेत्यर्थः ॥ ४ ॥ तथोक्त इति ॥ जुहव जुहाव । वृद्ध्यभाव आर्षः ॥ ५ ॥ जुह्वत इति ॥ भावलक्षणे षष्ठी । रक्तोष्णीषधराः । ऋत्विग्धारणार्थं रक्तोष्णीषाण्यानयन्त्य इत्यर्थः । लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति इति श्रुतेः । सम्भ्रान्ताः त्वरावत्यः । समयातिक्रमो मा भूदिति त्वरया उष्णीषाण्यानिन्युरित्यर्थः ॥६॥ शस्त्राणीति ॥ शस्त्राणि । अभवन्निति शेषः । शरपत्राणि गुन्द्रपत्राणि । गुन्द्रश्च काशजातीयः । गुन्द्रस्तेजनकः शर इत्यमरः । शस्त्राणि तोमराणि । सतोमरैरित्यनुवादात् । शस्त्राणि शरपत्राणि च परिस्तरणान्यभवन् । विभीतकाः समिधः इध्मानि अभवन् । वासांसि ऋत्विगुष्णीषवासांसि । लोहितान्यभवन् । कार्ष्णायसं स्रुवमासीत् ॥ ७ ॥ ८ ॥ सकृदेवेति ॥ विजयं दर्शयन्ति विजयसूचकानि ॥ ९ ॥ १० ॥ हुत्वेति ॥ अन्तर्धानगतम् अन्तर्धानशक्तियुक्तम् ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

स वाजिभिश्चतुर्भिश्च बाणैश्च निशितैर्युतः ॥ आरोपितमहाचापः शुशुभे स्यन्दनोत्तमः ॥ १२ ॥ जाज्वल्यमानो
वपुषा तपनीयपरिच्छदः ॥ मृगैश्चन्द्रार्धचन्द्रैश्च सरथः समलंकृतः ॥ १३ ॥ जाम्बूनदमहाकम्बुर्दीप्तपावकसन्निभः॥
बभूवेन्द्रजितः केतुर्वैडूर्यसमलंकृतः ॥ १४ ॥ तेन चादित्यकल्पेन ब्रह्मास्त्रेण च पालितः॥ स बभूव दुराधर्षो रावणिः
सुमहाबलः ॥ १५॥ सोभिनिर्याय नगरादिन्द्रजित्समितिंजयः ॥ हुत्वाग्निं राक्षसैर्मन्त्रैरन्तर्धानगतोब्रवीत्
॥ १६ ॥ अद्य हत्वा रणे यौ तौ मिथ्या प्रव्राजितौ वने ॥ जयं पित्रे प्रदास्यामि रावणाय रणार्जितम् ॥ १७ ॥ अद्य
निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं सलक्ष्मणम्॥ करिष्ये परमप्रीतिमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ १८॥ आपपाताथ संक्रुद्धो
दशग्रीवेण चोदितः ॥ तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विन्द्ररिपू रणे ॥ १९ ॥ स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव
॥ सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ ॥ २० ॥ इमौ ताविति संचिन्त्य सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ॥ सन्ततानेषुधाराभिः
पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २१ ॥ स तु वैहायसं प्राप्य सरथो रामलक्ष्मणौ ॥ अचक्षुर्विषये तिष्ठन्
विव्याध निशितैः शरैः॥२२॥ तौ तस्य शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ॥ धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः ॥२३ ॥

॥ १२ ॥ जाज्वल्यमान इति ॥ मृगैः मृगाकारप्रतिमाभिः । चन्द्रैः चन्द्राकारैः । अर्धचन्द्रैः रचनाविशेषैः ॥ १३ ॥ जाम्बूनदेति ॥ जाम्बूनदमहाकम्बुः सौवर्णमहावलययुक्तः । कम्बुर्ना वलये शङ्ख इत्यमरः ॥ १४ ॥ १५ ॥ स इति ॥ राक्षसैः निर्ऋतिदेवताकैः । अन्तर्धानगतः अन्तर्धानशक्तिं प्राप्तः । अतः इत्युक्त्वान्तरधीयतेत्यनेन न विरोधः ॥ १६ ॥ अद्य हत्वेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अद्य निर्वानरामिति ॥ पितुरित्यध्याहारः । पितुः परमप्रीतिं परमप्रीतिं प्रति । पितुः प्रीतिमुद्दिश्येत्यर्थः । अद्य सलक्ष्मणं रामं हत्वा उर्वीं निर्वानरां करिष्य इति संबन्धः ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ स ददर्शेति ॥ नागौ त्रिशिरसाविवेति दृष्टान्तेन रामलक्ष्मणयोर्महापुरुषलक्षणपृथुलोन्नतभुजशिरस्कत्वं द्योत्यते । सृजन्तौ स्रक्ष्यन्तौ । सकलराक्षसक्षयकारिणावित्यर्थः ॥ २० ॥ इमौ ताविति ॥ सन्ततान ववर्ष ॥ २१ ॥ वैहायसं विहायसा गमनम् ॥ २२ ॥ २३ ॥

॥ २४ ॥ स हीति ॥ नभः प्रच्छादयन् । हेतौ शतृप्रत्ययः । अन्तर्धापयामासेत्यर्थः । धूमान्धकारमिति नीहारतमसावृता इति च पूर्वमेवोत्पातकलुषत्वमुच्यते ॥ २५ ॥ २६ ॥ घनान्धकार इति ॥ घनान्धकारे घनकालिमवति ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ घनान्धकारे घनयुक्तान्धकारवन्निबिडे ॥ २७ ॥

प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ ॥ तमस्त्रैः सूर्यसंकाशैर्नैव पस्पृशतुः शरैः ॥ २४ ॥ स हि धूमान्धकारं
च चक्रे प्रच्छादयन्नभः ॥ दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान्नीहारतमसावृताः ॥ २५ ॥ नैव ज्यातलनिर्घोषो न च
नेमिखुरस्वनः ॥ शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ॥ २६ ॥ घनान्धकारे तिमिरे शरवर्षमिवाद्भुतम् ॥
स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः॥ २७ ॥ स रामं सूर्यसंकाशैः शरैर्दत्तवरो भृशम् ॥ विव्याध समरे क्रुद्धः
सर्वगात्रेषु रावणिः ॥ २८ ॥ तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ ॥ हेमपुङ्खान्नरव्याघ्रौ तिग्मान् मुमुचतुः
शरान् ॥ २९ ॥ अन्तरिक्षे समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः ॥ निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणितोक्षिताः
॥ ३० ॥ अतिमात्रं शरौघेण पीड्यमानौ नरोत्तमौ ॥ तानिषून् पततो भल्लैरनेकैर्निचकृन्ततुः ॥ ३१॥
यतो हि ददृशाते तौ शरान्निपततः शितान् ॥ ततस्तु तौ दाशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ रावणिस्तु
दिशः सर्वा रथेनातिरथः पतन् ॥ विव्याध तौ दाशरथी लघ्वस्त्रो निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥ तेनातिविद्धौ तौ
वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहितैः ॥ बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३४ ॥ नास्य वेद गतिं कश्चिन्न
च रूपं धनुः शरान् ॥ न चान्यद्विदितं किंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥ ३५ ॥ तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः
॥ बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ब्राह्ममस्त्रं
प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥

॥ २८ ॥ २९ ॥ अन्तरिक्ष इति ॥ पतगाः पक्षिणो भूत्वा । तथा वेगवन्त इत्यर्थः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३॥ तेनेति ॥ सुसंहितैः सुष्ठु निर्मितैः ॥ ॥ ३४ ॥ नास्येति ॥ अभ्रसंप्लवे मेघावरणे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

॥ ३८ ॥ नैकस्येत्यादि ॥ प्रच्छन्नं युद्धभीत्या प्रच्छन्नम् । पलायन्तं पलायमानम् ॥ ३९॥ अस्यैव त्विति ॥ आदेक्ष्यावः प्रयोक्ष्यावः । अस्त्रान् अस्त्राणि ।
लिङ्गव्यत्यय आर्षः ॥ ४० ॥ ४१ ॥ यद्येष इति ॥ भूमिं भूविवरम् विशते । आत्मनेपदमार्षम् । दिवं स्वर्गम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ यदीति ॥
भूमिं भूविवरम् विशते । आत्मनेपदमार्षम् । दिवं स्वर्गम् । एतदुपरितनलोकानामुपलक्षणम् । रसातलम् एतदधस्तनलोकानामुपलक्षणम् ॥

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ ३८ ॥ नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥ अयुध्यमानं
प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् ॥ पलायन्तं प्रमत्तं वा न त्वं हन्तुमिहार्हसि ॥ ३९ ॥ अस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यावो
महाबल॥आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥ ४० ॥ तमेनं मायिनं क्षुद्रमन्तर्हितरथं बलात् ॥
राक्षसं निहनिष्यन्ति दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ ४१ ॥ यद्येष भूमिं विशते दिवं वा रसातलं वापि नभःस्थलं वा ॥ एवं
निगूढोपि ममास्त्रदग्धः पतिष्यते भूमितले गतासुः॥४२॥ इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा रघुप्रवीरः प्लवगर्षभैर्वृतः ॥ वधाय
रौद्रस्य नृशंसकर्मणस्तदा महात्मा त्वरितं निरीक्षते ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥
विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥ सन्निवृत्त्याहवात्तस्मात्संविवेश पुरं ततः ॥ १ ॥ सोनुस्मृत्य वधं तेषां
राक्षसानां तरस्विनाम् ॥ क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगाम महाद्युतिः ॥ २ ॥ स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ
राक्षसैर्वृतः ॥ इन्द्रजित्तु महावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥ ३ ॥ ॥ ॥

॥ ४२ ॥ इत्येवमिति ॥ प्लवगर्षभैः वृतः निरीक्षते । उपायं चिन्तयति स्मेत्यर्थः ॥ ४३ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने
युद्धकाण्डव्याख्याने अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥ ॥ ॥ ॥
अथ मायासीतावधः एकाशीतितमे—विज्ञाय त्वित्यादि ॥ अत्र तृतीयाक्षरभूतो यकारो गायत्र्या एकोनविंशतितमाक्षरम् । अष्टादशसहस्रश्लोकाः
गताः ॥ १ ॥ सोनुस्मृत्येति ॥ तेषां कुम्भकर्णादीनाम् ॥ २ ॥ निकुम्भिलायां दुर्जयास्त्रबललाभाय होतुकामस्तावत्पर्यन्तं रामलक्ष्मणयोर्युद्धो-

द्योगं मन्दीकर्तुं मायामारिप्समाणो रामलक्ष्मणयोः कुपितत्वेन दुरासदत्वात् सीतास्वरूपाभिज्ञस्यान्यस्याभावाद्धनुमते मायां दर्शयितुं पश्चिमद्वारेण निर्गत इत्याह—स पश्चिमेनेत्यादिना ॥३॥ इन्द्रजित्त्विति ॥ दृष्ट्वा विचिन्त्य। पश्चिमद्वारनिष्क्रान्तस्य रामलक्ष्मणदर्शनासंभवात् । मायां परव्यामोहकरीं शक्तिम् । प्रादुष्करोत् प्रादुर्भावयामास ॥ ४ ॥ इन्द्रजित्त्विति ॥ आवृत्य स्थितेन बलेन । युक्त इति शेषः । युक्ते रथे सीतां स्थाप्य ततस्तस्या वधम-

इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ रणायाभ्युद्यतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा ॥ ४ ॥ इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं ततः ॥ बलेन महतावृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥ ५ ॥ मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः ॥ हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥ तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं नगर्याः काननौकसः ॥ उत्पेतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥ ७ ॥ हनुमान् पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः ॥ प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम् ॥ ८ ॥ स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे ॥ एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम् ॥ ९ ॥ परिक्लिष्टैकवसनाममृजां राघवप्रियाम् ॥ रजोमलाभ्यामालिप्तैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम् ॥ १० ॥ तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीत्यध्यवस्य तु ॥ बभूवाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा ॥ ११ ॥ तां दीनां मलदिग्धाङ्गीं रथस्थां दृश्य मैथिलीम् ॥ बाष्पपर्याकुलमुखो हनुमान् व्यथितोभवत् ॥ १२ ॥ अब्रवीत्तां तु शोकार्तां निरानन्दां तपस्विनीम् ॥ सीतां रथस्थितां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रसुताश्रिताम् ॥ किं समर्थितमस्येति चिन्तयन् स महाकपिः ॥ १३ ॥ ॥ ॥

रोचयदिति संबन्धः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ स ददर्शेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अमृजाम् अनुद्वर्तनाम् । अनलंकारामिति वा । "मृजू, शौचालंकारयोः" इति धातोर्भिदादित्वादङ् । सर्वगात्रैः उपलक्षिताम् ॥ ९ ॥ १० ॥ तामिति ॥ अध्यवस्य निश्चित्य । विषण्ण इति शेषः । निश्चये हेतुमाह—बभूवेति ॥ ११ तामिति ॥ दृश्य दृष्ट्वा ॥ १२ ॥ अब्रवीदित्याद्यर्धत्रयमेकान्वयम् ॥ सीतां रथे स्थापितवतोऽस्य किं समर्थितं को वाभिप्राय इति चिन्तयन्नब्रवीत् । इतिर्वचनचिन्तनयोः साधारणः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सह तैरित्यर्धम् ॥ हनुमानिति शेषः ॥ १४ ॥ तदिति ॥ मूर्छितः व्याप्तः ॥ १५ ॥ तामिति ॥ पश्यतां तेषाम् । अनादरे षष्ठी । मायया परमोहनशक्त्या ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ दुरात्मान्निति ॥ केशपक्षे केशसमूहे । पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्पर इत्यमरः । परामृशः अस्पृशः ॥ १९ ॥ धिगित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः॥ ईदृशी । जुगुप्सितेत्यर्थः । नृशंस निर्दय । अनार्य असज्जन। दुर्वृत्त दुराचार। क्षुद्र अल्पबुद्धे। पापः अधर्म्यः पराक्रमो यस्य स पापपराक्रमः । उक्तमनार्यत्वं कार्यतो दर्शयति—अनार्यस्येति । ईदृशं जुगुप्सितं कर्म अनार्यस्यैव भवति। हे निर्घृण निर्दय, ते घृणा जुगुप्सा

सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम् ॥ १४ ॥ तद्वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ कृत्वा विकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतां परामृशत्॥१५॥ तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास रावणिः ॥ क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे॥१६॥ गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनुमान् दैन्यमागतः ॥ शोकजं वारि नेत्राभ्यामसृजन्मारुतात्मजः ॥ १७ ॥ तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥ अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम् ॥ १८॥ दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः ॥ ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः ॥ १९ ॥ धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ॥ २० ॥ नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम ॥ अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥ २१ ॥ च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली ॥ किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हन्तुमिच्छसि ॥२२॥ सीतां च हत्वा न चिरं जीविष्यसि कथंचन ॥ वधार्हकर्मणानेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

नास्ति । जुगुप्सा करुणा घृणा इत्यमरः ॥ २० ॥ २१ ॥ अपराधिषु घृणा न कर्तव्या अत एव एनां हन्मीत्याशङ्क्यापराधलेशोऽप्यस्यां नास्तीत्याह—च्युतेति ॥ गृहात् स्वसदनात् । चकारात् परिचारकेभ्यश्च। अनेन बन्धुमुखादपराधकरणं नास्तीत्युक्तम् । राज्यात् राज्योपकरणाच्च । अनेन सेनामुखेन नापराध इत्युक्तम् । रामहस्तात् रक्षकहस्ताच्च । तन्मुखादप्यपराधप्रसक्तिर्नास्तीत्युक्तम् । मैथिली आचारप्रधानकुले जाता । अनेनापराधस्वरूपमेव न जानातीत्युक्तम् । यत् येनापराधकार्येण एनां हन्तुमिच्छसि तादृशं किं प्रयोजनमुद्दिश्य । अपराद्धा अपराधं कृतवती । कर्तरि क्तः ॥ २२॥ २३ ॥

ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्येषु कुत्सिताः ॥ इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान् प्रतिपत्स्यसे ॥ २४ ॥ इति ब्रुवाणो हनुमान् सायुधैर्हरिभिर्वृतः ॥ अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ २५ ॥ आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् ॥ रक्षसां भीमवेगानामनीकं तु न्यवारयत् ॥ २६ ॥ स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ॥ हरिश्रेष्ठं हनूमन्तमिन्द्रजित्प्रत्युवाच ह ॥ २७ ॥ सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः ॥ तां हनिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥ २८ ॥ इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर ॥ सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं बिभीषणम् ॥ २९ ॥ न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत् ॥ ३० ॥ तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं तदा ॥ शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥ ३१ ॥ यज्ञोपवीतमार्गेण भिन्ना तेन तपस्विनी ॥ सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥ तामिन्द्रजित्स्वयं हत्वा हनुमन्तमुवाच ह ॥ ३२ ॥ मया रामस्य पश्येमां कोपेन च निषूदिताम् ॥ एषा विशस्ता वैदेही विफलो वः परिश्रमः ॥ ३३ ॥ ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम् ॥ हृष्टः स रथमास्थाय विननाद महास्वनम् ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ये चेति ॥ हे लोकवध्य, एषु चतुर्दशलोकेषु स्त्रीघातिनां ये कुत्सिताः लोकाः तान् इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य यातनाशरीरं प्राप्य प्रतिपत्स्यसे । प्राप्स्यसीत्यर्थः ॥ २४ ॥ इतीति ॥ सायुधैः सहननसाधनैः ॥ २५ ॥ आपतन्तमिति ॥ अनीकम् अनीकं च ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ न हन्तव्या इति ॥ यत् ब्रवीषि तत्रोत्तरं शृण्विति वाक्यशेषः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यज्ञोपवीतेति ॥ यज्ञोपवीतमार्गेण भिन्ना । मार्गशब्दः प्रकारवचनः । यज्ञोपवीतधारणप्रकारेण भिन्नेत्यर्थः । यज्ञोपवीतमादाय भिन्नेति पाठान्तरम् । पूर्वं मूर्धजेषु गृहीतामादाय । यज्ञोपवीतभिन्ना यज्ञोपवीतं यथा भवति तथा भिन्ना । यज्ञोपवीतप्रकारेण भिन्नेत्यर्थः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ यज्ञोपवीतमिति ॥ तेन इन्द्रजिता । आधूय मूर्धजेषु गृहीत्वा आधूय । यज्ञोपवीतं यथा भवति तथा भिन्ना । यज्ञोपवीतमार्गेण भिन्नेत्यर्थः ॥ ३२ ॥ मयेति ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ रामस्येमां रामसंबन्धिनीम् । राममहिषीमिति यावत् ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वानरा इति ॥ व्यादितास्यस्य व्यात्तास्यस्य । तद्दुर्गं व्यूहीकृतराक्षसपरिवेष्टनरूपम् ॥ ३५ ॥ तथा त्विति ॥ हृष्टरूपम् अत्यन्तहृष्टम् । विषण्णरूपाः अत्यन्तं विषण्णाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकाशीतितमः सर्गः ॥८१॥

वानराः शुश्रुवुः शब्दमदूरे प्रत्यवस्थिताः ॥ व्यादितास्यस्य नदतस्तद्दुर्गं संश्रितस्य च ॥ ३५ ॥ तथा तु सीतां विनिहत्य दुर्मतिः प्रहृष्टचेताः स बभूव रावणिः ॥ तं हृष्टरूपं समुदीक्ष्य वानरा विषण्णरूपाः सहसा प्रदुद्रुवुः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ ॥

श्रुत्वा तु भीमनिर्ह्रादं शक्राशनिसमस्वनम् ॥ वीक्षमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥ तानुवाच ततः सर्वान् हनुमान्मारुतात्मजः ॥ विषण्णवदनान् दीनांस्त्रस्तान् विद्रवतः पृथक् ॥ २ ॥ कस्माद्विषण्णवदना विद्रवध्वे प्लवङ्गमाः ॥ त्यक्तयुद्धसमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम् ॥ ३ ॥ पृष्ठतोनुव्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे ॥ शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम् ॥ ४ ॥ एवमुक्ताः सुसंहृष्टा वायुपुत्रेण वानराः ॥ शैलशृङ्गाण्यगांश्चैव जगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ५ ॥ अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान् वानरर्षभाः ॥ परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥ ६ ॥ स तैर्वानरमुख्यैश्च हनुमान् सर्वतो वृतः ॥ हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ७ ॥ स राक्षसानां कदनं चकार सुमहाकपिः ॥ वृतो वानरसैन्येन कालान्तकयमोपमः ॥ ८ ॥ स तु कोपेन चाविष्टः शोकेन च महाकपिः ॥ हनुमान् रावणिरथे पातयन्महतीं शिलाम् ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं दृष्ट्वैव रथः सारथिना तदा ॥ विधेयाश्वसमायुक्तः सुदूरमपवाहितः ॥ १० ॥ ॥

अथेन्द्रजितो निकुम्भिलायां होमारम्भः—श्रुत्वेत्यादि ॥ शक्राशनिसमस्वनम् शक्राशनिस्वनसममित्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥ कस्मादिति ॥ विद्रवध्वे विद्रवथ । आत्मनेपदमार्षम् ॥ ३ ॥ पृष्ठत इति ॥ अनुव्रजध्वम् अनुव्रजत । पदव्यत्यय आर्षः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥

तमिति ॥ व्यर्थमुद्यता व्यर्थं प्रयुक्ता ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३॥ते द्रुमानिति ॥ इन्द्रजितः इन्द्रजितं प्रति॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ शूलैरशनि-

तमिन्द्रजितमप्राप्य रथस्थं सहसारथिम् ॥ विवेश धरणीं भित्त्वा सा शिला व्यर्थमुद्यता॥ ११ ॥पातितायां शिलायां तु रक्षसां व्यथिता चमूः॥ निपतन्त्या च शिलया राक्षसा मथिता भृशम्॥१२॥तमभ्यधावञ्छतशो नदन्तः काननौकसः ॥१३॥ते द्रुमांश्च महावीर्या गिरिशृङ्गाणि चोद्यताः॥क्षिपन्तीन्द्रजितः संख्ये वानरा भीमविक्रमाः॥ १४॥वृक्षशैलमहावर्षं विसृजन्तः प्लवङ्गमाः ॥ शत्रूणां कदनं चक्रुर्नेदुश्च विविधैः स्वरैः ॥१५॥ वानरैस्तैर्महावीर्यैर्घोररूपा निशाचराः ॥ वीर्यादभिहता वृक्षैर्व्यवेष्टन्त रणाजिरे ॥१६॥ स्वसैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित् ॥ प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ॥ १७ ॥ स शरौघानवसृजन् स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥ जघान कपिशार्दूलान् स बहून् दृष्टविक्रमः ॥ १८ ॥ शूलैरशनिभिः खड्गैः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः ॥ ते चाप्यनुचरास्तस्य वानरान् जघ्नुरोजसा ॥ १९ ॥ सस्कन्धविटपैः सालैः शिलाभिश्च महाबलः ॥ हनुमान् कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ २० ॥स निवार्य परानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ हनुमान् सन्निवर्तध्वं न नः साध्यमिदं बलम् ॥ २१ ॥ त्यक्त्वा प्राणान् विवेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः॥ यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा॥२२॥ इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च ॥ तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्करिष्यामहे वयम्॥२३॥ इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन् सर्ववानरान् ॥ शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः सन्न्यवर्तत ॥ २४ ॥ ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः ॥ स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यनिकुम्भिलाम् ॥ २५ ॥ ॥ ॥ ॥

भिरिति ॥ अशनेरायुधत्वं शक्तिविशेषात् ॥ १९ ॥ २० ॥ स निवार्येत्यादि ॥ न साध्यं साधयितुमयोग्यम् । प्रयोजनाभावादिति भावः । तदेवाह–त्यक्त्वेति ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तत इति ॥ चैत्यनिकुम्भिलां चैत्ये विद्यमानं निकुम्भिलाख्यदेवतायतनमित्यर्थः ॥ २५ ॥

निकुम्भिलामित्यर्धम् ॥ जुहव जुहाव ॥२६॥२७॥ स इति ॥ होमशोणितं शोणितहोमः ॥ २८ ॥ अथेति ॥ नयानयज्ञाः शास्त्रीयाशास्त्रीयविदः ॥२९॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२॥ ॥

निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहवेन्द्रजित् ॥ २६ ॥ यज्ञभूम्यां तु विधिवत्पावकस्तेन रक्षसा ॥ हूयमानः प्रजज्वाल मांसशोणितभुक्तदा ॥ २७ ॥ सोर्चिःपिनद्धो ददृशे होमशोणिततर्पितः ॥ सन्ध्यागत इवादित्यः सुतीव्रोग्निः समुत्थितः ॥ २८ ॥ अथेन्द्रजिद्राक्षसभूतये तु जुहाव हव्यं विधिना विधानवित् ॥ दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते महासमूहेषु नयानयज्ञाः ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ ॥

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् ॥ श्रुत्वा सङ्ग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ १ ॥ सौम्य नूनं हनुमता क्रियते कर्म दुष्करम् ॥ श्रूयते हि यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥ २ ॥ तद्गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥ ३ ॥ ऋक्षराजस्तथोक्तस्तु स्वेनानीकेन संवृतः ॥ आगच्छत्पश्चिमं द्वारं हनुमान् यत्र वानरः ॥ ४ ॥ अथायान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिः पथि ॥ वानरैः कृतसङ्ग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् ॥ नीलमेघनिभं भीमं सन्निवार्य न्यवर्तत ॥ ६ ॥ स तेन हरिसैन्येन सन्निकर्षं महायशाः ॥ शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ समरे युद्ध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां पुरः ॥ जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ ८ ॥ उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोहमरिन्दम ॥ तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥

अथ मायासीतावधमूर्छितरामसान्त्वनं त्र्यशीतितमे—राघवश्चापीत्यादि ॥ जाम्बवन्तं यदृच्छया सन्निहितम् ॥१॥ सौम्येति ॥ यथा यतः ॥२॥ ३ ॥ ४ ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ अथेति ॥ वानरैः कृतसङ्ग्रामैरिति पाठः ॥५॥ ६ ॥ स तेनेति ॥ हरिसैन्येन सह । सन्निकर्षम् । रामस्येति शेषः ॥७॥८॥९॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्छितः ॥ निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥१०॥ तं भूमौ देवसंकाशं पतितं प्रेक्ष्य राघवम् ॥ अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥११॥ असिञ्चन् सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ॥ प्रदहन्तमनासाद्यं सहसाग्निमिवोच्छिखम् ॥ १२ ॥ तं लक्ष्मणोथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः ॥ उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम् ॥ १३ ॥ शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तं त्वामार्य विजितेन्द्रियम् ॥ अनर्थेभ्यो न शक्नोति त्रातुं धर्मो निरर्थकः ॥१४॥ भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानां च दर्शनम् ॥ यथास्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः ॥१५॥ यथैव स्थावरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम् ॥ नायमर्थस्तथा युक्तस्त्वद्विधो न विपद्यते ॥ १६ ॥ ॥

॥ १० ॥ ११ ॥ असिञ्चन्निति ॥ उच्छिखम् उद्गतज्वालम् । अर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियामित्यमरः ॥ १२ ॥ तमिति ॥ हेत्वर्थसंयुतं हेतुरुपपत्तिः अर्थः प्रयोजनम् । हेतुरूपोर्थोभिधेयो हेत्वर्थ इति वा ॥ १३ ॥ एवं सीताहननश्रवणजनितमनवधिकमधैर्यमाश्रयन्तं राममाश्वासयितुं लक्ष्मणोन्वारुह्यवादेन धर्माधर्मयोः स्वरूपं खण्डयन्नीतिशास्त्रानुसारेण बलमेव प्रधानतयालम्ब्यतामित्याह–शुभ इत्यादिना सर्गशेषेण ॥ पितृवाक्यपरिपालनादिरूपे शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तम् । स्थिरतया तदनुतिष्ठन्तमित्यर्थः । विजितेन्द्रियं हस्तप्राप्तराज्यपरित्याजकयोः कैकेयीदशरथयोरुपर्यपि मनःकालुष्याभावेन विजितेन्द्रियं त्वाम् । निरर्थकः अवस्तुभूतः । अप्रामाणिक इति यावत् । शशविषाणवत् केवलव्यवहारमात्रावलम्बनो धर्मः अनर्थेभ्यः व्यसनेभ्यः त्रातुं व्यसनानि निवारयितुम् न शक्नोति । सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यन्त इति न्यायादिति भावः । निरर्थकमेव त्वया पितृवचनपरिपालनमारब्धम् । आदावेव मयोक्तमिति भावः । धर्म इत्युपलक्षणम् । अधर्मोपि निरर्थकः सन् रावणमर्थेभ्यो न निवारयितुं शक्नोतीत्यर्थः ॥ १४ ॥ ननु कथमनयोरप्रामाणिकत्वमित्यपेक्षायां तत्र किं प्रत्यक्षं प्रमाणम् उतानुमानम् अथ शब्दो वा, नाद्य इत्याह–भूतानामिति ॥ स्थावराणां जङ्गमानां च भूतानां पदार्थानाम् यथा दर्शनं प्रत्यक्षत उपलम्भनम् अस्ति । तथा धर्माधर्मयोः दर्शनं न अस्तीत्यनुषङ्गः । तेन अदर्शनेन धर्मोऽधर्मश्च नास्तीति मे मतिः निर्णयः ॥ १५ ॥ उक्तमेवार्थं प्रत्यक्षानुग्राहकेण तर्केण द्रढयति–यथेति ॥ यथैव स्थावरं व्यक्तं प्रत्यक्षत उपलब्धम् । जङ्गमं च तथाविधं व्यक्तं भवति । अयं धर्माधर्मरू-

यद्यधर्मो भवेद्भूतो रावणो नरकं व्रजेत् ॥ भवांश्च धर्मयुक्तो वै नैवं व्यसनमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ तस्य च
व्यसनाभावाद्व्यसनं च गते त्वयि ॥ धर्मो भवत्यधर्मश्च परस्परविरोधिनौ ॥ १८ ॥ धर्मेणोपलभेद्धर्म-
मधर्मं चाप्यधर्मतः ॥ यद्यधर्मेण युज्येयुर्येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १९ ॥ ॥ ॥

पोर्थः तथा युक्तो न भवति, तथा प्रत्यक्षो न भवतीत्यर्थः । यदि कश्चिद्धर्मोऽधर्मो वार्थः प्रत्यक्षसिद्धः स्यात् तर्हि स जङ्गमतया वा स्थावरतया दृश्येत । न च दृश्यते । तस्मान्नासौ प्रत्यक्ष इति भावः । किं च त्वद्विधो न विपद्यते । धर्मस्य प्रत्यक्षसिद्धतया सद्भावे त्वद्विधः धार्मिकः विपत्तिं नाप्नुयात् । रावणश्चार्थं न प्राप्नुयादित्यपि द्रष्टव्यम् ॥ १६ ॥ नाप्यनुमानं धर्माधर्मयोः प्रमाणमित्याह–यदीति ॥ यद्यधर्मो भूतो भवेत् तदा अधर्मयुक्तो रावणः नरकं व्रजेत् व्यसनं गच्छेत् । यदि धर्मो भूतो भवेत् तदा धर्मयुक्तो भवांश्च एवं व्यसनं नाप्नुयात् । व्यसनाव्यसनरूपकार्याभ्यां हि धर्माधर्मावनुमेयौ । न तथा संभवति । धार्मिकतयाभिमते त्वयि व्यसनदर्शनात् । अधार्मिकतयाभिमते रावणे व्यसनादर्शनाच्च । साध्यवति पक्षे हेत्वभावात् स्वरूपासिद्धो हेतुरित्यर्थः ॥१७॥विरुद्धत्वाच्च सुखदुःखयोः कार्ययोर्न धर्माधर्मानुमापकत्वमित्याह–तस्य चेति॥तस्य चाधर्मिष्ठस्य रावणस्य व्यसनाभावात् । व्यसनाभावशब्देन सुखं लक्ष्यते । सुखसद्भावादित्यर्थः । त्वयि च परमधार्मिके व्यसनं दुःखम् गते सति धर्मः अधर्मो भवति अधर्मफलप्रदो भवति । चकारादधर्मोपि धर्मफलाभ्युदयप्रदो भवतीति लभ्यते । अत एव परस्परविरोधिनौ स्वाभावव्याप्तहेतुकावित्यर्थः ॥ १८ ॥ व्यभिचाराद्व्याप्यत्वासिद्धत्वाद्वा न ताभ्यां तदनुमानमित्याह–धर्मेणेत्यादिना निरर्थकावित्यन्तेन ॥ उपलभेदित्यत्र काकुः । धर्मेण धर्मानुष्ठानेन धर्मं धर्मफलं सुखम् उपलभेत् । अधर्मतः अधर्मानुष्ठानेन अधर्मफलं दुःखम् उपलभेत् । उपलभेतेति मन्यसे किमित्यर्थः । एवमनूद्य तत्र दूषणमाह–यदीति । येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः । ये अधार्मिका इति यावत् । ते अधर्मेण अधर्मफलेन यदि युज्येयुः युज्येरन् । नाधर्मरुचयो जनाः । धर्मरुचय इति यावत् । द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयत इति न्यायात् । ते धर्मेण धर्मफलेन यदि युज्येरन्, तदा धर्मेण चरतामेषां जनानाम् धर्मः धर्मफलं सुखम् भवेत् । चकारात् अधर्मेण चरतां दुःखं भवेदिति सिद्धम् । न चैवमित्याह–यस्मादिति । अनेन च हिताहितप्राप्तिलक्षणकार्ययोरनियतत्वेन व्याप्त्यभावान्न ताभ्यां धर्माधर्मावनुमातुं शक्याविति व्याप्यत्वासिद्धिर्व्यभिचारो वा दर्शितः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

यदि धर्मेण युज्येरन्नाधर्मरुचयो जनाः ॥ धर्मेण चरतां धर्मस्तथा चैषां फलं भवेत् ॥ २० ॥ यस्मादर्था विवर्धन्ते येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ॥ क्लिश्यन्तेऽधर्मशीलाश्च तस्मादेतौ निरर्थकौ ॥ २१ ॥ वध्यन्ते पापकर्माणो यद्यधर्मेण राघव ॥ वधकर्महतो धर्मः स हतः कं वधिष्यति ॥ २२ ॥ अथ वा विहितेनायं हन्यते हन्ति वा परम् ॥ विधिरालिप्यते तेन न स पापेन कर्मणा ॥ २३ ॥ अदृष्टप्रतिकारेण त्वव्यक्तेनासता सता ॥ कथं शक्यं परं प्राप्तुं धर्मेणारिविकर्शन ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ २० ॥ २१ ॥ शब्दोपि न धर्माधर्मयोः प्रमाणमित्याह–वध्यन्त इति ॥ हे राघव । पापकर्माणः पापिनः । अधर्मेण कर्मरूपेण । वध्यन्ते यदि बाध्यन्ते चेत् । वधकर्म वधकर्मरूपोऽधर्मः । धर्मस्याप्युपलक्षणम् । हतः त्रिक्षणावस्थायित्वेन ध्वस्तो भवति । शब्दबुद्धिकर्मणां त्रिक्षणावस्थायित्वात् । हतः सः कं वधिष्यति । कं श्रेयसि नियोक्ष्यतीत्यपि द्रष्टव्यम् । धर्माधर्मयोः क्रियारूपयोः क्षणिकत्वेन कालान्तरभाविफलजनकत्वासंभवात् बाधितविषयो वेदो ग्रावप्लवनादिवाक्यवदुपचरितार्थक इति भावः ॥२२॥ कर्मणः क्षणध्वंसित्वेपि तदाराधिता देवतैव फलप्रदेत्यत्राह–अथ वेति ॥ विहितेन विधिना । देवतयेत्यर्थः । अयं जनः । हन्यते बाध्यते । परम् अन्यम् । हन्ति वा बाधते वा । एवं यदि तेन पापेन कर्मणा पापफलभूतदुःखेन । विधिरेव आलिप्यते संबध्यते । सः प्रयोज्यकर्ता नालिप्यते । अस्य न्यायस्य पुण्यकर्मण्यपि तुल्यत्वात् सुखेनापि प्रयोज्यो न संबध्यते । यदि हि सत्कर्माराधितः असत्कर्माप्रीतो वा ईश्वरः धर्माधर्मशब्दवाच्यः स्यात्, तर्हि स एव सुखदुःखभागी कारयिता स्यात् । न तु प्रयोज्य इति भावः ॥ २३ ॥ ननु यथा स्वतन्त्रो राजा लीलार्थं कामपि मर्यादां प्रवर्त्य तदनुवर्तिनमनुगृह्णाति तदतिलङ्घिनं निगृह्णाति च । तथेश्वरोपि स्वाज्ञारूपकर्मानुष्ठायिनमनुगृह्णाति । तदननुष्ठायिनं विपरीतानुष्ठायिनं च निगृह्णातीति चेन्न । स हि किं स्वार्थमनुगृह्णाति उत परार्थम् । नाद्यः । अवाप्तसमस्तकामस्यावाप्तव्याभावात् । न द्वितीयः । कंचन विरिंचनं कंचनाकिंचनं च वितन्वतस्तस्य पक्षपातनैर्घृण्यापत्तेः । तत्तत्कर्मानुगुणतया सृष्टेर्न पक्षपातादिप्रसक्तिरिति चेन्न । समीचीने कर्मण्यप्रवर्तयतस्तस्य सर्वज्ञस्य निर्दयत्वापत्तेः । अनादिकर्मप्रवाहकृतपूर्वपूर्वकर्मानुगुण्येन पुनः पुनः सदसतोः कर्मणोः पुरुषं प्रवर्तयतीति चेत्,

तर्हि कस्यचिन्नियमेन दुःखं कस्यचिन्नियमेन सुखं च स्यात् । नच तथा दृश्यते, अनियमदर्शनात् । तर्हि कर्मजन्यो पूर्वरूपोतिशयः फलप्रदो धर्म इत्याशङ्क्याह–अदृष्टेति ॥ हे अरिविकर्शन । प्रतिक्रियते परप्रतिपत्तिर्जन्यत इति प्रतिकारो लिङ्गम् । अदृष्टप्रतिकारेण अदृष्टलिङ्गेन अनुमानागम्येनेत्यर्थः । अव्यक्तेन अप्रत्यक्षेण । असता सता असद्भूतेन अग्नीन्द्रादिवदर्थवादवाक्येनागम्येन । धर्मेण अपूर्वाख्येन परं श्रेयः कथं प्राप्तुं शक्यम् । न शक्यमित्यर्थः ॥ २४ ॥ उक्तमेवार्थं पुनस्तर्केण दृढीकरोति–यदीति ॥ हे सतां मुख्य । यदि सत् स्यात् । धर्माख्यं वस्त्विति शेषः । धार्मिकस्य तव असत् अनिष्टम् किंचन न स्यात् । तर्कस्य विपर्यये पर्यवसानमाह–त्वयेति । यत् यस्मात्कारणात्, त्वया ईदृशं दुःसहं व्यसनं प्राप्तम् । तस्मात्सन्नोपपद्यते । असदेव भवतीत्यर्थः । कार्यानुपलम्भादपूर्वाख्यधर्मो न कल्प्य इत्यर्थः ॥ २५ ॥ ननु न

यदि सत्स्यात्सतां मुख्य नासत्स्यात्तव किंचन ॥ त्वया यदीदृशं प्राप्तं तस्मात्सन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥
अथ वा दुर्बलः क्लीबो बलं धर्मोनुवर्तते ॥ दुर्बलो हृतमर्यादो न सेव्य इति मे मतिः ॥ २६ ॥ बलस्य यदि चेद्धर्मो गुणभूतः पराक्रमे ॥ धर्ममुत्सृज्य वर्तस्व यथा धर्मे तथा बले ॥ २७ ॥ अथ चेत्सत्यवचनं धर्मः
किल परन्तप ॥ अनृतस्त्वय्यकरुणः किं न बद्धस्त्वया पिता ॥ २८ ॥ ॥

कार्यानुपलम्भमात्रादर्थस्याभावो निश्चेतुं शक्यः, अतीन्द्रियोच्छेदापत्तेः । किं तु सहकारिसम्पत्तौ सत्यां कार्यानुपलम्भः कारणत्वाभावं साधयति । सहकारि च पौरुषम् । अतस्तदभावात्फलानुदय इत्यत आह–अथ वेति ॥ दुर्बलः बलरहितः निरपेक्षतया कार्याक्षमः । अत एव क्लीबः कातरः स्वतः कार्यकरणासमर्थः । धर्मः बलमनुवर्तते । कार्योत्पादने पौरुषमपेक्षत इत्यर्थः । एवं चेद्दुर्बलो हृतमर्यादः स्वातन्त्र्येण फलप्रदत्वमर्यादाहीनो धर्मः प्राधान्येन न सेव्य इति मे मतिः ॥ २६ ॥ प्रधानभूतं बलमेवाश्रयणीयमित्याह–बलस्येति ॥ पराक्रमे कार्यसाधने विषये, बलस्य धर्मः गुणभूतो यदि चेत् उपसर्जनभूतो यदि स्यात्, तदा यथेदानीं धर्मे वर्तसे; तथा धर्ममुत्सृज्य धर्मप्राधान्यमुत्सज्य, धर्मे इव बलेपि वर्तस्व ॥ २७ ॥ एवं सामान्येन धर्मे दूषितेपि सत्यवचनरूपधर्मविशेषस्य रामेण प्राधान्येनानुरोधात्तत्पृथक् दूषयति–अथेति ॥ हे परंतप । सत्यवचनं

धर्मः किल अथ चेदेवं चेत् , अनृतः त्वामभिषेक्ष्यामीत्युक्त्वा तदकरणेन सत्यत्वरहितः। अनृतमिति पाठे वदन्निति शेषः। त्वयि सकलकल्याणगुणाश्रये ज्येष्ठपुत्रे अकरुणः राज्याद्वनं प्रति निष्कासनान्निर्दयः अतो वन्धयोग्यः पिता त्वया पितृवचनं करिष्यामीति कृतप्रतिज्ञेन त्वया किन्न वद्धः किं न नियमितः। सर्वप्रजासन्निधौ राममभिषेक्ष्यामीत्युक्तं प्राथमिकं पितृवचनं परित्यज्य पाश्चात्यं वनगमनविषयं पितृवचनं करिष्यामीति कृतप्रतिज्ञेन त्वया पालयता सत्यवचनमपि सम्यक् पालितमिति भावः ॥२८॥ धर्माधर्मयोः सद्भावेपि राज्ञा धर्मोधर्मो वा नियमेन नानुष्ठातव्यः। किन्तु तत्तत्कालप्रयोजनानुगुण्येनोभावपि कर्तव्यावित्यत्र शिष्टाचारं प्रमाणयति—यदीति ॥ भूतो अधर्मो वेत्यत्र वृत्तानुरोधाय सन्ध्यभावः । यदि धर्मो भवेद्भूतः। यदि केवलं कर्म एवानुष्ठेयत्वेन प्राप्तो भवेत् , तदा वज्री शतक्रतुः मुनिं विश्वरूपं हत्वा इज्यां न कुर्यात्, किन्त्विज्यामेव कुर्यात्। अधर्मो वा।

यदि धर्मो भवेद्भूतो अधर्मो वा परन्तप॥ न स्म हत्वा मुनिं वज्री कुर्यादिज्यां शतक्रतुः॥ २९ ॥ अधर्मसंश्रितो
धर्मो विनाशयति राघव॥ सर्वमेतद्यथाकामं काकुत्स्थ कुरुते नरः ॥ ३० ॥ मम चेदं मतं तात
धर्मोयमिति राघव ॥ धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा ॥ ३१ ॥ ॥ ॥

केवलमधर्मो वा यद्यनुष्ठेयः स्यात् , तदा शतक्रतुः वज्री मुनिं हत्वा इज्यां न कुर्यात् , किंतु हननमेव कुर्यात्। क्षत्रधर्मनिष्ठेनेन्द्रेण धर्माधर्मयोरनुष्ठितत्वाद्राज्ञा यथाकालमुभयमपि कर्तव्यमिति भावः। यान्येतानि देवक्षत्राणीन्द्रो वरुणः पर्जन्यो यम ईशान इतीन्द्रस्य क्षत्रियत्वं श्रूयते ॥ २९ ॥ इदानीमभ्युपगमवादेनैकान्ततो धर्माधर्मयोरेकस्याश्रयणमनर्थपर्यवसायीत्याह—अधर्मेति ॥ अधर्मसंश्रितो धर्मः अधर्मसहितो धर्मः। धर्मश्चाधर्मश्चेत्यर्थः । विनाशयति कर्तारमिति शेषः। नियमेन पृथक् पृथगनुष्ठीयमानौ धर्माधर्मौ कर्तारं विनाशयतः। अत एवैतत्सर्वं धर्माधर्मात्मकं सर्वं कर्मजातम् यथाकामं तत्तत्कालोचितम् अनियमेन नरः कुरुते। कुर्यादित्यर्थः॥ ३० ॥ अस्मिन्नर्थे न मे संदेह इत्याह—ममेति ॥ हे तात अनुकम्प्य । तातोनुकम्प्ये पितरि इति रत्नमाला। इदं याथाकाम्येनाचरणं यदस्ति अयं धर्म इति मम मतं सिद्धान्त इत्यर्थः। एवं प्रथमं धर्म एवाप्रामाणिक इत्युक्तम् । पश्चात्कथंचित् प्रामाणिकत्वसम्भवेपि न तस्य प्राधान्यमित्युक्तम्। इदानीमप्राधान्येनापि धर्मस्तव न सम्भवति, मूलाभावादित्याह—धर्ममूलमित्यादि-

ना। धर्मस्य मूलं कारणम् अर्थरूपम्, तदा प्राप्तकाले, राज्यमुत्सृज्यता त्वया छिन्नम्। मूलच्छेदात्तव कथं धर्म इत्यर्थः ॥ ३१॥ तदेव धर्ममूलत्वमर्थस्य प्रतिपादयति—अर्थेभ्य इति ॥ ततस्ततः प्रजापालनाय प्रदेयषड्भागकरप्रदानादिकारणात् संवृत्तेभ्यः प्राप्तेभ्यः क्रमादिवृद्धेभ्यो अर्थेभ्यः सर्वाः क्रियाः यज्ञदानादिक्रियाः प्रवर्तन्ते। पर्वतेभ्य इत्युपमानेन मूलधनव्ययमकृत्वैवार्थमूलतया दानादिक्रियाः कार्या इत्युक्तम् ॥ ३२ ॥ व्यतिरेकमुखेनापि तदेव प्रतिपादयति—अर्थेनेत्यादिना ॥ कुसरितः अल्पसरितः ॥ ३३ ॥ न केवलमर्थपरित्यागेन धर्मासम्भवः किं तु दोषप्राप्तिरपीत्याह—

अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः ॥ क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥ ३२ ॥ अर्थेन
हि वियुक्तस्य पुरुषस्याल्पतेजसः ॥ व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ ३३ ॥ सोयमर्थं
परित्यज्य सुखकामः सुखैधितः ॥ पापमारभते कर्तुं ततो दोषः प्रवर्तते ॥ ३४ ॥ यस्यार्थास्तस्य मि-
त्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ॥ यस्यार्थाः स पुमान् लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥ ३५ ॥ यस्यार्थाः
स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ॥ यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स महागुणः ॥ ३६ ॥ अर्थ-
स्यैते परित्यागे दोषाः प्रव्याहृता मया ॥ राज्यमुत्सृजता वीर येन बुद्धिस्त्वया कृता ॥ ३७ ॥ ॥

सोयमिति ॥ सुखैधितः पूर्वं सुखेन संवर्धितः, सोयम् अर्थपरित्यागी अर्थं प्राप्तं परित्यज्य सुखकामः सन्, पापम् अन्यायेनार्थार्जनम् सुखसाधनभूतधनसम्पादनार्थं स्तेयादिपापम् आरभते। ततः तेन कर्मणा दोषः प्रवर्तत इत्यर्थः॥३४॥यस्यार्थास्तस्य मित्राणीत्यादिश्लोकद्वयं क्वचित्पठ्यते ॥ पुमान् पुंस्त्ववान्। अन्यः स्त्रीप्राय इत्यर्थः। महाभागः महाभाग्यः। महागुणः शीलादिगुणवान् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अर्थस्येति ॥ अर्थस्य परित्यागे एते पूर्वोक्तगुणप्रतियोगिनो निर्मित्रत्वादयो दोषाः, प्रव्याहृताः स्पष्टमुक्ताः। राज्यमुत्सृजता त्वया येन गुणेन बुद्धिः अर्थपरित्यागविषया कृता तं गुणं जान इत्यर्थः । यद्वा राज्यमुत्सृजता त्वया। येन कारणेनार्थपरित्यागे बुद्धिः कृता तेन कारणेन एते दोषाः मया प्रव्याहृता इत्यर्थः ॥ ३७ ॥

यस्येति ॥ धर्मकामार्थाः धर्मकामप्रयोजनानि । प्रदक्षिणम् अनुकूलम् । प्रतिष्ठितमिति वा पाठः । व्यतिरेकमुखेनाप्याह—अधनेनेति । अधनेन धनं विना अर्थकामेनापि । विचिन्वता अर्थार्जनव्यापारं कुर्वता पुरुषेण । अर्थः श्रेयः । न शक्यं न साधयितुं शक्यम् । अव्ययमेतत् । शक्यमरविन्दसुरभीति प्रयोगात् ॥ ३८ ॥ न केवलमर्थकामावेव धनमूलौ, अन्येपि तथेत्याह—हर्ष इति ॥ प्रवर्तन्ते प्रकृष्टा निवर्तन्ते । शोभन्त इत्यर्थः । असतो निर्धनस्य शमदमौ हि धनलाभे निवर्तेते ॥ ३९ ॥ न केवलमामुष्मिकश्रेयःसाधनभूतोर्थः, किं तु ऐहिकश्रेयःसाधनं चेति व्यतिरेकमुखेन

यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम्॥ अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विचिन्वता॥३८॥ हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः ॥ अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥३९॥ येषां नश्यत्ययं लोकश्चरतां धर्मचारिणाम् ॥ तेर्थास्त्वयि न दृश्यन्ते दुर्दिनेषु यथा ग्रहाः ॥ ४० ॥ त्वयि प्रव्राजिते वीर गुरोश्च वचने स्थिते ॥ रक्षसापहृता भार्या प्राणैः प्रियतरा तव ॥ ४१ ॥ तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् ॥ कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रतिपादयन् तादृशोर्थस्त्वयि नास्तीत्याह—येषामिति ॥ येषां चरतामित्यनादरे षष्ठी । येषां चरतां यान् चरतो विद्यमानानर्थाननादृत्य धर्मचारिणां केवलं धर्ममाचरताम् अयं लोको नश्यति । ऐहिकसुखं नास्तीत्यर्थः । ते तादृशाः सुखसाधनभूताः अर्थाः दुर्दिनेषु मेघछन्नदिनेषु । मेघच्छन्नेह्नि दुर्दिनमित्यमरः । सूर्यादयो ग्रहाः यथा न दृश्यन्ते, तथा त्वयि न दृश्यन्ते । सकलश्रेयःसाधनभूता अर्थास्त्वया नादृता इत्यर्थः ॥ ४० ॥ अर्थहेतुभूतराज्यपरित्यागेन पितृवचनपरिपालनरूपकेवलधर्मावलम्बनेन च प्राप्तं दोषमाह—त्वयीति ॥ प्राणैः प्राणेभ्यः । प्राणैस्तुल्यं प्रियतरेति वार्थः ॥ ४१ ॥ एवं गते किं करणीयमित्यत्राह—तदद्येति ॥ भवत्कर्मणा प्राप्तं दुःखं मत्कर्मणा व्यपनेष्यामीत्यर्थः । कृतप्रतिक्रियया तद्दुःखं निवारयिष्यामीति भावः ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एवं भक्तिवादानुक्त्वा क्षमापणं विदधाति–उत्तिष्ठेति ॥ आत्मानं स्वम्। महात्मानम् महाबुद्धिम् । आत्मानं परमात्मानम्। किं नावबुध्यसे। तस्मात् भवतः शोककारणं नास्तीति हृदयम्॥४३॥अयमिति ॥ अयम् अहं तव विधेयत्वेन सन्निहितः, तव प्रियार्थम् उदितः उद्युक्तः उत्पन्नो वा। अनेन दुःखं व्यपनेष्यामीत्येतद्विवृतम्॥४४॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्र्यशीतितमः सर्गः ॥८३॥
अथेन्द्रजिद्वधोपायदर्शनम्–राममाश्वासयान इत्यादि॥ आश्वासयाने आश्वासयमाने। आगमशासनस्यानित्यत्वान्मुगभावः। अनेन पूर्वोक्तवादा भ्रातृवात्सल्यात्तदाश्वासनार्था न तु परमार्था इत्युक्तम्। पूर्वोक्तयुक्तिपरिहारस्तु, हैतुकान् बकवृन्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेदिति मनूक्तरीत्या प्रेक्षणीयः। गुल्मान् सेनासन्निवेशान्। स्वस्थाने स्वकार्यकरणार्थम् ॥ १ ॥ २ ॥ सोभिगम्येति ॥ अत्र राघवपदं लक्ष्मणपरम्। उत्तरश्लोके रामदर्शनस्य वक्ष्यमाणत्वात्। ददृशे ददर्श ॥ ३ ॥ ४॥ व्रीडितमिति ॥ सः विभीषणः रामं दृष्ट्वा दीनात्मा दीनमनस्कः सन्, अन्तर्दुःखेन अबहिःप्रकटितदुःखविकारेण उपलक्षितः सन् अब्रवीत् ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो दृढव्रत ॥ किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥४३॥ अयमनघ तवोदितः प्रियार्थं जनकसुतानिधनं निरीक्ष्य रुष्टः ॥ सहयगजरथां सराक्षसेन्द्रां भृशमिषुभिर्विनिपातयामि लङ्काम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ ॥ ॥

राममाश्वासयाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले ॥ निक्षिप्य गुल्मान् स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥ १ ॥ नानाप्रहरणैर्वीरैश्चतुर्भिः सचिवैर्वृतः ॥ नीलाञ्जनचयाकारैर्मातङ्गैरिव यूथपः ॥ २ ॥ सोभिगम्य महात्मानं राघवं शोकलालसम् ॥ वानरांश्चैव ददृशे बाष्पपर्याकुलेक्षणान् ॥ ३ ॥ राघवं च महात्मानमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ॥ ददर्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्कमाश्रितः ॥ ४ ॥ व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं बिभीषणः ॥ अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोब्रवीत् ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

बिभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान् ॥ लक्ष्मणोवाच मन्दार्थमिदं बाष्पपरिप्लुतः ॥ ६ ॥ हतामिन्द्रजिता सीतामिह श्रुत्वैव राघवः ॥ हनुमद्वचनात्सौम्य ततो मोहमुपागतः ॥ ७ ॥ कथयन्तं तु सौमित्रिं सन्निवार्य बिभीषणः ॥ ८ ॥ मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तं च हनूमता ॥ तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥ ९ ॥ अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः ॥ सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥ १० ॥ याच्यमानस्तु बहुशो मया हितचिकीर्षुणा ॥ वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत्कृतवान् वचः ॥ ११ ॥ नैव साम्ना न दानेन न भेदेन कुतो युधा ॥ सा द्रष्टुमपि शक्येत नैव चान्येन केनचित् ॥ १२ ॥ वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः ॥ चैत्यं निकुम्भिलां नाम यत्र होमं करिष्यति ॥ १३ ॥ हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ॥ दुराधर्षो भवत्येव सङ्ग्रामे रावणात्मजः ॥ १४ ॥ तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ॥ विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ॥ १५ ॥ ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते ॥ त्यजेमं नरशार्दूल मिथ्या सन्तापमागतम् ॥ सीदते हि बलं सर्वं दृष्ट्वा त्वां शोककर्शितम् ॥ १६ ॥

बिभीषणमुखमिति ॥ लक्ष्मणोवाचेत्यत्र छान्दसः सुलोपः । मन्दार्थम् अल्पार्थम् । संगृहीतार्थमित्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ कथयन्तमित्यर्धम् ॥ मध्ये निवारणोक्तिः सर्वस्य वृत्तान्तस्य स्वेनावगतत्वात् । बिभीषणः उवाचेति शेषः ॥ ८ ॥ ९ ॥ अभिप्रायं त्विति ॥ करिष्यति । रावण इति शेषः ॥ १० ॥ तत्र हेतुमाह—याच्यमान इत्यादिना ॥ ११ ॥ नैवेति ॥ सा साम्ना द्रष्टुमपि नैव शक्येत । दानेनापि द्रष्टुं न शक्येत । भेदेनापि द्रष्टुं न शक्येत । युधा दण्डेन कुतो द्रष्टुमपि शक्येत । अन्येन मायोपायेन केनचिद्द्रष्टुमपि नैव शक्येत ॥ १२ ॥ कथं तर्हीन्द्रजिता हतेत्याशङ्क्य मायेयमित्याह—वानरानित्यादिना ॥ मोहयित्वा । लङ्कायां स्वव्यतिरिक्तस्य योद्धुरभावात् स्वस्मिन् कर्मव्याकुले वानराः प्रहरेयुः यज्ञश्च विच्छिद्येत विच्छिन्ने च तस्मिन् ब्रह्मवरानुसारेण स्वस्य विनाशो भविष्यतीति मत्वा वञ्चनमिति भावः ॥ १३ ॥ १४ ॥ तेनेति ॥ अन्विच्छता चिन्तयता ॥ १५ ॥ ससैन्या इत्यादि ॥ तत् होमरूपं कर्म ॥ १६ ॥

इहेति ॥ सैन्यानुकर्षिभिः सैन्यपालैः ॥ १७ ॥ एष इति ॥ तत् कर्म होमकर्म । णिजन्तत्वाद्द्विकर्मकत्वम् ॥ १८ ॥ तस्येति ॥ एते लक्षणीयाः । पत्रिपत्राणि पक्षिपक्षाः, तेषामङ्गानि वर्हाणि, तैः वाजिनः वेगवन्तः ॥ १९ ॥ २० ॥ मनुजेति ॥ यद्यस्मात्कारणात् रिपुनिधनं प्रति कालविप्रकर्षः कालविलम्बः अद्य कर्तुं न क्षमः । तत्तस्मात् त्वं रिपुवधाय वाणीमतिसृज । आज्ञापयेत्यर्थः । यथा महेन्द्र इत्यापन्मात्रे दृष्टान्तः ॥ २१ ॥ २२ ॥ इति

इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्वसमुच्छ्रितः॥ लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः॥१७॥ एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः ॥ त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति ॥ १८ ॥ तस्यैते निशितास्तीक्ष्णाः पत्रिपत्राङ्गवाजिनः ॥ पतत्रिण इवासौम्याः शराः पास्यन्ति शोणितम्॥१९॥ तं सन्दिश महाबाहो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ राक्षसस्य विनाशाय वज्रं वज्रधरो यथा॥२०॥ मनुजवर न कालविप्रकर्षो रिपुनिधनं प्रति यत्क्षमोद्य कर्तुम् ॥ त्वमतिसृज रिपोर्वधाय वाणीममररिपोर्मथने यथा महेन्द्रः ॥ २१॥ समाप्तकर्मा हि स राक्षसाधिपो भवत्यदृश्यः समरे सुरासुरैः॥ युयुत्सता तेन समाप्तकर्मणा भवेत्सुराणामपि संशयो महान् ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोककर्शितः ॥ नोपधारयते व्यक्तं यदुक्तं तेन रक्षसा ॥ १ ॥ ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरञ्जयः ॥ बिभीषणमुपासीनमुवाच कपिसन्निधौ ॥२॥ नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते बिभीषण ॥ भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥३॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ यत्तत्पुनरिदं वाक्यं बभाषे स बिभीषणः ॥ ४ ॥

श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरोटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ ॥ ॥

अथेन्द्रजिद्वधाय लक्ष्मणनिर्गमनम्—तस्य तद्वचनमित्यादि ॥ व्यक्तं नोपधारयते । हृदि सम्यङ्निधातुं नाशकदित्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥ नैर्ऋतेति ॥ ते त्वया ॥ ३ ॥ राघवस्येति ॥ यत्तत् पुनरिति । यद्वाक्यं पूर्वमुक्तवान् तदिदं पुनर्बभाष इत्यन्वयः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

यथाज्ञप्तमित्याद्युक्तिः रामस्य व्याकुलत्वनिवारणाय ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ त्वयीति ॥ सन्तापं सन्तापं च । मिथ्येति शोकसन्तापयोर्विशेषणम् । सन्तापः शोककार्यमिति तयोर्भिदा ॥ ८ ॥ तदिति ॥ उद्यमः उत्साहः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ तेनेति ॥ ब्रह्मशिरः ब्रह्मशिरःसंज्ञकमस्त्रम् । तुरङ्गमशब्दो रथस्याप्युपलक्षणम् । प्राप्तम् । होमद्वारेति शेषः ॥ १३ ॥ स एष इति ॥ यदीति । यदि च निकुम्भिलाया उत्तिष्ठेत्, यदि कर्म कृतं स्यात्, तदा हतान्

यथाज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्मनिवेशनम् ॥ तत्तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ॥ ५ ॥ तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ॥ विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः ॥ ६ ॥ भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महायशः ॥ ७ ॥ त्वय्यकारणसन्तप्ते सन्तप्तहृदया वयम् ॥ त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्या सन्तापमागतम् ॥ ८ ॥ तदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धनी ॥ उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम् ॥ ९ ॥ प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः ॥ रघुनन्दन वक्ष्यामि श्रूयतां मे हितं वचः ॥ १० ॥ साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः ॥ निकुम्भिलायां संप्राप्य हन्तुं रावणिमाहवे ॥ ११ ॥ धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैराशीविषविषोपमैः ॥ शरैर्हन्तुं महेष्वासो रावणिं समितिंजयः ॥ १२ ॥ तेन वीर्येण तपसा वरदानात् स्वयंभुवः ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरः प्राप्तं कामगाश्च तुरङ्गमाः ॥ १३ ॥ स एष सह सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् ॥ यद्युत्तिष्ठेत्कृतं कर्म हतान् सर्वांश्च विद्धि नः ॥ १४ ॥ निकुम्भिलामसंप्राप्तमहुताग्निं च यो रिपुः ॥ त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रोः स ते वधः ॥ वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ॥ १५ ॥

विद्धीत्यन्वयः ॥ १४ ॥ तर्हि कथं स वध्य इत्यत्राह—निकुम्भिलामित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः॥ यो रिपुः । अहुताग्निम् असमाप्तहोमम्, निकुम्भिलामसंप्राप्तं निकुम्भिलाख्यन्यग्रोधमूलस्थानमसंप्राप्तं च । तमप्रविष्टन्यग्रोधमित्युत्तरसर्गे वक्ष्यति । आततायिनं शस्त्रपाणिम् रिपुवधोद्यतं च त्वाम् यो हन्यात् हिंस्यात्, सः इन्द्रशत्रोस्ते वधो मारक इति सर्वलोकेश्वरेण ब्रह्मणा वरो दत्त इति योजना । "वध, हतौ" इति धातोः पचाद्यचि वध इति रूपम् । यद्यप्येतच्छापवचनमिव प्रतिभाति । तथापि निकुम्भिलाप्राप्तिहोमयोर्विघ्नाभावे अवध्य इति पर्यवसानाद्वररूपत्वं द्रष्टव्यम् ॥ १५ ॥

इत्येवमित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ इत्येवंप्रकारेण । एषः होमविघ्नकारी तस्य इन्द्रजितः वधः मारकः विहितः ब्रह्मणा क्लृप्तः । तस्मात् तस्य इन्द्रजितो वधाय सन्दिशस्व । अस्मासु कंचिदिति शेषः ॥१६॥१७॥१८॥ तस्येति ॥ तस्य प्रसिद्धस्येति । सूर्यविशेषणम् द्वितीयं तस्येति पदम् । अभ्र-

इत्येवं विहितो राजन्वधस्तस्यैष धीमतः ॥ वधायेन्द्रजितो राम सन्दिशस्व महाबल ॥ हते तस्मिन् हतं विद्धि रावणं ससुहृज्जनम् ॥ १६ ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम ॥ स हि ब्रह्मास्त्रवित्प्राज्ञो महामायो महाबलः ॥ करोत्यसंज्ञां सङ्ग्रामे देवान् सवरुणानपि ॥ १८ ॥ तस्यान्तरिक्षे चरतो रथस्थस्य महायशः ॥ न गतिर्ज्ञायते तस्य सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥ ॥ १९ ॥ राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ॥ लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥ यद्वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः ॥ हनुमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण ॥ २१ ॥ जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ॥ जहि तं राक्षससुतं मायाबलविशारदम् ॥ २२ ॥ अयं त्वां सचिवैः सार्द्धं महात्मा रजनीचरः ॥ अभिज्ञस्तस्य देशस्य पृष्ठतोनुगमिष्यति ॥ २३ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सबिभीषणः ॥ जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमत्यद्भुतपराक्रमः ॥ २४ ॥ सन्नद्धः कवची खड्गी सशरो हेमचापधृत् ॥ रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥ २५ ॥ अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् ॥ लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव ॥ २६ ॥ अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ॥ विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥

संप्लवे मेघावरणे ॥१९ ॥ २०॥ यद्वानरेन्द्रस्येत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ जाम्बवेन जाम्बवता । सहसैन्येन सैन्यसहितेन । " वोपसर्जनस्य " इति विकल्पेन सभावः । संवृतः । त्वमिति शेषः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ ॥ ॥

स एवमिति ॥ असत्यपि कर्तृभेदे क्रियाभेदमाश्रित्य स इति द्विरुक्तिः । स एवमुक्त्वा स ययाविति निर्वाहः । वस्तुतस्तु स लक्ष्मणः । सः तादृशवीरवेषविशिष्ट एवेत्यर्थः । यद्वा सरावणिवधाकाङ्क्षीत्येकं पदम् । रावणिना सहवर्तन्त इति सरावणयः निकुम्भिलास्था राक्षसाः, तेषां वधाकाङ्क्षीत्यर्थः ॥२८॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ स तं प्राप्येत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ ब्रह्मविधानेन निकुम्भिलामसंप्राप्तमित्यादिनोक्तब्रह्मवरदानप्रकारेण,

स एवमुक्त्वा द्युतिमान् वचनं भ्रातुरग्रतः ॥ स रावणिवधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥ २८ ॥ सोभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम् ॥ २९ ॥ विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ॥ कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥ ३० ॥ वानराणां सहस्रैस्तु हनुमान् बहुभिर्वृतः ॥ बिभीषणश्च सामात्यस्तदा लक्ष्मणमन्वगात् ॥ ३१ ॥ महता हरिसैन्येन स वेगमभिसंवृतः ॥ ऋक्षराजबलं चैव ददर्श पथि विष्ठितम् ॥ ३२ ॥ स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ॥ राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद्व्यूहमास्थितम् ॥ ३३ ॥ स तं प्राप्य धनुष्पाणिर्मायायोगमरिन्दमः ॥ तस्थौ ब्रह्मविधानेन विजेतुं रघुनन्दनः ॥ ३४ ॥ बिभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ॥ अङ्गदेन च वीरेण तथानिलसुतेन च ॥ ३५ ॥ विविधममलशस्त्रभास्वरं तद्ध्वजगहनं विपुलं महारथैश्च ॥ प्रतिभयतममप्रमेयवेगं तिमिरमिव द्विषतां बलं विवेश ॥३६॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥८५॥

मायायोगं मायारूपोपायम्, तम् इन्द्रजितम्, विजेतुं प्राप्य तस्थौ । मायायागमिति पाठे मायायागं जेतुं नाशयितुम् तं देशम् प्राप्य तस्थावित्यन्वयः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ विविधमिति ॥ प्रतिभयतमम् अतिशयेन भयंकरम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथेन्द्रजिद्युद्धारम्भः—अथ तस्यामित्यादि ॥ तस्यामवस्थायाम् निकुम्भिलासमीपगमनावसरे । अर्थसाधकम् । स्वानामिति शेषः ॥१॥ यदेतदिति ॥ आयोध्यतां हन्यताम् । शीघ्रमिति । विलम्बे यागः समाप्येतेति भावः ॥ २ ॥ अस्येति ॥ यत यतस्व । अत्र राक्षसानीके ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ विभीषणेति ॥ शुभलक्षणः सुहृद्वचनसारग्राहित्वलक्षणयुक्तः ॥ ६ ॥ ७ ॥ राक्षसा इति ॥ कपिसैन्यजिघांसवः कपिसैन्यं हन्तुमिच्छवः ॥ ८ ॥ स इति ॥ संप्रहारः युद्धम् ॥ ९ ॥ १० ॥ ते राक्षसा इति ॥ शस्त्रनिवेशनविकृताननबाहुत्वरूपक्रियाभेदात् तच्छब्दद्वयनिर्वाहः ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः॥परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥ १ ॥ यदेद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते ॥ एतदायोध्यतां शीघ्रं कपिभिः पादपायुधैः ॥ २ ॥ अस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मण ॥ राक्षसेन्द्रसुतोप्यत्र भिन्ने दृश्यो भविष्यति ॥ ३ ॥ स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन् परान् ॥ अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥ ४ ॥ जहि वीर दुरात्मानं मायापरमधार्मिकम् ॥ रावणिं क्रूरकर्माणं सर्वलोकभयावहम् ॥ ५ ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥ ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ ६ ॥ ऋक्षाः शाखामृगाश्चापि द्रुमाद्रिनखयोधिनः ॥ अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥ ७ ॥ राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः ॥ उद्यतैः समवर्तन्त कपिसैन्यजिघांसवः ॥ ८ ॥ स संप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ॥ शब्देन महता लङ्कां नादयन् वै समन्ततः ॥ ९ ॥ शस्त्रैश्च बहुधाकारैः शितैर्बाणैश्च पादपैः ॥ उद्यतैर्गिरिशृङ्गैश्च घोरैराकाशमावृतम् ॥ १० ॥ ते राक्षसा वानरेषु विकृताननबाहवः ॥ निवेशयन्तः शस्त्राणि चक्रुस्ते सुमहद्भयम् ॥ ११ ॥ तथैव सकलैर्वृक्षैर्गिरिशृङ्गैश्च वानराः ॥ अभिजघ्नुर्निजघ्नुश्च समरे राक्षसर्षभान् ॥ १२ ॥ ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः ॥ रक्षसां वध्यमानानां महद्भयमजायत ॥ १३ ॥ ॥ ॥

स्वमनीकमिति ॥ तत्कर्मणि तस्मिन् होमकर्मणि ॥ १४ ॥ वृक्षान्धकारादिति ॥ वृक्षान्धकारात् नीरन्ध्रवृक्षषण्डादित्यर्थः । सज्जम् आयुधादिभिः, पूर्वयुक्तम् पूर्वमेव युक्ताश्वम्। सराक्षसः राक्षससहितः ॥१५॥ स इति ॥ अन्तकः अन्तकरः ॥१६॥ दृष्ट्वैवेति ॥ पर्यवर्तत परितोतिष्ठत् ॥१७॥तस्मिन्नित्यादि ॥ आदावेकं वृक्षमुद्यम्य निदर्हन् सन् पश्चात् बहुभिर्वृक्षैस्तद्रक्षोबलं निःसंज्ञं चकारेत्यन्वयः ॥१८॥१९॥२०॥ अवाकिरन्नित्युक्तं प्रपञ्चयति—

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् ॥ उदतिष्ठत दुर्धर्षस्तत्कर्मण्यननुष्ठिते ॥ १४ ॥ वृक्षान्धकारान्निर्गत्य जातक्रोधः स रावणिः ॥ आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं स राक्षसः ॥ १५ ॥ स भीमकार्मुकधरः कालमेघसमप्रभः ॥ रक्तास्यनयनः क्रुद्धो बभौ मृत्युरिवान्तकः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वैव तु रथस्थं तं पर्यवर्तत तद्बलम् ॥ रक्षसां भीमवेगानां लक्ष्मणेन युयुत्सताम् ॥ १७ ॥ तस्मिन् काले तु हनुमानुद्यम्य सुदुरासदम् ॥ धरणीधरसंकाशो महावृक्षमरिन्दमः ॥ १८ ॥ स राक्षसानां तत्सैन्यं कालाग्निरिव निर्दहन् ॥ चकार बहुभिर्वृक्षैर्निःसंज्ञं युधि वानरः ॥ १९ ॥ विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम् ॥ राक्षसानां सहस्राणि हनुमन्तमवाकिरन् ॥ २० ॥ शितशूलधराः शूलैरसिभिश्चासिपाणयः ॥ शक्तिभिः शक्तिहस्ताश्च पट्टिशैः पट्टिशायुधाः ॥ २१ ॥ परिघैश्च गदाभिश्च चक्रैश्च शुभदर्शनैः ॥ शतशश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः ॥ ॥ २२ ॥ घोरैः परश्वधैश्चैव भिन्दिपालैश्च राक्षसाः ॥ मुष्टिभिर्वज्रकल्पैश्च तलैरशनिसन्निभैः ॥ अभिजघ्नुः समासाद्य समन्तात् पर्वतोपमम् ॥ २३ ॥ तेषामपि च संक्रुद्धश्चकार कदनं महत् ॥ २४ ॥ स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् ॥ सूदयन्तममित्रघ्नममित्रान् पवनात्मजम् ॥ २५ ॥ ॥

शितेत्यादि ॥ शितशूलधरा इत्यादिविशेषणेन येषां येष्वस्त्रेष्वत्यन्तपाटवमास्ति तैस्ते अवाकिरन्निति गम्यते । परिघैरित्यादौ परिघपाणयइत्याद्यूह्यम्। शुभदर्शनैरित्यनेन तैक्ष्ण्यमुपलक्ष्यते। पर्व ोपमं हनुमन्तामिति शेषः ॥२१॥२२॥२३॥ तेषामित्यर्धम्॥ संक्रुद्धः । हनुमानिति शेषः ॥ २४॥ २५ ॥

ससारथिमिति ॥ हि यस्मात् कारणात् उपेक्षितः एषः नः अस्माकम् संबन्धिनां राक्षसानाम् क्षयं कुर्यात् । अतः एष वानरो यत्र । वर्तत इति शेषः । तत्र याहीतीदं वचः सारथिमुवाचेत्यन्वयः ॥ २६ ॥ इत्युक्त इति ॥ वहन् प्रापयन् ॥ २७ ॥ सोभ्युपेत्येति ॥ अत्रापि क्रियाभेदात् तच्छब्दस्य द्विः प्रयोगः ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० बाहुभ्यामिति ॥ द्वन्द्वं द्वन्द्वयुद्धम् । ददासीति शेषः । यदि ददासि, तर्हि शस्त्राणि त्यक्त्वा बाहुभ्यां प्रतियुध्यस्वेत्यन्वयः । ततः तदानीं द्वन्द्वयुद्धकाले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ यः स इति ॥ यः सः । प्रसिद्धो य इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ तमिति ॥ अप्रतिमसंस्थानैः अनुपमसन्निवेशैः करवीरपत्राद्याकारैरित्यर्थः॥३४॥इत्येवमिति॥अरिविभीषणेन शत्रुभयंकरेण॥३५॥इति श्रीगोवि॰श्रीरा॰रत्न॰युद्ध॰षडशीतितमः सर्गः॥८६॥ अथेन्द्रजिद्विभीषणसंवादः—एवमुक्त्वेत्यादि ॥ धनुष्पाणिनमिति नकारान्तत्वमार्षम् ॥१॥ अविदूरमिति ॥ तत्कर्म होमकर्मस्थानम् ॥ २ ॥ ३ ॥

स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः॥क्षयमेष हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः॥२६॥इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः॥वहन् परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे॥२७॥सोभ्युपेत्य शरान् खड्गान्पट्टिशांश्च परश्वधान्॥अभ्यवर्षत दुर्धर्षः कपिमूर्ध्नि स राक्षसः॥२८॥तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः॥रोषेण महताविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥२९॥ युध्यस्व यदि शूरोसि रावणात्मज दुर्मते॥वायुपुत्रं समासाद्य जीवन्न प्रतियास्यसि ॥३०॥ बाहुभ्यां प्रतियुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे॥वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥३१॥ हनुमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम्॥ रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय बिभीषणः॥३२॥यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः॥स एष रथमास्थाय हनुमन्तं जिघांसति॥ ३३ ॥ तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुविदारणैः॥जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि॥३४॥इत्येवमुक्तस्तु तदा महात्मा बिभीषणेनारिबिभीषणेन॥ददर्श तं पर्वतसन्निकाशं रणे स्थितं भीमबलं नदन्तम्॥३५॥इति श्री॰षडशीतितमः सर्गः ॥८६॥

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो बिभीषणः ॥ धनुष्पाणिनमादाय त्वरमाणो जगाम ह ॥१॥ अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य च महद्वनम् ॥ दर्शयामास तत्कर्म लक्ष्मणाय बिभीषणः ॥ २ ॥ नीलजीमूतसंकाशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् ॥ तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इहेति ॥ उपहारं बलिम् । उपहृत्य कृत्वा । ओदनपाकं पचतीतिवत् । ततः तस्माद्देशात् ॥ ४ ॥ ५ ॥ तमिति ॥ अप्रविष्टन्यग्रोधं रावणात्मजं विध्वंसय । पुनः प्रवेशात्पूर्वमेव विध्वंसयेत्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ तमिति ॥ महातेजा इति लक्ष्मणो विशेष्यः । सम्यग्युद्धम् अमायायुद्धम् ॥ ९ ॥ एवमिति ॥ मनस्वी दृढमनस्कः ॥१०॥ इहेति ॥ इह लङ्कायां जातसंवृद्धः । “पूर्वकाल०”इत्यादिना पूर्वकालार्थवाचिनो जातशब्दस्य उत्तरकालार्थवाचिना

इहोपहारं भूतानां बलवान् रावणात्मजः ॥ उपहृत्य ततः पश्चात्सङ्ग्राममभिवर्तते ॥ ४ ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः ॥ निहन्ति समरे शत्रून् बध्नाति च शरोत्तमैः ॥ ५ ॥ तमप्रविष्टन्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् ॥ विध्वंसय शरैस्तीक्ष्णैः सरथं साश्वसारथिम् ॥ ६ ॥ तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ॥ बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन् धनुः ॥ ७ ॥ स रथेनाग्निवर्णेन बलवान् रावणात्मजः ॥ इन्द्रजित् कवची धन्वी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥ तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् ॥ समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥ एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः ॥ अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा बिभीषणम् ॥ १० ॥ इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम ॥ कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥ ११ ॥ न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ॥ प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥ १२ ॥ शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ॥ यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥ १३ ॥ नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् ॥ क्वच स्वजनसंवासः क्वच नीचपराश्रयः ॥ १४ ॥ गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोपि वा ॥ निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ॥ १५ ॥ यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ॥ स स्वपक्षे क्षयं प्राप्ते पश्चात्तैरेव हन्यते ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥

संवृद्धशब्देन सह समासः । पुत्रस्य पुत्राय । “क्रुधद्रुह०”इत्यादिना चतुर्थीनियमात् । राक्षसेत्यनेन साजात्यमपि न दृष्टवानसीति व्यज्यते ॥ ११ ॥ न ज्ञातित्वमिति ॥ प्रमाणं मर्यादानियामकम् ॥ १२ ॥ शोच्य इति ॥ शोच्यत्वादौ हेतुमाह—यस्त्वमिति ॥ १३ ॥ नैतदिति ॥ शिथिलया कोमलया, तुच्छया वा । अन्तरं तारतम्यम् ॥ १४ ॥ ननु परस्य नीचत्वाभावान्न भवदुक्तदोष इत्यत्राह—गुणवानिति ॥ १५ ॥ तदेव वैषम्यं स्वरूपतो

दर्शयति–य इति ॥ १६ ॥ निरनुक्रोशतेति ॥ इयं होमविघातपूर्वकं लक्ष्मणस्य न्यग्रोधप्रवेशकरणरूपा निरनुक्रोशता निर्दयता, यादृशी यथा घोरा, तादृशं परुषं निर्दयत्वं स्वजनेन बन्धुभूतेन त्वयैव कर्तुं शक्यं, नान्येनेत्यर्थः । यद्वा स्वजने विषये त्वया न शक्यं न कर्तव्यम् । अनुचितं कृतमिति भावः ॥ १७ ॥ १८ ॥ अजानन्निति ॥ गौरवात् । गुरोर्भावो गौरवम् । पितृव्यत्वादित्यर्थः ॥ १९ ॥ कुल इति ॥ रक्षसां कुले यद्यप्यहं जातः, तत् तथापि मे शीलम् अराक्षसम् अक्रूरम् । अयं मे शीलाख्यो गुणः नृणां सत्पुरुषाणाम् प्रथमः मुख्यः ॥ २० ॥

निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ॥ स्वजने न त्वया शक्यं परुषं रावणानुज ॥ १७ ॥ इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण
प्रत्युवाच बिभीषणः ॥ १८ ॥ अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥ राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज
गौरवात् ॥ १९ ॥ कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ॥ गुणोयं प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम् ॥ २० ॥
न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ॥ भ्रात्रा विषमशीलेन कथं भ्राता निरस्यते ॥ २१ ॥ धर्मात्प्रच्युतशीलं हि
पुरुषं पापनिश्चयम् ॥ त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥ २२ ॥ हिंसापरस्वहरणे परदाराभिमर्शनम् ॥
त्याज्यमाहुर्दुराचारं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥ २३ ॥ परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ॥ सुहृदामतिशङ्का च त्रयो
दोषाः क्षयावहाः ॥ २४ ॥ महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ॥ अभिमानश्च कोपश्च वैरित्वं प्रतिकूलता ॥ २५ ॥

तन्मे शीलमराक्षसमित्युक्तमेव दर्शयति–न रम इति ॥ दारुणेन कर्मणा न रमे । अधर्मेण परपीडाकरेण च कर्मणा न रमे । न केवलं मय्येव दोषः रावणेपीत्याह–भ्रात्रेति । निरस्यते । त्वां तु धिक्कुलपांसनमिति वचनेनेत्यर्थः ॥ २१ ॥ इन्द्रजिदुक्तस्वदोषपरिहाराय परित्यागहेतून् रावणदोषानाह–धर्मादित्यादिना ॥ २२ ॥ हिंसेति ॥ हिंसा च परस्वहरणं च ते हिंसापरस्वहरणे । हिंसादिरूपं दुराचाररूपं कर्म त्याज्यमाहुः । तद्युक्तस्त्याज्य इत्यर्थः ॥ २३ ॥ परस्वानामिति ॥ सुहृदामतिशङ्का सुहृत्स्वविश्वासः ॥ २४ ॥ दोषवत्तया यदि त्याज्यत्वं, तर्ह्यभिजनविद्यादिगुणवत्तया किमिति न ग्राह्यत्वमित्यत आह–महर्षीणामिति सार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अभिमानः गर्वः । वैरित्वं बद्धवैरत्वम् । प्रतिकूलता परश्रेयोद्वेषित्वम् । तथा

चाभिजनविद्यादिगुणवत्त्वेपि परस्त्रीहरणादिदोषदूषिततया विषसंपृक्तमधुवन्न ग्राह्योयमिति भावः ॥ २५ ॥ २६ ॥ नेयमस्तीत्यादि ॥ उत्तरक्षणे अवश्यं न शिष्यतीत्यर्थः ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ धर्षयित्वेत्यादि ॥ देवताकार्यं यमदूतरूपदेवताकार्यम् । नरकयातनानुभवं वा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥

एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ॥ गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ॥ दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ॥ २६ ॥ नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥ २७॥ अतिमानी च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ॥ बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥ २८ ॥ अद्य ते व्यसनं प्राप्तं किं मां त्वमिह वक्ष्यसि॥ प्रवेष्टुं न त्वया शक्यो न्यग्रोधो राक्षसाधम ॥ २९ ॥ धर्षयित्वा च काकुत्स्थौ न शक्यं जीवितुं त्वया ॥ युद्ध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह ॥ हतस्त्वं देवताकार्यं करिष्यसि यमक्षये ॥ ३० ॥ निदर्शय स्वात्मबलं समुद्यतं कुरुष्व सर्वायुधसायकव्ययम् ॥ न लक्ष्मणस्यैत्य हि बाणगोचरं त्वमद्य जीवन् सबलो गमिष्यसि ॥ ३१ ॥ इति श्रीयुद्धकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥

बिभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ॥ अब्रवीत्परुषं वाक्यं वेगेनाभ्युत्पपात ह ॥ १ ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशो रथे सुसमलंकृते ॥ कालाश्वयुक्ते महति स्थितः कालान्तकोपमः ॥ २ ॥ महाप्रमाणमुद्यम्य विपुलं वेगवद्दृढम् ॥ धनुर्भीमं परामृश्य शरांश्चामित्रशातनान् ॥ ३ ॥ ॥ ॥

अथेन्द्रजिल्लक्ष्मणयुद्धम्–विभीषणवच इत्यादि ॥ अभ्युत्पपात अभिमुखमुज्जगाम ॥ १ ॥ कीदृग्भूतोभ्युज्जगामेत्यत्राह–उद्यतेत्यादिश्लोकद्वयेन ॥ सुसमलंकृते सुष्ठु समन्तात् अलंकृते । महाप्रमाणं महादीर्घम्, धनुरुद्यम्य शरान् परामृश्य गृहीत्वा अभ्युज्जगाम अब्रवीच्चेत्यन्वयः । अमित्रान् शत्रून् शातयन्ति खण्डयन्तीत्यमित्रशातनान् ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तमित्यादि ॥ रथे स्थित इति शेषः । अलंकृतं स्वतेजसा भूषितम् । हनुमत्पृष्ठमासीनमित्यनुवादेन हनुमान् पूर्वं राक्षसैर्युद्ध्वा इन्द्रजित्यागते लक्ष्मणं स्वपृष्ठभागमारोप्य स्थितवानिति गम्यते । उदयस्थरविप्रभमित्यनेन हनुमतः काञ्चनाकृतित्वं लक्ष्मणस्य रविवर्णत्वं चोक्तम् ॥ ४ ॥ उवाचैनमिति त्रिपादश्लोक एकान्वयः ॥ एतदब्रवीत् परुषमिति पूर्वोक्तस्य विवरणं न भवति । तद्विभीषणमात्रं प्रति । इदं तु सर्वान् प्रति । तच्च परुषम् । इदं तु पराक्रमविषयम् । समारब्धः संरब्धः । पश्यध्वमिति । मुक्तं मेघमुक्तम् । वारयिष्यथेत्येतत् सापहासोक्तिः ॥ ५ ॥ ६ ॥ अद्येति ॥ वः यु-

तं ददर्श महेष्वासो रथे सुसमलंकृतः ॥ अलंकृतममित्रघ्नं राघवस्यानुजं बली ॥ हनुमत्पृष्ठमासीनमुदयस्थरविप्रभम् ॥ ४ ॥ उवाचैनं समारब्धः सौमित्रिं सविभीषणम् ॥ तांश्च वानरशार्दूलान् पश्यध्वं मे पराक्रमम् ॥ ५ ॥ अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टं शरवर्षं दुरासदम् ॥ मुक्तं वर्षमिवाकाशे वारयिष्यथ संयुगे ॥ ६ ॥ अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः ॥ विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः ॥ ७ ॥ तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नान् शूलशक्त्यष्टितोमरैः ॥ अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम् ॥८॥ क्षिपतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य मे युधि ॥ जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः ॥ ९ ॥ रात्रियुद्धे मया पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः ॥ शायितौ स्थो मया भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥ १० ॥ स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ॥ आशीविषमिव क्रुद्धं यन्मां योद्धुं व्यवस्थितः ॥ ११ ॥ ॥

ष्माकम् । विधमिष्यन्ति धक्ष्यन्ति ॥ ७ ॥ तीक्ष्णेति ॥ तीक्ष्णसायकेति लुप्तविभक्तिकं पदम् । तीक्ष्णसायकैरित्यर्थः । शूलशक्त्यष्टितोमरैः इत्यत्र शक्तियष्टितोमरैरित्यर्थः । सन्धिरार्षः । तीक्ष्णसायकैः शूलशक्त्यष्टितोमरैश्च निर्भिन्नान् वः युष्मान्, यमक्षयं यमनिलयम्, गमयिष्यामीत्यन्वयः ॥ ८ ॥ क्षिपत इति ॥ जीमूतस्येति नादमात्रे दृष्टान्तः ॥ ९ ॥ रात्रीति ॥ आग्रहातिशयेन मयेति द्विरुक्तिः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ रात्रीति ॥ शायितौ युवामिति शेषः ॥ १० ॥ स्मृतिरिति ॥ यन्मां योद्धुं व्यवस्थितः, अतः स्मृतिर्नास्तीति वा मन्ये । अथ वा यमसादनं यमप्रापणम् । व्यक्तं प्रत्यक्षं प्रत्यासन्नमिति यावत् । यद्वा सादनम् सदनम् । स्वार्थेऽण् प्रत्ययः ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

तच्छुत्वेति ॥ अभीतवदनः भयविकृतिशून्यवदनः ॥१२॥ उक्तश्चेति ॥ दुर्गमः दुर्लभः । कार्याणां यमप्रापणादीनाम् । पारः निर्वाहः । उक्तश्च उक्त एव, न कृतः । अतो दुर्बुद्धिरसीत्यर्थः । कस्तर्हि बुद्धिमानित्यत आह—कार्याणामिति । कार्याणां कर्मणाम्, आचरणेनेत्यर्थः॥१३॥ स त्वमिति ॥ अर्थस्येति तादर्थ्यसंवन्धे षष्ठी । अर्थस्य वचः प्रयोजनार्थम् वचः ॥१४॥ दृष्टेप्यस्मत्पराक्रमे कथमित्थं कथ्यत इत्याशङ्क्य मायामयत्वान्न स वीरसंमत इत्याह—

तच्छुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं लक्ष्मणस्तदा ॥ अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ उक्तश्च दुर्गमः
पारः कार्याणां राक्षस त्वया ॥ कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥ १३॥ स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य
केनचित् ॥ वचो व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोस्मीति दुर्मते ॥ १४ ॥ अन्तर्धानगतेनाजौ यस्त्वयाचरितस्तदा ॥
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः॥१५॥यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोहं तव राक्षस ॥ दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा
त्वं किं विकत्थसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः ॥ ससर्ज निशितान् बाणानिन्द्रजित्समितिंजयः
॥ १७॥ ते निसृष्टा महावेगाः शराः सर्पविषोपमाः ॥ संप्राप्य लक्ष्मणं पेतुः श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ १८ ॥ शरैरतिमहावेगैर्वेगवान्
रावणात्मजः ॥ सौमित्रिमिन्द्रजिद्युद्धे विव्याध शुभलक्षणम् ॥ १९ ॥ स शरैरतिविद्धाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः॥
शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान् विधूम इव पावकः ॥ २० ॥ इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याधिगम्य च ॥ विनद्य
सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत्॥२१॥ पत्त्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः॥आदास्यन्तेद्य सौमित्रे जीवितं
जीवितान्तगाः ॥ २२ ॥ अद्य गोमायुसंघाश्च श्येनसंघाश्च लक्ष्मण ॥ गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया ॥२३॥

अन्तर्धानेति ॥ आजौ युद्धे ॥१५॥ प्रत्यक्षेणापि योद्धुं शक्तोस्मीत्यत आह—यथेति ॥ यथा स्थितोस्मि तथैव, तत्तेजः पूर्वकृतं तेज, दर्शयस्वेत्यन्वयः ॥ १६ ॥ १७ ॥ त इति ॥ सर्पविषोपमाः सर्पविषवत् घोराः पेतुः । भूमाविति शेषः ॥ १८॥ शरैरिति ॥ अतिविव्याधेत्यन्वयः । "व्यवहिताश्च" इति व्यवहितप्रयोगः ॥ १९ ॥ २० ॥ इन्द्रजित्त्विति ॥ अधिगम्य फलवत्त्वेन दृष्ट्वा ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ २४ ॥ विशस्तेति ॥ विशस्तं भिन्नं कवचं यस्य तं त्वाम् रामो द्रक्ष्यतीत्यनुषङ्गेण योजना ॥ २५ ॥ २६ ॥ वाग्बलमिति ॥ अथ इदानीम् ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ सुपत्रेति ॥ सुपत्रवाजिताः सुपत्रैः संजातवेगाः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ स इति ॥ विमर्दः संघर्षः ॥ ३३ ॥ उभौ हीत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ सुविक्रान्तौ सुष्ठुपराक्रमौ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ युयुधाते इत्याद्यर्धम् ॥ ३६ ॥ बलेति ॥ बलशब्दो बलशत्रिवन्द्रपरः । नामैकदेशे नामग्रहणात् ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुसंप्रहृष्टाविति ॥ शरौघः, मेघपक्षे जलौघः । शरशब्दो हि जलवाची । शरधिरिति समुद्रपर्यायात् ॥ ३९ ॥

क्षत्रबन्धुं सदानार्यं रामः परमदुर्मतिः ॥ भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति मया हतम् ॥ २४ ॥ विशस्तकवचं भूमौ व्यपविद्धशरासनम् ॥ हतोत्तमाङ्गं सौमित्रे त्वामद्य निहतं मया ॥२५॥ इति ब्रुवाणं संरब्धं परुषं रावणात्मजम् ॥ हेतुमद्वाक्यमत्यर्थं लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह ॥ २६ ॥ वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्मासि राक्षस ॥ अथ कस्माद्वदस्येतत्संपादय सुकर्मणा ॥ २७ ॥ अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस ॥ कुरु तत्कर्म येनाहं श्रद्दध्यां तव कत्थनम् ॥ २८ ॥ अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किंचिदप्यनवक्षिपन् ॥ अविकत्थन् वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषाधम ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकर्णपूरितान् शितान् ॥ निजघान महावेगान् लक्ष्मणो राक्षसोरसि ॥ ३० ॥ सुपत्रवाजिता बाणा ज्वलिता इव पन्नगाः ॥ नैर्ऋतोरस्यभासन्त सवितू रश्मयो यथा ॥ ३१ ॥ स शरैराहतस्तेन सरोषो रावणात्मजः॥ सुप्रयुक्तैस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम् ॥३२॥ स बभूव तदा भीमो नरराक्षससिंहयोः॥विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः॥३३॥ उभौ हि बलसंपन्नावुभौ विक्रमशालिनौ॥३४॥उभावपि सुविक्रान्तौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ॥उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ॥३५॥युयुधाते तदा वीरौ ग्रहाविव नभोगतौ॥३६॥बलवृत्राविवाभीतौ युधि तौ दुष्प्रधर्षणौ॥ युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ॥ ३७ ॥ बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ ॥ नरराक्षससिंहौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥ ३८ ॥ सुसंप्रहृष्टौ नरराक्षसोत्तमौ जयैषिणौ मार्गणचापधारिणौ ॥ परस्परं तौ प्रववर्षतुर्भृशं शरौघवर्षेण बलाहकाविव ॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥

अभिप्रवृद्धौ युधि युद्धकोविदौ शरासिचण्डौ शितशस्त्रधारिणौ ॥ अभीक्ष्णमाविव्यधतुर्महाबलौ महाहवे शम्बरवासवाविव ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ ॥

ततः शरं दाशरथिः संधायामित्रकर्शनः ॥ ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ १ ॥ तस्य ज्यातलनिर्घोषं स श्रुत्वा रावणात्मजः ॥ विवर्णवदनो भूत्वा लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥ २॥ तं विवर्णमुखं दृष्ट्वा राक्षसं रावणात्मजम् ॥ सौमित्रिं युद्धसंयुक्तं प्रत्युवाच बिभीषणः ॥ ३ ॥ निमित्तान्यनुपश्यामि यान्यस्मिन् रावणात्मजे ॥ त्वर तेन महाबाहो भग्न एष न संशयः ॥४॥ ततः संधाय सौमित्रिर्बाणानग्निशिखोपमान् ॥ मुमोच निशितांस्तस्मिन् सर्पानिव महाविषान् ॥५॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढः सर्वसंक्षुभितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ उपलभ्य मुहूर्तेन संज्ञां प्रत्यागतेन्द्रियः ॥ ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् ॥७॥ सोऽभिचक्राम सौमित्रिं रोषात्संरक्तलोचनः ॥ अब्रवीच्चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः ॥ ८ ॥ किं न स्मरसि तद्युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम् ॥ निबद्धस्त्वं सह भ्रात्रा यदा भुवि विवेष्टसे ॥९॥ युवां खलु महायुद्धे शक्राशनिसमैः शरैः ॥ शायितौ प्रथमं भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥१०॥ स्मृतिर्वा नास्ति ते मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ॥ गन्तुमिच्छसि यस्मात्त्वं मां धर्षयितुमिच्छसि ॥११॥ यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मत्पराक्रमः ॥ अद्य ते दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ॥ १२ ॥ ॥ ॥

अथ लक्ष्मणेन्द्रजितोः सुमहान् संप्रहारः—ततः शरमित्यादि ॥१॥२॥तमिति ॥ सौमित्रिं प्रति उद्दिश्य ॥३॥ निमित्तानीति ॥ अस्मिन् यानि मुखवैवर्ण्यस्तब्धत्वादीनि निमित्तानि अनुपश्यामि, तैरयं भग्न इति जाने । तेन कारणेन त्वर त्वरस्व ॥४॥५॥ शक्राशनीति ॥ सर्वसंक्षुभितेन्द्रियः संक्षुभितसर्वेन्द्रियः ॥६॥ ७ ॥८॥ किमिति ॥ त्वं भ्रात्रा सह निबद्ध इति । यत् प्रथमे, तद्युद्धे तस्मिन् युद्धे मत्पराक्रमं त्वन्निबन्धनरूपम् न स्मरसि किम् । यदा यत्र युद्धकाले, विवेष्टसे विवेष्टितवानसि ॥ ९ ॥ तमेव पराक्रमं विशिनष्टि—युवामिति ॥ १० ॥ स्मृतिरिति ॥ व्यक्तं नूनमित्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥

॥ १३ ॥ तत इति ॥ क्रोधाद्द्विगुणसंरब्ध इति । लक्ष्मणादिविषयरोषापेक्षया बिभीषणविषये द्विगुणं कुपित इत्यर्थः ॥ १४ ॥ तद्दृष्ट्वेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ नैतत्किंचिदिति ब्रुवन् एतदकिंचित्करमिति ब्रुवन्नित्यर्थः ॥ १५ ॥ अभीतवदन इत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम्॥ अकिंचित्करत्वमेवाह—

इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ॥ दशभिस्तु हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ॥ १३ ॥ ततः शरशतेनैव सुप्रयुक्तेन वीर्यवान् ॥ क्रोधाद्द्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद बिभीषणम् ॥ १४ ॥ तद्दृष्ट्वेन्द्रजिता कर्म कृतं रामानुजस्तदा ॥ अचिन्तयित्वा प्रहसन् नैतत्किंचिदिति ब्रुवन्॥मुमोच स शरान् घोरान् संगृह्य नरपुङ्गवः॥१५॥अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि ॥ नैवं रणगताः शूराः प्रहरन्ते निशाचर ॥१६॥ लघवश्चाल्पवीर्याश्च सुखा हीमे शरास्तव ॥ नैवं शूरास्तु युध्यन्ते समरे जयकाङ्क्षिणः ॥१७॥ इत्येवं तं ब्रुवाणस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥१८॥ तस्य बाणैः सुविध्वस्तं कवचं हेमभूषितम् ॥ व्यशीर्यत रथोपस्थे ताराजालमिवाम्बरात् ॥ १९ ॥ विधूतवर्मा नाराचैर्बभूव स कृतव्रणः॥ इन्द्रजित्समरे वीरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥ २० ॥ ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः ॥ बिभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमः ॥ २१ ॥ व्यशीर्यत महादिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च ॥ कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥ २२ ॥ अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युद्ध्येतां तुमुलं युधि ॥ शरसंकृत्तसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥ २३ ॥ सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ॥ ततक्षतुर्महात्मानौ रणकर्मविशारदौ ॥ २४ ॥ बभूवतुश्चात्मजये यत्तौ भीमपराक्रमौ ॥ तौ शरौघैस्तदा कीर्णौ निवृत्तकवचध्वजौ ॥ स्रवन्तौ रुधिरं चोष्णं जलं प्रस्रवणाविव ॥ २५॥

नैवमिति ॥१६॥१७॥१८॥१९॥विधूतेति॥प्ररूढः प्ररूढवृक्षः॥२०॥२१॥ व्यशीर्यतेति ॥ कृते प्रतिकृतम् अन्योन्यं यस्मिन् कर्मणि तत्तथोक्तम्॥२२॥ अभीक्ष्णमिति ॥ युद्ध्येताम् अयुद्ध्येताम् ॥ २३॥ सुदीर्घकालमिति ॥ ततक्षतुः अन्योन्यं बभञ्जतुः ॥२४॥ बभूवतुरित्यादि ॥ यत्तौ यत्नवन्तौ ॥२५॥

शरवर्षमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम्॥सासारयोः सधारापातयोः । धारासंपात आसार इत्यमरः॥२६॥२७॥२८॥व्यपेतेति ॥ व्यपेतदोषं व्यपगतमोहत्वदोषम् । अस्यन्तौ बाणान् क्षिपन्तौ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ सुवर्णेति ॥ धृतौ अवहितौ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अन्य इति ॥ तयोः अन्ये केचन बाणाः

शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चतोर्भीमनिःस्वनम् ॥ सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः ॥ २६ ॥ तयोरथ महान् कालो
व्यत्ययाद्युध्यमानयोः॥ न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ॥२७॥ अस्त्राण्यस्त्रविदां श्रेष्ठौ दर्शयन्तौ पुनः पुनः॥
शरानुच्चावचाकारानन्तरिक्षे बबन्धतुः ॥ २८ ॥ व्यपेतदोषमस्यन्तौ लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ उभौ तौ तुमुलं घोरं चक्रतुर्नरराक्षसौ ॥ २९ ॥ तयोः पृथक् पृथक् भीमः शुश्रुवे तलनिस्वनः ॥ प्रकम्पयन् जनं घोरो निर्घात इव दारुणः ॥ ३० ॥
स तयोर्भ्राजते शब्दस्तदा समरसक्तयोः ॥ सुघोरयोर्निष्टनतोर्गगने मेघयोर्यथा ॥ ३१ ॥ सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैर्बलवन्तौ
कृतव्रणौ ॥ प्रसुस्रुवाते रुधिरं कीर्तिमन्तौ जये धृतौ ॥ ३२ ॥ ते गात्रयोर्निपतिता रुक्मपुङ्खाः शरा युधि ॥ असृग्दिग्धा विनिष्पत्य
विविशुर्धरणीतलम् ॥ ३३ ॥ अन्ये सुनिशितैः शस्त्रैराकाशे संजघट्टिरे ॥ बभञ्जुश्चिच्छिदुश्चान्ये तयोर्बाणाः
सहस्रशः ॥ ३४ ॥ स बभूव रणो घोरस्तयोर्बाणमयश्चयः ॥ अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्यां सत्रे कुशमयश्चयः ॥३५॥ तयोः
कृतव्रणौ देहौ शुशुभाते महात्मनोः ॥ सपुष्पाविव निष्पत्रौ वने शाल्मलिकिंशुकौ ॥३६॥ चक्रतुस्तुमुलं घोरं सन्निपातं
मुहुर्मुहुः॥ इन्द्रजिल्लक्ष्मणश्चैव परस्परवधैषिणौ॥३७॥लक्ष्मणो रावणिं युद्धे रावणिश्चापि लक्ष्मणम्॥अन्योन्यं तावभिघ्नन्तौ
न श्रमं प्रत्यपद्यताम्॥३८॥बाणजालैः शरीरस्थैरवगाढैस्तरस्विनौ॥ शुशुभाते महावीर्यौ प्ररूढाविव पर्वतौ ॥३९॥

आकाशे सुनिशितैः शस्त्रैः संजघट्टिरे संघट्टिताः । अन्ये बाणाः बाणान् सहस्रशः बभञ्जुः चिच्छिदुश्चेति संबन्धः ॥३४॥ स बभूवेति॥सः रणः घोरो बभूव । यस्मिन् तयोर्बाणमयश्चयः सत्रे दीप्ताभ्यामग्निभ्यां सहितः कुशमयश्चय इवासीत् । अग्नी गार्हपत्याहवनीयौ ॥३५॥ ३६॥ चक्रतुरिति ॥ सन्निपातं युद्धम् ॥ ३७ ॥ लक्ष्मण इति ॥ प्रत्यपद्यतां प्रत्यपद्येताम् ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥

तयोरिति ॥ वभ्राजुः । आर्षं परस्मैपदम् ॥४०॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजवि० श्रीरा० युद्धकाण्डव्याख्याने एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥
अथेन्द्रजितो रथभङ्गः—युध्यमानौ त्वित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ प्रभिन्नौ मत्तमातङ्गाविव परस्परगतौ परस्परं युद्धार्थं सङ्गतौ तौ लक्ष्मणेन्द्रजितौ

तयो रुधिरसिक्तानि संवृतानि शरैर्भृशम् ॥ बभ्राजुः सर्वगात्राणि ज्वलन्त इव पावकाः ॥ ४० ॥ तयोरथ महान् कालो व्यत्ययाद्युध्यमानयोः ॥ न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ॥ ४१ ॥ अथ समरपरिश्रमं निहन्तुं समरमुखेष्वजितस्य लक्ष्मणस्य ॥ प्रियहितमुपपादयन्महौजाः समरमुपेत्य बिभीषणोवतस्थे ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥ ॥ ॥ ॥

युध्यमानौ तु तौ दृष्ट्वा प्रसक्तौ नरराक्षसौ ॥ प्रभिन्नाविव मातङ्गौ परस्परवधैषिणौ ॥ १ ॥ तौ द्रष्टुकामः संग्रामे परस्परगतौ बली ॥ शूरः स रावणभ्राता तस्थौ संग्राममूर्धनि ॥ २ ॥ ततो विस्फारयामास महद्धनुरवस्थितः ॥ उत्ससर्ज च तीक्ष्णाग्रान् राक्षसेषु महाशरान् ॥३॥ ते शराः शिखिसंकाशा निपतन्तः समाहिताः ॥ राक्षसान् दारयामासुर्वज्राणीव महागिरीन् ॥ ४ ॥ बिभीषणस्यानुचरास्तेपि शूलासिपट्टिशैः ॥ चिच्छिदुः समरे वीरान् राक्षसान् राक्षसोत्तमाः ॥ ५ ॥ राक्षसैस्तैः परिवृतः स तदा तु बिभीषणः ॥ बभौ मध्ये प्रहृष्टानां कलभानामिव द्विपः ॥६॥ ततः संचोदयानो वै हरीन् रक्षो रणप्रियान् ॥ उवाच वचनं काले कालज्ञो रक्षसां वरः ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रथमं द्रष्टुकामः स बिभीषणस्तौ दृष्ट्वा संग्राममूर्धनि योद्धुं तस्थावित्यन्वयः । स्वयं प्रथमं युद्धं कर्तुमुद्युक्तोपि तयोर्बलाधिक्यं द्रष्टुं तूष्णीं स्थितः । तयोर्बलतौल्ये दृष्टे स्वस्य रामविषयकिञ्चित्कारार्थमिदानीं युद्धाय तस्थावित्यर्थः ॥१ ॥ २ ॥ तत इति ॥ धनुः तादात्विकं किंचित् । बिभीषणस्य केवलगदापाणित्वात् ॥ ३ ॥ ते शरा इति ॥ वज्राणि अशनयः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एकोयमिति ॥ परायणं गतिः ॥ ८ ॥९॥ उक्तानुक्तांश्च राक्षसान् युद्धे हतान् कांश्चित्परिगणयत्युत्साहनाय—प्रहस्त इत्यादिना श्लोकपञ्चकेन ॥ अकम्पनः कम्पनश्च राक्षसौ सर्वत्र निहत इत्यनेनान्वयः । देवान्तकनरान्तकावित्यत्र निहताविति विपरिणामः कार्यः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४॥ एतानिति ॥ एतान् राक्षससत्तमान् निहत्य स्थितानां भवताम् इन्द्रजितो हननं, बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा स्थितस्य पुंसो गोष्पदतरणमिव सुकरमिति नि-

एकोयं राक्षसेन्द्रस्य परायणमिव स्थितः ॥ एतच्छेषं बलं तस्य किं तिष्ठत हरीश्वराः ॥ ८ ॥ अस्मिन्विनिहते पापे राक्षसे रणमूर्धनि ॥ रावणं वर्जयित्वा तु शेषमस्य हतं बलम् ॥ ९ ॥ प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः ॥ कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धूम्राक्षश्च निशाचरः ॥ १० ॥ जम्बुमाली महामाली तीक्ष्णवेगोशनिप्रभः ॥ सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च वज्रदंष्ट्रश्च राक्षसः ॥ ११ ॥ संह्रादी विकटो निघ्नस्तपनो दम एव च ॥ प्रघासः प्रघसश्चैव प्रजङ्घो जङ्घ एव च ॥ ॥ १२ ॥ अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च वीर्यवान् ॥ विद्युज्जिह्वो द्विजिह्वश्च सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ १३ ॥ अकम्पनः सुपार्श्वश्च चक्रमाली च राक्षसः ॥ कम्पनः सत्त्ववन्तौ तौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ १४ ॥ एतान्निहत्यातिबलान् बहून् राक्षससत्तमान् ॥ बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा लङ्घ्यतां गोष्पदं लघु ॥ १५ ॥ एतावदेव शेषं वो जेतव्यमिह वानराः ॥ हताः सर्वे समागम्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥ १६ ॥ अयुक्तं निधनं कर्तुं पुत्रस्य जनितुर्मम ॥ घृणामपास्य रामार्थे निहन्यां भ्रातुरात्मजम् ॥ १७ ॥ हन्तुकामस्य मे बाष्पं चक्षुश्चैव निरुद्ध्यति ॥ तमेवैष महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति ॥ वानरा घ्नत संभूय भृत्यानस्य समीपगान् ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

दर्शना । बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वैव एतानतिबलान् बहून् राक्षससत्तमान् निहत्य स्थितैः भवद्भिः गोष्पदमिव लघु इन्द्रजिद्धननरूपं स्वल्पं कार्यं लङ्घ्यतामित्यन्वयः ॥ १५ ॥ एतावदिति ॥ एतावदेव इन्द्रजिन्मात्रमेव ॥ १६ ॥ अयुक्तमिति ॥ जनितुः जनयितुः । पितृव्यस्येत्यर्थः ॥ १७ ॥ हन्तुकामस्येति ॥ बाष्पं कर्तृ, चक्षुः निरुद्ध्यति निरुणद्धि ॥ १८ ॥ ॥ ॥

॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ स इति ॥ यथा भीम इति । महास्वनो देवानां संप्रहारो यथा तथेत्यर्थः ॥ २४॥ हनुमानिति ॥ अत्र हनुमतो युद्धकथनात् किंचिद्विश्रमार्थं तस्य पृष्ठादवरूढो लक्ष्मण इत्यवगम्यते । सहस्रशः कदनमित्यन्वयः ॥२५॥२६॥२७॥२८॥ न ह्यादानमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ आदानं बाणस्य तूणादुद्धरणम् । संधानम् उद्धृतस्य बाणस्य धनुष्यवस्थापनम् । धनुषो वा परिग्रहः सव्यापसव्यत्वेन कार्मुकग्रहणम् । बाणानां विप्रमोक्षः विसर्जनम् । विकर्षः आकर्णग्रहणम् । विग्रहः आलीढाद्यवस्थानविशेषः, सावष्टम्भावस्थानं वा, धनुर्ज्यादीनां प्रविभागो वा । विग्रहः समरे काये विरोधप्रविभागयोरिति विश्वः । मुष्टिप्रतिसंधानं ज्याकार्मुकयोर्मुष्टिबन्धनम् । लक्ष्यप्रतिपादनं लक्ष्यप्रापणम् । लक्ष्यवेध इति यावत् ॥ २९॥३०॥

इति तेनातियशसा राक्षसेनाभिचोदिताः ॥ वानरेन्द्रा जहृषिरे लाङ्गूलानि च विव्यधुः ॥ १९ ॥ ततस्ते कपिशार्दूलाः क्ष्वेलन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥ मुमुचुर्विविधान्नादान् मेघान् दृष्ट्वेव बर्हिणः ॥ २० ॥ जाम्बवानपि तैः सर्वैः स्वयूथैरपि संवृतः ॥ अश्मभिस्ताडयामास नखैर्दन्तैश्च राक्षसान् ॥ २१ ॥ निघ्नन्तमृक्षाधिपतिं राक्षसास्ते महाबलाः ॥ परिवव्रुर्भयं त्यक्त्वा तमनेकविधायुधाः ॥ २२ ॥ शरैः परशुभिस्तीक्ष्णैः पट्टिशैर्यष्टितोमरैः ॥ जाम्बवन्तं मृधे जघ्नुर्निघ्नन्तं राक्षसीं चमूम् ॥ २३ ॥ स संप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ॥ देवासुराणां क्रुद्धानां यथा भीमो महास्वनः ॥ २४ ॥ हनुमानपि संक्रुद्धः सालमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥ रक्षसां कदनं चक्रे समासाद्य सहस्रशः ॥२५॥ स दत्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्यस्येन्द्रजिद्युधि ॥ लक्ष्मणं परवीरघ्नं पुनरेवाभ्यधावत ॥ २६ ॥ तौ प्रयुद्धौ तदा वीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ ॥ शरौघानभिवर्षन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ॥ २७ ॥अभीक्ष्णमन्तर्दधतुः शरजालैर्महाबलौ ॥ चन्द्रादित्याविवोष्णान्ते यथा मेघैस्तरस्विनौ ॥ २८ ॥ न ह्यादानं न संधानं धनुषो वा परिग्रहः ॥ न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ॥ २९ ॥ न मुष्टिप्रतिसंधानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् ॥ अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ॥ ३० ॥

चापवेगेति ॥ रूप्यन्त इति रूपाणि वस्तूनि । बाणव्यतिरेकेण न किंचित्तदानीं दृश्यत इति भावः ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण इति ॥ लोकव्यवहारानुसारेणात्र क्रियाकारकसंबन्धः । लक्ष्मणो रावणिं रावणिश्चापि लक्ष्मणं प्राप्य ताभ्यामन्योन्यविग्रहे अन्योन्याभिभवे उग्रा अव्यवस्था भवति । अन्योन्यप्राप्तावयमेनं निगृह्णाति अयं वा एनमिति निश्चयो नाभवदित्यर्थः । यद्वा रावणिं लक्ष्मणो रावणिश्चापि लक्ष्मणं प्राप्य अयुध्येतामिति शेषः । ताभ्यां त-

चापवेगविनिर्मुक्तबाणजालैः समन्ततः ॥ अन्तरिक्षे हि संछन्ने न रूपाणि चकाशिरे ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणो रावणिं प्राप्य रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ॥ अव्यवस्था भवत्युग्रा ताभ्यामन्योन्यविग्रहे ॥ ३२ ॥ ताभ्यामुभाभ्यां तरसा विसृष्टैर्विशिखैः शितैः ॥ निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसावृतम् ॥ ३३ ॥ तैः पतद्भिश्च बहुभिस्तयोः शरशतैः शितैः ॥ दिशश्च प्रदिशश्चैव बभूवुः शरसंकुलाः ॥ ३४ ॥ तमसा संवृतं सर्वमासीद्भीमतरं महत् ॥ अस्तं गते सहस्रांशौ संवृतं तमसेव हि ॥ ३५ ॥ रुधिरौघमहानद्यः प्रावर्तन्त सहस्रशः ॥ क्रव्यादा दारुणा वाग्भिश्चिक्षिपुर्भीमनिःस्वनम् ॥ ३६ ॥ न तदानीं ववौ वायुर्न च जज्वाल पावकः ॥ स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जजल्पुश्च महर्षयः ॥ ३७ ॥ संपेतुश्चात्र संप्राप्ता गन्धर्वाः सह चारणैः ॥ ३८ ॥ अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान् कनकभूषणान् ॥ शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥ ३९ ॥ ततोऽपरेण भल्लेन शितेन निशितेन च ॥ संपूर्णायतमुक्तेन सुपत्त्रेण सुवर्चसा ॥ ४० ॥ ॥ ॥

था युद्धं कुर्वद्भ्याम्, अन्योन्यविग्रहे परस्परप्रहारे क्रियमाणे उग्रा अव्यवस्था भवति । क्षणे क्षणे जयपराजयनियमो नाभूदित्यर्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तैः पतद्भिरित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ शरशतैः निमित्तभूतैः महत् अत्यन्तम् ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रुधिरौघेति ॥ चिक्षिपुः चक्रुः ॥ ३६ ॥ न तदानीमित्यादि ॥ अत्र युद्धस्थले पूर्वं संप्राप्ताः गन्धर्वाः चारणैः सह संपेतुः । अन्यत्र गता इत्यर्थः । अतिघोरयुद्धदर्शनभयादिति भावः ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ततोऽपरेणेत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ संपूर्णायतमुक्तेन संपूर्णाकृष्टमुक्तेन ॥ ४० ॥ ॥ ॥

॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ छिद्रेष्विति ॥ छिद्रेषु रन्ध्रेषु, बाणेषु बाणप्रयोगेषु, शीघ्रविक्रम इत्यन्वयः ॥ ४६ ॥ निहतमिति ॥ समरोद्धर्षं युद्धगर्वम् ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ते चास्येति ॥ समहावीर्याः महावीर्यसहिताः ॥ ५० ॥ तेषामिति ॥ रक्तं शोणितम् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

महेन्द्राशनिकल्पेन सुतस्य विचरिष्यतः ॥ स तेन बाणाशनिना तलशब्दानुनादिना ॥ ४१ ॥ लाघवाद्राघवः श्रीमान् शिरः कायादपाहरत् ॥ ४२ ॥ स यन्तारि महातेजा हते मन्दोदरीसुतः ॥ ४३ ॥ स्वयं सारथ्यमकरोत्पुनश्च धनुरस्पृशत् ॥ तदद्भुतमभूत्तत्र सामर्थ्यं पश्यतां युधि ॥ ४४ ॥ हतेषु व्यग्रहस्तं तं विव्याध निशितैः शरैः ॥ धनुष्यथ पुनर्व्यग्रे हयेषु मुमुचे शरान् ॥ ४५ ॥ छिद्रेषु तेषु बाणेषु सौमित्रिः शीघ्रविक्रमः ॥ अर्दयामास बाणौघैर्विचरन्तमभीतवत् ॥ ४६ ॥ निहतं सारथिं दृष्ट्वा समरे रावणात्मजः ॥ प्रजहौ समरोद्धर्षं विषण्णः स बभूव ह ॥ ४७ ॥ विषण्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं हरियूथपाः ॥ ततः परमसंहृष्टा लक्ष्मणं चाभ्यपूजयन् ॥ ४८ ॥ ततः प्रमाथी शरभो रभसो गन्धमादनः॥ अमृष्यमाणाश्चत्वारश्चक्रुर्वेगं हरीश्वराः ॥ ४९ ॥ ते चास्य हयमुख्येषु तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः ॥ चतुर्षु समहावीर्या निपेतुर्भीमविक्रमाः ॥ ५० ॥ तेषामधिष्ठितानां तैर्वानरैः पर्वतोपमैः ॥ मुखेभ्यो रुधिरं रक्तं हयानां समवर्तत ॥ ५१ ॥ ते हया मथिता भग्ना व्यसवो धरणीं गताः ॥ ते निहत्य हयांस्तस्य प्रमथ्य च महारथम् ॥५२॥ पुनरुत्पत्य वेगेन तस्थुर्लक्ष्मणपार्श्वतः॥ स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथेः॥ शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः ॥५३॥ ततो महेन्द्रप्रतिमः स लक्ष्मणः पदातिनं तं निशितैः शरोत्तमैः ॥ सृजन्तमाजौ निशितान् शरोत्तमान् भृशं तदा बाणगणैर्न्यवारयत् ॥५४॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥९०॥

तत इति ॥ पदातिनं पदाभ्यामापतन्तं गच्छन्तम् । "अत, सातत्यगमने" इत्यस्माण्णिनिः ॥५४॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥ ॥ ॥ ॥

अथेन्द्रजिद्वधः—स हताश्व इत्यादि ॥१॥ ताविति ॥ विजयेनेति प्रयोजने तृतीया। विजयायेत्यर्थः। अभिनिष्क्रान्तौ बभूवतुरिति शेषः। गजवृषाविव गजश्रेष्ठाविव। यद्वा किंचिद्धीनबलत्वादिन्द्रजितो वृषभतुल्यत्वम् ॥२॥ निबर्हयन्त इति ॥ संपतन्तः परितः संचरन्त इत्यर्थः ॥ ३ ॥ तत इति ॥ स्तुवानः

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः ॥ इन्द्रजित्परमक्रुद्धः संप्रजज्वाल तेजसा ॥ १ ॥ तौ धन्विनौ जिघांसन्तावन्योन्यमिषुभिर्भृशम् ॥ विजयेनाभिनिष्क्रान्तौ वने गजवृषाविव ॥ २ ॥ निबर्हयन्तश्चान्योन्यं ते राक्षसवनौकसः ॥ भर्तारं न जहुर्युद्धे संपतन्तस्ततस्ततः ॥३॥ ततस्तान् राक्षसान् सर्वान् हर्षयन् रावणात्मजः ॥ स्तुवानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः ॥ नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः ॥ ५ ॥ धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै ॥ अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगम् ॥६॥ तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे काननौकसः ॥ न युद्ध्येयुर्दुरात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः ॥ प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा ॥ ८ ॥ स रथं भूषयित्वा तु रुचिरं हेमभूषितम् ॥ प्रासासिशतसंपूर्णं युक्तं परमवाजिभिः ॥ ९ ॥ अधिष्ठितं हयज्ञेन सूतेनाप्तोपदेशिना ॥ आरुरोह महातेजा रावणिः समितिंजयः ॥ १० ॥ स राक्षसगणैर्मुख्यैर्वृतो मन्दोदरीसुतः॥निर्ययौ नगरात्तूर्णं कृतान्तबलचोदितः ॥११॥ सोभिनिष्क्रम्य नगरादिन्द्रजित्परवीरहा॥अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्लक्ष्मणं सबिभीषणम्॥१२॥ ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम्॥ वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च बिभीषणः ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात्तस्य धीमतः ॥ १३ ॥ ॥

स्तुवन्। आर्षः शानच् (?) ॥४॥५॥ धृष्टमिति ॥ मोहनाय मन्निर्गमनापरिज्ञानाय ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ स रथमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ भूषयित्वा स्वतेजसा भूषयित्वा। आप्तोपदेशिना हितोपदेशिना ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ तत इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ ततः तस्माद्युद्धप्रदेशात् ॥ १३ ॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ स इति ॥ त्वरन्निवेति । इवशब्दो वाक्यालंकारे । निरकृन्तत अच्छिनत् ॥१८॥ १९ ॥२०॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ स भिन्नवर्मेति ॥ अनेन पुनश्च कवचान्तरमपि स्वीकृतवानित्यवगम्यते ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३॥ दर्शयामासेति ॥ दर्शयामास पराक्रममिति शेषः ॥

रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान् ॥ पातयामास बाणौघैः शतशोथ सहस्रशः ॥ १४ ॥ स मण्डलीकृतधनू
रावणिः समितिंजयः ॥ हरीनभ्यहनत्क्रुद्धः परं लाघवमास्थितः ॥ १५ ॥ ते वध्यमाना हरयो
नाराचैर्भीमविक्रमाः ॥ सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ १६ ॥ ततः समरकोपेन ज्वलितो
रघुनन्दनः॥ चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ १७ ॥ सोन्यत्कार्मुकमादाय सज्यं चक्रे
त्वरन्निव ॥ तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत ॥ १८ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः ॥ विव्याधोरसि
सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः ॥ १९ ॥ ते तस्य कायं निर्भिद्य महाकार्मुकनिःसृताः ॥
निपेतुर्धरणीं बाणा रक्ता इव महोरगाः ॥ २० ॥ स भिन्नवर्मा रुधिरं वमन् वक्त्रेण रावणिः ॥ जग्राह
कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम् ॥ २१ ॥ स लक्ष्मणं समुद्दिश्य परं लाघवमास्थितः ॥ ववर्ष शरवर्षाणि
वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ २२ ॥ मुक्तमिन्द्रजिता तत्तु शरवर्षमरिन्दमः ॥ अवारयदसंभ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम्
॥ २३ ॥ दर्शयामास च तदा रावणिं रघुनन्दनः ॥ असंभ्रान्तो महातेजास्तदद्भुतमिवाभवत्
॥ २४ ॥ ततस्तान् राक्षसान् सर्वांस्त्रिभिरेकैकमाहवे ॥ २५ ॥ अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं संप्रदर्शयन् ॥
राक्षसेन्द्रसुतं चापि बाणौघैः समताडयत्॥२६॥सोतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुघातिना॥असक्तं प्रेषयामास
लक्ष्मणाय बहून् शरान् ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥

❀ रामानुजीयम् ❀ स दर्शयामासेति ॥ हस्तलाघवमिति शेषः । रावणिं हस्तलाघवं दर्शयामासेति संबन्धः ॥ २४ ॥ ततस्तानित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ शीघ्रास्त्रं शीघ्रमन्त्रम् ॥ २५ ॥ २६ ॥ स इति ॥ असक्तम् अव्यासङ्गम्, अविलम्बितं वा ॥ २७ ॥ ॥ ॥

तानप्राप्तानित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ रथिनोस्य रावणेः सारथेरित्यन्वयः ॥ २८ ॥ असूता इति ॥ अविक्लवाः अनाकुलाः । शिक्षापाटवातिशयादिति मन्तव्यम् ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ते तस्येति ॥ विलयं नाशम् ॥ ३२ ॥ अभेद्येत्यादिसार्धश्लोकः ॥ अभेद्यकवचमित्यनेन पूर्वकवचस्य

तानप्राप्तान् शितैर्बाणैश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥ सारथेरस्य च रणे रथिनो रथसत्तमः॥ शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा ॥ २८ ॥ असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः ॥ मण्डलान्यभिधावन्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥ अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः ॥ प्रत्यविध्यद्धयांस्तस्य शरैर्वित्रासयन् रणे ॥ ३० ॥ अमृष्यमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो बली ॥ विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं तममर्षणम् ॥ ३१ ॥ ते तस्य वज्रप्रतिमाः शराः सर्पविषोपमाः ॥ विलयं जग्मुराहत्य कवचं काञ्चनप्रभम् ॥ ३२ ॥ अभेद्यकवचं मत्वा लक्ष्मणं रावणात्मजः ॥ ललाटे लक्ष्मणं बाणैः सुपुङ्खैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ॥ अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं च प्रदर्शयन् ॥ ३३ ॥ तैः पृषत्कैर्ललाटस्थैः शुशुभे रघुनन्दनः ॥ रणाग्रे समरश्लाघी त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३४ ॥ स तथा ह्यर्दितो बाणै राक्षसेन महामृधे ॥ तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ॥ विकृष्येन्द्रजितो युद्धे वदने शुभकुण्डले ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ ॥ अन्योन्यं जघ्नतुर्बाणैर्विशिखैर्भीमविक्रमौ ॥ ३६ ॥ ततः शोणितदिग्धाङ्गौ लक्ष्मणेन्द्रजितावुभौ ॥ रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३७ ॥ तौ परस्परमभ्येत्य सर्वगात्रेषु धन्विनौ ॥ घोरैर्विव्यधतुर्बाणैः कृतभावावुभौ जये ॥ ३८ ॥ ततः समरकोपेन संयुक्तो रावणात्मजः ॥ बिभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे ॥ ३९ ॥ ॥

भग्नत्वात् कवचान्तरं धृतमिति गम्यते । शीघ्रास्त्रं च प्रदर्शयन् । आत्मनः शीघ्रास्त्रत्वं प्रदर्शयन्नित्यर्थः ॥ ३३ ॥ तैरिति ॥ समरं श्लाघत इति समरश्लाघी । समरप्रिय इत्यर्थः । पृषत्कैः बाणैः ॥ ३४ ॥ स तथेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ विकृष्य धनुराकृष्य ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणेन्द्रजिताविति ॥ विशिखैः विविधशिखैः । करवीरपत्राद्याकाराग्रैरित्यर्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ताविति ॥ जये कृतभावावित्यन्वयः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ॥

॥ ४० ॥ ४१ ॥ स इति ॥ रथशक्तिं रथेवस्थितां शक्तिम् ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तस्मा इति ॥ दृढधनुः दृढधन्वा । समासान्तविधेरनित्यत्वात्साधुः ॥४४॥ ते तस्येति ॥ निमित्तगाः लक्ष्यगाः । वेध्यं लक्ष्यं शरव्यं च निमित्तं च समं विदुरिति निघण्टुः ॥४५॥ स पितृव्यायेति ॥ रक्षसां मध्ये आदद इत्यन्वयः

अयोमुखैस्त्रिभिर्विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं बिभीषणम् ॥ एकैकेनाभिविव्याध तान् सर्वान् हरियूथपान् ॥ ४० ॥ तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान् ॥ बिभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः ॥ ४१ ॥ स हताश्वादवप्लुत्य रथान्निहतसारथेः ॥ रथशक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह ॥ ४२ ॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधा सापतद्भुवि ॥ ४३ ॥ तस्मै दृढधनुः क्रुद्धो हताश्वाय बिभीषणः ॥ वज्रस्पर्शसमान् पञ्च ससर्जोरसि मार्गणान् ॥ ४४ ॥ ते तस्य कायं निर्भिद्य रुक्मपुङ्खा निमित्तगाः ॥ बभूवुर्लोहितादिग्धा रक्ता इव महोरगाः ॥ ४५ ॥ स पितृव्याय संक्रुद्ध इन्द्रजिच्छरमाददे ॥ उत्तमं रक्षसां मध्ये यमदत्तं महाबलः ॥ ४६ ॥ तं समीक्ष्य महातेजा महेषुं तेन संहितम् ॥ लक्ष्मणोप्याददे बाणमन्यं भीमपराक्रमः ॥ ४७ ॥ कुबेरेण स्वयं स्वप्ने स्वस्मै दत्तं महात्मना ॥ दुर्जयं दुर्विषह्यं च सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ४८ ॥ तयोस्ते धनुषी श्रेष्ठे बाहुभिः परिघोपमैः ॥ विकृष्यमाणे बलवत् क्रौञ्चाविव चुकूजतुः ॥ ४९ ॥ ताभ्यां तौ धनुषि श्रेष्ठे संहितौ सायकोत्तमौ ॥ विकृष्यमाणौ वीराभ्यां भृशं जज्वलतुः श्रिया ॥ ५० ॥ तौ भासयन्तावाकाशं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ ॥ मुखेन मुखमाहत्य संनिपेततुरोजसा ॥ ५१ ॥ सन्निपातस्तयोरासीच्छरयोर्घोररूपयोः ॥ सधूमविस्फुलिङ्गश्च तज्जोऽग्निर्दारुणोऽभवत् ॥ ५२ ॥ तौ महाग्रहसंकाशावन्योन्यं सन्निपत्य च ॥ संग्रामे शतधा यान्तौ मेदिन्यां विनिपेततुः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥

॥ ४६ ॥ तं समीक्ष्येत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ महात्मना अप्रमेयबुद्धिना । भाविवृत्तान्तज्ञेनेति यावत् ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ताविति ॥ सन्निपेततुः संघर्षं प्राप्तौ ॥ ५१ ॥ सन्निपात इति ॥ तज्जः सन्निपातजः ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ॥ ॥

॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तत इति ॥ संक्षिपन् संहरन् ॥ ५७ ॥ सौरेणेति ॥ सौरेण सूर्यदेवताकेन । "सूर्यतिष्यागस्त्य०" इत्यादिना यलोपः ॥५८॥ ॥५९॥ तस्मादिति ॥ असुरास्त्रप्रयोगाद्धेतोः, चापात् इन्द्रजिद्धनुषोपादानात्, कूटमुद्गरादयो विनिष्पेतुरित्यन्वयः। भुशुण्ड्य : मुसलविशेषाः ॥६०॥

शरौ प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्धनि ॥ व्रीडितौ जातरोषौ च लक्ष्मणेन्द्रजितौ तदा ॥ ५४ ॥ सुसंरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे ॥ ५५ ॥ रौद्रं महेन्द्रजिद्युद्धे व्यसृजद्युधि निष्ठितः ॥ तेन तद्विहतं त्वस्त्रं वारुणं परमाद्भुतम् ॥ ५६ ॥ ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः ॥ आग्नेयं संदधे दीप्तं स लोकं संक्षिपन्निव ॥ ५७ ॥ सौरेणास्त्रेण तद्वीरो लक्ष्मणः प्रत्यवारयत् ॥ ५८ ॥ अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ॥ आसुरं शत्रुनाशाय घोरमस्त्रं समाददे ॥ ५९ ॥ तस्माच्चापाद्विनिष्पेतुर्भास्वराः कूटमुद्गराः ॥ ॥ शूलानि च भुशुण्ड्यश्च गदाः खड्गाः परश्वधाः ॥ ६० ॥ तद्दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रमथासुरम् ॥ अवार्यं सर्वभूतानां सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ६१ ॥ तयोः सुतुमुलं युद्धं संबभूवाद्भुतोपमम्॥गगनस्थानि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन्॥६२॥ भैरवाभिरुते भीमे युद्धे वानररक्षसाम् ॥ भूतैर्बहुभिराकाशं विस्मितैरावृतं बभौ ॥ ६३ ॥ ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वा गरुडोरगाः॥ शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ॥ ६४ ॥ अथान्यं मार्गणश्रेष्ठं संदधे राघवानुजः ॥ हुताशनसमस्पर्शं रावणात्मजदारणम् ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ ॥

तद्दृष्ट्वेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ क्रियाद्वयार्थं तदस्त्रमिति द्विरुक्तिः ॥ ६१ ॥ तयोरिति ॥ स्पष्टः ॥ ६२ ॥ भैरवेति ॥ भैरवाभिरुते भयंकरशब्दे ॥ ६३ ॥ ऋषय इति ॥ ररक्षुः जय जयेत्याद्युक्तिभिरित्यर्थः ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ॥ ॥

सुपत्रमित्यादिचतुःश्लोक्येकान्वया ॥ अनुवृत्ताङ्गं वर्तुलस्वरूपम् । सुसंस्थितं सुसंस्थानम् । सुवर्णविकृतं सुवर्णविचित्रितम् । हरिवाहनः हरितवर्णाश्वः । ऐन्द्रमस्त्रम् ऐन्द्रास्त्रमन्त्रयोजितम् ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ संधायेति ॥ अमित्रदलनं शत्रुनाशनम् । कालः यमः ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सुपत्रमनुवृत्ताङ्गं सुपर्वाणं सुसंस्थितम् ॥ सुवर्णविकृतं वीरः शरीरान्तकरं शरम् ॥६६॥ दुरावारं दुर्विषह्यं राक्षसानां भयावहम् ॥ आशीविषविषप्रख्यं देवसंघैः समर्चितम् ॥६७॥ येन शक्रो महातेजा दानवानजयत्प्रभुः ॥ पुरा देवासुरे युद्धे वीर्यवान् हरिवाहनः ॥ ६८ ॥ तदैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ॥ शरश्रेष्ठं धनुःश्रेष्ठे नरश्रेष्ठोभिसंदधे ॥ ६९ ॥ संधायामित्रदलनं विचकर्ष शरासनम् ॥ सज्यमायम्य दुर्धर्षं कालो लोकक्षये यथा ॥ ७० ॥ संधाय धनुषि श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ॥ लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः ॥ ७१ ॥ धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि ॥ पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः शरैनं जहि रावणिम् ॥७२॥ इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ॥ लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥ ऐन्द्रास्त्रेण समायोज्य लक्ष्मणः परवीरहा ॥७३॥ स शिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥ ७४ ॥ तद्राक्षसतनूजस्य छिन्नस्कन्धं शिरो महत् ॥ तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ॥७५॥ हतस्तु निपपाताशु धरण्यां रावणात्मजः ॥ कवची सशिरस्त्राणो विध्वस्तः सशरासनः ॥ ७६ ॥ चुक्रुशुस्ते ततः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥ हृष्यन्तो निहते तस्मिन् देवा वृत्रवधे यथा ॥ ७७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इत्युक्त्वेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ बाणमैन्द्रास्त्रमन्त्रेण समायोज्य ससर्जेत्यन्वयः । एको लक्ष्मणशब्दो लक्ष्मीयुक्तवचनः । लक्ष्मीवान् लक्ष्मणः श्रीलः श्रीमानित्यमरः ॥ ७३ ॥ स शिरः सशिरस्त्राणमिति ॥ सः बाणः ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हतस्त्विति ॥ कवचीति । कवचादिभिः सह विध्वस्तः हतः धरण्यां निपपातेत्यन्वयः ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ शान्तरश्मिरिति ॥ व्यपास्तगतजीवितः व्यपास्तो विक्षिप्ताङ्गो गतजीवितश्च, सः शान्तरश्मिरादित्य इव, निर्वाणः शान्तः, पावक इव च बभूव। निस्तेजस्कोभूदित्यर्थः॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ शान्तरश्मिरिति ॥ गतजीवितः सः शान्तरश्मिरादित्य इव बभूव। निर्वाणः पावक इव व्यपास्तः अतिष्ठदिति संबन्धः ॥८५॥ प्रशान्तेति ॥ इदमारभ्य लोकविशेषणम् । प्रशान्तपीडाबहुलः प्रशान्तबहुलपीडः । प्रतापवान् सूर्यप्रकाशमान् । पूर्वं भयेन मन्दसूर्यत्वात् ॥८६॥८७॥ आकाश इत्यर्धम् ॥ ८८॥ नृत्यद्भिरिति ॥ अप्सरोभिर्गन्धर्वैश्च कृतनर्तनगानजन्यस्वनः शुश्रुव इत्यर्थः । नृत्यद्भिरित्यत्र ङीबभाव आर्षः ॥८९॥ ववृषुरिति ॥ अत्रापि देवाः कर्तारः। ववृषुः प्रशशंसुश्च॥९०॥९१ ॥

अथान्तरिक्षे देवानामृषीणां च महात्मनाम् ॥ अभिजज्ञे च सन्नादो गन्धर्वाप्सरसामपि॥ ७८ ॥ पतितं तमभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः॥वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः ॥ ७९ ॥ वानरैर्वध्यमानास्ते शस्त्राण्युत्सृज्य राक्षसाः ॥ लङ्कामभिमुखाः सस्रुर्नष्टसंज्ञाः प्रधाविताः ॥ ८० ॥ दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः ॥ त्यक्त्वा प्रहरणान् सर्वे पट्टिशासिपरश्वधान् ॥ ८१ ॥ केचिल्लङ्कां परित्रस्ताः प्रविष्टा वानरार्दिताः ॥ समुद्रे पतिताः केचित्केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ ८२ ॥ हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा शयानं समरक्षितौ ॥ राक्षसानां सहस्रेषु न कश्चित्प्रत्यदृश्यत ॥ ८३ ॥ यथास्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ॥ तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥ ८४ ॥ शान्तरश्मिरिवादित्यो निर्वाण इव पावकः ॥स बभूव महातेजा व्यपास्तगतजीवितः ॥ ८५ ॥ प्रशान्तपीडाबहुलो नष्टारिष्टः प्रतापवान् ॥ बभूव लोकः पतिते राक्षसेन्द्रसुते तदा ॥ ८६ ॥ हर्षं च शक्रो भगवान् सह सर्वैः सुरर्षभैः॥ जगाम निहते तस्मिन् राक्षसे पापकर्मणि ॥ ८७ ॥ आकाशे चापि देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः॥ ८८॥ नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च महात्मभिः ॥ ८९ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि तदद्भुतमभूत्तदा ॥ प्रशशंसुर्हते तस्मिन् राक्षसे क्रूरकर्मणि॥ ९० ॥ शुद्धा आपो दिशश्चैव जहृषुर्दैत्यदानवाः ॥ ९१ ॥ ॥ ॥

आजग्मुरित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ देवगन्धर्वदानवाः आजग्मुः विचरन्त्वित्यूचुश्चेति संबन्धः॥९२॥९३॥९४ ॥९५॥ लाङ्गूलानीति ॥ विश्रावयन् व्यश्रावयन् ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ तदसुकरमिति ॥ असुकरं दुष्करम्, सर्वेषां प्राणप्रतिष्ठापकमिति वा । प्रियसुहृदः सर्वप्रियसुहृदः । उपलभन्नित्यत्र अडात्मनेपदाभावावार्षौ । देवाः इन्द्ररिपुं विनिहतं निशम्य परमं मनःप्रहर्षम् उपलभन् उपालभन्त । अथ असुकरं तत् इन्द्रजिद्धननं प्रियसुहृदः

आजग्मुः पतिते तस्मिन् सर्वलोकभयावहे ॥ ऊचुश्च सहिताः सर्वे देवगन्धर्वदानवाः ॥ विज्वराः शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति ॥ ९२ ॥ ततोऽभ्यनन्दन् संहृष्टाः समरे हरियूथपाः ॥ तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ ९३ ॥ बिभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः॥ विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥९४॥ क्ष्वेलन्तश्च नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ॥ लब्धलक्षा रघुसुतं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ९५ ॥ लाङ्गूलानि प्रविध्यन्तः स्फोटयन्तश्च वानराः ॥ लक्ष्मणो जयतीत्येवं वाक्यं विश्रावयंस्तदा ॥ ९६ ॥ अन्योन्यं च समाश्लिष्य कपयो हृष्टमानसाः ॥ चक्रुरुच्चावचगुणा राघवाश्रयजाः कथाः ॥ ९७॥ तदसुकरमथाभिवीक्ष्य हृष्टाः प्रियसुहृदो युधि लक्ष्मणस्य कर्म ॥ परममुपलभन् मनःप्रहर्षं विनिहतमिन्द्ररिपुं निशम्य देवाः ॥ ९८ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥ ॥

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥ बभूव हृष्टस्तं हत्वा शक्रजेतारमाहवे ॥ १ ॥ ततः स जाम्बवन्तं च हनुमन्तं च वीर्यवान् ॥ सन्निहत्य महातेजास्तांश्च सर्वान्वनौकसः ॥ २ ॥ आजगाम ततस्तीव्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ॥ बिभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

लक्ष्मणस्य, कर्म कृतिविषयभूतम्, अभिवीक्ष्य हृष्टाः विस्मिताः। आसन्निति शेषः। "विस्मितप्रतिघातयोश्चेति वक्तव्यम्" इति हृषेः पाक्षिक इडभावः। देवाश्चारणादिमुखेन प्रथममिन्द्रजिद्धननं श्रुत्वा संतुष्टाः सन्तः पश्चात्तस्यात्यन्ताशक्यत्वादतथ्यं मन्वाना युद्धभूमिमागत्य तत्प्रत्यक्षीकृत्य विस्मिता आसन्निति भावः ॥९८॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥
अथ लक्ष्मणश्लाघनं–रुधिरक्लिन्नगात्रेत्यादि ॥१॥ तत इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ सन्निहत्य संघीभूय । अवष्टभ्य युद्धपारवश्यादवलम्ब्य ॥२॥३॥

तत इति ॥ इन्द्रस्येव बृहस्पतिरिति पारतन्त्र्यमात्रे साम्यम् ॥ ४ ॥ निष्टनन्निति ॥ निष्टनन् अव्यक्ताक्षरं वदन्नित्यर्थः । इवशब्दो वाक्यालंकारे । आयासस्याभिनयनमात्रेणालीकत्वद्योतनाय वा ॥ ५ ॥ रामसन्निधौ संकोचवता लक्ष्मणेनाविशेषेणेन्द्रजिद्वधकथनाद्विभीषणः स्पष्टतयाह—रावणेरिति ॥ यद्वा लक्ष्मणेन सूचनयोक्तावपि हर्षप्रकर्षेण विभीषणः पुनराह—रावणेरिति ॥ ६ ॥ श्रुत्वेति ॥ महावीर्यो राम इत्यन्वयः ॥७॥ साध्विति ॥

ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च ॥ तस्थौ भ्रातृसमीपस्थ इन्द्रस्येव बृहस्पतिः ॥४ ॥ निष्टनन्निव चागम्य राघवाय महात्मने ॥ आचचक्षे तदा वीरो घोरमिन्द्रजितो वधम् ॥ ५ ॥ रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ॥ न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो बिभीषणः ॥६ ॥ श्रुत्वैतत्तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे रामो वाक्यमुवाच ह ॥ ७ ॥ साधु लक्ष्मण तुष्टोस्मि कर्मणा सुकृतं कृतम् ॥ रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥ ८ ॥ स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥ लज्जमानं बलात्स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥ ९ ॥ उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम् ॥ भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥ १० ॥ शल्यसंपीडितं शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम् ॥ रामस्तु दुःखसंतप्तस्तदा निःश्वासितो भृशम् ॥ ११ ॥ मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् ॥ उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥ १२ ॥ कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा ॥ अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥ अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ १३ ॥

सुकृतं कृतं सुकर्तव्यं कृतम् । कर्मणा युद्धकर्मणा ॥ ८ ॥ स तमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ आरोप्य आरोपणायाकृष्य । अवपीडितं शल्यपीडितं, गाढं यथा भवति तथेति वा । क्रियाभेदात्तमिति द्विरुक्तिः ॥९॥१०॥ शल्यसंपीडितमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ शस्तं प्रहृतम्, निश्वसितः स्वयंकृतनिश्वासः, त्वरन् संस्पृश्य । त्वरा च प्रहारव्यथापनयनायेति भावः ॥११॥१२॥ कृतमित्यादिसार्धश्लोकः ॥ दुष्करकर्मणा त्वयेति शेषः ॥१३॥

रावणस्येति ॥ व्यपाश्रयः आलम्बनम् ॥१४॥ विभीषणेति ॥ अहोरात्रैस्त्रिभिरिति । एकादशीद्वादशीत्रयोदशीभिरित्यर्थः ॥ १५ ॥ निरमित्र इति श्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥१६॥१७॥ त्वयेति ॥ नाथेन याचमानेन। "नाथृ, याच्ञायाम्" इत्यस्मात्पचाद्यच् ॥१८॥स तमिति॥ समाभाष्य आमन्त्र्य॥१९॥

रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे ॥ छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः ॥ १४॥ विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे ॥ अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद्विनिपातितः ॥ १५ ॥ निरमित्रः कृतोस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ॥ बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ १६ ॥ तं पुत्रवधसंतप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् ॥ बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥ १७ ॥ त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे ॥ न दुष्प्रापा हते त्वद्य शक्रजेतरि चाहवे ॥ १८ ॥ स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः ॥ रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ १९॥ सशल्योयं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ॥ यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुपाचर ॥ २० ॥ विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिः सविभीषणः ॥ ऋक्षवानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम् ॥ २१ ॥ ये चाप्यन्येत्र युध्यन्ति सशल्या व्रणिनस्तथा ॥ तेपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियन्तां सुखिनस्त्वया ॥ २२ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण महात्मा हरियूथपः ॥ लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधिम् ॥ २३ ॥ स तस्या गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत ॥ तथा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च ॥ २४ ॥ विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया ॥ सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सां स तदाऽकरोत् ॥ २५ ॥ ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतव्यथः ॥ सौमित्रिर्मुदितस्तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥ २६ ॥ ॥ ॥

सशल्योयमिति ॥ समुपाचर चिकित्सां कुरु ॥ २० ॥ विशल्य इति श्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ ऋक्षवानरसैन्यानामिति निर्धारणे षष्ठी ॥ २१ ॥ २२ ॥ एवमिति ॥ नस्तः नासिकायाम् ॥ २३ ॥ स इति ॥ निर्वेदनः वेदनारहितः ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥

तथैवेति ॥ मुदा युक्तमिति शेषः । मुदा युक्तं सौमित्रिमवेक्ष्य जहर्षिर इति संबन्धः । जहर्षिर इत्यत्र गुण आर्षः ॥२७॥ २८ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥ ॥ ॥

अथ सीतावधोद्योगपर्यन्तो रावणस्य पुत्रशोकातिशय उच्यते—ततः पौलस्त्यसचिवा इत्यादि ॥ पौलस्त्यसचिवाः रावणागारवर्तिनः सहायभूताः, इन्द्र-

तथैव रामः प्लवगाधिपस्तदा बिभीषणश्चर्क्षपतिश्च जाम्बवान् ॥ अवेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थितं मुदा ससैन्याः
सुचिरं जहर्षिरे ॥ २७ ॥ अपूजयत्कर्म स लक्ष्मणस्य सुदुष्करं दाशरथिर्महात्मा ॥ हृष्टा बभूवुर्युधि यूथपेन्द्रा निपातितं
शक्रजितं निशम्य ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥ ॥

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितं हतम् ॥ आचचक्षुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सव्यथाः ॥ १ ॥ युद्धे हतो
महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः ॥ बिभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः ॥ २ ॥ शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः ॥
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्तु विबुधेन्द्रजित् ॥ गतः स परमान् लोकान् शरैः संताप्य लक्ष्मणम् ॥ ३ ॥
स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ॥ घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं चाविशन्महत् ॥ ४ ॥ उपलभ्य चिरात्संज्ञां
राजा राक्षसपुङ्गवः ॥ पुत्रशोकार्दितो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ५ ॥ हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स
महारथ ॥ जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

जितं हतं श्रुत्वा स्वयमभिज्ञाय साभिज्ञानं दृष्ट्वा, सव्यथाः सन्तो रावणाय आचचक्षुः आचचक्षिरे । अथवा अभिज्ञायेति चतुर्थी । पूर्वमेव यज्ञविघ्नेन निश्चिततद्वधायेत्यर्थः । अवज्ञायेति पाठेपि चतुर्थीपक्षे अयमेवार्थः । पक्षान्तरे साक्षात्कारपर्यन्तदर्शनं प्राप्येत्यर्थः ॥ १ ॥ युद्ध इति ॥ मिषतां नः अस्मासु पश्यत्सु सत्स्वित्यर्थः । अनन्तरयोजनायामस्मासु जीवत्स्वित्यर्थः । अनादरे षष्ठी ॥ २ ॥ शूर इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ क्रियाभेदाच्छूरपदद्वयम् । विबुधेन्द्रजित् देवेन्द्रजित् ॥३ ॥ स इति ॥ दारुणं करुणम् । घोरं तीक्ष्णम् । कश्मलं मूर्छाम् । मूर्छा तु कश्मलं मोह इत्यमरः ॥ ४॥ ५ ॥ ६ ॥

नन्तु त्वमिषुभिः क्रुद्धो भिन्द्याः कालान्तकावपि ॥ मन्दरस्यापि शृङ्गाणि किं पुनर्लक्ष्मणं युधि ॥ ७ ॥ अद्य वैवस्वतो राजा भूयो बहुमतो मम ॥ येनाद्य त्वं महाबाहो संयुक्तः कालधर्मणा ॥ ८ ॥ एष पन्थाः सुयोधानां सर्वामरगणेष्वपि ॥ ९॥ यः कृते हन्यते भर्तुः स पुमान् स्वर्गमृच्छति ॥ अद्य देवगणाः सर्वे लोकपालास्तथर्षयः ॥ हतमिन्द्रजितं श्रुत्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ॥ १० ॥ अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना ॥ एकेनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे ॥ ११ ॥ अद्य नैर्ऋतकन्यानां श्रोष्याम्यन्तःपुरे रवम् ॥ करेणुसंघस्य यथा निनादं गिरिगह्वरे ॥ १२ ॥ यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परंतप ॥ मातरं मां च भार्यां च क्व गतोसि विहाय नः ॥१३॥ मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम् ॥ प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे ॥ १४ ॥ स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणे च सराघवे ॥ मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोसि विहाय नः ॥ १५ ॥ एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् ॥ आविवेश महान् कोपः पुत्रव्यसनसंभवः ॥ १६ ॥ प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः ॥ दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः ॥ १७ ॥

नन्तु त्वमिति ॥ नन्वित्यामन्त्रणे । कालान्तकौ यमस्य मूर्तिभेदौ ॥७॥ अद्येति ॥ भूयः अतिशयेन । कालधर्मणा मरणेन । आषोानच् समासान्तः । संयुक्तः संयोजितः ॥ ८ ॥ युद्धमरणस्य सर्वाकाङ्क्षितत्वाद्युद्धहतं त्वां न शोचामीत्याह–एष इति ॥ एषः युद्धमरणरूपः पन्थाः ॥ ९ ॥ एवं यशस्यत्वादशोच्यत्वमुक्त्वा स्वर्ग्यत्वादशोच्यत्वमाह–य इति ॥ १० ॥ ११ ॥ अद्येति ॥ लोकास्त्रय इत्युक्तावपि पृथिव्याः पृथगुपादानं प्राधान्यात् । यथा ब्राह्मणा आगता वसिष्ठोप्यागत इत्यादौ ॥ १२ ॥ यौवराज्यमिति ॥ नः सर्वानिति योजनीयम् ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ प्रकृत्येति ॥ प्रकृत्या कोपनमित्यस्य विवरणम् दीप्तमिति । पुत्रस्य पुत्रसंबन्धिन्यः। पुत्रविषया इत्यर्थः । आधयः शोकाः। पुनः भूयः। संदीपयामासुः कोपयामासुः । अकर्मपक्षे क्रूरयामासुरित्यर्थः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ललाट इति ॥ भ्रुकुटीभिरिति वहुवचनं दशशिरस्कत्वात् ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ दन्तानिति ॥ आवेष्टयमानस्य भ्राम्यमाणस्य, यन्त्रस्य तिलपीडनयन्त्रस्य । दानवैर्बलवद्भिरित्यर्थः ॥ २४ ॥ कालाग्निरिवेति ॥ संविलिल्यिरे स्तम्भादिव्यवहिता बभूवुरित्यर्थः ॥ २५ ॥ तमिति ॥

ललाटे भ्रुकुटीभिश्च संगताभिर्व्यरोचत ॥ युगान्ते सह नक्रैस्तु महोर्मिभिरिवोदधिः ॥ १८ ॥ कोपाद्विजृम्भमाणस्य वक्राद्व्यक्तमभिज्वलन् ॥ उत्पपात स भूयोग्निर्वृत्रस्य वदनादिव ॥ १९ ॥ स पुत्रवधसंतप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ॥ समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या वैदेह्या रोचयद्वधम् ॥ २० ॥ तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनापि च ॥ रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ २१ ॥ घोरं प्रकृत्या रूपं तत्तस्य क्रोधाग्निमूर्छितम् ॥ बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव दुरासदम् ॥ २२ ॥ तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नस्रबिन्दवः ॥ दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ २३ ॥ दन्तान्विदशतस्तस्य श्रूयते दशनस्वनः ॥ यन्त्रस्यावेष्टयमानस्य महतो दानवैरिव ॥ २४ ॥ कालाग्निरिव संक्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत ॥ तस्यां तस्यां भयत्रस्ता राक्षसाः संविलिल्यिरे ॥ २५ ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिखादिषुम् ॥ वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नोपचक्रमुः ॥ २६ ॥ ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ अब्रवीद्रक्षसां मध्ये संस्तम्भयिषुराहवे ॥ २७ ॥ मया वर्षसहस्राणि चरित्वा दुश्चरं तपः ॥ तेषु तेष्ववकाशेषु स्वयंभूः परितोषितः ॥ २८ ॥ तस्यैव तपसो व्युष्ट्या प्रसादाच्च स्वयंभुवः ॥ नासुरेभ्यो न देवेभ्यो भयं मम कदाचन॥२९॥कवचं ब्रह्मदत्तं मे यदादित्यसमप्रभम्॥देवासुरविमर्देषु न भिन्नं वज्रशक्तिभिः॥ ३० ॥

चिखादिषुं संहर्तुमिच्छुमित्यर्थः । नोपचक्रमुः नोपसेदुः ॥ २६ ॥ तत इति ॥ संस्तम्भयिषुराहवे युद्धभीतान् राक्षसान् युद्धे स्थापयितुकामः । सनि द्विर्वचनाभाव आर्षः ॥ २७ ॥ मयेति ॥ अवकाशेषु तपःसमाप्तिषु ॥ २८ ॥ तस्यैवेत्यादि ॥ व्युष्ट्या समृद्ध्या । व्युष्टिः फले समृद्धौ चेत्यमरः । भयाभावे हेतुमाह—कवचमिति ॥ यत् यस्मात् कवचमस्ति, तस्मादिति पूर्वेणान्वयः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ॥ ॥

तेनेति ॥ तेन कवचेन संयुक्तं रथस्थं माम् इह संयुगे कः प्रतीयात् आभिमुख्येनागच्छेत् । अद्य मामाजौ साक्षात्पुरन्दरोपि न प्रतीयादिति च योज्यम्। अर्थसिद्धो नञ्। क्रियापदमस्त्येव। अनेवंव्याख्याने अद्य मामाजाविति पुनरुक्तं स्यात् ॥३१॥ यत्तदेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ देवासुरविमर्देषु विमर्दकाल इत्यर्थः। अद्य तूर्यशतैरित्यनेन इतः पूर्वमिदं धनुर्न नीतमिति गम्यते ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ प्रत्यवेक्ष्येति ॥ सुघोरः सुघोरप्रकृतिः ॥३५॥

तेन मामद्य संयुक्तं रथस्थमिह संयुगे ॥ प्रतीयात्कोद्य मामाजौ साक्षादपि पुरन्दरः॥ ३१ ॥ यत्तदाभिप्रसन्नेन
सशरं कार्मुकं महत् ॥ देवासुरविमर्देषु मम दत्तं स्वयंभुवा ॥ ३२ ॥ अद्य तूर्यशतैर्भीमं धनुरुत्थाप्यतां मम ॥
रामलक्ष्मणयोरेव वधाय परमाहवे ॥ ३३ ॥ स पुत्रवधसंतप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ॥ समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या
सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥ ३४ ॥ प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः ॥ दीनो दीनस्वरान् सर्वांस्तानुवाच
निशाचरान् ॥ ३५ ॥ मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् ॥ किंचिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम्॥३६॥
तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः ॥ वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम् ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्त्वा
सचिवान् खड्गमाशु परामृशत् ॥ ३८ ॥ उद्धृत्य गुणसंपन्नं विमलाम्बरवर्चसम् ॥ निष्पपात स वेगेन सभार्यः
सचिवैर्वृतः ॥ ३९ ॥ रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः ॥ संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली ॥ ४० ॥
व्रजन्तं राक्षसं प्रेक्ष्य सिंहनादं प्रचुक्रुशुः ॥ ऊचुश्चान्योन्यमाश्लिष्य संक्रुद्धं प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥ ४१ ॥ ॥

माययेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ सीतेयमिति दर्शितं किंचित् आलीकमेवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इत्येवमित्यर्धम् ॥ परामृशत् आददे ॥ ३८ ॥ उद्धृत्येत्यादिश्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ गुणसंपन्नं माल्यालंकृतम्, विमलाम्बरवर्चसं विमलाकाशसदृशम्, खड्गमादाय कोशादुद्धृत्य, यत्र मैथिली तं देशं प्रति निष्पपातेत्यन्वयः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ व्रजन्तमित्यादिसार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम्॥ रत्नानि श्रेष्ठवस्तूनि। रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेपीत्यमरः ॥ ४१ ॥

॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वार्यमाण इति ॥ ग्रहः अङ्गारकः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ❃ रामानुजीयम् ❃ तमिति ॥ निशाम्य दृष्ट्वा ॥ ४८ ॥ यथेति ॥ यथा यस्मादित्यर्थः ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सोयमिति ॥ अनुपस्थाने अनुपस्थानात् ॥ ❃ रामानुजीयम् ❃ सोयं ममानुपस्थाने व्यक्तं नैराश्यमाग-

अथैनं तावुभौ दृष्ट्वा भ्रातरौ प्रव्यथिष्यतः ॥ लोकपाला हि चत्वारः क्रुद्धेनानेन निर्जिताः ॥४२॥ बहवः शत्रवश्चापि संयुगेषु निपातिताः ॥ त्रिषु लोकेषु रत्नानि भुङ्क्ते चाहृत्य रावणः ॥४३॥ विक्रमे च बले चैव नास्त्यस्य सदृशो भुवि ॥ ४४ ॥ तेषां संजल्पमानानामशोकवनिकां गताम् ॥ अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्छितः ॥४५॥ वार्यमाणः सुसंक्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः ॥ अभ्यधावत संक्रुद्धः खे ग्रहो रोहिणीमिव ॥ ४६॥ मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता ॥ ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥४७॥ तं निशाम्य सनिस्त्रिंशं व्यथिता जनकात्मजा ॥ निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनुवर्तिनम् ॥ सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् ॥ ४८ ॥ यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ॥ वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ॥ ४९॥ बहुशश्चोदयामास भर्तारं मामनुव्रताम् ॥ भार्या भव रमस्वेति प्रत्याख्यातो ध्रुवं मया ॥ ५० ॥ सोयं ममानुपस्थाने व्यक्तं नैराश्यमागतः ॥ क्रोधमोहसमाविष्टो निहन्तुं मां समुद्यतः ॥ ५१ ॥ अथ वा तौ नरव्याघ्रौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ मन्निमित्तमनार्येण समरेद्य निपातितौ ॥ अहो धिङ्मन्निमित्तोयं विनाशो राजपुत्रयोः ॥५२॥ अथवा पुत्रशोकेन अहत्वा रामलक्ष्मणौ ॥ विधमिष्यति मां रौद्रो राक्षसः पापनिश्चयः ॥ ५३ ॥ हनूमतोपि यद्वाक्यं न कृतं क्षुद्रया मया ॥ ५४ ॥ ॥

त इति पाठः । अनुपस्थाने अनुपस्थाने सति ॥ ५१ ॥ तौ निहत्य तेन निस्त्रिंशेन सह प्रवेशनमपि संभवतीत्यभिप्रायेणाह—अथ वेत्यादि ॥५२॥ अत्र निमित्तान्तरमाशङ्कते—अथवा पुत्रशोकेनेति ॥ अहत्वा हन्तुमशक्तो भूत्वा ॥ ५३ ॥ हनूमत इत्यर्धम् ॥ क्षुद्रया विचारमूढया ॥ ५४ ॥ ॥

यद्यहं तस्य पृष्ठेन तदा यायामनिन्दिता ॥ नाद्यैवमनुशोचेयं भर्तुरङ्कगता सती ॥ ५५ ॥ मन्ये तु हृदयं
तस्याः कौसल्यायाः फलिष्यति ॥ एकपुत्रा यदा पुत्रं विनष्टं श्रोष्यते युधि ॥ ५६ ॥ सा हि जन्म च बाल्यं
च यौवनं च महात्मनः ॥ धर्मकार्यानुरूपं च रुदन्ती संस्मरिष्यति ॥ ५७ ॥ निराशा निहते पुत्रे दत्त्वा श्राद्धमचेतना
॥ अग्निमारोक्ष्यते नूनमपो वापि प्रवेक्ष्यति ॥ ५८ ॥ धिगस्तु कुब्जामसतीं मन्थरां पापनिश्चयाम् ॥
यन्निमित्तमिदं दुःखं कौसल्या प्रतिपत्स्यते ॥ ५९ ॥ इत्येवं मैथिलीं दृष्ट्वा विलपन्तीं तपस्विनीम् ॥ रोहिणीमिव
चन्द्रेण विना ग्रहवशं गताम् ॥ ६० ॥ एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यो बुद्धिमान् शुचिः ॥ सुपार्श्वो नाम मेधावी
राक्षसो राक्षसेश्वरम् ॥ निवार्यमाणं सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६१ ॥ कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज ॥
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य हि ॥ ६२ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतः सदा ॥ स्त्रियाः कस्माद्वधं
वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥ ६३ ॥ मैथिलीं रूपसंपन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव ॥ त्वमेव तु सहास्माभी राघवे क्रोधमुत्सृज
॥ ६४ ॥ अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ॥ कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥ ६५ ॥

यदीति ॥ यायामनुशोचेयमिति "हेतुहेतुमतोर्लिङ्"इति लिङ् ॥ ५५ ॥ प्रथमपक्षानुसारेण शोचति–मन्य इति ॥ ५६ ॥ सा हीति ॥ धर्मकार्यानुरूपं धर्मकार्यानुरूपत्वम् ॥ ५७ ॥ निराशेति ॥ अचेतना मूर्छिता ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इत्येवमित्यादि ॥ मैथिलीं दृष्ट्वा रावणमब्रवीदित्यन्वयः ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ अभ्युत्थानमिति ॥ अभ्युत्थानं युद्धनिर्याणप्रारम्भम् । चतुर्दशीं चतुर्दश्याम् । अमावास्याम् अमावास्यायाम् । अनेन त्रयोदशयुद्धदिनान्यतीतानीत्यवगम्यते । तथा हि-ततोस्तमगमत्सूर्यः संध्यया प्रतिरञ्जितः । पूर्णचन्द्रप्रदीपा च क्षपा समभिवर्तत इति वचनात्॥ पौर्णमास्यां सुवेलाप्रवेशः । ततः कृष्णपक्षप्रथमायां युद्धस्यारम्भः । तस्यामेव रात्रौ नागपाशबन्धतद्विमोक्षौ । द्वितीयायां धूम्राक्षस्य वधः । तृतीयायां वज्रदंष्ट्रस्य । चतुर्थ्यामकम्पनस्य । प्रहस्तस्य पञ्चम्याम् । षष्ठ्यां रावणमुकुटभङ्गः । सप्तम्यां कुम्भकर्णस्य वधः। अष्टम्यामतिकायादीनाम् । नवम्यां पुनरिन्द्रजिद्युद्धं,तस्या-

मेव रात्रौ कुम्भनिकुम्भादीनां वधः। दशम्यां मकराक्षस्य। एकादश्यां द्वादश्यां त्रयोदश्यां चेन्द्रजिद्वधः। वस्तुतस्तु नवम्यां युद्धारम्भात्तदारभ्य दिनद्वयेन रावणेन्द्रजिन्मूलबलव्यतिरिक्तराक्षसनिबर्हणात् एकादशीद्वादशीत्रयोदशीभिरिन्द्रजिद्वध इति चतुर्दश्यामभ्युत्थानवचनम् युज्यत एव ॥ ६५ ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ शूर इति ॥ रथी महारथ इत्यर्थः ॥६६॥ ६७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्रिणवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः ॥ हत्वा दाशरथिं राम भवान् प्राप्स्यति मैथिलीम् ॥ ६६ ॥ स तद्दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ॥ गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान् पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्रिणवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥ ॥

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः ॥ निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥१॥ अब्रवीच्च स तान् सर्वान् बलमुख्यान् महाबलः ॥ रावणः प्राञ्जलिर्वाक्यं पुत्रव्यसनकर्शितः ॥२॥ सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ॥ निर्यान्तु रथसंघैश्च पादातैश्चोपशोभिताः ॥ ३ ॥ एकं रामं परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ ॥ वर्षन्तः शरवर्षेण प्रावृट्काल इवाम्बुदाः ॥४॥ अथ वाऽहं शरैस्तीक्ष्णैर्भिन्नगात्रं महारणे ॥ भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः ॥५॥ इत्येतद्राक्षसेन्द्रस्य वाक्यमादाय राक्षसाः ॥ निर्ययुस्ते रथैः शीघ्रैर्नानानीकैः सुसंवृताः ॥ ६ ॥

अथ मूलबलयुद्धम्—स प्रविश्येत्यादि ॥१॥ अब्रवीदिति ॥ रावणः प्राञ्जलिरिति। अनुनयार्थमञ्जलिकरणम्॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ अब्रवीदिति ॥ रावणः प्राञ्जलिर्वाक्यमिति पाठः ॥२॥३॥ एकमिति ॥ परिक्षिप्य आवार्य, शरवर्षेण वृष्ट्वा हन्तुमर्हथेत्यन्वयः ॥ ४ ॥ स रामो यदि हन्तुं न शक्येत, तथापि भवतां शरैः भिन्नगात्रः स्यात्, तेन तस्य वधः सुकरो मे भवेदित्यभिप्रायेणाह—अथ वेति ॥ इदानीं यूयं तं हन्तुं न शक्ताश्चेदिदानीं तीक्ष्णैः शरैर्भवद्भिर्भिन्नगात्रं श्वो निहन्तास्मि ॥ ५ ॥ ६ ॥

॥७॥८॥ स संग्राम इति ॥ सूर्यस्योदयनं प्रति सूर्योदयमारभ्य ॥९॥ ते गदाभिरिति ॥ अन्योन्यं जघ्नुरित्यत्र शिलावृक्षाणामप्युपलक्षणम् । राक्षसेभ्योपहृतानि गदाखङ्गादीनि राक्षसानामिव वानराणामपि संभवन्तीति वा तथोक्तमिति ज्ञेयम् ॥ १० ॥ ११ ॥ मातङ्गेति ॥ शरीराण्येव संघाटाः प्लवाः

परिघान् पट्टिशांश्चैव शरखङ्गपरश्वधान् ॥ शरीरान्तकरान् सर्वे चिक्षिपुर्वानरान् प्रति ॥७॥ वानराश्च द्रुमान् शैलान् राक्षसान् प्रति चिक्षिपुः ॥८॥ स संग्रामो महान् भीमः सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ रक्षसां वानराणां च तुमुलः समपद्यत ॥ ९ ॥ ते गदाभिर्विचित्राभिः प्रासैः खङ्गैः परश्वधैः ॥ अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तदा वानरराक्षसाः ॥ १० ॥ एवं प्रवृत्ते संग्रामे ह्युद्भूतं सुमहद्रजः ॥ रक्षसां वानराणां च शान्तं शोणितविस्रवैः ॥११॥ मातङ्गरथकूलाश्च वाजिमत्स्याध्वजद्रुमाः ॥ शरीरसंघाटवहाः प्रसस्रुः शोणितापगाः ॥ १२ ॥ ततस्ते वानराः सर्वे शोणितौघपरिप्लुताः ॥ ध्वजवर्मरथानश्वान्नानाप्रहरणानि च ॥ आप्लुत्याप्लुत्य समरे राक्षसानां बभञ्जिरे ॥१३॥ केशान् कर्णललाटांश्च नासिकाश्च प्लवङ्गमाः ॥ रक्षसां दशनैस्तीक्ष्णैर्नखैश्चापि न्यकर्तयन् ॥१४॥ एकैकं राक्षसं संख्ये शतं वानरपुङ्गवाः ॥ अभ्यधावन्त फलिनं वृक्षं शकुनयो यथा ॥ १५ ॥ तथा गदाभिर्गुर्वीभिः प्रासैः खङ्गैः परश्वधैः ॥ निजघ्नुर्वानरान् घोरान् राक्षसाः पर्वतोपमाः ॥ १६ ॥ राक्षसैर्युद्ध्यमानानां वानराणां महाचमूः ॥ शरण्यं शरणं याता रामं दशरथात्मजम् ॥ १७ ॥ ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ॥ प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष ह ॥१८॥ प्रविष्टं तु तदा रामं मेघाः सूर्यमिवाम्बरे ॥ नाभिजग्मुर्महाघोरं निर्दहन्तं शराग्निना ॥ १९ ॥ ॥

तान् वहन्तीति शरीरसंघाटवहाः ॥ १२ ॥ ततस्ते वानराः सर्वे शोणितौघपरिप्लुता इत्यारभ्य, राक्षसानां बभञ्जिर इत्यन्तं सार्धश्लोक एकान्वयः ॥ ॥ १३ ॥ केशानिति ॥ रक्षसां केशानिति क्रमेणान्वयः । न्यकर्तयन् चिच्छिदुः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ राक्षसैरिति ॥ वानरसेनाशरणागतिरियम् । राक्षसैर्वध्यमानानामित्याकिंचन्यानन्यगतिकत्वोक्तिः । शरण्यमिति दयाद्युक्तिः । राममिति परत्वोक्तिः । दशरथात्मज इति सौलभ्योक्तिः ॥१७॥१८॥१९॥

कृतान्येवेति ॥ कृतान्येव ददृशुः, नतु क्रियमाणानीत्यर्थः ॥ २० ॥ न केवलं हस्तलाघवातिशयेन कर्मणामदर्शनं रणसंचारलाघवातिशयेन कर्तारमपि न ददृशुरित्याह–चालयन्तमिति ॥ यथा चालनविधमनादिकार्यलिङ्गात् वायुरनुमितो भवति, तद्वद्रामोप्यनुमितः। न तु प्रत्यक्षित इत्यर्थः ॥२१॥ उक्तमर्थं विशदयति–छिन्नमिति॥छिन्नं खण्डितम्। भिन्नं विदारितम्। प्रभग्नं शकलीकृतम्। शस्त्रपीडितं हृदयार्पितशल्यम् ॥२२॥ प्रहरन्तमिति॥इन्द्रियार्थेषु तिष्ठन्तम् इन्द्रियार्थाननुतिष्ठन्तम् अनुभवन्तं, तेनानुभवेनानुमीयमानमपि भूतात्मानं भूतस्य पञ्चभूतात्मकशरीरस्य आत्मानं जीवात्मानं प्रजाः यथा

कृतान्येव सुघोराणि रामेण रजनीचराः ॥ रणे रामस्य ददृशुः कर्माण्यसुकराणि च ॥ २० ॥ चालयन्तं महा-
नीकं विधमन्तं महारथान् ॥ ददृशुस्ते न वै रामं वातं वनगतं यथा ॥ २१ ॥ छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्र-
पीडितम्॥बलं रामेण ददृशुर्न रामं शीघ्रकारिणम् ॥२२॥ प्रहरन्तं शरीरेषु न ते पश्यन्ति राघवम्॥ इन्द्रिया-
र्थेषु तिष्ठन्तं भूतात्मानमिव प्रजाः ॥२३॥ एष हन्ति गजानीकमेष हन्ति महारथान् ॥ एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः
पदातीन्वाजिभिः सह ॥२४॥ इति ते राक्षसाः सर्वे रामस्य सदृशान् रणे ॥ अन्योन्यं कुपिता जघ्नुः सादृश्या-
द्राघवस्य ते ॥ २५ ॥ न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम्॥मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना॥२६॥
ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः ॥ पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ॥ २७॥ ॥

न पश्यन्ति, तथैव शरीरेषु प्रहरन्तं तेन प्रहारेणानुमीयमानमपि राघवं पुरतश्चक्षुषा नाद्राक्षुरित्यर्थः । यद्वा इन्द्रियार्थेषु प्रत्यक्षतोनुभूयमानेषु गन्धादिगुणेषु, निराश्रयगुणावस्थानासंभवात् सौक्ष्म्येणानुवृत्तं भूतात्मानमिव पुष्पाद्यवयवभूतपृथिव्यादिस्वरूपमिवेत्यर्थः॥२३॥ एष हन्तीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ सदृशान् सादृश्येन प्रतीयमानान् । अन्योन्यं सादृश्यादेव हेतोर्जघ्नुश्चेत्यन्वयः ॥ २४ ॥ २५ ॥ राक्षसानां रामादर्शनकारणमाह–न त इति ॥ इदमुपलक्षणम् । सादृश्यदर्शनमपि मोहनास्त्रेणेति द्रष्टव्यम् । महात्मना महास्वभावेन ॥ २६ ॥ अदर्शनवत्सदृशदर्शनवच्चानेकत्वदर्शनं नास्त्रकृतं किं तु भीतिकृतमित्याह–ते त्विति ॥ तुशब्दः पूर्वस्माद्विशेषपरः । मारीचेनाप्युक्तम्–अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावणेति ॥ २७ ॥

भ्रमन्तीमिति ॥ भ्रमन्तीं रामस्य मण्डलाकारगतिविशेषेष्विति केचित् । निरन्तरज्याकर्षणादिति वयम् । अलातचक्रप्रतिमां, निर्ज्वालं काष्ठं निरन्तरभ्रमणेनान्तरालाग्रहणाच्चक्रत्वेन प्रतीयमानामिवेत्यर्थः ॥ २८ ॥ अथ तत्र समरसमये मण्डलीकृतकार्मुकं रामं सकलरिपुनिघातिसुदर्शनत्वेन रूपयति–शरीरेत्यादिना ॥ ज्वालानेम्यरनाभ्यक्षपुरुषाङ्गं सुदर्शनमित्युक्तरीत्या चक्रं षडङ्गं भवति। तत्र कोदण्डचक्रमध्यस्थत्वाद्दृढत्वाच्च शरीरं नाभित्वेन दर्शयति–शरीरेति । नाभिः चक्रमध्योन्नतप्रदेशः, शरीरमेव नाभिर्यस्य तत्तथोक्तम्। सत्त्वं बलमेवार्चिः ज्वाला यस्य तत् सत्त्वार्चिः । वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियामित्यमरः। सत्त्वस्य परसन्तापहेतुत्वादर्चिष्ट्वेन निरूपणम्। शरा एवाराणि चक्रमध्यशलाकाः यस्य तच्छरारम्। सुदर्शनस्य सहस्रारत्वाच्छराणामरत्वरूपणेन युगपत्सहस्रशरसंधानं व्यज्यते। नेमिः आधारश्चक्रप्रान्तः, नेमिभूतं मण्डलीकृतकार्मुक यस्य तत्कार्मुकनेमीत्यर्थः । एतेन मण्डलीकृतदशायामपि नाभिभूतरामशरीरपरिवेषेण धनुषो महोन्नतत्वमुच्यते। सुदर्शनस्य ज्वालामालया निरन्तरघोषवत्त्वाज्ज्यातलघोषं तद्घोषत्वेन रूपयति–ज्याघोषतलनिर्घोषमिति। तलं ज्याघातवारणं, तेन तद्घोषो लक्ष्यते। ज्याघोषतलघोषावेव निर्घोषो यस्य तत्तथोक्तम्। तेजः पराक्रम एव बुद्धिः अक्षं यस्य तत्तेजोबुद्धि। यथा प्लवगसैन्यमुलूकजिता जितमित्यत्र उलूकशब्दो लक्षणया कौशिकशब्दं लक्षयित्वा इन्द्रजितमाह, तथा बुद्धिशब्दो बुद्धिजनकाक्षलक्षणया अक्षप्रदेशमाह। गुणः शरीरकान्तिः, स एव प्रभा यस्य तत्तथोक्तम्। दिव्यास्त्राणां गुणः शक्तिः माहात्म्यं वा तदेव पर्यन्तो धारा यस्य तद्दिव्यास्त्रगुणपर्यन्तम्। निघ्नन्तं निघ्नत्। लिङ्गव्यत्यय आर्षः । किंच कालचक्रं ज्योतिश्चक्रमिव स्थितम्। विष्णुपुराणे, यत्र कालचक्रं प्रतिष्ठितमिति प्रयोगात्। रामचक्रम् उक्तरीत्या चक्रमिव स्थितं रामं ददृशुः। ननु यदि रामो मोहनास्त्रेण राक्षसान् संहरेत्तदेन्द्रजितोऽस्य को विशेषः। उच्यते । नात्र गान्धर्वास्त्रेण मोहनं कृतम्। अपि तु गान्धर्वप्रयोगे सति वेगातिशयेनाज्ञातस्वपरविभेदतया मोहिताः परस्परं जघ्नुः। यत्र रामो दृष्टः तत्क्षणे तत्र तस्यादर्शनाद्राममुद्दिश्य क्षिप्ताः शराः स्वकीयानेव घ्नन्ति। वेगातिशयादेव नानादिक्षु चक्षुःप्रसरे नानात्वेन दर्शनम्। अत एव, न रामं शीघ्रकारिणमित्युक्तिः। कार्मुककोटेरलातचक्रप्रतिमत्वं रामस्य चक्रत्वरूपणं च प्रयोगशैघ्र्यादेव संगच्छते। अत एव सुग्रीवादयो मायाबलत्वं शङ्करन्निति परिहरिष्यति–एतदस्त्र-

भ्रमन्तीं काञ्चनीं कोटिं कार्मुकस्य महात्मनः ॥ अलातचक्रप्रतिमां ददृशुस्ते न राघवम् ॥२८॥ शरीरनाभि
सत्त्वार्चिः शरारं नेमिकार्मुकम् ॥ ज्याघोषतलनिर्घोषं तेजोबुद्धि गुणप्रभम् ॥ २९ ॥ दिव्यास्त्रगुणपर्यन्तं
निघ्नन्तं युधि राक्षसान् ॥ ददृशू रामचक्रं तत्कालचक्रमिव प्रजाः ॥ ३० ॥

बलमिति। न ते ददृशिर इत्यस्य श्लोकस्यैवं योजना। गान्धर्वास्त्रेण दहन्तं रामं मोहिताः सन्तो न ददृशिरे। मोहोत्र वेगादग्रहणम्। गान्धर्वास्त्रं दाहमात्रे हेतुरिति बोध्यम् ॥ २९॥३०॥अनीकमित्यादि ॥ एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पञ्चपदातिका। पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ॥ सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः। इत्युक्तरीत्या दशसंख्यासंख्याता पत्तिः। पत्तितस्त्रिगुणम् सेनामुखम्। सेनामुखतस्त्रिगुणो गुल्मः। गुल्मतस्त्रिगुणो गणः। गणतस्त्रिगुणा वाहिनी। तत्त्रिगुणा पृतना। पृतनातस्त्रिगुणा चमूः। एवं च दशोनत्रिशताधिकसप्तसहस्रसंख्यालक्षणा चमूरनीकशब्देनोच्यते। सहस्राण्येव साहस्राणि दश साहस्राण्यस्मिन्सन्तीति दशसाहस्रम्। रथानां दशसहस्राण्यनीकानीत्यर्थः। एकोनत्रिंशल्लक्षाधिकसप्तकोटिसंख्यासंख्याता रथा इत्युक्तं भवति। रथाङ्कं ७ कोटि २९ लक्षम्। अष्टादश सहस्राणीत्यनेन अनीकमित्येतद्विभक्तिविपरिणामेनानुषज्यते। अष्टादश सहस्राण्यनीकानीत्यर्थः। विंशतिसहस्राधिकद्वादशलक्षोत्तरत्रयोदशकोटिसंख्यासंख्यातास्तरस्विनः कुञ्जरा इत्यर्थः। गजाङ्कं १३ कोटि १२ लक्षं तु २०००० । चतुर्दश सहस्राणीत्यत्रापि

अनीकं दशसाहस्रं रथानां वातरंहसाम् ॥ अष्टादश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ३१ ॥ चतुर्दश
सहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ॥ पूर्णे शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पदातिनाम् ॥ ३२ ॥ दिवसस्याष्टमे भागे
शरैरग्निशिखोपमैः ॥ हतान्येकेन रामेण रक्षसां कामरूपिणाम् ॥ ३३ ॥ ते हताश्वा हतरथाः शान्ता विमथितध्वजाः ॥ अभिपेतुः पुरीं लङ्कां हतशेषा निशाचराः ॥ ३४ ॥

अनीकमित्येतद्विपरिणाम्यानुषञ्जनीयम्। चतुर्दश सहस्राण्यनीकानीत्यर्थः। षष्टिसहस्राधिकविंशतिलक्षोत्तरदशकोटिसंख्यासंख्याताः सारोहा वाजिन इत्यर्थः। तुरङ्ग १०कोटि २० लक्षन्तु६००००। पूर्णे शतसहस्रे द्वे अनीकानीत्यर्थः। अशीतिलक्षोत्तरपञ्चचत्वारिंशत्कोट्यधिकशतकोटिसंख्यासंख्याताः पदातयो राक्षसा इत्यर्थः। पदाति १४५ कोटि ८० लक्षम्। वातरंहसामित्यादिविशेषणमहिम्ना तद्भिन्ना रथगजतुरगपदातयोसंख्येया इति भावः। अत एवैवमनुसंदधते—नागानामयुतं तुरङ्गनियुतं सार्धं रथानां शतं पादातं शतकोटिकर्तनविधावेकः कबन्धो रणे। एवं कोटिकबन्धनर्तनविधौ किंचिद्ध्वनिः किंकिणीर्यामार्धं परमात्मनो रघुपतेः कोदण्डघण्टारव इति ॥ कामरूपिणां रक्षसां संबन्धीनि। रथादिचतुरङ्गबलानि एकेन रामेण दिवसस्याष्टमे भागे पादोनघटिकाचतुष्टये निहतानीत्यन्वयः॥ ३१ ॥ ३२॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥

हतैरिति॥हतगजाद्युपलक्षितं सुमहात्मनो रामस्य तद्रणाजिरं रुद्रस्य आक्रीडं क्रीडास्थानं श्मशानमिव बभूव ।आर्षं नपुंसकत्वम्। अचिरेण पुरी लङ्का श्मशानसदृशी भवेदिति पूर्वोक्तेः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अब्रवीच्चेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ प्रत्यनन्तरं समीपस्थम् । क्षणेनानेन रक्षःप्रतिक्षेपजनितां मायावित्त्वशङ्कां वारयति–एतदस्त्रबलमिति। अत्रान्ते इतिकरणं द्रष्टव्यम् ।अस्त्रबलम् अस्त्रप्रयोगशक्तिः। न त्वस्त्रमपि, गान्धर्वेण च गान्धर्वमिति रावणादे-

हतैर्गजपदात्यश्वैस्तद्बभूव रणाजिरम् ॥ आक्रीडमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्य सुमहात्मनः ॥ ३५ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ साधु साध्विति रामस्य तत्कर्म समपूजयन् ॥ ३६ ॥ अब्रवीच्च तदा रामः सुग्रीवं प्रत्यनन्तरम् ॥ बिभीषणं च धर्मात्मा हनूमन्तं च वानरम् ॥ ३७ ॥ जाम्बवन्तं हरिश्रेष्ठं मैन्दं द्विविदमेव च ॥ एतदस्त्रबलं दिव्यं मम वा त्र्यम्बकस्य वा ॥ ३८ ॥ निहत्य तां राक्षसवाहिनीं तु रामस्तदा शक्रसमो महात्मा ॥ अस्त्रेषु शस्त्रेषु जितक्लमश्च संस्तूयते देवगणैः प्रहृष्टैः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुर्णवतितमः सर्गः ॥९४॥

तानि तानि सहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ॥ रथानां त्वग्निवर्णानां सध्वजानां सहस्रशः ॥ १ ॥ राक्षसानां सहस्राणि गदापरिघयोधिनाम् ॥ काञ्चनध्वजचित्राणां शूराणां कामरूपिणाम् ॥ २ ॥ निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ॥ रावणेन प्रयुक्तानि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा श्रुत्वा च संभ्रान्ता हतशेषा निशाचराः॥राक्षसीश्च समागम्य दीनाश्चिन्तापरिप्लुताः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

रपि तत्संभवकथनात्। त्र्यम्बकस्य वा संहारकाले अस्तीति शेषः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ निहत्येति ॥ संस्तूयत इति वर्तमाननिर्देशेन स्तुतेरद्याप्यविच्छिन्नत्वमुच्यते ॥ ३९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने चतुर्णवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥ ॥

अथ राक्षसीनां प्रलापः–तानि तानीत्यादिचतुःश्लोकी ॥ वाजिनामित्येतद्गजानामप्युपलक्षणम् । सहस्रशः सहस्राणि । राक्षसीः राक्षसस्त्रियः, समागम्य चिन्तापरिप्लुताः । आसन्निति शेषः ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

विधवा इति ॥ संगम्य संघीभूय । परस्परमालिङ्गिता इत्यर्थः ॥ ५॥ कथमित्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ कराला विकटा ॥ ६॥ तं दृष्ट्वेत्यादि सार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ प्रकामिता सा कथं कामयामास॥७॥ ८ ॥ जनस्येत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ वलयोस्याः सन्तीति वलिनी । पामादित्वान्नः । आर्षो ङीप् । अप्रतिरूपा अननुरूपा । तन्निमित्तं प्रधर्षणनिमित्तात् । शूर्पणखयान्यथोक्तावपि तत्कामनादिकमङ्गकम्पनादिमुखात् सर्वैर्ज्ञा-

विधवा हतपुत्राश्च क्रोशन्त्यो हतबान्धवाः ॥ राक्षस्यः सह संगम्य दुःखार्ताः पर्यदेवयन् ॥ ५ ॥ कथं शूर्पणखा वृद्धा कराला निर्णतोदरी ॥ आससाद वने रामं कन्दर्पमिव रूपिणम् ॥ सुकुमारं महासत्त्वं सर्वभूतहिते रतम्॥६॥ तं दृष्ट्वा लोकनिन्द्या सा हीनरूपा प्रकामिता ॥ ७ ॥ कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम् ॥ सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी ॥ ८ ॥ जनस्यास्याल्पभाग्यत्वाद्वलिनी श्वेतमूर्धजा ॥ अकार्यमपहास्यं च सर्वलोकविगर्हितम् ॥ ९ ॥ राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च ॥ चकाराप्रतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम् ॥ १० ॥ तन्निमित्तमिदं वैरं रावणेन कृतं महत् ॥ वधाय सीता सानीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥ ११ ॥ न च सीतां दशग्रीवः प्राप्नोति जनकात्मजाम् ॥ बद्धं बलवता वैरमक्षयं राघवेण च ॥ १२ ॥ वैदेहीं प्रार्थयानं तं विराधं प्रेक्ष्य राक्षसम् ॥ हतमेकेन रामेण पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १३ ॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १४ ॥ खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ शरैरादित्यसंकाशैः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १५ ॥ हतो योजनबाहुश्च कबन्धो रुधिराशनः ॥ क्रोधान्नादं नदन् सोथ पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १६ ॥ ॥

तमिति ज्ञेयम् ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ वैदेहीमिति ॥ विराधं प्रेक्ष्य ज्ञात्वा, स्थितानामस्माकं तत् विराधहननं विरोधिनिरसनाय पर्याप्तं पूर्णं निदर्शनम् ॥ १३ ॥ चतुर्दशेति श्लोके पर्याप्तं तन्निदर्शनमित्यनुषज्यते ॥ उत्तरश्लोकेनैकवाक्यत्वे शरपदद्वयवैयर्थ्यम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ हत इति ॥ अथ खरवधानन्तरम् । नादं शब्दम्, नदन् कुर्वन्, सः प्रसिद्धः कबन्धः ॥ १६॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ कुम्भकर्णमित्यादि ॥ नावबुध्यते रामप्रभावमिति शेषः ॥२१॥ ममेति ॥ कुले कुले गृहे गृहे । इदमपि राक्षसीवाक्यमेव ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ हतप्रवीरेति ॥ वयमित्येतदपेक्षया अपश्यन्त इति पुल्लिङ्गम् । विलपामहे इत्यात्मनेपदमार्षम् ॥ २५ ॥ २६ ॥ न देवा इति ॥

जघान बलिनं रामः सहस्रनयनात्मजम् ॥ वालिनं मेरुसंकाशं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१७॥ ऋष्यमूके वसन्
शैले दीनो भग्नमनोरथः ॥ सुग्रीवः स्थापितो राज्ये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १८ ॥ धर्मार्थसहितं वाक्यं सर्वेषां
रक्षसां हितम् ॥ युक्तं बिभीषणेनोक्तं मोहात्तस्य न रोचते ॥१९॥ बिभीषणवचः कुर्याद्यदि स्म धनदानुजः ॥
श्मशानभूता दुःखार्ता नेयं लङ्का पुरी भवेत् ॥२० ॥ कुम्भकर्णं हतं श्रुत्वा राघवेण महाबलम् ॥ अतिकायं च
दुर्धर्षं लक्ष्मणेन हतं पुनः ॥ प्रियं चेन्द्रजितं पुत्रं रावणो नावबुध्यते॥ २१॥मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे
हतः॥ इत्येवं श्रूयते शब्दो राक्षसानां कुले कुले॥२२॥रथाश्वाश्वाश्च नागाश्च हताः शतसहस्रशः ॥रणे रामेण
शूरेण राक्षसाश्च पदातयः॥२३॥ रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः॥हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः॥२४॥हतप्रवीरा रामेण निराशा जीविते वयम् ॥ अपश्यन्तो भयस्यान्तमनाथा विलपामहे॥२५॥
रामहस्ताद्दशग्रीवः शूरो दत्तमहावरः ॥ इदं भयं महाघोरमुत्पन्नं नावबुध्यते ॥ २६ ॥ न देवा न च गन्धर्वा न
पिशाचा न राक्षसाः ॥ उपसृष्टं परित्रातुं शक्ता रामेण संयुगे ॥ २७॥ उत्पाताश्चापि दृश्यन्ते रावणस्य रणे
रणे ॥ कथयिष्यन्ति रामेण रावणस्य निबर्हणम् ॥ २८ ॥ पितामहेन प्रीतेन देवदानवराक्षसैः ॥ रावणस्याभयं दत्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उपसृष्टम् उपद्रुतम् ॥ २७ ॥ उत्पाताश्चापीति ॥ कथयिष्यन्ति, इतः परमपि कानिचिन्निमित्तानि प्रादुर्भूय कथयिष्यन्तीत्यर्थः । वर्तमाने तात्पर्यमित्यप्याहुः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ कथयिष्यन्ति कथयन्तीत्यर्थः ॥ २८ ॥ पितामहेनेति ॥ देवदानवराक्षसैः देवदानवराक्षसेभ्यः ॥ २९ ॥ ॥

तदिदमिति ॥ मानुषं मानुषादागतम् । मन्ये मन्यामहे ॥ ३० ॥ पीड्यमानास्तु बलिनेति ॥ रक्षसा रावणेन । वरदानेन करणेन ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अद्यप्रभृतीति ॥ दानवराक्षसा इत्युक्तेर्मन्दोदरीसंबन्धेन दानवाश्च केचिद्राक्षसैः सह तिष्ठन्तीति ज्ञेयम् ॥३३॥३४॥३५॥ एषेति ॥ क्षुद्यथा दानवान् पुरेति । देवेभ्योमृतप्रदानानन्तरमिति बोध्यम् । अस्मच्छन्दापेक्षया सरावणानित्युक्तिः ॥ ३६ ॥ रावणस्येति ॥ निष्ठानकः नाश इत्याहुः ॥ ❀रामानुजीयम्❀

तदिदं मानुषं मन्ये प्राप्तं निःसंशयं भयम् ॥ जीवितान्तकरं घोरं रक्षसां रावणस्य च ॥ ३० ॥ पीड्यमानास्तु बलिना वरदानेन रक्षसा ॥ दीप्तैस्तपोभिर्विबुधाः पितामहमपूजयन् ॥३१॥ देवतानां हितार्थाय महात्मा वै पितामहः ॥ उवाच देवताः सर्वा इदं तुष्टो महद्वचः॥३२॥अद्यप्रभृति लोकांस्त्रीन् सर्वे दानवराक्षसाः॥भयेन प्रावृता नित्यं विचरिष्यन्ति शाश्वतम् ॥ ३३ ॥ दैवतैस्तु समागम्य सर्वैश्चेन्द्रपुरोगमैः ॥ वृषध्वजस्त्रिपुरहा महादेवः प्रसादितः ॥३४॥ प्रसन्नस्तु महादेवो देवानेतद्वचोब्रवीत् ॥ उत्पत्स्यति हितार्थं वो नारी रक्षःक्षयावहा ॥ ३५ ॥ एषा देवैः प्रयुक्ता तु क्षुद्यथा दानवान् पुरा ॥ भक्षयिष्यति नः सीता राक्षसघ्नी सरावणान् ॥ ३६॥ रावणस्यापनीतेन दुर्विनीतस्य दुर्मतेः ॥ अयं निष्ठानको घोरः शोकेन समभिप्लुतः ॥ ३७ ॥ तं न पश्यामहे लोके यो नः शरणदो भवेत् ॥ राघवेणोपसृष्टानां कालेनेव युगक्षये ॥ ३८ ॥ नास्ति नः शरणं कश्चिद्भये महति तिष्ठताम् ॥ दवाग्निवेष्टितानां हि करेणूनां यथा वने ॥ ३९ ॥ प्राप्तकालं कृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना ॥ यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः ॥ ४० ॥ इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः परस्परं संपरिरभ्य बाहुभिः॥ विषेदुरार्ता भयभारपीडिता विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम्॥४१॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः॥९५॥

राक्षसस्येति ॥ अपनीतेन अपनयेन । निष्ठानको विनाशः ॥३७॥ तमिति ॥ पश्यामह इत्यात्मनेपदमार्षम् ॥ ३८ ॥३९॥ प्राप्तकालमिति ॥ प्राप्तकालम् उचितम् । पौलस्त्येन विभीषणेन । इतः परं तस्यैव पौलस्त्यकुलप्रतिष्ठापकत्वात्तच्छन्दप्रयोगः । अत्र पितामहादिवरप्रदानवृत्तान्तो राक्षसीभिर्मन्दोदरीसकाशाच्छ्रुत इति ज्ञेयम् । सा च ज्ञानवृद्धेति वक्ष्यते॥४०॥४१॥इति श्रीगो०श्रीरा०रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चनवतितमः सर्गः॥९५॥

आर्तानां राक्षसीनां तु लङ्कायां वै कुले कुले ॥ रावणः करुणं शब्दं शुश्राव परिदेवितम् ॥ १ ॥ स तु दीर्घं विनिश्वस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ॥ बभूव परमक्रुद्धो रावणो भीमदर्शनः ॥ २ ॥ संदश्य दशनैरोष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ राक्षसैरपि दुर्दर्शः कालाग्निरिव मूर्छितः ॥ ३ ॥ उवाच च समीपस्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वरः ॥ भयाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ४ ॥ महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया ॥ ५ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते भयार्दिताः ॥ चोदयामासुरव्यग्रान् राक्षसांस्तान्नृपाज्ञया ॥ ६ ॥ ते तु सर्वे तथेत्युक्त्वा राक्षसा घोरदर्शनाः ॥ कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे रणायाभिमुखा ययुः ॥ ७ ॥ प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते निशाचराः ॥ तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणः ॥ ८ ॥ अथोवाच प्रहस्यैतान् रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ ९ ॥ अद्य बाणैर्धनुर्मुक्तैर्युगान्तादित्यसन्निभैः ॥ राघवं लक्ष्मणं चैव नेष्यामि यमसादनम् ॥ १० ॥ खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा ॥ करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम् ॥ ११ ॥ नैवान्तरिक्षं न दिशो न नद्यो नापि सागराः ॥ प्रकाशत्वं गमिष्यन्ति मद्बाणजलदावृताः ॥ १२ ॥ अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ॥ धनुषा शरजालेन विधमिष्यामि पत्रिणा ॥ १३ ॥ अद्य वानरसैन्यानि रथेन पवनौजसा ॥ धनुःसमुद्रादुद्भूतैर्मथिष्यामि शरोर्मिभिः ॥ १४ ॥

अथ रावणनिर्याणम्–आर्तानामित्यादि ॥ परिदेवितं परिदेवितरूपं शब्दम् ॥ १ ॥ २ ॥ संदश्येत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ मूर्छितः अभिवृद्धः, कालाग्निरिव स्थितः । भयाव्यक्तकथः भयादव्यक्तवचनः। ममाज्ञया वदतेत्युवाचेत्यन्वयः । इमौ महोदरमहापार्श्वौ सचिवौ। पूर्वहतौ तु मत्तप्रमत्तापरपर्यायौ रावणभ्रातरौ ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ भयाव्यक्तकथः स्वानिष्टभयेनास्पष्टराक्षसकथ इत्यर्थः । भयाव्यक्तकथानिति च पाठः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ अथेति ॥ प्रहस्येति । शत्रुषु तृणीकारात् ॥ ९ ॥ १० ॥ खरस्येत्यादिषु वधस्येति शेषः ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

आकोशेति ॥ आकोशपद्मवक्त्राणि ईषद्विकसितपद्मभूतवक्त्राणि । पद्मकेसरवर्चसाम् वानराणामिति शेषः । प्रमथामि प्रमथ्नामि । श्नाभाव आर्षः ॥१५॥ १६॥१७॥१८॥ अद्येति ॥ गतचेतनैः गतप्राणैः । यत्नावेक्ष्यतलामिति । नैरन्ध्येण भूमौ वानरान् पातयिष्यामीत्यर्थः ॥ १९ ॥ २० कल्प्यतामिति॥

आकोशपद्मवक्त्राणि पद्मकेसरवर्चसाम् ॥ अद्य यूथतटाकानि गजवत्प्रमथाम्यहम् ॥ १५ ॥ सशरैरद्य वदनैः संख्ये वानरयूथपाः ॥ मण्डयिष्यन्ति वसुधां सनालैरिव पङ्कजैः ॥ १६ ॥ अद्य युद्धप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम् ॥ मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भेत्स्यामि च शतं शतम् ॥ १७ ॥ हतो भर्ता हतो भ्राता यासां च तनया हताः ॥ वधेनाद्य रिपोस्तासां करोम्यस्रप्रमार्जनम् ॥ १८ ॥ अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैः प्रकीर्णैर्गतचेतनैः ॥ करोमि वानरैर्युद्धे यत्नावेक्ष्यतलां महीम् ॥ १९ अद्य गोमायवो गृध्रा ये च मांसाशिनोऽपरे ॥ सर्वांस्तांस्तर्पयिष्यामि शत्रुमांसैः शरार्पितैः ॥ २० ॥ कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः ॥ अनुप्रयान्तु मां सर्वे येवशिष्टा निशाचराः ॥ २१ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महापार्श्वोब्रवीद्वचः ॥ बलाध्यक्षान्स्थितांस्तत्र बलं संत्वर्यतामिति ॥ २२ ॥ बलाध्यक्षास्तु संरब्धा राक्षसांस्तान् गृहाद्गृहात् ॥ चोदयन्तः परिययुर्लङ्कायां तु महाबलाः ॥ २३ ॥ ततो मुहूर्तान्निष्पेतू राक्षसा भीमदर्शनाः ॥ नर्दन्तो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः ॥२४॥ असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिर्मुसलैर्हलैः ॥ शक्तिभिस्तीक्ष्णधाराभिर्महद्भिः कूटमुद्गरैः ॥ २५ ॥ यष्टिभिर्विमलैश्चक्रैर्निशितैश्च परश्वधैः ॥ भिण्डिपालैः शतघ्नीभिरन्यैश्चापि वरायुधैः ॥ २६ ॥ अथानयद्बलाध्यक्षः सत्वरो रावणाज्ञया ॥ द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम् ॥ २७ ॥ ॥

कल्प्यताम् आकल्प्यनाम् । अलंक्रियतामित्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ बलाध्यक्षास्त्विति ॥ संरब्धा इति । पुनः पुनराह्वानेप्यनागमनात कुपिता इत्यर्थः । परिययुः प्रतिरथ्यं ययुरित्यर्थः ॥ २३ ॥ तत इत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ हुलैः द्विफलपत्राग्रायुधविशेषैः । हुलं द्विफलपत्राग्रमिति वैजयन्ती । भुजैरित्याद्युपलक्षणे तृतीया ॥२४॥२५॥२६॥ अथेति॥अथानयद्बलाध्यक्षः सर्वतो रावणाज्ञया । द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथमिति पाठः ॥२७॥

आरुरोहेत्यर्धमेकं वाक्यम् ॥ भीमः रावणः ॥२८॥ ततः प्रयात इति ॥ सत्त्वगाम्भीर्यात् बलातिशयात् ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तत इति ॥ द्वा-

आरुरोह रथं भीमो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२८॥ ततः प्रयातः सहसा राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ रावणः सत्त्वगाम्भीर्याद्दारयन्निव मेदिनीम् ॥२९॥ रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥३०॥ ते तु हृष्टा विनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् ॥ नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः ॥ ३१ ॥ ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः ॥ निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः ॥३२॥ ततः प्रजवनाश्वेन रथेन स महारथः ॥ द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥३३॥ ततो नष्टप्रभः सूर्यो दिशश्च तिमिरावृताः ॥ ३४ ॥ द्विजाश्च नेदुर्घोराश्च संचचालेव मेदिनी ॥ ववर्ष रुधिरं देवश्चस्खलुस्तुरगाः पथि ॥३५॥ ध्वजाग्रे न्यपतद्गृध्रो विनेदुश्चाशिवं शिवाः ॥ नयनं चास्फुरद्वामं सव्यो बाहुरकम्पत ॥ ३६ ॥ विवर्णं वदनं चासीत्किंचिदभ्रश्यत स्वरः ॥ ३७॥ ततो निष्पततो युद्धे दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ रणे निधनशंसीनि रूपाण्येतानि जज्ञिरे ॥३८॥ अन्तरिक्षात्पपातोल्का निर्घातसमनिःस्वना ॥ विनेदुरशिवा गृध्रा वायसैरनुनादिताः ॥ ३९ ॥ एतानचिन्तयन् घोरानुत्पातान् समुपस्थितान् ॥ निर्ययौ रावणो मोहाद्वधार्थी कालचोदितः ॥४०॥ तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम् ॥ वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥ ४१॥ तेषां तु तुमुलं युद्धं बभूव कपिरक्षसाम् ॥ अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥ ४२ ॥ ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥ ४३ ॥

रेणेति । उत्तरद्वारेणेत्यर्थः ॥३३॥ ततो नष्टप्रभ इत्यादिश्लोकचतुष्टयमेकान्वयम् ॥ रूपाणि दुर्निमित्तरूपाणि । ततः अनन्तरं, ततः उत्तरद्वारात् । निष्पततः निष्क्रमतः । सूर्यनष्टप्रभत्वादीनि रूपाणि जज्ञिर इति सबंन्धः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तेषां त्विति ॥ आह्वयानानाम् आह्वयमानानाम्, स्पर्धया आह्वयताम् । आगमशासनस्यानित्यत्वान्मुगागमाभावः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

निकृत्तशिरस इत्यादिश्लोकद्वयम् ॥ स्पष्टम् ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इति श्रीगो० श्रीरा० रत्नकिरीटाख्याने यु० षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥
अथ विरूपाक्षवधः—तथा तैरित्यादि ॥१॥ रावणस्येति ॥ एकत एकस्य अद्वितीयस्य ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ सुग्रीव इति ॥ अद्भुतमिति क्रियाविशे-

निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः॥ केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रोत्रविवर्जिताः॥ निरुच्छ्वासा हताः केचित्केचित्पार्श्वेषु दारिताः ॥४४॥ केचिद्विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विवर्जिताः ॥४५॥ दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो यतो यतोऽभ्येति रथेन संख्ये ॥ ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगं सोढुं न शेकुर्हरिपुङ्गवास्ते ॥४६॥ इति श्री० षण्णवतितमः सर्गः॥९६॥

तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः ॥ बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥१॥ रावणस्याप्रसह्यं तं शरसंपातमेकतः ॥ न शेकुः सहितुं दीप्तं पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २ ॥ तोर्दिता निशितैर्बाणैः क्रोशन्तो विप्रदुद्रुवुः ॥ पावकार्चिःसमाविष्टा दह्यमाना यथा गजाः ॥ ३ ॥ प्लवङ्गानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः ॥ स ययौ समरे तस्मिन् विधमन् रावणः शरैः ॥४॥ कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम्॥आससाद ततो युद्धे राघवं त्वरितस्तदा ॥५॥ सुग्रीवस्तान् कपीन् दृष्ट्वा भग्नान् विद्रवतो रणे ॥ गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धेद्भुतं मनः ॥ ६ ॥ आत्मनः सदृशं वीरः स तं निक्षिप्य वानरम् ॥ सुग्रीवोभिमुखः शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः ॥७॥ पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे यूथाधिपाः स्वयम् ॥ अनु जह्रुर्महाशैलान् विविधांश्च महाद्रुमान् ॥ ८ ॥ स नर्दन् युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् ॥ पातयन् विविधांश्चान्यान् जगामोत्तमराक्षसान् ॥ ९ ॥ ममन्थ च महाकायो राक्षसान् वानरेश्वरः ॥ युगान्तसमये वायुः प्रवृद्धानगमानिव ॥ १० ॥

षणम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ पार्श्वत इति ॥ महाद्रुमान् उत्पाट्येति शेषः। उत्पाट्य अस्य पार्श्वतः पृष्ठतश्चानुजह्रुरिति संबन्धः। यथा महाराजे युद्धाय गच्छति तदाऽऽयुधानि भृत्या आहरन्ति। तथा वानरराजे युद्धाय निष्क्रामति तदायुधभूतान् शैलवृक्षादीन् समये दातुं वानरा आजह्रुरिति भावः ॥ ८ ॥ ९ ॥
ममन्थ चेति ॥ अगमान् वृक्षान्। पलाशी द्रुद्रुमागमा इत्यमरः ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ ११ ॥ १२॥ अथेत्यादि ॥ संक्षीयमाणेषु हिंस्यमानेषु । "क्षि,हिंसायाम्"इति धातुः ॥ १३ ॥ १४ ॥१५॥ १६॥ १७ ॥ तत इति ॥ संप्रधनः बहुलग्रहणात् कर्तरि ल्युट् । प्रहर्तेत्यर्थः । प्रमुखे मुखे ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀संप्रधने युद्धे ॥१८॥ स त्विति ॥ धनुर्मात्रं धनुःप्रमाणम् । "प्रमाणे द्वयस-

राक्षसानामनीकेषु शैलवर्षं ववर्ष ह ॥ अश्मवर्षं यथा मेघः पक्षिसंघेषु कानने ॥ ११ ॥ कपिराजविमुक्तैस्तैः शैलवर्षैस्तु राक्षसाः ॥ विकीर्णशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पर्वताः ॥ १२ ॥ अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः ॥ सुग्रीवेण प्रभग्नेषु पतत्सु निनदत्सु च ॥१३॥ विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः ॥ रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत् ॥ १४ ॥ स तं द्विरदमारुह्य विरूपाक्षो महारथः ॥ विनदन् भीमनिर्ह्रादं वानरानभ्यधावत ॥ १५ ॥ सुग्रीवे स शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे ॥ स्थापयामास चोद्विग्नान् राक्षसान् संप्रहर्षयन् ॥१६॥ स तु विद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा ॥ चुक्रोध स महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे ॥ १७ ॥ ततः पादपमुद्धृत्य शूरः संप्रधनो हरिः ॥ अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तु महागजम् ॥ १८ ॥ स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः ॥ अपासर्पद्धनुर्मात्र निषसाद ननाद च ॥ १९ ॥ गजात्तु मथितात्तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान् ॥ राक्षसोभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम् ॥ २० ॥ आर्षभं चर्म खड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः ॥ भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम् ॥ २१ ॥ स हि तस्याभिसंक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ विरूपाक्षाय चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम् ॥ २२ ॥ स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः॥ अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत्तदा ॥२३॥ तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः॥मुहूर्तमभवद्वीरो विसंज्ञ इव वानरः ॥२४॥ स तदा सहसोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे॥मुष्टिं संवर्त्य वेगेन पातयामास वक्षसि॥२५॥

ज्दघ्नञ्मात्रचः"इत्यादिना मात्रच्प्रत्ययः ॥ १९ ॥ गजात्त्विति श्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ व्यवस्थितं निश्चलतया स्थितम् ॥ २० ॥२१ ॥ २२ ॥ स तामिति ॥ अपक्रम्य शिलापातपरिहारार्थमन्यतोपसृत्य, प्राहरत् । सुग्रीवमिति शेषः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ ॥

मुष्टिप्रहारेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ कवचमिति । अनेन सुग्रीवस्यापि कवचधारणमस्तीति गम्यते । पद्भ्यामिति। अभिहतः सन् पद्भ्यामपतदित्यन्वयः ॥ ❀ रामानुजोयम् ❀ तेनेति । सखड्गाभिहतोपतत् सखड्गश्चासावभिहतश्च सखड्गाभिहतः । विरूपाक्षप्रेरितखड्गसहितोपतदित्यर्थः । उत्तरत्र विरूपाक्षस्य मुष्टिनैव युद्धाभिधानात् ॥ २६ ॥ २७ ॥ तलप्रहारमिति ॥ नैपुण्यात् शिक्षापाटवात् ॥ २८ ॥ ततस्त्विति सार्धश्लोक-

मुष्टिप्रहाराभिहतो विरूपाक्षो निशाचरः ॥ तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे ॥ कवचं पातयामास पद्भ्यामभिहतोपतत् ॥ २६ ॥ स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत् ॥ तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिःस्वनम् ॥ २७ ॥ तलप्रहारं तद्रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम् ॥ नैपुण्यान्मोचयित्वैनं मुष्टिनोरस्यताडयत् ॥ २८ ॥ ततस्तु संक्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा ॥ स ददर्शान्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः ॥ २९ ॥ ततो न्यपातयत्क्रोधाच्छङ्खदेशे महत्तलम् ॥ ३० ॥ महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ ॥ ३१ ॥ पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं च समुद्वमन् ॥ स्रोतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जलं प्रस्रवणादिव ॥ ३२ ॥ विवृत्तनयनं क्रोधात्सफेनं रुधिराप्लुतम् ॥ ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम् ॥ ३३ ॥ स्फुरन्तं परिवर्तन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम् ॥ करुणं च विनर्दन्तं ददृशुः कपयो रिपुम् ॥३४॥ तथा तु तौ संयति संप्रयुक्तौ तरस्विनौ वानरराक्षसानाम् ॥ बलार्णवौ सस्वनतुः सुभीमं महार्णवौ द्वाविव भिन्नवेलौ ॥ ३५ ॥ विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रं महाबलं तं हरिपार्थिवेन ॥ बलं समस्तं कपिराक्षसानामुन्मत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

मेकं वाक्यम्॥ अन्तरम् अवकाशम् ॥२९॥ तत इत्यर्धम्॥ शङ्खदेशे ललाटास्थिप्रदेशे । शङ्खो निधौ ललाटास्थ्नीत्यमरः ॥३०॥ महेन्द्राशनीत्यादि सार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ स्रोतोभ्यः नासादिनवद्वारेभ्यः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ विवृत्तनयनमिति ॥ विरूपाक्षतरं नेत्रोद्गमनेनात्यन्तविकटाक्षम् ॥ ३३ ॥ स्फुरन्तमिति ॥ स्फुरन्तमूर्ध्वमुत्पतन्तम्। परिवर्तन्तं परिवर्तमानम् ॥ ३४॥ तथा त्विति ॥ भिन्नवेलौ विदीर्णवेलौ ॥३५॥ विनाशितमिति ॥ उन्मत्तगङ्गा उद्वेलगङ्गा ॥ ३६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अथ महोदरवधः—हन्यमान इत्यादि ॥ सरसी इवेति वक्तव्ये सरसीवेति संधिरार्षः ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ अस्मिन् काल इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ भर्तृपिण्डस्येति संबन्धमात्रे षष्ठी। भर्तृपिण्डस्य निर्देष्टुं स्वामिदत्तवेतनमपाकर्तुमित्यर्थः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तत इति ॥ भर्तृवाक्येन चोदितः सन् स्वेन

हन्यमाने बले तूर्णमन्योन्यं ते महामृधे ॥ सरसीव महाघर्मे सोपक्षीणे बभूवतुः ॥ १ ॥ स्वबलस्य विघातेन विरूपाक्षवधेन च ॥ बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ २ ॥ प्रक्षीणं तु बलं दृष्ट्वा वध्यमानं वलीमुखैः ॥ बभूवास्य व्यथा युद्धे प्रेक्ष्य दैवविपर्ययम् ॥ उवाच च समीपस्थं महोदरमरिंदमम् ॥ ३ ॥ अस्मिन् काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता ॥ जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम् ॥ ४ ॥ भर्तृपिण्डस्य कालोयं निर्देष्टुं साधु युध्यताम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रो महोदरः ॥ प्रविवेशारिसेनां तां पतङ्ग इव पावकम् ॥ ॥ ६ ॥ ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः ॥ भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः ॥ ७ ॥ वानराश्च महासत्त्वाः प्रगृह्य विपुलाः शिलाः ॥ प्रविश्यारिबलं भीमं जघ्नुस्ते रजनीचरान् ॥ ८ ॥ महोदरस्तु संक्रुद्धः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ चिच्छेद पाणिपादोरून् वानराणां महाहवे ॥ ९ ॥ ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसैरर्दिता भृशम् ॥ दिशो दश द्रुताः केचित्केचित्सुग्रीवमाश्रिताः ॥ १० ॥ प्रभग्नां समरे दृष्ट्वा वानराणां महाचमूम् ॥ अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम् ॥ ११ ॥ प्रगृह्य विपुलां घोरां महीधरसमां शिलाम् ॥ चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वरः ॥ १२ ॥ तामापतन्तीं सहसा शिलां दृष्ट्वा महोदरः ॥ असंभ्रान्तस्ततो बाणैर्निर्बिभेद दुरासदाम् ॥ १३ ॥ रक्षसा तेन बाणौघैर्निकृत्ता सा सहस्रधा ॥ निपपात शिला भूमौ गृध्रचक्रमिवाकुलम् ॥ १४ ॥ ॥

वीर्येण कदनं चक्र इत्यन्वयः ॥ ७ ॥ ८ ॥ महोदर इति ॥ पाणिपादोरूनिति । एकवद्भावाभाव आर्षः ॥ ९ ॥ १० ॥ प्रभग्नामिति ॥ अनन्तरं समीपस्थम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ रक्षसेति ॥ गृध्रचक्रं गृध्रसमूहः ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥

तां तु भिन्नां शिलां दृष्ट्वा सुग्रीवः क्रोधमूर्छितः ॥ सालमुत्पाट्य चिक्षेप राक्षसे रणमूर्धनि ॥ १५ ॥ शरैश्च विददारैनं शूरः परपुरंजयः ॥ १६ ॥ स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि ॥ १७ ॥ आविध्य तु स तं दीप्तं परिघं तस्य दर्शयन् ॥ परिघाग्रेण वेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥ १८ ॥ तस्माद्धतहयाद्वीरः सोवप्लुत्य महारथात् ॥ गदां जग्राह संक्रुद्धो राक्षसोथ महोदरः ॥ १९ ॥ गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः ॥ नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनाविव सविद्युतौ ॥२०॥ ततः क्रुद्धो गदां तस्मै चिक्षेप रजनीचरः ॥ ज्वलन्तीं भास्कराभासां सुग्रीवाय महोदरः॥२१॥ गदां तां सुमहाघोरामापतन्तीं महाबलः॥सुग्रीवो रोषताम्राक्षः समुद्यम्य महाहवे ॥ आजघान गदां तस्य परिघेण हरीश्वरः ॥२२॥ पपात स गदोद्भिन्नः परिघस्तस्य भूतले ॥२३॥ ततो जग्राह तेजस्वीसुग्रीवो वसुधातलात्॥आयसं मुसलं घोरं सर्वतो हेमभूषितम् ॥ २४ ॥ स तमुद्यम्य चिक्षेप सोप्यन्यां व्याक्षिपद्गदाम् ॥ भिन्नावन्योन्यमासाद्य पेततुर्धरणीतले ॥२५॥ ततो भग्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः॥ तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ ॥ २६ ॥ जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं नेदतुश्च पुनः पुनः ॥ तलैश्चान्योन्यमाहत्य पेततुर्धरणीतले ॥२७॥ उत्पेततुस्ततस्तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम् ॥ भुजैश्चिक्षेपतुर्वीरावन्योन्यमपराजितौ ॥ जग्मतुस्तौ श्रमं वीरौ बाहुयुद्धे परंतपौ ॥ २८ ॥ आजहार ततः खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ॥ राक्षसश्चर्मणा सार्धं महावेगो महोदरः ॥ २९ ॥

॥ १५ ॥ शरैरित्यर्धम् ॥ शूरः महोदरः एनं च सालं च शरैः विददारेत्यन्वयः॥ १६ ॥स इति ॥ सः सुग्रीवः ॥ १७ ॥ आविध्येति ॥ आदायेति शेषः । तस्य महोदरस्य, दर्शयन् । पाणिलाघवमिति शेषः ॥ १८ ॥ १९ ॥२०॥ तत इति ॥ भास्कराभासां भास्करवद्भासमानाम् ॥ २१ ॥ गदां तामित्यादि ॥ गदां दृष्ट्वेति शेषः। समुद्यम्य परिघमिति सिद्धम् ॥२२॥ पपात स गदोद्भिन्न इत्यर्धम् ॥ उभावपि परस्पराभिहतौ विशीर्णौ पेततुरिति भावः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तथैव च महाखड्गं चर्मणा पतितं सह ॥ जग्राह वानरश्रेष्ठः सुग्रीवो वेगवत्तरः ॥ ३० ॥ तौ तु रोषपरीताङ्गौ नर्दन्तावभ्यधावताम् ॥ उद्यतासी रणे हृष्टौ युधि शस्त्रविशारदौ ॥ ३१ ॥ दक्षिणं मण्डलं चोभौ सुतूर्णं संपरीयतुः ॥ अन्योन्यमभिसंक्रुद्धौ जये प्रणिहितावुभौ ॥ ३२ ॥ स तु शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः ॥ महाचर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः ॥ ३३ ॥ लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः ॥ जहार सशिरस्त्राणं कुण्डलोपहितं शिरः ॥ ३४ ॥ निकृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले ॥ तद्बलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न तिष्ठते ॥ ३५ ॥ हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुदितो हरिः ॥ चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः ॥ ३६ ॥ विषण्णवदनाः सर्वे राक्षसा दीनचेतसः ॥ विद्रवन्ति ततः सर्वे भयवित्रस्तचेतसः ॥ ३७ ॥ महोदरं तं विनिपात्य भूमौ महागिरेः कीर्णमिवैकदेशम् ॥ सूर्यात्मजस्तत्र रराज लक्ष्म्या सूर्यः स्वतेजोभिरिवाप्रधृष्यः ॥ ३८ ॥ अथ विजयमवाप्य वानरेन्द्रः समरमुखे सुरयक्षसिद्धसंघैः ॥ अवनितलगतैश्च भूतसंघैर्हर्षसमाकुलितैः स्तुतो महात्मा ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः ॥ सुग्रीवेण समीक्ष्याथ क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास सायकैः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

॥३०॥३१॥ दक्षिणमिति ॥ दक्षिणं प्रदक्षिणं, चकारात् सव्यं च। सुतूर्णं संपरीयतुः अकुर्वताम् ॥ ३२॥ स त्विति ॥ वीर्येण श्लाघत इति वीर्यश्लाघी ॥ ॥३३॥ लग्नमिति॥ लग्नं चर्मलग्नम्। उत्कर्षतः महोदरस्येति शेषः॥३४॥ निकृत्तेति ॥ तत् शिरः। न तिष्ठते नातिष्ठत ॥३५॥३६॥विषण्णेति॥विषण्णवदनाः अभवन्निति शेषः। अतः सर्वशब्दापौनरुक्त्यम् ॥ ३७ ॥ महोदरमिति ॥ लक्ष्म्या जयलक्ष्म्या ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

अथ महापार्श्ववधः—महोदरे त्वित्यादि ॥ महोदरे सुग्रीवेण निहत इत्यन्वयः ॥ १ ॥ ॥ ॥

॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥ सर्क्षराजस्त्वित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ ऋक्षराजः जाम्बवान् तेन सहितः सर्क्षराजः गवाक्षः । जाम्बवन्तं गवाक्षं चेत्युत्तरत्र

स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि सर्वशः ॥ पातयामास कायेभ्यः फलं वृन्तादिवानिलः ॥ २ ॥ केषां चिदिषुभिर्बाहून् स्कन्धांश्चिच्छेद राक्षसः ॥ वानराणां सुसंक्रुद्धः पार्श्वं केषां व्यदारयत् ॥ ३ ॥ तेर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः ॥ विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम् ॥ वेगं चक्रे महाबाहुः समुद्र इव पर्वणि ॥ ५ ॥ आयसं परिघं गृह्य सूर्यरश्मिसमप्रभम् ॥ समरे वानरश्रेष्ठो महापार्श्वे न्यपातयत् ॥६॥ स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो विचेतनः ॥ससूतः स्यन्दनात्तस्माद्विसंज्ञः प्रापतद्भुवि॥७॥सर्क्षराजस्तु तेजस्वी नीलाञ्जनचयोपमः ॥ निष्पत्य सुमहावीर्यः स्वाद्व्यूहान्मेघसंनिभात् ॥ ८ ॥ प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभां क्रुद्धः सुविपुलां शिलाम् ॥ अश्वान् जघान तरसा स्यन्दनं च बभञ्ज तम् ॥ ९ ॥ मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु महापार्श्वो महाबलः ॥ अङ्गदं बहुभिर्बाणैर्भूयस्तं प्रत्यविध्यत॥ १०॥जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥ऋक्षराजं गवाक्षं च जघान बहुभिः शरैः ॥ ११॥ जाम्बवन्तं गवाक्षं च स दृष्ट्वा शरपीडितौ ॥ जग्राह परिघं घोरमङ्गदः क्रोधमूर्छितः ॥ १२ तस्याङ्गदः प्रकुपितो राक्षसस्य तमायसम् ॥ दूरस्थितस्य परिघं रविरश्मिसमप्रभम् ॥ १३ ॥ द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य भ्रामयित्वा च वेगवान् ॥ महापार्श्वस्य चिक्षेप वधार्थं वालिनः सुतः ॥ १४ ॥ स तु क्षिप्तो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः ॥ धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्त्रं चाप्यपातयत् ॥ १५ ॥ तं समासाद्य वेगेन वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ तलेनाभ्यहनत्क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले ॥ १६ ॥ स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः ॥ करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम् ॥ १७॥ ॥

वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ जाम्बवन्तमिति ॥ ऋक्षराजं जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान । गवाक्षं च बहुभिः शरैर्जघानेत्यन्वयः ॥ ११ ॥ १२ ॥ तस्याङ्गद इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ दूरस्थितस्य तस्य वधार्थमित्यन्वयः ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

तमिति ॥ तैलधौतं प्रतिदिनं तैलसेचनान्निष्कल्मषम्, शैलसारमयं तद्वत्कठिनमित्यर्थः । दृढम् अशिथिलम् ॥१८॥ १९ ॥ स वीर इति ॥ आत्मन इत्यस्य पितुस्तुल्यपराक्रम इत्यनेन संबन्धः । संवर्तयत् समवर्तयत् । भ्रामयामासेत्यर्थः ॥२०॥२१॥२२॥२३॥ वानराणामित्यादि ॥ स्फोटयन् दलयन् ।

तं तैलधौतं विमलं शैलसारमयं दृढम् ॥ राक्षसः परमक्रुद्धो वालिपुत्रे न्यपातयत् ॥ १८ ॥ तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपादितम् ॥ अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः स परश्वधम् ॥१९॥ स वीरो वज्रसंकाशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः॥ संवर्तयत्सुसंक्रुद्धः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ २० ॥ राक्षसस्य स्तनाभ्याशे मर्मज्ञो हृदयं प्रति ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत् ॥ २१ ॥ तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे ॥ पफाल हृदयं चाशु स पपात हतो भुवि ॥ २२ ॥ तस्मिन्निपतिते भूमौ तत्सैन्यं संप्रचुक्षुभे ॥ अभवच्च महान् क्रोधः समरे रावणस्य तु ॥ २३ ॥ वानराणां च हृष्टानां सिंहनादश्च पुष्कलः ॥ स्फोटयन्निव शब्देन लङ्कां साट्टालगोपुराम् ॥ २४ ॥ महेन्द्रेणेव देवानां नादः समभवन्महान् ॥ २५ ॥ अथेन्द्रशत्रुस्त्रिदिवालयानां वनौकसां चैव महाप्रणादम् ॥ श्रुत्वा सरोषं युधि राक्षसेन्द्रः पुनश्च युद्धाभिमुखोवतस्थे ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥ ॥ ॥

महोदरमहापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा तु राक्षसौ ॥ तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले ॥ आविवेश महान् क्रोधो रावणं तं महामृधे ॥ १ ॥ सूतं संचोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २ ॥ निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च ॥ दुःखमेषोपनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३ ॥ ॥ ॥

वानराणां च सिंहनादः समभवत् । महेन्द्रेण सह देवानां नाद इव वानराणां च देवानां च नादः समभवदित्यर्थः । एतच्चानन्तरश्लोके स्फुटीभविष्यति ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

अथ रामरावणयुद्धारम्भः शततमे—महोदरेत्यादि ॥ तस्मिन् विरूपाक्षे निहते सति पश्चान्महोदरमहापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा स्थितमिति शेषः ॥ १ ॥ २ ॥३॥

रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् ॥ प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान् कुमुदो नलः ॥ ४ ॥ मैन्दश्च द्विविदश्चैव ह्यङ्गदो गन्धमादनः ॥ हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः ॥५॥ स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान् ॥ नादयन् प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यवर्तत ॥ ६ ॥ पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकानना ॥ संचचाल मही सर्वा सवराहमृगद्विपा ॥७॥ तामसं स महाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् ॥ निर्ददाह कपीन् सर्वांस्ते प्रपेतुः समन्ततः ॥८॥ उत्पपात रजो घोरं तैर्भग्नैः संप्रधावितैः ॥ न हि तत्सहितुं शेकुर्ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ॥९॥ तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमैः ॥ दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघवः पर्यवस्थितः ॥१०॥ ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् ॥ स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥११॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा॥आलिखन्तमिवाकाशमवष्टभ्य महद्धनुः॥पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमरिंदमम्॥१२॥ ततो रामो महातेजाः सौमित्रिसहितो बली ॥ वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम्॥१३॥समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥ १४ ॥ विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम् ॥ महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥

रामवृक्षमिति ॥ सीतापुष्पफलप्रदं सीता पुष्पं यस्य सः सीतापुष्पः सीतापुष्पश्चासौ फलप्रदश्च तम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥८॥ उत्पपातेति ॥ सहितुं सोढुम् । आर्ष इडागमः ॥९॥१०॥ तत इत्यादिसार्धश्लोकद्वयेन रामस्यापराजितत्वं, निरवधिकसौन्दर्यनिधित्वेन वैरं विहाय निरन्तरानुभाव्यत्वं, रावणस्य दुर्बुद्धित्वम्, अमृतप्रवाहमावर्तेनेव महता धनुर्वरेणावर्तितं श्रीरामदेहलावण्यामृतपूरमनवगाहमानस्य तस्य दौर्भाग्यं चोच्यते॥११॥१२॥ततो राम इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः॥ हृष्टः चिराद्वैरी समागत इति संतुष्टः कार्मुकं जग्राह। विस्फारयितुमारेभ इत्यादि विलम्बोक्त्या किमिदानीमपि वा नतो भविष्यति रावण इति रामस्य दयालुतोच्यते ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ ॥

रावणस्येति ॥ रावणस्य बाणौघैः रामविस्फारितेन च जातेन शब्देनेत्यर्थः ॥ १६ ॥ तयोरिति ॥ शशिसूर्ययोरिति । अमायामिति शेषः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ तयोः शरपथं प्राप्तो रावणो राजपुत्रयोः । स बभौ च यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोरिति ॥ अतिक्रूरस्वभावस्य रावणस्य रामलक्ष्मणयोः समीपागमनममावास्यायां राहोश्चन्द्रसूर्यसमीपागमनमिवेतिकृत्वा दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरैकरूप्यम् । रावणस्येति । शब्देन राक्षसास्ते चेति पाठः । ते च वानराश्च ॥१७॥ १८॥१९॥२०॥ अभ्यतिक्रम्येति ॥ अभ्यतिक्रम्य एकस्यापि बाणस्य स्वस्मिन्नपतनाद नादरेणातिक्रम्य ॥ २१ ॥२२॥ ॥२३॥२४॥२५॥२६॥ तयोरिति ॥ यमान्तकनिकाशयोः यमतदन्तकौ यमरुद्रौ तत्तुल्ययोः॥२७॥ संततमिति ॥गगनं संततं निबिडं बभूवेत्यन्वयः॥२८॥

रावणस्य च बाणौघै रामविस्फारितेन च ॥ शब्देन राक्षसास्ते च पेतुश्च शतशस्तदा ॥ १६ ॥ तयोः शरपथं प्राप्तो रावणो राजपुत्रयोः॥ स बभौ च यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोः ॥ १७ ॥ तमिच्छन् प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः ॥ मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान् ॥ १८॥ तान्मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता ॥ बाणान् बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥ एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन् दशभिर्दश ॥ लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २० ॥ अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिंजयः॥ आससाद ततो रामं स्थितं शैलमिवाचलम् ॥ २१ ॥ स संख्ये राममासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राघवोपरि ॥ २२ ॥ शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः॥ दृष्ट्वैवापततः शीघ्रं भल्लान् जग्राह सत्वरम् ॥ २३ ॥ तान् शरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः॥ दीप्यमानान् महाघोरान् क्रुद्धानाशीविषानिव ॥ २४ ॥ राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तदा ॥ अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरैरभिववर्षतुः ॥ २५ ॥ चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् ॥ बाणवेगात् समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥२६॥ तयोर्भूतानि वित्रेसुर्युगपत्संप्रयुध्यतोः॥रौद्रयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः॥२७॥संततं विविधैर्बाणैर्बभूव गगनं तदा॥घनैरिवातपापाये विद्युन्मालासमाकुलैः॥२८॥

गवाक्षितमित्यर्धम् ॥ गवाक्षितं संजातगवाक्षम् ॥ २९ ॥ महावेगैरित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ गृध्रपत्रैः हेतुभिः, सुवाजितैः संजातशोभनपक्षैः । बाणैरिति शेषः ॥ ३० ॥ बभूवेति ॥ अनासाद्यम् इतः पूर्वं केनापि दुर्लभम् । अचिन्त्यं रावणस्यैवं भविष्यतीति चिन्तानर्हम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उभाविति ॥ येन येन मण्डलचारेण ॥ ३३ ॥ तत इति ॥ संसक्तहस्तः बाणप्रयोगासक्तहस्तः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अथेत्यादि ॥ शरान् रौद्रास्त्रप्रपञ्च-

गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥ महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः ॥ शरान्धकारं तौ भीमं चक्रतुः समरं तदा ॥ गतेस्तं तपने चापि महामेघाविवोत्थितौ ॥ ३० ॥ बभूव तुमुलं युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ॥ अनासाद्यमचिन्त्यं च वृत्रवासवयोरिव ॥ ३१ ॥ उभौ हि परमेष्वासावुभौ शस्त्रविशारदौ ॥ उभावस्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः ॥ ३२ ॥ उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः ॥ ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुः सागरयोरिव ॥ ३३ ॥ ततः संसक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः ॥ नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्चत ॥ ३४ रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम् ॥ शिरसा धारयन् रामो न व्यथां प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥ अथ मन्त्रानभिजपन् रौद्रमस्त्रमुदीरयन् ॥ शरान्भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः ॥ मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान् ॥ ३६ ॥ ते महामेघसंकाशे कवचे पतिताः शराः ॥ अवध्ये राक्षसेन्द्रस्य न व्यथां जनयंस्तदा ॥ ३७ ॥ पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम् ॥ ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलो रणे ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥

रूपान् बाणान्, मुमोचेत्यन्वयः । मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवानिति पाठः । तदनन्तरं, ते महामेघसंकाश इति श्लोकः । तदनन्तरं, पुनरेवेति श्लोकः । तदनन्तरं, ते भित्त्वेति श्लोकात्पूर्वं ग्रन्थपतनमस्ति तदन्वेष्टव्यम् ॥ ३६ ॥ त इति ॥ अवध्ये अभेद्ये । व्यथां न जनयन् नाजनयन् ॥ ३७ ॥ पुनरेवेति ॥ ललाटे विषये ललाटमुद्दिश्येत्यर्थः । यद्वा परमास्त्राणि विव्याधेति शेषः ॥ ३८ ॥ ॥

त इति ॥ ते अस्त्रविकृतिरूपाः शराः, बाणरूपाणि रावणास्त्राणि भित्त्वा, रावणप्रतिकूलिताः रावणेन निवारिताः सन्तः, भूमिं विविशुः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ त इति ॥ अवध्ये अभेद्ये । पुनरिति । ललाटे ललाटविषये । ललाटमुद्दिश्येति यावत् । परमास्त्रेण श्रेष्ठास्त्रमन्त्रेण, योजितान् बाणान् मुमोचेत्यध्याहर्तव्यम् । समनन्तरश्लोके बाणबहुत्वाभिधानात् । ते भित्त्वेति । श्वसन्तः पञ्चशीर्षा उरगा इव स्थिताः ते बाणाः रावणप्रतिकूलिताः रावणेन प्रत्य-

ते भित्त्वा बाणरूपाणि पञ्चशीर्षा इवोरगाः ॥ श्वसन्तो विविशुर्भूमिं रावणप्रतिकूलिताः ॥ ३९ ॥ निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ आसुरं सुमहाघोरमस्त्रं प्रादुश्चकार ह ॥ ४० ॥ सिंहव्याघ्रमुखांश्चान्यान् कङ्ककाकमुखानपि॥गृध्रश्येनमुखांश्चापि शृगालवदनांस्तथा ॥४१॥ ईहामृगमुखांश्चान्यान् व्यादितास्यान् भयानकान् ॥ पञ्चास्यान् लेलिहानांश्च ससर्ज निशितान् शरान् ॥ ४२ ॥ शरान् खरमुखांश्चान्यान् वराहमुखसंस्थितान् ॥ श्वानकुक्कुटवक्त्रांश्च मकराशीविषाननान् ॥ ४३ ॥ एतानन्यांश्च मायावी ससर्ज निशितान् शरान् ॥ रामं प्रति महातेजाः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ ४४ ॥ आसुरेण समाविष्टः सोस्त्रेण रघुनन्दनः ॥ ससर्जास्त्रं महोत्साहः पावकं पावकोपमः ॥ ४५ ॥ अग्निदीप्तमुखान् बाणान् तथा सूर्यमुखानपि ॥ चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्रांश्च धूमकेतुमुखानपि ॥४६॥ ग्रहनक्षत्रवक्त्रांश्च महोल्कामुखसंस्थितान्॥ विद्युज्जिह्वोपमांश्चान्यान् ससर्ज निशितान् शरान् ॥ ४७ ॥ ते रावणशरा घोरा राघवास्त्रसमाहताः ॥ ४८ ॥

स्त्रेण खण्डिताः, अत एव बाणरूपाणि भित्त्वा भूमिं विविशुरिति योजना ॥३९॥ ४० ॥ आसुरास्त्रं प्रपञ्चयति—सिंहेत्यादिश्लोकचतुष्टयेन ॥ लेलिहानान् सर्पान् । तदाकारानिति यावत् । श्वानशब्दोप्यस्ति । मकराशीविषाननानित्यत्र आशीविषशब्दः पञ्चास्यसर्पेतरसर्पपरः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३॥४४॥ आसुरेणेति ॥ पावकं पावकसंबन्धि ॥ ४५ ॥ पावकास्त्रं प्रपञ्चयति—अग्नीत्यादिश्लोकद्वयेन ॥ महोल्कामुखसंस्थितान् महोल्कामुखेन वर्तमानान् । विद्युज्जिह्वोपमान् विद्युदर्चिःसदृशान् । कणा जिह्वास्तथार्चिष इति हलायुधः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥ ५० ॥ तत इति ॥ तत् प्रसिद्धम् । मुदान्वितः बभूवेति शेषः ॥ ५१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने शततमः सर्गः ॥ १०० ॥ ॥ ॥ ॥

विलयं जग्मुराकाशे जग्मुश्चैव सहस्रशः ॥ ४९ ॥ तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः ॥ सुग्रीवप्रमुखा वीराः परिवार्य तु राघवम् ॥ ५० ॥ ततस्तदस्त्रं विनिहत्य राघवः प्रसह्य तद्रावणबाहुनिःसृतम् ॥ मुदान्वितो दाशरथिर्महाहवे विनेदुरुच्चैर्मुदिताः कपीश्वराः ॥ ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे शततमः सर्गः ॥ १०० ॥ ॥ ॥

तस्मिन्प्रतिहतेस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः ॥ क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम् ॥ १ ॥ मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः ॥ उत्स्रष्टुं रावणो घोरं राघवाय प्रचक्रमे ॥ २ ॥ ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च ॥ कार्मुकाद्दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः ॥ ३ ॥ मुद्गराः कूटपाशाश्च दीप्ताश्चाशनयस्तथा ॥ निष्पेतुर्विविधास्तीक्ष्णा वाता इव युगक्षये ॥ ४ ॥ तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः ॥ जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः ॥ ५ ॥ तस्मिन् प्रतिहतेस्त्रे तु राघवेण महात्मना ॥ रावणः क्रोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदैरयत् ॥ ६ ॥ ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च ॥ कार्मुकाद्भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः ॥ ७॥ तैरासीद्गगनं दीप्तं संपतद्भिरितस्ततः ॥ पतद्भिश्च दिशो दीप्ताश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥ ८॥

अथ लक्ष्मणस्य शक्त्या पतनम्—तस्मिन्नित्यादि ॥ क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरमित्यत्रापि चक्र इत्यनुषज्यते ॥१॥ किं तदस्त्रमित्यपेक्षायामाह—मयेनेति ॥ रौद्रं रुद्रदेवताकम् ॥ २ ॥ ततः शूलानीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ कूटपाशाः कपटपाशाः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ तैरिति ॥ चन्द्रसूर्यग्रहैरिवेति । तत्समानाकारैरित्यर्थः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तर इति ॥ एवं रावणं प्रहृत्य क्षणं रामे विश्राम्यति सतीत्यर्थः । लक्ष्मणः पूर्वं युद्धे प्रवृत्तो मध्ये रामेण युद्धकरणादवसरप्रतीक्ष इत्यर्थः । एवमव्याख्याने कथमन्येन युध्यमानमन्यो युध्येतेति महान् दोषः स्यात् ॥ १३ ॥ गृहीतानां सप्तबाणानां

तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि स तु राघवः ॥ आयुधानि च चित्राणि रावणस्य चमूमुखे ॥ ९ ॥ तदस्त्रं तु
हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः ॥ विव्याध दशभिर्बाणै रामं सर्वेषु मर्मसु ॥ १० ॥ स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः ॥
रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः ॥ ११ ॥ ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजयः
॥ राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली ॥ लक्ष्मणः सायकान्
सप्त जग्राह परवीरहा ॥ १३ ॥ तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः ॥ ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद
नैकधा ॥ १४ ॥ सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ जहार लक्ष्मणः श्रीमान् नैर्ऋतस्य महाबलः ॥ १५ ॥
तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम् ॥ लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ १६ ॥ नीलमेघनिभांश्चास्य
सदश्वान् पर्वतोपमान् ॥ जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य बिभीषणः ॥ १७ ॥ हताश्वाद्वेगवान्वेगादवप्लुत्य महारथात्
॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥ १८ ॥ ततः शक्तिं महाशक्तिर्दीप्तां दीप्ताशनीमिव ॥ बिभीषणाय चिक्षेप
राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ १९ ॥ अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः ॥ अथोदतिष्ठत्सन्नादो वानराणां तदा
रणे ॥ २० ॥ सा पपात त्रिधा च्छिन्ना शक्तिः काञ्चनमालिनी ॥ सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता ॥ २१ ॥

विनियोगप्रकारमाह—तैः सायकैरित्यादिश्लोकत्रयेण ॥ तैः सायकैरिति षष्ठ्यर्थे तृतीया । तेषां सायकानां मध्ये एकेन बाणेन ध्वजम्, एकेन बाणेन सारथिशिरः, पञ्चभिर्धनुश्च चिच्छेदेत्यर्थः । निशितैः शरैरित्यत्र शरशब्दः काशदण्डविशेषमयत्वपरो बाणविशेषणम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ एवं धनुषि छिन्ने क्षणं तूष्णीं तिष्ठति रावणे बिभीषणेन किंचित्कारमाह—नीलेति ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥

ततः संभाविततरां कालेनापि दुरासदाम् ॥ जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ २२ ॥ सा वेगिता बलवता रावणेन दुरासदा ॥ जज्वाल सुमहाघोरा शक्राशनिसमप्रभा ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं बिभीषणम् ॥ प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥ २४ ॥ तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः ॥ रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २५ ॥ कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना ॥ न प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥ २६ ॥ मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः ॥ लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥ मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं बिभीषणः ॥ विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥ २८ ॥ एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा ॥ मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति ॥ २९ ॥ इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम् ॥ मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम् ॥ ३० ॥ लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥ रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥ ३१ ॥ सा क्षिप्ता भीमवेगेन शक्राशनिसमस्वना ॥ शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥ ३२ ॥ तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः ॥ स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥ ३३ ॥ रावणेन रणे शक्तिः क्रुद्धेनाशीविषोपमा ॥ मुक्ताशूरस्यभीतस्य लक्ष्मणस्य ममज्ज सा ॥ ३४ ॥

तत इति ॥ संभाविततरां चन्दनादिभिरर्चिताम् ॥ २२ ॥ २३ ॥ एतस्मिन्निति ॥ अभ्यवपद्यत तमाच्छाद्य स्वयमतिष्ठदित्यर्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ कीर्यमाण इति ॥ विमुखीकृतविक्रमः विमुखीकृतबिभीषणविषयपराक्रमः ॥ २६ ॥ २७ ॥ मोक्षित इति ॥ ते त्वया ॥ २८ ॥ एषेति ॥ लोहितलक्षणा रुधिरच्छिन्ना । अनेन पूर्वमपि वहुधा रिपवोनया हता इति व्यज्यते । लोहितलक्षणा सती यास्यतीति वा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तामिति ॥ राघवः लक्ष्मणाय स्वस्त्यस्तु त्वं हतोद्यमा नष्टहननोद्योगा मोघा भवेति तामनुव्याहरदित्यन्वयः ॥ ३३ ॥ क्षणात् भस्मीकरणक्षमा शक्तिः रामेण मोघीकृता सती केवलमपतदित्याह—रावणेनेति ॥ मुक्तेति । आशु उरसि अभीतस्येति पदानि । लक्ष्मणस्योरसि ममज्जेति संवन्धः ॥ ३४ ॥

॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ स मुहूर्तमिति ॥ अनुध्याय तत्कालकर्तव्यं चिन्तयित्वा ॥ ३८ ॥ न विषादस्येति सार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ लक्ष्मणं सन्निरीक्ष्य महता सर्वयत्नेन रावणस्य वधे धृतः अवहितः सुतुमुलं युद्धं चक्र इत्यन्वयः। न केवलं सीताहरणात् किंतु लक्ष्मणदर्शनादपीति चशब्दार्थः ॥३९॥

न्यपतत्सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि॥जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥३५॥ ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया ॥ शक्त्या निर्भिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥ ३६ ॥ तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः ॥ भ्रातृस्नेहान्महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत् ॥ ३७ ॥ स मुहूर्तमनुध्याय बाष्पव्याकुललोचनः ॥ बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः ॥ ३८ ॥ न विषादस्य कालोयमिति संचिन्त्य राघवः ॥ चक्रे सुतुमुलं युद्धं रावणस्य वधे धृतः॥ सर्वयत्नेन महता लक्ष्मणं सन्निरीक्ष्य च ॥३९॥ स ददर्श ततो रामः शक्त्या भिन्नं महाहवे ॥ लक्ष्मणं रुधिरादिग्धं सपन्नगमिवाचलम् ॥ ४० ॥ तामपि प्रहितां शक्तिं रावणेन बलीयसा ॥ यत्नतस्ते हरिश्रेष्ठा न शेकुरवमर्दितुम् ॥ ४१ ॥ अर्दिताश्चैव बाणौघैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ॥४२॥ सौमित्रिं सा विनिर्भिद्य प्रविष्टा धरणीतलम् ॥ ४३ ॥ तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् ॥ बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान् विचकर्ष च ॥ ४४ ॥ तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा ॥ शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः॥४५॥अचिन्तयित्वा तान्बाणान् समाश्लिष्य च लक्ष्मणम्॥अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं चैव राघवः॥४६॥

कथं लक्ष्मणदर्शनं रावणवधकारणं भवतीत्यत्राह–स ददर्शेति ॥ तदानीं लक्ष्मणस्य तादृशं शोच्यदर्शनं रावणवधनिश्चयकारणं भवतीत्याशयः ॥ ४० ॥ तामपीति ॥ अपिशब्दस्य यत्नतोपीत्युत्तरत्रान्वयः। बाणार्दितत्वेन सुतरां न शेकुरित्याह–अर्दिताश्चेति ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ कारणान्तरमाह–सौमित्रिमिति ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ॥ ॥

लक्ष्मणं परिवार्येह तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः॥४७॥ पराक्रमस्य कालोयं संप्राप्तो मे चिरेप्सितः॥पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः॥ काङ्क्षतस्तोककस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम्॥ ४८॥ अस्मिन्मुहूर्ते न चिरात्सत्यं प्रतिशृणोमि वः॥ अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः॥ ४९॥ राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम्॥ वैदेह्याश्च परामर्शं रक्षोभिश्च समागमम्॥ ५०॥ प्राप्तं दुःखं महद्घोरं क्लेशं च निरयोपमम्॥ अद्य सर्वमहं त्यक्ष्ये निहत्वा रावणं रणे ॥५१॥ यदर्थं वानरं सैन्यं समानीतमिदं मया॥ सुग्रीवश्च कृतो राज्ये निहत्वा वालिनं रणे॥ ५२॥ यदर्थं सागरः क्रान्तः सेतुर्बद्धश्च सागरे॥ सोयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः॥ ५३॥ चक्षुर्विषयमागम्य नायं जीवितुमर्हति॥ दृष्टिं दृष्टिविषस्येव सर्पस्य मम रावणः॥५४॥ स्वस्थाः पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुङ्गवाः॥ आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च ॥५५॥ अद्य रामस्य रामत्वं पश्यन्तु मम संयुगे॥ त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः॥ ५६॥ अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः॥ सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति॥ समागम्य सदा लोके यथा युद्धं प्रवर्तितम्॥५७॥ एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः॥ आजघान दशग्रीवं रणे रामः समाहितः ॥५८॥ ॥

॥४७॥पराक्रमस्येत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः॥ वध्यतामिति प्राप्तकाले लोट्। स्तोककस्य चातकस्य। स्तोककश्चातकः समा इत्यमरः ॥ ४८॥ अस्मिन्निति ॥ अस्मिन्मुहूर्ते तत्रापि न चिराद्द्रक्ष्यथेत्यन्वयः ॥ ४९॥ राज्यनाशमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ प्राप्तं पम्पोपवनादौ। क्लेशं लक्ष्मणप्रहरणजन्यम् ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यदर्थमित्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ दृष्टिं दृष्टिविषयम्। दृष्टौ विषं यस्यासौ दृष्टिविषः तस्य। केचिद्धि सर्पाः दर्शनमात्रेण मनुष्यान् मारयन्तीति प्रसिद्धिः ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अद्येति ॥ रामत्वं जगदेकवीरत्वम् । आचार्यास्तु रामावतारप्रयोजनमित्याहुः ॥ ५६ ॥ अद्येत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ सदेवाः सचराचराः लोकाः जनाः, समागम्य संघीभूय, यथेदानीं युद्धं प्रवर्तितं तथा यावत् भूमिर्धरिष्यति, तावत्कालं सदा नित्यशः लोके यत्कर्म कथयिष्यन्ति, तत् कर्माद्य करिष्यामीत्यन्वयः ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने यु० एकोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ ॥
अथ लक्ष्मणसंजीवनं द्विशततमे—शक्त्या विनिहतमित्यादिश्लोकद्वयमेकं वाक्यम्॥ विसृजन्नेवेत्यादिवर्तमाननिर्देशेन रावणपलायनानन्तरं लक्ष्मणयोगक्षे-

अथ प्रदीप्तैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः ॥ अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥ ५९ ॥ रामरावणमुक्तानामन्योन्य-
मभिनिघ्नताम् ॥ शराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः ॥ ६० ॥ ते भिन्नाश्च विकीर्णाश्च रामरावणयोः शराः ॥ अन्त-
रिक्षात्प्रदीप्ताग्रा निपेतुर्धरणीतले ॥ ६१ ॥ तयोर्ज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान् ॥ त्रासनः सर्वभूतानां संबभूवाद्भु-
तोपमः ॥ ६२॥ स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभिर्महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः॥ भयात्प्रदुद्राव समेत्य रावणो यथाऽनि-
लेनाभिहतो बलाहकः ॥ ६३ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ ॥
शक्त्या विनिहतं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा ॥ लक्ष्मणं समरे शूरं रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥१॥ स दत्त्वा तुमुलं युद्धं रावणस्य दु-
रात्मनः ॥ विसृजन्नेव बाणौघान् सुषेणं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥ एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितः क्षितौ ॥ सर्पवद्वेष्टते वी-
रो मम शोकमुदीरयन् ॥३॥ शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैरिष्टतमं मम ॥ पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः॥४॥
अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः ॥ यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन च ॥ ५ ॥ लज्जतीव हि मे वीर्यं
भ्रश्यतीव कराद्धनुः ॥ सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता॥ अवसीदन्ति गात्राणि स्वप्नयाने नृणामिव ॥ ६ ॥
चिन्ता मे वर्धते तीव्रा मुमूर्षा चोपजायते ॥ ७ ॥ ॥

मानुसंधाने अविलम्बः सूचितः ॥ १ ॥ २ ॥ एष इति ॥ उदीरयन् जनयन् ॥ ३ ॥ शोणितार्द्रमिति ॥ प्राणैः प्राणेभ्यः ॥ ४ ॥ ५ ॥ लज्जतीवेत्यादि-
सार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ लज्जतीव । आर्षं परस्मैपदम् । स्वप्नयाने स्वप्नगमने। स्वप्ने हि गच्छतां पुरुषाणां पादाः पश्चादाकृष्टा भवन्ति । भ्रा-
तरं निहतं दृष्ट्वेति पूर्वशेषः ॥ ६ ॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ विनिष्टनन्तमित्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ विनिष्टनन्तं निश्वसन्तम् । ध्यानशोकपरायणः अभूदिति शेषः ॥ ९ ॥ परं विषादमित्यर्धम् ॥
राघव इत्यनुषञ्जनीयम् ॥१०॥ न हि युद्धेनेति ॥ दृष्ट्वा स्थितस्येति शेषः ॥ ११॥ किं मे राज्येनेति ॥ यत्र यतः ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ न मृतोयमि-

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना ॥८॥ विनिष्टनन्तं दुःखार्तं मर्मण्यभिहतं भृशम् ॥ राघवो भ्रातरं दृष्ट्वा प्रियं प्राणं
बहिश्चरम् ॥ दुःखेन महताविष्टो ध्यानशोकपरायणः ॥ ९ ॥ परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः ॥१०॥ न हि युद्धेन
मे कार्यं नैव प्राणैर्न सीतया॥ भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु ॥११॥ किं मे राज्येन किं प्राणैर्युद्धे कार्यं न विद्यते॥
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः ॥ १२ ॥ देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ॥ तं तु देशं न पश्यामि
यत्र भ्राता सहोदरः ॥ १३ ॥ इत्येवं विलपन्तं तं शोकविह्वलितेन्द्रियम् ॥ विवेष्टमानं करुणमुच्छ्वसन्तं पुनः
पुनः ॥ राममाश्वासयन् वीरः सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥ न मृतोयं महाबाहो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥
न चास्य विकृतं वक्त्रं नापि श्यावं न निष्प्रभम् ॥१५॥ सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्याभिलक्ष्यते॥ पद्मरक्ततलौ हस्तौ सुप्रसन्ने
च लोचने ॥ १६ ॥ एवं न विद्यते रूपं गतासूनां विशांपते ॥ दीर्घायुषस्तु ये मर्त्यास्तेषां तु मुखमीदृशम् ॥ १७ ॥
नायं प्रेतत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥ मा विषादं कृथा वीर सप्राणोयमरिन्दमः ॥१८॥ आख्यास्यते प्रसुतस्य स्रस्तगात्रस्य
भूतले॥ सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः॥१९॥ एवमुक्त्वा तु वाक्यज्ञः सुषेणो राघवं वचः ॥ हनुमन्तमुवाचेदं
हनुमन्तमभित्वरन् ॥ २० ॥ सौम्य शीघ्रमितो गत्वा शैलमोषधिपर्वतम् ॥ पूर्वं ते कथितो योसौ वीर जाम्बवता
शुभः ॥२१॥ दक्षिणे शिखरे तस्य जातामोषधिमानय ॥ विशल्यकरणीं नाम विशल्यकरणीं शुभाम् ॥ २२ ॥

ति ॥ श्यावं कपिशम् । विवर्णमिति यावत् । श्यावः स्यात्कपिश इत्यमरः ॥१५॥१६॥१७॥१८॥ आख्यास्यत इति ॥ मुहुर्मुहुः कम्पमानं हृदयमेनं
सोच्छ्वासं सप्राणम् आख्यास्यते आचष्टे । लडर्थे लृट् ॥१९॥ २० ॥ सौम्य शीघ्रमित्यादि सार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ ओषधिपर्वतम् ओषधिपर्वताख्यम् । द्वितीयो विशल्यकरणीशब्दो गुणवचनः । विशल्याः क्रियन्तेनयेति विशल्यकरणी ताम् ॥ २१ ॥ २२ ॥

॥ २३ ॥ २४ ॥ तस्य बुद्धिरित्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ प्रतर्केण अन्तःकरणप्रसादादिना लिङ्गेन। सुषेणोप्येवमब्रवीदिति । दक्षिणे शिखरे तस्य जाताम् ओषधिमानयेति सुषेणवचनम् । अगृह्य यदि गच्छामि। पुनः सुषेणं प्रष्टुमिति भावः। दोषः लक्ष्मणहानिरूपः। वैक्लव्यं निष्पौरुषत्वम्। अन्ते इ-

सवर्णकरणीं चापि तथा संजीवनीमपि ॥ संधानकरणीं चापि गत्वा शीघ्रमिहानय ॥ २३ ॥ संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौषधिपर्वतम् ॥ चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्तां महौषधिम् ॥ २४ ॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः ॥ इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः ॥ २५ ॥ अस्मिन् हि शिखरे जातामोषधीं तां सुखावहाम् ॥ प्रतर्केणावगच्छामि सुषेणोप्येवमब्रवीत् ॥ २६ ॥ अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् ॥ कालात्ययेन दोषः स्याद्वैक्लव्यं च महद्भवेत् ॥ २७ ॥ इति संचिन्त्य हनुमान् गत्वा क्षिप्रं महाबलः ॥ आसाद्य पर्वतश्रेष्ठं त्रिः प्रकम्प्य गिरेः शिरः ॥ २८ ॥ फुल्लनानातरुगणं समुत्पाट्य महाबलः ॥ गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत् ॥ २९ ॥ स नीलमिव जीमूतं तोयपूर्णं नभःस्थलात् ॥ आपपात गृहीत्वा तु हनुमान् शिखरं गिरेः ॥ ३० ॥ समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः ॥ विश्रम्य किंचिद्धनुमान् सुषेणमिदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ ओषधिं नावगच्छामि तामहं हरिपुङ्गव ॥ तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥ ३२ ॥ एवं कथयमानं तं प्रशस्य पवनात्मजम् ॥ सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीम् ॥ ३३ ॥ विस्मितास्तु बभूवुस्ते रणे वानरराक्षसाः ॥ दृष्ट्वा हनुमतः कर्म सुरैरपि सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥ ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ॥ लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतेः ॥ ३५ ॥ ॥

तिकरणेन पूर्वमन्वयः कार्यः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इति संचिन्त्येत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ समतोलयत् उदक्षिपत् ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ समागम्येति ॥ संन्यस्य सेनामध्ये निक्षिप्य ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ❀रामानुजीयम् ❀ लक्ष्मणाय ददौ नस्यं सुषेणः परमौषधमित्येतत्प्रकारेण

इन्द्रजिद्युद्धे शल्यपीडितानां लक्ष्मणादीनां चिकित्सां कृतवता संगृहीतौषधेन सुषेणेन, सौम्य शीघ्रमितो गत्वा शैलमोषधिपर्वतमिति हनुमत्प्रेषणमनुपपन्नमिव प्रतीयते । अत्र लक्ष्मणविभीषणादिचिकित्सायामौषधिजातं सर्वं विनियुक्तमिति परिहारस्य वक्तुं शक्यत्वेपि अविस्मरणशीलस्य हनुमतः स्वेनैवाचिरस्थापितपर्वतविषयकं, प्रतर्केणावगच्छामीत्यभिधानं त्रिः प्रकम्प्योत्पाटनं च विरुद्धमिव प्रतीयते । अत्र परिहारो विद्वद्भिश्चिन्तनीयः

सशल्यस्तां समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा ॥ विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ ३६ ॥ तमुत्थितं ते हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् ॥ साधु साध्विति सुप्रीताः सुषेणं प्रत्यपूजयन् ॥ ३७ ॥ एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा॥ सस्वजे स्नेहगाढं च बाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥३८॥ अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा ॥ दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम् ॥३९॥ न हि मे जीवितेनार्थः सीतया चापि लक्ष्मण॥ को हि मे विजयेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥ ॥ ४० ॥ इत्येवं वदतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥ खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम ॥ लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं वक्तुमिहार्हसि ॥४२॥ न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां साधवोनघ ॥ लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥ ४३ ॥ नैराश्यमुपगन्तुं ते तदलं मत्कृतेनघ ॥ वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥ ४४ ॥ न जीवन् यास्यते शत्रुस्तव बाणपथं गतः ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः ॥ ४५ ॥ अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः ॥ यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः ॥ ४६ ॥ यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये यदि च कृतां त्वमिहेच्छसि प्रतिज्ञाम् ॥ यदि तव राजवरात्मजाभिलाषः कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अब्रवीदित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ ३९ ॥ ४० ॥४१॥ तामिति ॥ तां प्रतिज्ञाम् रावणं हत्वा विभीषणमभिषेक्ष्यामीत्येवंरूपाम् ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ नैराश्यमिति ॥ नैराश्यं सीतायां विजये चोपेक्षाम् ॥ ४४ ॥ न जीवन्निति ॥ यास्यते यास्यति ॥ ४५ ॥ अहं त्विति ॥ कृतकर्मा कृतसंचारः ॥४६॥ यदीति ॥ कृतां निर्व्यूढाम् ॥ ४७॥ इति श्रीगोविन्द०श्रीरा०रत्नकि०युद्धकाण्ड०द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२॥

लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः ॥ संदधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ रावणाय शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे ॥ १ ॥ अथान्यं रथमारुह्य रावणो राक्षसाधिपः ॥ अभ्यद्रवत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ॥ २ ॥ दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ॥ आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः ॥ ३ ॥ दीप्तपावकसंकाशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ निर्बिभेद रणे रामो दशग्रीवं समाहितम् ॥ ४ ॥ भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः ॥ न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५ ॥ ततः काञ्चनचित्राङ्गः किंकिणीशतभूषितः ॥ तरुणादित्यसंकाशो वैडूर्यमयकूबरः ॥ ६ ॥ सदश्वैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः ॥ हरिभिः सूर्यसंकाशैर्हेमजालविभूषितैः ॥ ७ ॥ रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान्देवराजरथो वरः ॥ देवराजेन संदिष्टो रथमारुह्य मातलिः ॥ ८ ॥ अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात् ॥ ९ ॥ अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः ॥ प्राञ्जलिर्मातलिर्वाक्यं सहस्राक्षस्य सारथिः ॥ १० ॥ सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोयं विजयाय ते ॥ दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमन् शत्रुनिबर्हण ॥ ११ ॥ इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसन्निभम् ॥ शराश्चादित्यसंकाशाः शक्तिश्च विमला शिता ॥ १२ ॥ आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम् ॥ मया सारथिना राजन् महेन्द्र इव दानवान् ॥ १३ ॥ ॥ ॥

अथेन्द्ररथमारुह्य संग्राममस्त्रिशततमे–लक्ष्मणेनेत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ३॥४ ॥ ५ ॥ तत इत्यादिसार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ कूबरः युगाधारदारु । कूबरस्तु युगंधर इत्यमरः । काञ्चनापीडैः काञ्चनालंकारैः । श्वेतप्रकीर्णकैः श्वेतचामरैः । चामरं तु प्रकीर्णकमित्यमरः । हरिभिः हरितवर्णैः । रुक्मवेणुध्वजः कनकदण्डध्वजः । देवराजरथ इति । य इति शेषः। योस्ति तमारुह्येत्युत्तरत्रान्वयः । संदिष्टः चोदितः । त्रिविष्टपात् स्वर्गात् ॥ ६ ॥ ७॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ अब्रवीच्चेति ॥ प्रतोदः अश्वप्रेरणकाष्ठम् ॥ १० ॥ सहस्राक्षेणेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ इदमिति ॥ अत्र चापादिषु यथायोग्यं दत्त इत्येतल्लिङ्गवचनविपरिणामेन योजनीयम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

इत्युक्त इति ॥ संपरिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य । लोकान् लक्ष्म्या विराजयन् चन्द्रप्रभयेव स्वकान्त्या सर्वलोकान् प्रकाशयन्नित्यर्थः ॥१४॥१५॥१६॥१७॥ ॥१८॥ ते दीप्तवदना इति ॥ व्यादितास्याः व्यात्ताननाः । भयानकाः भयंकराः ॥ १९ ॥ तैरिति ॥ दीप्तभोगैः दीप्तफणैः । भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च

इत्युक्तः संपरिक्रम्य रथं समभिवाद्य च ॥ आरुरोह तदा रामो लोकान् लक्ष्म्या विराजयन् ॥ १४ ॥ तद्बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः ॥ १५ ॥ स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः ॥ अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥ १६ ॥ अस्त्रं तु परमं घोरं राक्षसं राक्षसाधिपः ॥ ससर्ज परमक्रुद्धः पुनरेव निशाचरः ॥ १७ ॥ ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ॥ अभ्यवर्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ॥ १८ ॥ ते दीप्तवदना दीप्तं वमन्तो ज्वलनं मुखैः ॥ राममेवाभ्यवर्तन्त व्यादितास्या भयानकाः ॥ १९ ॥ तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः ॥ दिशश्च संतताः सर्वाः प्रदिशश्च समावृताः ॥ २० ॥ तान् दृष्ट्वा पन्नगान् रामः समापतत आहवे ॥ अस्त्रं गारुत्मकं घोरं प्रादुश्चक्रे भयावहम् ॥ २१ ॥ ते राघवशरा मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिखिप्रभाः ॥ सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ॥ २२ ॥ ते तान् सर्वान् शरान् जघ्नुः सर्परूपान् महाजवान् ॥ सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ॥ २३ ॥ अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥ २४ ॥ ततः शरसहस्रेण राममक्लिष्टकारिणम् ॥ अर्दयित्वा शरौघेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥ २५ ॥ चिच्छेद केतुमुद्दिश्य शरेणैकेन रावणः ॥ पातयित्वा रथोपस्थे रथात्केतुं च काञ्चनम् ॥ ऐन्द्रानपि जघानाश्वान् शरजालेन रावणः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा सुमहत्कर्म रावणस्य दुरात्मनः ॥ विषेदुर्देवगन्धर्वा दानवाश्चारणैः सह ॥ २७ ॥ राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सबिभीषणाः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

फणकाययोरित्यमरः । प्रदिशः दिक्कोणाः ॥ २० ॥ तान् दृष्ट्वेति ॥ प्रादुश्चक्रे प्रयुयुजे ॥ २१ ॥ त इति ॥ शिखिप्रभाः अग्निप्रभाः । सुपर्णाः गरुडाः ॥२२॥२३॥२४॥२५॥ चिच्छेदेत्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ केतुं ध्वजपटम् । उद्दिश्य लक्षीकृत्य । रथात् रथावयवदण्डात् ॥२६ । २७ ॥२८॥

रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावणराहुणा ॥ प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ॥ २९ ॥ समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामशुभावहः ॥ ३० ॥ सधूमपरिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ॥ उत्पपात तदा क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ॥ ३१ ॥ शस्त्रवर्णः सुपरुषो मन्दरश्मिर्दिवाकरः ॥ अदृश्यत कबन्धाङ्कः संसक्तो धूमकेतुना ॥ ३२ ॥ कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्तमिन्द्राग्निदैवतम् ॥ आक्रम्याङ्गारकस्तस्थौ विशाखामपि चाम्बरे ॥ ३३ ॥ दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥ अदृश्यत दशग्रीवो मैनाक इव पर्वतः ॥३४॥ निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा ॥ नाशक्नोदभिसंधातुं सायकान् रणमूर्धनि ॥ ३५ ॥ स कृत्वा भ्रुकुटिं क्रुद्धः किंचित्संरक्तलोचनः ॥ जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ ॥ ॥

तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ॥ सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत च मेदिनी ॥ १ ॥ सिंहशार्दूलवान् शैलः संचचाल चलद्रुमः ॥ बभूव चातिक्षुभितः समुद्रः सरितां पतिः ॥ २ ॥ ॥

रामस्य तादृशदशादर्शनेन संजातानि दिव्यानि भौमानि च वैकृतान्याह–रामचन्द्रमसमित्यादिना ॥ प्रजापत्यं नक्षत्रं प्रजापतिदेवताकनक्षत्रभूतां रोहिणीम् । बुधे रोहिणीं प्राप्ते जगत्पीडा भवतीति भावः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ शस्त्रवर्ण इति ॥ शस्त्रवर्णः असिश्यामः ॥ ३२ ॥ कोसलानामिति ॥ कोसलानाम् इक्ष्वाकूणाम् । विशाखायास्तन्नक्षत्रत्वमेतत्काण्डचतुर्थसर्गे दर्शितम् ॥३३॥३४॥ निरस्यमान इति ॥ अभिसंधातुं धनुष्यारोपयितुम् ॥ ३५ ॥ अथैतद्दर्शनेन रामकोपं दर्शयति–स कृत्वेति ॥ ३६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ ॥ ॥

अथ रावणस्य शूलोद्धरणम् चतुःशततमे–तस्येत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ ॥ ॥

खगाश्चेति ॥ औत्पातिकानि उत्पातसूचकानि । नर्दन्तः गर्जन्तः॥३॥४॥विमानस्था इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ लोकसंवर्तस्य प्रलयस्येव संस्थितं संस्थानं यस्य तत्तथोक्तम् ॥५॥६॥ ऊचुरिति ॥ विग्रहमागताः विग्रहं युद्धम् उद्दिश्य आगताः । युद्धं द्रष्टुमागता इत्यर्थः । यद्वा विग्रहमागताः रामरावणपक्षपातात् परस्परं कलहायमाना इत्यर्थः । भक्त्या प्रेक्षमाणाः सन्तः प्रहृष्टवद्वाक्यमूचुरिति संबन्धः ॥ ७ ॥ तद्वाक्यं विविच्य दर्शयति–दशग्रीवमिति ॥ यद्यप्यसुराणामपि रावणो बाधकः, तथापि देवानामतिशयो मा भूदित्यसूयया रावणं वर्धयन्तीति बोध्यम् ॥८॥ एतस्मिन्नन्तर इत्यादिश्लो-

खगाश्च खरनिर्घोषा गगने परुषा घनाः ॥ औत्पातिकानि नर्दन्तः समन्तात्परिचक्रमुः ॥ ३ ॥ रामं दृष्ट्वा सुसंक्रुद्धमुत्पातांश्च
सुदारुणान् ॥ वित्रेसुः सर्वभूतानि रावणस्याभवद्भयम् ॥ ४ ॥ विमानस्थास्तदा देवा गन्धर्वाश्च महोरगाः॥
ऋषिदानवदैत्याश्च गरुत्मन्तश्च खेचराः ॥ ५ ॥ ददृशुस्ते महायुद्धं लोकसंवर्तसंस्थितम् ॥ नानाप्रहरणैर्भीमैः शूरयोः
संप्रयुद्ध्यतोः ॥ ६ ॥ ऊचुः सुरासुराः सर्वे तदा विग्रहमागताः ॥ प्रेक्षमाणा महद्युद्धं वाक्यं भक्त्या प्रहृष्टवत् ॥ ७ ॥ दशग्रीवं
जयेत्याहुरसुराः समवस्थिताः ॥ देवा राममथोचुस्ते त्वं जयेति पुनः पुनः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रोधाद्राघवस्य
स रावणः ॥ प्रहर्तुकामो दुष्टात्मा स्पृशन् प्रहरणं महत् ॥ ९ ॥ वज्रसारं महानादं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ शैलशृङ्गनिभैः कूटैश्चितं
दृष्टिभयावहम् ॥ १० ॥ सधूममिव तिक्ष्णाग्रं युगान्ताग्निचयोपमम् ॥ अतिरौद्रमनासाद्यं कालेनापि दूरासदम्
॥ ११ ॥ त्रासनं सर्वभूतानां दारणं भेदनं तदा ॥ प्रदीप्तमिव रोषेण शूलं जग्राह रावणः ॥ १२ ॥ तच्छूलं परमक्रुद्धो
मध्ये जग्राह वीर्यवान् ॥ अनेकैः समरे शूरै राक्षसैः परिवारितः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

कचतुष्टयमेकान्वयम् ॥ राघवस्य क्रोधात् राघवविषयक्रोधात्, प्रहरणम् आयुधम्, स्पृशन् परामृशन् । किं वेदानीं ग्रहीतुमुचितमिति क्षणं चिन्तयन्नित्यर्थः । कूटैः शिखराकारैरयःशङ्कुभिः, चितं युक्तमित्यर्थः। अतिरौद्रं रौद्रं शूलमतिवर्तमानम् अनासाद्यं शत्रुभिरप्रधृष्यम् । कालेन यमेन, दारणं क्रकचवत् कृन्तनम् । भेदनम् द्विधाकरणम् । दुष्टात्मा रावणः राघवस्य क्रोधात् प्रहर्तुकामः महत्प्रहरणं स्पृशन् सन् वज्रसारत्वादिविशिष्टं शूलं रोषेण प्रदीप्त इव स्थितो रावणो जग्राहेति संबन्धः ॥ ९॥ १०॥ ११॥ १२॥ १३॥ ॥ ॥ ॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ स इति ॥ विनद्येति । पूर्वं शूलोद्यमनजनितोत्साहकृतो नाद उक्तः । इह प्रक्षेपजनितोत्साहकृतो नाद इति विवेकः ॥ १७ ॥

समुद्यम्य महाकायो ननाद युधि भैरवम् ॥ संरक्तनयनो रोषात्स्वसैन्यमभिहर्षयन् ॥ १४ ॥ पृथिवीं चान्तरिक्षं
च दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥ प्राकम्पयत्तदा शब्दो राक्षसेन्द्रस्य दारुणः ॥ १५ ॥ अतिनादस्य
नादेन तेन तस्य दुरात्मनः ॥ सर्वभूतानि वित्रेसुः सागरश्च प्रचुक्षुभे ॥१६॥ स गृहीत्वा महावीर्यः शूलं तद्रावणो
महत् ॥ विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत् ॥ १७ ॥ शूलोयं वज्रसारस्ते राम रोषान्मयोद्यतः ॥ तव
भ्रातृसहायस्य सद्यः प्राणान् हरिष्यति ॥ १८ ॥ रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे ॥ त्वां निहत्य रणश्लाघिन्
करोमि तरसा समम् ॥ तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा स चिक्षेप
तच्छूलं राक्षसाधिपः ॥ २० ॥ तद्रावणकरान्मुक्तं विद्युज्ज्वालासमाकुलम् ॥ अष्टघण्टं महानादं वियद्गतमशोभत
॥ २१ ॥ तच्छूलं राघवो दृष्ट्वा ज्वलन्तं घोरदर्शनम् ॥ ससर्ज विशिखान् रामश्चापमायम्य वीर्यवान्
॥ २२ ॥ आपतन्तं शरौघेण वारयामास राघवः॥उत्पतन्तं युगान्ताग्निं जलौघैरिव वासवः ॥ २३ ॥
निर्ददाह स तान् बाणान् रामकार्मुकनिःसृतान् ॥ रावणस्य महाशूलः पतङ्गानिव पावकः ॥ २४ ॥
तान् दृष्ट्वा भस्मसात्भूतान् शूलसंस्पर्शचूर्णितान् ॥ सायकानन्तरिक्षस्थान् राघवः क्रोधमाहरत् ॥२५॥
स तां मातलिना नीतां शक्तिं वासवनिर्मिताम् ॥ जग्राह परमक्रुद्धो राघवो रघुनन्दनः ॥२६॥ सा तोलिता बलवता
शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ॥ नभः प्रज्वालयामास युगान्तोल्केव सप्रभा ॥ २७ ॥ सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य
तस्मिन् शूले पपात ह ॥ भिन्नः शक्त्या महान् शूलो निपपात हतद्युतिः ॥ २८ ॥ ॥ ॥

॥ १८ ॥ रक्षसामित्यादिसार्धश्लोकमेकान्वयम् ॥ त्वां विनिहत्य रक्षोभिः समं करिष्यामीत्यर्थः । "तुल्यार्थैः०" इत्यादिना षष्ठी ॥१९॥२०॥ तदिति॥ विद्युज्ज्वाला विद्युत्सदृशज्वाला ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ ॥

निर्बिभेदेति ॥ बाणैः शब्दायमानैः । “अण, बाणशब्दे” इत्यस्मात् पचाद्यच् (?) । बाणशब्दः शरभेदसंज्ञेत्यप्याहुः॥२९॥ निर्बिभेदोरसि तत इति ॥ पत्त्रिभिस्त्रिभिरिति प्रयोगभेदान्न पुनरुक्तिः । पत्त्रिभिः पत्त्रवद्भिरित्येके ॥ ३० ॥ स इति ॥ समूहस्थः ॥ ३१ ॥ स रामबाणैरिति ॥ समाजे युद्धे॥३२॥

निर्बिभेद ततो बाणैर्हयानस्य महाजवान् ॥ रामस्तीक्ष्णैर्महावेगैर्वज्रकल्पैः शितैः शरैः ॥ २९ ॥ निर्बिभेदोरसि ततो रावणं निशितैः शरैः ॥ राघवः परमायत्तो ललाटे पत्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३० ॥ स शरैर्भिन्नसर्वाङ्गो गात्रप्रस्रुतशोणितः ॥ राक्षसेन्द्रः समूहस्थः फुल्लाशोक इवाबभौ ॥३१॥ स रामबाणैरभिविद्धगात्रो निशाचरेन्द्रः क्षतजार्द्रगात्रः॥ जगाम खेदं च समाजमध्ये क्रोधं च चक्रे सुभृशं तदानीम्॥३२॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥१०४॥ स तेन तु तथा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो रणे ॥ रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥ १ ॥ स दीप्तनयनो रोषाच्चापमायम्य वीर्यवान् ॥ अभ्यर्दयत्सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥ २ ॥ बाणधारासहस्रैस्तैः सतोयद इवाम्बरात् ॥ राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयत् ॥ ३ ॥ पूरितः शरजालेन धनुर्मुक्तेन संयुगे ॥ महागिरिरिवाकम्प्यः काकुत्स्थो न प्रकम्पते ॥ ४ ॥ स शरैः शरजालानि वारयन् समरे स्थितः ॥ गभस्तीनिव सूर्यस्य प्रतिजग्राह वीर्यवान् ॥ ५ ॥ ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः ॥ निजघानोरसि क्रुद्धो राघवस्य महात्मनः ॥ ६ ॥ स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः ॥ दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान् किंशुकद्रुमः ॥७॥ शराभिघातसंरब्धः सोपि जग्राह सायकान् ॥ काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यतेजसः ॥ ८ ॥ ॥ ॥

इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥ ॥

अथ श्रान्तस्य रावणस्य सूतेन रथापवाहनं पञ्चशततमे–स तु तेनेत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥ बाणधारेति ॥ बाणधारासहस्रैः हेतुभिः, तोयद इव रावणः, तैः धाराभूतैः बाणैः, तटाकमिव रामं पूरयत् अपूरयत् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ अन्योन्यं नोपालक्षयतामित्यन्वयः ॥ ९ ॥ १० ॥ ममेति ॥ मम अज्ञानात् ममादर्शनात्, त्वदविवेकादिति वा । ते त्वया ॥ ११ ॥ १२ ॥ स्त्रीष्विति ॥ कापुरुषं कापुरुषसंबन्धि ॥ १३ ॥१४॥ शूरेणेत्यादि ॥ सोपहासोक्तिः ॥१५॥ उत्सेकेनेति॥ उत्सेकेन गर्वेण ॥१६॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

ततोन्योन्यं सुसंरब्धावुभौ तौ रामरावणौ ॥ शरान्धकारे समरे नोपालक्षयतां तदा ॥ ९ ॥ ततः क्रोधसमाविष्टो रामो
दशरथात्मजः ॥ उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥ १० ॥ मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद्राक्षसाधम ॥
हृता ते विवशा यस्मात्तस्मात्त्वं नासि वीर्यवान् ॥ ११ ॥ मया विरहितां दीनां वर्तमानां महावने ॥ वैदेहीं प्रसभं
हृत्वा शूरोहमिति मन्यसे ॥ १२ ॥ स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शक ॥ कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोहमिति मन्यसे
॥ १३ ॥ भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित ॥ दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोहमिति मन्यसे ॥ १४ ॥ शूरेण धनदभ्रात्रा
बलैः समुदितेन च ॥ श्लाघनीयं यशस्यं च कृतं कर्म महत्त्वया ॥१५॥ उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य
च ॥ कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत्फलम् ॥१६॥ शूरोहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते ॥ नैव लज्जास्ति
ते सीतां चोरवद्व्यपकर्षतः ॥ १७ ॥ यदि मत्सन्निधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात् ॥ भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा
मत्सायकैर्हतः ॥ १८ ॥ दिष्ट्यासि मम दुष्टात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः ॥ अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम्
॥ १९ ॥ अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ क्रव्यादा व्यपकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु ॥ २० ॥ निपत्योरसि
गृध्रास्ते क्षितौ क्षिप्तस्य रावण ॥ पिबन्तु रुधिरं तर्षाच्छरशल्यान्तरोत्थितम् ॥ २१ ॥ अद्य मद्बाणभिन्नस्य गतासोः
पतितस्य ते ॥ कर्षन्त्वन्त्राणि पतगा गरुत्मन्त इवोरगान् ॥ २२ ॥ ॥

अद्य त इति ॥ शिरो ज्वलितकुण्डलमित्यनेन तदानीमन्तकाले रावण एकशिरस्कः स्थित इति गम्यते ॥ २० ॥ निपत्येति ॥ तर्षः पिपासा । शरशल्यान्तरोत्थितं शरशल्यक्षतविवरादुत्थितमित्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ ॥

॥२३॥२४॥२५॥२६॥ हरीणां चेति ॥ राघवात् राघवस्य। विभक्तिव्यत्यय आर्षः । विघूर्णहृदयः भ्रान्तहृदयः ॥ २७ ॥ यदा चेत्यादिश्लोकत्र-
यमेकान्वयम् ॥ यदा शस्त्रं नारेभे शस्त्रं न प्रयुक्तवान् । शरासनं च न व्यकर्षत् । यदा च विक्लवेन विवशेन, अन्तरात्मना मनसा हेतुना, अस्य राम-
स्य वीर्यं स्ववीर्यं च न प्रत्यकरोत् न प्रतिजघान । तेन रावणेन क्षिप्ताः शरा अपि विविधानि शस्त्राणि च न रणार्थाय वर्तन्ते। छेदनभेदनादिरणप्रयोजनं
कर्तुं यदा नाशक्नुवन् । तदा मृत्युकाले अभिवर्ततः अभिवर्तमानस्य , अस्य रावणस्य, रथनेता सूतः असंभ्रान्तः सन् तदवस्थं पूर्वोक्तावस्थम् रावणं

इत्येवं संवदन् वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः ॥ राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥२३॥ बभूव द्विगुणं वीर्यं
बलं हर्षश्च संयुगे॥ रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः॥२४॥ प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः॥
प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥२५॥ शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः॥ भूय एवार्दय-
द्रामो रावणं राक्षसान्तकृत्॥२६॥हरीणां चाश्मनिकरैःशरवर्षैश्च राघवात्॥हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृद-
योऽभवत्॥२७॥यदा च शस्त्रं नारेभे न व्यकर्षच्छरासनम्॥नास्य प्रत्यकरोद्वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना॥२८॥
क्षिप्ताश्चापि शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च॥ न रणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालेऽभिवर्ततः॥२९॥सूतस्तु रथनेता-
स्य तदवस्थं समीक्ष्य तम्॥शनैर्युद्धादसंभ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥३०॥इतिश्री०पञ्चोत्तरशततमः सर्गः॥१०५॥
स तु मोहात्सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः ॥ क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥ १ ॥ ॥

समीक्ष्य तस्य रथं युद्धात् युद्धस्थलात्, शनैः अपवाहयत् अपावाहयत् । अन्यत्रानयदिति योजना ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ यदेत्यादि ॥ शस्त्रं न प्रायुङ्क्त
न रणार्थाय वर्तन्ते । छेदनभेदनादिरणप्रयोजनं कर्तुं यदा नाशक्नुवन्, तदा सूतस्तस्य रथमवाहयदिति संबन्धः ॥२८॥२९॥३०॥ इति श्रीगोविन्दराज-
विरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥ ॥
अथ रावणरथप्रत्यानयनम् षट्शततमे—स तु मोहादित्यादि ॥ मोहात् अविवेकात् ॥ १ ॥ ॥ ॥

हीनवीर्यमिवेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ यत्र यत्र इवशब्दो नास्ति तत्र तत्रानुषञ्जनीयः । हीनवीर्यमिव हीनबलमिव । अशक्तमिव निरुत्साहमिव । असत्त्वमिव अधीरमिव । तेजसा परिभवासहनेन ॥२॥३॥ किमर्थमिति ॥ मच्छन्दं मदभिप्रायम् । वशाभिप्राययोश्छन्द इत्यमरः ॥४॥ त्वयेति ॥ प्रत्ययः रावणस्य युधि पलायनं नास्तीति सर्वेषां विश्वासः । विनाशित इत्यस्य यश आदिषु लिङ्गविपरिणामः ॥५॥शत्रोरिति ॥ शत्रोः पश्यतः शत्रौ पश्यति ॥६॥ य इति॥ यः नोद्वहसि अभिमुखं न प्रापयसि,किं त्वपवाहयसि। स त्वम् उपस्कृतः परेणोत्कोचादिना वशीकृत इत्ययं प्रतितर्कः सत्यः प्रतिभाति

हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम् ॥ भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा ॥ २ ॥ विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम् ॥ मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्ध्या विचेष्टसे ॥ ३ ॥ किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च ॥ त्वया शत्रोः समक्षं मे रथोयमपवाहितः ॥ ४ ॥ त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालसमार्जितम् ॥ यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः ॥ ५ ॥ शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः ॥ पश्यतो युद्धलुब्धोहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥६॥ यस्त्वं रथमिमं मोहात् न चोद्वहसि दुर्मते ॥ सत्योयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः ॥ ७ ॥ न हि तद्विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः॥रिपूणां सदृशं चैतन्न त्वयैतत्स्वनुष्ठितम्॥८॥निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नोपैतिमे रिपुः॥ यदि वाध्युषितो वासि स्मर्यन्ते यदि वा गुणाः ॥९॥ एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना ॥ अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥ १० ॥ न भीतोस्मि न मूढोस्मि नोपजप्तोस्मि शत्रुभिः॥ न प्रमत्तो न निस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया ॥ ११ ॥ ॥

॥७॥ न हीति ॥ न त्वयैतत् स्वनुष्ठितमिति । त्वयानुष्ठितमेतत् न तु स्वनुष्ठितं तत् ॥८॥निवर्तयेति ॥ अध्युषितः सहवासी । सुहृदिति यावत् । उपधयोपसर्पितो वा । गुणाः सत्काराः ॥ ❀रामानुजीयम् ❀ निवर्तयेति ॥ यदि वाध्युषितो वासि। चिरकालं मत्समीप इति शेषः । स्मर्यन्ते यदि वा गुणाः । यन्निष्ठा उपकर्तृत्वादिगुणाः स्मर्यन्ते यदि ॥९॥ एवमिति ॥१०॥ न भीतोस्मीति ॥ नोपजप्तः उपजापं भेदं न गमितः । भेदोपजापावित्यमरः ॥ ११ ॥

॥१२॥ नेति ॥ अस्मिन्नर्थे रथापवाहनरूपेर्थे, कश्चित् कुत्रापि कुले जातः, लघुः अल्पबुद्धिः, अनार्यः दुष्टहृदय इव, मां दोषतः गन्तुं ज्ञातुं नार्हसि। गत्यर्था ज्ञानार्थाः ॥१३॥ श्रूयतामिति ॥ यन्निमित्तं यत्कारणात्। "निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम्"इति प्रथमा। नदीति। आभोगे उन्नतप्रदेशे। आभोगान्नदीवेग इव रथः संयुगाद्विनिवर्तित इत्यर्थः। आभोगे संयुग इत्यत्र विभक्तिव्यत्ययः ॥ १४ ॥ श्रममिति ॥ सौमुख्यं सुमुखत्वम् तन्मूलं प्रहर्षम् ॥ १५ ॥ रथेति ॥ अत्र आसन्निति शेषः ॥ १६ ॥ निमित्तानि चेति ॥ अभिपन्नेषु आविर्भूतेषु सत्सु। अप्रदक्षिणं प्रतिकूलम् ॥ १७ ॥ निमित्तानि

मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता ॥ स्नेहप्रस्कन्नमनसा प्रियमित्यप्रियं कृतम् ॥ १२ ॥ नास्मिन्नर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम् ॥ कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥१३॥ श्रूयतां त्वभिधास्यामि यन्निमित्तं मया रथः ॥ नदीवेग इवाभोगे संयुगे विनिवर्तितः ॥१४॥ श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा ॥ न हि ते वीर सौमुख्यं प्रहर्षं वोपधारये ॥ १५ ॥ रथोद्वहनखिन्नाश्च त इमे रथवाजिनः ॥ दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥ १६ ॥ निमित्तानि च भूयिष्ठं यानि प्रादुर्भवन्ति नः ॥ तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥ देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानीङ्गितानि च ॥ दैन्यं खेदश्च हर्षश्च रथिनश्च बलाबलम् ॥ १८ ॥ स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमाणि च ॥ युद्धकालश्च विज्ञेयः परस्यान्तरदर्शनम् ॥ १९ ॥ उपयानापयाने च स्थानं प्रत्यपसर्पणम् ॥ सर्वमेतद्रथस्थेन ज्ञेयं रथकुटुम्बिना ॥ २० ॥

किमर्थं त्वया विचारणीयानीत्यत आह–देशेत्यादिना॥श्लोकत्रयमेकान्वयम्। लक्षणानि शुभाशुभनिमित्तानि। इङ्गितानि मुखप्रसादवैगुण्यादीनि। दैन्यम् अनुत्साहः। स्थलानि उन्नतप्रदेशाः। निम्नानि अवनतप्रदेशाः। समानि सर्वत्र समप्रदेशाः। विषमाणि निम्नोन्नतप्रदेशाः। युद्धकाल इति पूर्वोक्तानुवादः। अन्तरदर्शनं, दृश्यत इति दर्शनं, द्रष्टव्यम्। द्रष्टव्यं रन्ध्रमित्यर्थः। अन्तरदर्शनं रन्ध्रदर्शनम् कर्तव्यमित्यध्याहारो वा। उपयानं समीपगमनम्। अपयानं पार्श्वतो गमनम्। स्थानं स्थैर्येणावस्थानम्। प्रत्यपसर्पणम् अभिमुखस्थित्या पृष्ठतोपसरणम्। रथकुटुम्बिना सारथिना ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

तवेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ तथा वाजिनां विश्रमहेतोश्चेत्यन्वयः । रौद्रं दुःसहम् । वर्जयता अपनयता । हेतौ शतृप्रत्ययः । क्षमं युक्तम् । स्वेच्छया अपनयननिमित्तं विना ॥२१॥२२॥ भर्तृस्नेहेत्यर्धम् ॥ मया यत्कृतं तदिदं भर्तृस्नेहपरीतेनैव कृतमित्यर्थः ॥२३॥ आज्ञापयेति ॥ यथातत्त्वं यत् कार्यस्वरूपं वक्ष्यसि तत्तथा, गतानृण्येन आनृण्यं गतेन, आनृण्यं कर्तव्यमिति कृतसंकल्पेन, चेतसा मनसा करिष्यामि ॥२४॥२५॥ रथमिति ॥ निवर्तिष्यति

तव विश्रमहेतोश्च तथैषां रथवाजिनाम् ॥ रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥ २१ ॥ न मया स्वेच्छया वीर रथोयमपवाहितः ॥ २२ ॥ भर्तृस्नेहपरीतेन मयेदं यत्कृतं विभो ॥ २३ ॥ आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ तत्करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा ॥ २४ ॥ संतुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः ॥ प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥ रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं कुरु ॥ नाहत्वा समरे शत्रून् निवर्तिष्यति रावणः ॥ २६॥ एवमुक्त्वा तत स्तुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ददौ तस्मै शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम् ॥ २७ ॥ श्रुत्वा रावणवाक्यं तु सारथिः संन्यवर्तत॥२८॥ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः प्रचोदयामास हयान् स सारथिः॥स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः क्षणेन रामस्य रणाग्रतोभवत् ॥२९॥ इति श्री०षडुत्तरशततमः सर्गः॥१०६॥

॥ ॥आदित्यहृदयप्रारम्भः॥ ॥ ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ॥ रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ १ ॥ दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ॥ उपागम्याब्रवीद्राममगस्त्यो भगवानृषिः ॥ २ ॥

निवर्तिष्यते ॥२६॥२७॥२८॥ तत इति ॥ महांश्चासौ रथश्च महारथ इति विग्रहः ॥२९॥ इति श्रीगो०श्रीरा०रत्न०यु०षडुत्तरशततमः सर्गः ॥१०६॥

॥ अथादित्यहृदयोपदेशः ॥ ततो युद्धपरिश्रान्तमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ रणं द्रष्टुं दैवतैः समागम्य आगतः दैवतैः सहागतः अगस्त्यः, युद्धपरिश्रान्तम् उपस्थितं रावणं दृष्ट्वा कथमेनं परत्वप्रकटनं विना जेष्यामीति चिन्तया स्थितं चिन्तयन्तं च रामं दृष्ट्वा उपागम्याब्रवीत् ॥ १ ॥२ ॥ ॥

राम रामेत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ रामस्य चिन्ताविष्टत्वात् स्वादरातिशयात्कार्यत्वरया च द्विरुक्तिः। महाबाहो इत्यनेन पूर्वकृतपराक्रमप्रकटनम्। सनातनं वेदवन्नित्यम्, गुह्यं रहस्यम् शृणु। तदेव रहस्यमाह–आदित्यहृदयमित्यादि ॥ आदित्यस्य हृदयम् आदित्यमनःप्रसादकमित्यर्थः। पुण्यं पठतां पुण्यवर्धकम्। सर्वशत्रुविनाशेपि तुल्यायव्ययन्यायेन कस्यचिन्न जयः स्यात्, न तथा भवतीदमित्याह–जयावहमिति। अक्षय्यम् अक्षय्यफलकम्। परमं शिवम् परमपावनम्। सर्वमङ्गलमङ्गल्यम् सर्वमङ्गलानामपि मङ्गलम्। मङ्गलानां च मङ्गलमितिवत्। स्वार्थे यत्प्रत्ययः। सर्वश्रेयःसाधनमित्यर्थः। सर्वपापप्रणाशनं सर्वपूर्वाघविनाशनम्। चिन्ताशोकप्रशमनम् आधिव्याधिनिवर्तकम्। आयुर्वर्धनम् विहितायुषोप्यधिकायुःप्रदम्। उत्तमं जप्येषु श्रेष्ठम्। आदित्यहृदयाख्यम् स्तोत्रं जपेत्। आदित्यहृदयस्तोत्रजपे पुण्यादिवृद्धिर्भवति अतोवश्यं तत्कामस्तज्जपेदिति भावः॥ ❀ त-

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम् ॥ येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसि ॥ ३ ॥ आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ जयावहं जपेन्नित्यमक्षय्यं परमं शिवम् ॥ ४ ॥ सर्वमङ्गलमङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ५ ॥ रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् ॥ पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥ ६ ॥

निश्लोकी ❀ आदित्यशब्देन तन्मण्डलमुच्यते। "य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते" इत्यत्रादित्यशब्दवत्। तस्य हृदयमन्तः तन्मण्डलमध्यवर्ती पुरुषः। यद्वा आदित्यः सूर्यः तस्य हृदयं हृद्गतम्। "अय,पय,गतौ" इति धातुः। "य आदित्ये तिष्ठन् य आदित्यमन्तरो यमयति" इत्यादि श्रुतेः। तत्प्रतिपादनं स्तोत्रमित्यर्थः ॥३॥४॥५॥ स्तोतव्यदेवतास्वरूपमाह–रश्मिमन्तमिति ॥ रश्मिमन्तं स्वर्णवर्णतया प्रशस्तकिरणम्। समुद्यन्तम् अर्धोदयादिकं विना सम्यगुदयं प्राप्नुवन्तम्। इदं च ध्येयाभिप्रायेणोक्तम्। न तु तदानीं सूर्योदयकालः, अगस्त्यागमनकालस्यापराह्णत्वात्। अत एव लक्ष्मणवचनम्–अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः। यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकर इति ॥ विवस्ते आच्छादयति तेजोन्तरमिति विवस्वान् तम्। स्वभासा सर्वतेजसामाच्छादकमित्यर्थः। भास्करम् भाः करोतीति भास्करः। "दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारा०" इत्यादिना टः सकारश्च। भुवनेश्वरं वर्षातपाभ्यां समस्तभुवननियन्तारम्। पूजयस्व आदित्यहृदयेन तोषयस्वेत्यर्थः॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ रश्मिमन्तं, रश्मिशब्दो नित्यसूरिपरः

तद्वन्तं तन्मध्ये भासमानम् । "रश्मिग्र् रश्मीनां मध्ये तपन्तम्" इति सुवर्णसूक्तोक्तेः । समुद्यन्तं नित्योदितदशावन्तम् । यद्वा यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे इत्याद्युक्तरीत्या नवं नवमुदितमिव स्थितम् ॥६॥ ननु सत्सु देवतान्तरेषु कथमस्यैव पूज्यत्वं तत्राह–सर्वदेवात्मक इति ॥ सर्वदेवात्मकः सर्वदेवानामात्मा । स्वार्थे कः । "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इति श्रुतेः । रश्मिभिर्लोकाननुभावयतीति रश्मिभावनः । रश्मिभिः रक्षत इत्यर्थः । एतदेवाह–एष इति । देवासुरगणान् लोकान् देवासुरगणरूपान् जनानित्यर्थः । पाति रक्षति । "याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति" इति श्रुतेः ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ अत्र देवासुरशब्दौ तत्तत्प्रकृतिपरौ । "दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता" इति गीतोक्तेः । गभस्तिभिः तेजोलेशैः तेजोंशसंभवमित्युक्त-

सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः ॥ एष देवासुरगणान् लोकान् पाति गभस्तिभिः ॥ ७ ॥ एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ॥ महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः ॥ ८ ॥ पितरो वसवः साध्या ह्यश्विनौ मरुतो मनुः ॥ वायुर्वह्निः प्रजाप्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥ ९ ॥ आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ॥ सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः ॥ १० ॥ हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ॥ तिमिरोन्मथनः शंभुस्त्वष्टा मार्तण्ड अंशुमान् ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनो भास्करो रविः ॥ अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥ ॥ १२ ॥ व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः ॥ घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथी प्लवङ्गमः ॥ १३ ॥ आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः ॥ कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥ १४ ॥ नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः ॥ तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोस्तु ते ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥

तेजोलेशैः ॥७॥ सर्वदेवात्मकत्वमाह–एष ब्रह्मेत्यादिना ॥ अयमेव ब्रह्मादिसमस्तदेवताशरीरे वर्तत इत्यर्थः । प्रजापतिरिति जात्येकवचनम् । नव प्रजापपतय उच्यन्ते । कालशब्देन मृत्युरुच्यते । यमस्तु ततोन्यः । मरुतः आवहादिवायवः । वायुर्भूलोकसंचारी । प्राणः शरीरान्तःस्थो वायुः । ऋतुकर्तेति प्रभाकरविशेषणम् । ऋतूनां वसन्तादीनां कर्ता एष प्रभाकरः ब्रह्मा चेत्यादिरीत्यान्वयः ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ स्कन्दः संसारदुःखं स्कन्नं करोतीति स्कन्दः । महेन्द्रो वरुण इति पाठे वरुणो वरुणपदाभिधेयः । वरुणो वारुणो वृक्ष इति सहस्रनामोक्तेः । मनुः सर्वज्ञः । "मनु, अवबोधने" इति धातुः ॥८॥९॥ एवमादित्यस्वरूपमुपदिश्य तद्विषयमादित्यहृदयस्तोत्रमुपदिशति–आदित्यः सवितेत्यादिना लोकसाक्षिण इत्यन्तेन ॥ तत्र आदित्यादिप्रथमान्तपदेषु

त्वंपदमध्याहार्यम्। अदितेरपत्यत्वेनावतीर्ण आदित्यः।“दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः”इति ण्यप्रत्ययः। अदितेः अखण्डिताया भूमेरयं पतिरित्यादित्यः।सूते जगदिति सविता।सुवति प्रेरयति जनान् कर्मणीति सूर्यः।“षू,प्रेरण”इति धातोः “राजसूयसूर्य०”इति निपातनात् क्यप्प्रत्ययो रुडागमश्च॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ सूर्यः स्थावरजङ्गमात्मकजगदन्तर्यामी सूर्यशब्दवाच्यः। “ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ” इति श्रुतेः। खे गच्छतीति खगः। लोकोपकारार्थमाकाशे संचरन्नित्यर्थः। वर्षेण पुष्णाति जगदिति पूषा। श्वन्नुक्षन्नित्यादौ निपातितः। गभस्तयः किरणाः अस्य सन्तीति गभस्तिमान्। सुवर्णसदृशः सुवर्णवर्णः। “ हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्ण ” इति श्रुतेः। भातीति भानुः। “ दाभाभ्यां नुः ” इति नुप्रत्ययः। हिरण्यं रेतो यस्य स हिरण्यरेताः हिरण्मयब्रह्माण्डकर्तेत्यर्थः। अक्षराधिक्यमार्षत्वात्। दिवा करोतीति दिवाकरः, दिवा अह्नि प्राणिनः चेष्टां करोतीति वा दिवाकरः। हरितः श्यामा अश्वा अस्य सन्तीति हरिदश्वः। सहस्रार्चिः सहस्रकिरणः। सप्तनामा सप्तिरश्वो यस्यासौ सप्तसप्तिः। “ एको अश्वो वहति सप्तनामा ” इति श्रुतेः। मरीचयोऽस्य सन्तीति मरीचिमान्। प्रकाशवानित्यर्थः। तिमिराण्युन्मथ्नातीति तिमिरोन्मथनः। शं सुखं भवत्यस्मादिति शंभुः। “ डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानम् ” इति डुः। सर्वाणि रूपाणि त्वक्षति तनूकरोतीति त्वष्टा। सर्वसंहारक इत्यर्थः। मृतेण्डे जातो मार्तण्डः। सर्वसंहारे तत्सृष्टये पुनः प्रादुर्भूत इत्यर्थः। अंशवोऽस्य सन्तीत्यंशुमान्। प्रकाशमान इत्यर्थः। हिरण्यं हिरण्मयाण्डम्। “ तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ” इति स्मृतेः। तस्य गर्भो हिरण्यगर्भः। ब्रह्माण्डादरवर्तीत्यर्थः। यद्वा हिरण्यं हितरमणीयं गर्भमन्तःकरणं यस्यासौ हिरण्यगर्भः। तापत्रयतप्तानां विश्रमस्थानत्वाच्छिशिरः। तपतीति तपनः। भासः करोतीति भास्करः। रूयते स्तूयते सर्वैरिति रविः। “ अच इः ” इतीप्रत्ययः। दिवा अग्निर्गर्भे यस्यासावग्निगर्भः। “ उद्यन्तं वावादित्यमग्निरनुसमारोहति ” इति श्रुतेः। अदितेः पुत्रः अदितेः पुत्रत्वेनावतीर्णः। शाम्यति स्वयमेव सायंकाल इति शङ्खः। “ शमेः खः ”। शिशिरं हिमं नाशयतीति शिशिरनाशनः। व्योम्नो नाथो व्योमनाथः। तमः राहुं भेत्तुं शीलमस्यास्तीति तमोभेदी। ऋग्यजुःसाम्नां पारं गच्छतीति ऋग्यजुःसामपारगः। “ ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते। यजुर्वेद तिष्ठति मध्ये अह्नः। सामवेदेनास्तमये महीयते। वेदैरशून्यास्त्रिभिरेति सूर्यः ” इति श्रुतेः। घना वृष्टिर्यस्मादसौ घनवृष्टिः। “ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः”इति स्मृतेः। अत एवापां मित्रः। पुल्लिङ्गत्वमार्षम्। दक्षिणायने विन्ध्यो वीथी संचारभूमिर्यस्यासौ विन्ध्यवीथिः। प्लवं यथा तथा गच्छतीति प्लवङ्गमः। विन्ध्यवीथीप्लवङ्गम इत्येकपदत्वेन पाठे विन्ध्यवीथी गगनमार्गः। आतपोऽस्यास्तीत्यातपी। मण्डलं वृत्ताकारो बिम्बोऽस्यास्तीति मण्डली। मृत्युः विरोधिनिवर्तकः। उदयसमये पिङ्गलवर्णत्वात् पिङ्गलः। सर्वानपि मध्याह्ने तापयतीति

सर्वतापनः। कविः पण्डितः। व्याकरणादिसर्वशास्त्रप्रवर्तक इत्यर्थः। विश्वः विश्वनिर्वाहकः। महान्ति तेजांसि यस्य स महातेजाः। रक्तः सर्वेष्वनुरक्तः। सर्वेषां भवः संसारः उद्भवत्यस्मादिति सर्वभवोद्भवः। नक्षत्राणां ग्रहाणां ताराणां चाधिपः। विश्वं भावयति स्थापयतीति विश्वभावनः। तेजसामग्न्यादीनां तेजसामपि तेजस्वी प्रशस्ततेजाः। द्वादश आत्मानो मूर्तयो यस्य स द्वादशात्मा। ते च दर्शिताः स्मृतौ—"इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोथ वरुणोर्यमा। अर्चिर्विवस्वान् त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च इति॥ एवंभूतस्त्वमपि अतस्तुभ्यं नम इति योजना॥ १०॥ ११॥ १२॥ १३॥ १४॥ १५॥ नमः पूर्वायेत्यादिश्लोकषट्कमेकान्वयम्॥ पूर्वाय गिरये पूर्वभागस्थगिर्युपलक्षिताय। पश्चिमे गिरये पश्चिमभागस्थपर्वतोपलक्षिताय। जयाय उपासकानां

नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमे गिरये नमः॥ ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः॥ १६॥ जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः॥ नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः॥ १७॥ नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः॥ नमः पद्मप्रबोधाय मार्ताण्डाय नमो नमः॥ १८॥ ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूर्यायादित्यवर्चसे॥ भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः॥१९॥ तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने॥ कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः॥ २०॥ तप्तचामीकराभाय वह्नये विश्वकर्मणे॥ नमस्तमोभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे॥ २१॥ ॥ ॥ ॥ ॥

जयकराय। जयतीति जयः जयी तस्मा इति वा। जयभद्राय जयभद्रयोः प्रदात्रे। हर्यश्वाय श्यामाश्वाय। अत्र स्तुतित्वान्न पुनरुक्तिश्चिन्त्या। आदरातिशयेन नमःशब्दस्य द्विरुक्तिः। उग्राय अनुपासकानामुग्राय। विविधमीरयति प्रेरयति प्राणिनश्चेष्टयतीति वीरः तस्मै। सारं शीघ्रं गच्छतीति सारङ्गः तस्मै। एकेन निमिषार्धेन द्विसहस्रयोजनं गच्छतीति पुराणप्रसिद्धिः। ब्रह्मेशानाच्युतेशाय ब्रह्मेशानाच्युतानां सृष्टिसंहारस्थितिकर्तॄणामीशाय। परब्रह्मरूपत्वेन स्तूयते "असावादित्यो ब्रह्म" इति श्रुतिः। अथवा ब्रह्मेशानयोः ब्रह्मरुद्रयोः अप्रच्युतेश अच्युतनियन्ता। सर्वापत्स्वपि पालक इत्यर्थः। वेदापहारगुरुपातकदैत्यपीडाद्यापद्विमोचनमहिष्ठफलप्रदातेत्यर्थः। ब्रह्मेशायाच्युतेशायेत्यपि पाठः तस्मै। आदित्यरूपं वर्चो दी-

प्तिर्यस्य तस्मै आदित्यवर्चसे । भा अस्यास्तीति भास्वान् तस्मै । सर्वभक्षाय सर्वसंहर्त्रे । अत एव तस्मिन्समये रौद्राय वपुषे । तमः अन्धकारं हन्तीति तमोघ्नः । आश्रितशत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नः । अमितः अपरिच्छिन्नः आत्मा स्वरूपं यस्यासौ अमितात्मा । कृतघ्नं हन्तीति कृतघ्नघ्नः । देवाय दीप्यमानाय । तप्तचामीकराय हिरण्यवपुषे । वह्नये अग्निरूपेण हव्यवाहनाय । विश्वं जगत् कर्म कर्तव्यं यस्य तस्मै विश्वकर्मणे । सर्वजगत्कर्त्रे इत्यर्थः । लोकसाक्षिणे लोकानां जनानाम् अन्तर्यामितया सुकृतदुष्कृतकर्मसाक्षिणे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ एवमादित्यहृदयमुपदिश्य पुनरपि तत्प्रतिपाद्यदेवतां स्तौति—नाशयतीत्यादिना श्लोकत्रयेण ॥ भवतीति भूतं जगत् नाशयति । महाप्रलये

नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः ॥ पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥ २२ ॥ एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः ॥ एष एवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ॥ २३ ॥ वेदाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ॥ यानि कृत्यानि लोकेषु सर्व एष रविः प्रभुः ॥ २४ ॥ एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ॥ कीर्तयन्पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥ २५ ॥ पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ॥ एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥ २६ ॥ अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं वधिष्यसि ॥ एवमुक्त्वा तदागस्त्यो जगाम च यथागतम् ॥ २७ ॥ ॥ ॥

पुनस्तदेव सृजति । अत्ययकालनिवृत्तौ प्रभुः पालकः । पालकत्वमेव प्रपञ्चयति—पायतीति । पायति शोषयति । "पै, शोषणे" इति धातुः । एष इति । सुप्तेषु भूतेषु प्राणिषु परिनिष्ठितः अन्तर्यामित्वेन स्थितः जागर्ति । सकलयज्ञकर्तृत्वफलप्रदत्वान्याह—एष इति ॥ वेदवेद्यत्वमाह—वेदा इति ॥ सर्वकर्मसमाराध्यत्वमाह—क्रतव इति । क्रतुफलप्रदत्वमाह—क्रतूनामिति । लौकिककर्मफलप्रदत्वमाह—यानीति । तेषामिति शेषः । सर्वः सर्वात्मको रविरेव प्रभुर्नियन्ता ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ इदानीं स्तोत्रस्य फलमाह—एनमिति ॥ कृच्छ्रेषु कष्टेषु । कान्तारेषु दुर्गममार्गेषु । भयेषु भयहेतुषु सत्सु । कश्चिदित्यधिकारिनियमाभावो दर्शितः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥

एतच्छुत्वेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ त्रिराचम्येत्यन्त्याचमनमाद्याचमनस्याप्युपलक्षणम् । धारयामास । जप्त्वेत्यत्र आदित्यहृदयमिति शेषः ॥ २८ ॥ ॥२९॥ रावणमिति ॥ युद्धाय युद्धं कर्तुम् । "तुमर्थाच्च भाववचनात्"इति चतुर्थी । सर्वयत्नेन सर्वप्रकारेण यत्नेन ॥३०॥ अथेति ॥ प्रहृष्यमाणः प्रहृष्यन् । पुलकित इति यावत् । निशिचरपतिरिति । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्"इति सप्तम्या अलुक् । रविः आत्मानं स्तुवन्तं रामं निरीक्ष्य मुदितमनाः स्तोत्रेण संतुष्टमनाः प्रहृष्यमाणः सन्, निशिचरपतेः संक्षयं विदित्वा अनुगृह्य सुरगणमध्यगतः सन्, त्वर रावणवधं प्रति त्वरस्वेति वचोवदत् । अत्र सुरगणमध्यगत इत्यनेन युद्धदर्शनार्थं स्वमण्डलादवतीर्य रामसमीपे गगने स्थित्वा स्तोत्रफलमनुगृहीतवानित्युच्यते । ननूत्तरत्र ब्रह्मरुद्रादयः सर्वे ए-

एतच्छुत्वा महातेजा नष्टशोकोभवत्तदा ॥ धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥ २८ ॥ आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वा तु परं हर्षमवाप्तवान् ॥ त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥ २९ ॥ रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धाय समुपागमत् ॥ सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोभवत् ॥ ३० ॥ अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ॥ निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥ ॥ ॥

कवाक्यतया भवान्नारायणो देव इत्यादिना विष्णोरेव सर्वस्मात् परत्वं महता ग्रन्थेन प्रतिपादितवन्तः, अत्र सूर्यस्यैव सर्वोत्तरत्वमुच्यते, कथमिदं संगच्छते। उच्यते । यथा मधुविद्यायामादित्यस्य परतया प्रतिपादनेपि तदन्तर्यामिण्येव परमात्मनि मधुविद्यायास्तात्पर्यमिति बादरायणो ब्रह्ममीमांसायामुक्तवान् । तथास्य मन्त्रस्यादित्यान्तर्यामिविषयतया सर्वमिदं संगच्छते । नारायणपरत्वं ह्युपक्रमप्रभृत्योपसंहारमविवादमिति पूर्वमेव बहुलं प्रतिपादितम् । ब्रह्मेशानाच्युतेशायेत्येतदपि मूर्तित्रयस्य परमात्मजन्यत्वादुपपद्यते । अयं च सर्गः केषुचित् कोशेषु न दृश्यते । उडारिणा न व्याख्यातश्च । आरम्भात्प्रभृति प्रबन्धप्रतिपादितनारायणपरत्वविरुद्धं चात्र प्रतिभाति सूर्यपरत्वम् । अस्मिंश्च काण्डे त्रिंशदुत्तरशतसर्गा उडारिणा गणिताः एतदन्तर्भावे एकत्रिंशदुत्तरशतसर्गास्तेन गणिता भवेयुः ॥ ३१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामा०रत्नकिरीटाख्याने युद्धका०सप्तोत्तरशततमः सर्गः॥१०७॥

अथ रावणदुर्निमित्तानि–स रथमित्यादिसार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ अत्र द्वितीयसारथिशब्दः अनेकविशेषणव्यवधानात् पूर्वोक्ताविस्मरणाय । गन्धर्वनगराकारं गन्धर्वनगरसदृशम् । तल्लक्षणमुक्तं मिहिरेण–चित्रवर्णं चित्ररूपप्राकारगृहगोपुरम् । अलंकृतमनेकाभैर्वितानध्वजतोरणैः ॥ गन्धर्वनगरं दन्तिनृवाजिक्षययुद्धकृत् । दृश्यते चेन्महद्युद्धमन्योन्यं धरणीभुजामिति ॥ युद्धोपकरणैः धनुःकवचादिभिः । पताकायुक्ताः ध्वजाः तैर्मालन्त इति पाताकाध्वजमाली तम् । "मल,मल्ल,धारणे"इत्यस्माण्णिनिः । ग्रसन्तमिव । स्वविस्तारेणेति भावः । प्रणाशयतीति प्रणाशम् ॥ ❋रामानुजीयम्❋ पताकाध्वजमालिनम् पताकायुक्तश्चासौ ध्वजश्च पताकाध्वजः, पताकाध्वजश्च मालाश्च पताकाध्वजमालं, तदस्यास्तीति पताकाध्वजमाली तम् । रावणस्य रथं क्षिप्रं

स रथं सारथिर्हृष्टः परसैन्यप्रधर्षणम् ॥ गन्धर्वनगराकारं समुच्छ्रितपताकिनम् ॥ १ ॥ युक्तं परमसंपन्नैर्वाजिभिर्हेममालिभिः ॥ युद्धोपकरणैः पूर्णं पताकाध्वजमालिनम् ॥२॥ ग्रसन्तमिव चाकाशं नादयन्तं वसुन्धराम् ॥ प्रणाशं परसैन्यानां स्वसैन्यानां प्रहर्षणम् ॥ रावणस्य रथं क्षिप्रं चोदयामास सारथिः॥३॥तमापतन्तं सहसा स्वनवन्तं महास्वनम्॥ रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह ॥ ४ ॥ कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण वर्चसा ॥ तडित्पताकागहनं दर्शितेन्द्रायुधायुधम् ॥५॥ शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ॥ तं दृष्ट्वा मेघसंकाशमापतन्तं रथं रिपोः॥६॥गिरेर्वज्राभिमृष्टस्य दीर्यतः सदृशस्वनम् ॥ विस्फारयन्वै वेगेन बालचन्द्रनतं धनुः ॥७॥ उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम् ॥८॥

चोदयामास सारथिरित्यत्र द्वितीयौ रथसारथिशब्दावनेकविशेषणव्यवधानात्पूर्वोक्ताविस्मरणार्थौ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ तमिति ॥ स्वनवन्तं शब्दवन्तम् । महास्वनं प्रतिध्वनियुक्तमित्यर्थः ॥ ४ ॥ कृष्णवाजिसमायुक्तमित्यादिसार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ रौद्रेण उग्रेण । तडित्पताकागहनं तडित्तुल्यपताकावनम् । दर्शितेन्द्रायुधायुधं दर्शितानीन्द्रायुधसदृशानि आयुधानि येन तम् । यद्वा दर्शितेन्द्रायुधानि स्वप्रभाविशेषविरचितेन्द्रचापान्यायुधानि यस्मिन् दृश्यन्ते तादृशम् । यद्वा आयुधं धनुः दर्शितेन्द्रधनुस्तुल्यधनुष्कम् । धारासारं धारासमूहमित्यर्थः । वज्राभिमृष्टस्य वज्राहतस्य । अत एव दीर्यतः भिद्यमानस्य । बालचन्द्रनतम् आरोपितमौर्वीकत्वेन बालचन्द्रवन्नतम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

मातले इत्यर्धमेकं वाक्यम् ॥ संरब्धं वेगवन्तम् ॥ ९ ॥ यथापसव्यमिति ॥ यथा आ अपसव्यमिति छेदः । अपसव्यम् अप्रदक्षिणम् यथा स्यात्तथा महता वेगेन पुनः आपतता आगच्छता तेन रावणेन समरे आत्मानं हन्तुं मतिः कृता । अपसव्यतया गमनं विनाशद्योतकमित्यर्थः ॥ १० ॥ तदिति ॥ तत् अपसव्यगमनस्य विनाशहेतुत्वात्, अप्रमादमातिष्ठन् सावधानतामवलम्बमानः । अपसव्यतां परिहरन्नित्यर्थः । रिपोः रथं प्रत्युद्गच्छ ॥११॥ अविक्लवमिति ॥ अविक्लवम् अदीनम् । असंभ्रान्तम् अप्रमादम् । अव्यग्रहृदयेक्षणम् अव्याकुलमनोनयनम् । रश्मिसंचारनियतम् नियतरश्मिसंचारम् ।

मातले पश्य संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः ॥ ९ ॥ यथापसव्यं पतता वेगेन महता पुनः ॥ समरे हन्तुमात्मानं तथा तेन कृता मतिः ॥ १० ॥ तदप्रमादमातिष्ठन् प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः ॥ विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मेघमिवोत्थितम् ॥ ११ ॥ अविक्लवमसंभ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम् ॥ रश्मिसंचारनियतं प्रचोदय रथं द्रुतम् ॥ १२ ॥ कामं न त्वं समाधेयः पुरन्दररथोचितः ॥ युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये ॥ १३ ॥ परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः ॥ प्रचोदयामास रथं सुरसारथिसत्तमः ॥ १४ ॥ अपसव्यं ततः कुर्वन् रावणस्य महारथम् ॥ चक्रोत्क्षिप्तेन रजसा रावणं व्यवधानयत् ॥ १५ ॥ ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः ॥ रथप्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत् ॥ १६ ॥ धर्षणामर्षितो रामो धैर्यं रोषेण लम्भयन् ॥ जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम् ॥ शरांश्च सुमहातेजाः सूर्यरश्मिसमप्रभान् ॥ १७ ॥ ॥ ॥

एतानि क्रियाविशेषणानि ॥१२॥ काममिति ॥ न समाधेयः नोपदेष्टव्यः । अत्र हेतुः—पुरन्दररथोचित इति । अभ्यस्तपुरन्दररथ इत्यर्थः ॥१३॥१४॥ अपसव्यमिति ॥ रावणस्य महारथमपसव्यं कुर्वन् स्वरथस्यापसव्यतां परिहरन्नित्यर्थः । चक्रोत्क्षिप्तेन रथचक्रोत्थापितेन रजसा, रावणं व्यवधानयत् व्यवहितमकरोत् ॥ १५ ॥ तत इति ॥ रथप्रतिमुखं सर्वथाभिमुखम्, अवधूनयत् प्राहरत् ॥ १६ ॥ धर्षणेत्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ धैर्यं रोषेण लम्भयन् रोषेण निवृत्तधैर्य इत्यर्थः । ऐन्द्रं मातलिनानीतं शरासनं शरांश्च जग्राहेति योजना ॥ १७ ॥ ॥ ॥

तदोपोढमिति ॥ उपोढं प्रवृत्तम् ॥ १८ ॥ तत इति ॥ द्वैरथं द्वाभ्यां रथाभ्यां प्रवर्तितं युद्धम् ॥ १९ ॥ समुत्पेतुरिति ॥ अत्रोत्पातानां राघवजयसूचकत्वं रावणवधद्वारा ॥२०॥ ववर्षेति ॥ देवः पर्जन्यः । मण्डलिनो वाताः वात्याः । अपसव्यम् अप्रदक्षिणम्, प्रचक्रमुः चेरुः ॥ २१ ॥ महदिति ॥ अस्य रावणस्य रथो येन मार्गेण याति स्म तेन मार्गेण महत् गृध्रकुलम् नभःस्थले भ्रममाणं सत् प्रधावति स्म । अनेन रावणस्यासन्नमरणत्वं सूचितम् । तदुक्तं शकुनार्णवे—आसन्नमृत्योर्निकटे चरन्ति गृध्रादयो मूर्ध्नि गृहोर्ध्वभाग इति ॥ २२ ॥ संध्ययेति ॥ जपापुष्पनिकाशया संध्यया लङ्का आवृता ।

तदोपोढं महद्युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ॥ परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥ १८ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ समेयुर्द्वैरथं द्रष्टुं रावणक्षयकाङ्क्षिणः ॥ १९ ॥ समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः ॥ रावणस्य विनाशाय राघवस्य जयाय च ॥ २० ॥ ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि ॥ वाता मण्डलिनस्तीक्ष्णा ह्यपसव्यं प्रचक्रमुः ॥ २१ ॥ महद्गृध्रकुलं चास्य भ्रममाणं नभःस्थले ॥ येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति ॥ २२ ॥ संध्यया चावृता लङ्का जपापुष्पनिकाशया ॥ दृश्यते संप्रदीप्तेव दिवसेपि वसुंधरा ॥ २३ ॥ सनिर्घाता महोल्काश्च संप्रचेरुर्महास्वनाः ॥ विषादयंस्ते रक्षांसि रावणस्य तदाहिताः ॥ २४ ॥ रावणश्च यतस्तत्र संचचाल वसुंधरा ॥ रक्षसां च प्रहरतां गृहीता इव बाहवः ॥ २५ ॥ ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः पतिताः सूर्यरश्मयः ॥ दृश्यन्ते रावणस्याङ्गे पर्वतस्येव धातवः ॥ २६ ॥ ॥

अत एव वसुंधरा लङ्कापर्यन्तभूमिः रात्रावग्निना संप्रदीप्तेव दिवसेपि संप्रदीप्ता दृश्यत इत्यर्थः ॥२३ ॥ सनिर्घाता इति ॥ सनिर्घाता महोल्काः संप्रचेरुः । ते उल्काः । लिङ्गव्यत्ययः । रावणस्याहिताः प्रतिकूलाः सन्तः रक्षांसि विषादयन् व्यषादयन् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ विषादयन् विषादयन्त्यः ॥२४॥ रावणश्चेति ॥ यतः यत्र, रावणो गतः तत्र वसुंधरा संचचाल । रावणसमीप एव भूकम्पो जात इत्यर्थः । गृहीता इव बाहवः। कैश्चिद्गृहीता बाहवो यथा प्रहर्तुं न क्षमन्ते तथाभूवन्नित्यर्थः ॥ २५ ॥ ताम्रा इति ॥ सिता अश्वेताश्च सिताश्वेताः । पर्वतस्येवेति । पर्वतस्याङ्गे धातव इवेति योजना ॥ २६ ॥

गृध्रैरिति॥गृध्रैरनुगताः गृध्रसहिता इत्यर्थः। शिवाः गोमायवः, मुखैर्ज्वलनं वमन्त्यः सत्यः अस्य रावणस्य मुखमीक्षन्त्यः। रावणाभिमुखा इत्यर्थः। संरब्धं कुपितम्, अशिवम् अमङ्गलम् च यथा भवति तथा प्रणेदुः। गृध्राणां साहित्यमात्रं नतु ज्वलनवमनादिकम् ॥२७॥प्रतिकूलमिति॥वायुः रणे पांसून् समाकिरन्, तेन तस्य रावणस्य दृष्टिविलोपनं दृष्टिप्रतिघातं कुर्वन्, प्रतिकूलम् अभिमुखं ववौ॥२८॥निपेतुरिति॥इन्द्राशनयः उल्काशनयः। उल्काशन्योः स्वरूपमुक्तं मिहिरेण–उल्का शिरसि विशाला निपतन्ती वर्धते च तनुपुच्छा। अशनिः स्वनेन महता युक्ता नृगजाश्वतरुपशुमुखेषु ॥ निपतति विदार-

गृध्रैरनुगताश्चास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः ॥ प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः ॥ २७ ॥ प्रतिकूलं ववौ वायू रणे पांसून् समाकिरन् ॥ तस्य राक्षसराजस्य कुर्वन् दृष्टिविलोपनम् ॥ २८ ॥ निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समन्ततः ॥ दुर्विषह्यस्वना घोरा विना जलधरस्वनम् ॥२९॥ दिशश्च प्रदिशः सर्वा बभूवुस्तिमिरावृताः ॥ पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोभवत्॥३०॥ कुर्वन्त्यः कलहं घोरं शारिकास्तद्रथं प्रति ॥ निपेतुः शतशस्तत्र दारुणं दारुणारुताः॥३१॥जघनेभ्यः स्फुलिङ्गांश्च नेत्रेभ्योऽश्रूणि संततम्॥मुमुचुस्तस्य तुरगास्तुल्यमग्निं च वारिच॥३२॥एवंप्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः॥रावणस्य विनाशाय दारुणाः संप्रजज्ञिरे॥३३॥रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शुभानि च॥बभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः॥३४॥निमित्तानि च सौम्यानि राघवः स्वजयाय च॥दृष्ट्वा परमसंहृष्टो हतं मेने च रावणम् ॥ ३५ ॥

यन्ती धरातलं चक्रसंस्थानेति ॥ २९ ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ दुर्दर्शं च नभोभवदिति पाठः ॥ ३० ॥ कुर्वन्त्य इति ॥ तद्रथं प्रति तद्रथोपरि॥३१॥ जघनेभ्य इति ॥ तुरगाः जघनेभ्यः स्फुलिङ्गान् नेत्रेभ्यः अश्रूणि च मुमुचुः। एवमग्निं च वारि च तुल्यं यथा भवति तथा मुमुचुः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ एवं रावणपराजयसूचकदुर्निमित्तान्युक्तानि, इदानीं, रामजयसूचकनिमित्तान्याह–रामस्यापीति ॥ सौम्यानि मनोज्ञानि । शुभानि शुभोदर्काणि । अत एव जयशंसीनि निमित्तानि प्रादुर्बभूवुः सत्तां लेभिरे । रामविषये किंचित्कारो हि सत्तालाभहेतुः ॥ ३४ ॥ निमित्तानीति ॥ जयाय निमित्तानि जयसूचकनिमित्तानीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ रणे आत्मगतानि आत्मार्थं प्रादुर्भूतानि । हर्षं पुलकं निर्वृतिं सुखं च जगाम ॥ ३६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे
रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥ ॥ ॥
ततः प्रवृत्तमित्यादि ॥ द्वैरथं द्वाभ्यां रथाभ्यां प्रवृत्तं युद्धं प्रवृत्तमिति योजना ॥ १ ॥ तत इति ॥ निश्चेष्टं समतिष्ठत । युद्धाद्भुतदर्शनकुतूहलादिति

ततो निरीक्ष्यात्मगतानि राघवो रणे निमित्तानि निमित्तकोविदः ॥ जगाम हर्षं च परां च निर्वृतिं चकार
युद्धे ह्यधिकं च विक्रमम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥ ॥
ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा ॥ सुमहद्द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ १ ॥ ततो राक्षससैन्यं च हरीणां
च महद्बलम् ॥ प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समतिष्ठत ॥ २ ॥ संप्रयुद्धौ ततो दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ ॥ व्याक्षिप्तहृदयाः
सर्वे परं विस्मयमागताः ॥३॥ नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः ॥ सर्पन्तं प्रेक्ष्य संग्रामं नाभिजग्मुः
परस्परम् ॥४॥ रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् ॥ पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ
॥ ५ ॥ तौ तु तत्र निमित्तानि दृष्ट्वा रावणराघवौ ॥ कृतबुद्धी स्थिरामर्षौ युयुधाते ह्यभीतवत् ॥ ६ ॥ जेतव्यमिति
काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः ॥ धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥ ७ ॥ ततः क्रोधाद्दशग्रीवः
शरान् संधाय वीर्यवान् ॥ मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम् ॥ ८ ॥ ॥ ॥

भावः ॥ २ ॥ एतदेव विवृणोति द्वाभ्याम्–संप्रयुद्धावित्यादि ॥ संप्रयुद्धौ सम्यग्योद्धुमुपक्रान्तौ । कर्मणि क्तः । बलवत् अत्यन्तम्, व्याक्षिप्तहृदयाः युद्धदर्शनसक्तचित्ताः ॥३॥ नानेति ॥ भुजैरित्युपलक्षणे तृतीया ॥४॥ रक्षसामिति ॥ रावणं पश्यतां विस्मिताक्षाणां विकसितनेत्राणां रक्षसां सैन्यम्, राघवं पश्यतां विस्मिताक्षाणां वानराणां सैन्यम् च चित्रमिवाबभौ ॥५॥ ताविति ॥ निमित्तानि दुर्निमित्तानि शुभनिमित्तानिचेत्यर्थः । कृतबुद्धी निश्चितबुद्धी ॥ ६ ॥ निश्चयमेवाह–जेतव्यमिति ॥ जयोवश्यंभावीति । मर्तव्यमिति । मरणमवश्यंभावीति । आवश्यकत्वार्थे तव्यः । धृतौ धैर्यवन्तौ ॥ ७ ॥ ८ ॥

त इति ॥ रथशक्तिं रथबलम्, परामृश्य प्राप्य। रथशक्तिप्रघातेन ध्वजमनासाद्य निपेतुरित्यर्थः ॥ ९ ॥ ततो राम इति ॥ संप्रचक्रमे उद्युक्तवान्। संकल्पितवानित्यर्थः ॥ १० ॥ रावणध्वजमिति ॥ असह्यं दुर्दर्शमित्यर्थः ॥११॥ जगामेति ॥ सः शरः ध्वजं छित्त्वा जगाम न तु केवलं जगाम ॥१२॥ ध्वजस्येति ॥ क्रोधादमर्षाच्च प्रदहन्निव प्रदहन्नग्निरिव, संप्रदीप्तः ज्वलितः अभवत् ॥१३॥ स इति ॥ शरवर्षं वमन् वमन्निवेत्यर्थः ॥ १४॥ त इति ॥

ते शरास्तमनासाद्य पुरन्दररथध्वजम् ॥ रथशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले ॥ ९॥ ततो रामोभिसंक्रुद्धश्चापमायम्य
वीर्यवान् ॥ कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा संप्रचक्रमे ॥ १०॥ रावणध्वजमुद्दिश्य मुमोच निशितं
शरम् ॥ महासर्पमिवासह्यं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥ ११ ॥ जगाम स महीं छित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ॥
स निकृत्तोपतद्भूमौ रावणस्य रथध्वजः ॥ १२ ॥ ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः सुमहाबलः ॥ संप्रदीप्तोभवत्क्रोधादमर्षात्प्रदहन्निव
॥ १३ ॥ स रोषवशमापन्नः शरवर्षं महद्वमन् ॥ रामस्य तुरगान् दीप्तैः शरैर्विव्याध
रावणः ॥ १४ ॥ ते विद्धा हरयस्तत्र नास्खलन्नापि बभ्रमुः ॥ बभूवुः स्वस्थहृदयाः पद्मनालैरिवाहताः
॥ १५ ॥ तेषामसंभ्रमं दृष्ट्वा वाजिनां रावणस्तदा ॥ भूय एव सुसंक्रुद्धः शरवर्षं मुमोच ह ॥ १६ ॥
गदाश्च परिघाश्चैव चक्राणि मुसलानि च ॥ गिरिशृङ्गाणि वृक्षांश्च तथा शूलपरश्वधान् ॥ १७ ॥ मायाविहितमेतत्तु
शस्त्रवर्षमपातयत् ॥ तुमुलं त्रासजननं भीमं भीमप्रतिस्वनम् ॥ १८ ॥ तद्वर्षमभवद्युद्धे नैकशस्त्रमयं
महत् ॥ विमुच्य राघवरथं समन्ताद्वानरे बले ॥ १९ ॥ ॥ ॥

हरयः हरितवर्णाः। इन्द्राश्वत्वादिति भावः ॥ १५ ॥ १६ ॥ गदाश्चेति । मुमोचेत्यनुषज्यते ॥ १७ ॥ धनुषा कथं गदादिमोचनमित्यत्राह—मायेति ॥ शस्त्रवर्षं गदादिवर्षम्। मायाविहितम् आश्चर्यकरशक्तिकृतम्। तुमुलं नानाविधमित्यर्थः ॥१८॥ तद्वर्षमिति ॥ नैकशस्त्रमयम् अनेकशस्त्रप्रचुरम्, तद्वर्षं क्रोधातिशयेन प्रयुक्तं रामशरैर्निवारणाल्लक्ष्यभूतं राघवरथं विमुच्य वानरबले अभवत्। तत्रापतदित्यर्थः ॥ १९ ॥ ॥

सायकैरित्यादि सार्धश्लोक एकान्वयः॥ ततः दशग्रीवः अश्रान्तहृदयोद्यमः अविच्छिन्नोत्साहः सन्, निःसङ्गेन अव्यासक्तेन, अन्तरात्मना मनसा उपलक्षितः, सहस्रशो बाणान् मुमोच। सायकैरन्तरिक्षं च निरन्तरं चकार॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ सायकैरन्तरिक्षं च चकाराशु निरन्तरम्।सहस्रशस्ततो बाणानश्रान्तहृदयोद्यमः ॥ मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मनेति पाठक्रमः ॥२०॥ व्यायच्छमानमिति ॥ व्यायच्छमानं व्यायच्छन्तम् यत्नं कुर्वन्तं, रणे तत्परं सक्तम्। प्रहसन्निव संदधे अनायासेन संदधे ॥ २१ ॥ २२ ॥ ततस्ताभ्यामिति ॥ शरवर्षेण भास्वत् अम्बरं शरबद्धं द्वितीयमम्बरमिवाभाति

सायकैरन्तरिक्षं च चकाराशु निरन्तरम् ॥ सहस्रशस्ततो बाणानश्रान्तहृदयोद्यमः ॥ मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मना ॥ २०॥ व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे ॥ प्रहसन्निव काकुत्स्थः संदधे सायकान् शितान् ॥२१॥ स मुमोच ततो बाणान् रणे शतसहस्रशः ॥ तान् दृष्ट्वा रावणश्चक्रे स्वशरैः खं निरन्तरम् ॥ २२ ॥ ततस्ताभ्यां प्रमुक्तेन शरवर्षेण भास्वता ॥ शरबद्धमिवाभाति द्वितीयं भास्वदम्बरम् ॥ २३ ॥ नानिमित्तोभवद्बाणो नातिभेत्ता न निष्फलः ॥२४॥ अन्योन्यमभिसंहत्य निपेतुर्धरणीतले ॥ तथा विसृजतोर्बाणान् रामरावणयोर्मृधे ॥ २५ ॥ प्रायुद्ध्यतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम् ॥ चक्रतुश्च शरौघैस्तौ निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥२६॥ रावणस्य हयान् रामो हयान् रामस्य रावणः ॥ जघ्नतुस्तौ तथान्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ ॥ २७ ॥ एवं तौ तु सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् ॥ मुहूर्तमभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

स्म ॥ २३ ॥ नानिमित्त इत्यर्धम् ॥ अनिमित्तः लक्ष्यविशेषोद्देशरहितः। अतिभेत्ता अपेक्षितप्रमाणादधिकभेत्ता। निष्फलः लक्ष्ये पतितोपि प्रयोजनाकारी ॥२४॥ अन्योन्यमिति ॥ तथा विसृजतोः उक्तप्रकारेण विसृजतोः। अत्र बाणा इत्यध्याहार्यम् ॥२५॥ प्रायुद्ध्यतामिति ॥ अस्यन्तौ शरान् क्षिपन्तौ। इवशब्दो वाक्यालंकारे। निरुच्छ्वासम् उच्छ्वासावकाशरहितम् ॥ २६ ॥ रावणस्येति ॥ अत्र जघानेति वचनविपरिणामेनानुषज्यते । तौ अन्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ कृतप्रतिक्रियाकारिणौ सन्तौ तथा जघ्नतुः। हय इवान्यत्रापि सारथ्यादौ जघ्नतुरित्यर्थः ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥

प्रयुध्यमानौ समरे महाबलौ शितैः शरै रावणलक्ष्मणाग्रजौ ॥ ध्वजावपातेन स राक्षसाधिपो भृशं प्रचुक्रोध तदा
रघूत्तमे ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥ ॥

तौ तदा युद्ध्यमानौ तु समरे रामरावणौ ॥ ददृशुः सर्वभूतानि विस्मितेनान्तरात्मना ॥१॥ अर्दयन्तौ तु समरे तयोस्तौ
स्यन्दनोत्तमौ ॥ परस्परमभिक्रुद्धौ परस्परमभिद्रुतौ ॥ २ ॥ परस्परवधे युक्तौ घोररूपौ बभूवतुः ॥ मण्डलानि च
वीथीश्च गतप्रत्यागतानि च ॥ दर्शयन्तौ बहुविधां सूतसारथ्यजां गतिम् ॥ ३ ॥ अर्दयन् रावणं रामो राघवं चापि
रावणः ॥ गतिवेगं समापन्नौ प्रवर्तननिवर्तने ॥ ४ ॥ क्षिपतोः शरजालानि तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ॥ चेरतुः संयुगमहीं
सासारौ जलदौ यथा ॥ ५ ॥ दर्शयित्वा तथा तौ तु गतिं बहुविधां रणे ॥ परस्परस्याभिमुखौ पुनरेवावतस्थतुः ॥६॥
धुरं धुरेण रथयोर्वक्त्रं वक्त्रेण वाजिनाम् ॥ पताकाश्च पताकाभिः समेयुः स्थितयोस्तदा ॥७॥ रावणस्य ततो रामो
धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥ चतुर्भिश्चतुरो दीप्तैर्हयान् प्रत्यपसर्पयत् ॥ ८ ॥ ॥ ॥

प्रयुध्यमानाविति ॥ यदा बभूवतुरित्युपस्कार्यम् ॥२९॥ इति श्रीगो० श्रीरामाय० रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने नवोत्तरशततमः सर्गः ॥१०९॥ अथ रावणशिरश्छेदः-तौ तदेत्यादि ॥ समरे युद्धभूमौ । तदा उत्पातकाले । अन्तरात्मना अन्तःकरणेन उपलक्षितानि ॥ १ ॥ अर्दयन्तावित्यादि सार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अर्दयन्तौ परस्परं पीडयन्तौ । रथयोः क्रोधादिकं रथिकद्वारा । मण्डलानि मण्डलगतीः । गतप्रत्यागतानि, शत्रुरथं प्रति गमनं गतं पुनः स्थानं प्रत्यागमनं प्रत्यागतं तयोरावृत्त्या बहुवचनम्। एवंप्रकारेण बहुविधां सूतसारथ्यजां सूतस्य यत् सारथ्यं सारथिकर्म तज्जाम्, गतिं संचारं दर्शयन्तौ तयोः रथौ घोररूपौ बभूवतुः ॥ २ ॥ ३ ॥ अर्दयन्निति ॥ रावणमर्दयन् रामो राघवमर्दयन् रावणश्चोभौ प्रवर्तननिवर्तने तद्रूपं गतिवेगं समापन्नौ बभूवतुरिति शेषः ॥ ४ ॥ क्षिपतोरिति ॥ सासारौ सजलधारौ ॥ ५ ॥ दर्शयित्वेति ॥ तथा गतिं पूर्वोक्तगतिभेदम् ॥ ६ ॥ धुरमिति ॥ धुरं युगम्। धुरेण । अकारान्तत्वमार्षम् । स्थितयोः युद्धे गतिं विना स्थितयोः । तयोरिति शेषः ॥७॥ रावणस्येति ॥ प्रत्यपसर्पयत् न्यवर्तयत् ॥ ८ ॥

स इति ॥ अपसर्पणे विषये ॥ ९ ॥ सोतिविद्ध इति ॥ विकारं वेदनासूचकमुखविकारम् ॥ १० ॥ चिक्षेपेति ॥ वज्रपातोशनिपातः ॥ ११ ॥ मातलेस्त्विति ॥ सूक्ष्मम् अल्पम् ॥ १२॥ तयेति ॥ यथा मातलेः तथा धर्षणया क्रुद्धः तथा आत्मनो धर्षणया न क्रुद्धः । एवं क्रुद्धो रिपुं विमुखं चकार ॥ १३ ॥

स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे ॥ मुमोच निशितान्बाणान् राघवाय निशाचरः ॥ ९ ॥ सोतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः ॥ जगाम न विकारं च न चापि व्यथितोभवत् ॥ १० ॥ चिक्षेप च पुनर्बाणान् वज्रपातसमस्वनान् ॥ सारथिं वज्रहस्तस्य समुद्दिश्य निशाचरः ॥ ११ ॥ मातलेस्तु महावेगाः शरीरे पतिताः शराः ॥ न सूक्ष्ममपि संमोहं व्यथां वा प्रददुर्युधि ॥ १२ ॥ तया धर्षणया क्रुद्धो मातलेर्न तथात्मनः॥ चकार शरजालेन राघवो विमुखं रिपुम् ॥ १३ ॥ विंशतं त्रिंशतं षष्टिं शतशोथ सहस्रशः ॥ मुमोच राघवो वीरः सायकान् स्यन्दने रिपोः ॥ १४ ॥ रावणोपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ॥ गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ॥ १५ ॥ तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ गदानां मुसलानां च परिघाणां च निस्वनैः ॥ शराणां पुङ्खपातैश्च क्षुभिताः सप्त सागराः ॥ १७॥ क्षुब्धानां सागराणां च पातालतलवासिनः॥ व्यथिताः पन्नगाः सर्वे दानवाश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥ चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना ॥ भास्करो निष्प्रभश्चासीन्न ववौ चापि मारुतः ॥ १९ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

विंशतमिति ॥ इकारलोपश्छान्दसः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ मुमोच राघवो वीरः सायकान् स्यन्दने रिपोरित्यनन्तरम्; रावणोपि, गदामुसलवर्षेण, तत्प्रवृत्तं महद्युद्धम्। इत्यर्धत्रयं द्रष्टव्यम् ॥ १४ ॥ रावणोपीति ॥ रथस्थो रथे निश्चलतया स्थित इत्यर्थः ॥१५॥ तत् प्रवृत्तमित्यर्धमेकं वाक्यम्॥१६॥ गदानामिति ॥ निस्वनैः वेगजैरिति शेषः ॥ १७ ॥ क्षुब्धानामिति ॥ क्षुब्धेषु सागरेष्वित्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

॥ २१ ॥२२॥ गन्धर्वेति ॥ गन्धर्वाप्सरसामित्यर्धानन्तरं गगनं गगनाकारमिति श्लोकः । तदनन्तरम् एवं ब्रुवन्त इत्यर्धम् । गन्धर्वाप्सरसां संघाः अनूपमम् अनुपमम्, युद्धं दृष्ट्वा गगनं गगनाकारमित्येवं ब्रुवन्तः सन्तः पुनर्ददृशुरित्यन्वयः । अनुपमत्वमेवाह—गगनमिति ॥ यथा गगनसागरयोः सदृशवस्त्वन्तराभावः तथा रामरावणयुद्धस्य सदृशं युद्धं किंचिन्नास्तीत्यर्थः । सदृशान्तरनिवृत्तिफलकोनन्वयालंकारः । रामरावणं रामरावणसंबन्धि ॥

स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः ॥ जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ २१ ॥ एवं जपन्तोऽपश्यंस्ते देवाः सर्षिगणास्तदा ॥ रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥ २२ ॥ गन्धर्वाप्सरसां संघा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम् ॥ २३ ॥ गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ॥ रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥ एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम् ॥ २४ ॥ ततः क्रुद्धो महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः ॥ संधाय धनुषा रामः क्षुरमाशीविषोपमम् ॥ २५ ॥ रावणस्य शिरोच्छिन्दच्छ्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥ २६ ॥ तस्यैव सदृशं चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः ॥ तत्क्षिप्रं क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा ॥ २७ ॥ द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संयति सायकैः ॥ छिन्नमात्रं तु तच्छीर्षं पुनरन्यत्स्म दृश्यते ॥२८॥ तदप्यशनिसंकाशैश्छिन्नं रामेण सायकैः ॥ एवमेकशतं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम् ॥ २९ ॥ न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये ॥ ३० ॥ ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥ मार्गणैर्बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ॥ ३१ ॥

॥२३॥२४॥ ततः क्रुद्ध इत्यादिसार्धश्लोकपञ्चकमेकं वाक्यम् ॥ क्षुरं क्षुराग्रबाणम् । शिरः अच्छिन्दत् अच्छिनत् । एकवचनात्तदानीं रावण एकशिरा एव युद्धमकरोदिति गम्यते । अत एव वक्ष्यति—विक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावङ्गदभूषितावित्यादिना । छिन्नमात्रं तु तच्छीर्षमिति । तच्छीर्षे छिन्ने तदानीमेवेत्यर्थः । एकशतं छिन्नम् एकोत्तरशतवारं छिन्नमित्यर्थः । पुनः पुनः शिरश्छेदनं चिरतृषितशरतृष्णानिवृत्त्यर्थम् । न चेति ॥ जीवितक्षये विषये, अन्तः अवधिः निश्चयो वा, न दृश्यते नादृश्यत ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मारीच इत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ क्रौञ्चावने कबन्धः दण्डकावने विराध इत्यन्वयः । प्रात्ययिकाः विश्वस्ताः । त इमे रावणे विषये मन्दतेजसः अल्पशक्तिकाः अभवन् । तत्कारणं किं नु न जानामीति शेषः ॥३२॥३३॥३४॥३५॥ तदिति ॥ त्रिकूटशिखरे युध्यतोस्तयोराग्रहकृतगतिवशेन अन्तरिक्षे भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्धनि त्रिकूटशिखरे च तन्महद्युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थः॥३६॥देवदानवेति॥"यस्य च भावेन०"इति भावलक्षणे षष्ठी । सर्वरात्रम् अहोरात्रमित्यर्थः । सप्तरात्रमित्यपपाठः । वक्ष्यमाणदिनसंख्याविरोधात् । यद्वा सर्वरात्रमित्यपपाठः। सप्तरात्रमित्येव सम्यक्पाठः। फाल्गुनचतुर्दश्यां हनुमता लङ्कादाहः । पौर्णमास्यां रामस्य समुद्रतीरप्राप्तिः । प्रथमाद्वितीयातृतीयासु दर्भशयनम् । अष्टम्यां सुवेलारोहणम् । नवम्यां युद्धारम्भ इति

मारीचो निहतो यैस्तु खरो यैस्तु सदूषणः ॥ क्रौञ्चावने विराधस्तु कबन्धो दण्डकावने ॥ ३२ ॥ त इमे सायकाः सर्वे युद्धे प्रात्ययिका मम ॥ किं नु तत्कारणं येन रावणे मन्दतेजसः ॥३३॥ इति चिन्तापरश्चासीदप्रमत्तश्च संयुगे ॥ ववर्ष शरवर्षाणि राघवो रावणोरसि॥३४॥रावणोपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः॥गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ॥ ३५ ॥ तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्धनि ॥ ३६ ॥ देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम् ॥ पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत ॥३७॥ नैव रात्रं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम् ॥ रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥ ३८ ॥ दशरथसुतराक्षसेन्द्रयोर्जयमनवेक्ष्य रणे स राघवस्य ॥ सुरवररथसारथिर्महान् रणगतमेनमुवाच वाक्यमाशु ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥ ॥

सप्तरात्रं रामरावणयुद्धमिति । इदं च इतस्तु नवमेहनीत्यत्र विस्तृतम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम् । पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत ॥ नैव रात्रं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम् । रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥ इति श्लोकद्वयं केषुचित्कोशेषु पतितम् ॥३७॥ नैव रात्रमिति ॥ "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया ॥ ३८ ॥ दशरथेति ॥ निर्धारणे षष्ठी । दशरथसुतराक्षसेन्द्रयोः रामरावणयोर्मध्ये राघवस्य जयमनवेक्ष्य महान् महाबुद्धिरित्यर्थः । सुरवररथसारथिः एनं रामम् उवाच ॥ ३९॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

अथ रावणवधः–अथ संस्मारयामासेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अजानन्निव ब्रह्मास्त्रमजानन्निव, एनं रावणम्, अनुवर्तसे अस्त्रस्य प्रत्यस्त्रप्रयोगमात्रं करोषि। विनाशकालः मानुषेण वधः इत्युक्तः कालः॥१॥२॥ततः संस्मारित इत्याद्येकादश श्लोका एकान्वयाः॥ प्रथमं पूर्वं दण्डकारण्ये। ब्रह्मद-

अथ संस्मारयामास राघवं मातलिस्तदा ॥ अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे ॥ १ ॥ विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं
पैतामहं प्रभो ॥ विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोद्य वर्तते ॥ २ ॥ ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ॥ जग्राह
सशरं दीप्तं निश्वसन्तमिवोरगम्॥३॥यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः ॥ ब्रह्मदत्तं महाबाणममोघं
युधि वीर्यवान् ॥ ४ ॥ ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा ॥ दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥
यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ ॥ शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥ ६ ॥ जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं
हेमभूषितम् ॥ तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥७॥ सधूममिव कालाग्निं दीप्तमाशीविषं यथा ॥ परनागाश्ववृन्दानां
भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥८॥ द्वाराणां परिघाणां च गिरीणामपि भेदनम् ॥ नानारुधिरसिक्ताङ्गं मेदोदिग्धं
सुदारुणम् ॥ ९ ॥ वज्रसारं महानादं नानासमितिदारणम् ॥ सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥१०॥
कङ्कगृध्रवलानां च गोमायुगणरक्षसाम् ॥ नित्यं भक्ष्यप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम् ॥ ११॥ नन्दनं वानरेन्द्राणां
रक्षसामवसादनम् ॥ वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रैर्गरुत्मतः ॥ १२ ॥ तमुत्तमेषुं लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम् ॥
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

त्तमित्येतद्विवृणोति–ब्रह्मणेत्यादिना ॥ यस्य वाजेष्विति। पवनादीनामधिदेवतात्वेनावस्थानम्। फले शल्ये। तेजसा सारांशेन कृतम्। द्वाराणां रिपुगोपुराणाम्। नानारुधिरेति वध्यासुरभेदात्। मेदः मांसविशेषः। वज्रसारं वज्रतुल्यदार्ढ्यम्। नानासमितिदारणं कपटयुद्धस्यापि निवर्तकम्। सर्ववित्रा-

सनत्वे हेतुः—भीममिति। दीप्तं श्वसन्तमिति भेदादुपमानभेदः। वलाः गृध्रविशेषाः। रक्षसां पिशाचसहचारिणाम्। यमरूपं यमतुल्यं यथा भवति तथा। भयावहमिति। वित्रासनात् भेदः। वाजितमिति। गरुत्मतः वाजैः पत्रैः वाजितं संजातपत्रम्। गरुडपत्रकृतपत्रमित्यर्थः। लोकानां मध्ये उत्तमेषुं प्रहर्षकरमात्मन इत्यन्तस्य जग्राहेत्यनेन संवन्धः॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ द्वाराणां पुरद्वाराणाम्। गोपुराणामिति यावत्। परिघाणामित्येतत्सर्वा-

अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः॥ वेदप्रोक्तेन विधिना संदधे कार्मुके बली॥ १४॥ तस्मिन् सं-
धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे॥ सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुंधरा॥ १५॥ स रावणाय संक्रुद्धो
भृशमायम्य कार्मुकम्॥ चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम्॥ १६॥ स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः॥
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि॥ १७॥ स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः शरः॥ बिभेद हृदयं तस्य
रावणस्य दुरात्मनः॥ १८॥ रुधिराक्तः स वेगेन जीवितान्तकरः शरः॥ रावणस्य हरन् प्राणान् विवेश धरणीतलम्॥
१९॥ स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रीकृतच्छविः॥ कृतकर्मा निभृतवत् स्वतूणीं पुनरागमत्॥ २०॥ तस्य हस्ताद्
हतस्याशु कार्मुकं तत्ससायकम्॥ निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानस्य जीवितात्॥ २१॥ गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो
महाद्युतिः॥ पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा॥ २२॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः॥ हतनाथा भय-
त्रस्ताः सर्वतः संप्रदुद्रुवुः॥ २३॥ नर्दन्तश्चाभिपेतुस्तान् वानरा द्रुमयोधिनः॥ २४॥ दशग्रीववधं दृष्ट्वा विजयं राघवस्य
च॥ आर्दिता वानरैर्हृष्टैर्लङ्कामभ्यपतन् भयात्॥ गताश्रयत्वात्करुणैर्बाष्पप्रस्रवणैर्मुखैः॥ २५॥ ॥

युधानामप्युपलक्षणम्॥ ३॥ ४॥ ५॥ ६॥ ७॥ ८॥ ९॥ १०॥ ११॥ १२॥ १३॥ अभिमन्त्र्येति॥ ततः ग्रहणानन्तरम्, तम् इषुम् संदधे॥ १४॥ १५॥ स इति॥ रावणाय चिक्षेपेत्यन्वयः॥ १६॥ स वज्र इति॥ वज्रिबाहुविसर्जितो वज्र इवेत्यन्वयः॥ १७॥ १८॥ १९॥ स शर इति॥ निभृतवत् विनीतवत्॥ २०॥ तस्येति॥ प्राणैः सह जीवितात् प्राणधारणयत्नात्, भ्रश्यमानस्य तस्य हस्तात् ससायकं कार्मुकं पपात॥ २१॥ २२॥ ॥ २३॥ नर्दन्तश्चेत्यर्धमेकं वाक्यम्॥ २४॥ दशग्रीवेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः॥ मुखैः उपलक्षिताः। राक्षसा इति शेषः॥ २५॥ ॥

तत इति ॥ तद्वधं तं वधम् ॥२६॥२७॥२८॥ राघवेति ॥ राघवस्तवसंयुक्ता वागित्यन्वयः॥२९॥आविवेशेति ॥ चारणैःसह चारणैः सहितान् देवानित्यर्थः ॥ ३० ॥ तत इति ॥ सुग्रीववद्युवराजत्वेन प्रत्युपकारायाङ्गदेनापि रावणवधस्य काङ्क्षितत्वात् सकामत्वम् ॥३१॥ तत इति ॥ प्रशमं प्रसादम् । मरुद्गणाः देवगणाः । महो न चकम्पे महीकम्पाभावस्य शुभसूचकत्वात् इत्याहुः । रावणवधपर्यन्तं सकम्पा स्थिता मही तद्वधानन्तरं निष्कम्पाऽभवदिति

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ॥ वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम् ॥ २६ ॥ अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ॥ दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः ससुखो ववौ ॥ २७ ॥ निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि ॥ किरन्ती राघवरथं दुरवापा मनोरमा ॥ २८ ॥ राघवस्तवसंयुक्ता गगनेपि च शुश्रुवे ॥ साधु साध्विति वागग्र्या दैवतानां महात्मनाम् ॥ २९ ॥ आविवेश महाहर्षो देवानां चारणैः सह ॥ रावणे निहते रौद्रे सर्वलोकभयंकरे ॥ ३० ॥ ततः सकामं सुग्रीवमङ्गदं च महाबलम् ॥ चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥३१॥ ततः प्रजग्मुः प्रशमं मरुद्गणा दिशः प्रसेदुर्विमलं नभोऽभवत् ॥ मही चकम्पे न हि मारुतो ववौ स्थिरप्रभश्चाप्यभवद्दिवाकरः ॥ ३२ ॥ ततस्तु सुग्रीवबिभीषणादयः सुहृद्विशेषाः सहलक्ष्मणास्तदा ॥ समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं रणेभिरामं विधिना ह्यपूजयन् ॥३३॥ स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः स्वजनबलाभिवृतो रणे रराज ॥ रघुकुलनृपनन्दनो महौजास्त्रिदशगणैरभिसंवृतो यथेन्द्रः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥ ॥

चाहुः । ववौ सुखमिति शेषः ॥३२॥ ततस्त्विति ॥ सुहृद्विशेषाः जाम्बवदादयः । हिशब्दः पादपूरणे । विजयेन हृष्टा इत्यन्वयः । विधिना क्रमेण॥३३ ॥ ॥३४॥ फाल्गुनामावास्यायां रावणवधः । यद्वा चैत्रशुद्धप्रतिपदि शिष्टामावास्यायां प्रातःकाले रावणवधः । पूर्वं सर्वरात्रमवर्ततेत्युक्तेः ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

अथ भ्रातृवधदर्शनेन हठात् प्रवृत्तं प्रकृतिसंबन्धकृतं शोकं सोढुमशक्नुवन् विभीषणो विलपति–भ्रातरमित्यादि ॥ शयानं शयानमिव स्थितम् । शोकवेगपरोतात्मा शोकवेगेन परीतमनस्कः । वेगशब्देन हठकृतः शोक इति द्योत्यते ॥ १ ॥ वीरेत्यादि ॥ विनीत विद्यासु शिक्षित । विक्षिप्येत्यस्य श्लोकस्य पूर्वश्लोकेनान्वयः । भुजावित्यनेनान्त्ययुद्धे द्विभुजस्थितिर्गम्यते । मुकुटेन उपलक्षित इति शेषः । अपवृत्तेन पतनवेगादीषच्चलितेन ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ तदिदमिति ॥ मया पूर्वं समीरितं यद्वचः काममोहपरीतस्य ते न रुचितं नेष्टमासीत् । तदिदं वचः संप्राप्तं, त्वयानुभूतमित्यर्थः ॥ ४ ॥ यदित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ यत्पापकर्म प्रहस्तो दर्पात् नामन्यतेति विपरिणामेनानुषज्यते । एवं सर्वत्र योजनीयम् । अतिरथ इत्यतिकाय-

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं रामनिर्जितम् ॥ शोकवेगपरीतात्मा विललाप बिभीषणः ॥ १ ॥ वीर विक्रान्तविख्यात
विनीत नयकोविद ॥ महार्हशयनोपेत किं शेषेद्य हतो भुवि॥२॥ विक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावङ्गदभूषितौ ॥ मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा ॥ ३ ॥ तदिदं वीर संप्राप्तं मया पूर्वं समीरितम् ॥ काममोहपरीतस्य यत्ते न रुचितं वचः
॥ ४ ॥ यन्न दर्पात्प्रहस्तो वा नेन्द्रजिन्नापरे जनाः ॥ न कुम्भकर्णोतिरथो नातिकायो नरान्तकः ॥ न स्वयं त्वममन्येथास्तस्योदर्कोयमागतः ॥ ५॥ गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः ॥ गतः सत्त्वस्य संक्षेपः प्रस्तावानां गतिर्गता
॥ ६ ॥ आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः ॥७॥ चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः ॥ अस्मिन्निपतिते भूमौ वीरे शस्त्रभृतां वरे ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥

विशेषणम् । अमन्येथाः अमन्यथाः । एत्वमार्षम् । तृणीकृतवानसीत्यर्थः । तस्य सीताहरणरूपस्य, उदर्कः फलमागतम् ॥ ५ ॥ गत इति ॥ सुनोतानां नयानां सेतुः मर्यादा । धर्मस्य विग्रहः विरोधः । यद्वा अधर्मस्येति छेदः । विग्रहः देहः । यद्वा धर्मस्य विग्रहः देहः । एषोग्निहोत्री च महातपाश्चेत्यादिना रावणस्य धार्मिकत्वकथनात् । सत्त्वस्य बलस्य, संक्षेपः संग्रहः । प्रस्तावानां प्रकृष्टस्तुतीनां गतिः विषयः ॥ ६ ॥ आदित्य इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ अस्मिन्निति । अस्मिन्निपतिते आदित्यः पतित इत्याद्यभेदातिशयोक्तिः । चित्रभानुः वह्निः । सूर्यवह्नी चित्रभानू इत्यमरः । व्यवसायो निरुद्यमः । रावणसदृशाश्रयाभावाद्व्यवसायः उत्साहशक्तिः निर्व्यापारोभूदित्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ॥ ॥

किं शेषमिवेति॥राक्षसशार्दूले रावणे पांसुषु प्रसुप्त इव स्थिते। मृत इति यावत्। सांप्रतं हतवीरस्य लोकस्य किमिव शेषम्। सर्वं शून्यमभूदित्यर्थः॥९॥ धृतीति॥धृतिरेव प्रवालो यस्य स तथा। धैर्यं हि वृक्षस्य पल्लववत् प्रथमफलम्। प्रसहत इति प्रसहः। पचाद्यच्। भावप्रधानो निर्देशः। स एव अग्र्यपुष्पं श्रेष्ठपुष्पं यस्य स तथा। प्रसहनं हि पुष्पवत्कार्यफलस्य अव्यवहितहेतुः। तप एव बलं स्थैर्यांशो यस्य स तथा। शौर्यमेव निबद्धमूलं निश्चलमूलं यस्य स तथा। शौर्यमूलत्वात् तपःप्रभृतीनां सर्वेषाम्॥१०॥तेज इति॥तेजः पराक्रम एव विषाणो यस्य स तथा। तेजो हि विषाणवत् परमर्मभेदि। कुलवंशवंशः कुलं पितृपितामहादयः तेषां वंशः सर्गः स एव वंशः पृष्ठावयवविशेषो यस्य स तथा। वंशो वेणौ कुले वर्गे पृष्ठस्यावयवेपि चेत्युभयत्रापि विश्वः।

किं शेषमिव लोकस्य हतवीरस्य सांप्रतम् ॥ रणे राक्षसशार्दूले प्रसुप्त इव पांसुषु ॥ ९ ॥ धृतिप्रवालः प्रसहाग्र्यपुष्प-
स्तपोबलः शौर्यनिबद्धमूलः ॥ रणे महान् राक्षसराजवृक्षः संमर्दितो राघवमारुतेन ॥ १० ॥ तेजोविषाणः कुलवंश-
वंशः कोपप्रसादापरगात्रहस्तः ॥ इक्ष्वाकुसिंहावगृहीतदेहः सुप्तः क्षितौ रावणगन्धहस्ती ॥ ११ ॥ पराक्रमोत्साह-
विजृम्भितार्चिर्निःश्वासधूमः स्वबलप्रतापः ॥ प्रतापवान् संयति राक्षसाग्निर्निर्वापितो रामपयोधरेण ॥ १२ ॥ सिं-
हर्क्षलाङ्गूलककुद्विषाणः पराभिजिद्गन्धनगन्धहस्ती ॥ रक्षोवृषश्चापलकर्णचक्षुः क्षितीश्वरव्याघ्रहतोवसन्नः ॥१३॥

कुलेन हि वंशेनेव स्वाश्रितधारणम्। कोप एवापरगात्रं शिरोव्यतिरिक्तशरीरं यस्य स तथा। प्रसाद एव हस्तो यस्य स तथा। कोपस्य बहुत्वादपरगात्रत्वेन रूपणम्। इक्ष्वाकुः रामः स एव सिंहः तेन अवगृहीतदेहः रावणगन्धहस्ती रावण एव मत्तगजः क्षितौ सुप्तः। मृत इत्यर्थः ॥११॥ पराक्रमेति ॥ पराक्रमोत्साहाविव विजृम्भितार्चिः विस्तृतज्वालः। निश्वास एव धूमो यस्य स तथा। स्वबलप्रतापः स्वबलोष्णः। प्रतापवान् तेजस्वी। राक्षसाग्निः रामपयोधरेण निर्वापितः ॥१२॥ सिंहेति ॥ सिंहर्क्षा राक्षसाः त एव लाङ्गूलककुद्विषाणानि यस्य स तथा। सिंहर्क्षा राक्षसाः प्रोक्ता यक्षा उष्णीषिणो मता इति निघण्टुः। यद्वा सिंहर्क्षं मूलानक्षत्रं तच्च राक्षसनक्षत्रम्। यथाह ज्योतिषे काश्यपः—अग्निर्मघा विशाखा च आश्लेषा शततारका। धनिष्ठा चित्रया युक्ता ज्येष्ठा मूला च राक्षसा इति ॥ तत्संबन्धाद्राक्षसा अपि तच्छब्देनोच्यन्ते। राक्षससमृद्धेर्गर्वहेतुत्वेन लाङ्गूलादित्वेन रूपणम्। परानभिजयतीति

पराभिजित् । गन्धने परोत्सादने गन्धहस्ती मुख्यः । गन्धनं सूचनोत्साहहिंसनेषु प्रकाशन इति विश्वः । चापलं विषयलौल्यम् तदेव कर्णचक्षुषी यस्य स तथा । रक्षोवृपः रावणवृषभः, क्षितीश्वरव्याघ्रेण रामशार्दूलेन, हतः अवसन्नः मृतः ॥१३॥ वदन्तमिति ॥ परिमृष्टार्थनिश्चयं कृतार्थनिश्चयम्॥१४॥ नायमिति ॥ अयं निश्चेष्टः निर्विक्रमः न विनष्टः, अपि त्वयं समरे चण्डविक्रमः अत्युन्नतमहोत्साहः अशङ्कितः पतितः विनष्टः ॥ १५ ॥ यदि समरे विक्रम्य नष्टः ततः किमित्यत्राह–नैवमित्यादि ॥ ये वृद्धिं परलोकवृद्धिम्, आशंसमानाः आकाङ्क्षमाणाः सन्तः, रणाजिरे निपतन्ति । क्षत्रधर्ममवस्थिताः शूरधर्मव्यवस्थिताः । एवं विनष्टाः ते न शोच्यन्ते ॥१६॥ न केवलं समरमरणादेव न शोच्यत्वं किंतु यशःप्रत्यासक्त्यापीत्याह–येनेति ॥ येन वि-

वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिमृष्टार्थनिश्चयम् ॥ रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच बिभीषणम् ॥१४॥ नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः ॥ अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोयमशङ्कितः ॥ १५ ॥ नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्ममवस्थिताः ॥ वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥ १६ ॥ येन सेन्द्रास्त्रयो लोकास्त्रासिता युधि धीमता ॥ तस्मिन् कालसमायुक्ते न कालः परिशोचितुम् ॥ १७ ॥ नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन ॥ परैर्वा हन्यते वीरः परान्वा हन्ति संयुगे ॥१८॥ इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्त्रियसंमता॥क्षत्त्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥१९॥ तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः॥ यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय ॥ २० ॥ ॥

त्रासिताः तस्मिन् रावणे कालसमायुक्ते शोचितुं न कालः नावसरः । तद्विषये शोको न युक्तः । वीरस्वर्गगमनादिति भावः ॥ १७ ॥ तथापि मरणे सति कथं न शोचितव्यमित्याशङ्क्य जयवत्पराजयोपि न शोकस्थानमित्याह–नैकान्तेति॥एकान्तविजयः न भूतपूर्वः इतःपूर्वं न भूतः । अनैकान्त्यमुपपादयति–परैर्वेति॥ १८ ॥ क्षत्रधर्मपर्यालोचनेनापि न शोच्य इत्याह–इयं हीति ॥ क्षत्रियः शूरः॥१९॥ तदेवमिति ॥ दृष्ट्वा ज्ञात्वा। तत्त्वमास्थाय परमार्थबुद्धिमवलम्ब्य । जनिमतामवश्यं मृत्युं ज्ञात्वेत्यर्थः । विज्वरः निःशोकः । यत् कार्यं कर्म । कल्प्यम् अनुष्ठेयम् । तदनुचिन्तय । कल्यमिति पाठे यत् कार्यं कल्यम् । योग्यमित्यर्थः । कल्यो योग्यश्च ते समा इति निघण्टुः ॥ २० ॥ ॥ ॥

॥ २१ ॥ योयमिति ॥ विमर्देषु समरेषु । अनेन महावीरतया सम्यक् संस्कारमर्हतीत्युक्तम् ॥ २२ ॥ धर्मशीलत्वाच्च तदर्हतीत्याह—अनेनेति ॥ दत्तानि दानानि कृतानि । सुपूजितानि गुरुदैवतानीति शेषः । निभृताः नितरां भृताः । यापितानि सफलीकृतानीत्यर्थः ॥ २३ ॥ आहिताग्न्यादित्वाच्च तदर्हतीत्याह—एषोहिताग्निरिति॥हिताग्निः आहिताग्निः । संधिरार्षः । वेदान्तं गच्छति जानातीति वेदान्तगः । कर्मसु चाग्र्यवीर्यः कर्मशूर इत्यर्थः । प्रेतगतस्य प्रेतत्वं गतस्य इच्छामि । पुत्राणां विनष्टत्वेन भ्रातुरेवाधिकारित्वादिति भावः ॥२४॥ स तस्येति ॥ करुणैरित्यनेन दुःखातिशयादिदानीमेवमुक्तमिति द्योत्यते । वक्ष्यति हि नाहमस्य संस्कारं करिष्यामीति । स्वर्गीयं स्वर्गाय हितम् । आधानम् अन्त्येष्टिसंज्ञिकं कर्म ॥ २५ ॥ वैरातिरेकात् संस्कारे मम द्वेष इति न शङ्कनीयमित्याह—मरणेति ॥ मरणानन्तरमपि वैरकरणं निष्प्रयोजनमित्याह—निर्वृत्तमिति । प्रयोजनं सीतालाभरूपम् ।

तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं बिभीषणः ॥ उवाच शोकसंतप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥ २१ ॥ योयं विमर्देषु न भग्नपूर्वः सुरैः समेतैः सह वासवेन ॥ भवन्तमासाद्य रणे विभग्नो वेलामिवासाद्य यथा समुद्रः ॥ २२ ॥ अनेन दत्तानि सुपूर्वजानि भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्याः ॥ धनानि मित्रेषु समर्पितानि वैराण्यमित्रेषु च यापितानि ॥ २३ ॥ एषो हिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यवीर्यः ॥ एतस्य यत्प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥२४॥ स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा संबोधितः साधु बिभीषणेन ॥ आज्ञापयामास नरेन्द्रसूनुः स्वर्गीयमाधानमदीनसत्त्वः ॥ २५ ॥ मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ॥ क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥ ॥ ॥ ॥

अस्य संस्कारः यायजूकोचितसंस्कारः । क्रियताम् । ममाप्येष यथा तव । तव यथा भ्राता तथा ममापि भ्राता । मद्भ्रातृभूतस्य तव भ्रातृत्वात् । त्वमस्य दोषं दृष्ट्वा न करोषि चेदहमेव करिष्यामि । भ्रातृषु येन केनापि कर्तव्यमिति भावः । अत्र श्लोके न इति गायत्र्यक्षरम् । अत्राचार्या व्याचख्युः । मरणान्तानि वराणि ऋषिजनस्थानभ्रंशमैथिलीहरणमत्प्राणभूतजटायुविध्वंसनप्रभृतिमद्द्वेषाचरणमितः परं कर्तुं न शक्नोति हीति भावः । निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् । यदि वा रावणः स्वयमिति वदता मयास्य विषये किंचिच्छुभं कर्तव्यमिति मनसि कृतम् । तदनेन, द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचिदिति वदता प्रतिहतम् । तत्करणस्येदानीमवसरः संजात इति भावः । क्रियतामस्य संस्कारः । मत्कृतहितप्रतिषेधानर्हावस्था इदानीमस्य संजाता, अतोयं

न त्याज्यः । अतः परं यत्कर्तव्यं तत्कार्यमेव । ममाप्येष यथा तव । अयं मच्चित्तानुकूलो जातः, अतो मन्मित्रभूतो भवानपि तमनुवर्तितुमर्हति । अथवा एषः तव यथा तथा ममापि, अस्य संस्कारस्तव यथा प्राप्तः तथा ममापीत्यर्थः । भवानस्य संस्कारं न करोति चेदहमेव करोमि । बन्धुषु येन केनापि कर्तव्यं खल्विदं तद्दूरे तिष्ठ अहमेव करिष्यामीत्यर्थ इति ॥ २६ ॥ इति श्रीगो० श्रीरामा० रत्नकि० यु० द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥११२॥

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना ॥ अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥ १ ॥ वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यः क्षितिपांसुषु ॥ विमुक्तकेश्यो दुःखार्ता गावो वत्सहता इव ॥ २ ॥ उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः ॥ प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥ ३ ॥ राजपुत्रेतिवादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः ॥ परिपेतुः कबन्धाङ्कां महीं शोणितकर्दमाम् ॥ ४ ॥ ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः ॥ करेण्व इव नर्दन्त्यो विनेदुर्हतयूथपाः ॥ ५ ॥ ददृशुस्तं महावीर्यं महाकायं महाद्युतिम् ॥ रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ६ ॥ ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु ॥ निपेतुस्तस्य गात्रेषु च्छिन्ना वनलता इव ॥ ७ ॥ बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह ॥ चरणौ काचिदालिङ्ग्य काचित्कण्ठेवलम्ब्य च ॥ ८ ॥ उद्धृत्य च भुजौ काचिद्भूमौ स्म परिवर्तते ॥ हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥ ९ ॥ काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती ॥ स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥ १० ॥ एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि ॥ चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद्भूयस्ताः पर्यदेवयन् ॥ ११ ॥ येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः ॥ येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥ १२ ॥ ॥

अथ रावणान्तःपुरस्त्रीविलापः—रावणमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ वत्सहताः हृतवत्साः ॥ १ ॥ २ ॥ उत्तरेणेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ शोणितैः कर्दमो यस्यास्तां शोणितकर्दमाम् ॥३॥४॥ ता इति ॥ हतयूथपा इति करेणुविशेषणम् । अत एव नर्दन्त्यः करेण्व इव विनेदुरित्यन्वयः ॥५॥ ६ ॥ ७ ॥ बहुमानादित्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ परिवर्तते वेष्टते । ईक्षती ईक्षमाणा ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ एवमिति ॥ चक्रुशुरिति । क्रोशः निरक्षरध्वनिः । परिदेवनम् साक्षरशब्दः ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १३ ॥ असुरेभ्य इति ॥ मानुषाद्भयम् । जातमिति शेषः ॥ १४ ॥ १५ ॥ य इति ॥ कश्चिदिव यः कश्चित् पुरुष इव, लम्भितः प्रापितः ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ अशृण्वतेति ॥ सुहृदां सुहृद्भ्यः । पञ्चम्यर्थे षष्ठी । वचनमिति वा शेषः । अशृण्वता त्वया ॥ १८ ॥ एता इति ॥ एताः वयं ते राक्षसाः आत्मा च समं युगपत् इदानीं पातिताः । मारिता इत्यर्थः । ब्रुवाण इति । इष्टः प्रीतिमान् ॥ १९ ॥ यदीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥

गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् ॥ भयं येन महद्दत्तं सोयं शेते रणे हतः ॥१३॥ असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगेभ्योपि वा तथा ॥ न भयं यो विजानाति तस्येदं मानुषाद्भयम्॥१४॥ अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ॥ हतः सोयं रणे शेते मानुषेण पदातिना ॥१५॥ यो न शक्यः सुरैर्हन्तुं न यक्षैर्नासुरैस्तथा ॥ सोयं कश्चिदिवासत्त्वो मृत्युं मर्त्येन लम्भितः॥१६॥ एवं वदन्त्यो बहुधा रुरुदुस्तस्य ताः स्त्रियः॥ भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः॥१७॥ अशृण्वता च सुहृदां सततं हितवादिनाम् ॥ मरणायाहृता सीता घातिताश्च निशाचराः ॥१८॥ एताः सममिदानीं ते वयमात्मा च पातिताः॥ ब्रुवाणोपि हितं वाक्यमिष्टो भ्राता बिभीषणः॥ धृष्टं परुषितो मोहात्त्वयात्मवधकाङ्क्षिणा ॥१९॥ यदि निर्यातिता ते स्यात्सीता रामाय मैथिली ॥ न नः स्याद्व्यसनं घोरमिदं मूलहरं महत् ॥ २० ॥ वृत्तकामो भवेद्भ्राता रामो मित्रकुलं भवेत् ॥ वयं चाविधवाः सर्वाः सकामा न च शत्रवः ॥ २१॥ त्वया पुनर्नृशंसेन सीतां संरुन्धता बलात् ॥ राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुल्यं निपातितम् ॥२२॥ न कामकारः कामं वा तव राक्षसपुङ्गव ॥ दैवं चेष्टयते सर्वं हतं दैवेन हन्यते ॥२३॥ वानराणां विनाशोयं रक्षसां च महाहवे ॥ तव चैव महाबाहो दैवयोगादुपागतः ॥ २४ ॥ ॥

ते त्वया । निर्यातिता प्रत्यर्पिता । मूलहरं मूलभूतत्वत्पर्यन्तहरम् । वृत्तेति ॥ यदि सीता निर्यातिता स्यात्तदा भ्राता बिभीषणो वृत्तकामः निष्पन्नमनोरथः भवेत् । स्ववाक्यकरणादिति भावः । तथा रामः मित्रकुलं कुलमित्रम् । शत्रवः देवादयः ॥ २० ॥ २१ ॥ त्वयेति ॥ तुल्यमिति । युगपदित्यर्थः ॥ २२ ॥ एवं रावणस्वेच्छाचरणस्य राक्षसनाशहेतुतामभिधाय संप्रति तन्निरासपूर्वकं दैवकारितत्वं दर्शयति–न कामकार इति ॥ कामरः स्वच्छन्दकरणम्, कामं प्रकामं नास्ति । कुतः दैवं चेष्टयते, सर्वं हतं दैवेन हन्यते । दैवेन हतमन्येन हन्यते ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥

नैवेति ॥ उद्यता कार्योन्मुखी दैवगतिः अर्थादिना न निवर्तयितुं शक्या । कामेन स्वेच्छया ॥२५॥ विलेपुरिति ॥ कुरर्यः क्रौञ्च्यः ॥ २६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥ ॥
अथ मण्डोदरीप्रलापादि–तासामित्यादि॥विलपमानानां विलपन्तीनाम् । तथा विलपमानानामित्यन्वयः । दीना सती समुदैक्षत॥१॥ दशग्रीवमिति ॥ मण्डोदरी मण्डनभूतोदरी। कृशोदरीति यावत्। “ मडि, भूषायाम् ” इति धातोर्भावे कप् प्रत्ययः । मण्डं सारं सुन्दरमिति यावत् । तादृशोदरीत्येके।

नैवार्थेन न कामेन विक्रमेण न चाज्ञया ॥ शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता ॥ २५ ॥ विलेपुरेवं दीनास्ता राक्षसाधिपयोषितः॥ कुरर्य इव दुःखार्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः॥२६॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥११३॥
तासां विलपमानानां तथा राक्षसयोषिताम् ॥ ज्येष्ठा पत्नी प्रिया दीना भर्तारं समुदैक्षत ॥ १ ॥ दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा ॥ पतिं मण्डोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥२॥ ननु नाम महाभाग तव वैश्रवणानुज ॥ क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः ॥३॥ ऋषयश्च महीदेवा गन्धर्वाश्च यशस्विनः ॥ ४ ॥ ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥ स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः ॥ न व्यपत्रपसे राजन् किमिदं राक्षसर्षभ ॥ ५ ॥ कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम् ॥ अविषह्यं जघान त्वां मानुषो वनगोचरः ॥ ६ ॥ ॥

मण्डा पृथुपिपीलिका तस्या इव उदरं यस्याः सा मण्डोदरीत्यप्याहुः ॥ २ ॥ यद्यपि समरमरणं शूराणां श्लाघ्यमिति न वीरपत्नी तच्छोचितुमर्हा, तथाप्यसमानान्मानुषात् प्राप्तमिदं लज्जावहमिति शोचति–ननु नाम तवेत्यादिना सार्धश्लोकेन ॥ नाम प्रसिद्धौ। महीदेवाः ब्राह्मणाश्च। त्रस्यन्तीत्यनुषङ्गः । स कथं मानुषेण जित इति शेषः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ननु नामेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ चारणाश्च आकाशचारिणश्च । न व्यपत्रपसे । मानुषविजयेनेति शेषः । किमिदं किमेवमवस्थानकारणमित्यर्थः ॥ ५ ॥ कथमिति ॥ वीर्येण त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रियान्वितं त्वां मानुषस्तत्रापि वनगोचरः कथं जघान। अद्भुतमित्यर्थः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

मानुषाणामविषये चरतः कामरूपिणः ॥ विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ॥ ७ ॥ न चैतत्कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे ॥ सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्शनम् ॥ ८ ॥ यदैव च जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ खरस्तव हतो भ्राता तदैवासौ न मानुषः ॥ ९ ॥ यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशां सुरैरपि ॥ प्रविष्टो हनुमान्वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् ॥ १० ॥ यदैव वानरैर्घोरैर्बद्धः सेतुर्महार्णवे ॥ तदैव हृदयेनाहं शङ्के रामममानुषम् ॥ ११ ॥ अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः ॥ मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥ १२ ॥ अथवा वासवेन त्वं धर्षितोऽसि महाबल ॥ वासवस्य कुतः शक्तिस्त्वां द्रष्टुमपि संयुगे ॥ १३ ॥ ॥

तदेवासंभावितत्वं निरूपयति–मानुषाणामिति ॥ अविषये अगम्यदेशे ॥७॥ न चैतदिति ॥ सर्वतः समुपेतस्य सर्वयुद्धोपकरणैः पूर्णस्य तव, तेन रामेण अभिमर्शनम् आक्रमणमिति यत्, एतद्रामस्य न श्रद्दधामि रामसंबन्धिकर्मेति न श्रद्दधामि ॥ ८ ॥ रावणवधस्य मानुषेणाकृतत्वे केन कृतः स्यादित्याशङ्क्य पक्षान्तरमुपक्षिपति–यदैवेत्यादिना ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ एवं सामान्यतो रामस्यामानुषत्वं प्रतिपाद्य उत्तरोत्तरोत्कृष्टयमेन्द्रादिदेवताविशेषत्वं प्रतिपादयति-अथवेत्यादिना ॥ मायां सीतारूपाम् । अप्रतितर्किताम् अपरिमेयरूपलावण्याम् ॥ १२ ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ न चैतत्कर्मेत्येतच्छ्लोकानन्तरं, यदैव च जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः । खरस्तव हतो भ्राता तदैवासौ न मानुषः ॥ यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशां सुरैरपि । प्रविष्टो हनुमान् वीर्यात् तदैव व्यथिता वयम् ॥ यदैव वानरैर्घोरैर्बद्धः सेतुर्महार्णवे । तदैव हृदयेनाहं शङ्के राममानुषम् ॥ अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः । मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥ अथवा वासवेन त्वं धर्षितोसि महाबल । वासवस्य कुतः शक्तिस्त्वां द्रष्टुमपि संयुगे ॥ इति पाठक्रमः । अन्यथा पाठस्तु लेखकप्रमादकृतः । रामस्य सामान्यतो मानुषत्वप्रतिपादनानन्तरमुत्तरोत्तरोत्कृष्टयमेन्द्रादिदेवताविशेषत्वप्रतिपादनौचित्यात् । यदैवेति । न मानुषः । निश्चित इति शेषः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

यदैवेत्यादिना सामान्यतोपन्यस्तममानुषत्वमेकत्र व्यवस्थापयितुमाह–व्यक्तमित्यादिना ॥ महायोगित्वादिगुणविशिष्टो यो विष्णुः स एवैष राम इति स्त्रीवचनमुखेनैव विष्णोः सर्वदेवतापारम्यं भगवान् वाल्मीकिर्व्यवस्थापयति । महान् योगः लोकरक्षणोपायचिन्ता सोस्यास्तीति महायोगी । परमश्चासावात्मा च परमात्मा । सर्वजीवात्मभ्य उत्कृष्ट इत्यर्थः । परमत्वमस्य कथमित्याशङ्क्य षड्भावविकाररहितत्वादित्याह–सनातन इति । सदास्तित्वयुक्त इत्यर्थः । अनादिमध्यनिधनः जन्मवृद्धिविनाशशून्यः । शाश्वतः अपक्षयरहितः । ध्रुवः परिणामरहितः । एतैर्विशेषणैर्जीवगतषड्भावविकारशून्यत्वमुक्तम् । तथोक्तं विष्णुपुराणे–अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्धिजन्मभिः । वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् इति ॥ परमात्मशब्दार्थं विवृणोति–महतः परमो महानिति । महान् इन्द्रादिः । तस्मान्महान् ब्रह्मादिः । तस्मादपि महानित्यर्थः । स्थानविशेषेणापि परमत्वमाह–तमस इति ॥ तमसः प्राकृतमण्डलस्य, परमः परस्तादप्राकृते वैकुण्ठे विद्यमानः । "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" "आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे "इति श्रुतेः । सर्वत्र व्याप्तस्य कथं

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ॥ अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ॥ १४ ॥
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ॥ श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ॥ १५ ॥

तत्रावस्थानमित्याशङ्क्य विग्रहद्वारेत्याह–शङ्खेत्यादिना । सदा शङ्खचक्रधारणप्रयोजनमाह–धातेति । धाता पोषकः । "डुधाञ्, धारणपोषणयोः" इत्यस्मात्तृच् । सर्वदा रक्षणार्थमायुधधारणमित्यर्थः । तथोक्तमभियुक्तैः–पातु प्रणतरक्षायां विलम्बमसहन्निव । सदा पञ्चायुधीं बिभ्रत्स नः श्रीरङ्गनायक इति ॥ तस्य सर्वेश्वरत्वद्योतकं लक्षणमाह–श्रीवत्सवक्षा इति । श्रीकरो वत्सः श्रीवत्सः स च रक्तवर्णो मत्स्यविशेषः, सः वक्षसि दक्षिणे यस्य स श्रीवत्सवक्षाः । जगद्रक्षणोपयोगिपुरुषकारसंबन्धमाह–नित्यश्रीरिति । नित्या अनपायिनी श्रीर्यस्यासौ नित्यश्रीः । विष्णोः श्रीरनपायिनीत्यन्यत्रोक्तेः । अत एवाजय्यः जेतुमशक्यः । "क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे" इति निपातनात् । एष रामः एवंभूतः परमात्मा, व्यक्तं निश्चितमिति संबन्धः ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ व्यक्तमेषः परिशेषतः प्रमाणेन निश्चितो दशग्रीवहन्ता रामः । महायोगी महासन्नहनः आश्रितत्राणसन्नाहवान् । महायोगी विविधविचित्रजगन्निर्माणोपायचतुरः । महायागी " बहुस्यां प्रजायेयेति " इत्याद्युक्तबहुभवनसंकल्पवान् । " सोभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः" इति मनुस्मरणात् । महायोगी जगन्निर्माणोपयुक्तप्रकृतिपुरुषकारकर्मसंसर्गवान् । महायोगी शरणागतरक्षणादिष्वसंचाल्ययुक्तिमान् । योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिष्वित्यमरः ।

परमात्मा चेतनाचेतनशरीरः। सकलशरीरत्वप्रसक्तदोषासंस्पर्शमाह–सनातन इति । अनादिमध्यनिधनः आदिमध्यान्तशून्यः । महतः परमो महान् । "अणोरणीयान् महतो महीयान्" इत्याद्युक्तपरममहत्त्ववान् । तमसः परमः अक्षरात्परतः परः । " यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः " इति श्रुतिस्मृतिभ्यां तमसः परमः । " आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् " इत्युक्तपरमपदवासी । धाता भूतभविष्यद्वर्तमानकालावच्छिन्नसकलजगन्निर्माता । "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इति श्रुतेः। धाता स्थितिकर्ता। सा च स्थितिरनेकरूपा जगद्विविधकरणेन। "डुधाञ्, धारणपोषणयोः" इति धातोः धारणं प्रशासनाधीनलोकत्वम्।"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासन" इत्यादिश्रुतेः। एवं कारणस्वरूपमुपास्यं तदुपयुक्ता गुणाश्चोक्ताः। अथ दिव्यमङ्गलविग्रहयोगमाह–शङ्खचक्रगदाधर इति। अनेन उपास्यत्वानुगुणशरणागतविरोधिनिरसनजागरूकत्वमुक्तम् । श्रीवत्सवक्षाः श्रीवत्सकौस्तुभादीनां नित्य-

मानुषं वपुरास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः ॥ १६ ॥
सर्वलोकेश्वरः साक्षाल्लोकानां हितकाम्यया ॥ सराक्षसपरीवारं हतवांस्त्वां महाद्युतिः ॥ १७ ॥

त्वाद्रुद्रादिवैलक्षण्यमुक्तम् । नित्यश्रीरिति । नित्या अनपायिनी श्रीर्यस्य सः। अत्र विग्रहनित्यत्वमेवोक्तं, स्वरूपनित्यत्वस्य साधारणप्राप्तत्वात्। नित्यैवैषा जगन्मातेति यावत् । श्रीसंबन्धादुत्तेजितपराभिभवनसामर्थ्यमाह–अजेय इति। अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजेति ह्युक्तम्। अजेयः उपासकव्यतिरिक्तैर्जेतुमशक्यः अजेयः। अप्रधृष्यश्च संग्रामे सेन्द्रैरपि सुरासुरैरित्याद्युक्तरीत्या जेतुमशक्यः। शाश्वतः त्रिविधपरिच्छेदरहितः विकारशून्यश्च। ध्रुवः अप्रकम्प्यः। अत्र धातेति रूढ्या विशेषणनिर्देशः। अनादिनिधनो धातेति सहस्रनामपाठात्। नित्यश्रीरिति च॥१४॥१५॥एवंभूतस्य परमात्मनः किमर्थमेवं व्यापार इत्यत्राह द्वाभ्याम्–मानुषमित्यादि ॥ सर्वलोकेश्वरः सर्वलोकानां नियन्ता अनिष्टनिवृत्तीष्टप्रापणयोः कर्ता। विष्णुः विष्णुसकाशादविनाशित्ववरं परिहर्तुं मानुषं वपुः आस्थाय परिगृह्य, साक्षात् अव्यवधानेन, लोकानां हितकाम्यया लोकहितेच्छया, सर्वलोकविरोधिनं त्वां हतवान्। व्यक्तमित्यत्रानुषज्यते ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

त्वद्दोषकृत एवायं वध इत्याह—इन्द्रियाणीति ॥ १८॥ एवं सर्वज्ञा त्वं पूर्वं किमिति नोक्तवतीत्यत्राह—क्रियतामिति ॥ न गृह्णासि नागृह्णाः । व्युष्टिः फलम् । व्युष्टिः फले समृद्धौ चेत्यमरः ॥ १९ ॥ अकस्मादिति ॥ अकस्मान्निर्हेतुकं सीतामुद्दिश्य अभिकामोसि अभिलाष्यासि, तां प्रति त्वदभिलाषः अयुक्त इत्यर्थः ॥ २० ॥ अयुक्ततामेवाह—अरुन्धत्या इति ॥ विशिष्टाम् उत्कृष्टाम् । मान्यामित्यनेन न केवलमरुन्धत्यादिवत् पातिव्रत्यमात्रं, किंतु मातृत्वं चेत्युच्यते । असदृशम् अनुचितम् ॥ २१ ॥ सा पतिव्रता चेत् किमर्थं न दग्धवतीत्यत्राह—वसुधाया इत्यादिसार्धश्लोकद्वयेन ॥ वसुधायाश्च वसुधाम् अत्यन्तक्षमावतीमित्यर्थः । श्रीमित्यत्र इयङभाव आर्षः । सर्वसंपदधिष्ठात्रीमित्यर्थः । भर्तृवत्सलां पतिव्रताम् । सर्वानवद्याङ्गीम् अनवद्यस-

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया ॥ स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः ॥ १८ ॥ क्रियतामविरोध-
श्च राघवेणेति यन्मया ॥ उच्यमानो न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता ॥१९॥ अकस्माच्चाभिकामोसि सीतां राक्षस-
पुङ्गव ॥ ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च ॥ २० ॥ अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते ॥ सीतां
धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम् ॥ २१ ॥ वसुधायाश्च वसुधां श्रियः श्रीं भर्तृवत्सलाम् ॥ सीतां सर्वानवद्याङ्गी-
मरण्ये विजने शुभाम् ॥ २२ ॥ आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनात्मस्वदूषण ॥ अप्राप्य चैव तं कामं मैथिलीसंगमे
कृतम् ॥ पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोसि मे प्रभो ॥ २३ ॥ ॥ ॥

र्वाङ्गीम् । अरण्ये विजने स्थितामिति शेषः । दीनां त्वदनभिलाषिणीमित्यर्थः । छद्मना मारीचमुखेन आनयित्वा । तं पूर्वमुक्तम् । पतिव्रतायास्तस्यास्तपसा दग्धोसि । मे प्रभो इत्यनेन अस्य सर्वस्य मद्दौर्भाग्यमेव निमित्तमिति द्योत्यते । आत्मस्वदूषणेत्यनेन निजस्वभूताया मम त्यागे त्वद्दूषणमेवहेतुः न त्वत्सौन्दर्यहानिरित्युच्यते ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ अरण्ये विजने शुभामित्यस्यानन्तरम्, आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनात्मस्वदूषण । अप्राप्य चैव तं कामं मैथिलीसङ्गमे कृतम् ॥ पतिव्रतायाः सहसा नूनं दग्धोसि मे प्रभो । इत्येवं पाठक्रमः । अन्यथा पाठस्तु लेखकप्रमादकृतः ॥२२॥२३॥

तदैवेति॥तनुमध्यमां धर्षयन् सन् त्वं तदैव न दग्ध इति यत् तेन माहात्म्येन त्वत्तो देवा बिभ्यतीति संबन्धः। भीता देवाः कथं ते धर्षणफलं दाहं दद्युरिति भावः ॥ २४ ॥ अवश्यमिति ॥ कर्ता घोरं पापस्य फलं काले पर्यागते प्राप्ते अवश्यं लभते, नात्र संशयः ॥ २५ ॥ शुभकृदिति ॥ पापं दुःखम् ॥ ॥ २६ ॥ सन्तीति ॥ तुभ्यम् तव । ततः तस्याः सीतायाः । न बुध्यसे। अभ्यधिकत्वमिति शेषः ॥ २७ ॥ न कुलेनेति ॥ मैथिली मया कुलेन तुल्या

तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् ॥ देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥२४॥ अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ॥ घोरं पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ॥२५॥ शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते ॥ बिभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम् ॥ २६ ॥ सन्त्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्ततः ॥ अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥ २७ ॥ न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली ॥ मयाधिका वा तुल्या वा त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥ २८ ॥ सर्वथा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः ॥ तव तावदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ॥ २९ ॥ सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः ॥ ३० ॥ मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥ अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ॥ ३१ ॥ कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ॥ देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ॥३२॥ विमानेनानुरूपेण यायाम्यतुलया श्रिया॥ पश्यन्ती विविधान् देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा ॥ भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात्तव ॥ ३३ ॥ सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिक् राज्ञां चञ्चलाः श्रियः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥

अधिका वा न इत्येवं योज्यम् । दाक्षिण्येन विद्यासामर्थ्येन ॥२८॥ सर्वथेति ॥ अलक्षणः निर्निमित्तः । मैथिल्याः कृतं मैथिलीकृतम् । मैथिल्यानयनमित्यर्थः । तदेव लक्षणं निमित्तं यस्य स तथा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कैलास इत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ याहं कैलासादिषु विहृत्य विमानेन विविधान् देशान् पश्यन्ती यामि अथ सा भ्रंशितास्मीत्येवं संबन्धः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सैवेत्यर्धम् ॥ सैव एवंभुक्तभोगैव। अन्येव अस्पृष्टभोगेव ॥३४॥

एवं रावणस्य मतिं राज्यश्रियं च निन्दित्वा भर्तृसौन्दर्यवैपरीत्यं शोचति—हा राजन्नित्यादिश्लोकचतुष्टयमेकान्वयम् ॥ सुत्वक् स्निग्धत्वक् । समुन्नसं समुन्नतनासिकम् । कान्तिः प्रभा । श्रीः सौन्दर्यम् । द्युतिः तेजः । किरीटकूटोज्ज्वलितं शिखरतुल्यकिरीटविराजितम् । ताम्रास्यं रक्ताधरमित्यर्थः । चारु सुन्दरं तव यद्वक्त्रं मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा अभ्राजत, तदेवेदं वक्त्रमद्य न भ्राजते । अप्रकाशनिमित्तमाह—रामेति॥ विस्रवैः प्रवाहैः । मेदः वसा ।

हा राजन् सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वक् समुन्नसम् ॥ कान्तिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मादिवाकरैः ॥ ३५ ॥ किरीटकूटोज्ज्वलितं
ताम्रास्यं दीप्तकुण्डलम् ॥ मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा यत्पानभूमिषु ॥ ३६ ॥ विविधस्रग्धरं चारु वल्गुस्मितकथं
शुभम् ॥ तदेवाद्य तवेदं हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो ॥ ३७ ॥ रामसायकनिर्भिन्नं सिक्तं रुधिरविस्रवैः ॥ विशीर्णमेदोमस्तिष्कं
रूक्षं स्यन्दनरेणुभिः ॥ ३८ ॥ हा पश्चिमा मे संप्राप्ता दशा वैधव्यकारिणी ॥ या मयासीन्न संबुद्धा
कदाचिदपि मन्दया ॥ ३९ ॥ पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ॥ पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्येवं गर्विता
भृशम् ॥ ४० ॥ दृप्तारिमर्दनाः शूराः प्रख्यातबलपौरुषाः॥ अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्दृढा ॥४१ ॥ तेषामेवंप्रभावानां
युष्माकं राक्षसर्षभ ॥ कथं भयमसंबुद्धं मानुषादिदमागतम् ॥ ४२ ॥ स्निग्धेन्द्रनीलनीलं तु प्रांशुशैलोपमं
महत् ॥ केयूराङ्गदवैडूर्यमुक्तादामस्रगुज्ज्वलम् ॥४३॥ कान्तं विहारेष्वधिकं दीप्तं संग्रामभूमिषु ॥ भात्याभरणभाभिर्यद्विद्युद्भिरिव
तोयदः ॥४४॥ तदेवाद्य शरीरं ते तीक्ष्णैर्नैकैः शरैश्चितम् ॥ पुनर्दुर्लभसंस्पर्शं परिष्वक्तुं न
शक्यते ॥ ४५ ॥ श्वाविदः शललैर्यद्वद्बाणैर्लग्नैर्निरन्तरम् ॥ स्वर्पितैर्मर्मसु भृशं संछिन्नस्नायुबन्धनम् ॥ क्षितौ निपतितं
राजन् श्यावं रुधिरसच्छवि ॥ ४६ ॥

मस्तिष्कं मांसविशेषः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हेति ॥ मे वैधव्यकारिणी ते पश्चिमावस्था मृतिः संप्राप्ता ॥ ३९ ॥ अस्थिरस्य देहस्य विनाशः कुतो न संबुद्ध इत्यत्राह—पितेति ॥ दानवराजः मयः ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तेषामिति ॥ तेषु युष्मास्वेवंप्रभावेष्वित्यर्थः । मयस्य मरणाभावेपि इदानीम कार्यकरत्वादेवमुक्तम् । असंबुद्धं पूर्वमचिन्तितम् ॥ ४२ ॥ स्निग्धेत्यादि सार्धश्लोकचतुष्टयमेकान्वयम् ॥ प्रांशुशैलः उन्नतशैलः । अङ्गदवैडूर्यं वैडूर्यम-

याङ्गदमिति केयूराद्भेदः। यच्छरीरं भाति आलिङ्गनयोग्यमभूत्। तदेव शरीरं दुर्लभसंस्पर्शम् सत् पुनः परिष्वक्तुं न शक्यते। दुर्लभसंस्पर्शत्वमुपपादयति–श्वाविद इत्यादिना ॥ श्वाविदः शल्यमृगस्य, शललैः तल्लोमभिः, यद्वत् यथा। कण्टकाकारश्वाविल्लोमतुल्यैरिति शरविशेषणम्। मर्मसु स्वर्पितैः क्षितैः। तत्रैव मर्मसु निरन्तरं लग्नैरिति योजना। श्यावं कपिशवर्णम्। श्वावित्तु शल्यस्तल्लोम्नि शलली शललं शलम्। श्यावः स्यात्कपिश

वज्रप्रहाराभिहतो विकीर्ण इव पर्वतः ॥ ४७ ॥ हा स्वप्नः सत्यमेवेदं त्वं रामेण कथं हतः ॥ त्वं मृत्योरपि मृत्युः स्याः
कथं मृत्युवशं गतः ॥ ४८ ॥ त्रैलोक्यवसुभोक्तारं त्रैलोक्योद्वेगदं महत् ॥ जेतारं लोकपालानां क्षेप्तारं शंकरस्य च
॥ ४९ ॥ दृप्तानां निगृहीतारमाविष्कृतपराक्रमम् ॥ लोकक्षोभयितारं च नादैर्भूतविराविणम् ॥ ५० ॥ ओजसा दृप्त-
वाक्यानां वक्तारं रिपुसन्निधौ ॥ स्वयूथभृत्यवर्गाणां गोप्तारं भीमकर्मणाम् ॥ ५१ ॥ हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च
सहस्रशः ॥ निवातकवचानां च संग्रहीतारमीश्वरम् ॥ ५२ ॥ नैकयज्ञविलोप्तारं त्रातारं स्वजनस्य च ॥ धर्मव्यवस्था-
भेत्तारं मायास्रष्टारमाहवे ॥ ५३ ॥ देवासुरनृकन्यानामाहर्तारं ततस्ततः ॥ शत्रुस्त्रीशोकदातारं नेतारं स्वजनस्य च
॥ ५४ ॥ लङ्काद्वीपस्य गोप्तारं कर्तारं भीमकर्मणाम् ॥ अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिनां वरम् ॥ ५५ ॥ एवं-
प्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम् ॥ स्थिरास्मि या देहमिमं धारयामि हतप्रिया ॥ ५६ ॥ शयनेषु महार्हेषु शयित्वा
राक्षसेश्वर ॥ इह कस्मात्प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुपाटलः ॥ ५७ ॥

इत्युभयत्राप्यमरः। स्नायवः धमन्यः। रुधिरसच्छवि रुधिरतुल्यकान्ति। स्वकान्तिं विहाय रुधिरकृतकान्त्यन्तरमित्यर्थः ॥४३॥४४॥४५॥४६॥ वज्रेत्यर्धम् ॥ असीति शेषः ॥ ४७ ॥ हेति ॥ इदं ते मरणं स्वप्नः स्वप्नानुभवविषयः सत्यमेव, नात्र संशयः। तत्र हेतुमाह–त्वमिति। तत्रापि हेतुमाह–त्वं मृत्योरिति॥४८॥त्रैलोक्येत्यादि हतप्रियेत्यन्तं श्लोकाष्टकमेकं वाक्यम्॥ एवंभूतं भर्तारं दृष्ट्वा या इमं देहं धारयामि साहं स्थिरास्मि वज्रसारमयास्मि।

कथमन्यथा न शीर्येदिति भावः। महदिति त्रैलोक्यवसुविशेषणम्। यद्वा त्रैलोक्योद्वेगदं महद्वसु महत् यथा भवति तथा त्रैलोक्योद्वेगदमिति वा। उद्वेगो भयसंभ्रमः। शंकरस्य क्षेप्तारं कैलासचलनद्वारा। स्वयूथाः स्वबन्धवः निवातकवचा नाम केचनासुराः। तेषां संग्रहीतारं तैः सख्यकृतमित्यर्थः। स्वजनस्य स्वाश्रितजनस्य, धर्मव्यवस्था आचारव्यवस्था। यज्ञकर्मभेत्तृत्वकथनेनातीव स्वतन्त्रत्वमुक्तम्। कन्यानामिति। स्त्रीमात्रमुच्यते। स्वजनस्य नेतारमिति। पूर्वात्रानिष्टनिवर्तकत्वमुक्तम्। अत्रेष्टप्रापकत्वम्। भीमकर्मणां स्वशिरोहवनादीनाम् ॥ ४९ ॥५०॥५१॥५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥५७॥ यदेति ॥ शस्तः हतः। तदा अभिहता प्रहृता। अद्य अस्मिन् त्वद्धनने सति तीव्रं निपातिता। मारितेत्यर्थः ॥ ५८ ॥ नाहमिति ॥ बन्धुजनैः हीनाहं न

यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्युधि ॥ तदास्म्यभिहता तीव्रमद्य त्वस्मिन्निपातिता ॥५८ ॥ नाहं बन्धुजनैर्हीना हीना नाथेन तु त्वया ॥ विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वतीः समाः ॥५९ ॥ प्रपन्नो दीर्घमध्वानं राजन्नद्यासि दुर्गमम् ॥ नय मामपि दुःखार्तां न जीविष्ये त्वया विना ॥ ६० ॥ कस्मात्त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि ॥ दीनां विलपितैर्मन्दां किंवा मां नाभिभाषसे ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो मामिहानवकुण्ठिताम् ॥ निर्गतां नगरद्वारात्पद्भ्यामेवागतां प्रभो ॥ ६२ ॥ पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावकुण्ठितान् ॥ बहिर्निष्पतितान् सर्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि ॥ ६३ ॥ अयं क्रीडासहायस्तेऽनाथो लालप्यते जनः ॥ न चैनमाश्वासयसे किंवा न बहुमन्यसे ॥ ६४ ॥ यास्त्वया विधवा राजन् कृता नैकाः कुलस्त्रियः ॥ पतिव्रता धर्मपरा गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः ॥ ६५ ॥

शोचिष्ये, यदि त्वं स्थितः स्याः। किंतु त्वया हीना अत एव कामभोगैर्हीना शोचिष्य इति योजना॥५९॥प्रपन्न इति॥ दीर्घमध्वानं वीरस्वर्गम् ॥ ६०॥ कस्मादिति ॥ विलपितैः प्रलापैः दीनां, मन्दाम् अभाग्याम् ॥६१॥ दृष्ट्वेति ॥ अनवकुण्ठिताम् अनावरणाम्। इहागतामित्यन्वयः ॥ ६२ ॥ पश्येति ॥ इष्टदारेति संबुद्धिः। भ्रष्टलज्जावकुण्ठितान् हीनलज्जावकुण्ठितान् ॥६३॥ अयमिति ॥ नाथो लालप्यत इति पाठे अनाथ इति छेदः ॥ ६४ ॥ यास्त्वयेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ परवशं परवशत्वम्। शत्रुवशत्वमिति यावत् ॥ ६५ ॥

त्वयेत्यर्धम् ॥ त्वया विप्रकृताभिः परिभूताभिः । तदा भर्तृवधकाले, यच्छप्तं तत् आगतम् फलदमासीदित्यर्थः ॥६६॥ प्रवाद इति ॥ पतिव्रतानामश्रूणि अकस्मान्निर्हेतुकतया भूतले न पतन्ति । पतन्ति चेत् किंचित् कुर्वन्त्येव । इत्येवं प्रायशः प्रवादः जनवार्ता त्वां प्रत्येव सत्यः यथार्थो जातः । पतिव्रतानामास्रपातकरणमनर्थावहमित्येवं जनवादः तथा कुर्वति त्वयि दृष्टफल आसीदित्यर्थः ॥ ६७ ॥ कथमिति ॥ शौण्डीर्यमानिना शूरमानिना ॥ ६८ ॥

त्वया विप्रकृताभिर्यत्तदा शप्तं तदागतम् ॥६६॥ प्रवादः सत्य एवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप ॥ पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले ॥ ६७ ॥ कथं च नाम ते राजन् लोकानाक्रम्य तेजसा ॥ नारीचौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौण्डीर्यमानिना ॥ ६८ ॥ अपनीयाश्रमाद्रामं यन्मृगच्छद्मना त्वया ॥ आनीता रामपत्नी सा तत्ते कातर्यलक्षणम् ॥ ६९ ॥
कातर्यं च न ते युद्धे कदाचित्संस्मराम्यहम् ॥ तत्तु भाग्यविपर्यासान्नूनं ते पक्वलक्षणम् ॥ ७० ॥ अतीतानागतार्थज्ञो वर्तमानविचक्षणः ॥ मैथिलीमाहृतां दृष्ट्वा ध्यात्वा निश्वस्य चायतम् ॥ ७१ ॥ सत्यवाक् स महाभागो देवरो मे
यदब्रवीत् ॥ सोयं राक्षसमुख्यानां विनाशः पर्युपस्थितः ॥ कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिना ॥ ७२ ॥ निर्वृत्तस्त्वत्कृतेऽनर्थः सोयं मूलहरो महान् ॥ त्वया कृतमिदं सर्वमनाथं रक्षसां कुलम् ॥७३॥ न हि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुषः ॥ स्त्रीस्वभावात्तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते ॥७४॥ सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः ॥
आत्मानमनुशोचामि त्वद्वियोगेन दुःखिता ॥७५॥ ॥ ॥ ॥

अपनीयेति ॥ त्वया कर्त्रा, मृगच्छद्मना मृगरूपकपटोपायेन । कातर्यलक्षणं कातर्यसूचनम् ॥६९॥ कातर्यमिति ॥ ते युद्धे कातर्यम् कदाचिदपि न स्मरामि न जानामीत्यर्थः । एवमकातरप्रकृतेस्तव भाग्यविपर्यासात् यत्कातर्यं चौर्यरूपमस्ति तत् पक्वलक्षणं, पक्वत्वलक्षणं विनाशज्ञापकमिति यावत् । महतो हीनकृत्यं हानिकरमिति लोकप्रवादादिति भावः ॥ ७० ॥ अतीतेत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ देवरो यदब्रवीत् अयं तद्वाक्यार्थभूतो विनाशः प्रसङ्गिना प्रसक्तेन व्यसनेन हेतुना पर्युपस्थितः॥७१॥७२॥निर्वृत्त इति॥ त्वत्कृते त्वन्निमित्तम्।निर्वृत्तः प्रवृत्तः॥७३॥न हीति॥कारुण्ये दैन्ये ॥७४॥७५॥

सुहृदामिति ॥ कार्त्स्न्येनोक्तं हितं त्वया न श्रुतमित्यनुषज्यते ॥७६॥ हेत्विति ॥ हेत्वर्थयुक्तं युक्तिप्रयोजनाभ्यां युक्तम्। विधिवत् शास्त्रोक्तप्रकारवत्। श्रेयस्करं हितभूतम्। अदारुणं सान्त्वपूर्वकम् । बिभीषणेनाभिहितं वचनं त्वया हेतुमद्युक्तिमद्यथा भवति तथा न गृहीतम्। ज्ञातित्वेन मद्व्यसनं काङ्क्षसे इत्यादिना हेतूपपादनपूर्वकं न गृहीतमित्यर्थः ॥७७॥ मारीचेति ॥ मारीचकुम्भकर्णाभ्यां सह मम पितुर्मयस्य वाक्यं न श्रुतम्। तस्य अश्रवणस्य ईदृशं

सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया ॥ भ्रातॄणां चापि कार्त्स्न्येन हितमुक्तं त्वयानघ ॥७६॥ हेत्वर्थयुक्तं विधिवत् श्रेयस्करमदारुणम् ॥ बिभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत्त्वया ॥ ७७ ॥ मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तदा ॥ न श्रुतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम् ॥ ७८ ॥ नीलजीमूतसंकाश पीताम्बर शुभाङ्गद ॥ ७९ ॥ स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिराप्लुतः ॥ प्रसुप्त इव शोकार्ता किं मां न प्रतिभाषसे ॥ ८० ॥ महावीर्यस्य दक्षस्य संयुगेष्वपलायिनः ॥ यातुधानस्य दौहित्र किं च मां नाभ्युदीक्षसे ॥ ८१ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे प्राप्ते परिभवे नवे ॥ अद्य वै निर्भया लङ्कां प्रविष्टाः सूर्यरश्मयः ॥ ८२ ॥ येन सूदयसे शत्रून् समरे सूर्यवर्चसा ॥ वज्रो वज्रधरस्येव सोयं ते सततार्चितः ॥ ८३ ॥ रणे शत्रुप्रहरणो हेमजालपरिष्कृतः ॥ परिघो व्यवकीर्णस्ते बाणैश्छिन्नः सहस्रधा ॥ ८४ ॥ प्रियामिवोपगुह्य त्वं शेषे समरमेदिनीम् ॥ अप्रियामिव कस्माच्च मां नेच्छस्यभिभाषितुम् ॥ ८५ ॥ ॥

फलम्। आगतमिति शेषः। अत्रानुवादान्मयोप्यस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥७८॥ नीलेत्यादि सार्धश्लोक एकान्वयः ॥ विनिक्षिप्य भूमौ प्रसार्य प्रसुप्त इव शेषे, शोकार्तां मां च किमिति न प्रतिभाषस इत्यन्वयः ॥७९॥८०॥ महावीर्यस्येति ॥ यातुधानस्य माल्यवतः। सुमालिनो वा। तत्संबन्धकीर्तनमप्रतिहतकुलप्रभावप्रकटनार्थम् ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ येनेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ ते त्वया, सततार्चितः, बाणैः रामबाणैश्छिन्नः, वज्रधरस्य वज्र इव स्थितः ते परिघः अद्य विशीर्णः ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ॥ ॥ ॥

धिगिति ॥ यस्या मम हृदयं न फलते न स्फुटति तादृशीं मां धिगित्यन्वयः॥८६॥इतीति ॥ अवस्कन्नहृदया विलीनहृदया॥८७॥ कश्मलेति ॥ कश्मलेन अभिहता मूर्छिता । सन्ना कृशा ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ नेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ दशाविभागपर्याये दशानां बाल्यकौमारयौवनवार्धकाद्यवस्थानां विभागस्य भेदस्य पर्याये प्राप्तौ विषये, लोकानामध्रुवा स्थितिः राज्ञां चञ्चलया श्रिया सह ते त्वया सुविदिता नेति काकुः । सुविदितैवेत्यर्थः ।

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा ॥ त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ॥ ८६ ॥ इत्येवं विलपन्त्येव बाष्पव्याकुललोचना ॥ स्नेहावस्कन्नहृदया देवी मोहमुपागमत् ॥ ८७ ॥ कश्मलाभिहता सन्ना बभौ सा रावणोरसि ॥ संध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता विद्युदिवासिते ॥ ८८ ॥ तथागतां समुत्पत्य सपत्न्यस्ता भृशातुराः ॥ पर्यवस्थापयामासू रुदन्त्यो रुदतीं भृशम् ॥ ८९ ॥ न ते सुविदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा ॥ दशाविभागपर्याये राज्ञां चञ्चलया श्रिया ॥ ९० ॥ इत्येवमुच्यमाना सा सशब्दं प्ररुरोद ह ॥ स्नापयन्ती त्वभिमुखौ स्तनावस्राम्बुविस्रवैः ॥ ९१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे रामो बिभीषणमुवाच ह ॥ संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रियश्चैता निवर्तय ॥ ९२ ॥ तं प्रश्रितस्ततो रामं श्रुतवाक्यो बिभीषणः ॥ विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ॥ रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं प्रत्यभाषत ॥ ९३ ॥ त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ॥ नाहमर्होस्मि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् ॥ ९४ ॥ ॥ ॥

लोकानां स्थितिरध्रुवेति राज्ञां श्रीश्चञ्चलेति च त्वया सुविदितैवेत्यर्थः । उच्यमाना बन्धुवृद्धादिभिरिति शेषः । अभिमुखौ उन्नतौ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ तमित्यादि॥प्रश्रितः विनयान्वितः । विमृश्य एतस्य यत् प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादादित्युक्तमङ्गीकृतं विचिन्त्येत्यर्थः । रामस्यैवानुवृत्त्यर्थं रामेणानुज्ञातोस्मि चेत्तदा करिष्यामि नान्यथेत्येवमनुवृत्त्यर्थम् ॥९३॥ त्यक्तेति॥ त्यक्तो धर्मो व्रतं च येन तम् । अनृतम् अनृतवादिनम् ॥९४॥

भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः॥रावणो नार्हते पूजां पूज्योपि गुरुगौरवात्॥९५॥नृशंस इति मां कामं वक्ष्यन्ति
मनुजा भुवि ॥ श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यान्ति सुकृतं पुनः ॥ ९६ ॥ तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः॥
बिभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥ ९७ ॥ तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभावाच्च मे जितम् ॥ अवश्यं तु क्षमं
वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर ॥ ९८ ॥ अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः ॥ तेजस्वी बलवान् शूरो संयुगेषु
च नित्यशः ॥ ९९ ॥ शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ॥ महात्मा बलसंपन्नो रावणो लोकरावणः ॥ १०० ॥
मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ॥ क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ १०१ ॥त्वत्सकाशाद्दशग्रीवः
संस्कारं विधिपूर्वकम् ॥ प्राप्तुमर्हति धर्मज्ञ त्वं यशोभाग्भविष्यसि ॥ १०२ ॥ ॥

भ्रातृरूप इति ॥ गुरुगौरवात् गुरुरिति गौरवात्, पूज्योपि उक्तदोषान्मत्तः पूजां नार्हति ॥ ९५ ॥ भ्रातुः संस्काराकरणे त्वां नृशंसं लोका वक्ष्यन्तीत्याशङ्क्य वदन्तु नाम त एव पुनस्तद्गुणं विचारयन्तो मां युक्तकारिणं वक्ष्यन्तीत्याह–नृशंस इति ॥ संस्काराकरणे नृशंस इति मां कामं मनुष्या वक्ष्यन्ति । तस्य रावणस्य । अगुणान् दोषान् श्रुत्वा असंस्कुर्वता विभीषणेन सुकृतं शोभनं कृतमिति वक्ष्यन्तीत्यर्थः ॥९६॥ तच्छ्रुत्वेति ॥ परमप्रीतः सत्यवचनकथनादिति भावः । अप्रीत इति वा छेदः ॥९७॥ दोषसद्भावेपि गुणबाहुल्यादयं संस्कारयोग्य इत्याह–तवापीत्यादिना ॥ तव त्वया, मे प्रियमपि प्रियमेव कार्यम् । चो हेतौ । यस्मात्कारणात्, त्वत्प्रभावात् मे मया जितम् तस्मान्मया त्वं क्षमं हितमेव वाच्यः। मत्प्रियत्वात् त्वद्धितत्वाच्च रावणसंस्कारः क्रियतामित्यर्थः । यद्वा तवापि मे प्रियं कार्यं मद्वैरिणो रावणस्यासंस्करणं नाम मम प्रियं तवापि कर्तव्यमेव । त्वत्प्रभावाच्च मे जितं पूर्वं च तस्य जयसाहाय्यरूपं प्रियं त्वया कृतम् । तथाप्यवश्यं तु क्षमं वाच्यः । यदर्हं तत्र नियोजनीयोसीत्यर्थः ॥ ९८ ॥ दोषिणः कथमर्हत्वमित्याशङ्क्य गुणाधिक्यादित्याह–अधर्मेत्यादिना ॥ ९९ ॥ संयुगेष्वपराजितत्वमुदाहरति–शतक्रत्विति ॥ १०० ॥ गुणबाहुल्येपि त्वद्वैरी कथं संस्कार्य इत्यत्राह–मरणेति॥ यथायं तव बन्धुस्तथा ममापि त्वद्वत् बन्धुरेवायमित्यर्थः ॥ १०१ ॥ त्वत्सकाशादिति ॥ यशोभागिति । पापकारिणमपि संस्कृतवानिति यशस्तव भविष्यतीत्यर्थः ॥ १०२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

राघवस्येति ॥ अनुरूपेण यायजूकानुगुणेन । अत्र संस्कारारम्भात् स्त्रीनिवर्तनमर्थसिद्धम् ॥१०३॥ चितामिति॥चन्दनकाष्ठानां संबन्धिनीम्। पद्मकमुशीरं च गन्धद्रव्यं प्रसिद्धम्। ब्राह्म्या वेदोक्तप्रक्रियया। रङ्कुः मृगविशेषः तत्संबन्धि चर्म राङ्कवं तदेवास्तरणं तेनावृतां चिताम् संवेशयाञ्चक्रुः योजयाञ्चक्रुः। रावणम् ऋत्विज इति च शेषः ॥ १०४ ॥ वर्तत इति ॥ पश्चिमः क्रतुः अन्त्येष्टिः। वर्तते अवर्तत। चितानिर्माणानन्तरमन्तिमेष्टिं चक्रुरित्यर्थः। राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधं पितृमेधसंस्कारं च, अनुक्रमं यथाक्रम् प्रचक्रुः ॥ १०५ ॥ संग्रहेणोक्तं संस्कारं प्रपञ्चयति—वेदिमित्यादिना ॥ दक्षिणप्राच्यां चिताया

राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो बिभीषणः ॥ संस्कारेणानुरूपेण योजयामास रावणम् ॥१०३॥ चितां चन्दनकाष्ठानां पद्मकोशीरसंवृताम् ॥ ब्राह्म्या संवेशयांचक्रू राङ्कवास्तरणावृताम् ॥ १०४ ॥ वर्तते वेदविहितो राज्ञो वै पश्चिमः क्रतुः ॥ प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुक्रमम् ॥१०५॥ वेदिं च दक्षिणप्राच्यां यथास्थानं च पावकम् ॥ पृषदाज्येन संपूर्णं स्रुवं सर्वे प्रचिक्षिपुः ॥ १०६ ॥ पादयोः शकटं प्रादुरन्तरूर्वोरुलूखलम् ॥ दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम् ॥ दत्त्वा तु मुसलं चान्यद्यथास्थानं विचक्षणाः ॥ १०७ ॥ शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥ तत्र मेध्यं पशुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥ १०८ ॥ परिस्तरणिकां राज्ञो घृताक्तां समवेशयन् ॥ १०९ ॥ ॥ ॥ ॥

आग्नेय भागे, वेदिं तत्र यथास्थानं पावकं च त्रेताग्निं च प्रचक्रुरित्यनुषज्यते। वेद्यां पश्चिमे गार्हपत्यं प्राच्यामाहवनीयम् दक्षिणतो दक्षिणाग्निं च स्थापयामासुरित्यर्थः। पृषदाज्येन दधिमिश्रघृतेन। पृषदाज्यं सदध्याज्यमित्यमरः। संपूर्णं स्रुवं होमपात्रं प्रचिक्षिपुः प्रतिपत्त्यर्थं चितायामिति शेषः ॥१०६॥ यज्ञपात्रान्तराणामपि प्रतिपत्तिं दर्शयति—पादयोरित्यादिना श्लोकत्रयेण ॥ शकटं सोमराजानयनशकटम्। उलूखलं यज्ञीयव्रीह्यवहननसाधनम्। अन्यत् स्थाल्यादिकम् दारुपात्रादिकं यथास्थानं दत्त्वा। शास्त्रदृष्टेन वेदविहितेन, महर्षिविहितेन स्मृत्युक्तेन, विधिना क्रमेण, तत्र चितासमीपे, मेध्यं पवित्रम्, पशुं छागं, हत्वा। हननं होमपर्यन्तस्याप्युलक्षणम्। परिस्तरणिकां परिस्तरणानि। जात्येकवचनम्। समवेशयन् चिक्षिपुरित्यर्थः ॥१०७॥१०८॥१०९॥

अथ शवालंकारमाह—गन्धैरित्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ अवकिरन्ति चितामिति शेषः ॥ ११० ॥ १११ ॥ अथ संस्कारमाह—ददाविति ॥ तस्य तस्मै रावणाय। विधियुक्तं मन्त्रयुक्तम् ॥११२॥ स्नात्वेत्यादि ॥ गम्यतामितीतिपर्यन्तं किंचिदधिकं श्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ दूर्वोदकमिश्रितान् तिलान् प्रेतावाहनार्थं भूमौ प्रदाय तत्र तस्मै रावणाय उदकं दत्त्वा ताः स्त्रियः गम्यतामिति पुनः पुनः सान्त्वमुक्त्वा, अनुनयामास पुरीं प्रापयामास॥ ११३ ॥ ॥ ११४ ॥ ताः सर्वा इत्युत्तरवाक्यादि ॥ रामपार्श्वमुपागम्येति । रणशिरसि हतत्वेन रावणस्याशौचाभावादागतः, अत एवोत्तरदिने राज्याभिषेकोयो-

गन्धैर्माल्यैरलंकृत्य रावणं दीनमानसाः ॥ बिभीषणसहायास्ते वस्त्रैश्च विविधैरपि ॥ ११० ॥ लाजैश्चावकिरन्ति स्म बाष्पपूर्णमुखास्तदा ॥ १११ ॥ ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं बिभीषणः ॥ ११२ ॥ स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दूर्वाभिमिश्रितान् ॥ उदकेन च संमिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम् ॥११३ ॥ प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं नमस्य च ॥ ताः स्त्रियोनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः ॥११४॥ गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा ॥ प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु बिभीषणः॥ रामपार्श्वमुपागम्य तदातिष्ठद्विनीतवत् ॥११५॥ रामोपि सह सैन्येन स सुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥ हर्षं लेभे रिपुं हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः ॥ ११६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

ते रावणवधं दृष्ट्वा देवगन्धर्वदानवाः ॥ जग्मुः स्वैस्वैर्विमानैस्ते कथयन्तः शुभाः कथाः ॥ १ ॥ रावणस्य वधं घोरं राघवस्य पराक्रमम् ॥ सुयुद्धं वानराणां च सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥ २ ॥ अनुरागं च वीर्यं च सौमित्रेर्लक्ष्मणस्य च॥ कथयन्तो महाभागा जग्मुर्हृष्टा यथागतम्॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥

ध्यागमनं चानुष्ठितम् । प्रथमायां रावणसंस्कारः ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ बिभीषणाभिषेकः—ते रावणवधमित्यादि ॥ अत्र क्रियाभेदात्तच्छन्दद्वयम् ॥१॥ शुभाः कथाः कथयन्त इत्यस्यैव विवरणम्—रावणस्य वधमित्यादि ॥ मन्त्रितं मन्त्रम् । सौमित्रेरिति तन्मातुः श्लाघनव्यञ्जनाय, अस्य जननी हि भाग्यवतीति ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ॥

राघवस्त्विति ॥ इन्द्रदत्तम् इन्द्रप्रेरितम् । शिखिप्रभम् अग्निप्रभम् । प्रत्यपूजयत् उपचचार ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ परिष्वज्येति ॥ प्रचोदितः विज्ञप्तः । बलालयं शिबिरम् ॥ ७ ॥ अब्रवीच्चेति ॥ सत्यसंपन्नत्वादिविशेषणं यथोक्तकारित्वद्योतनाय ॥ ८ ॥ बिभीषणमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ लङ्कायामभिषेचय लङ्कायां गत्वाभिषेचय । समुद्रतीर एव लङ्काराज्याभिषेके कृतेपि पुनर्विधानं रावणसिंहासनेभिषेकार्थम् । अनुरक्तमित्यनेन मित्रकृत्यमुक्तम् । भक्तमित्यनेन दास्यकृत्यम् । उपकारिणमित्यनेनानुरागभक्त्योः कार्यपर्यवसानमुक्तम् । परमः काम इत्यनेन शरणागतविभीषणाभिमतपरिपूरणमेव विजयस्य प्रधानप्रयोजनमित्यवगम्यते ॥ ९ ॥ १० ॥ एवमिति ॥ घटमिति जात्येकवचनम् ॥ ११ ॥ तमिति ॥ आनये आनयने । हस्त इत्यत्रापि जात्येकवचनम् । वानरेन्द्राणामिति बहुवचनप्रयोगात् ॥ १२ ॥ इतीति ॥ आदेशाद्धेतोरित्यर्थः । इति हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिष्वित्यमरः । वानरा वानरोत्तमा इति वचनं वानरोत्तमत्वेपि मानुषत्वव्यावर्तनाय । समुद्रात् समुद्रेभ्यः ॥ १३ ॥ १४ ॥

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम् ॥ अनुज्ञाय महाभागो मातलिं प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥ राघवेणाभ्यनुज्ञातो
मातलिः शक्रसारथिः ॥ दिव्यं तं रथमास्थाय दिवमेवारुरोह सः ॥५॥ तस्मिंस्तु दिवमारूढे सुरसारथिसत्तमे ॥ राघवः
परमप्रीतः सुग्रीवं परिषस्वजे ॥ ६ ॥ परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेन प्रचोदितः ॥ पूज्यमानो हरिश्रेष्ठैराजगाम
बलालयम् ॥७॥ अब्रवीच्च तदा रामः समीपपरिवर्तिनम् ॥ सौमित्रिं सत्यसंपन्नं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥८॥ बिभीषण-
मिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ॥ अनुरक्तं च भक्तं च मम चैवोपकारिणम् ॥९॥ एष मे परमः कामो यदीमं रावणा-
नुजम् ॥ लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं बिभीषणम् ॥१०॥ एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ॥ तथेत्युक्त्वा
तु संहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥११॥ तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् ॥ आदिदेश महासत्त्वान् समुद्रसलि-
लानये ॥१२॥ इति शीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते महाबलाः ॥ आगतास्तज्जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः ॥१३॥ ततस्त्वेकं
घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने ॥ घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्बिभीषणम् ॥ १४ ॥ ॥ ॥

लङ्कायामित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ अनेन रामनिदेशानन्तरमेव लक्ष्मणो विभीषणादिभिः सह लङ्कां प्रविष्टवानित्यवगम्यते । मन्त्रदृष्टेन मन्त्रेषु वेदेषु दृष्टेन स्पष्टमवगम्यमानेन, विधिना प्रकारेण । शुद्धात्मानमित्यनेन रामाज्ञया अभिषेकमङ्गीकृतवान् । परमार्थस्तु रामकैङ्कर्य एवासक्तोभूदित्यवगम्यते । आज्ञाकैङ्कर्यं हि कर्तव्यम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ स इति ॥ प्रकृतीः अमात्यप्रभृतीन्, सान्त्वयित्वा पुत्रमित्रादिविनाशजशोकापनोदनं

लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात् ॥ विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृद्गणसमावृतम् ॥ अभ्यषिञ्चत्स धर्मात्मा शुद्धात्मानं बिभीषणम् ॥ १५॥ तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः ॥ दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं बिभीषणम् ॥ १६ ॥ स तद्राज्यं महत्प्राप्य रामदत्तं बिभीषणः ॥ प्रकृतीः सान्त्वयित्वा च ततो राममुपागमत् ॥ ॥१७॥ अक्षतान् मोदकान् लाजान् दिव्याः सुमनसस्तदा ॥ आजह्रुरथ संहृष्टाः पौरास्तस्मै निशाचराः ॥ १८॥ स तान् गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत् ॥ मङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ॥ १९ ॥ कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो बिभीषणम् ॥ प्रतिजग्राह तत्सर्वं तस्यैव प्रियकाम्यया ॥ २० ॥ ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं पार्श्वतः स्थितम् ॥ अब्रवीद्राघवो वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम् ॥२१॥ अनुमान्य महाराजमिमं सौम्य बिभीषणम् ॥ २२ ॥ गच्छ सौम्य पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य यथाविधि ॥ प्रविश्य रावणगृहं विजयेनाभिनन्द्य च ॥ २३ ॥ वैदेह्यै मां कुशलिनं ससुग्रीवं सलक्ष्मणम्॥ आचक्ष्व जयतां श्रेष्ठ रावणं च मया हतम्॥२४॥ प्रियमेतदुदाहृत्य मैथिल्यास्त्वं हरीश्वर॥प्रतिगृह्य च संदेशमुपावर्तितुमर्हसि॥२५॥इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

कृत्वा राममुपागमत् । लक्ष्मणेन सहेति शेषः॥ १७ ॥ १८॥ स तानिति ॥ मङ्गलमर्हतीति मङ्गल्यम्। मङ्गलप्रयोजनमित्यर्थः । मङ्गलं हरिद्रादिमङ्गलद्रव्यम्, सर्वम् उक्ताक्षतादिभिन्नं, रामाय लक्ष्मणाय च न्यवेदयत् ॥ १९ ॥ कृतकार्यमिति ॥ तस्यैव प्रियकाम्यया न तु स्वभोगेच्छया ॥ २०॥२१॥ अनुमान्येत्यादिसार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ विभीषणमनुमान्य लङ्कां गच्छ, विभीषणमनुज्ञाप्य रावणगृहं प्रविश्य, विजयेन विजयकथनेन, अभिनन्द्य

सीतां तोषयित्वा, वैदेह्यै मां कुशलिनमाचक्ष्वेति संबन्धः । संदेशं सीतावाचिकम् ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ हनुमत्सीतासंवादः–इति प्रतिसमादिष्ट इत्यादि ॥ मारुतात्मज इत्यनेन वेगातिशय उच्यते । पूज्यमान इति । मार्गप्रदर्शनादिभिः पूज्यमानत्वम् ॥ १ ॥ प्रविश्येत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ मृजया शरीरसंस्कारेण । सातङ्कां सग्रहपीडाम् ॥ २ ॥ निभृत इत्यर्धम् ॥ अभिगम्य समीपं

इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ॥ प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥ १ ॥ प्रविश्य च महातेजा रावणस्य निवेशनम् ॥ ददर्श मृजया हीनां सातङ्कामिव रोहिणीम् ॥ वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ २ ॥ निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोभिगम्याभिवाद्य च ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तमागतं देवी हनुमन्तं महाबलम् ॥ तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा प्रमुदिताभवत् ॥ ४ ॥ सौम्यं दृष्ट्वा मुखं तस्या हनुमान्प्लवगोत्तमः ॥ रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥ वैदेहि कुशली रामः सहसुग्रीवलक्ष्मणः ॥ बिभीषणसहायश्च हरीणां सहितो बलैः ॥ ६ ॥ कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुररिंदमः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

प्राप्य । अभिवाद्य स्वनाम संकीर्त्य । प्रणतः कृतप्रणामः सन् । निभृतः निश्चलः । प्रह्वः प्रकर्षेण संकुचितगात्रः । स्थित इति शेषः । आचार्यास्तु करणत्रयेणापि निश्चलो बभूवेत्यर्थ इति प्राहुः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वेति ॥ तं दृष्ट्वा विस्मृत्य प्रथमं तूष्णीमास्त । पुनर्दृष्ट्वा स्मृत्वा प्रमुदिताभवत् । यद्वा सामान्यतो दृष्ट्वा तूष्णीमास्त । ततो विशेषतो दृष्ट्वा स्मृत्वा हनुमानिति ज्ञात्वा प्रमुदिताभवत् । अथवा तं दृष्ट्वा स्मृत्वा प्रत्यभिज्ञाय प्रमुदिताभवत् । प्रमोदातिरेकेण स्तब्धा सती तूष्णीमास्तेत्यर्थः ॥ ४ ॥ सौम्यमिति ॥ सौम्यं निजदर्शनेन विकसितम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥

॥ ८ ॥ ९ ॥ रामसंदेशवाक्यमाह–प्रियमाख्यामीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ हे देवि, ते प्रियमाख्यामि। त्वां तु भूयः भूयिष्ठम्, सभाजये प्रीणये । धर्मज्ञे पातिव्रत्यधर्मज्ञे, त्वं दिष्ट्या जीवसि । अन्यथा मम जयो व्यर्थ एव स्यादिति भावः । मम जयेन मत्पराक्रमेण, नः संयुगे जयो लब्धः। गतव्यथा सती स्वस्था भवेति योजना ॥ १० ॥ ११ ॥ मयेति ॥ हे सीते; तव निर्जये शत्रुहस्तात्तव विमोचने। दृढेन एकाग्रचित्तेन।

बिभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह ॥ निहतो रावणो देवी लक्ष्मणस्य नयेन च ॥८॥ पृष्ट्वा तु कुशलं रामो वीरस्त्वां रघुनन्दनः॥ अब्रवीत्परमप्रीतः कृतार्थेनान्तरात्मना ॥९॥ प्रियमाख्यामि ते देवि त्वां तु भूयः सभाजये ॥ दिष्ट्या जीवसि धर्मज्ञे जयेन मम संयुगे ॥ १० ॥ लब्धो नो विजयः सीते स्वस्था भव गतव्यथा ॥ रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चेयं वशे स्थिता ॥ ११ ॥ मया ह्यलब्धनिद्रेण दृढेन तव निर्जये ॥ प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥ १२ ॥ संभ्रमश्च न गन्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये ॥ बिभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥ १३ ॥ तदाश्वसिहि विश्वस्ता स्वगृहे परिवर्तसे ॥ अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥ १४ ॥ एवमुक्ता समुत्पत्य सीता शशिनिभानना ॥ प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याजहार न किंचन ॥ १५ ॥ अब्रवीच्च हरिश्रेष्ठः सीतामप्रतिजल्पतीम् ॥ किं नु चिन्तयसे देवि किं नु मां नाभिभाषसे ॥ १६ ॥ एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मे व्यवस्थिता ॥ अब्रवीत्परमप्रीता हर्षगद्गदया गिरा ॥ १७॥ प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् ॥ प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

अत एव अलब्धनिद्रेण मया महोदधौ सेतुं बद्ध्वा, एषा प्रतिज्ञा रावणं हनिष्यामीति प्रतिज्ञा, विनिस्तीर्णा प्रतिपालितेत्यर्थः ॥ १२ ॥ संभ्रमश्चेति ॥ संभ्रमः व्यग्रता। वर्तन्त्या वर्तमानया ॥ १३ ॥ तदिति ॥ यस्मात् स्वगृहे परिवर्तसे तस्माद्विश्वस्ता सती आश्वसिहि विश्रान्ता भव । निवृत्तखेदा भवेत्यर्थः। अयं बिभीषणः ॥ १४ ॥ एवमिति ॥ समुत्पत्य हर्षेण समुत्थाय। अवरुद्धा अवरुद्धव्यापारा ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ प्रियमिति ॥ क्षणान्तरं क्षणमात्रम् निर्वाक्यास्मि। हर्षावरुद्धव्यापारत्वादिति भावः॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥

न हि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवङ्गम ॥ मत्प्रियाख्यानकस्येह तव प्रत्यभिनन्दनम् ॥१९॥ न हि पश्यामि तत्सौम्य
पृथिव्यामपि वानर ॥ सदृशं मत्प्रियाख्याने तव दातुं भवेत्समम् ॥ २० ॥ हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि
च ॥ राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितुम् ॥ २१॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ॥ गृहीतप्राञ्जलिर्वाक्यं
सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥ २२ ॥ भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि ॥ स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हसि
भाषितुम् ॥ २३ ॥ तवैतद्वचनं सौम्ये सारवत् स्निग्धमेव च ॥ रत्नौघाद्विविधाच्चापि देवराज्याद्विशिष्यते॥
॥ २४ ॥ अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः ॥ हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम् ॥ २५॥ तस्य
तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकात्मजा ॥ ततः शुभतरं वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥ २६ ॥ ॥

निर्वाक्यास्मीत्यत्र हेत्वन्तरमाह–न हीत्यादि ॥ सदृशं प्रत्यभिनन्दनम् प्रतिप्रियवचनम् ॥ १९ ॥ सदृशं प्रदेयवस्त्वपि न पश्यामीत्याह–न हीत्यादिना ॥ अत्र अपिशब्देन अन्तरिक्षस्वर्गौ समुच्चीयेते । त्रिष्वपि लोकेषु न पश्यामि । यत् मत्प्रियाख्याने विषये तव दातुं समम् अत्यन्तसदृशं भवेत् ॥ २० ॥ उक्तं विवृणोति–हिरण्यमिति ॥ हिरण्यं रजतम् । रजतꣳहिरण्यमिति श्रुतेः । त्रिषु लोकेषु राज्यं त्रिलोकविषयराजत्वम् । नैतदर्हति भाषितुम् । हिरण्याद्येतत्सर्वमपि प्रियाख्यानसमत्वेन भाषितुं नार्हतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ एवमिति ॥ प्रमुखे अग्रे ॥ २२ ॥ प्रतिप्रियवचनं न पश्यामीत्यस्योत्तरमाह–भर्तुरिति ॥ एवंविधं स्निग्धम् वाक्यं भाषितुं त्वमेवार्हसि नान्या । अनेन सर्वोत्तरं प्रीतिप्रियवचनं मह्यं दत्तमित्युक्तं भवति ॥ २३ ॥ प्रियाख्यानसदृशं प्रदेयं वस्तु नास्तीत्यस्योत्तरमाह–तवेति ॥ एतत् प्रत्यभिनन्दनं न पश्यामीत्येतत् । सारवत् प्रत्यभिनन्दनवचनराहित्यकथनेन मद्वचनस्य निरवधिकप्रीतिजनकत्वकथनान्महातात्पर्यवत् । स्निग्धं मयि प्रीतिपुरःसरम् । एतद्वचनश्रवणेनैव मया सर्वोत्तरं वस्तु समुपलब्धमिति भावः ॥२४॥ पूर्वमेव लब्धदेवराज्यादिकस्य तत्प्रदानं निरर्थकमित्याशयेनाह–अर्थत इति ॥ रामं विजयिनं पश्यामीति यत् अस्मात् अर्थतः प्रयोजनात् देवराज्यादयो गुणाः उत्कर्षाः प्राप्ताः । रामविजयदर्शनमेव राज्यादिकमित्यर्थः ॥ २५ ॥ २६ ॥ ॥

नानृग्वेदेत्यादिना राम इव स्वयमपि तद्वाक्यसौष्ठवं प्रशंसति–अतीति ॥ अतिलक्षणसंपन्नम् आकाङ्क्षायोग्यतासन्निधिमत्पदवत्त्वरूपवाक्यलक्षणसंपन्नम् । बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितमित्युक्तशब्दसाधुत्वसंपन्नम् । माधुर्यगुणभूषितं, संश्रवे मधुरवाक्यमित्युक्तरीत्या श्रवणमात्रेणानन्दजनकत्वरूपमाधुर्यगुणभूषितम् । अष्टाङ्ग्या, ग्रहणं धारणं चैव स्मरणं प्रतिपादनम् । ऊहापोहोर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः, इत्युक्ताष्टाङ्गयुक्तया बुद्ध्या युक्तम् । तादृशबुद्धिपूर्वकमित्यर्थः ॥२७॥ न केवलं वाक्यतः गुणतोपि श्लाघ्योसीत्याह–श्लाघनीय इत्यादिना श्लोकद्वयेन ॥ अनिलस्य श्लाघनीयः पुत्रः । अनिलादपि संजीवनकर इत्यर्थः । संजीवनं चानृशंस्यधर्मादित्याह–परमधार्मिक इति । बलं प्रयाससहिष्णुत्वम् । शौर्यं युद्धोत्साहः । श्रुतं शास्त्र-

अतिलक्षणसंपन्नं माधुर्यगुणभूषितम् ॥ बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ॥ २७ ॥ श्लाघनीयोनिलस्य त्वं पुत्रः परमधार्मिकः ॥ बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ॥ २८ ॥ तेजः क्षमा धृतिर्धैर्यं विनीतत्वं न संशयः ॥ एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः ॥ २९ ॥ अथोवाच पुनः सीतामसंभ्रान्तो विनीतवत् ॥ प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात्सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥ ३० ॥ इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे ॥ ॥ हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥ ३१ ॥ क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वामशोकवनिकां गताम् ॥ ३२ ॥ घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ॥ राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत्प्रयच्छ मे ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ज्ञानम् । श्रुतं शास्त्रावधृतयोरित्यमरः । सत्वं शारीरः सारः । विक्रमः पराक्रमः । दाक्ष्यं सामर्थ्यम् । उत्तममिति सर्वविशेषणम् । तेजः पराभिभवनसामर्थ्यम् । क्षमा अपराधसहिष्णुत्वम् । धृतिः प्रभावः । धैर्यं क्षोभके सत्यक्षोभ्यत्वम् । विनीतत्वं विनयवत्त्वम् । विशिष्टनीतिमत्त्वं वा । एते चान्ये च दयादयो बहवो गुणाः, त्वय्येव शोभनाः त्वामाश्रयमधिगम्य शोभमाना भवन्ति । न संशयः नाहमसतो गुणानारोप्य स्तौमीत्यर्थः ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ इदं तु मे प्रियाख्यानपारितोषिकत्वेन देयमित्यर्थयते–इमा इत्यादिना सार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ क्लिश्यन्तीं पतिदेवतां त्वां प्रति या राक्षस्यो दारुणकथा अब्रुवन् । पुरा याभिस्त्वं तर्जिता इमा राक्षस्यः राक्षसीः, यद्यनुमन्यसे हन्तुमिच्छामि । एतद्वरं मे प्रयच्छेति संबन्धः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

हननप्रकारं स्वक्रोधानुरूपं दर्शयति–मुष्टिभिरित्यादिना श्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ घातैः प्रहारैः । भक्षणैः खादनैः । लुञ्चनैः उन्मूलनैः । शुष्कमुखीभिः नखैः । दारणैः पीडनैः । कपोलताडनैर्वा । लङ्घनैः उत्प्लुत्योपरिपातनैः । हतैः हस्तैस्ताडनैः । निपात्य भूमौ पातयित्वा । मुष्ट्यादिभिर्हन्तुमिच्छामीत्यन्वयः ॥३४॥३५॥३६॥ उक्तमर्थमावश्यकत्वज्ञापनाय पुनरपि संग्रहेण याचते–एवमिति ॥ ३७ ॥ एवमुक्तेति ॥ धर्मसहितमिति क्रियाविशेषणम् ॥ ३८ ॥ राजेति ॥ राजसंश्रयवश्यानां राजसेवापरवशानाम् । अत एव पराज्ञया कुर्वन्तीनां राजचोदितकार्यं कुर्वन्तीनाम्, विधेयानां चोदिताकरणे

मुष्टिभिः पाणिभिः सर्वाश्चरणैश्चैव शोभने ॥ इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ॥ ३४ ॥ घातैर्जानुप्रहारैश्च
दशनानां च पातनैः ॥ भक्षणैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा ॥ ३५ ॥ नखैः शुष्कमुखीभिश्च दारणैर्लङ्घनैर्हतैः
॥ निपात्य हन्तुमिच्छामि तव विप्रियकारिणीः ॥३६॥ एवंप्रकारैर्बहुभिर्विप्रकारैर्यशस्विनि ॥ हन्तुमिच्छाम्यहं
देवि तवेमाः कृतकिल्बिषाः ॥३७॥ एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ॥ उवाच धर्मसहितं हनुमन्तं यशस्विनी
॥३८॥ राजसंश्रयवश्यानां कुर्वन्तीनां पराज्ञया ॥ विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥३९॥ भाग्यवैषम्य
योगेन पुरा दुश्चरितेन च ॥ मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥ ४० ॥ प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम्
॥ दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ ॥

दण्डार्हाणाम्, रावणस्य दासीनां दासीभ्यः, कः कुप्येत् ॥३९॥ भाग्येति ॥ भाग्यवैषम्ययोगेन भाग्यविपर्यययोगेन । भाग्यस्यापरिपक्वतयेत्यर्थः । पुरा दुश्चरितेन च पूर्वकृतदुष्कृतेन च, एतत्तर्जनभर्त्सनादिकं प्राप्यते । तत्र हेतुमाह–स्वकृतमिति । हि यस्मात् । स्वकृतमुपभुज्यते स्वकृतकर्मफलं प्राप्यते लोकैः । अतो मयापि भुज्यत इत्यर्थः ॥४०॥ प्राप्तव्यमिति ॥ रावणस्य दासीनाम् एतत्तर्जनादिकं दशायोगात् अवस्थायोगात् । अनुभवयोग्यकालसंबन्धादिति यावत् । प्राप्तव्यमिति मया निश्चितम् । दुर्बला पूर्वमेतादृशापन्निवारककर्मकरणाशक्ता । अतोहमिह राक्षसीविषये मर्षयामीति संबन्धः ।

दुर्बला कृपापरवशा वा । हते रावणे दौर्बल्यान्तराभावात् । परदुःखसहिष्णुत्वमेव हि तदानीं दौर्बल्यम् ॥ ४१ ॥ राक्षसीनामपराधस्य राजाज्ञामूलकत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यां दर्शयति—आज्ञप्ता इति ॥४२॥ अथासां स्वातन्त्र्येणापकारकरणमभ्युपेत्य तथापि क्षन्तव्यमित्यत्र इतिहासं दर्शयति—अयमिति ॥ पुरा किल कश्चिद्व्याधो व्याघ्रेणानुसृतो वृक्षमारूढः, वृक्षमूलगतो व्याघ्रो वृक्षोपरि स्थितमृक्षं वन्यमृगाणामस्माकं जात्या शत्रुरेषः तस्मादेनं वृक्षात् पातयेत्यब्रवीत् । एवमुक्तो भल्लूकः स्ववासस्थानगतमेनं न पातयिष्यामि । तथात्वे धर्महानिः स्यादित्युक्त्वा सुष्वाप । तदनन्तरं त्वां रक्षिष्यामि । सुप्तमृक्षं पातयेति व्याघ्रेण चोदितः सन् व्याधस्तमृक्षमपातयत् । स त्वभ्यासवशेन शाखान्तरमवलम्ब्य नापतत् । तदनु कृतापराधमेनं पातयेति पुनः पुनर्व्या-

आज्ञप्ता रावणेनैता राक्षस्यो मामतर्जयन् ॥ हते तस्मिन्न कुर्युर्हि तर्जनं वानरोत्तम ॥ ४२ ॥ अयं व्याघ्रसमीपे तु
पुराणो धर्मसंस्थितः ॥ ऋक्षेण गीतः श्लोको मे तन्निबोध प्लवङ्गम ॥४३॥ न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ॥
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥ ४४ ॥ पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम ॥ कार्यं करुण-
मार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥

घ्रेणोच्यमानोपि भल्लूको बहुशः कृतापराधमप्येनं तुभ्यं न दास्यामीत्यभिदाय ररक्षेति पौराणिकी गाथा ॥ ४३ ॥ तत्रत्यं श्लोकं पठति—न पर इति ॥ सुग्रीवं प्रति रामः कपोतोपाख्यानमिव हनुमन्तमुद्दिश्य देव्यपि स्वाभिप्रेतेर्थे ऋक्षगीतं प्रमाणयति स्म । परेषां पापकर्मणां परानुद्दिश्य पापं कुर्वताम् । परः प्राज्ञः पुरुषः, पापं प्रत्यपकाररूपम्, नादत्ते नाङ्गीकरोति । न करोतीत्यर्थः । समयः आचारः अपकर्तृष्वपि प्रत्यपकारवर्जनरूपः, रक्षितव्यस्तु रक्षितव्य एव । तथा हि, सन्तश्चारित्रभूषणाः । सद्भिश्चारित्रभूषणैरिति वा पाठः ॥४४॥ अथ देव्या अभयप्रदानश्लोकः—पापानामिति ॥ पापानां वा शुभानां वा त्वदभिप्रायेण पापानां वा अस्मदभिप्रायेण शुभानां वा । तदेव ममोद्देश्यं दोषो यद्यपि तस्य स्यादितिवत् । मलिनस्य हि स्नानमपेक्षितम् । तासां पापत्वादेवास्मदपेक्षा । किं शुभानामस्माभिः । तत्पुण्यानामेव तद्रक्षकत्वात् । तस्मात्तत्पापमेवास्माकमुद्देश्यम् । ननु तर्हि दण्ड्या दण्डनीयाः नादण्ड्या

इति धर्मशास्त्रं भवतीमासाद्य भज्येतेत्याशङ्क्य दुष्टोपि शरणागतो रक्षणीय इति विशेषशास्त्रं भवन्तमासाद्य किं भञ्जनीयमित्याह—वधार्हाणामिति । वधार्हाणामपीत्यर्थः । सप्तम्यर्थे षष्ठी । प्लवङ्गम अनभिलषितमेवाभिलषितवान् खलु भवान् । तेषु । आर्येण महता पुरुषेण । करुणं दयाकार्यम् तिष्ठतु । पुण्यं पापं च इदानीमेतद्दयनीयदशां पश्य । यद्वा शुभानामिति दृष्टान्तार्थम् । शुभेषु वधार्हेषु यथा करुणं कार्यं तथा पापेषु वधार्हेष्वपि कार्यमित्यर्थः । सापराधादण्डनेतिप्रसङ्गः स्यादित्याशङ्क्याह—न कश्चिन्नापराध्यतीति । सर्वोप्यपराध्यतोत्यर्थः ॥ ४५ ॥ रक्षसां स्वजाति-

लोकहिंसाविहाराणां रक्षसां कामरूपिणाम् ॥ कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥ ४६ ॥ एवमुक्तस्तु हनुमान् सीतया वाक्यकोविदः ॥ प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ४७ ॥ युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥ ४८ ॥ एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ॥ अब्रवीद्द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं वानरोत्तम ॥ ४९ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः ॥ हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महाद्युतिः ॥ ५० ॥ पूर्णचन्द्राननं रामं द्रक्ष्यस्यार्ये सलक्ष्मणम् ॥ स्थिरमित्रं हतामित्रं शचीव त्रिदशेश्वरम् ॥ ५१ ॥ तामेवमुक्त्वा राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् ॥ आजगाम महावेगो हनुमान् यत्र राघवः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

प्रयुक्तहिंसादेरदोषावहत्वाच्छास्त्रोक्तदण्डविषयत्वं नास्तीत्याह—लोकेति ॥ अशोभनं दण्डनम् ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ युक्तेति ॥ रामस्य युक्ता । किं पुनर्मद्विधो जन इति स्वस्योक्तमशरणत्वं प्रतिपादितवतो रामस्य शरण्यत्वादिगुणवत्तया सदृशीत्यर्थः । अनेन सर्गेण सीताया दयालुत्वम् अपराधसहिष्णुत्वं घटकत्वं चोक्तमिति ध्येयम् ॥ ४८ ॥ एवमिति ॥ इच्छामीत्यत्र इतिकरणं द्रष्टव्यम् ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥ ॥ ॥

स उवाच महाप्राज्ञमभिगम्य प्लवङ्गमः ॥ रामं वचनमर्थज्ञो वरं सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥ यन्निमित्तो यमारम्भः कर्मणां च फलोदयः ॥ तां देवीं शोकसंतप्तां मैथिलीं द्रष्टुमर्हसि ॥ २ ॥ सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ मैथिली विजयं श्रुत्वा तव हर्षमुपागमत् ॥ ३ ॥ पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया ॥ भर्तारं द्रष्टुमिच्छामि कृतार्थं सहलक्ष्मणम् ॥ ४ ॥ एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः ॥ अगच्छत्सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥ दीर्घमुष्णं विनिश्वस्य मेदिनीमवलोकयन् ॥ उवाच मेघसंकाशं बिभीषणमुपस्थितम् ॥ ६ ॥ दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् ॥ इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो बिभीषणः ॥ प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्वाभिः स्त्रीभिरचोदयत् ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ सीतानयनम्—स उवाचेत्यादि ॥ १ ॥ यन्निमित्त इति ॥ आरम्भः उद्योगः, कर्मणां सेतुबन्धादिव्यापाराणाम् फलोदयः, रावणविजयश्च यन्निमित्तः यस्याः सीताया लाभार्थः, तां द्रष्टुमर्हसि ॥२॥३॥ पूर्वकादिति ॥ पूर्वकात्पूर्वोत्पन्नात्। प्रत्ययाद्विश्वासात् ॥४॥ एवमिति ॥ रामः ईषद्बाष्पपरिप्लुतः सन् सहसा ध्यानमागच्छत्। रावणभवनोषितसीतापरिग्रहे महान् लोकापवादो भवेत्, निर्दोषायास्तस्याः परित्यागे महान् दोषः स्यादित्येवं कार्यदौस्थ्यात् किं कर्तव्यमिति चिन्तयामासेत्यर्थः ॥ ५ ॥ दीर्घमिति ॥ निःश्वासदैर्घ्येण चिन्तादैर्घ्यं गृह्यते। औष्ण्येन कथं क्लिष्टां तां पुनः क्लेशयिष्यामीत्यन्तस्तापो व्यज्यते। भूमिं समवलोकयन् इति चिन्तापारवश्याभिनयः। मेघसंकाशमित्यनेन सीतानयने कृतत्वरत्वमुच्यते ॥ ६ ॥ दिव्याङ्गरागामिति ॥ अलंकृत्यानयनादेशः उत्तरकालिकपरुषभाषणार्हताप्रतिपादनाय। नहि तादृशदशापन्नां दीनां परुषं भाषितुं युज्यते। तच्च तस्या न परित्यागार्थम् किंतु चतुर्मुखादिदेवतामुखेन तस्याः पातिव्रत्यं ख्यापयितुम्। मा चिरं विलम्बो न कार्य इत्यर्थः ॥ ७ ॥ एवमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ स्वाभिः स्त्रीभिरचोदयत् निजस्त्रीमुखेनाचोदयत् ॥ ❀रामानुजीयम्❀ एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः। प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्वाभिः स्त्रीभिरचोदयत् ॥

दिव्याङ्गरागा वैदेही दिव्याभरणभूषिता। यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच बिभीषणमिति पाठक्रमः । भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छतीति स्वाभिः स्त्रीभिरचोदयदिति संवन्धः ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तस्या इति ॥ प्रत्युवाच स्त्रीमुखेनेति शेषः । यथानियोगं कर्तव्यत्वे हेतुद्वयम्–राजा भर्तेति॥११॥तस्येति ॥ अङ्गीकारहेतुद्वयं भर्तृदेवता भर्तृभक्तिव्रतेति ॥१२॥१३॥१४॥ स इति ॥ ज्ञात्वापि बिभीषणागमनं विदित्वापि।

दिव्याङ्गरागा वैदेही दिव्याभरणभूषिता ॥ यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥९॥ एवमुक्ता तु वैदेही
प्रत्युवाच बिभीषणम् ॥ अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसाधिप ॥ १० ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच
बिभीषणः ॥ यदाह राजा भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥ ११ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली भर्तृदेवता ॥ भर्तृभक्तिव्रता
साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥ १२ ॥ ततः सीतां शिरःस्नातां युवतीभिरलंकृताम् ॥ महार्हभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम्
॥ १३ ॥ आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम् ॥ रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार बिभीषणः
॥१४॥ सोभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वापि ध्यानमास्थितम् ॥ प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत् ॥१५॥
तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् ॥ हर्षो दैन्यं च रोषश्च त्रयं राघवमाविशत् ॥ १६ ॥ ततः पार्श्वगतं
दृष्ट्वा सविमर्शं विचारयन् ॥ बिभीषणमिदं वाक्यमहृष्टं राघवोब्रवीत् ॥ १७ ॥ राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये
रत ॥ वैदेही सन्निकर्षं मे शीघ्रं समुपगच्छतु ॥ १८ ॥ स तद्वचनमाज्ञाय राघवस्य बिभीषणः ॥ तूर्णमुत्सारणे
यत्नं कारयामास सर्वतः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥

अनेन चिन्तानुवृत्तिरुक्ता ॥१५॥ तामिति ॥ रावणवधपूर्वकसीतागमेन हर्षः। रावणभवनोषितत्वेन दैन्यम् रोषश्च। अत्र रोषो भाविशपथोपयोगित्वादारोपित इति द्रष्टव्यम् ॥१६॥ तत इति ॥ सविमर्शं विचारयन् सवितर्कं चिन्तयन्। अहृष्टमिति क्रियाविशेषणं बिभीषणविशेषणं वा ॥ १७ ॥ १८ ॥ स इति ॥ उत्सारणे जननिवारणे ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

कञ्चुकेति ॥ कञ्चुकं वारवाणम् । उष्णीषं शिरोवेष्टनम् । वेत्रेण जर्जराः सदावलम्बनजनितपारुष्याः पाणयो येषां ते ॥ २० ॥ ऋक्षाणामिति ॥ उत्ससृजुः अपचक्रमुः ॥ २१ ॥ तेषामिति ॥ उद्वर्तमानस्य उज्जृम्भमाणस्य ॥ २२ ॥ उत्सार्यमाणानिति ॥ दाक्षिण्याद्वानरेषु दाक्षिण्यात् । अमर्षात् उत्सारणासहनात् ॥२३॥ संरब्ध इति ॥ चक्षुषा प्रदहन्निवेति लोचनाभ्यां पिबन्निवेत्युक्तादरपात्रभूतस्य विभीषणस्यैवंविधदर्शनविषयताकरणं स्वजननि-

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रजर्जरपाणयः॥ उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तात्परिचक्रमुः ॥ २० ॥ ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः ॥ वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्ससृजुस्तदा ॥ २१ ॥ तेषामुत्सार्यमाणानां सर्वेषां ध्वनिरुत्थितः॥ वायुनोद्वर्तमानस्य सागरस्येव निस्वनः ॥ २२ ॥ उत्सार्यमाणांस्तान् दृष्ट्वा समन्ताज्जातसंभ्रमान् ॥ दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥ २३ ॥ संरब्धश्चाब्रवीद्रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥ बिभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः ॥२४॥ किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः॥निवर्तयैनमुद्योगं जनोयं स्वजनो मम॥२५॥ न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः ॥ नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ॥ २६ ॥ व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ॥ न क्रतौ न विवाहे च दर्शनं दुष्यति स्त्रियाः ॥ २७ ॥ सैषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे च महति स्थिता ॥ दर्शनेस्या न दोषः स्यान्मत्समीपे विशेषतः ॥२८॥ तदानय समीपं मे शीघ्रमेनां बिभीषण ॥ सीता पश्यतु मामेषा सुहृद्गणवृतं स्थितम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो बिभीषणः ॥ रामस्योपानयत्सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥ ३० ॥ ॥

ग्रहासहिष्णुत्वात् । सीताविषयसमारोपितरोषविशेषाद्वा ॥ २४ ॥ २५ ॥ न गृहाणीति ॥ तिरस्क्रियाः तिरस्कारिण्यः । राजसत्काराः उत्सारणादिकम् । वृत्तम् आचारः ॥ २६ ॥ व्यसनेष्विति ॥ व्यसनेषु इष्टजनवियोगेषु । कृच्छ्रेषु राज्यक्षोभादिषु । युद्धे युद्धभूमौ ॥ २७ ॥ सैषेति ॥ कृच्छ्रे वक्ष्यमाणाग्निप्रवेशे ॥ २८ ॥ २९ ॥ एवमिति ॥ सविमर्शः कृच्छ्रशब्दप्रयोगात्साशङ्कः ॥ ३० ॥ ॥ ॥

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनुमांश्च प्लवङ्गमः॥ निशम्य वाक्यं रामस्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥३१॥ कलत्रनिरपेक्षैश्च इङ्गितैरस्य दारुणैः ॥ अप्रीतमिव सीतायां तर्कयन्ति स्म राघवम् ॥ ३२ ॥ लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली॥ बिभीषणेनानुगता भर्तारं साभ्यवर्तत॥३३॥ सा वस्त्रसंरुद्धमुखी लज्जया जनसंसदि॥ रुरोदासाद्य भर्तारमार्यपुत्रेति भाषिणी ॥ ३४ ॥ विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ॥ उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥३५॥ अथ समपनुदन्मनःक्लमं सा सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वै प्रियस्य ॥ वदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तं विमलशशाङ्कनिभानना तदानीम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥११७॥

तां तु पार्श्वस्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ हृदयान्तर्गतक्रोधो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा मया रणे॥ पौरुषाद्यदनुष्ठेयं तदेतदुपपादितम् ॥ २॥ गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा संप्रमार्जिता॥ अवमानश्च शत्रुश्च मया युगपदुद्धृतौ॥ ३ ॥ ॥ ॥

॥ ३१ ॥ व्यथायां हेतुमाह—कलत्रेति ॥ ३२ ॥ लज्जयेति ॥ अवलीयन्ती संकुचन्ती ॥३३॥३४॥ विस्मयादिति ॥ विस्मयात् अघटितरामपुनर्दर्शनाद्विस्मयः । प्रियस्य दर्शनेन प्रहर्षः । स्नेहः स्वाभाविकः । उदीक्षणकालिकमुखप्रसादमाह—सौम्येति ॥ ३५ ॥ अथेति ॥ उदितपूर्णचन्द्रेत्यनेन कोपरक्तत्वमुक्तम् । विमलशशाङ्केत्यनेन उत्तरकालिकक्षयः सूच्यते ॥ ३६ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ रामपरुषोक्तिः—तां तु पार्श्वस्थितामित्यादि ॥ प्रह्वां लज्जया नम्राम् ॥ १ ॥ एषेति ॥ एषेति प्रत्यक्षेण दर्शयति । भद्रे इत्यसंबन्धनिवेदकसंबोधनम् । पौरुषाद्यदनुष्ठेयं तदेव कृतम् । नतु त्वल्लाभाय यत्नः कृत इति भावः ॥ २ ॥ गतोस्मीति ॥ अन्तम् फलम् । उद्धृतौ निर्मूलितौ ॥ ३ ॥ ॥

अद्येति ॥ आत्मनः प्रभवामि स्वतन्त्रो भवामि ॥४॥ या त्वमिति ॥ मया विरहिता या त्वं चलचित्तेन रक्षसा नीता। तया त्वया हेतुभूतया दैवसंपादितः दोषः अवमानः मानुषेण प्रमार्जितः। दैवकृतं पुरुषयत्नेन निवारितमिति भावः ॥ ५ ॥ धर्षणाया अमार्जने दोषमाह–संप्राप्तमिति ॥ प्रमार्जति प्रमार्ष्टि ॥ ६ ॥ इदानीं हनुमदादिपौरुषस्यापि धर्षणावमार्जनहेतुत्वमाह–लङ्घनं चेत्यादिना ॥ समुद्रस्य लङ्घनं लङ्कायाः अवमर्दनम् इत्येवंरूपं हनुमतः श्लाघ्यं

अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः ॥ अद्य तीर्णप्रतिज्ञत्वात्प्रभवामीह चात्मनः ॥४॥ या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ॥ दैवसंपादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥ ५ ॥ संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ॥ कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजसः ॥ ६ ॥ लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चावमर्दनम् ॥ सफलं तस्य तच्छ्लाघ्यं महत्कर्म हनूमतः ॥ ७ ॥ युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतश्च मे ॥ सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोद्य परिश्रमः ॥ ८ ॥ निर्गुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः॥ बिभीषणस्य भक्तस्य सफलोद्य परिश्रमः॥९॥इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सीता रामस्य तद्वचः ॥ मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥ १० ॥ पश्यतस्तां तु रामस्य भूयः क्रोधो व्यवर्धत ॥ प्रभूताज्यावसिक्तस्य पावकस्येव दीप्यतः ॥११॥ स बद्ध्वा भ्रुकुटीं वक्त्रे तिर्यक्प्रेक्षितलोचनः ॥ अब्रवीत्परुषं सीतां मध्ये वानररक्षसाम् ॥ १२ ॥ यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां परिमार्जता ॥ तत्कृतं सकलं सीते शत्रुहस्तादमर्षणात्॥ १३ ॥ ॥

कर्म चाद्य सफलम्। धर्षणापरिमार्जनेन सफलमित्यर्थः ॥ ७ ॥ युद्ध इति ॥ मन्त्रयतः चिन्तयतः ॥ ८ ॥ निर्गुणमिति ॥ तस्येत्यध्याहार्यम् ॥ ९ ॥ इत्येवमिति ॥ तद्वचः नैराश्येनोक्तं वचः। तस्य ब्रुवतः तस्मिन् ब्रुवति सति ॥ १० ॥ पश्यत इति ॥ पावकस्येति। पावकस्य क्रोधोतीव ज्वलनम् ॥ ११ ॥ स इति॥ तिर्यक्प्रेक्षितलोचनः तिर्यक्प्रेक्षणं पुरतः सीतादर्शनासहिष्णुत्वकृतम् ॥ १२ ॥ यत्कर्तव्यमित्यादित्रिपादश्लोक एकान्वयः ॥ हे सीते, धर्षणां परिमार्जता। "मृजेरजादौ विभाषा वृद्धिः"इति वृद्धिः। मनुष्येण यत्कर्तव्यं तत् सकलं कृतम्। शत्रुहस्तादमर्षणादित्युत्तरशेषः ॥ १३ ॥

भावितात्मना ध्यातात्मस्वरूपेण, अगस्त्येन । इल्वलाक्रान्तत्वाज्जीवलोकस्य दुराधर्षा दुःसंचारा, दक्षिणा दिगिव अमर्षणात् अमर्षाद्धेतोः, शत्रुहस्तान्मया त्वं निर्जितेति संबन्धः ॥ १४ ॥ विदितश्चेति ॥ योयं रणपरिश्रमः सुहृदां वीर्यात्तीर्णः निर्व्यूढः, सः त्वदर्थं मया न कृत इति विदितोस्तु ॥ १५ ॥ तर्हि किमर्थमेष परिश्रम इत्यत आह—रक्षतेति ॥ अत्र मया रणपरिश्रमः कृत इत्यनुषज्यते । वृत्तं रक्षता अपवादं न्यङ्गम् अयशस्यं च परिरक्षता परिहरता निवारयता मया रणपरिश्रमः कृतः ॥ १६ ॥ प्राप्तेति ॥ परगृहवासेन प्राप्तचारित्रसंदेहा त्वं ने-

निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना ॥ अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥ १४ ॥ विदितश्चास्तु ते भद्रे योयं रणपरिश्रमः ॥ स तीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥ १५ ॥ रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वशः ॥ प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिरक्षता ॥ १६ ॥ प्राप्तचारित्रसंदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता ॥ दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढम् ॥ १७ ॥ तद्गच्छ ह्यभ्यनुज्ञाता यथेष्टं जनकात्मजे ॥ एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥ १८ ॥ कः पुमान् हि कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ॥ तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहृल्लेख्येन चेतसा ॥ १९ ॥ रावणाङ्कपरिभ्रष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा ॥ कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन् महत् ॥ २० ॥ तदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया ॥ नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामितः ॥ २१ ॥ इति प्रव्याहृतं भद्रे मयैतत्कृतबुद्धिना ॥ लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥ २२ ॥ ॥ ॥ ॥

त्रातुरस्य दीप इव प्रतिकूलासि । अनेनोपमानेन वस्तुतः सीताया दोषो नास्ति । स्वसंदेहेनाहं प्रतिकूलीकरोमीति व्यज्यते ॥ १७ ॥ १८ ॥ कः पुमानिति ॥ सुहृल्लेखेन सुहृल्लेखा रणरणकम् सुहृल्लेखामर्हतीति सुहृल्लेख्यं तेन । रणरणकातिशययुक्तेनेत्यर्थः ॥ १९ ॥ रावणेति ॥ व्यपदिशन् कीर्तयन् ॥ २० ॥ तदर्थमिति ॥ तदर्थं कुलार्थम् । अभिष्वङ्गः आसक्तिः । अनुरागो वा ॥ २१ ॥ इति प्रव्याहृतमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अत्र लक्ष्मणादौ मनःकरणं नाम अनाथाया रक्षकत्वेन तत्तद्गृहे वर्तनम् । भर्त्रा परित्यक्तायाः स्त्रियो बन्धुगृहे वासविधानात् । न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हतीति स्मृतेः । न त्वत्रान्यथा ग्रहीतुं युक्तम् । महापुरुषेण तादृशोक्त्ययोगात् ॥ २२ ॥ ॥ ॥

॥ २३ ॥ २४ ॥ तत इति ॥ सल्लकी गजभक्षलताविशेषः ॥ २९ ॥ इति श्रीगो० श्रीरा० रत्नकिरीटाख्याने यु० अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥११८॥ अथ सीताग्निप्रवेशः—एवमुक्त्वा त्विति ॥ स्पष्टम् ॥ १ ॥ सेति ॥ जने महति महाजनमध्ये लज्जया व्रीडिता । अतिनम्रमुखी बभूवेत्यर्थः ॥ २ ॥ प्रविशन्तीवेति ॥ गात्राणि प्रविशन्ती संकुचन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ किमिति ॥ असदृशं त्वया वक्तुं मया श्रोतुं चायोग्यम् । रूक्षं परुषम् । अत एव श्रो-

सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा राक्षसेन्द्रे बिभीषणे ॥ निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मनः ॥ २३ ॥ न हि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् ॥ मर्षयेत चिरं सीते स्वगृहे परिवर्तिनीम् ॥ २४ ॥ ततः प्रियार्हश्रवणा तदप्रियं प्रियादुपश्रुत्य चिरस्य मैथिली ॥ मुमोच बाष्पं सुभृशं प्रवेपिता गजेन्द्रहस्ताभिहतेव सल्लकी ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम् ॥ राघवेण सरोषेण भृशं प्रव्यथिताभवत् ॥१॥ सा तदश्रुतपूर्वं हि जने महति मैथिली ॥ श्रुत्वा भर्तृवचो रूक्षं लज्जया व्रीडिताभवत् ॥ २ ॥ प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा ॥ वाक्छल्यैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ३ ॥ ततो बाष्पपरिक्लिष्टं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् ॥ शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ॥ रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ५ ॥ न तथास्मि महाबाहो यथा त्वमवगच्छसि ॥ प्रत्ययं गच्छ मे येन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ६ ॥ पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं तां परिशङ्कसे ॥ परित्यजेमां शङ्कां तु यदि तेहं परीक्षिता ॥ ७ ॥ ॥ ॥

त्रदारुणं श्रवणकटु ॥ ५ ॥ न तथेति ॥ चारित्रेण ममेति शेषः । ते तुभ्यम् । “ श्लाघह्नुङ्स्थाशपाम्० ” इति संप्रदानत्वम् । सुकृतेन शपमाना त्वां शापं ज्ञापयामीत्यर्थः ॥६॥ स्त्रीमात्रसाधारण्येन नाहं द्रष्टव्येत्याह—पृथक्स्त्रीणा मिति॥ पृथक्स्त्रीणां प्राकृतस्त्रीणाम्। प्रचारेण आचारेण हेतुना । सर्वामपि स्त्रीजातिं तथात्वेन शङ्कसे । अहम् ते त्वया यदि परीक्षिता ज्ञातस्वभावा, तर्हीमां शङ्कां त्यज ॥ ७ ॥ ॥

त्वयि ज्ञातस्वभावायामपि रावणाङ्गस्पर्शलक्षणो दोषस्त्यागहेतुरित्याशङ्क्याह–यद्यहमित्यादि ॥ यद्यपि अहं विवशा सती गात्रसंस्पर्शं गतास्मि, तथापि तत्र मे कामकारः स्वेच्छाचरणम् नास्ति । तर्हि कस्यात्रापराध इत्यत्राह–दैवं तत्रेति ॥ ८ ॥ मदधीनमिति ॥ मदधीनं परैर्ग्रहीतुमशक्यम्, यद्धृदयं तत्तु तस्मिन्काले त्वयि वर्तते अवर्तत । पराधीनेषु परैर्ग्रहीतुं शक्येषु गात्रेषु विषये, अनीश्वरा अस्वतन्त्रा अहं किं करिष्यामि किं कुर्याम् ॥९॥ स्वभावपरिज्ञानहेतुभूतसहसंवर्धनसंसर्गावपि प्रत्ययं यदि नोत्पादयतः तर्हि न किमपि ते प्रत्ययमुत्पादयितुं शक्नुयादित्याशयेनाह–सह संवृद्धेति ॥ सह संवृद्ध-

यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ॥ कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ८ ॥ मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं
त्वयि वर्तते ॥ पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥ ९ ॥ सह संवृद्धभावाच्च संसर्गेण च मानद ॥ यद्यहं ते न
विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ १० ॥ प्रेषितस्ते यदा वीरो हनुमानवलोककः ॥ लङ्कास्थाहं त्वया वीर किं तदा न
विसर्जिता ॥११॥ प्रत्यक्षं वानरेन्द्रस्य त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ॥ त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया ॥१२॥
न वृथा ते श्रमोयं स्यात्संशये न्यस्य जीवितम् ॥ सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥१३॥ त्वया तु नरशार्दूल
क्रोधमेवानुवर्तता ॥ लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ १४ ॥ अपदेशेन जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् ॥ मम
वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु तेन पुरस्कृतम् ॥ १५ ॥ न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ॥ मम भक्तिश्च शीलं च
सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

भावात् स्वभावपरिज्ञानहेतुना सह संवर्धनेन संसर्गेण संश्लेषेण च यद्यहं ते न विज्ञाता । ततः मत्स्वभावाज्ञानेन शाश्वतम् अत्यर्थम् । हतास्मि ॥१०॥ प्रेषित इति ॥ अवलोककः अवलोकितुम् । अन्वेष्टुमिति यावत् । "तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्" इति ण्वुल्प्रत्ययः ॥ ११ ॥ तदात्वे को विशेष इत्यत आह–प्रत्यक्षमिति ॥ १२ ॥ एवं कृते न केवलं ममैव व्यथाभावः तव त्वत्सुहृदां च जयार्थप्रयासोपि न स्यादित्याह–न वृथेति ॥ जीवितं संशये न्यस्य कृतोयं श्रम इत्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ अपदेशेनेति ॥ अपदेशेन जनकात् जनकमपदिश्येत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥

एवं ब्रुवाणा रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी ॥ अब्रवील्लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरं स्थितम् ॥ १७ ॥ चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ॥ मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ १८ ॥ अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्ताया जनसंसदि ॥ या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा ॥ अमर्षवशमापन्नो राघवाननमैक्षत ॥ २० ॥ स विज्ञाय ततश्छन्दं रामस्याकारसूचितम् ॥ चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥ २१ ॥ अधोमुखं तदा रामं शनैः कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ उपासर्पत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥ २२ ॥ प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ॥ बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ २३ ॥ यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ॥ तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ २४ ॥ यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ॥ तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥२५॥ कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ॥ राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥ २६ ॥

॥ १७ ॥ चितामिति ॥ मिथ्योपघातः मिथ्यापवादः ॥ १८ ॥ अप्रीतस्येति ॥ गुणैरप्रीतस्य विद्यमानैः पातिव्रत्यादिगुणैरपि अप्रीतस्य, भर्तुस्त्यक्ताया मे, या गन्तुं क्षमा गतिः प्रत्ययजननार्थं या योग्या गतिः, तं हव्यवाहनम् प्रवेक्ष्य इति योजना ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्त्विति ॥ अमर्षवशं दैन्यवशम् ॥ २० ॥ स इति ॥ आकारः भ्रूसंज्ञादिः । मते सिद्धान्ते । स्थित इति शेषः॥२१॥अधोमुखमिति ॥ पतिव्रतायाः कथं निर्व्याजं प्रत्ययं पश्यामीति लज्जया मुखदर्शने दाक्षिण्यं भविष्यतीति बुद्ध्या चावनतमुखम् । शनैः रामानुभवेन मन्दं यथा तथा ॥ २२॥२३॥२४॥ यथा मामिति॥ यथा शुद्धचारित्रामेव मामन्यायेन दुष्टां जानाति, तथा चेत् अदुष्टां दुष्टेति जानाति चेत्, पावकः पातु। रामस्य मयि दोषज्ञानम् यथार्थं चेत्पात्वित्यर्थः॥२५॥२६॥

आदित्यो भगवान्वायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ॥ अहश्चापि तथा संध्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ॥ यथान्येपि विजानन्ति तथा चारित्रसंयुताम् ॥२७॥ एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम् ॥ विवेश ज्वलनं दीप्तं निःसङ्गेनान्तरात्मना ॥ २८ ॥ जनः स सुमहांस्त्रस्तो बालवृद्धसमाकुलः ॥ ददर्श मैथिलीं तत्र प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ २९ ॥ सा तप्तनवहेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ॥ पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य सन्निधौ ॥ ३० ॥ ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ सीतां कृत्स्नास्त्रयो लोकाः पुण्यामाज्याहुतीमिव ॥ ३१ ॥ प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने ॥ पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ॥ ३२ ॥ ददृशुस्तां त्रयो लोका देवगन्धर्वदानवाः ॥ शप्तां पतन्तीं निरये त्रिदिवाद्देवतामिव ॥ ३३ ॥ तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हाहेति विपुलस्वनः ॥ रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥ ॥

आदित्य इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ आदित्यादयोन्ये च यथा मां चारित्रसंयुतां विजानन्ति, तथा मां पातु पावक इति संबन्धः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ आदित्य इत्यादि ॥ एते यथा मां चारित्रसंयुतां विजानन्ति, तथा मां पातु पावक इत्यनुषक्तेन संबन्धः ॥ २७ ॥ एवमिति ॥ परिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य । निःसङ्गेन शरीरे निरभिलाषेण, अन्तरात्मना मनसा । उपलक्षणे तृतीया ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ददृशुरिति ॥ आज्याहुतीमिवेत्यादिदृष्टान्तेन देव्याः परमपावनत्वं द्योत्यते ॥ ३१ ॥ प्रचुक्रुशुरिति ॥ वसोर्धारां संततां घृतधाराम् । अनेनाग्न्युज्जृम्भणं गम्यते ॥ ३२ ॥ ददृशुरिति ॥ देवाः स्वर्गवासिनः । गन्धर्वा भूलोकवासिनः । दानवाः पातालवासिनः । सकलभोगार्हरूपवत्याः सीतायाः अनलप्रवेशस्यानर्हत्वान्निरयपतनानर्हस्वर्गीयदेवतादृष्टान्तः ॥ ३३ ॥ तस्यामिति ॥ अद्भुतोपमः अद्भुततुल्यः । रावणागमनमारभ्य एतावत्पर्यन्तं सीतायाः परमभागवतभूतलक्ष्मणापचारफलमुपपादितम् । वस्तुतः सीताया रावणागमनकाले अग्नौ प्रविष्टत्वात्तस्याः पुनर्गमनार्थं मायासीताया रावणगृहीताया अग्नौ प्रवेश इत्यप्याहुः ॥ ३४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥ ॥

अथ रामस्तवः–ततो हीत्यादि ॥ दुर्मनाः दुःखितमनाः, दध्यौ मनसा ध्यानं कृतवान् ॥ १ ॥ तत इत्यादिश्लोकत्रयमेकं वाक्यम् ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ तत इति ॥ प्रगृह्य उद्धृत्य ॥ ५ ॥ कर्तेत्यादि ॥ पूर्वं ब्रह्मणः अद्वारकं कर्तृत्वम्, अत्र सद्वारकं कर्तृत्वमिति न विरोधः । सर्वज्ञस्त्वं कथमज्ञ इवोपेक्षस इति भावः । देवगणश्रेष्ठं ब्रह्मादिदेवगणश्रेष्ठम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ आत्मस्वरूपमेवाह–ऋतधामेत्यादिश्लोकत्रयमेकं वाक्यम् ॥ ऋतधामाख्यो वसु-

ततो हि दुर्मना रामः श्रुत्वैव वदतां गिरः ॥ दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ १ ॥ ततो वैश्रवणो राजा यमश्चामित्रकर्शनः ॥ सहस्राक्षो महेन्द्रश्च वरुणश्च परंतपः ॥ २ ॥ षडर्धनयनः श्रीमान् महादेवो वृषध्वजः ॥ कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ ३ ॥ एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसन्निभैः ॥ आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम् ॥४॥ ततः स हस्ताभरणान् प्रगृह्य विपुलान् भुजान्॥ अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठाः प्राञ्जलिं राघवं स्थितम् ॥५॥ कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवतां वरः ॥ उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ॥ ६ ॥ कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ॥ ७ ॥ ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां त्वं प्रजापतिः ॥ त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामसि पञ्चमः ॥ ८ ॥ अश्विनौ चापि ते कर्णौ चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥ अन्ते चादौ च लोकानां दृश्यसे त्वं परंतप ॥ ९ ॥ उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥ १० ॥ इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः ॥ अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठान् रामो धर्मभृतां वरः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

रित्यर्थः । प्रजापतिः प्रजास्वामीति वसुविशेषणम् । आदिकर्ता । अण्डाधिपतिपर्यन्ताद्वारकसृष्टिकर्तेत्यर्थः । स्वयं प्रभवतीति स्वयंप्रभुः । अनियाम्य इत्यर्थः । रुद्राणां मध्ये अष्टमो रुद्रः, तथा साध्यानामित्यत्रापि । अन्ते चेति । अन्ते प्रलये, आदौ सृष्टेः प्राक् च दृश्यसे । अनेनोत्पत्तिविनाशराहित्यमुक्तम् । एवं सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सर्वेश्वरोपि सन् अज्ञ इव विदेहकुले प्रादुर्भूतां सीतां किमर्थमुपेक्षस इत्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ इत्युक्त इति ॥ लोकपालैः लोकरक्षकैः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

ब्रह्मादिभिः सामान्यतः स्तूयमानोपि सर्वदेवपूजनीयाच्चतुर्मुखात् स्वप्रभावं लोके प्रख्यापयितुं स्वसौशील्यं दर्शयति—आत्मानमिति ॥ आत्मानं मानुषं मन्ये। परत्वापेक्षया मानुषत्वाभिनय एव ममाभिमत इत्यर्थः। अत्रापि विशेषमाह—राममिति। रामं रामनामकम्। ततोप्यतिशयमाह—दशरथात्मजमिति। अवतारापेक्षया चक्रवर्तिपुत्रत्वमेव प्रियतममिति भावः। स्वस्य विष्णववतारत्वं सुग्रीवादिभिरनवगतमिति तत्प्रतिपत्त्यर्थं स्वस्वरूपं पृच्छति—योहमिति। योहमिति स्वरूपप्रश्नः। यस्येति संबन्धिप्रश्नः। यत इति प्रयोजनप्रश्नः। भगवान् तद्ब्रवीत्विति। चक्रवर्तिपुत्रत्वमेव ममात्यन्तप्रियतमम्। स्वयं सर्वज्ञतया ममानभिमतमपि परत्वं प्रकटयत्वित्यर्थः। आकारगोपनविवरणस्यानभिमतत्वेपि स्वयमनुमतिदानं रावणनिरसनेन निष्पन्नकार्यतया ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ अत्र संप्रदायोदाहरणम्। शङ्खचक्रगदापाणे इत्युक्त्या परत्वव्यञ्जकतया तत्रानादरेणाधःकृतमुखत्वम्, द्वारकानिलयेत्यवतारोल्लेखनेन किंचिदुत्तानमुखत्वम्, गोविन्दपुण्डरीकाक्षेति गोपालपुत्रत्वश्रवणेन परत्वापेक्षया वसुदेवपुत्रत्वमेवाभिमतमिति विक-

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ॥ योहं यस्य यतश्चाहं भगवांस्तद्ब्रवीतु मे ॥ १२ ॥ इति ब्रुवन्तं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ अब्रवीच्छृणु मे राम सत्यं सत्यपराक्रम ॥ १३ ॥ भवान्नारायणो देवः श्रीमान् चक्रायुधो विभुः ॥ एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥ १४ ॥

सिताक्षत्वं च व्यज्यत इति ॥ १२ ॥ १३ ॥ स्वरूपप्रश्नोत्तरमाह—भवानिति ॥ नाराः अयनं यस्यासौ नारायणः। आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति मनुस्मरणात्। तेन जगत्कारणत्वमुक्तम्। एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानो नेमे द्यावापृथिवी इति श्रुतेः। अवाप्तसमस्तकामस्य जगद्व्यापारानुपपत्तिं परिहरति—देव इति। दीव्यतीति देवः क्रीडाप्रवृत्तः। लीलायाः प्रयोजनत्वात्। परिपूर्णस्यापि व्यापारः संभवतीति भावः। एवं परत्वासाधारणं नामधेयमुक्त्वा पत्नीवैशिष्ट्यमाह—श्रीमानिति। नित्यं श्रीरस्यास्तीति श्रीमान्। नित्ययोगे मतुप्। असाधारणमायुधमाह—चक्रायुध इति। स्वरूपवैलक्षण्यमाह—विभुरिति। व्यापक इत्यर्थः। फलितं रक्षकत्वमाह—एकशृङ्गो वराह इति। प्रलयोदधिसंप्लवे वराहरूपं कृत्वा भूमेरुद्धारक इत्यर्थः। उद्धृतासि वराहेणेति श्रुतेः। अनिष्टनिवर्तकत्वमाह—भूतभव्यसपत्नजिदिति। भूताः सपत्नाः मधुकैटभादयः भव्याः सपत्नाः शिशुपालादयः तान् जयतीति तथोक्तः ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ श्रीमानिति नित्ययोगे मतुप्। भवान् श्रीमानिति सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुरित्युक्त्याश्रियःपतित्वं नित्यानपायित्वम् च दर्शितम्। एकशृङ्गो वराहः स वराहो रूपं कृत्वेति श्रुत्युक्तो वराहस्त्वम् ॥ १४ ॥

अथ सर्वविद्योपसंहारार्थमाह–अक्षरमित्यादि ॥ न क्षरतीत्यक्षरम् आप्नोति व्याप्नोतीति वा अक्षरम्। एतद्वै तदक्षरम् गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्तीति श्रुतेः। भवानित्यनुषज्यते। अक्षरं भवान्। एवमुत्तरत्राप्यनुषञ्जनीयम्। बृहति बृंहयतीति च ब्रह्म। बृहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्मेति श्रुतिनिर्वचनात्। सत्यम् अविपर्यस्तम्। षड्भावविकारशून्यमित्यर्थः। अस्ति जायते परिणमते विवर्धते अपक्षीयते विनश्यतीति षड्भावविकाराः। मध्ये चान्ते चेति। चकारादादौ चेत्यर्थः। वर्तमानमिति शेषः। नित्यत्वमुक्तमनेन। लोकानां परो धर्मः सिद्धरूपो धर्मः। सर्वलोकश्रेयःसाधनीभूत इत्यर्थः। विष्वद्रीची सर्वगता सेना यस्य सः विष्वक्सेनः। सर्वस्वामीत्यर्थः। चतुर्भुजः युगपच्चतुर्विधपुरुषार्थप्रद इत्यर्थः ॥ १५ ॥ शार्ङ्गधन्वेति ॥ शृङ्गविकारः शार्ङ्गम् धनुर्यस्य स शार्ङ्गधन्वा। "धनुषश्च" इत्यनङादेशः। अनेन रक्षणोपकरणवत्त्वमुक्तम्। हृषीकाणाम् इन्द्रियाणाम् ईशः नियन्ता। सर्वेन्द्रियाकर्षकदिव्यविग्रह इत्यर्थः। पुरु सनोतीति पुरुषः। "षणु, दाने" इत्यस्माद्धातोर्डप्रत्ययः। ब्रह्मपद इत्यर्थः। यद्वा पुरि हृदयगुहायां शेत इति पुरुषः। पुरि शयनं पुरुषमीक्षत इति

अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ॥ लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥ १५ ॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ॥ अजितः खड्गधृद्विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥ १६ ॥
सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः ॥ प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥ १७ ॥

निर्वचनश्रुतेः। यद्वा येन जगत्पूर्णं स पुरुषः। तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वमिति श्रुतेः। यद्वा पुरातनत्वात् पुरुषः। पूर्वमेवाहमिहासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वमिति श्रुतेः। पुरुषेभ्यः क्षराक्षरेभ्यः उत्तमः पुरुषोत्तमः। यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम, इति हि गीयते। यद्वा पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः। सप्तमीति योगविभागान्नागोत्तमादिवत् समासः। कैश्चिदपि न जित इत्यजितः। आश्रितसंरक्षणे कदाचिदपि भङ्गं न प्राप्नोतीत्यर्थः। खड्गं नन्दकाख्यं धरतीति खड्गधृत्। विष्णुः व्यापनशीलः। यो दयापदं प्राप्नोति तं तदा तत्रैव स्थितो रक्षतीत्यर्थः। कृष्णः भूनिर्वृतिहेतुः। कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचक इति निर्वचनात्। बृहत् बलं धारणसामर्थ्यं यस्य सः बृहद्बलः ॥ १६ ॥ सेनानीरिति ॥ सेनां नयतीति सेनानीः। देवसेनानिर्वाहक इत्यर्थः। ग्रामं नयतीति ग्रामणीः। दिव्यजनपदादिपालक इत्यर्थः। बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दम इति बुद्ध्यादिप्रवर्तक इत्यर्थः। न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्। यं हि रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तमिति वचनात्। महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तक इति श्रुतेश्च। प्रभवत्यस्माज्जगदिति प्रभवः उत्पत्तिस्थानम्। सर्वोपादानमित्यर्थः।

इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ॥ शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥१८॥ सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभः ॥ १९ ॥ त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ॥ सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ॥ २० ॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परन्तपः ॥ प्रभवं निधनं वा ते न विदुः को भवानिति ॥ २१ ॥ ॥

अप्ययः सर्वजगल्लयस्थानम् । कृष्ण एव हि भूतानामुत्पत्तिरपि चाप्यय इति श्रुतेः । उपेन्द्रः इन्द्रानुजत्वेन प्रथममवतीर्णः । मधुसूदनः वेदापहारकदैत्यसंहारी ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ क्षमा क्षमानिर्वाहकः । कीर्त्याः कीर्तेः । क्षमा क्षमेत्युक्तत्वात् । दमः इन्द्रियजेता । प्रभवः उत्पत्तिमत्कार्यवर्गशरीरः । स्थूलचिदचिद्विशिष्टस्य कार्यत्वात् । बहु स्यामित्यादिश्रुतेः ॥ १७ ॥ इन्द्रकर्मेति ॥ इन्द्रस्य कर्मेव कर्म यस्य स इन्द्रकर्मा । तं विष्णुरन्वतिष्ठतेति श्रुतेः । महेन्द्रः निरतिशयैश्वर्यसंपन्नः । पद्मं नाभौ यस्य स पद्मनाभः । ममापि जनक इत्यर्थः ।वक्ष्यति हि—पद्मे दिव्येर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि । प्राजापत्यं त्वया कर्म सर्वं मयि निवेशितमिति ॥ रणे अन्तं शत्रुनाशं करोतीति रणान्तकृत् । शरण्यं शरणार्हम् । तदुचितज्ञानशक्तिदयादिसंपन्नमित्यर्थः । शरणं रक्षणोपायम् । उपाये गृहरक्षित्रोः शब्दः शरणमित्ययमिति वचनात् । सर्वस्य शरणं सुहृदिति श्रुतेः । महर्षयः अलौकिकतत्त्वसाक्षात्कारसमर्थाः । दिव्या महर्षयः सनकादयः । यत्रर्षयः प्रथमजा ये पुराणा इत्युक्ता नित्यसूरयो वा । नित्यनिर्दोषा वेदा वा ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ इन्द्रस्येव कर्म यस्य स इन्द्रकर्मा । वृत्रादिवधस्येन्द्रान्तर्यामिकर्तृकत्वात् । महर्षयः अलौकिकतत्त्वसाक्षात्कारसमर्थाः । तत्रापि दिव्या अवताररहस्यादिविशेषज्ञानवन्तो वाल्मीकिप्रभृतयः । यद्वा नित्यसूरयः । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳस इति श्रुतेः ॥१८॥ सहस्रशृङ्ग इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ सहस्रशृङ्गः सहस्रशाखारूपशृङ्गः । शतजिह्वः अनेकविधचोदनारूपजिह्वः । ऋषभः कर्मणामालोचयिता । “ऋष, आलोचने” इति धातुः । महांश्चासावृषभश्च महर्षभः । एवंभूतो वेदात्मा त्वमित्यर्थः । आदिकर्ता समष्टिकर्ता । अनेन व्यष्टिकर्तुः स्वस्य व्यावृत्तिः । स्वयंप्रभुः अनन्यप्रेर्यः । न तस्येशे कश्चनेति श्रुतेः । सिद्धानां मुक्तानाम् । साध्यानां, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा इत्युक्तानां नित्यानामाश्रयः साम्यभोगप्रदः । पूर्वजः आश्रितापेक्षायाः पूर्वं तद्रक्षणाय जनितः ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ वेदात्मा वेदपुरुषान्तर्यामी । पूर्वजः । पूर्वमेवाहमिहासामिति श्रुतेः । हिर्हेतौ । आदिकर्तृत्वे पूर्वजत्वं हेतुरित्यर्थः । सिद्धाद्याश्रयत्वे चायमेव हेतुः ॥१९॥२०॥ सर्वकर्मसमाराध्यत्वमाह—त्वं यज्ञ इति ॥ त्वं यज्ञः । यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः । यज्ञनिर्वाहकपशुहविराज्यस्रुक्स्रुवादिशरीरको य-

ज्ञाराध्येन्द्रादिशरीरकश्चेत्यर्थः । ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतमिति हि गीयते । वषट्कार इत्युपलक्षणम् । आश्रावयेति चतुरक्षरमस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् यजेति द्व्यक्षरम् ये यजामह इति पञ्चाक्षरमित्युक्तानां सप्तदशाक्षराणाम् । तैराराध्य इत्यर्थः । तथोक्तम्–चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स नो विष्णुः प्रसीदत्विति ॥ ओंकारः प्रणववाच्यः । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेति श्रुतेः । परन्तपः उत्कृष्टतप इत्यर्थः । उत्कृष्टतपःसमाराध्य इति यावत् । ते प्रभवं निधनं वा न विदुः, वेदा वैदिकाश्च को भवानिति च न विदुः । अपरिच्छिन्नमहिमत्वात् । क इत्थावेद यत्र स इति श्रुतेः ॥ २१ ॥ सर्वान्तर्यामित्वमाह–दृश्यस इति ॥ योगिभिरिति शेषः । अनेन संबन्धप्रश्नस्योत्तरमुक्तम् ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ सर्वान्तर्यामित्वमाह–दृश्यस इति ॥ पण्डितैरिति शेषः । भूतानि विष्णुर्भवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च । नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्येति हि स्मर्यते ॥ २२ ॥ पुरुषसूक्तार्थमाह–सहस्रेति ॥ अत्र शतशब्दः सहस्रवाचकः । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादिति श्रुतेः ।

दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च ॥ दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु वनेषु च ॥२२॥ सहस्रचरणः श्रीमान् शतशीर्षः सहस्रदृक् ॥ त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम् ॥ २३ ॥ अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥ त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान् ॥२४॥ अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥ देवा गात्रेषु रोमाणि निर्मिता ब्रह्मणः प्रभो ॥२५॥ निमेषस्ते भवेद्रात्रिरुन्मेषस्ते भवेद्दिवा ॥ संस्कारास्तेऽभवन् वेदा न तदस्ति त्वया विना ॥ २६ ॥ ॥

श्रीमानिति भूपतित्वस्याप्युपलक्षणम् । श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावित्युत्तरनारायणोक्तेः । अथ सर्वाधारत्वमाह–त्वमिति । भूतानीति भूव्यतिरिक्तमहाभूतपरम् । अनेनाधाराधेयभावसंबन्ध उक्तः ॥२३॥ दैनंदिनप्रलयवृत्तान्तमाह–अन्त इति ॥ पृथिव्या अन्ते विनाशे । महानुरगः शेषोयस्य सः शेषशायी सन्, धारयन् कुक्षौ धारयन् दृश्यसे । मार्कण्डेयादिभिरिति शेषः ॥२४॥ अथ अङ्गान्यन्या देवता इत्युक्तसर्वदेवाद्यात्मकत्वं दर्शयति–अहं त इत्यादिना ॥ हृदयं वक्षः । ब्रह्मणः परब्रह्मणः । ते देवा गात्रेषु स्थिताः रोमाणीव स्थिताः तद्वदविनाभूताः ॥ २५ ॥ निमेष इति ॥ दिवा अहः । वेदाः संस्काराः निःश्वसितभूता इत्यर्थः । तस्य ह वा एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेद इत्यादि श्रुतेः । किं बहुना संग्रहेणोच्यत इत्याह– न तदस्ति विना त्वयेति । यत्त्वया विनाभूतं त्वदनन्तर्यामिकम्, तन्नास्तीत्यर्थः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥

एवं निषेधश्रुत्यर्थमुक्त्वा सर्वं खल्विदं ब्रह्म तत्त्वमसीत्यादिसामानाधिकरण्यश्रुत्यर्थमाह–जगदिति ॥ सर्वं जगत् ते शरीरम् तव नियमेन आधेयं विधेयं शेषभूतं चेत्यर्थः । इदमेव हि शरीरलक्षणम् । एवं जगतस्त्वच्छरीरत्वाच्छरीरगतविशेषणानि त्वद्विशेषणानीत्याह–स्थैर्यमिति । वसुधातलं वसुधातलस्थैर्यम् । काठिन्यवान् यो बिभर्ति तस्मै भूम्यात्मने नम इति विष्णुपुराणोक्तेः । अग्निः अग्नितापः, ते कोपः । सोमः सोमगतप्रसादः, ते प्रसादः त्वत्प्रसाद इत्यर्थः ॥२७॥ त्वयेति ॥ त्वया त्रिविक्रमेण । पुराणे पूर्वकाले । लोकाक्रमणफलमाह–महेन्द्र इति । राजा कृतः। त्रैलोक्यस्येति शेषः ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ता इति। बलेः प्रतिग्रहीतेत्यर्थः । एतेन वामनावतारो व्यञ्जितः। विक्रमैः पादविन्यासैस्त्रिभिः क्रान्ता इति त्रिविक्रमावतारः कथितः।

जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥ अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ॥२७॥ त्वया लोकास्त्रयः
क्रान्ताः पुराणे विक्रमैस्त्रिभिः ॥ महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा महासुरम् ॥ २८ ॥ सीता लक्ष्मीर्भवान्
विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥ वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥ २९ ॥ तदिदं
नः कृतं कार्यं त्वया धर्मभृतां वर ॥ निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ॥ ३० ॥ अमोघं बलवीर्यं
ते अमोघस्ते पराक्रमः ॥ अमोघं दर्शनं राम न च मोघः स्तवस्तव ॥ ३१ ॥ अमोघास्ते भविष्यन्ति
भक्तिमन्तश्च ये नराः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदमिति श्रुतेः । पुराणे पूर्वकाले । महेन्द्रो राजा कृतः । बलिना पदान्निर्यासित इन्द्रः पुनस्त्वया राजा कृत इत्यर्थः ॥ ॥ २८ ॥ प्रयोजनप्रश्नस्योत्तरमाह–वधार्थमिति ॥ ❀ तनिश्लोकी ❀ भगवदवतारेषु लक्ष्म्या अनुवृत्तिमाह–सीतेति ॥ कृष्णः भविष्यत्कृष्णावतारश्च त्वमेवेत्यर्थः । प्रजापतिः प्रजापतिशब्दवाच्यस्त्वमेव । अवतारप्रयोजनमाह–वधार्थमिति । मानुषीं मनुष्यसंस्थानरूपाम्, तनुमप्राकृतशरीरम् ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ अमोघमिति ॥ न च मोघः स्तवस्तवेति पाठः ॥ ३१ ॥ अमोघा इत्यर्धम् ॥ अमोघाः अप्रतिबद्धफलाः ये त्वयि भक्तिमन्तः ते अविलम्बेन फलमभिमतं लभन्त इति इदं चावतारस्यैकं प्रयोजनम् ॥ ३२ ॥

इदमेव विवृणोति–य इति ॥ त्वामुद्दिश्येति शेषः । अनेन सर्वस्मादपि तपःप्रभृतेः रामभक्तिरेव परो धर्म इत्युक्तम् । काम्यन्त इति कामाः भोगोपकरणानि, इह लोके परत्र च प्राप्नुवन्ति । सदेत्यनेन यावच्छरीरपातमत्र भोगान् भुक्त्वा शरीरावसाने परलोके सर्वान् कामान् प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ३३॥ ये रामभक्तिं कर्तुमदक्षास्तेषामिदं स्तोत्रमेव तादृशफलप्रदमित्याह–इममिति ॥ ऋषिः वेदः तत्संबन्ध्यार्षम् । अत एव पुरातनम् । पराभवः पुनरावृत्तिः ॥ ३४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥ ॥

ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥ प्राप्नुवन्ति सदा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३३ ॥ इममार्षं स्तवं नित्यमितिहासं पुरातनम्॥ ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः॥३४॥इति श्रीम०विंशत्युत्तरशततमः सर्गः॥१२०॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम् ॥ अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः ॥ १ ॥ स विधूय चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः ॥ उत्तस्थौ मूर्तिमानाशु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ॥ २ ॥ तरुणादित्यसंकाशां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ॥ रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥ ३ ॥ अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपां मनस्विनीम्॥ ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥ ४ ॥ अब्रवीच्च तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ॥ ५ ॥ एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ ६ ॥ नैव वाचा न मनसा नानुध्यानान्न चक्षुषा ॥ सुवृत्ता वृत्तशौण्डीर न त्वामतिचचार ह ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एतच्छ्रुत्वेत्यादि ॥ विभावसुः अग्निः ॥ १ ॥ स इति ॥ विधूय चितां शिथिलीकृत्य । मूर्तिमान् मनुष्यविग्रहवान् ॥२॥ तरुणादित्येत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ तथारूपां प्रवेशकालिकरूपवतीम् । मनस्विनीं प्रसन्नमनस्कामित्यर्थः । अङ्के कृत्वा अङ्केनादायेत्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ एषेति ॥ एषा या पूर्वं मयि प्रविष्टा सैषेत्यर्थः । एतेन मायासीताग्निं प्रविष्टा साक्षात्सीताग्निना दत्तेति प्रत्युक्तम् । ते त्वदीयेत्यर्थः । एनां परिगृहाणेति शेषः॥ ६ ॥ पापाभावमेवोपपादयति–नैवेत्यादिना ॥ अनुध्यानात्संकल्पात् । अत्यन्ताभिमतां देवीं निर्दोषां जानन्नपि स्ववृत्तावद्यत्वपरिहारार्थं वह्निं प्रावेशयदिति संतोषातिशयाद्वृत्तशौण्डीरेति संबोधनम् ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥

एतत्संमतिं विना कथं रावणः समानीतवानित्यत्राह–रावणेनेत्यादि ॥ ८ ॥ विवशा नीतेत्यत्र लिङ्गं दर्शयति–रुद्धेति ॥ त्वयि चित्तं यस्याः सा त्वच्चित्ता । त्वमेव परायणमुत्तमगतिर्यस्याः सा त्वत्परायणा ॥९॥ १० ॥ विशुद्धभावामिति ॥ विशुद्धभावां विशुद्धहृदयाम् । अभिधातव्यम् मद्वचनस्योत्तरमिति शेषः ॥ ११ ॥ तत इति ॥ दध्यौ न वृथैव सीता त्यक्तेत्यचिन्तयत् ॥ १२ ॥ १३ ॥ वस्तुतो निर्दोषत्वेपि अपवादोस्तीत्याह–अवश्यमिति ॥

रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा ॥ त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जनाद्वनात् ॥८॥ रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ॥ रक्षिता राक्षसीसंघैर्विकृतैर्घोरदर्शनैः ॥ ९ ॥ प्रलोभ्यमाना विविधं भर्त्स्यमाना च मैथिली ॥ नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ १० ॥ विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व राघव ॥ न किंचिदभिधातव्यमहमाज्ञापयामि ते ॥ ११ ॥ ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैतद्वदतां वरः ॥ दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ १२ ॥ एवमुक्तो महातेजा द्युतिमान् दृढविक्रमः ॥ अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥ १३ ॥ अवश्यं त्रिषु लोकेषु न सीता पापमर्हति ॥ दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥ १४॥ बालिशः खलु कामात्मा रामो दशरथात्मजः ॥ इति वक्ष्यन्ति मां सन्तो जानकीमविशोध्य हि ॥ १५ ॥ अनन्यहृदयां भक्तां मच्चित्तपरिवर्तिनीम् ॥ अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ १६ ॥ प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ॥ उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ १७ ॥ इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा ॥ रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥ १८॥ ॥ ॥

॥१४॥ अपवादपरिहारार्थमयं मम प्रयत्न इत्याह–बालिश इति ॥ अविशोध्येति । परिग्रह इति शेषः ॥१५॥ अनन्येति ॥ अनन्यहृदयां मय्येव सक्तहृदयाम् । मच्चित्तपरिवर्तिनीं मच्चित्तानुवर्तिनीम् । त्यक्तस्वव्यापारामित्यर्थः । जनकात्मजामिति हेतुगर्भविशेषणम् । जनकपुत्र्याः किमाचारसंपत्तिर्वक्तव्येति भावः ॥ १६ ॥ तर्हि किमर्थमुपेक्षितवानसीत्यत्राह–प्रत्ययार्थमिति ॥ प्रत्ययार्थं विश्वासजननार्थमित्यर्थः । सत्यसंश्रयः सत्यैकाश्रयः । यथावद्वृत्तप्रवर्तनाकाङ्क्षीत्यर्थः ॥ १७ ॥ एतादृशसुन्दरीं रावणः कथं नेक्षेतेत्यत्राह–इमामपीति ॥ १८ ॥ ॥ ॥

दृष्टान्तान्तरमाह—न हीति ॥ अप्राप्तां प्रधर्षणानर्हाम् ॥ १९ ॥ तथाप्येषा तादृशमैश्वर्यं कथं जह्यात्तत्राह—नेयमिति ॥ रावणैश्वर्यं नेयमर्हति किंतु ममैश्वर्यमर्हतीत्यर्थः । तत्र हेतुमाह—अनन्येति । मया अनन्या अभिन्ना । अविनाभूतेति यावत् ॥ २० ॥ अहमपि तया अनन्य इत्याह—विशुद्धेति ॥२१॥ सीतापरिग्रहे भवद्वचनं तु प्रधानहेतुरित्याह—अवश्यमिति ॥ वचनकरणे स्नेहः सर्वपूज्यत्वं हितोपदेष्टृत्वं च हेतुरित्यर्थः ॥ २२ ॥ इतीति ॥ विदितं स्वेन विदितम्, इदम् उक्तं वचनम् उक्त्वा स्वकृतेन कर्मणा करणेन महाबलैः कर्तृभिः प्रशस्यमानः प्रियया समेत्य सीतां स्वसमीपमानीयेत्यर्थः

न हि शक्तः स दुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम् ॥ प्रधर्षयितुमप्राप्तां दीप्तामग्निशिखामिव ॥१९॥ नेयमर्हति चैश्वर्यं रावणान्तःपुरे शुभा ॥ अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ॥२०॥ विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ॥ न हि हातुमियं शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥२१॥ अवश्यं तु मया कार्यं सर्वेषां वो वचः शुभम् ॥ स्निग्धानां लोकमान्यानामेवं च ब्रुवतां हितम् ॥२२॥ इतीदमुक्त्वा विदितं महाबलैः प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ॥ समेत्य रामः प्रियया महाबलः सुखं सुखार्होनुबभूव राघवः ॥२३॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२१॥
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं राघवेण सुभाषितम् ॥ इदं शुभतरं वाक्यं व्याजहार महेश्वरः ॥ १ ॥ पुष्कराक्ष महाबाहो महावक्षः परन्तप ॥ दिष्ट्या कृतमिदं कर्म त्वया शस्त्रभृतां वर ॥ २ ॥ ॥ ॥

॥ २३ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥
देवकार्यस्य कृतत्वात्त्रिदिवमाक्रमेति ब्रह्मणोक्तत्वाल्लोके धर्मसंस्थापनपरं रामहृदयं जानन् रुद्रस्तदनुमन्यते—एतच्छ्रुत्वेत्यादि॥१॥पुष्कराक्षेति॥पुष्कराक्ष पुण्डरीकाक्ष । अनेन तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीके इव अक्षिणी, पुरुषः पुण्डरीकाक्ष इति श्रुतिस्मृतिभ्यामुदीरितस्य परब्रह्मासाधारणचिह्नस्य रामे रुद्रेण प्रतिपादनाद्रामत्वेनावतीर्णो विष्णुरेव वेदान्तवेद्यं परब्रह्मेत्युक्तम् । श्रीनिवासत्वेन महावक्षस्त्वम् । दिष्ट्या भाग्येन । अस्माकमिति शेषः ॥ २ ॥

उक्तमेव विवृणोति–दिष्टचेति ॥ सर्वस्य लोकस्य रावणजं भयमेव प्रवृद्धं तमः अपावृत्तं निरस्तम् ॥ ३ ॥ आश्वास्येत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ यशस्विनीमिति कैकेयीविशेषणम् । तन्मूलत्वाद्रावणवधस्य तस्या यशस्वित्वम् । लक्ष्मणमातरमित्यनेन सा लक्ष्मणस्नेहाद्विशेषतो वन्द्येत्युक्तम् । अयोध्यायां सुहृज्जनं नन्दयित्वेत्यन्वयः । वंशं पुत्रपौत्रादिपरम्पराम् । इक्ष्वाकूणां कुले इक्ष्वाकुकुलनिमित्तम्, स्थापयित्वा । प्राप्य चानुत्तमं यश इति

दिष्टचा सर्वस्य लोकस्य प्रवृद्धं दारुणं तमः ॥ अपावृत्तं त्वया संख्ये राम रावणजं भयम् ॥३॥ आश्वास्य भरतं दीनं
कौसल्यां च यशस्विनीम् ॥ कैकेयीं च सुमित्रां च दृष्ट्वा लक्ष्मणमातरम् ॥ ४ ॥ प्राप्य राज्यमयोध्यायां
नन्दयित्वा सुहृज्जनम् ॥ इक्ष्वाकूणां कुले वंशं स्थापयित्वा महाबल ॥ ५ ॥ इष्ट्वा तुरगमेधेन प्राप्य चानुत्तमं यशः ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा त्रिदिवं गन्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ एष राजा विमानस्थः पिता दशरथस्तव ॥ काकुत्स्थ मानुषे लोके
गुरुस्तव महायशाः ॥ ७ ॥ इन्द्रलोकं गतः श्रीमांस्त्वया पुत्रेण तारितः ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥
॥ ८ ॥ महादेववचः श्रुत्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ॥ विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत्पितुः ॥ ९ ॥ दीप्यमानं
स्वया लक्ष्म्या विरजोम्बरधारिणम् ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं विभुः ॥ १० ॥ हर्षेण महताविष्टो विमानस्थो
महीपतिः ॥ प्राणैः प्रियतरं दृष्ट्वा पुत्रं दशरथस्तदा ॥ ११ ॥ आरोप्याङ्कं महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः ॥ बाहुभ्यां
संपरिष्वज्य ततो वाक्यं समाददे ॥ १२ ॥ न मे स्वर्गो बहुमतः संमानश्च सुरर्षिभिः ॥ त्वया राम विहीनस्य
सत्यं प्रतिश‍ृणोमि ते ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तुरगमेधफलोक्तिः । आश्वास्येत्यादिना दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । वत्स्यामि मानुषे लोके इत्यवतारात्पूर्वं तत्कृतां प्रतिज्ञामनुसृत्य रुद्रेणोक्तम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ एष इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ देवदेहपरिग्रहेणापरिज्ञायमानत्वात् पुरस्थितोप्येष इत्यङ्गुल्या निर्दिश्यते । मानुषे लोके गुरुरित्यनेन, पिता पुत्रेण पितृमान् योनियौनाविति श्रुतिरुपबृंहिता ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ हर्षेणेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ पुत्रं रामम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ न मे स्वर्ग इति ॥ सुरर्षिभिः संमानः देवर्षिभिः संमानोपि ॥ १३ ॥ ॥ ॥

॥१४॥ कैकेय्येति ॥ हृदये स्थितानि । न विस्मरामीत्यर्थः । तेन दुःखितोभूवमिति सूचितम् ॥१५॥ त्वां त्विति ॥ सलक्ष्मणमित्यनेन द्वितीयपरिष्वङ्गे लक्ष्मणोपि विषयीकृत इत्युच्यते ॥ १६ ॥ तारितोहं त्विति ॥ कहोलो नाम ऋषिरष्टावक्रेण तारित इतीयं कथा भारतोक्ता ॥ १७ ॥ इदानीं त्विति ॥ रावणस्य वधार्थं सुरेश्वरैरिदमभिषेकविघ्नादिकं कर्म यथा विहितं तथा इदानीमेव जानामि । पुरुषोत्तमेत्यनेन भवान् विष्णुरेव रावणवधार्थं मनुष्यत्वं

अद्य त्वां निहतामित्रं दृष्ट्वा संपूर्णमानसम् ॥ निस्तीर्णवनवासं च प्रीतिरासीत्परा मम ॥ १४ ॥ कैकेय्या यानि चोक्तानि वाक्यानि वदतां वर ॥ तव प्रव्राजनार्थानि स्थितानि हृदये मम ॥१५॥ त्वां तु दृष्ट्वा कुशलिनं परिष्वज्य सलक्ष्मणम् ॥ अद्य दुःखाद्विमुक्तोस्मि नीहारादिव भास्करः ॥१६॥ तारितोहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना ॥ अष्टावक्रेण धर्मात्मा तारितो ब्राह्मणो यथा ॥१७॥ इदानीं तु विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ॥ वधार्थं रावणस्येदं विहितं पुरुषोत्तम ॥१८॥ सिद्धार्था खलु कौसल्या या त्वां राम गृहं गतम् ॥ वनान्निवृत्तं संहृष्टा द्रक्ष्यत्यरिनिषूदन ॥१९॥ सिद्धार्थाः खलु ते राम नरा ये त्वां पुरीं गतम् ॥ जलार्द्रमभिषिक्तं च द्रक्ष्यन्ति वसुधाधिपम् ॥२०॥ अनुरक्तेन बलिना शुचिना धर्मचारिणा ॥ इच्छामि त्वामहं द्रष्टुं भरतेन समागतम् ॥ २१॥ चतुर्दश समाः सौम्य वने निर्यापितास्त्वया ॥ वसता सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च धीमता ॥ ॥२२॥ निवृत्तवनवासोपि प्रतिज्ञा सफला कृता ॥ रावणं च रणे हत्वा देवास्ते परितोषिताः ॥२३॥ कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन ॥ भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥

गत इत्युच्यते ॥ १८ ॥ सिद्धार्थेति ॥ सिद्धार्था कृतार्था । मम स्वर्गसुखादपि तस्याः सुखमधिकमिति भावः ॥ १९ ॥ २० ॥ अनुरक्तेनेति ॥ अवश्यं राम भरतं प्राप्नुहीति भावः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥

कुरु प्रसादमिति ॥ कैकेय्या भरतस्य च कैकेय्यां भरते चेत्यर्थः । संबन्धसामान्ये षष्ठी । यस्मादुक्ता तस्मात् प्रसादं कुर्विति संबन्धः ॥२५॥ स शाप इत्यर्धमेकं वाक्यम् ॥ शापः संबन्धविच्छेदरूपः ॥ २६ ॥ २७ ॥ राममिति ॥ सीतया सह रामं शुश्रूषतेत्यन्वयः ॥ २८ ॥ धर्ममिति ॥ स्वर्गं सुखम् । लक्ष्मणस्यापि विष्णववतारत्वं न जानाति दशरथः। महिमानं महत्त्वम् ॥२९॥ ३०॥ रामस्य सर्वोत्तमत्वं शिष्टाचारेण दर्शयति–एत इति ॥ अर्चन्तीति

कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥ सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया ॥२५॥ स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत्प्रभो ॥ २६ ॥ स तथेति महाराजो राममुक्त्वा कृताञ्जलिम् ॥ लक्ष्मणं च परिष्वज्य पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥ २७ ॥ रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ॥ कृता मम महाप्रीतिः प्राप्तं धर्मफलं च ते ॥ २८ ॥ धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि ॥ रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथैव च ॥ २९ ॥ रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन ॥ रामः सर्वस्य लोकस्य शुभेष्वभिरतः सदा ॥ ३० ॥ एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ अभिगम्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥३१॥ एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्म निर्मितम् ॥ देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परन्तपः ॥३२॥ अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया ॥ रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ॥३३॥ स तथोक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ उवाच राजा धर्मात्मा वैदेहीं वचनं शुभम् ॥ ३४ ॥ कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति ॥ रामेण त्वद्विशुद्ध्यर्थं कृतमेतद्धितैषिणा ॥३५॥ न त्वं सुभ्रु समाधेया पतिशुश्रूषणं प्रति ॥ अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम् ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥

णिजभाव आर्षः । एत इति हस्तनिर्देशेन रुद्रोऽप्यन्तर्गतः ॥३१॥ एतदिति ॥ देवानां हृदयं सर्वदेवान्तर्यामी । वेदानामिति पाठे वेदतात्पर्यभूतम् उभयथाप्यग्नीन्द्रादिरूपेण सर्वकर्मसमाराध्यमित्यर्थः । गुह्यं साक्षादुपनिषद्वेद्यम् । अव्यक्तं भक्तिशून्यैर्दुर्ज्ञेयम्। अक्षरं षड्भावविकाररहितम् । तदेतत् ब्रह्म रामः रामरूपेण निर्मितम् रामरूपेणावतीर्णमिति उक्तम् । ब्रह्मादिभिरिति शेषः ॥३२॥३३॥३४॥३५॥ न त्वमिति ॥ न समाधेया नोपदेष्टव्या ॥ ३६ ॥

॥ ३७ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥ ॥

अथेन्द्रानुशासनम्—प्रतिप्रयात इत्यादि ॥ काकुत्स्थे दशरथे। महेन्द्रः लब्धमहेन्द्रभावः ॥१॥ अमोघमिति ॥ तवास्माकं दर्शनम् अस्मत्कर्तृकं दर्शनम् दशरथपुत्रकामेष्टिकालिकम्, अमोघं रावणवधपर्यन्तं जातमित्यर्थः । तेन प्रीतियुक्तत्वेन, यत् प्रत्युपकाररूपं कार्यमिच्छसि तद्ब्रूहि । केचित्तु

इति प्रतिसमादिश्य पुत्रौ सीतां तथा स्नुषाम् ॥ इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो ज्वलन् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रतियाते तु काकुत्स्थे महेन्द्रः पाकशासनः ॥ अब्रवीत्परमप्रीतो राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ १ ॥ अमोघं दर्शनं राम तवास्माकं परन्तप॥ प्रीतियुक्ताः स्म तेन त्वं ब्रूहि यन्मनसेच्छसि ॥२॥ एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ॥ ३ ॥ यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि सर्वसुरेश्वर ॥ वक्ष्यामि कुरु ते सत्यं वचनं वदतां वर ॥ ४ ॥ मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम् ॥ ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥५॥ मत्कृते विप्रयुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च वानराः ॥ मत्प्रियेष्वभियुक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति च ॥६॥ त्वत्प्रसादात्समेयुस्ते वरमेतदहं वृणे ॥७॥ नीरुजो निर्व्रणांश्चैव संपन्नबलपौरुषान् ॥ गोलाङ्गूलांस्तथैवर्क्षान् द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ ८ ॥ अकाले चापि मुख्यानि मूलानि च फलानि च ॥ नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ॥ ९ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य राघवस्य महात्मनः ॥ महेन्द्रः प्रत्युवाचेदं वचनं प्रीतिलक्षणम् ॥ १० ॥ ॥

त्वत्कर्तृकमस्मद्विषयं दर्शनमित्यर्थ इत्याहुः ॥२॥३॥ ४ ॥ ५ ॥ मत्कृत इत्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ मत्प्रियेषु अभियुक्ता निरताः । समेयुरित्यत्र पुत्रैर्दारैश्चेत्यावर्तनीयम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ नीरुज इति ॥ निष्पीडान् ॥ ८ ॥ अकाल इति ॥ विमलाः विमलोदकाः ॥९॥ श्रुत्वा त्विति ॥ प्रीतिर्लक्ष्यतेनेनेति प्रीतिलक्षणं प्रीतिव्यञ्जकम् ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

महानयं वर इति ॥ वरस्य महत्त्वम् इतस्ततो विप्रकीर्णकरचरणपुच्छादिस्वस्वसंस्थानसंधानलोकान्तरगतानयनादिरूपाघटितार्थघटितत्वम् । द्विर्मया नोक्तपूर्वमिति । उक्तवचनस्य विपरीतं वचनान्तरं नोक्तपूर्वमित्यर्थः॥ ११ ॥१२॥१३॥अकाल इति ॥ पुष्पशबलाः पुष्पैर्नानावर्णाः । सलिलायुताः सलिलैर्व्याप्ताः ॥१४॥ ये निहताः सव्रणास्तेषां निर्व्रणत्वमनुगृह्णाति–सव्रणैरिति ॥ प्रथमं वरदानात्पूर्वम् सव्रणैः, अथ निर्व्रणैः संवृत्तैः निर्व्रणीभूतैः गात्रैरुप-

महानयं वरस्तात त्वयोक्तो रघुनन्दन ॥ द्विर्मया नोक्तपूर्वं हि तस्मादेतद्भविष्यति ॥ ११ ॥ समुत्थास्यन्ति हरयो
ये हता युधि राक्षसैः ॥ ऋक्षाश्च सहगोपुच्छा निकृत्ताननबाहवः ॥ नीरुजो निर्व्रणाश्चैव संपन्नबलपौरुषाः ॥ १२ ॥
समुत्थास्यन्ति हरयः सुप्ता निद्राक्षये यथा ॥ सुहृद्भिर्बान्धवैश्चैव ज्ञातिभिः स्वजनैरपि ॥ सर्व एव समेष्यन्ति
संयुक्ताः परया मुदा ॥ १३ ॥ अकाले पुष्पशबलाः फलवन्तश्च पादपाः ॥ भविष्यन्ति महेष्वास नद्यश्च सलि-
लायुताः ॥ १४ ॥ सव्रणैः प्रथमं गात्रैः संवृत्तैर्निर्व्रणैः पुनः ॥ १५ ॥ ततः समुत्थिताः सर्वे सुप्त्वेव हरिपुङ्गवाः ॥
बभूवुर्वानराः सर्वे किमेतदिति विस्मिताः ॥ १६ ॥ ते सर्वे वानरास्तस्मै राघवायाभ्यवादयन् ॥ १७ ॥ काकुत्स्थं
परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः ॥ ऊचुस्ते प्रथमं स्तुत्वा स्तवार्हं सहलक्ष्मणम् ॥ १८ ॥ गच्छायोध्यामितो वीर
विसर्जय च वानरान् ॥ १९ ॥ मैथिलीं सान्त्वयस्वैनामनुरक्तां तपस्विनीम् ॥ शत्रुघ्नं च महात्मानं मातॄः सर्वाः
परन्तप ॥ २० ॥ भ्रातरं पश्य भरतं त्वच्छोकाद्व्रतधारिणम् ॥ अभिषेचय चात्मानं पौरान् गत्वा प्रहर्षय ॥ २१ ॥
एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य रामं सौमित्रिणा सह ॥ विमानैः सूर्यसंकाशैर्हृष्टा जग्मुः सुरा दिवम् ॥ २२ ॥ ॥

लक्षिताः, वानरा भविष्यन्तीत्यनुकृष्य योजना ॥१५॥ तत इति॥ अत्र क्रियाभेदात्सर्वशब्दद्वयम् । किमेतदिति । युद्धे मृतस्य कथमेवं जीवनमित्यर्थः ॥१६॥ ❀रामानुजीयम्❀ त इति ॥ राघवायाभ्यवादयन् राघवमभ्यवादयन्नित्यर्थः। व्यत्ययेन द्वितीयार्थे चतुर्थी । द्वितीयायां बिभीषणाभिषेकसीताप्राप्तिदेवताप्रस्थापनानि ॥१७॥१८॥ गच्छायोध्यामित्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ त्वच्छोकात् त्वद्वियोगशोकात् ॥१९॥२०॥२१॥२२॥

अभिवाद्येति ॥ वासमाज्ञापयत् वानराणामिति शेषः ॥ २३ ॥ ततस्त्विति ॥ प्रणीता प्रकाशिता ॥ २४ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥ ॥ ॥

अथ रामस्य विभीषणसत्कारः–तां रात्रिमित्यादि ॥ तां रात्रिम् । यस्मिन् दिने ब्रह्मादयो निर्जग्मुः तां रात्रिमित्यर्थः ॥ १ ॥ स्नानानीत्यादि-

अभिवाद्य च काकुत्स्थः सर्वांस्तांस्त्रिदशोत्तमान् ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाज्ञापयत्तदा ॥ २३ ॥ ततस्तु सा लक्ष्मणरामपालिता महाचमूर्हृष्टजना यशस्विनी ॥ श्रिया ज्वलन्ती विरराज सर्वतो निशा प्रणीतेव हि शीतरश्मिना ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥ ॥

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोत्थितमरिन्दमम् ॥ अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा बिभीषणः ॥ १ ॥ स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च ॥ चन्दनानि च दिव्यानि माल्यानि विविधानि च ॥ २ ॥ अलंकारविदश्चेमा नार्यः पद्मनिभेक्षणाः ॥ उपस्थितास्त्वां विधिवत्स्नापयिष्यन्ति राघव ॥ प्रतिगृह्णीष्व तत्सर्वं मदनुग्रहकाम्यया ॥ ३ ॥ एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच बिभीषणम् ॥ ४ ॥ हरीन् सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनाभिनिमन्त्रय ॥ ५ ॥ स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः ॥ सुकुमारो महाबाहुः कुमारः सत्यसंश्रवः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

सार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ स्नानानि स्नानीयजलानि । अत्र सर्वत्रेमानीत्यनुषज्यते । अङ्गरागाणि कुङ्कुमादीनि । माल्यानि स्रजः । विधिवत् सोपचारमित्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हरीनिति ॥सुग्रीवमुख्यान् सुग्रीवप्रमुखानेव हरीन्, स्नानेन स्नानेन हेतुना, अभिनिमन्त्रय ॥ ५ ॥ त्वां विना तेषामामन्त्रणे किं कारणमित्यत आह–स त्विति ॥ सः सर्वदा मनसि परिवर्तमानः धर्मात्मा ताम्यति । धर्माचरणेनैव ताम्यतीति भावः । मम हेतोः मल्लाभार्थमित्यर्थः । सत्यसंश्रवः, चतुर्दशे हि संपूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम । न द्रक्ष्यामि यदि त्वां हि प्रवेक्ष्यामि हुताशनमिति कृतप्रतिज्ञः ॥ ६ ॥ ॥

तं विनेति ॥ तं विना स्नानोपकरणं विना, स्नानं कथं कार्यम्। केकयीपुत्रं, मध्यमाम्बा तस्मिन् यद्दुःखमकरोत् तत्किं मयापि कर्तव्यम्। भरतं राज्ञा मया च विरहितं राज्यं सम्यक् कृतवन्तम्। धर्मचारिणं, मद्वियोगेन बहुव्रतपरे तस्मिन् कथं मया व्रतत्यागः कर्तुं युक्त इति भावः। न मे स्नानं बहुमतम्। प्रथमं मे स्नानमेव नेष्टं, कथम् तदनन्तरभावीनि वस्त्रादीनि ॥७॥ इत एवेति ॥ अनेन पथा येनाहमागतस्तेनेत्यर्थः। एष इति हस्तनिर्देशपूर्वकमुच्यते।

तं विना केकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ॥ न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ७ ॥ इत एव पथा क्षिप्रं प्रतिगच्छामि तां पुरीम् ॥ अयोध्यामागतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच बिभीषणः ॥९॥ अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥ पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम् ॥ १० ॥ मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेनाहृतं बलात् ॥ हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ॥ ११ ॥ त्वदर्थे पालितं चैतत्तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥ तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति ॥ १२ ॥ तेन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥ १३ ॥ अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् ॥ १४ ॥ वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥ १५ ॥ अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि ॥ प्रीतियुक्तस्य मे राम ससैन्यः ससुहृद्गणः ॥१६॥ सत्क्रियां विहितां तावद्गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥ प्रणयाद्बहुमानाच्च सौहृदेन च राघव ॥ प्रसादयामि प्रेष्योहं न खल्वाज्ञापयामि ते ॥ १७ ॥

अयोध्याम् आगतः प्राप्तः अयमयोध्यामार्गः, तेन क्षिप्रं तां प्रति गच्छामीत्यर्थः। परमदुर्गमः अतिदूरत्वादिति भावः ॥ ८ ॥ मार्गस्य परमदुर्गमत्वमात्रं परिहर्तुमाह—एवमुक्तस्त्विति ॥ ९ ॥ अह्ना त्वामित्यादिसार्धश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ किं रावणेन चौर्येणापहृतमित्यत्राह—आहृतं निर्जित्येति। तर्हि कुबेराय समागताय तत्किमर्थं न दत्तमित्यत्राह—त्वदर्थ इति ॥ त्वदर्थे त्वद्गमनार्थे। पालितमिति। न दत्तमित्यर्थः। यद्वा त्वदर्थे त्वत्पूजार्थमेव। मेघसंकाशमिति वेगे दृष्टान्तः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३॥ स्नानाकरणे द्वित्रिदिनमात्रास्थितिं याचते—अहं त इत्यादिनाचतुःश्लोक्येकान्वया। गुणान् भक्त्या-

दिग्गुणान्। सर्वकामैः भूषणादिभिः। विहितां मया कृताम्। उद्यताम्। इतः परं नोद्योगः कार्यः, येन विलम्बः स्यात्, किं तु पूर्वमेव समुद्युक्तामित्यर्थः। निर्बन्धदोषं परिहरति—प्रणयादिति। प्रणयात् मद्वाक्यमवश्यं श्रोष्यतीति विस्रम्भात्। बहुमानात् त्वत्कृतलालनात्। सौहृदेन भक्त्या। प्रसादयामि प्रार्थयामि ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ एवमिति ॥ उपशृण्वताम् उपशृण्वत्सु। भावलक्षणे षष्ठी ॥ १८ ॥ पूजितोहमिति ॥ साचिव्येन साहाय्येन। चेष्टाभिः पौरुषैः। सर्वात्मना पूजित इत्यन्वयः ॥ १९ ॥ न खल्वेतदित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ बिभीषणवचनाकरणे हेतुमाह—तं त्विति। त्वरायां हेतुमाह—शिरसेति ॥ २० ॥ २१ ॥ कौसल्यामिति ॥ अत्रापि द्रष्टुं त्वरते मे मन इति संबध्यते। पौरांश्च तनयैः सहेत्यत्र पौरैरेव तनय-

एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच बिभीषणम् ॥ रक्षसां वानराणां च सर्वेषां चोपशृण्वताम् ॥ १८ ॥ पूजितोहं त्वया सौम्य साचिव्येन परन्तप ॥ सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहृदेनोत्तमेन च ॥ १९ ॥ न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर॥ तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥ मां निवर्तयितुं योसौ चित्रकूटमुपागतः ॥ २० ॥ शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥ २१ ॥ कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ॥ गुरूंश्च सुहृदश्चैव पौरांश्च तनयैः सह ॥ ॥ २२ ॥ उपस्थापय मे क्षिप्रं विमानं राक्षसेश्वर ॥ कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्विदिह संमतः ॥ २३ ॥ अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोस्मि बिभीषण ॥ मन्युर्न खलु कर्तव्यस्त्वरितं त्वानुमानये ॥२४॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो बिभीषणः ॥ तं विमानं समादाय तूर्णं प्रतिनिवर्तत ॥ २५ ॥ ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैडूर्यमयवेदिकम् ॥ कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम् ॥ २६ ॥

॥ ॥ ॥

शब्दोन्वेति ॥ २२ ॥ उपस्थापयेति ॥ द्वित्रिदिनान्यत्र स्थातव्यमित्यस्योत्तरमाह—कृतेति। निर्वर्तितचतुर्दशवर्षप्रव्राजनस्य कृतकार्यस्य मे इह लङ्कायाम् वासः सम्मतः कथं स्वित्, न सम्मत इत्यर्थः। अन्यथा भरतस्याग्निप्रवेशादिति भावः ॥ २३ ॥ अनुजानीहीति ॥ पूजितोस्मि विमानप्रदानेनेति शेषः। प्रदत्तत्वेन स्वत्वादुत्तरत्र कुवेराय प्रेषयिष्यति। मन्युः दैन्यम् कोपो वा । मनुर्दैन्ये क्रतौ क्रुधीत्यमरः। त्वरितम् उक्तप्रकारेण त्वरावन्तम् मामिति संवन्धः। यद्वा त्वरितं यथा भवति तथा अनुमानये अनुमतिं कारये ॥२४॥ राघवस्य वचः श्रुत्वेत्यादिश्लोकचतुष्टयमेकं वाक्यम् ॥ प्रतिनि-

वर्तत प्रतिन्यवर्तत । काञ्चनचित्राङ्गम् काञ्चनमयचित्रावयवम् । कूटागारैः मण्डपैः, परिक्षिप्तं व्याप्तम् । रजतप्रभम् । रजतशब्देन अत्र विशदत्वमुच्यते । पताकाभिः केवलध्वजैः । ध्वजैः सचिह्नैः । हर्म्यैः अवान्तरराजगृहैः । हेमपद्मानि लम्बमानानि तैर्विभूषितम् । प्रकीर्णं व्याप्तम् । मुक्तामणिगवाक्षितं मुक्तामणिनिर्मितगवाक्षयुक्तम् । घण्टाजालैः परिक्षिप्तम् चतुर्षु पार्श्वेषु किङ्किणीजालयुक्तम्, कोणेषु घण्टाजालयुक्तम्, अत एव मधुरस्वनम् ॥२५॥ २६॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ यन्मेर्वित्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ मुक्तारजतसन्निभैः तद्वन्निर्मलैरित्यर्थः । स्फाटिकाचित्राङ्गैः स्फटिकमयचित्रावयवैः । महाधनैः महामूल्यैः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ यन्मेरुशिखराकारमिति पाठः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरी-

पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम्॥ शोभितं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हेमपद्मविभूषितम् ॥ २७॥ प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षितम् ॥ घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ॥ २८ ॥ यन्मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ बहुभिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्तारजतसंनिभैः ॥२९॥ तलैः स्फाटिकाचित्राङ्गैर्वैडूर्यैश्च वरासनैः ॥ महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ ३० ॥ उपस्थितमनाधृष्यं तद्विमानं मनोजवम् ॥ निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र बिभीषणः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

उपस्थितं तु तं दृष्ट्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ॥ अविदूरस्थितो रामं प्रत्युवाच बिभीषणः॥ १॥ स तु बद्धाञ्जलिः प्रह्वो विनीतो राक्षसेश्वरः ॥ अब्रवीत्त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥ २ ॥ तमब्रवीन्महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः ॥ विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥

टाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ वानरसेनासम्माननम्—उपस्थितमित्यादि ॥ तं दृष्ट्वा दर्शयित्वा । तत्कृत्वेति वा पाठः । प्रत्युवाच विमानमागतमितीति शेषः । स त्विति द्वितीयश्लोकसंग्रहो वायं श्लोकः ॥ १ ॥ स त्विति ॥ त्वरयोपेतः आदरोपेत इत्यर्थः । किं करोमीति । इतःपरं किं करवाणीत्यर्थः ॥२॥ तमिति ॥ लक्ष्मणस्योपशृण्वतः लक्ष्मणसंमतिपूर्वकमित्यर्थः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

कृतेति ॥ प्रयत्नकर्म प्रयत्नसाध्यं कर्मेत्यर्थः । अर्थैः प्रयोजनैः वस्त्रादिभिरित्यर्थः ॥ ४ ॥ सहेति ॥ अजिता पूर्वं सुरादिभिरप्यजिता । तव लङ्काराज्यप्राप्तिरेव तदधीनेत्यर्थः । हृष्टैः मयि प्रीतिमद्भिरित्यर्थः ॥५॥६॥ त इम इत्यर्धोक्तं भङ्ग्यन्तरेणाह—धनरत्नेति ॥७॥ एवमिति ॥ निर्वृताः सुखिताः । निर्वृत्ता इति पाठे निष्पन्नाः । परिपूर्णा इति यावत् ॥ ८ ॥ अर्थव्ययेन खेदो मा भूदित्याह—त्यागिनमिति ॥ संग्रहीतारं धनप्रदानेन मित्रसंग्रहकारिणमित्यर्थः । संग्रहार्थं त्यागित्वमुक्त्वा दयया त्यागित्वमाह—सानुक्रोशमिति । यशस्विनं त्यागकृतयशोवन्तम् । संबोधयामि न तु चोदयामीत्यर्थः॥९॥ सैनिक-

कृतप्रयत्नकर्माणो बिभीषण वनौकसः॥ रत्नैरर्थैश्च विविधैर्भूषणैश्चापि पूजया ॥ ४ ॥ सहैभिरजिता लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर ॥ हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥५॥ त इमे कृतकर्माणः पूज्यतां सर्ववानराः ॥६॥ धनरत्नप्रदानेन कर्मैषां सफलं कुरु ॥७॥ एवं संमानिताश्चैते मानार्हा मानद त्वया ॥ भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः ॥८॥ त्यागिनं संग्रहीतारं सानुक्रोशं यशस्विनम् ॥ सर्वे त्वामवगच्छन्ति ततः संबोधयाम्यहम् ॥९॥ हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ॥ त्यजन्ति नृपतिं सैन्याः संविग्नास्तं नरेश्वरम् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान् बिभीषणः॥ रत्नार्थैः संविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥ ११ ॥ ततस्तान्पूजितान् दृष्ट्वा रत्नैरर्थैश्च यूथपान्॥ आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ १२॥ अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता॥१३॥ अब्रवीच्च विमानस्थः पूजयन् सर्ववानरान्॥सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सबिभीषणम् ॥१४॥

सम्मानाकरणे दोषमाह—हीनमिति ॥ नृपतिं स्वामिनमपि । रतिगुणैः प्रीतिकरैरौदार्यादिगुणैः, हीनम् । अभिहन्तारं हिंसनशीलम् । प्रसादं विना क्रोधैकनिरतमिति यावत् । तं नरेश्वरं सैन्याः संविग्नाः आहवे त्यजन्तीति योजना ॥ १० ॥ एवमिति ॥ संविभागेन यथार्हमंशकल्पनया । समतया प्रदाने अधिकानां कोपप्रसङ्गादिति भावः ॥ ११ ॥ तत इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ ततः पूजानन्तरं, ततः पूजादर्शनादेव हेतोरिति ततःशब्दद्वययोजना । लज्जमानां सदस्यङ्कारोहणाय लज्जन्तीम् । रामेणाङ्कारोपणं च स्त्रीसहायरहितत्वात् । धनुष्मता रामधनुर्धारिणा ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अब्रवीच्चेत्यत्र संग्रहेणोक्तं विवृणोति–मित्रेत्यादिना ॥ वानरान् प्रत्याह–मित्रेति ॥ १५ ॥ सुग्रीवं प्रत्याह–यत्त्वित्यादिना ॥ सुहृदा शोभनहृदयेन । वाशब्द एवकारार्थः । अधर्मभीरुणेति च्छेदः ॥ १६ ॥ १७ ॥ बिभीषणं प्रत्याह–स्वेति ॥ स्वराज्ये वस । न तु परकीयं रावणवदाक्रमितव्यम् ।

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरोत्तमाः ॥ अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥१५॥ यत्तु कार्यं वयस्येन सुहृदा वा परन्तप ॥ कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥१६॥ किष्किन्धां प्रतियाह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥१७॥ स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते बिभीषण ॥ न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥ १८ ॥ अयोध्यां प्रतियास्यामि राजधानीं पितुर्मम ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वांश्चामन्त्रयामि वः ॥ १९ ॥ एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः ॥ ऊचुः प्राञ्जलयो रामं राक्षसश्च बिभीषणः ॥ २० ॥ अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान् ॥ उद्युक्ता विचरिष्यामो वनानि नगराणि च ॥ २१ ॥ दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च ॥ अचिरेणागमिष्यामः स्वान् गृहान् नृपतेः सुत ॥ २२ ॥ एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सबिभीषणैः ॥ अब्रवीद्राघवः श्रीमान् ससुग्रीवबिभीषणान् ॥ ॥ २३ ॥ प्रियात्प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः ॥ सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥ २४ ॥ क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं वानरैः सह ॥ त्वमध्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र बिभीषण ॥ २५ ॥ ततस्तत्पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया ॥ अध्यारोहत्त्वरन् शीघ्रं सामात्यश्च बिभीषणः ॥ २६ ॥ ॥ ॥

अतो जनस्थानरक्षिणः समानेतव्या इति भावः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ अयोध्यामिति ॥ उद्युक्ताः सावधानाः । जनपदपीडामकुर्वन्त इत्यर्थः ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ प्रियात्प्रियतरमिति ॥ सीतालाभः प्रियं, भरतदर्शनं प्रियात्प्रियम्, भवद्भिः सह पुरप्रवेशः प्रियात्प्रियतरमित्यर्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ तत इति ॥ शीघ्रं शीघ्रगमिति विमानविशेषणम् । त्वरन्निति सुग्रीवविशेषणात् ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥

तेष्विति ॥ आसनं वाहनम् ॥२७॥ ययाविति ॥ हंसयुक्तेन प्रतिमारूपहंसयुक्तेन । प्रतीतः श्लाघितः ॥२८॥ ते सर्वे इति ॥ यथासुखमसंबाधमिति पदद्वयेन दिव्यस्य पुष्पकस्य अपेक्षितावकाशप्रदत्वं गम्यते ॥२९॥ इति श्रीगो॰श्रीरामाय॰रत्नकिरीटाख्याने युद्ध॰पञ्चविंशत्युत्तरशततमः सर्गः॥१२५॥
अथ विलासेन सीतायै तत्तद्देशप्रदर्शनम्—अनुज्ञातं त्वित्यादि ॥ १ ॥ पातयित्वेति ॥ मैथिलीं राजपुत्रीत्वेन लालनीयत्वोक्तिः ॥ २ ॥ ३ ॥ एतदिति ॥

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम्॥राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम्॥२७॥ययौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥ प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥ २८ ॥ ते सर्वे वानरा हृष्टा राक्षसाश्च महाबलाः ॥ यथासुखमसंबाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥ ॥

अनुज्ञातं तु रामेण तद्विमानमनुत्तमम् ॥ उत्पपात महामेघः श्वसनेनोद्धतो यथा ॥१॥ पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ॥ अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥२॥ कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ॥ लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥ एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् ॥ हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥ ४ ॥ अत्र दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः ॥ तव हेतोर्विशालाक्षि रावणो निहतो मया ॥ ॥ ५ ॥ कुम्भकर्णोत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ॥ धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता ॥ ६ ॥ विद्युन्माली हतश्चात्र सुषेणेन महात्मना ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥

आयोधनं युद्धभूमिम्। विशस्यन्तेस्मिन्निति विशसनम् । अधिकरणे ल्युट् ॥४॥ अत्रेति ॥ दत्तवरः ब्रह्मणा दत्तवरः, प्रमाथी हिंसकः, शेते । भस्मस्वरूपेणेत्यर्थः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ अत्र दत्तवरः शेते इति पाठः । शेते अशयिष्ट ॥ ५ ॥ कुम्भकर्ण इति ॥ प्रहस्तश्चेत्यत्र नीलेनेत्यध्याहार्यम् ॥ ६ ॥ विद्युन्मालीति ॥ पूर्वमनुक्तमपि अत्रानुवादात् ग्राह्यम्। एवं विकट इत्यत्रापि ॥ ७ ॥ ॥ ॥

❀ राजानुजीयम् ❀ अङ्गदेनात्र निहतो विकटो नाम राक्षस इत्यनुक्तस्य विकटस्यात्र निहतत्वानुवादादन्येप्येतादृशा बहवो निहता इत्यवगम्यते ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ एतत्त्विति ॥ तीर्थम् उत्तरणस्थानम् । यत्र तीर्थे, तां रात्रिं सागरतरणरात्रिम् ॥ ११ ॥ एष इति ॥ सागरे सगरखानिते । सलिलेति क्षीरोदादिव्यावृत्तिः । एष सेतुः, नलसेतुः नलबद्धः । " षिञ्, बन्धने " इति धातुः । एतेन नलसेतुः सेतुरित्युक्त्या पूर्वकल्पकृतसेत्वन्तरं व्यावर्त्यते इति प्रत्युक्तम् । पूर्वमेव सेतुसत्त्वे पुनः सेतुकरणवैय्यर्थ्यात्॥१२॥पश्येति ॥ अपारं मध्ये द्वीपभूतपाररहितम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ शङ्खशुक्तिनिषेवित-

लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे॥अङ्गदेनात्र निहतो विकटो नाम राक्षसः॥८॥विरूपाक्षश्च दुर्धर्षौ महापार्श्वमहोदरौ ॥
अकम्पनश्च निहतो बलिनोन्ये च राक्षसाः ॥ ९ ॥ अत्र मण्डोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत्॥सपत्नीनां
सहस्रेण सास्रेण परिवारिता॥१०॥एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने॥ यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥
॥ ११ ॥ एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलार्णवे ॥ तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ॥ १२ ॥ पश्य सागरमक्षोभ्यं
वैदेहि वरुणालयम् ॥ अपारमभिगर्जन्तं शङ्खशुक्तिनिषेवितम् ॥ १३ ॥ हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य
मैथिलि ॥ विश्रमार्थं हनुमतो भित्त्वा सागरमुत्थितम् ॥ १४ ॥ एतत्कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् ॥ १५॥
एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥ सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येनाभिपूजितम् ॥ एतत्पवित्रं परमं
महापातकनाशनम् ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मित्यतः परं हिरण्यनाभमिति श्लोकः। अतः परमेतत्कुक्षाविति श्लोकः। अतः परं सेतुबन्ध इति श्लोकः। अतः परम् अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुरित्येवं पाठक्रमः ॥ १३ ॥ हिरण्येति॥हिरण्यनाभं मैनाकम्॥१४॥एतदित्यर्धम्॥कुक्षौ मध्ये । सेतूपरीति शेषः । स्कन्धावारनिवेशनं स्कन्धावारनिवेशनरूपस्थानम् । स्कन्धावारः शिबिरम् ॥ १५ ॥ एतत्त्वित्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ पूजितं पूजितुमर्हम् । पूर्वं सेतोर्दक्षिणकोटिरुक्ता । अत्रोत्तरकोटिरिति ज्ञेयम् । अनुगृह्णाति—एतदिति । पवित्रं पावनम् । महापातकनाशनं च । भविष्यतीति शेषः ॥ १६॥ ॥ ॥

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोत्प्रभुः ॥ १७ ॥

एवं लङ्कामारभ्य सेतुबन्धपर्यन्तमुक्त्वा ततः उत्तरे दर्भशयनस्थानं निर्दिशति—अत्र पूर्वमिति॥ महादेव इति समुद्रराज उच्यते, औचित्यात्। प्रभुः समुद्रजलाधिष्ठाता। प्रसादमकरोत्। सागरं शोषयिष्यामीति कुपितस्य मे प्रसादं प्रसन्नत्वम् अकरोत्। प्रसादस्तु प्रसन्नतेत्यमरः। न त्वत्र रुद्रो महादेवः। तेन पूर्वं प्रसादकरणानुक्तेः। पूर्वोक्तानामेव ह्यत्रानुवादः कृतः। न चाङ्गदेन विकटनिरसनस्य पूर्वमनुक्तत्वेपि यथानुवादात्तत्सिद्धिः, तथात्रापि भविष्यतीति वाच्यम्। तद्वदत्राविरोधाभावात्। उपलभ्यते हि विरोधः। तथाहि। तत्र प्रसादः किं सेतुनिर्माणकाले वा पुनरागमनकाले वा। नाद्यः। प्रसादकरणहेतुरावणवधादेरभावात, पूर्वसिद्धसमुद्रप्रसादेनैवोपपत्तेश्च, महादेवसमाख्यायाः समुद्रप्रसादश्रुत्या बाधितुं युक्तत्वाच्च। न द्वितीयः। पूर्वशब्दविरोधात्। न च पूर्वमित्यस्य पूर्वकल्प इत्यर्थ इति वाच्यम्। आत्मानं मानुषं मन्य इति वदता सुग्रीवादिसन्निधौ स्वस्य विष्णववतारत्वद्योतकपूर्ववृत्तोद्घाटनानौचित्यात्। पूर्वकल्पकृतसेतुसद्भावे पुनस्तन्निर्माणवैयर्थ्यात्। किं च अत्रेतिपदस्य पूर्वश्लोकोक्तनलकारितसेतुपरामर्शित्वमेवोचितम्। न तु पूर्वकल्पकृतसेतुपरामर्शित्वम्। तस्य सद्भावेप्यन्तरितत्वसंभवात्। ननु पुराणान्तरानुसारात्तदर्थपरत्वं युक्तम्। तथा हि कूर्मपुराणे—सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम्। स्थापयामास वै लिङ्गं पूजयामास राघवः ॥ तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शङ्करः। प्रत्यक्षमेव भगवान् दत्तवान् वरमुत्तमम् ॥ ये त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः। महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यति॥ अन्यानि चैव पापानि तीरे तत्र महोदधेः। दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः॥ यावत्स्थास्यन्ति तरवो यावदेव च मेदिनी। यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः ॥ स्नानं दानं जपः श्राद्धं भविष्यत्यक्षयं ततः। स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणश्यति ॥ इत्युक्त्वा भगवान् वाचं परिष्वज्य च राघवम्। सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयतेति ॥ पाद्मे पुराणेपि—रामः पुष्पकादवरुह्य महादेवं प्रतिष्ठापितवान् सोस्मै प्रसन्नोभूदित्युच्यते। एतादृशपुराणवचनानुसारेणायं श्लोको लिङ्गप्रतिष्ठां बोधयतीति। मैवम्। उक्तदोषविस्तारात्,इतिहासो हि परिग्रहातिशयात्,ग्रन्थसौष्ठवाच्च,इतिहासपुराणं पञ्चममित्यादौ अधिकाक्षरत्वेपि पूर्वप्रयोगेणाभ्यर्हितत्वाच्च। पुराणेभ्यो गरीयानिति वेदः प्राचेतसादासीदिति वेदमयत्वोक्त्या चतुर्मुखवरप्रदानमूलतया च प्रबलतरः। तद्विरोधे तामसपुराणवचनानि न प्रमाणानि। किं च पुराणं सर्ग-

प्रतिसर्गादिष्वन्यपरमिति नेतिहासवत् पुरावृत्तकथने तात्पर्यवत् । अथवा, अस्मिन्सर्गे श्लोकाः प्रायशो व्यत्यस्ता दृश्यन्ते इत्युडारिप्रभृतिभिरुक्तम् । तथा चेदमर्धम् अत्र मण्डोदरीतिश्लोकानन्तरम् पठितव्यम् । तत्र च महादेवप्रसादः स्वपितृदर्शनमेव । अत एव भरतं प्रति हनुमत्प्रेषणावसरे वक्ष्यति—महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागममिति । पुराणान्तरं तु माहात्म्यप्रतिपादनपरं बोध्यमिति संक्षेपः ॥ १७ ॥ अत्र राक्षसराज इति ॥ अत्र समुद्रराजप्रसादप्रदेशादुत्तरतः ॥ १८ ॥ एषेति ॥ पम्पावनमधुवनाद्यपेक्षया चित्रकाननेत्युक्तिः ॥ १९ ॥ अथेति ॥ प्रणयसाध्वसा प्रणययुक्तसाध्वसवती—

अत्र राक्षसराजोयमाजगाम बिभीषणः ॥ १८ ॥ एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ॥ सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः ॥ १९ ॥ अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा ॥२०॥ सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप ॥ अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम् ॥ गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वयानघ ॥ २१ ॥ एवमुक्तोथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम् ॥ एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः ॥ विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २२ ॥ ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान् वानरपुङ्गवान् ॥ स्वदारसहिताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया ॥२३॥ तथा त्वमपि सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल ॥ अभित्वरस्व सुग्रीव गच्छामः प्लवगेश्वर ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रणतसाध्वसेति पाठे उपनतसाध्वसा । सुग्रीवादिसन्निधानात् प्रणयसाध्वसेति । प्रथमभाषणरूपत्वाद्वा ॥२०॥ सुग्रीवेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ अहं ताराप्रमुखतः ताराप्रमुखाभिः, सुग्रीवप्रियभार्याभिः सह अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिश्च परिवृता सती त्वया सह अयोध्यां गन्तुम् इच्छे इच्छामीति संबन्धः । आत्मनेपदमार्षम् ॥२१॥ एवमित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ एवमस्त्विति सीतां प्रत्युवाच । अथ किष्किन्धां प्राप्य विमानं संस्थाप्य सुग्रीवं प्रेक्ष्योवाचेति संबन्धः ॥ २२ ॥ ब्रूहीति॥ यान्त्वित्यत्र इतिकरणं द्रष्टव्यम् । सीतया निमित्तभूतया । सीताप्रियार्थमित्यर्थः॥ २३ ॥ तथा त्वमपीति ॥ अत्र याहीति विपरिणामेन संबन्धः । अभित्वरस्व । किष्किन्धायां विलम्बो न कार्यं इत्यर्थः ॥ २४ ॥ ॥ ॥

एवमुक्त इति ॥ सर्वैः समावृतो वानराधिपतिरुक्त इत्यन्वयः ॥ २५ ॥ प्रविश्येति ॥ अर्धमेकं वाक्यम् । प्रवेशः सुग्रीवस्यैव, न तु वानराणाम् । भाषत अभाषत ॥ २६ ॥ प्रिये त्वमिति ॥ नारीभिः स्त्रीभिः सह अनुज्ञाता । अयोध्यागमनं प्रतीति शेषः । त्वं च वानरस्त्रियश्चानुज्ञाता इत्यर्थः । नारीणामिति पाठे तृतीयार्थे षष्ठी ॥ २७ ॥ त्वरेति ॥ गृह्य गृहीत्वा । आनीयेति यावत् । दर्शयिष्यामः द्रक्ष्यामः । दशरथस्त्रियः दशरथस्त्रियश्च ॥ २८ ॥ सुग्रीवस्येति ॥ सर्वाङ्गशोभनेत्यनेन पूर्वं स्वयमलंकृतवतीति गम्यते ॥२९॥ सुग्रीवेणेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ सुग्रीवेण सर्वैर्वानरैः स्वस्वभर्तृभिर्वानरैः

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा ॥ वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सर्वैः समावृतः ॥ २५ ॥ प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य भाषत ॥ २६ ॥ प्रिये त्वं सह नारीभिर्वानराणां महात्मनाम् ॥ राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया ॥ २७ ॥ त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः ॥ अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ २८ ॥ सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तारा सर्वाङ्गशोभना ॥ आहूय चाब्रवीत्सर्वा वानराणां तु योषितः ॥ २९ ॥ सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वैश्च वानरैः ॥ मम चापि प्रियं कार्यमयोध्यादर्शनेन च ॥ ३० ॥ प्रवेशं चापि रामस्य पौरजानपदैः सह ॥ विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च ॥ ३१ ॥ तारया चाभ्यनुज्ञाता सर्वा वानरयोषितः ॥ नेपथ्यं विधिपूर्वेण कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ अध्यारोहन् विमानं तत्सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥ ३२ ॥ ॥ ॥

सह, अयोध्यां गन्तुमभ्यनुज्ञाताः । यूयमिति शेषः । न केवलं सुग्रीवानुज्ञामात्रं मत्प्रियार्थं च भवतीभिरागन्तव्यमित्याह—मम चापीति । अयोध्यादर्शनेन मम यत्प्रियं तद्भवतीभिः सहागत्य कार्यमित्यर्थः । रामस्य प्रवेशं च दशरथस्य स्त्रीणां विभूतिम् ऐश्वर्यं च । द्रक्ष्याम इति शेषः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाताः । वयमिति शेषः । वानरैश्चाभ्यनुज्ञाताः । यूयमिति शेषः । मम चापि प्रियं कार्यमयोध्यादर्शनेन चेत्यत्र भवतीभिरिति शेषः ॥३०॥३१॥ तारयेत्याद्यर्धत्रयमेकान्वयम् ॥ नेपथ्यम् अलंकारम् । विधिपूर्वेण मङ्गलालम्भनादिविधिपूर्वकमित्यर्थः । अत्रालंकरणाह्वानादिना दिनमेकं गतमित्याहुः। प्रदक्षिणं कृत्वा । विमानस्येति शेषः । प्रादक्षिण्येन गमनमात्रमत्र विवक्षितम् । अतिविपुलस्य तस्य सद्यः प्रदक्षिणासम्भवात्॥३२॥

ताभिरिति ॥ उत्थितमित्यनेन तारागमनपर्यन्तं भूमौ विमानं स्थितमिति ज्ञायते ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अत्रेति ॥ समयः संकेतः ॥ ३५ ॥ एषेति ॥ विललाप । लिङुत्तमैकवचनम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ दृश्यते चेत्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ श्रीमान् वनस्पतिः जटायुनिवासभूतो वटः । तस्य श्रीमत्त्वं महात्मना जटायुषाधिष्ठितत्वात् ॥ ३८ ॥ खरश्चेत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥-तत् पञ्चवटीति प्रसिद्धम् ॥ ३९ ॥ ४० ॥ एषा गोदावरीति ॥ अयमेव

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ॥ ऋश्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥ ३३ ॥ दृश्यतेसौ महान् सीते
सविद्युदिव तोयदः ॥ ऋश्यमूको गिरिश्रेष्ठः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ॥३४॥ अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः॥ समयश्च
कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ॥ ३५ ॥ एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना ॥ त्वया विहीनो यत्राहं विललाप
सुदुःखितः ॥ अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी ॥ ३६ ॥ अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ॥
॥ ३७॥ दृश्यते च जनस्थाने सीते श्रीमान् वनस्पतिः ॥ यत्र युद्धं महद्वृत्तं तव हेतोर्विलासिनि ॥ रावणस्य नृशंसस्य
जटायोश्च महात्मनः ॥ ३८ ॥ खरश्च निहतो यत्र दूषणश्च निपातितः ॥ त्रिशिराश्च महावीर्यो मया बाणैरजिह्मगैः ॥
एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि ॥ ३९ ॥ पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शना॥ यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन
हृता बलात् ॥ ४० ॥ एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शिवा॥ अगस्त्यस्याश्रमो ह्येष दृश्यते पश्य मैथिलि ॥
॥ ४१ ॥ दीप्तश्चैवाश्रमो ह्येष सुतीक्ष्णस्य महात्मनः ॥ ४२ ॥ वैदेहि दृश्यते चात्र शरभङ्गाश्रमो महान् ॥ उपयातः सहस्राक्षो
यत्र शक्रः पुरन्दरः ॥ ४३ ॥ अस्मिन् देशे महाकायो विराधो निहतो मया ॥ ४४ ॥ ॥

पाठः सम्यक् । एषा मन्दाकिनीति पाठे अगस्त्याश्रमसमीपे मन्दाकिनीति काचिन्नद्यस्तीति ज्ञेयम् । एतच्छ्लोकात्पूर्वं पर्णशालेति श्लोकः पठनीयः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ एषा गोदावरी रम्येति पाठः सम्यक् । एषा मन्दाकिनीति पाठे अगस्त्याश्रमसमीपे मन्दाकिनीसंज्ञा काचिन्नद्यस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥ ४१ ॥ दीप्तश्चेत्यर्धम् ॥ ४२ ॥ वैदेहीति ॥ पुराणि शत्रुशरीराणि शत्रुपुराणि वा दारयतीति पुरन्दरः ॥ ४३ ॥ अस्मिन्देश इत्यर्धम् ॥ ४४ ॥

एते हीत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ तापसावासाः । अस्माभिर्दश वर्षाणि यत्रोषितमिति भावः । तापसी अनसूया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ एषा सेत्यर्धम् ॥ ४७ ॥ भरद्वाजेत्यर्धम् ॥ यत्र भरद्वाजाश्रमः । पूर्वं दृष्ट इति शेषः । श्रीमान् स एष प्रदेशः प्रकाशते । अदूरवर्तितया सम्यक् दृश्यते ॥ ॥ ४८ ॥ एषा त्रिपथगेति ॥ वरवर्णिनीति सीतासंबोधनम् ॥ ४९ ॥ शृङ्गिवेरपुरमित्यर्धम् ॥ यत्र गुहः समागतः तच्छृङ्गिवेरपुरम् एतदित्यन्वयः ॥

एते हि तापसावासा दृश्यन्ते तनुमध्यमे ॥ अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरप्रभः ॥ अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥ ४५ ॥ असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ॥ यत्र मां केकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥ ४६ ॥ एषा सा यमुना दूराद्दृश्यते चित्रकानना ॥ ४७ ॥ भरद्वाजाश्रमो यत्र श्रीमानेष प्रकाशते ॥ ४८ ॥ एषा त्रिपथगा गङ्गा दृश्यते वरवर्णिनि ॥ नानाद्विजगणाकीर्णा संप्रपुष्पितकानना ॥ ४९ ॥ शृङ्गिवेरपुरं चैतद्गुहो यत्र समागतः ॥ ५० ॥ एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी ॥ नानातरुशताकीर्णा संप्रपुष्पितकानना ॥ ५१ ॥ एषा सा दृश्यतेयोध्या राजधानी पितुर्मम ॥ अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता ॥ ५२ ॥ ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसश्च बिभीषणः ॥ उत्पत्योत्पत्य ददृशुस्तां पुरीं शुभदर्शनाम् ॥ ५३ ॥ ततस्तु तां पाण्डुरहर्म्यमालिनीं विशालकक्ष्यां गजवाजिसंकुलाम् ॥ पुरीमयोध्यां ददृशुः प्लवङ्गमाः पुरीं महेन्द्रस्य यथामरावतीम् ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ५० ॥ एषा सेति ॥ यूपमालिनी इक्ष्वाकुभिस्तीरे यागानन्तरं कीर्त्यर्थं शिलाभिः कृतयूपवतीत्यर्थः ॥ ५१ ॥ एषा सेति ॥ अयोध्यामिति । उद्दिश्येति शेषः । विमानस्याकाशगतत्वेन दूरस्था अपि गङ्गा शृङ्गिवेरपुरसरय्वयोध्या दृष्टा इति बोध्यम् । भरद्वाजाश्रमे हि तदा स्थितिः ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ततस्त्विति ॥ पाण्डुरेत्यादिस्वभावोक्तिः ॥ ५४ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरी० युद्ध० षड्विंशत्यु०सर्गः ॥१२६॥

अथ भरद्वाजाश्रमवासः—पूर्णे इति ॥ पूर्णे चैत्रशुद्धपञ्चाम्यामयोध्यातो निर्गमनम्। तदारभ्य चतुर्दशवर्षे पूर्णे सति पञ्चम्यां चैत्रशुद्धपञ्चम्याम्। तथा हि चैत्रशुद्धपञ्चम्यां निर्गमः। तद्रात्र्यां तमसातीरे निवासः। षष्ठ्यां शृङ्गिवेरपुरे। सप्तम्यां वनस्पतिमूले। अष्टम्यां भरद्वाजाश्रमे। नवम्यां यमुनातीरे। दशम्यां रामश्चित्रकूटं गमिष्यतीति गुहचारमुखेन विदितवृत्तान्तस्य सुमन्त्रस्य सायाह्ने अयोध्याप्रवेशः। तद्रात्रावेव दशरथस्य निर्याणम्। एकादश्यां राज्ञस्तैलद्रोण्यां निक्षेपः। द्वादश्यां भरतं प्रति दूतप्रेषणम्। ते च दूता मार्गे त्रयोदशीं चतुर्दशीं चापनीय पौर्णमास्यां रात्रौ केकयनगरं प्रविविशुः। प्रतिपदि भरतस्यायोध्यां प्रत्यागमनम्। तत्र च मार्गे सप्त रात्रीरुषित्वा अष्टमे दिने त्वरातिशयेनाहोरात्रमागत्य नवम्यां सूर्योदये भरतस्यायोध्याप्रवेशः। तस्यामेव दशरथसंस्कारः। तदहरारभ्य त्रयोदशदिने वैशाखशुद्धपञ्चम्यां तत्पूर्वदिने च भरतेन राज्ञः श्राद्धकर्मकरणम्। षष्ठ्यां तद्देशीयाचारसिद्धं दहनदेशशोधनम्। सप्तम्यां मार्गशोधनाय कर्मान्तिकप्रेषणम्। कर्मान्तिकैश्च दशमीपर्यन्तं चतुर्दिनं मार्गशोधनम्। एकादश्यां भरतस्य रामसकाशं प्रति गमनम्। तद्रात्रौ गङ्गातीरे निवासः। द्वादश्यां भरद्वाजाश्रमे। त्रयोदश्यां रामसमागमः। चतुर्दशीपौर्णमासीप्रतिपत्सु चित्रकूटे

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः ॥ भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥ १ ॥

भरतस्य निवासः। वैशाखबहुलद्वितीयायां भरतस्यायोध्यां प्रति प्रयाणम्। चतुर्थ्यामयोध्याप्रवेशः। इत्येवं सार्धमासे गते वैशाखबहुलपञ्चम्यां रामस्य चित्रकूटान्निर्गमः अत्र्याश्रमप्रवेशश्च। एवमाश्रममण्डलवासेन सह सार्धमासेषु दशसंवत्सरेषु गतेषु अवशिष्टकाले पञ्चवटीवासे तत्र त्रयोदशवर्षेषु गतेषु ततश्चतुर्दशे वर्षे चैत्रमासे सीताहरणम्। वैशाखे सुग्रीवदर्शनम्। आषाढे वालिवधः। आश्वयुजे सैन्योद्योगः। फाल्गुने प्रायोपवेशः। फाल्गुनशुद्धचतुर्दश्यां लङ्कादाहः। फाल्गुनामावास्यायां रावणवधः। चैत्रशुद्धप्रतिपदि रावणसंस्कारादि। द्वितीयायां विभीषणाभिषेकः, सीताप्राप्तिदेवताप्रस्थानानि च। तृतीयायां लङ्कातो निर्गमः। चतुर्थ्यां किष्किन्धायां वासः। पञ्चम्यां भरद्वाजाश्रमे वासः। अत्र वक्तव्योपपत्तयस्तत्र तत्र प्रदर्शिताः। अस्मिन् प्रकारे हनुमत्सन्निधाने, द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे इति रावणवचनं सीतासान्त्वनपरम्। मासादूर्ध्वं न जीविष्य इति सीतावचनं तु सम्यक् संगच्छते। मासशब्दस्य वर्तमानमासपरत्वं चासकृदुक्तम्। रावणेन दश मासा गताः अवशिष्टौ द्वौ मासावित्युक्तिर्मधुपानमत्ततया अविवेककृता। सीताया मासादूर्ध्वमिति वचनं तु वर्तमानमासपरमिति विवेकः। भरद्वाजाश्रमं प्राप्येत्यनेन महतां स्थानमपि प्राप्यमित्युक्तम्। नियतः नियतकरणत्रयः ॥ १ ॥

स इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ सुभिक्षानामयम् । भिक्ष्यन्त इति भिक्षाः अन्नानि भिक्षाणां समृद्धिः सुभिक्षम् । समृद्धावव्ययीभावः । आमयस्याभावोनामयम् । प्रसज्यप्रतिषेधेपि समासस्येष्टत्वात्साधुः । सुभिक्षं चानामयं चेति विग्रहः । अनामयम् आरोग्यम् । अनामयं स्यादारोग्यमित्यमरः । युक्तः प्रजापालने समाहितः ॥ २ ॥ एवमिति ॥ प्रहृष्टवत् प्रहृष्टम् । क्रियाविशेषणम् । स्मितपूर्वम् । सर्वज्ञोप्यजानान इव पृच्छतीति स्मितम् । यद्वा किं भरतः प्रजापालनसंतुष्टो वर्तत इति प्रश्नसारं मत्वा परतन्त्रे तस्मिन् कथमित्थं संभवतीति स्मितकरणम् ॥ ३ ॥ अत एव तदनुरूपमुत्तरयति–पङ्केति॥ स्नानाभावात्पङ्कदिग्धत्वम् । स्नानाभावेपि नित्यानुष्ठानं दीक्षितवत् गौणस्नानेन । स्नानाभावे निमित्तमाह–जटिल इति । जटिलः जटा·

सोपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम् ॥ शृणोषि कच्चिद्भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे ॥ कच्चिच्च युक्तो भरतो
जीवन्त्यपि च मातरः॥२॥ एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ॥ प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत्
॥ ३॥ पङ्कदिग्धस्तु भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते ॥ पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ॥ ४ ॥ त्वां पुरा
चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम् ॥ स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद्धर्मकामं च केवलम् ॥ पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितुर्वचनकारिणम् ॥ ५ ॥ सर्वभोगैः परित्यक्तं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥ दृष्ट्वा तु करुणा पूर्वं ममासीत्समितिंजय
॥ ६ ॥ कैकेयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशिनम् ॥ ७ ॥ ॥ ॥

वान् । पिच्छादित्वादिलच् । जटिलानां वारुणस्नानम् ।निषिद्धमिति भावः। कथं न्वपररात्रेषु सरयूमवगाहत इत्याद्युक्तिस्तु कादाचित्कस्नानपरत्वेप्युपपद्यते । यद्वा सदा अनास्तृतभूमिशयनादिना वा तादृशत्वम् । एवं व्रतनिष्ठो भरतस्ते पादुके राज्याय पुरस्कृत्य त्वां प्रतीक्षते । त्वदागमनाकाङ्क्षया वर्तत इत्यर्थः । कच्चिच्च युक्तो भरत इत्यस्योत्तरमुक्त्वा, जीवन्त्यपि च मातर इत्यस्योत्तरमाह– सर्वं चेति । तव गृहे यद्यदस्ति तत्सर्वम् कुशलं क्षेमयुक्तम् । जीवन्त्यपि चेति समुच्चाय्य पृष्टाः सर्वे मातृपरिचारकादयो जीवन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥ त्वां पुरेत्यादिश्लोकत्रयमेकं वाक्यम् ॥ पुराचीरवसनं पुरातनचीरवसनम् । अतो न पूर्वपदेन पौनरुक्त्यम् । करुणा दुःखम् । परदुःखदुःखित्वं हि करुणा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥

सांप्रतं सुसमृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम् ॥ समीक्ष्य विजितारिं त्वां मम प्रीतिरनुत्तमा ॥ ८॥ सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव ॥ ९ ॥ यत्त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थानवधादिकम् ॥ ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य रक्षितुः सर्वतापसान् ॥ १० ॥ रावणेन हृता भार्या बभूवेयमनिन्दिता ॥ मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च ॥ ११ ॥ कबन्धदर्शनं चैव पम्पाभिगमनं तथा ॥ सुग्रीवेण च ते सख्यं यच्च वाली हतस्त्वया ॥ १२ ॥ मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च ॥ विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः ॥ १३ ॥ यथा वा दीपिता लङ्का प्रहृष्टैर्हरियूथपैः ॥ सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः ॥ १४ ॥ यथा विनिहतः संख्ये रावणो देवकण्टकः ॥ समागमश्च त्रिदशैर्यथा दत्तश्च ते वरः ॥ सर्वं ममैतद्विदितं तपसा धर्मवत्सल ॥ १५ ॥ अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर ॥ अर्घ्यमद्य गृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि ॥ १६ ॥ तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपात्मजः ॥ बाढमित्येव संहृष्टो धीमान् वरमयाचत ॥ अकाले फलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः ॥ १७ ॥ फलान्यमृतकल्पानि बहूनि विविधानि च ॥ भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रति गच्छतः ॥ १८ ॥

सांप्रतमिति ॥ साम्प्रतम् इदानीम् तु त्वां समीक्ष्य । स्थितस्येति शेषः । प्रीतिः । जातेति शेषः । अनुत्तमेत्यनेन देवकार्यैकरणहेतुत्वात् पूर्वमपि काचित् प्रीतिरासीदिति द्योत्यते ॥ ८ ॥ सर्वमित्यर्धम् ॥ सुखं पञ्चवटीवासादिकृतम् । दुःखं सीताहरणजम् ॥ ९ ॥ यत्त्वयेत्यादिसार्धश्लोकषट्कमेकान्वयम्॥ ब्राह्मणार्थे ऋषिजनरक्षणार्थे, नियुक्तस्य तैर्याचितस्य । अत एव रक्षितुः खरादिवधमुखेन पालयितुः, तव भार्या हृता बभूवेति यत् तच्चेति योजना । हृता हर्तुमीप्सिता । आशंसायां क्तः । अतो न सीतोन्मथनमित्यनेन पौनरुक्त्यम् । वरः मृतवानरजीवनादिः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ यथा च निहतः संख्ये रावणो देवकण्टक इत्यतः परम्, समागमश्च त्रिदशैरिति श्लोको द्रष्टव्यः ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ अहमिति ॥ वरम् दद्मि ददामि । अत्र आश्रमे अद्य अर्घ्यं पूजाम् गृहाणेति संबन्धः ॥ १६ ॥ तस्येत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ बाढमिति प्रतिगृह्य, तस्मिन्

दिने तत्र पूजामङ्गीकृत्येत्यर्थः । धीमान् अद्यात्र स्थित्वा भरतं प्रति दूतप्रेषणमुचितमिति ज्ञानवानित्यर्थः । मधूनि स्रवन्तीति मधुस्रवाः । गच्छतः ममेति शेषः । मयि गच्छति सतीत्यर्थः । भवन्तु । अत्रेति करणं बोध्यम् । इति वरमयाचतेति संबन्धः ॥ १७॥ १८ ॥ तथेति चेत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ योजना योजनानि । " सुपां सुलुक् " इत्यादिना पूर्वसवर्णादेशः । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । गच्छतां वानराणां फलिनश्चासन्निति क्रमेणान्वयः । इदं चोत्तरदिनकार्यं सौकर्याय ऋषिणा दर्शितम् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ तत इति ॥ ते प्रस्थिताः । स्वर्गजितो यथा स्वर्गिण इव ॥

तथेति च प्रतिज्ञाते वचनात्समनन्तरम् ॥ अभवन्पादपास्तत्र स्वर्गपादपसन्निभाः ॥ १९ ॥ निष्फलाः फलिनश्चासन्
विपुष्पाः पुष्पशालिनः ॥ शुष्काः समग्रपत्रास्ते नगाश्चैव मधुस्रवाः ॥ २० ॥ सर्वतो योजना त्रीणि
गच्छतामभवंस्तदा ॥ २१ ॥ ततः प्रहृष्टाः प्लवगर्षभास्ते बहूनि दिव्यानि फलानि चैव ॥ कामादुपाश्नन्ति सहस्रशस्ते
मुदान्विताः स्वर्गजितो यथैव ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥
अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः ॥ चिन्तयित्वा हनूमन्तमुवाच प्लवगोत्तमम् ॥ १ ॥ जानीहि
कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥ २ ॥ शृङ्गिवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम् ॥ निषादाधिपतिं ब्रूहि
कुशलं वचनान्मम ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

❀ रामानुजीयम् ❀ ते प्रसिद्धाः, स्वर्गजित इव प्रहृष्टास्ते प्लवगर्षभा इति तच्छब्दयोः संबन्धः ॥ २२ ॥ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥ ॥ ॥
अथ भरतं प्रति हनुमत्प्रेषणमष्टाविंशत्युत्तरशततमे—अयोध्यां त्विति॥ अर्धमेकं वाक्यम् । समालोक्य समालोच्येत्यर्थः। आश्रमस्थस्य तदवलोकनासंभवात् । चिन्तयामास । कर्तव्यमिति शेषः ॥ १ ॥ जानीहीत्यर्धम् ॥ नृपतिमन्दिरे जनः मात्रादिः ॥ २ ॥ शृङ्गिवेरेति ॥ गहनगोचरं वनचारिणम् ॥ ३॥

गुहाय निवेदनस्य प्रयोजनमाह–श्रुत्वा त्विति ॥ विगतज्वरं मद्विश्लेषचिन्ताज्वररहितम् यथा तथेति भविष्यतीति क्रियाविशेषणम् । आत्मसमः हीनजातिमनवेक्ष्य प्रेमातिशयेन गुहमिक्ष्वाकुकुलीनममन्यत ॥ ४ ॥ अयोध्यायाश्चेति ॥ प्रवृत्तिं वृत्तान्तम् ॥ ५ ॥ भरतस्त्विति ॥ सिद्धार्थं निर्व्यूढपितृवचनपरिपालनरूपप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हरणमित्यादिश्लोकपञ्चकमेकान्वयम् ॥ रणे सुग्रीववालिनोर्युद्धे । वालिनो वध इत्यर्थः । यथा चेति । महातोयम् अव्ययम् आपगापतिं लङ्घयित्वा त्वया सीता यथा अधिगता तथा शंसेत्यन्वयः । समुद्रस्योपयानम् समुद्रं प्रति गमनमित्यर्थः । संवन्धसामान्ये षष्ठी ।

श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम् ॥ भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा ॥ ४ ॥
अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च ॥ निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ॥ ५ ॥ भरतस्तु
त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम ॥ सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥ ६ ॥ हरणं चापि
वैदेह्या रावणेन बलीयसा ॥ ७ ॥ सुग्रीवेण च संसर्गं वालिनश्च वधं रणे ॥ मैथिल्यन्वेषणं चैव यथा
चाधिगता त्वया ॥ ८ ॥ लङ्घयित्वा महातोयमापगापतिमव्ययम् ॥ उपयानं समुद्रस्य सागरस्य
च दर्शनम् ॥ ९ ॥ यथा च कारितः सेतू रावणश्च यथा हतः ॥ वरदानं महेन्द्रेण ब्रह्मणा वरुणेन च ॥
॥ १० ॥ महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागमम् ॥ उपयातं च मां सौम्य भरतस्य निवेदय ॥ ११ ॥
सह राक्षसराजेन हरीणां प्रवरेण च ॥ १२ ॥ ॥ ॥

समीपयानं वा । सागरस्य समुद्रराजस्य । ब्रह्मणा वरुणेन चेति सहार्थे तृतीया । अनेन महेन्द्रेण वानरसमुत्थापनरूपवरप्रदाने ब्रह्माद्यनुमतिरस्तीति द्योतितम् । पित्रा मम समागममित्येतदन्तस्य शंसेति पूर्वेण संवन्धः । उपयानमिति । अन्यथा चतुर्थ्यामेव चतुर्दशवर्षातिक्रमात् सोऽग्निं प्रविशेदिति भावः ।
सौम्येत्यनेन मन्दं मन्दं कथय । अन्यथा हठान्मदागमनश्रवणे हर्षोऽस्य उन्मस्तको भवेदिति भावः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥

त्वमेव राज्यं पालयेति मयोक्ते भरस्तदङ्गीकरोति न वेति तदाकारस्त्वया ज्ञातव्य इत्याह–एतच्छ्रुत्वेति ॥ एतत् उपयानम्। आकारं मुखप्रसादादिकम्।
मां प्रति यत् इङ्गितचेष्टादिकम् ॥ १३ ॥ जित्वा शत्रुगणानित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ एतच्छ्लोकान्ते इत्युक्त्वेत्यध्याहर्तव्यम्। ज्ञेया इति श्लो-
केन पूर्वोक्तमेव विशेष्यते। तत्त्वेनेत्यस्य ज्ञेया इत्यनेन संबन्धः। अत्रापि पूर्ववद्राज्यं पालयेति मदुक्तिं भरतः किमङ्गीकरोतीति परीक्षस्वेति भावः।
अन्यथा भरतप्रकृतेः रामप्रकृतेश्च विरुद्धं स्यात्। यावेवमूचतुः। न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमा इति, यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवव्यञ्जना-
न्वितौ॥ शिरसा धारयिष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यतीति च ॥१४॥१५॥ ननु किं परीक्षणीयं सर्वस्यापि राज्याधिपत्यकाङ्क्षित्वादित्याशङ्क्याह–सर्वेति॥
पितृपितामहशब्दौ कुलपरम्परोपलक्षकौ। पितृपितामहेभ्य आगतम्। उत्तरपदवृद्धिरार्षी। नावर्तयेत् नाकर्षेत्। कस्य भरतादन्यस्यैवेत्यर्थः ॥ १६ ॥

एतच्छ्रुत्वा मयाकारं भजते भरतस्तदा ॥ स च ते वेदितव्यः स्यात्सर्वं यच्चापि मां प्रति ॥ १३ ॥
जित्वा शत्रुगणान् रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः ॥ उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ १४ ॥ ज्ञेयाश्च
सर्वे वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च ॥ तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषणेन च ॥ १५ ॥ सर्वकामसमृद्धं हि
हस्त्यश्वरथसंकुलम् ॥ पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ॥ १६ ॥ संगत्या भरतः श्रीमान् रा-
ज्यार्थी चेत्स्वयं भवेत् ॥ प्रशास्तु वसुधां कृत्स्नामखिलां रघुनन्दनः ॥ १७ ॥ ॥

एवं भरतेङ्गिते ज्ञाते तव किं कर्तव्यमित्यत्राह–संगत्येति॥ संगत्या अस्मत्संगत्या। यद्यपि पूर्वं सर्वात्मना न राज्यपालनमङ्गीकरोमीत्युक्तम्। तथापि
चतुर्दशवर्षपर्यन्तं मद्विरहातुरतया मद्दर्शनजहर्षप्रकर्षातिरेकेण त्वमभिषिक्तो भवेति मदुक्तिमङ्गीकरिष्यति किमिति भावः। भरतः मत्प्रीत्यर्थम् पूर्वं
राज्यभारमङ्गीकृतवान् खलु। स्वयं श्रीमान् स्वाभाविकपारतन्त्र्यश्रीमान् भवेदित्याशंसायां लिङ्। प्रशास्तु वसुधां कृत्स्नाम्। तातो मदभिषेकसंभ्रमं
न लब्धवान्। अहं तु भरताभिषेकमहोत्सवमनुभवेयम्। अत एव ह्ययोध्याकाण्डेपि, शनैर्जगाम सापेक्ष इत्युक्तम्। भरताभिषेकदर्शनसापेक्ष इत्यर्थः।
अखिलाम् खिलरहिताम्। समृद्धजनामित्यर्थः। कथमसौ भरणक्षम इत्यत्राह–रघुनन्दन इति। त्रैलोक्यभरणक्षमकुलोद्भूत इत्यर्थः॥ ❀ रामानु-
जीयम् ❀ संगत्या आनत्या ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

तस्येति ॥ बुद्धिं मत्सन्निधाने कथं चिद्राज्यमङ्गीकरिष्यतीति बुद्धिम्, व्यवसायं सर्वात्मना नाङ्गीकरिष्यतीति व्यवसायं च, ज्ञात्वा अङ्गीकरिष्यति चेदस्माद्देशाद्यावद्दूरं न याताः स्म तावदागन्तुमर्हसि । अन्यथा नागच्छेति भावः । अत एव हनुमानपि तस्य व्यवसायं ज्ञात्वा नागतवानिति ज्ञेयम् । केचित्तु भरतभावज्ञोपि रामः सर्वात्मना सुरक्तोपि राज्ञा परीक्षणीय इति लोके राजनीतिप्रवर्तनायैवमतिशङ्कावचनमुक्तवान् । वस्तुतः स्वस्य. झटिति गमने भरतस्य हर्ष उन्मस्तको भवेदिति । तस्मात्सत्त्वाय हनुमन्तं प्रेषितवान् । तदाशयज्ञो हनुमानपि रामागमनमुक्त्वा भरतेन सहैवागतवानि-

तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर ॥ यावन्न दूरं याताः स्म क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ इति प्रतिसमादिष्टो
हनुमान्मारुतात्मजः ॥ मानुषं धारयन् रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ ॥ १९ ॥ अथोत्पपात वेगेन हनुमान्मारुता-
त्मजः ॥ गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन् भुजगोत्तमम् ॥ २० ॥ लङ्घयित्वा पितृपथं भुजगेन्द्रालयं शुभम् ॥ गङ्गाय-
मुनयोर्मध्यं सन्निपातमतीत्य च ॥ शृङ्गिवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान् ॥ २१ ॥ स वाचा शुभया हृष्टो हनुमा-
निदमब्रवीत् ॥ २२ ॥ सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः ॥ सहसीतः ससौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥
॥ २३ ॥ पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान्मुनेः ॥ भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यद्यैव राघवम् ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा
महातेजाः संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ उत्पपात महावेगो वेगवानविचारयन् ॥ २५ ॥ ॥ ॥

त्याहुः ॥ १८ ॥ इतीति ॥ प्रतिसमादिष्टः प्रतिकूलं समादिष्टः । अहृदयं समादिष्ट इत्यर्थः । ययौ यातुमुद्युक्तः ॥१९॥ अथेति ॥ अथ उद्योगानन्तरम् । वेगेन जिघृक्षन् इवेत्यन्वयः ॥२०॥ लङ्घयित्वेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ पितृपथं स्वपितृपथम् । वायुमार्गमित्यर्थः । भुजगेन्द्रालयमिति गङ्गायमुनासंगमविशेषणम् ॥२१॥२२॥२३॥ पञ्चमीमिति ॥ पञ्चमीं पञ्चमीसंबन्धिनीम्, अद्य रजनीम् एतां रजनीम् उषित्वा । निर्गतमिति शेषः । भरद्वाजाभ्यनुज्ञातम् । प्रातरिति शेषः । अद्यैव अचिरेणैव ॥२४॥ एवमिति ॥ संप्रहृष्टतनूरुहः । सकललोकानन्दकारिरामप्रत्यागमनम् मया श्रावयितव्यं लब्धमित्यस्माद्धेतोरिति भावः। महावेगः महावेगस्वभावः । वेगवान् तादात्विकवेगवान् । अविचारयन् मार्गस्थवनगिरिनदीसौन्दर्यादिकमगणयन्निति भावः॥२५॥

सोपश्यदित्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ रामतीर्थं परशुरामतीर्थम् । तां प्रसिद्धाम् । प्रजाः कोसलजनपदस्थाः ॥२६॥ स गत्वेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ फुल्लान् फुल्लपुष्पान् । स्त्रीभिः सपुत्रैर्वृद्धैश्च । स्त्रीबालवृद्धाविशेषेण सर्वेषामानन्दकरत्वादिति भावः । सुराधिपस्य उपवने नन्दनवने, चैत्ररथे च स्थितान् द्रुमान् यथा तत्सदृशानित्यर्थः ॥२७॥२८॥ क्रोशमात्रे त्वित्यादिश्लोकपञ्चकमेकान्वयम् ॥ क्रोशमात्रे घटिकाद्वयमात्रे घटिकाद्वयगन्तव्यभूमौ । क्रोशलक्षणमुक्तं ज्यौतिषदर्पणे—यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यैर्हस्तोऽङ्गुलैः षड्गुणितैश्चतुर्भिः । हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषामिति । दीनं

सोपश्यद्रामतीर्थं च नदीं वालुकिनीं तथा ॥ गोमतीं तां च सोपश्यद्भीमं सालवनं तथा ॥ प्रजाश्च बहुसाहस्राः स्फीताञ्जनपदानपि ॥ २६ ॥ स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः ॥ आससाद् द्रुमान् फुल्लान् नन्दिग्रामसमीपगान् ॥ २७ ॥ स्त्रीभिः सपुत्रैर्वृद्धैश्च रममाणैरलंकृतान् ॥ सुराधिपस्योपवने यथा चैत्ररथे द्रुमान् ॥ २८ ॥ क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥ २९ ॥ जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ॥ फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ॥ ३० ॥ समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ॥ नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ॥ ३१ ॥ पादुके ते पुरस्कृत्य शासन्तं वै वसुन्धराम् ॥ चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥ ॥ ३२ ॥ उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ॥ बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥ ३३ ॥

रामादर्शनेन । दान्तं बहिरिन्द्रियनिग्रहशालिनम् । समुन्नतजटाभारमिति ॥ पूर्वं जटावत्त्वोक्तिः, अत्र तद्भारस्य समुन्नतत्वोक्तिरिति वैषम्यम् । वल्कलाजिनवाससमित्युत्तरीयोक्तिः । अतश्चीरकृष्णाजिनाम्बरमित्यनेन न पुनरुक्तिः । नियतं नियतवाचम् । भावितात्मानं ध्यातात्मानमिति मनोनियमोक्तिः । ते पूर्वं रामेण दत्ते । चातुर्वर्ण्यस्य चतुर्वर्णरूपस्य । स्वार्थे ष्यञ् । लोकस्य जनस्य । युक्तैः सन्नद्धैः । योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिष्वित्यमरः ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

भ्रातृवियोगाद्भरतस्य वल्कलादिधारणमस्तु अमात्यादीनां तत् किन्निमित्तमित्याशङ्क्य तत्र कारणमाह–न हीति ॥ राजपुत्रं भरतं परिवर्जयित्वा भोक्तुं समीचीनवस्त्राभरणादीन्यनुभवितुम्, न व्यवस्यन्ति व्यवसायं न कुर्वन्ति। "अपपरी वर्जने" इति परेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा आचार्याः प्राहुः। परि परितो वर्तमाना अपि पौराः भरतं भोक्तुम् अनुभवितुम्। द्रष्टुमिति यावत्। न व्यवस्यन्ति व्यवसायं न कुर्वन्ति। तद्दर्शने निराशा भवन्तीत्यर्थः। तत्र हेतुमाह–राजपुत्रमिति। रामविरहानन्तरक्षणे मृतस्य पुत्रः खल्वयम्। अद्य रामानागमने किमयमस्माभिर्लभ्यत इति भावः। हेत्वन्तरमाह–धर्मवत्सलं धर्मार्थ-

न हि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलम् ॥३४॥ तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहवन्तमिवापरम् ॥ उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३५ ॥ वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ॥ अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् ॥ अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ॥ ३७ ॥ निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ॥ उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ॥ सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण यथा शची ॥ ३९ ॥ ॥ ॥

तया स्वात्मत्यागे पितृसदृशमित्यर्थः। चतुर्दशे वर्षे पूर्णेपि रामागमनादर्शनात् प्राणत्यागे व्यवसितं भरतमालोकयतां पौराणां खेदातिशयोनेन श्लोकेन सूच्यते ॥ ३४ ॥ तमिति ॥ देहवन्तमपरं धर्ममिव स्थितम्। द्वितीय इवशब्दो वाक्यालंकारे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ प्रियमिति ॥ संगतः भविष्यतीति शेषः। अत्रापरिचितत्वात् भरतं हनुमान् नावन्दत। यद्वा प्राञ्जलिरिति पदं वन्दनपूर्वकाञ्जलिपरम्। अथवा भरतदशादर्शनेन प्रियाख्याने क्षणविलम्बेपि प्राणहानिशङ्कया सति कुड्य इति न्यायेन वन्दनोद्देश्यवस्तुनि शीर्यमाणे किं वन्दनेनेति तदुज्जीवकं प्रियाख्यानमेवाकरोत्। यद्वा तद्दशादर्शनेन स्वरूपं विसस्मार ॥ ३७ ॥ निहत्येति ॥ समृद्धार्थः संपूर्णमनोरथः ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणश्चेति ॥ समग्रा संपूर्णमनोरथा। उपयात इति शेषः ॥ ३९ ॥ ॥

एवमिति ॥ हृष्टः पपात हर्षान्मोहं जगाम हेत्यनेन वार्ताश्रवणमात्रेणैतादृशावस्थे भरते झटिति रामागमने कावस्था भवेदिति ऋषिर्विस्मयते ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ अशोकजैरिति ॥ भरतः कपिमालिङ्ग्य । अशोकजैः शोकजभिन्नैः । प्रीतिमयैः आनन्दजैरित्यर्थः । विपुलैः गुरुभिः ॥ ४२ ॥ देवो वेत्यादिश्लोकत्रयमेकान्वयम् ॥ परिगृहीतमनुष्यदेहेपि हनुमति तेजोविशेषात् संशयः । अनुक्रोशात् दयया, प्रियं ब्रुवतस्ते, प्रियाख्यानस्य प्रियवचनस्य,

एवमुक्तो हनुमता भरतो भ्रातृवत्सलः॥ पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहं जगाम ह ॥४०॥ ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ॥ हनुमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥ ४१ ॥ अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य संभ्रमात् ॥ सिषेच भरतः श्रीमान् विपुलैरास्रबिन्दुभिः ॥ ४२ ॥ देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ॥ प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥४३॥ गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं परम् ॥ सुकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्याश्च षोडश ॥ ४४ ॥ हेमवर्णाः सुनासोरूः शशिसौम्याननाः स्त्रियः ॥ सर्वाभरणसंपन्नाः सम्पन्नाः कुलजातिभिः ॥ ४५ ॥ निशम्य रामागमनं नृपात्मजः कपिप्रवीरस्य तदद्भुतोपमम् ॥ प्रहर्षितो रामदिदृक्षयाभवत्पुनश्च हर्षादिदमब्रवीद्वचः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्युद्धकाण्डे अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२८॥ ॥

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् ॥ शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥ १ ॥ कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे ॥ एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ २ ॥ ॥ ॥

पारितोषिकत्वेन गवादिकं ददामि । भार्याः भरणार्हाः । कन्याः अनूढाः स्त्रियः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ निशम्येति ॥ रामदिदृक्षया उपलक्षितो भरतः । अद्भुता उपमा यस्य तत् अद्भुतोपमम् । निरुपममित्यर्थः । तद्रामगमनम्, कपिप्रवीरस्य कपिप्रवरात्, निशम्य । नटस्य शृणोतीतिवत्षष्ठी । प्रहर्षितोभवत् ॥ ४६ ॥ इति श्रीगो० श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥ ॥

बहूनीत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ बहूनि वर्षाणि वनं गतस्येति संबन्धः । वर्षशतादपीत्यत्रेतिकरणं द्रष्टव्यम् । वर्षशतात्परमिति शेषः ॥ १ ॥ २ ॥

राघवस्येति ॥ अत्र वानरसमागमप्रश्नेन पूर्वं भरतः सामान्यतो वानरसेनासन्नाहं श्रुतवानिति गम्यते । किमाश्रित्य किं प्रयोजनमवलम्ब्य ॥३॥ स इति॥ बृस्यां तपस्विसमुचितासने । व्रतिनामासनं बृसीत्यमरः ॥ ४ ॥ वक्ष्यमाणव्रतान्ते प्रामाण्यसिद्धये तत्पूर्ववृत्तं संग्रहेणानुवदति—यथेत्यादिना ॥ अत्र यथेत्यस्य येन प्रकारेणेत्यर्थः । मातुः मात्रे राज्येन निमन्त्रित इत्यन्वयः । अमित्रकर्शनेत्यनेन राज्यकरणसामर्थ्ये स्वस्य सत्यपि ज्येष्ठानुवृत्त्यर्थं नि-

राघवस्य हरीणां च कथमासीत्समागमः ॥ कस्मिन्देशे किमाश्रित्य तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥३॥ स पृष्टो राजपुत्रेण बृस्यां समुपवेशितः ॥ आचचक्षे ततः सर्वं रामस्य चरितं वने ॥४॥ यथा प्रव्राजितो रामो मातुर्दत्तो वरस्तव ॥ यथा च पुत्रशोकेन राजा दशरथो मृतः ॥ ५ ॥ यथा दूतैस्त्वमानीतस्तूर्णं राजगृहात्प्रभो ॥ त्वयायोध्यां प्रविष्टेन यथा राज्यं न चेप्सितम् ॥ ६ ॥ चित्रकूटं गिरिं गत्वा राज्येनामित्रकर्शन ॥ निमन्त्रितस्त्वया भ्राता धर्ममाचरता सताम् ॥ ७ ॥ स्थितेन राज्ञो वचने यथा राज्यं विसर्जितम् ॥ आर्यस्य पादुके गृह्य यथासि पुनरागतः ॥ ८ ॥ सर्वमेतन्महाबाहो यथावद्विदितं तव ॥ त्वयि प्रतिप्रयाते तु यद्वृत्तं तन्निबोध मे ॥ ९ ॥ अपयाते त्वयि तदा समुद्भ्रान्तमृगद्विजम् ॥ परिद्यूनमिवात्यर्थं तद्वनं समपद्यत ॥१०॥ तद्धस्तिमृदितं घोरं सिंहव्याघ्रमृगायुतम् ॥ प्रविवेशाथ विजनं सुमहद्दण्डकावनम् ॥ ११ ॥ तेषां पुरस्ताद्बलवान् गच्छतां गहने वने ॥ निनदन् सुमहानादं विराधः प्रत्यदृश्यत ॥ १२ ॥ तमुत्क्षिप्य महानादमूर्ध्वबाहुमधोमुखम् ॥ निखाते प्रक्षिपन्ति स्म नदन्तमिव कुञ्जरम् ॥ १३ ॥ तत्कृत्वा दुष्करं कर्म भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ सायाह्ने शरभङ्गस्य रम्यमाश्रममीयतुः ॥ १४ ॥ शरभङ्गे दिवं प्राप्ते रामः सत्यपराक्रमः ॥ अभिवाद्य मुनीन्सर्वान् जनस्थानमुपागमत् ॥१५॥ ततः पश्चाच्छूर्पणखा रामपार्श्वमुपागता ॥ १६ ॥ ॥ ॥

मन्त्रित इति गम्यते ॥५॥६॥७॥८॥९॥ अपयात इति ॥ समुद्भ्रान्तेति । अपूर्वपुरुषदर्शनेनेति भावः । परिद्यूनं परितप्तम् ॥ १० ॥ तदिति ॥ तत् प्रसिद्धम् । हस्तिभिः वनगजैः मृदितम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ तमिति ॥ निखाते अवटे । प्रक्षिपन्ति स्मेति बहुवचनेन सीतयापि तत्र किंचित्साहाय्यं कृतमिति गम्यते ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ततः पश्चादित्यर्धम् ॥ १६ ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ कर्णनासमित्यत्र प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ अभिवाद्य मुनीन् सर्वान् जनस्थानमुपागमदित्यनन्तरं, ततः पश्चाच्छूर्पणखा रामपार्श्वमुपागता । अतो रामेण संदिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः ॥ प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबल इत्यनन्तरं, चतुर्दश सहस्राणीत्येवं पाठक्रमोवगन्तव्यः । अन्यथा पाठे तु अविवक्षितः क्रम इति द्रष्टव्यः ॥ १७ ॥ चतुर्दशेति ॥ स्पष्टम् ॥१८॥ एकेनेति ॥ संगताः पार्थक्येन विना सर्वे राक्षसाः परस्परं मिलिताः सन्तः, एकेन रामेण सह संगम्य निःशेषाः कृता इत्यन्वयः । अह्नश्चतुर्थभागेनेत्यत्र अह्नश्चतुर्थो यामः । तस्य भागः त्रिपादघटि-

ततो रामेण संदिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः ॥ प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः ॥ १७ ॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ॥ १८ ॥ एकेन सह संगम्य रणे रामेण सङ्गताः ॥ अह्नश्चतुर्थभागेन निःशेषा राक्षसाः कृताः॥१९॥महाबला महावीर्यास्तपसो विघ्नकारिणः॥ निहता राघवेणाजौ दण्डकारण्यवासिनः ॥ २० ॥ राक्षसाश्च विनिष्पिष्टाः खरश्च निहतो रणे ॥ २१ ॥ ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता॥२२॥ रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः ॥ लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः ॥ २३ ॥ अथैनमब्रवीद्रामं वैदेही गृह्यतामिति ॥ अहो मनोहरः कान्त आश्रमो नो भविष्यति ॥२४॥ ततो रामो धनुष्पाणिर्धावन्तमनुधावति ॥ स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा ॥२५॥ अथ सौम्य दशग्रीवे मृगं याते तु राघवे ॥ लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा ॥ २६ ॥ जग्राह तरसा सीतां ग्रहः खे रोहिणीमिव ॥ त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥२७॥

कान्यूनार्थांशः तेन । अन्यथा अर्धाधिकमुहूर्तेनेति पूर्वोक्तविरोधः प्रसज्येत॥१९॥ महाबला इति श्लोके तपसो विघ्नकारिण इत्युक्त्या राक्षसहननं तपोविघ्नशान्त्यर्थमिति दर्शितम् ॥२०॥ राक्षसा इत्यर्धम् ॥२१॥ तत इत्यर्धम् ॥ बाला मूर्खाः । मूर्खेर्भकेपि बालः स्यादित्यमरः ॥२२॥२३॥ अथैनमिति ॥ एनं रामम् । गृह्यतां मृग इति शेषः ॥२४॥२५॥ अथेति ॥ निष्क्रान्त इति । क्रूरत्वान्निष्क्रान्तिकारणानुक्तिः । अत एवाह कामन्दकः—प्रियं पथ्यं च तथ्यं च वदेद्धर्मार्थमेव च । अश्राव्यमयशस्यं च परोक्षे कटु चोत्सृजेदिति ॥२६॥ जग्राहेति ॥ तरसा बलात्कारेण । ग्रहः अङ्गारक इति यावत् ॥२७॥

॥ २८ ॥ ततस्त्वित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ अद्भुतसंकाशाः अद्भुताकाराः ॥२९॥३०॥ तामिति ॥ सुवर्णपरिक्रान्ते सुवर्णानुलिप्ते ॥ ३१ ॥ तृणवदिति ॥ तस्य रावणस्य भाषितं तृणवत् । मत्वेति शेषः । तं च नैर्ऋतपुङ्गवम् अचिन्तयन्ती वैदेही अशोकवनिकां गता । तत्रैव स्थितेत्यर्थः॥३२॥३३॥ निवर्तमान इति ॥ अदृष्ट्वेति च्छेदः। सीतामिति शेषः । सीतां गृध्रं चादृष्ट्वा प्रविव्यथ इत्यन्वयः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ निवर्तमानः काकुत्स्थो दृष्ट्वा

प्रगृह्य सीतां सहसा जगामाशु स रावणः ॥ २८ ॥ ततस्त्वद्भुतसंकाशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ॥ सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः ॥ ददृशुर्विस्मितास्तत्र रावणं राक्षसाधिपम् ॥ २९ ॥ प्रविवेश ततो लङ्कां रावणो लोकरावणः ॥ ३० ॥ तां सुवर्णपरिक्रान्ते शुभे महति वेश्मनि ॥ प्रविश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः ॥ ३१ ॥ तृणवद्भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ अचिन्तयन्ती वैदेही अशोकवनिकां गता ॥ ३२ ॥ न्यवर्तत ततो रामो मृगं हत्वा महावने ॥ ३३ ॥ निवर्तमानः काकुत्स्थोऽदृष्ट्वा गृध्रं प्रविव्यथे ॥ ३४ ॥ गृध्रं हतं ततो दग्ध्वा रामः प्रियसखं पितुः ॥ मार्गमाणस्तु वैदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः ॥ गोदावरीमन्वचरद्वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ॥ ३५ ॥ आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् ॥ ३६ ॥ ततः कबन्धवचनाद्रामः सत्यपराक्रमः ॥ ऋश्यमूकं गिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः ॥३७॥ तयोः समागमः पूर्वं प्रीत्या हार्दो व्यजायत ॥ ३८ ॥ भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो वालिना पुरा ॥ ३९ ॥ ॥

गृध्रं प्रविव्यथे । गृध्रं हतं ततो दग्ध्वा रामः प्रियसखं पितुरिति पाठः ॥ ३४ ॥ गृध्रमित्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ ततो वैदेहीं मार्गमाणो राघवः पितुः प्रियसखं हतं गृध्रं दग्ध्वा गोदावरीं तद्वनोद्देशांश्चान्वचरत् । पुष्पितानित्यनेन पुष्पलोभेन किं सीतात्र गतेति मतिर्व्यज्यते ॥ ३५ ॥ आसेदतुरित्यर्धमेकं वाक्यम् ॥ राघवाविति शेषः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तयोरिति ॥ तयोः रामसुग्रीवयोः, पूर्वं दर्शनात् प्रागेव, हार्दः समागमः मानसः संबन्धः व्यजायत । मनसा परस्परं सख्यमाचकाङ्क्षाते इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ सुग्रीवस्य कुतः सख्यापेक्षेत्यत्र आह–भ्रात्रेति ॥ ३९ ॥ ॥

इतरेतरेति ॥ इतरेतरसंवादात् अन्योन्यप्रयोजनकथनात् प्रणयः प्रगाढः अतिशयितः अभूत् ॥ ४० ॥ रामस्येति ॥ अत्र सुग्रीव इति शेषः । सुग्रीवः रामस्य बाहुवीर्येण वालिनं हत्वा स्वराज्यम् प्रत्यपादयत् समपादयदिति संबन्धः ॥४१॥ सुग्रीव इति ॥ राज्ये स्थापितः सुग्रीवः सर्ववानरैः सहितोभूत् ॥४२॥ रामायेति ॥ सुग्रीव इति शेषः । प्रतिजानीते प्रतिज्ञातवान् ॥४३॥ आदिष्टा इति ॥ आदिष्टाः मार्गणायादिष्टाः, दिशः प्रस्थापिताश्च॥

इतरेतरसंवादात्प्रगाढः प्रणयस्तयोः ॥ ४० ॥ रामस्य बाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ॥ वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ॥ ४१ ॥ सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः ॥ ४२ ॥ रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्याश्च मार्गणम् ॥ ॥ ४३ ॥ आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना ॥ दश कोट्यः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः ॥ ४४ ॥ तेषां नो विप्रकृष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे॥ भृशं शोकाभितप्तानां महान् कालोत्यवर्तत॥४५॥ भ्राता तु गृध्रराजस्य संपातिर्नाम वीर्यवान् ॥ समाख्याति स्म वसतिं सीताया रावणालये ॥४६॥ सोहं शोकपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् ॥ आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४७ ॥ तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ॥ कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम् ॥४८॥ तया समेत्य विधिवत्पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ॥ अभिज्ञानं च मे दत्तमर्चिष्मान् स महामणिः॥ ४९ ॥ अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोहमागतः ॥ ५० ॥ मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान् स महामणिः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ४४॥ तेषामिति ॥ तेषां स्थापितानाम्, विप्रकृष्टानाम् बहुकालविलम्बितानाम् । यद्वा स्वयंप्रभाबिले प्रविष्टतया दूरं गतानाम् ॥४५॥४६॥ सोहमिति ॥ ज्ञातिनामिति नकारान्तत्वमार्षम् । प्लुतः समुद्र इति शेषः ॥४७॥ तत्राहमिति ॥ तत्र रावणालये ॥४८॥ तयेति ॥ अनिन्दितां सीताम् सर्वं वृत्तान्तं पृष्ट्वा । प्रच्छिर्द्विकर्मकः। पृष्ट्वा स्थिताय मे मह्यम् , सः प्रसिद्धः महामणिः अभिज्ञानं दत्तम्॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ तयेति॥मे मया । स महामणिः। रामदत्ताभिज्ञानस्याङ्गुलीयकरूपत्वेपि तद्युक्तमणिप्राधान्यान्मणिशब्दप्रयोगः॥४९॥अभिज्ञानमित्यर्धम्॥५०॥मया चेति॥क्रियाभेदान्मयाशब्दद्वयं प्रयुक्तम् ५१॥

श्रुत्वेति॥जीवितमाशशंसे, ततः पूर्वं जीविते निराशः स्थित इति व्यक्तम्। जीवितान्तं प्राप्तः,आतुरः अमृतं पीत्वा यथा जीवितमाशास्ते तथेत्यर्थः॥५२॥ उद्योजयिष्यन्निति ॥ उद्योगमुद्योजयिष्यन् उद्योगं कुर्वन् । ओदनपाकं पचतीतिवत् । विभावसुः अग्निः ॥५३॥ तत इति ॥ नलं सेतुमकारयत् नलेन सेतुमकारयत् ॥५४॥५५॥५६॥५७॥५८॥ तमिति ॥ पुनर्गङ्गामासाद्य मुनिसन्निधौ भरद्वाजसमीपे, अध्यवसन्तं तम् अविघ्नं यथा भवति तथा

श्रुत्वा तु मैथिलीं हृष्टस्त्वाशशंसे च जीवितम् ॥ जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वामृतमिवातुरः ॥ ५२ ॥ उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे कामं वधे मनः ॥ जिघांसुरिव लोकान्ते सर्वान् लोकान्विभावसुः ॥ ५३ ॥ ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत् ॥ अतरत्कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥ ५४ ॥ प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः ॥ लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ॥ ५५ ॥ स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च ॥ महेश्वरस्वयंभूभ्यां तथा दशरथेन च ॥५६॥ तैश्च दत्तवरः श्रीमानृषिभिश्च समागतः ॥ सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वरान् लेभे परन्तपः ॥ ५७ ॥ स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतः ॥ पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत् ॥ ५८ ॥ तं गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसन्निधौ ॥ अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि॥५९॥ततस्तु सत्यं हनुमद्वचो महन्निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः ॥ उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः॥६०॥ इति श्रीमद्युद्धकाण्डे एकोनत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥१२९॥

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः ॥ हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥ १ ॥ दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च ॥ सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः ॥ २ ॥ ॥ ॥

श्वः पुष्ययोगेन द्रष्टुमर्हसि। पुष्ययोगलाभार्थम् अद्य गङ्गातीरे रामः स्थित इति भावः ॥५९॥ तत इति ॥ सत्यम् अविरुद्धभङ्ग्या सत्यत्वेन ज्ञातम्। मनोरथ इत्यनन्तरमितिकरणं द्रष्टव्यम् ॥६०॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरी०युद्धका०एकोनत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥१२९॥

श्रुत्वेत्यादि ॥ परमानन्दम् परमानन्दकरम् । वच इति शेषः ॥ १ ॥ दैवतानीति ॥ चैत्यानि चतुष्पथमण्डपान् अर्चन्तु। अर्चयन्तु ॥२॥ ॥

सूता इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ सूताः स्तुतिशीलाः । वैतालिकाः बन्दिनः ॥ ❀रामानुजीयम्❀ गणिकाश्चापि संघश इत्यतः परं, राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनागणाङ्गनाः । ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ॥ अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् । भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ॥ विष्टीरनेकसाहस्राश्चोदयामास वीर्यवानिति पाठक्रमः । व्यत्ययस्तु लेखकप्रमादकृतः ॥३॥ भरतस्येत्यादिश्लोकपञ्चकमेकान्वयम्॥ विष्टीः भृतिं विना कर्मकरान् । नन्दिग्रामादितः परम्। अयोध्यापर्यन्तमित्यर्थः। अन्ये पुरुषाः हिमवच्छीतेन वारिणा सिञ्चन्तु । ततः सेचनानन्तरम्, लाजादिभिः किरन्तु । रथ्याः समुच्छ्रितपताकाः, कुर्वन्त्विति शेषः। सूर्यस्योदयनं प्रति सूर्यस्योदयमारभ्य । यावत्सूर्योदयमिति वा । स्रजः मालिकाः

सूताः स्तुतिपुराणज्ञाः सर्वे वैतालिकास्तथा ॥ सर्वे वादित्रकुशला गणिकाश्चापि संघशः ॥ अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं
शशिनिभं मुखम् ॥ ३ ॥ भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ॥ विष्टीरनेकसाहस्राश्चोदयामास वीर्यवान् ॥ ४ ॥ समीकुरुत
निम्नानि विषमाणि समानि च ॥ स्थलानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम् ॥ ५ ॥ सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां
हिमशीतेन वारिणा ॥ ततोभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वशः ॥ ६ ॥ समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे
॥ शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ७ ॥ स्रग्दामभिर्मुक्तपुष्पैः सुगन्धैः पञ्चवर्णकैः ॥ राजमार्गमसंबाधं
किरन्तु शतशो नराः ॥ ८ ॥ राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनागणाङ्गनाः ॥ ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तासां दामभिः पङ्क्तिभिः, मुक्तपुष्पैः असूत्रबद्धपद्मकुवलयादिभिश्च वेश्मानि शोभयन्तु। सुगन्धैः पञ्चवर्णकैः पञ्चविधवर्णद्रव्यचूर्णैः, राजमार्गं किरन्तु। राजमार्गे वर्णद्रव्यचूर्णैः नानाविधलतापद्मादिचित्ररेखाः कुर्वन्त्वित्यर्थः॥ ❀रामानुजीयम्❀ विष्टीः भृतिं विना कर्मकरान्। स्रग्दामभिः पुष्पमालापङ्क्तिभिः, वेश्मानि शोभयन्तु । सुगन्धैः पञ्चवर्णकैः मुक्तैः पुष्पैश्च राजमार्गं किरन्त्विति संबन्धः ॥४॥५॥६॥७॥८॥ अथ परेद्युः प्रातः रामभक्त्यतिशयेन सर्वेषां निर्गमनं दर्शयति–राजदारा इत्यादिना ॥श्रेणीमुख्याः श्रेणीमुखाः तथा गणाः। श्रेणी श्रेणय इति यावत् । अत्र श्लोके निर्ययुरिति वक्ष्यमाणमनुषज्यते ॥९॥

अमात्यान्विशिष्य दर्शयति–धृष्टिरित्यादिना ॥ सार्धश्लोक एकान्वयः । अत्र धृष्ट्यादयो गजारूढा ययुरित्यर्थः॥१०॥११॥अपर इति ॥ अपरे राजान्तरङ्गाः पुरुषाः करेणुभिर्निर्ययुः ॥१२॥ शक्तीत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ उक्त विशेषणानां तुरगाणां सहस्रैः पदातीनां सहस्रैश्च परिवृता वीरा ययुः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ निर्ययुस्तुरगाक्रान्तै रथैश्च सुमहारथा इत्यस्यानन्तरं, शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम् । तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यै-

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो ह्यर्थसाधकः॥ अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः ॥१०॥ मत्तैर्नागसहस्रैश्च शातकुम्भविभूषितैः ॥११॥ अपरे हेमकक्ष्याभिः सगजाभिः करेणुभिः॥ निर्ययुस्तुरगाक्रान्तै रथैश्च सुमहारथाः॥१२॥ शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम् ॥ तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यैर्मुख्यनरान्वितैः ॥ पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः ॥ १३॥ ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः॥१४॥ कैकेय्या सहिताः सर्वा नन्दिग्राममुपागमन् ॥१५॥ कृत्स्नं च नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमत् ॥१६॥ अश्वानां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ॥ शङ्खदुन्दुभिनादेन संचचालेव मेदिनी ॥१७॥ द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः ॥ माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥ १८॥ शङ्खभेरीनिनादैश्च बन्दिभिश्चाभिवन्दितः ॥ आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः॥१९॥पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम्॥ शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते॥२०॥

र्मुख्यनरान्वितैः ॥ पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः। ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः। कैकेय्या सहिताः सर्वा नन्दिग्राममुपागमन् ॥ कृत्स्नं तु नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमदिति पाठक्रमः । व्यत्ययस्तु लेखकप्रमादकृतः ॥ १३ ॥ तत इति ॥ प्रमुखे अग्रे ॥ १४ ॥ कैकेय्येति ॥ अत्र भरतेनोपेक्षयानाहूतत्वात् पश्चान्निर्गत्य कैकेय्या नन्दिग्रामप्राप्तिकाले साहित्यमुच्यते ॥ १५ ॥ कृत्स्नमित्यर्धम् ॥ अत्र नगरशब्देन तत्रत्यजना लक्ष्यन्ते ॥ १६ ॥ अश्वानामिति ॥ संचचाल कम्पितेव ॥ १७ ॥ अथोक्तपरिवारैः सह भरतस्य नन्दिग्रामान्निर्गमं दर्शयति–द्विजातिमुख्यैरित्यादिभिः सार्धैश्चतुर्भिः श्लोकैः ॥ ततो महात्मा भरतः सर्वैर्वृतः प्रत्युद्ययाविति वाक्यार्थः । सनैगमैः स-

वणिग्भिः । वैदेहकः सार्थवाहो नैगमो वाणिजो वणिगित्यमरः । मन्त्रिभिः वसिष्ठादिभिः । सचिवैः सुमन्त्रादिभिः । आर्यपादौ रामपादुके । हेमभूषिते हेमदण्डभूषिते । तत्पूर्वं श्रवणादिहर्षमागतः । श्रवणात्पूर्वं तु नास्य हर्षोऽभूदित्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ संमीक्ष्येत्यर्धम् ॥ समीक्ष्य समन्ताद्रामगमनं निरीक्ष्य ॥२२॥ कच्चिदित्यादि सार्धश्लोक एकान्वयः ॥ कच्चिदिति प्रश्ने । सेव्यते । त्वयेति शेषः । तत्र हेतुमाह–न हीति । रामस्य दूराग-

उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः॥ भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः ॥ प्रत्युद्ययौ ततो रामं महात्मा
सचिवैः सह ॥ २१ ॥ समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥ २२ ॥ कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता ॥ नहि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परन्तपम् ॥ कच्चिन्न खलु दृश्यन्ते वानराः कामरूपिणः ॥ २३ ॥
अथैवमुक्ते वचने हनुमानिदमब्रवीत् ॥ अर्थं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम् ॥ २४ ॥ सदाफलान् कुसुमितान्
वृक्षान् प्राप्य मधुस्रवान् ॥ भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान् ॥ २५ ॥ तस्य चैष वरो दत्तो वासवेन परन्तप ॥
ससैन्यस्य तथातिथ्यं कृतं सर्वगुणान्वितम् ॥ २६ ॥ निस्वनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम् ॥ मन्ये
वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम् ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥

मनेपि नासीरचारिणः कपयो दृश्येरन्, तेषां कामरूपित्वेन स्वरूपेणादर्शनेपि रूपान्तरेण वा दृश्येरन् । तदपि नास्तीत्यर्थः ॥ २३ ॥ अथेति ॥ अर्थं विलम्बहेतुम् । अर्थः स्याद्विषये मोक्षे शब्दवाच्ये प्रयोजने । व्यवहारे धने शास्त्रे वस्तुहेतुनिवृत्तिष्विति वैजयन्ती ॥ २४ ॥ सदेति ॥ भरद्वाजप्रसादेन सदाफलानिति संबन्धः । प्राप्य वानराः हृष्यन्तीति च शेषः ॥ २५ ॥ तस्य चेति ॥ ससैन्यस्य रामस्य वासवेन एष वरो दत्तः अकालफलित्ववरो दत्तः, तथा सर्वगुणान्वितम् आतिथ्यं मधुस्रवत्वरूपं भरद्वाजेन कृतम्, अतो कालफलित्वं मधुस्रवत्वं च वनस्य युक्तमित्यर्थः ॥ २६ ॥ एवं विलम्बहेतुमुक्त्वा समीपागमनचिह्नं दर्शयति–निस्वन इति ॥ इदानीं वानरसेना गोमतीं नदीं तरतीति मन्ये । यस्मात् भीमो निस्वन इति भावः ॥ २७ ॥

ततोपि सन्निकर्षमाह—रज इति ॥ समुद्भूतं रजोवर्षं पश्य। तस्माद्वालुकिनीं नदीं प्रति यातीति मन्ये ॥ २८ ॥ क्षिप्रं वानरसेनाया अनागमने हेतुमाह—मन्य इति ॥ तस्मात्तस्याः विलम्बः ॥ २९ ॥ विमानं तु दृश्यत इत्याह—तदेतदिति ॥ पुष्पकं विमानं पुष्पकाख्यं विमानम् ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तरुणेति ॥ दिव्यं मनोजवं तरुणादित्यसंकाशं रामवाहनमेतद्विमानम्, प्रसादेन धनदस्य ब्रह्मप्रसादेन धनदस्य, लब्धमित्यर्थः। परेण तपसा लेभे यत्कु-

रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य वालुकिनीं प्रति ॥ २८ ॥ मन्ये सालवनं रम्यं लोलयन्ति प्लवङ्गमाः ॥ २९ ॥ तदेतद्दृश्यते दूराद्विमलं चन्द्रसन्निभम् ॥ विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३० ॥ रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना ॥ ३१ ॥ तरुणादित्यसंकाशं विमानं रामवाहनम् ॥ धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेतन्मनोजवम् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ ॥ सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च बिभीषणः ॥ ३३ ॥ ततो हर्षसमुद्भूतो निस्वनो दिवमस्पृशत् ॥ स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोयमिति कीर्तिते ॥ ३४ ॥ रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेवतीर्य महीं गताः ॥ ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥ ३५ ॥ प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ॥ स्वागतेन यथार्थेन ततो राममपूजयत् ॥ ३६॥ मनसा ब्रह्मणा सृष्टे विमाने भरताग्रजः ॥ रराज पृथुदीर्घाक्षो वज्रपाणिरिवापरः ॥ ३७ ॥ ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ॥ ववन्दे प्रयतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ ३८ ॥ ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ॥ हंसयुक्तं महावेगं निष्पपात महीतले ॥ ३९॥ ॥ ॥

वेरः पितामहादिति सुन्दरकाण्डोक्तेः ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्निति ॥ आसत इति शेषः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ प्राञ्जलिरिति ॥ यथार्थेन स्वागतेन। चतुर्दशे वर्षे पूर्णे अवश्यमागमिष्यामीति प्रतिज्ञानुसारिणा स्वागमनेनेत्यर्थः। अपूजयत् अश्लाघयत् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ मेरुस्थमिव भास्करमित्यस्यानन्तरं, ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम्। हंसयुक्तं महावेगं निष्पपात महीतल इति पाठः ॥ अयं श्लोकः केषुचित्कोशेषु लेखकप्रमादात्पतितः ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥

आरोपित इति ॥ अत्र भरतस्य विमानारोपणं सर्वेषां प्रदर्शनार्थमिति बोध्यम् ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तत इति ॥ लक्ष्मणमासाद्य कृतनमस्कारं लक्ष्मणमालिङ्गनेन संभाव्य । इदं च लक्ष्मणस्य कनिष्ठत्वात् । लक्ष्मणेन चिकीर्षितो नमस्कारो रामसन्निधौ भरतेन प्रीतेषधित इति चाहुः । वैदेहीं चाभ्यवादयत् । चकारो रामनमस्कारं समुच्चिनोति । न संख्ये भरतानुज इत्युक्तेः । सीतामादाय गच्छ त्वमग्रतो भरताग्रजेत्यत्र बहुव्रीहिरित्युक्तम् । न च वैपरीत्यं शङ्क्यम् ।

आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः ॥ राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ४० ॥ तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ॥ अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ॥ ४१ ॥ ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं चाभ्यवादयत् ॥ अभिवाद्य ततः प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥ ४२ ॥ सुग्रीवं केकयीपुत्रो जाम्बवन्तं तथाङ्गदम् ॥ मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं परिषस्वजे ॥ ४३ ॥ सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ॥ शरभं पनसं चैव भरतः परिषस्वजे ॥ ४४ ॥ ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः ॥ कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा ॥ ४५ ॥ अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥ परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥ ४६ ॥ त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ॥ सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥ ४७ ॥ बिभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् ॥ दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ ४८ ॥ शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ॥ सीतायाश्चरणौ पश्चाद्विनयादभ्यवादयत् ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

पुष्ये जातस्तु भरतः, सार्पे जातौ तु सौमित्री इति जन्मक्रमोक्तेः । पायसप्रदाने विवाहे च प्राथम्यं तत्र परिहृतम् । लक्ष्मणासादनानन्तरं सीतानमस्काराभिधानात् सीता तारादिभिः सह रामसमीप एव किंचिदन्यत्र स्थितेत्यवगम्यते॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ लक्ष्मणासादनानन्तरं देवीनमस्काराभिधानात्, अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम् । गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह ॥ इति प्रार्थितप्रकारेण तारादिभिः परिवृता सती रामसमीप एव किंचिदन्यत्र स्थितेत्यवगम्यते॥४२॥४३॥४४॥ त इति ॥मानुषं रूपं कृत्वा स्थिता इति शेषः ॥४५॥४६॥४७॥४८॥४९॥

राम इति ॥ मनो मातुः प्रसादयन्निति पूर्वं त्वद्वाक्यं नाश्रौषमिति त्वया मनस्तापो न कार्य इत्येवं प्रसन्नामकरोदित्यर्थः ॥ ५० ॥ अभिवाद्येति ॥ यशस्विनीं, रावणजयस्य तन्मूलत्वात् । सर्वैः प्रशस्यमानामित्यर्थः । पुरोहितं वसिष्ठम्, अभिवाद्येत्यनुषज्यते । अभिवाद्योपागमदित्यन्वयः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ कैकेय्या यशस्विनीमिति विशेषणं देवकार्यहेतुभूतत्वादृषिः प्रायुङ्क्त ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ एतत्त इत्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकान्व-

रामो मातरमासाद्य विषण्णां शोककर्शिताम् ॥ जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन् ॥५०॥ अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्॥ स मातॄश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागतम्॥५१॥स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन ॥ इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥ ५२ ॥ तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः ॥ व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः ॥ ५३ ॥ पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ॥ चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥ अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ॥ ५४ ॥ एतत्ते रक्षितं राजन् राज्यं निर्यातितं मया ॥ अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ॥ ५५॥ यस्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥ अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं पुरं बलम् ॥ भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥ ५६ ॥ तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् ॥ मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च बिभीषणः ॥ ५७ ॥ ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः ॥ ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ॥ ५८ ॥ भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा ॥ अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥ ५९ ॥ अब्रवीच्च तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम् ॥ ६० ॥ ॥ ॥

यम् ॥ हे राजन्, मया रक्षितं न्यासत्वेन पालितम् एतद्राज्यम् ते निर्यातितं तुभ्यं निवेदितम् । कोष्ठागारं धान्यशालाम् । दशगुणत्वं रामनिर्गमनकालिककोशापेक्षया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तथेति ॥ मुमुचुरिति । स्वकुलीनेष्वेतादृशभ्रातृवृत्त्यदर्शनादिति भावः ॥ ५७ ॥ तत इति ॥ भरताश्रमम् नन्दिग्रामम् ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ अब्रवीच्चेति ॥ गम्यतामित्यनन्तरमितिकरणं बोध्यम् ॥ ६० ॥ ॥ ॥

तत इति ॥ दिशमागम्य दिशमुद्दिश्य ॥६१॥ पुरोहितस्येति ॥ आत्मसमस्य स्वानुरूपस्य, पृथगासने तेन सहैवोपविवेश। पृथगासने युगपदेवोपविविशतुरित्यर्थः ॥ ६२ ॥ इति श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३० ॥

एवं पुष्पकं धनदाय प्रेषयित्वा वसिष्ठेन च समागम्य भरतानुज्ञां विना नायोध्या प्रवेष्टव्येति तात्पर्येण नन्दिग्राम एवासनोपविष्टे रामे निविष्टेषु च पौरवर्गेषु सन्निहितासु च मातृषु तादात्विकसूक्ष्मेङ्गितदर्शननिपुणो भरतः स्वहृदयमग्रजाय निवेदयति—शिरस्यञ्जलिमित्यादिना ॥ शिरस्यञ्जलिमाधायेत्यनेन पूर्वकृता प्रपत्तिः स्मार्यते। अनन्यगतिकत्वसूचिका मुद्रा ह्यञ्जलिः। कैकेय्यानन्दवर्धन इत्यनेन भरतवचने कैकेयीसन्तोषो मुखप्रसादादिनाव-

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ॥ उत्तरां दिशमागम्य जगाम धनदालयम् ॥ ६१ ॥ पुरोहितस्यात्मसमस्य राघवो बृहस्पतेः शक्र इवामराधिपः ॥ निपीड्य पादौ पृथगासने शुभे सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्युद्धकाण्डे त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३० ॥ ॥ ॥

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेय्यानन्दवर्धनः ॥ बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥ पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ॥ तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥ २ ॥ धुरमेकाकिना न्यस्तामृषभेण बलीयसा ॥ किशोरवद्गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे ॥ ३ ॥ ॥ ॥

गम्यत इति द्योत्यते ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ पूर्वसर्गे, कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदेत्यस्यानन्तरवर्ति अथाब्रवीत्त्वमस्माकमिति च श्लोकद्वयमत्र सर्गादौ केषुचित्कोशेषु प्रमादाल्लिखितम्। सर्गादिस्तु शिरस्यञ्जलिमाधायेति ॥ १ ॥ रामस्य राज्यपरिग्रहे अपरिहार्यं हेतुं दर्शयति—पूजितेति ॥ मामिका मत्संबन्धिनी, माता पूजिता। राज्यपरित्यागपूर्वकवनवासाङ्गीकारेण त्वया तोषिता। अनन्तरमिदं राज्यम्, मम मयि, चित्रकूटे दत्तम्। तद्राज्यम् त्वं यथा येन प्रकारेण ममाददाः तेन प्रकारेण तुभ्यं ददामि। न्यासरूपेण मयि स्थापितं राज्यं न्यासरूपत्वाप्रहाणेनैव पुनर्ददामीत्यर्थः ॥ २ ॥ अयोध्यायां राज्यभोगान् यथाकामं भोक्ष्ये राज्यं त्वमेव परिपालयेत्याकाङ्क्षायामाह—धुरमिति ॥ यद्वा पुनरर्थनपर्यन्तं न्यासधारणे न दोष इत्याशङ्क्याह—धुरमिति ॥ एकाकिना असहायेन, बलीयसा ऋषभेण न्यस्तां धुरम् किशोरवत् बालवत्स इव, गुरुं भारम् वोढुं नोत्सहे ॥ ३ ॥ ॥

तर्हि कथमेतावत्पर्यन्तं सोढमित्यत आह—वारीति ॥ महता वारिवेगेन भिन्नः अत एव क्षरन् बहिर्निःसरन्, जलसेतुरिव, इदं राज्यच्छिन्द्रं छिद्रवद्राज्यम्, असंवृतं संवरणरहितं सत्, दुर्बन्धनं मन्ये । यथा महता वारिवेगेन भिन्नः क्षरन् सेतुर्वारिवेगाहतिनिरोधकतृणपुलशाखापूञ्जादिसंवरणम् विना न बद्धुं शक्यते । एवं वहुविधच्छिद्रं राज्यमपि मन्त्रगोपनादिराजगुणावरणं विना पालितुं न शक्यमिति भावः ॥ ४ ॥ अहमिव भवानपि तोकान् गुणैर्वशीकरोत्वित्यत्राह—गतिमिति ॥ ५ ॥ तर्हि ममैवोपोद्बलेन भवानेव राज्यं परिपालयत्वित्याशङ्क्य तर्हि तातेन भवत्पोषणं विफलं स्यादित्याह—यथा चेत्यादिश्लोकत्रयेण ॥ अन्तर्निवेशने आरोपितः उप्तः, वृक्षः महान् जातः, सुदुरारोहो महास्कन्धप्रशाखवान् पुष्पितोपि भूत्वा फलानि न प्रदर्शयन्

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन् ॥ दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥४॥ गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव
च वायसः ॥ नान्वेतुमुत्सहे राम तव मार्गमरिन्दम ॥ ५ ॥ यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने ॥
महांश्च सुदुरारोहो महास्कन्धप्रशाखवान् ॥ ६ ॥ शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन् ॥ तस्य नानुभवेदर्थं
यस्य हेतोः स रोप्यते ॥७॥ एषोपमा महाबाहो त्वदर्थं वेत्तुमर्हसि ॥ यद्यस्मान्मनुजेन्द्र त्वं भक्तान्भृत्यान्न शाधि
हि ॥ ८ ॥ जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु सर्वतः ॥ प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥ ९ ॥ तूर्यसंघातनिर्घोषैः
काञ्चीनूपुरनिस्वनैः ॥ मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व राघव ॥१०॥ यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा
॥ तावत्त्वमिह सर्वस्य स्वामित्वमनुवर्तय ॥ ११ ॥ ॥ ॥

यथा शीर्येत अफलो भवति । यथा च यस्य फलस्य हेतोर्येन रोप्यते, सः रोपयिता तस्य वृक्षस्य अर्थं तत्फलम् नानुभवेत् । मनुजेन्द्र भक्तान् भृत्यान् अस्मान्न शाधि यदि। महाबाहो एषोपमा त्वदर्थमुक्तेति वेत्तुमर्हसीति योजना । अत्र वृक्षरामयोरारोपयितृदशरथयोश्च उपमानोपमेयभावः । बीजावापस्य पुत्रेष्ट्यादेश्च महास्कन्धस्य सभ्रातृकत्वस्य च प्रशाखवत्त्वस्य सुग्रीवादिमित्रगणस्य च पुष्पाणां कल्याणगुणानां च राज्याकरणस्य फलाभावस्य च साम्यं द्योत्यते ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ भवतस्तु राज्यपरिपालने महती शक्तिरित्याह—जगदिति ॥९॥ सर्वभोगार्हस्त्वमेव भोगान् भुङ्क्ष्वेत्याह—तूर्येति ॥ काञ्चीनुपूरनिस्वनैरित्यनेन प्रवोधकललितनृत्यं गम्यते ॥ १० ॥ मध्ये स्वस्य राज्याशानुद्गमं द्योतयन्नाह—यावदिति ॥ चक्रं ज्योतिश्चक्रमिति यावत् । यावती यावत्कालस्थितिः, तावत् तावत्कालम्, सर्वस्य राज्यस्य स्वामित्वमनुवर्तय । स्वामित्वानुवर्तनं हि पालनमेव ॥ ११ ॥ ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः ॥ तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥ १२ ॥ ततः शत्रुघ्नवचनात् निपुणाः श्मश्रुवर्धकाः ॥ सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्युपासत ॥ १३ ॥ पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले ॥ सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे बिभीषणे ॥ १४ ॥ विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ॥ महार्हवसनो रामस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ १५ ॥ प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् ॥ लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ १६ ॥ प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥ १७ ॥ ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् ॥ चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रलालसा ॥ १८ ॥ ततः शत्रुघ्नवचनात्सुमन्त्रो नाम सारथिः ॥ योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥ १९ ॥ अर्कमण्डलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथोत्तमम् ॥ आरुरोह महाबाहू रामः सत्यपराक्रमः ॥ २० ॥ सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती ॥ स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥ २१ ॥ वराभरणसंपन्ना ययुस्ताः शुभकुण्डलाः ॥ सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥ २२ ॥ ॥ ॥

भरतस्येति ॥ निषसादेति । भरत इति शेषः ॥ १२ ॥ तत इति ॥ श्मश्रुवर्धकाः श्मश्रुकर्तकाः । वर्धनं छेदनेथ द्वे आनन्दनसभाजने इत्यमरः । सुशीघ्राः अभिषेकमुहूर्तातिलङ्घनं विना शीघ्रं कर्तुं समर्थाः । उपासत श्मश्रूण्यवर्धन्त । भरतलक्ष्मणापेक्षया श्मश्रुवर्धकानां बहुवचनम् । राघवमिति भरतलक्ष्मणयोः प्रदर्शनार्थम् ॥ १३ ॥ पूर्वमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ न मे स्नानं बहुमतं, तं विना केकयीसुतमित्युक्त्या प्रथमं स्नानं भरतस्य, सुग्रीवस्यापि किष्किन्धानिर्गमनप्रभृतिस्नानाभावादद्य स्नानम् । तथा बिभीषणस्यापि लङ्कानिर्गमनप्रभृतिस्नानाभावात् । शत्रुघ्नस्य स्नानाश्रवणमधिकर्तृत्वेन तदानीमवसराभावात् । पूर्वं व्रतग्रहणानुक्तेश्च । नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोनघ इति संक्षेपोक्तेरत्रापि शत्रुघ्नस्नानमर्थसिद्धमित्याहुः । जटाशोधनं शुद्धकेशीकरणम् । स्नात इति कर्तरि क्तः । नानावर्णपुष्पयुक्तत्वेन चित्रमाल्यत्वम् । कुङ्कुमकर्पूरकस्तूर्यादिवस्तुभेदेन चित्रानुलेपनत्वम् । महार्हवसनं पीताम्बरम् । श्रिया अलंकारश्रिया, तत्र सिंहासने, ज्वलन् प्रकाशमानः तस्थौ ॥ १४ ॥ १५ ॥ प्रतिकर्मेति ॥ प्रतिकर्म हाराद्यलंकरणम् । इक्ष्वाकुकुलवर्धनः शत्रुघ्नः ॥ १६ ॥ प्रतिकर्मेति ॥ आत्मनैव स्वयमेव ॥ १७ ॥ तत इति ॥ शोभनम् प्रतिकर्मेत्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ सुग्रीव इति ॥ दिव्यनिभैः दिव्यवस्त्रसदृशैः वस्त्रैरुपलक्षिताविति शेषः ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ ॥ ॥

अयोध्यायामिति ॥ गत्वेति शेषः । मन्त्रयामासुः अभिषेकोपयोगिमङ्गलद्रव्यसंपादनार्थम् एवं कर्तव्यमिति मन्त्रयामासुः ॥ २३ ॥ उक्तमर्थं विवृणोति-अशोक इति ॥ मन्त्रयन् अमन्त्रयन् ॥२४॥ सर्वमित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अर्हथेति पूजायां बहुवचनम् ॥२५॥२६॥ हरीति ॥ हरियुक्तं हरितवर्णयुक्ताश्वयुक्तम् ॥२७॥ जग्राहेत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ रश्मीन् जग्राह सारथ्यमकरोत् । लक्ष्मण इति। पुरतः स्थितो लक्ष्मणः व्यजनं तालवृन्तकम्

अयोध्यायां तु सचिवा राज्ञो दशरथस्य ये ॥ पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत्॥२३॥ अशोको विजयश्चैव सुमन्त्रश्चैव सङ्गताः ॥ मन्त्रयन् रामवृद्ध्यर्थमृद्ध्यर्थं नगरस्य च ॥२४॥ सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः ॥ कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥ २५ ॥ इति ते मन्त्रिणः सर्वे संदिश्य तु पुरोहितम् ॥ नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥ २६ ॥ हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः ॥ प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥ २७॥ जग्राह भरतो रश्मीन् शत्रुघ्नश्छत्रमाददे ॥ लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संपर्यवीजयत् ॥२८॥श्वेतं च बालव्यजनं जग्राह पुरतः स्थितः॥अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो बिभीषणः॥२९॥ ऋषिसंघैस्तदाकाशे देवैश्च समरुद्गणैः॥स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः॥३०॥ततः शत्रुञ्जयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम् ॥ आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः ॥३१॥ नवनागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः॥ मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः॥ ३२ ॥ शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निस्वनैः॥ प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥ ३३ ॥ ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ॥ विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥३४॥ ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ॥ अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥३५॥

मूर्ध्नि सम्पर्यवीजयत् । श्वेतं वालव्यजनं च जग्राह । अहं सर्वं करिष्यामीति त्वरया उभयग्रहणम्। अपरं चन्द्रसंकाशमित्यत्र जग्राहेत्यनुषज्यते ॥ २८ ॥ ॥२९॥ऋषीति ॥ समरुद्गणैः सवायुगणैः । रामस्य मधुरध्वनिः रावणनिरसनाद्यवदानकथनध्वनिः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ शङ्खेति ॥ शङ्खशब्दप्रणादैः शङ्खशब्दैः । जनहर्षप्रणादैश्चेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ ददृशुरिति ॥ ये नगरं प्रविश्य वसिष्ठं पुरस्कृत्य रामाभिषेकममन्त्रयन् ते सुमन्त्रादयः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अमात्यैरिति ॥ प्रकृतिभिः पौरजनैः ॥ ३६ ॥ सेति ॥ तूर्यैः तूर्यवादकैः । स्वस्तिको वाद्यविशेषः । मङ्गलानि प्रव्याहरद्भिः मङ्गलपाठकैः ॥ ३७ ॥ अक्षतं जातरूपमिति ॥ हरिद्रया जातरूपमक्षतम्, वहद्भिरिति शेषः॥३८॥ सख्यं चेत्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम् ॥ सख्यं जातमिति शेषः। मन्त्रिणां मन्त्रिभ्यः ॥ ३९ ॥ श्रुत्वेत्यर्धम् ॥ श्रुत्वा सुग्रीवसख्यादिकमिति शेषः ॥४०॥४१॥ तत इति ॥ अभ्युच्छ्रयन् अभ्युदश्राययन्, उन्नम्य स्थापितवन्तः

अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः ॥ श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥३६॥ स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ॥ प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि ययौ वृतः ॥३७॥ अक्षतं जातरूपं च गावः कन्यास्तथा द्विजाः॥ नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः॥३८॥ सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ॥ वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद्बलम् ॥ विभीषणस्य संयोगमाचचक्षे च मन्त्रिणाम् ॥३९॥ श्रुत्वा तु विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ॥४०॥ द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंवृतः ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश ह ॥ ४१ ॥ ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकास्ते गृहे गृहे ॥४२॥ ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥४३॥ अथाब्रवीद्राजसुतो भरतं धर्मिणां वरम् ॥ अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः॥४४॥ पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः॥ कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च ॥४५॥ यच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत् ॥ मुक्तावैडूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥४६॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः ॥ पाणौ गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥ ४७॥ ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च ॥ गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥४८॥ ॥ ॥

॥ ४२ ॥ ऐक्ष्वाकेत्यर्धम् ॥ राम इति शेषः ॥ ४३ ॥ अथाब्रवीदित्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ अथ रघुनन्दनः महात्मनः पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च कौसल्याप्रभृतीरभिवाद्य च भरतमब्रवीदिति योजना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ यच्चेति ॥ साशोकवनिकम् अन्तःपुरोद्यानसहितम् ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तत इति ॥ विविशुः । परिचारिका इति शेषः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥ ॥

❀ रामानुजीयम् ❀ उवाचेति ॥ दूतानाज्ञापय प्रभो इति पाठः ॥४९॥५०॥ यथेति ॥ हे वानराः, चतुर्णां सागराम्भसाम् चतुर्भिः सागराम्भोभिः, पूर्णैर्घटैः उपलक्षिताः प्रत्यूषसमये यथा प्रतीक्षध्वं यथास्मान् प्रतीक्षिष्यध्वे तथा कुरुतेति योजना । सागरजलानयननियोगो नदीजलानयननियो-

उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः ॥ अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥ ॥४९ ॥ सौवर्णान्वानरेन्द्राणां चतुर्णां
चतुरो घटान् ॥ ददौ क्षिप्रं स सुग्रीवः सर्वरत्नविभूषितान् ॥ ५० ॥ यथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम् ॥ पूर्णैर्घटैः
प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः ॥ ५१ ॥ एवमुक्ता महात्मानो वानरा वारणोपमाः ॥ उत्पेतुर्गगनं शीघ्रं गरुडा इव
शीघ्रगाः ॥ ५२ ॥ जाम्बवांश्च हनूमांश्च वेगदर्शी च वानराः ॥ ऋषभश्चैव कलशान् जलपूर्णानथानयन् ॥ ५३ ॥
नदीशतानां पञ्चानां जलकुम्भेषु चाहरन् ॥ ५४ ॥ पूर्वात्समुद्रात्कलशं जलपूर्णमथानयत् ॥ सुषेणः सत्त्वसंपन्नः
सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ५५ ॥ ऋषभो दक्षिणात्तूर्णं समुद्राज्जलमाहरत् ॥ रक्तचन्दनशाखाभिः संवृतं काञ्चनं
घटम् ॥ ५६ ॥ गवयः पश्चिमात्तोयमाजहार महार्णवात् ॥ रत्नकुम्भेन महता शीतं मारुतविक्रमः ॥ ५७ ॥ उत्तराच्च
जलं शीघ्रं गरुडानिलविक्रमः ॥ आजहार स धर्मात्मा नलः सर्वगुणान्वितः ॥ ५८ ॥ ततस्तैर्वानरश्रेष्ठैरानीतं प्रेक्ष्य
तज्जलम् ॥ अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह ॥ पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत् ॥ ५९ ॥ ॥ श्रीरामस्य
पट्टाभिषेकघट्टः ॥ ॥ ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ॥ रामं रत्नमये पीठे सहसीतं न्यवेशयत् ॥ ६० ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ॥ कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा ॥ ६१ ॥ अभ्यषिञ्चन् नरव्याघ्रं
प्रसन्नेन सुगन्धिना ॥ सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥ ६२ ॥ ॥ ॥

गस्याप्युपलक्षकः ॥५१॥५२॥ ५३ ॥ जलपूर्णानथानयन्नित्युक्तमेवार्थं विवृणोति–नदीशतानामिति ॥ ५४ ॥ एवं जाम्बवद्धनुमद्वेगदर्श्यृषभैर्नदीजलानयनमुक्त्वा सुषेणर्षभगवयानलैः सागरजलानयनं दर्शयति–पूर्वादिति ॥ ५५ ॥ ऋषभो दक्षिणादिति ॥ अयं चर्षभः पूर्वस्मादन्यः॥५६ ॥ ५७ ॥५८॥ तत इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ तत् प्रसिद्धम् । तज्जलं तेषां नदीसागराणां जलम् ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ॥

ऋत्विग्भिरिति ॥ ते वसिष्ठादयः ऋत्विगादिभिः सहाभ्यषिञ्चन्निति योजना॥६३॥सर्वौषधिरसैरित्यत्रापि अभ्यषिञ्चंस्त इत्यनुषज्यते॥६४॥६५॥ मालामिति ॥ शतपुष्करां शतपद्माम् ॥६६॥ सर्वेति ॥ सर्वरत्नैः नवरत्नैः समायुक्तम्, मणिरत्नेन मणिश्रेष्ठेन नायकेन मध्ये विराजन्तं, मुक्ताहारं मुक्ताप्रचुरहारम् ददौ । वायुरित्यनुषज्यते॥६७॥६८॥ पूर्वं रामविश्लेषे, अपि वृक्षाः परिम्लाना इत्युक्तावस्थं वस्तुजातं रामसंश्लेषे तादृगवस्थां विहाय प्रहृ-

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा ॥ योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते संप्रहृष्टाः सनैगमैः॥ ६३ ॥ सर्वौषधिरसैर्दिव्यैर्दैवतैर्नभसि स्थितैः ॥ चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वैर्देवैश्च संगतैः ॥ ६४ ॥ (ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम् ॥ अभिषिक्तः पुरा येन मनुस्तं दीप्ततेजसम् ॥ तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद्येनाभिषेचिताः ॥ सभायां हेमक्लृप्तायां शोभितायां महाजनैः ॥ रत्नैर्नानाविधैश्चैव चित्रितायां सुशोभनैः॥ नानारत्नमये पीठे कल्पयित्वा यथाविधि ॥ किरीटेन ततः पश्चाद्वसिष्ठेन महात्मना ॥ ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥) छत्रं तु तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् ॥ श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ अपरं चन्द्रसंकाशं (वालव्यजनमुत्तमम् ॥ हृष्टो रामस्य जग्राह) राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥६५॥ मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ॥ राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः ॥ ६६ ॥ सर्वरत्नसमायुक्तं मणिरत्नविभूषितम् ॥ मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः ॥६७॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः ॥६८॥ भूमिः सस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः ॥ गन्धवन्ति च पुष्पाणि बभूवू राघवोत्सवे ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ष्टतममभूदित्याह—भूमिरिति ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ पूर्वं रामविश्लेषे, विषये ते महाराज रामव्यसनकर्शिताः । अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पाङ्कुरकोरकाः॥जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजानि चेत्युक्तावस्थापन्नं वस्तुजातं रामसंश्लेषे तादृशीमवस्थां विहाय प्रहृष्टतममभूदितीममर्थं दर्शयति—भूमिः सस्यवतीति ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सहस्रशतमिति ॥ धेनूनां नवप्रसूतिकानाम् । धेनुः स्यान्नवसूतिकेत्यमरः । पूर्वं हिरण्यदानादेः पूर्वम् । सुग्रीवादिभ्यः पूर्वं वा ॥७०॥ ७१ ॥ अर्करश्मीति ॥ मणिविग्रहां मणिप्रचुराम् ॥७२॥ वैडूर्येति ॥ धृतिमान् प्रीतिमान् ॥७३॥ मणिप्रवरेति ॥ सीतायै प्रददौ हनुमते दातव्यमित्याशयेन ददौ ॥७४॥ अरजे इति॥ अरजे निर्मले । अकारान्तत्वमार्षम् । अवेक्षमाणा भर्तारमिति शेषः । स्त्रियाः स्वातन्त्र्याभावात् भर्त्रनुज्ञां काङ्क्षितवतीति भावः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ अरजे इति ॥ अवेक्षमाणो वैदेहीं प्रददौ वायुसूनव इति पाठः ॥ ७५ ॥ अवमुच्येति ॥ हारं रामदत्तम् । सदसि मह्यं हारप्रदानं कस्मै

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ॥ ददौ शतं वृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः ॥७०॥ त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ॥ नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः ॥७१॥ अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् ॥ सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजर्षभः ॥७२॥ वैडूर्यमणिचित्रे च वज्ररत्नविभूषिते ॥ वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ ॥७३॥ मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम् ॥ सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ॥७४॥ अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च ॥ अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे ॥७५॥ अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ॥ अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥ ७६॥ तामिङ्गितज्ञः संप्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ॥ प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि ॥ पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि सर्वशः ॥७७॥ ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥ हनुमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः॥ चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥७८॥ ततो द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परन्तपः ॥ सर्वान् कामगुणान्वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ॥ ७९ ॥ सर्ववानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरेश्वराः ॥ वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥ ८० ॥ ॥ ॥ ॥

चित् पारितोषिकतया दापयितुमिति निश्चित्य अयं हारः एषु कस्मै देय इत्याशयेनावैक्षतेत्यर्थः ॥७६॥ तामिङ्गितज्ञ इत्यादिसार्धश्लोक एकान्वयः ॥ प्रदेहीति । यस्य यस्मिन् । पौरुषं बलम् समुद्रलङ्घनेन । विक्रमो लङ्कादहनेन । बुद्धिः अशोकवनिकाप्रवेशेन । सर्वशः सर्वाणि, यस्मिन् सन्तीति यस्य संतुष्टासि तस्मै देहीति योजना । अन्यथा अन्येषां निन्दोक्तिरेव स्यात्॥७७॥७८॥ तत इति ॥ कामगुणान् काम्यन्त इति कामाः प्रार्थनीयाः गुणाः येषां ते तान् आभरणादिवस्तुविशेषान् ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ॥ ॥ ॥

विभीषणोथेति ॥ अत्र संभावितपरिगणने प्रथमं कीर्तनाल्लब्ध्वा कुलधनमित्यनुवादाच्च आदावेव विभीषणः संभावित इति बोध्यम् ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ विभीषणोथ सुग्रीव इति ॥ संभावितानुवादसमये विभीषणस्य प्रथमोपादानात् सुग्रीवात्पूर्वमेव विभीषणः संभावित इत्यवगम्यते ॥ ॥८१॥८२॥८३॥ सुग्रीव इत्यर्धम् ॥ अत्रापि वचनव्यत्ययेन किष्किन्धामभ्युपागमदित्यनुषज्यते ॥८४॥ लब्ध्वेत्यर्धम् ॥ कुलधनम् इक्ष्वाकुकुलधनम् श्रीरङ्गविमानमिति संप्रदायः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ कुलधनम् इक्ष्वाकुकुलधनम् श्रीरङ्गसंज्ञकं विमानमिति सन्तो वदन्ति । विभीषणकुलक्रमागतं लङ्काराज्यमिति केचित् ॥ ८५॥ स इति ॥ शासन् दुष्टनिग्रहं कुर्वन् । शास बुभुज इत्यर्थः । धातूनामनेकार्थत्वात् ॥८६॥८७॥ लक्ष्मणेमां मया सार्धं

विभीषणोथ सुग्रीवो हनुमान् जाम्बवांस्तथा ॥ सर्ववानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ८१ ॥ यथार्हं पूजिताः सर्वैः कामै रत्नैश्च पुष्कलैः॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥८२॥ नत्वा सर्वे महात्मानं ततस्ते प्लवगर्षभाः॥ विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धामभ्युपागमन्॥८३॥ सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम्॥ (पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत्पुरीम्)॥ रामेण सर्वकामैश्च यथार्हं प्रतिपूजितः ॥ ८४ ॥ लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायाद्विभीषणः॥ ८५ ॥ स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः॥ राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ॥८६॥ उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥८७॥ आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ॥ तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या तां यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥ ८८ ॥ सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ॥ नियुज्यमानोपि च यौवराज्ये ततोभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा ॥ ८९ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रशाधि त्वं वसुन्धरामिति पूर्वाभिषेकारम्भे भरतासन्निधाने प्रतिज्ञानात् रामो द्विर्नाभिभाषत इति नियमाल्लक्ष्मणमेव यौवराज्ये नियुङ्क्ते—आतिष्ठेति ॥ पूर्वराजैः मन्वादिभिः अध्युषिताम् आतिष्ठ पालय । पितृभिः पितृपितामहप्रपितामहैः, या धृता तां धुरं मया तुल्यं यथा भवति तथा यौवराज्ये स्थित्वा उद्वहस्व ॥८८॥ सर्वेति ॥ यौवराज्ये नियुज्यमानः यौवराज्यमङ्गीकुरुष्वेति नियम्यमानः, पर्यनुनीयमानः पुनः पुनरनुनयेन पृच्छ्यमानः सन्नपि च, सर्वात्मना सर्वप्रकारेणापि, यदा योगं सम्मतिम् नोपैति । स्वशेषत्वविरुद्धत्वज्ञानाज्ज्येष्ठे भरते विद्यमाने स्वस्य तदनुचितत्वज्ञानाच्चेति भावः । तदा भरतम् अत्यन्तपरतन्त्रम् यौवराज्ये अभ्यषिञ्चत् ॥ ८९ ॥ ॥ ॥ ॥

पौण्डरीकेति ॥ अत्रोत्तरक्रत्वारम्भोक्तिर्वनवासात्परमग्न्याधानपूर्वकं पूर्वक्रतवोपि रामेण कृता इत्यस्योपलक्षणम् ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ राघव इति ॥ चापीति निपातसमुदायोवधारणार्थोऽभिन्नक्रमः । ससुहृज्ज्ञातिबान्धव एवेत्यर्थः ॥ ९३ ॥ न पर्यदेवन्निति ॥ नापर्यदेवयन्नित्यर्थः ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ सर्व-

पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजपेयेन चासकृत् ॥ अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरजयत्पार्थिवर्षभः ॥ ९० ॥ राज्यं दश सहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः ॥ शताश्वमेधानाजह्ने सदश्वान् भूरिदक्षिणान् ॥९१॥ आजानुलम्बबाहुः स महास्कन्धः प्रतापवान् ॥ लक्ष्मणानुचरो रामः पृथिवीमन्वपालयत् ॥ ९२ ॥ राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ॥ ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवः ॥ ९३ ॥ न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥ न व्याधिजं भयं वापि रामे राज्यं प्रशासति ॥ ९४ ॥ निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थः कंचिदस्पृशत् ॥ न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ९५ ॥ सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोभवत् ॥ राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम् ॥ ९६॥ आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ॥ निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥९७॥ रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ॥ रामभूतं जगदभूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ९८ ॥ नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्धविस्तृताः ॥ काले वर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः॥ ९९॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः॥ स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥१००॥ आसन् प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः ॥ सर्वे लक्षणसंपन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ १०१ ॥ दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥ भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत्॥१०२॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्॥ आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ यः पठेच्छृणुयाल्लोके नरः पापाद्विमुच्यते ॥ १०३ ॥

मिति॥राममेवेति। अन्योन्यनिर्मूलनवैरे सत्यपि राममुखं म्लानं भविष्यतीति मत्वा परस्परं नाभ्यहिंसन् । परमधार्मिकं राममेवानुचिन्तयन्तोऽन्योन्यवैरं प्रजहुरित्यर्थः ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ अथ रामायणपठने फलं दर्शयति–धन्यमित्यादिसार्धश्लोकमेकं वाक्यम्॥

ऋषिः वेदः तत्संबन्धि । वेदोपबृंहणमिति यावत् । पुरा अवतारात्पूर्वम् । रामोत्तरतापनीयमूलत्वेन पुरातनमिति वार्थः । यद्वा पुरा सर्वकविभ्यः पूर्वम् । न त्ववतारात्पूर्वमित्यर्थः । प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः । चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमात्मवानिति रामे प्राप्तराज्ये सति चकारेत्युपक्रमात्, रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवानिति राज्यप्राप्तिपर्यन्तं भूततया निर्दिश्य ततः परं ब्रह्मलोकं प्रयास्यतीत्येतदन्तं भविष्यतानिर्देशात्, कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके इत्यादौ साम्प्रतशब्दप्रयोगात्, रामभूतं जगदभूद्रामे राज्यं प्रशासतीति सकललोकविदितरामविषयप्रश्ना-

पुत्रकामस्तु पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ॥ लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥ १०४॥ महीं विजयते राजा
रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥ राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ॥ १०५॥ भरतेनैव कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः॥
(भविष्यन्ति सदानन्दाः पुत्रपौत्रसमन्विताः)॥१०६॥ श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ रामस्य विजयं
चैव सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥ १०७ ॥ शृणोति य इदं काव्यमार्षं वाल्मीकिना कृतम् ॥ श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ
॥ १०८॥ समागमं प्रवासान्ते लभते चापि बान्धवैः ॥ प्रार्थितांश्च वरान् सर्वान् प्राप्नुयादिह राघवात् ॥
॥ १०९ ॥ श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते संप्रशृण्वताम् ॥ विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यस्य वै ॥ ११० ॥ विजयेत
महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥ स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान् १११ ॥ पूजयंश्च पठंश्चेमम्
इतिहासं पुरातनम् ॥ सर्वपापात्प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ११२ ॥ ॥ ॥

नुपपत्तेः सर्वथा परिहृतत्वात् । इतिहासं पुरातनमित्यस्य आदिकाव्यत्वात्सङ्गतेरन्येषामपि विरोधाभासानां सुपरिहार्यत्वाच्चायमेवार्थः ॥ १०३ ॥ पुत्रकामस्त्वित्यादिसार्धश्लोकद्वयमेकं वाक्यम्॥ रामाभिषेचनं रामाभिषेकावधिकम्, अधितिष्ठति आक्रम्य तिष्ठतीत्यर्थः। माता कौसल्या । जीवपुत्राः भवन्तीति शेषः ॥ १०४॥१०५॥१०६॥१०७॥शृणोति य इत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥ दुर्गाणि दारिद्र्यादीनि॥१०८॥१०९॥ श्रवणेनेति ॥ विनायकाः विघ्नकरा ग्रहाः ॥ ❀ रामानुजीयम् ❀ श्रवणेति ॥ संप्रशृण्वतामिति पाठः । विनायकाः विघ्नकारिणो भूतविशेषाः ॥ ११०॥१११॥ ११२॥

ब्राह्मणवत् क्षत्रियस्यापि पाठप्राप्तौ नियममाह–प्रणम्येति ॥ वैश्यादीनां कैमुतिकसिद्धं ब्राह्मणात् प्रणमनपूर्वकं श्रवणम् ॥११३॥११४॥११५॥११६॥
आयुष्यमिति ॥ सौभ्रातृकं सौभ्रातृकरम् । सुखं सुखकरम् ॥११७॥११८॥११९॥भक्त्येति ॥ संहितातुल्यत्वात् संहितेति व्यपदेशः ॥ १२० ॥ इति

प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् ॥ ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः॥ ११३ ॥ रामायणमिदं कृत्स्नं
शृण्वतः पठतः सदा ॥ प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥११४॥ आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः॥
(साक्षाद्रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यते)॥११५॥ कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च॥ श्रुत्वा
शुभं काव्यमिदं महार्थं प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम्॥११६॥आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं बुद्धिकरं
सुखं च ॥श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः॥ ११७॥ एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः॥
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥११८॥ देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहणाच्छ्रवणात्तथा ॥ रामायणस्य श्रवणात्तुष्यन्ति
पितरस्तथा ॥११९॥ भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् ॥ लेखयन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे
॥ १२० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे आदिकाव्ये श्रीमद्वाल्मीकीये चतुर्विंशतिसहस्रिकायां संहितायां श्रीमद्युद्धकाण्डे
श्रीरामपट्टाभिषेको नाम एकत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः॥ १३१ ॥ ॥ युद्धकाण्डं समाप्तम् ॥

॥ यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् । तत्सर्वं क्षम्यतां देव नारायण नमोस्तु ते ॥

श्रीगोविन्दराजविरचिते श्रीरामायणभूषणे रत्नकिरीटाख्याने युद्धकाण्डव्याख्याने एकत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३१ ॥ ॥

इत्थं श्रीमच्छठारेश्वरणसरसिजद्वन्द्वसेवातिरेकादुद्भूतोद्दामबोधः कुशिकसुतकुलापाम्पतेरोषधीशः ॥ श्रीमान् गोविन्दराजो वरदगुरुसुतो भावनाचार्यवर्यप्रेम्णैव प्रेर्यमाणो व्यतनुत विपुलां युद्धकाण्डस्य टीकाम् ॥ ॥ युद्धकाण्डव्याख्यात्रयं समाप्तम् ॥

इदं सव्याख्यं युद्धकाण्डं श्रीकृष्णदासात्मज–गंगाविष्णुना नैजे मोहमयीनिकटवर्तिकल्याणनगरस्थ “ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ” मुद्रणालये मुद्रितम् ।

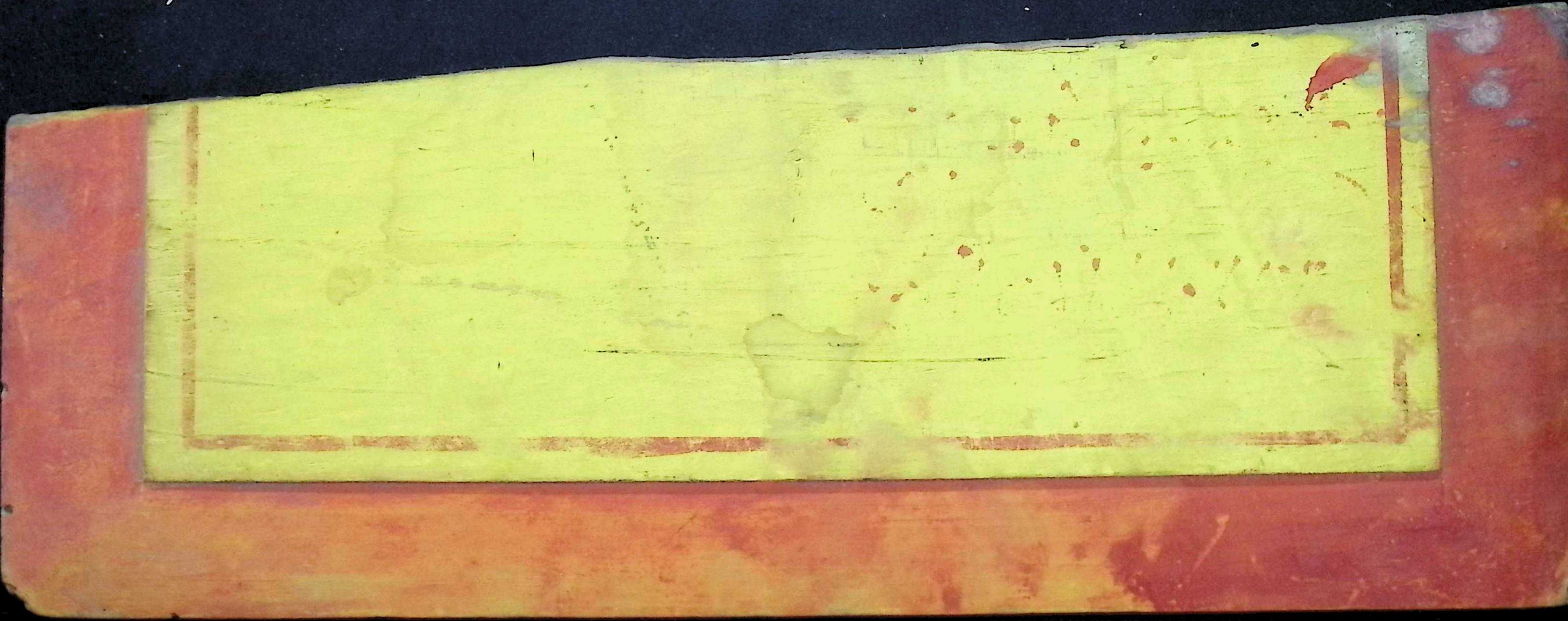॥ इति सटीकान्वयश्रीवाल्मीकीयरामायणे युद्धकाण्डम् ॥